मत्स्य–पुराण

(प्रथम खण्ड)

[सरल भाषानुवाद सहित]

जनोपयोगी (संस्करण)

•

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट् दर्शन,

२० स्मृतियाँ व १८ पुराणों के

प्रसिद्ध भाष्यकार ।

•

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, (वेद नगर) बरेली–२४३००३ (उ०प्र०)

फोन नं० : ४७४२४२

भूमिका

भारतीय पुराण-साहित्य बड़ा विस्तृत है। उसने मानव-जीवन के लिए आवश्यक किसी क्षेत्र को अछूता नहीं छोड़ा है। जो लोग समझते हैं कि पुराणों में केवल धार्मिक कथायें, ऋषि-मुनि और राजाओं का इतिहास, पूजापाठ की विधियाँ और तीर्थों का वर्णन मात्र है, वे वास्तव में उनसे अनजान हैं। कितने ही पुराणोंमें औषधि विज्ञान, साहित्य और कला सम्बन्धी विवेचन, गृह निर्माण शास्त्र, साहित्य, संगीत, रत्न-विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान, स्वप्न-विचार आदि विविध विषयों की पर्याप्त चर्चा की गई हैं। 'अग्नि पुराण' में तो विविध विषयक ज्ञान इतना अधिक संग्रह किया गया है कि लोग उसको प्राचीनकाल का 'विश्वकोष' कहते हैं। उसमें लगभग २००-२५० विषयों का परिचय दिया गया है। इस दृष्टि से 'नारद पुराण' भी प्रसिद्ध है जिसमें अनेक प्रकार की उपयोगी विद्याओं का गम्भीर रूपसे विवेचन किया गया है। 'गरुण पुराण' में चिकित्सा शास्त्र और रत्न-विज्ञान की बहुत अधिक जानकारी भरी हुई है। 'पुराणों' की इन्हीं विशेषताओं को देखकर प्राचीन साहित्य के एक बहुत बड़े ज्ञाता ने लिखा था—

"पुराणों में भारत की सत्य और शाश्वत आत्मा निहित है। इन्हें पढ़े बिना भारत का यथार्थ चित्र सामने नहीं आ सकता, भारतीय जीवन का दृष्टिकोण स्पष्ट नहीं हो सकता। इनमें आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक सभी विद्याओं का विशद वर्णन है। लोक जीवनके सभी पक्ष (पहलू) इनमें अच्छी तरह प्रतिपादित है। ऐसा कोई ज्ञान-विज्ञान नहीं, मन व मस्तिष्क की ऐसी कोई कल्पना अथवा योजना नहीं, मनुष्य-जीवन का ऐसा कोई अंग नहीं, जिसका निरूपण पुराणों में न हुआ हो। जिन विषयों को अन्य माध्यमों से समझने में बहुत कठिनाई

होती है, वे बड़े रोचक ढङ्ग से सरल भाषा में, आख्यान आदि के रूप में इनमें वर्णित हुए हैं।" पर सच पूछा जाय तो पुराणों का यही गुण कुछ 'आलोचकों' की निगाह में उनका 'दोष' बन गया है। खण्डन की प्रवृत्ति वाले लेखक और सरसरी निगाह से पढ़ने वाले पाठक उनकी अद्भुत और चमत्कार पूर्ण कथाओं को पढ़कर तुरन्त शोर मचाने लगते हैं—"देखा, पुराणों में कैसी गप्पाष्टकें भरी पड़ी हैं। कहीं ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो एक महीना पुरुष और एक महीना स्त्री रहें और जिनके स्त्री रूप में सन्तान भी हो जाय। कहीं सौ-सौ और दो-दो सौ गज लम्बे मनुष्य भी हुआ करते हैं।"

पर कदाचित् वे यह नहीं जानते कि वैज्ञानिक की खोज के अनुसार पृथ्वी पर आरम्भ का एकयुग ऐसा भी था जिसमें सन्तानें नर-मादा द्वारा नहीं होती थीं, वरन् किसी भी जीव से दूसरा जीव किसी तत्काली प्रणाली से उत्पन्न हो जाता था। निश्चय ही यह स्थिति करोड़ों वर्ष पहले थी, जबकि मानव-प्राणी तो दूर गाय, भैंस और घोड़े-हाथी जैसे पशु भी नहीं थे। पर कुछ भी हो उस समय पृथ्वी पर उन्हीं जीवों का अस्तित्व था, चाहे वे मछली के रूप में हों और चाहे किसी प्रकार के कीड़े-मकोड़ों, छिपकली जैसे प्राणी आदि के रूप में। इस वैज्ञानिक तथ्य को पुराने जमाने के साधारण मनुष्यों को जब ज्ञान-विज्ञान की चर्चा बहुत ही कम फैली थी, समझा सकना असम्भव था। इस दशा में यदि किसी पुराणकार ने 'इला' नामक राजपुत्र की कहानी पढ़कर और उसका सम्बन्ध किसी ऐतिहासिक व्यक्ति या वंशसे जोड़कर समझा दिया तो इसमें क्या हानि हो गई? विद्वान् उनका यथार्थ भेद जानते हैं और पौराणिक कथाओं के श्रोता केवल 'पुण्य' के विचारसे उन रोचक वर्णनों को सुनते हैं और कुछ लोग उनसे सत्कर्म करने की कुछ शिक्षा भी ग्रहण कर लेते हैं। पर 'अर्द्धदग्ध' जीवों के लिए वे परेशानी का कारण बन जाती हैं, और वे इधर-उधर से दो चार प्रसंगों को लेकर उन्हें

अधूरे रूप में वर्णन करने लगते हैं, और पुराणों के खिलाफ दस-पाँच खरी-खोटी बातें कहकर अपने को 'विद्वान्' समझने का सन्तोष कर लेते हैं।

पौराणिक साहित्य का विस्तार और महत्व—

पर हम पाठकों को बतलाना चाहते हैं कि 'पुराण' वास्तव में ऐसी तिलिस्मी चीज नहीं है जैसा ये स्वयम्भू विद्वान् उनको सिद्ध करने का प्रयत्न किया करते हैं। ऊपर जो पुराणों के महत्व का उद्धरण दिया है वह भी समस्त आयु वेदों का परिशीलन करने वाले एक विद्वान का है और वे वेदों तथा पुराणों का समन्वय करके इसी निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि 'इतिहास पुराणाभ्यां वेदे समुपवृंहयेत्।' अर्थात् पुराणकारों ने मूल वैदिक तथ्यों को सर्व साधारण को समझाने की दृष्टि से ही उनका विस्तार करके नाना प्रकार की कथाओं की रचना की है। इतना ही नहीं पुराणों का दावा तो इससे बहुत अधिक है। 'स्कन्द पुराण' के 'रेवाखंड' में कहा गया है—

आत्मापुराणं वेदानां पृथगङ्गानितानि षट्।
यच्चदृष्टंहि वेदेषु तद्दृष्ट स्मृतिभिः किल॥
उभभ्यां यत्तु्ष्टंहि तत्पुराणेषु गीयते।
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणः स्मृतम्॥

"पुराण वेदों की आत्मा है। छः वेदांग उससे पृथक हैं। जो कुछ वेदों में देखा वही स्मृतियों में भी देखा गया। और वेद तथा स्मृति दोनों में जो कुछ देखा गया वह सब पुराणों में गाया जाता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि पुराणों को ब्रह्माजी ने सब शास्त्रों से पहले कहा है।"

हम इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि जब वेदों को लोकमान्य तिलक जैसे विद्वान् कम से कम दस हजार वर्ष पुराना बतलाते थे, तब पुराणों का रचना काल दो हजार वर्ष के भीतर माना जाता है।

यही बात इन दोनों प्रकार के ग्रन्थों की भाषा की तुलना करने से प्रकट होती है। पर 'स्कन्द पुराण' के लेखक का कथन केवल वर्तमान समय में पाये जाने वाले हस्तलिखित तथा छपे हुए अठारह पुराणों के सम्बन्ध में नहीं है, वरन् पौराणिक शैली के समस्त साहित्य से है चाहे वह लिखा हो अथवा जबानी कहा और सुना जाता हो। इस कथन पर विचार करने से अन्त में हमको यह स्वीकार करना पड़ता है कि वास्तव में वेद जैसी गम्भीर रचनाओं से पहले 'पुराण' जैसी लोक कथाओं का प्रचलन होना स्वाभाविक ही मानना चाहिये। सभी देशों और सभी कालों में इस तरह का 'लोक-साहित्य' ही पहिले उत्पन्न और प्रचलित होता है और तत्पश्चात् वही उन्नत और परिष्कृत होते हुए स्थायी और गम्भीर साहित्य के रूप में परिणित हो जाता है। इसी तथ्य को ध्यान में रख कर किसी विद्वान् ने कहा था कि "संसार का सबसे पहला साहित्कार कोई कहानी कहने वाला ही होगा।

अब रह गई पुराणों में वर्णित धार्मिक विवरणों को अन्ध-विश्वासों का रूप देकर उनके आधार पर लोगों की अन्धश्रद्धा को जागृत करना और उसके द्वारा दान तथा पूजा पाठ के नाम पर मनमाना धन वसूल करना। इनके लिये पुराणों को दोष देना व्यर्थ है। यह कार्य तो प्रत्येक देश के धर्मजीवी (पण्डा-पुजारी) करते आये हैं। चालाक और धूर्त व्यक्ति प्रत्येक परिस्थिति में अपनी स्वार्थ सिद्धि का मार्ग निकाल ही लेते हैं। ऐसे ही लोगों ने पुराणों में तीर्थों तथा दान की अति प्रशंसा भरदी और उनमें 'रत्न पर्वत दान' भूमण्डल दान 'सप्त समुद्र दान' जैसे अपूर्व दानों का विधान भी सम्मिलित कर दिया। इस दोष का उत्तर-दायित्व एक विशेष मनोवृत्ति के व्यक्तियों पर है जो सदा से मौजूद हैं और जब तक एक बड़ी 'ज्ञान-क्रान्ति' न हो जायगी तब तक बने रहेंगे।

पुराणों का परिवर्तित स्वरूप—

पुराणों का विवरण लिखते हुये 'मत्स्यपुराण' तथा अन्य पुराणों

में भी यह कहा गया है कि पहले एक ही पुराण था, फिर व्यास जी ने उसे लोगों की सुविधा के लिए अठारह पुराणों के रूप में प्रस्तुत किया। पर यह संख्या अठारह पर ही समाप्त नहीं होगई। अठारह 'महापुराणों' के पश्चात् अठारह 'उप-पुराण' भी तैयार हो गये और उनके बाद भी लोगों ने 'लघु पुराणों' का निर्माण किया। वास्तव में अब 'पुराण' शब्द सब प्रकार के धार्मिक कथा-ग्रन्थों के लिए काम आने लगा है। इसीलिए इस आधुनिक युग में किसी लेखक ने 'गांधी-पुराण' भी लिख कर तैयार कर दिया है।

पर इन बातों से 'पुराणों' का महत्त्व कम नहीं हो जाता। यदि हम पुराणों के प्रचलित संस्करणों का भी अध्ययन करें तो तरह-तरह की कथाओं के बीच में अध्यात्म, ब्रह्मज्ञान, विज्ञान, चरित्र, नीति आदि के सर्वोच्च तत्व मिले-जुले दिखाई पड़ते हैं। कहने के लिए तो पुराण मूर्ति-पूजा, तीर्थ-यात्रा, स्नान-दान आदि के मुख्य प्रचारक हैं, पर साथ ही उनमें से अधिकांश में सृष्टि के मूल स्वरूप का जैसा वर्णन पाया जाता है वह आधुनिक विज्ञान की पहुँच से कहीं अधिक ऊँचा है। उनमें सृष्टि विज्ञान और प्रलय (सर्ग और प्रति-सर्ग) का वर्णन करते हुए सदैव यही प्रति-पादित किया है कि इस समस्त विश्व ब्रह्माण्डका आवि-एक अव्यक्त और निराकार तत्व से हुआ है, जिसका कोई आदि अन्त नहीं है और न जिसके विस्तार की कोई सीमा है। समस्त सूक्ष्म और स्थूल पञ्चभूत, समस्त देवता और सांसारिक प्राणी उसी में से उत्पन्न होते हैं और कुछ समय तक पृथक रूप में दिखाई पड़कर अन्त में उसी में लय हो जाते हैं। ब्रह्मा विष्णु, शिव, इन्द्र, वरुण आदि समस्त देवता उसी एक मूलशक्ति के विभिन्न रूप और नाम हैं।

यद्यपि उस अव्यक्त और निराकार शक्ति की उपासनाका वास्तविक मार्ग योग और ध्यान है, पर यह बहुत ही थोड़े लोगों के लिये सम्भव हो पाता है। शेष सामान्य स्तर के व्यक्ति किसी अव्यक्त और

निराकार शक्ति का ध्यान कर सकने में असमर्थ होते हैं। ऐसे ही लोगों की संख्या १०० में से ६० होती है। इसलिये उनकी सुविधा की दृष्टि से साकार मूर्तियों की योजना की गई है और उनकी प्रतिष्ठा के लिये मन्दिरों का निर्माण और तीर्थोंकी स्थापना आवश्यक हुई। जिन पुराणों में किसी साधारण मन्दिर में मूर्ति दर्शन करने या गङ्गा अथवा नर्मदा जैसी नदी में एक बार स्नान करने से करोड़ों वर्ष तक स्वर्ग सुख भोगने का लालच दिखाया गया है, उन्हीं में सृष्टि की वास्तविकता के उपरोक्त तर्क और विज्ञान के अनुकूल रूप का भी विवेचन किया गया है।

इससे हम इन निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आरम्भ में पुराणों का उद्देश्य जनसाधारण के बीच धार्मिक तत्वों का प्रचार करना ही था। यह भी असम्भव नहीं है कि पुराणों की परम्परा का श्री गणेश करने वाले वेदव्यास ही हों। इस अनुमान का कारण यह है कि व्यासजी का 'महाभारत' भी एक प्रकार का पुराण ही है, यद्यपि उसमें धार्मिक बातों के साथ राजनीतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक विषयों का विवेचन भी बहुत अधिक परिमाण में मिलता है, जिससे उसे 'इतिहास' कहा जाने लगा है। हम हमारे कथन का आशय यह नहीं कि व्यासजी ने पुराणों की जो रूप रेखा बनाई वही अभी तक स्थिर है। भाषा और लिपि में हजार पाँच सौ वर्ष में इतना अन्तर पड़ जाता है कि अधिकांश ग्रन्थों का नया संस्करण करने की आवश्यकता पड़ जाता है। फिर पुराणों में तो यह भी लिखा है कि व्यासजी ने एक ही पुराण संहिता बनाई और उसका विस्तार उनके शिष्य और फिर उनके भी शिष्यों ने किया—

आख्यानैश्चप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराण संहिता चक्रे पुराणार्थं विशारदः॥
प्रख्यातो व्यास शिष्योऽभूत्सूतो वै रोमहर्षणः।
पुराण संहिता तस्मै ददौ व्यासो महामतिः॥

सुमतिश्चाग्नि वर्चाश्च मित्रायुश्शांसपायनः।
अकृतव्रण सावर्णी षट शिष्यास्तस्य चाभवन् ।।
काश्यपः संहिताकर्त्ता सावर्णिश्शांसपायनः।
रोमहर्षणिका चान्या तितृणां मूल संहिता ।।

अर्थात्—"फिर पुराणों के ज्ञाता व्यासजी ने आख्यान, उपाख्यान गाथा और कल्पशुद्धिसे युक्त 'पुराण-संहिता' की रचना की। इस पुराण संहिता का अध्ययन व्यासजी ने अपने सुप्रसिद्ध शिष्य रोमहर्षण सूत को कराया। रोम हर्षण के छः शिष्य हुए—सुमति, अग्निवर्चा, मित्रायु, शांसपायन, अकृतव्रण और सावर्णि। इसमें से काश्यप गोत्रीय अकृतव्रण सावर्णि और शांसपायन ने पृथक-पृथक तीन संहितायें रचीं। उन तीनों का मूल आधार रोमहर्षण द्वारा रचित एक संहिता थी।

इसके पश्चात् भी इन सबकी आगामी शिष्य मंडली में से अनेक विद्वान् अपने देश–काल के अनुसार उन संहिताओं की वृद्धि करते रहे, उनमें नये-नये प्रेरणाप्रद आख्यान और उपाख्यान रचकर सम्मिलित करते रहे। ये सब कथावाचक शिष्य 'सूतजी' या 'व्यासजी' कहलाते थे। इनमें सभी प्रकार के व्यक्ति थे। कुछ विशेष रूप से धर्मपरायण और परमार्थी थे तो कुछ में जाति परायणता और सांसारिकताकी मात्रा अधिक थी। यदि ऐसे कथावाचकों ने तीर्थ-यात्रा, स्नान-दान और व्रतोत्सव वाले अंशों को यथाशक्ति बढ़ कर अपने श्रोताओं को अधिकाधिक 'दान' देने की प्रेरणा की हो तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जब हम अठारहों पुराणों पर एक विहंगम दृष्टि डालते हैं और उनकी विषय सूचियों का विवेचन करते हैं, तो हमको यह प्रतीत होने लगता है कि सब पुराण एक ही दृष्टिकोण से नहीं रचे गये हैं। किसी में धर्म-साधन की प्रधानता है, किसी ने जप-तप द्वारा आध्यात्मिकता का महत्व विशेष बतलाया है और किसी ने हर तरह के दान-पुण्य पर ही अधिक बल दिया है। 'मत्स्यपुराण' में तीसरी श्रेणी के वर्णन बहुत

अधिक संख्या में थे। यद्यपि हमने वर्तमान संस्करण में उनमें से अधिकांश को छोड़ दिया है, तो भी नमूने के तौर पर जिन 'व्रत' और 'दानों' का वर्णन आ गया है उनसे पाठक हमारे कथन की यथार्थता का अनुमान कर सकेंगे।

पुराणों की परमार्थ और अध्यात्म भावना—

पर इस एक बात से ही हम पुराणों की भलाई-बुराई का निर्णय नहीं कर सकते। हम इस बात को पूरी तरह नहीं समझ सकते कि जिस समय—अब से एक-डेढ़ हजार वर्ष पहले पुराण-साहित्य का इस प्रकार विस्तार किया गया, देश और समाज की क्या परिस्थिति थी। सम्राट अशोक से लेकर पृथ्वीराज चौहान तक के शासन काल के बीच देश की क्या राजनीतिक और सामाजिक स्थिति थी, इसका पता इतिहास ग्रन्थों से बहुत कम लगता है। पर पुराणों के विवरणों को समझने में यदि अन्तर्दृष्टि से काम लिया जाय तो यह प्रतीत होता है कि इस हजार-बारह सौ वर्ष के युग में एक देशव्यापी क्रांति होकर नये समाज का संगठन हो रहा था। बौद्ध धर्म की प्रबलता ने प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था को तोड़-फोड़ दिया था, उसी के भग्नावशेषों पर हमारे धर्माचार्य पुन: हिन्दू-धर्म-भवन के पुनर्निर्माण का प्रयत्न कर रहे थे। इस बीच में देश की अस्त-व्यस्त राजनीतिक अवस्था को देखकर यवन, हूण, शक, सिथियन आदि विदेशी जातियों ने आक्रमण भी किया था। उन आक्रमणकारियों में से लाखों व्यक्ति यहाँ बस भी गये और देश के किसी भू भाग पर उन्होंने बहुत वर्षों तक शासन भी किया। ऐसी परिस्थिति में जो पुराण ग्रन्थ रचे गये अथवा प्रचलित किये गये उनमें पूर्ण रूप से विशुद्ध वैदिक आदर्शों को स्थिर रखना कैसे सम्भव हो सकता था?

यूनानी-सम्राट सिकन्दर के आक्रमण तथा बुध धर्म की प्रभुता होने से पूर्व, देश की वैदिक संस्कृति अक्षुण्ण थी। उसमें जो परिवर्तन होते थे वे आन्तरिक कारणोंके आधार पर ही होते थे। पर विदेशियोंके

आक्रमण और उनमें से लाखों, करोड़ों व्यक्तियों के भारतीय समाज में मिल जाने के पश्चात् परिस्थिति बहुत कुछ बदल गई और उसके बाद जो धार्मिक संगठन बनाया गया और धार्मिक नियम प्रचलित किये गये उनमें देश काल की बदली हुई परिस्थिति का प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। संसार के अन्य धर्म तथा जातियाँ तो इस प्रकार के आक्रमणों से सर्वथा ही नष्ट हो गये। जैसे यूनान, रोम, और ईरान की प्राचीन संस्कृति और धर्म का नाम ही इतिहास में शेष रह गया है। पर यह वैदिक धर्म की ही विशेषता थी कि विदेशी आक्रमणों और बुद्ध धर्म द्वारा उत्पन्न गृहकलह के भयंकर आघात को सह कर भी उसने अपनी 'आत्मा की रक्षा करली। हमारे तत्कालीन धर्मचार्योंने नवीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थियों के कारण बाह्य पूजा, उपासना, कर्मकाण्ड की विधियोंमें परिवर्तन किया, वैदिक यज्ञों का स्थान मन्दिर और तीर्थों की भक्तिमार्गीय उपासना-पद्धति ने ग्रहण किया, पर साथ ही वैदिक सिद्धान्तों और आदर्शों को उनमें बराबर समाविष्ट किया गया, प्रत्येक विधि-विधान में उन्हीं की घोषणा की गई। साथ ही समस्त पौराणिक-धर्म कलेवर का लक्ष्य भी वैदिक आध्यात्मिक सिद्धान्त ही रखे गये। इस तथ्य का विवेचन हमको "वायु-पुराण" के अन्तिम अध्याय "व्यास संशय वर्णन" में मिलता है। उसमें पुराणों में वर्णित लौकिक धर्म विधियों का उल्लेख करते हुए अन्त में मानव—आत्मा के आध्यात्मिक लक्ष्य को ही प्रधानता दी गई है। उसमे स्पष्ट कहा गया है—

"हे सूतजी ! आप तो भगवान के सच्चे भक्त हैं। व्यास की कृपासे आपने धर्म शास्त्रों का पूर्णत: अध्ययन कर लिया है। हे निष्पाप आपने अठारहों पुराणों और इतिहासों का आदि से अन्त तक अच्छी तरह वर्णन किया है। इन पुराणों में आपने बहुत से धर्मों का निरूपण किया है। उसमें गृहस्थ, त्यागी, सन्यासी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, स्त्री, शूद्र आदि के धर्म कर्तव्यों का वर्णन किया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय

और वैश्य द्विजातियों तथा इनसे उत्पन्न जो अन्य संकर जातियाँ-गंगा आदि महा नदियाँ और यज्ञ, व्रत, तप, दान, यम-नियम, योगाभ्यास, सांख्य-सिद्धान्त, भक्ति-मार्ग, ज्ञानमार्ग आदि सबका वर्णन किया है। कर्मों और उपासना द्वारा चित्त की शुद्धि और धर्म प्राप्ति के सम्बन्ध में भी आपने बतलाया है। आपने ब्राह्म, शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर (सूर्योपासक) तथा अर्हत् (जैन बौद्ध आदि)—इन छः प्रकार के दर्शनों का भी परिचय दिया है। इन सब तथा अन्य प्रकार के विषयों का पुराणों में आपने विवेचन किया है। अब हम आपसे कहना चाहते हैं कि इनसे आगे भी क्या अन्य कोई उत्तम विषय जानने को शेष रह जाता है ?' प्रश्नकर्त्ता मुनियों ने बहुत स्पष्ट रूप से कहा—

न ज्ञायेत यदि व्यासो गोपायदथ भवान्।
अत्र न संशय छिन्धि पूर्णः पौराणिको यतः ॥

अर्थात्—"यदि व्यासजी ने किसी विषय का वर्णन न किया हो अथवा आपने ही कुछ गोपन कर लिया हो–न बतलाया हो तो अब उसे भी कहकर हमारे संशय को दूर कीजिए।"

सूतजी ने कहा—"हे शौनक ! आप ध्यान पूर्वक सुनो, मैं आपके 'सुदुर्लभ' (महत्वपूर्ण) प्रश्न का उत्तर देता हूँ। पराशर मुनि के पुत्र महर्षि व्यास देव ने समस्त वेदों के अर्थ से समन्वित पौराणिक कथा की रचना करके फिर चित्त में विचार किया कि मैंने वर्णों तथा आश्रमों के पालन करने वालों के धर्म का भली भाँति वर्णन कर दिया है और वेद से अविरोध रखते हुए बहुत प्रकार के मुक्ति-मार्गों का भी निरूपण कर दिया है। सूत्रों की व्याख्या करते हुये जीव, ईश्वर और ब्रह्म का भेद भी प्रकट किया है और श्रुति (वेदों) के सिद्धान्तानुसार परब्रह्म का स्वरूप भी बतलाया है। एक मात्र परम ब्रह्म ही अविनाशी तत्त्व है और उसी को प्राप्त करने के लिये ब्रह्मचारी से लेकर सन्यासी तक सबरे

आश्रमों के व्यक्ति 'व्रत' (धर्माचरण) किया करते हैं। मैं वेदों के इस सिद्धान्त को भी जानता हूँ कि यह समस्त विश्व ब्रह्म से प्रथम नहीं है वरन उसी से इस प्रकार उत्पन्न होता और मिटता रहता है जैसे बहते हुए फेनिल जल में बुलबुले उठते और टूटते रहते हैं। पर किसी-किसी स्थान पर यही सुनने में आता है कि परम ब्रह्म के ऊपर भी 'गोलोक' में भगवान् कृष्ण दीप्यमान होते हैं। इसका रहस्य जानना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।'

जब व्यास जी बहुत कुछ ऊहापोह करने पर भी इस प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर न पा सके तो उन्होंने निश्चय किया कि इसका निर्णय केवल तप द्वारा ही सकता है। तब वे सुमेरु पर्वत की एक गुफा में जा बैठे और दीर्घकाल तक समाधि अवस्था में ध्यान करते रहे। अन्त में उनके सम्मुख वेद मूर्तिमान रूप में प्रकट हुए और उन्होंने कहा—

हे व्यास! आप महान प्राज्ञ हैं, शरीर धारण करने पर भी आप 'विष्णु आत्मा' हैं। आप अजन्मा होकर भी संसारी प्राणियों के उद्धार की इच्छा से यह सब कर रहे हैं। हमारा ठीक अर्थ वही है जो आपने प्रकट किया है। पुराणों, इतिहासों और सूत्र ग्रन्थों में उसे आपने अनेक प्रकार से प्रकट किया है (ऐसा पात्र भेद से किया गया है। तो भी हम आपके प्रश्न का उत्तर देते हैं कि परब्रह्म ही अविनाशी तत्व है और वही कारणों का भी कारण है। वह आत्मस्वरूप पुष्प की गन्ध की भाँति सदैव स्थिर रहता है। महाप्रलय हो जाने पर उस अक्षर-ब्रह्म से परे केवल 'रस' रहता है। पर हम शब्दात्मक होने से उस शब्दातीत तत्व का वर्णन करने में समर्थ नहीं है।''

इस प्रकार पुराणों में सामान्य बुद्धि के मनुष्यों के लिये मन्दिर तीर्थ आदि का माहात्म्य:वर्ण से लेकर पूर्ण आत्मज्ञानियों के लिए अक्षर-तत्व और 'रस' (भगवद्भक्ति और विश्वप्रेम) का भी निरूपण कर

दिया गया है। उनमें धर्म-साधन के जो अनेक मार्ग बतलाये हैं उसका एक कारण तो सम्प्रदाय भेद है और दूसरा कारण उपासक की योग्यता और शक्ति है। प्रत्येक व्यक्ति उपनिषदों में वर्णित आत्म-तत्व और ब्रह्म-ज्ञान तथा माया-सिद्धान्त को हृदयङ्गम नहीं कर सकता। इसलिए पुराणकारों ने उसे अनेक प्रकार से सरल रूपों में वर्णित किया है जिससे प्रेरणा लेकर हर श्रेणी और योग्यता के व्यक्ति न्यूनाधिक अंशों में धर्माचरण करते रहें। धर्माचरण ही व्यक्ति और समाज के उत्थान तथा कल्याण का मुख्य साधन है, और उसमें यथाशक्ति लगे रहना मानव मात्र का कर्त्तव्य है।

'मत्स्य' पुराण की विशेषताएँ:—

इस प्रकार के पुराण-साहित्य में "मत्स्यपुराण" का दर्जा उभयपक्षीय है। एक तरफ तो इसमें व्रत, पर्व, तीर्थ आदि में अधिकाधिक दान देने की प्रेरणा की है और दूसरी तरफ राजकर्म, शासन व्यवस्था, गृह निर्माण, मूर्तिकला, शान्ति विधान, शकुन-शास्त्र आदि जीवनोपयोगी विषयों का भी विशद रूप में विवेचन किया है। भारतीय-साहित्य में नारी जाति की गरिमा का परिचय देने वाला प्रसिद्ध 'सावित्री उपाख्यान' मुख्य रूपसे इसी में विस्तारपूर्वक दिया गया है। वाराणसी, हिमाचल नर्मदा आदि की प्राकृतिक शोभा का काव्यमय वर्णन साहित्य दृष्टि से उच्चकोटि का माना जा सकता है। और भी कितने ही विषय ऐसे हैं जो इस पुराण की उत्कृष्टता तथा उपादेयता को प्रमाणित करते हैं। यद्यपि अब परिस्थितियों के बदल जाने से अधिकांश पाठक उनकी उपयोगिता बहुत कम अनुभव कर सकेंगे, पर अब से कुछ सौ वर्ष पहले ही हमारे देश का एक बड़ा भाग उन्हीं का अनुसरण करने वाला था।

राजधर्म वर्णन—

मत्स्य पुराण का 'राजकृत्य' और 'राजधर्म' वर्णन विशेष रूपसे महत्व रखता है। इसमें केवल प्रजा-पालन करने और दान-पुण्य का ही

जिक्र नहीं किया गया है, वरन् खास तौर पर इस विषय का व्यावहारिक ज्ञान दिया गया है। यद्यपि वर्तमान वैज्ञानिक-युग में ये बातें बहुत अधिक बदल गई हैं—तलवार तथा तीरों के युद्ध के बजाय वायुयानों से बम वर्षा और राकेटों से युद्ध होने का जमाना आ गया है तो भी अब से दो चार सौ वर्ष पहले तक भारतीय नरेशों के लिये राज्य व्यवस्था और शासन संचालन के ये नियम और विधियाँ ही उपयोग में आती थीं। प्राचीनकाल में राज्य का पूरा अस्तित्व एक मात्र राजा पर ही रहता था। यदि उसे किसी भी उपाय से नष्ट कर दिया जाय तो सारी राजव्यवस्था खण्ड-खण्ड हो जाती थी। इसलिए अन्य बातों के साथ राजा को अपनी सुरक्षाके लिये भी सदैव सजग रहना पड़ता था। इस सम्बन्ध में 'मत्स्य पुराण' का निम्न वर्णन द्रष्टव्य है।

"राजा को सदैव कौए के समान शंका युक्त रहना चाहिये। बिना परीक्षा किये राजा को कभी भोजन और शयन नहीं करना चाहिये। इसी भाँति पहले से ही परीक्षा करके वस्त्र, पुष्प, अलंकार तथा अन्य वस्तुओं को उपयोग में लाना चाहिये। कभी भीड़भाड़ में न घुसना चाहिये और न अज्ञात जलाशय में उतरना चाहिये। इन सबकी परीक्षा पहले विश्वासी पुरुषों द्वारा करा लेनी चाहिये। राजा को उचित है कि अनजान हाथी और घोड़े पर कभी सवार न हो और न किसी अज्ञात स्त्री के सम्पर्क में आवे। देवोत्सव के स्थान में उसे निवास करना नहीं चाहिये। अपने राज्य तथा दूसरे राज्यों में भी उसको जाने हुये विचरण बुद्धि वाले, कष्ट सहिष्णु और संकट से न घबराने वाले, गुप्तचरों (जासूसों) को नियुक्त करना चाहिए जो उसे सब प्रकार के रहस्यों की सूचना देते रहें। फिर भी राजा को किसी एक ही गुप्तचर के कथन पर विश्वास नहीं कर लेना चाहिये। जब दो-चार गुप्तचरों की रिपोर्ट से उस बात का समर्थन हो जाय तब उस पर भरोसा करे।"

इस वर्णन में आश्चर्य या अविश्वास करने की कोई बात नहीं

है। अन्य लोगों के संघर्ष करने वाले दूसरों का स्तत्व अपहरण करने वाले शासकों की स्थिति ऐसे खतरे में ही रहती है। पुरानी बातों को छोड़ दीजिये वर्तमान समयमें भी जर्मनी के डिक्टेटर हिटलर को अपनी रक्षा के लिये अपनी शकल सूरत से मिलते हुए और वैसी ही पोशाक तथा रंग ढंग वाले कई व्यक्ति अपने निवास स्थान में रखने पड़ते थे, जिससे कोई जल्दी ही असली हिटलर को पहिचान कर आक्रमण न कर सके। इसी प्रकार की सुरक्षा व्यवस्था बालकन प्रदेश के और भी कई शासक रखते थे, जहाँ षड्यन्त्रकारियों और गुप्त घातकों का अधिक जोर था। अब भी ऐसे बड़े शासकोंके प्राण-नाश के लिए तरह-तरह की चालाकियों से काम लिया जाता है। रूस के जार को मारने के लिये षड्यन्त्रकारियों ने बड़ी घण्टा घड़ी तैयार की थी जिसके भीतर डाइनामाइट का भयंकर बम छुपा था। इस घड़ी को गुप्त रूप से राजमहल (विण्टर पैलेस) के किसी कमरे से लगवा दिया गया। एक नियत समय पर जब उसका घण्टा बजा तो उसकी चोट से बम फूट गया और महल का एक भाग उड़ गया। जब इस जन-जागृति के युग में ऐसी घटनायें सम्भव हैं तो प्राचीनकाल के एकतन्त्र नरेशों को सावधान रहने की कितनी अधिक आवश्यकता थी, इसे स्वीकार करना ही पड़ेगा।

प्राचीन काल की सैनिक व्यवस्था—

यह तो हुआ अपनी शारीरिक रक्षा का वर्णन। अब राज्य की रक्षा के लिये इससे कहीं अधिक तैयारियाँ करनी पड़ती हैं। 'मत्स्य-पुराण' के अनुसार दुर्ग या किले छः प्रकार के होते हैं—धनुदुर्ग-महीदुर्ग नरदुर्ग, वार्क्षदुर्ग, जलदुर्ग, और गिरिदुर्ग। इनमें से अपनी परिस्थिति के अनुसार किसी एक प्रकार का किला बनवाकर उसमें रक्षा की सब प्रकार की सामग्री इकट्ठी करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में पुराणकार ने अस्त्र-शस्त्रों तथा अन्य सामग्री की जो सूची दी है, उससे हम प्राचीन काल के युद्धों के स्वरूप का बहुत कुछ अनुमान कर सकते हैं—

"दुर्ग में सभी प्रकार के आयुधों का संग्रह करना अत्यावश्यक है। इसके लिए राजा को धनुष, तीर, तलवार, तोमर, कवच, लट्ठ, फरसा, परिघ, पत्थर, मुगदर, त्रिशूल, पट्टिश, कुठार, प्राश, भाला, शक्ति, चक्र, चर्म आदि का संग्रह करना आवश्यक है। कुदाल, क्षुर, बेंत, घास-फूस और अग्नि की भी व्यवस्था रहे। ईंधन और तेल का पूरा संग्रह होना चाहिये।"

युद्धकाल में सेना के लिये खाद्य और घायलों की चिकित्सा के लिये औषधियों का संग्रह भी आवश्यक है। इसका वर्णन करते हुए कहा है--"जौ, गेहूँ, मूँग, उर्द, चावल आदि सब प्रकार के अन्न इकट्ठे किये जायें। सन, मूँज, लाख, सुहागा, लोहा, सोना, चांदी, रत्न, वस्त्र आदि सभी आवश्यक वस्तु, जो यहाँ कही गई हैं और नहीं भी कही गई हैं, राजा द्वारा सञ्चित की जानी चाहिये। सब प्रकार की वनस्पतियाँ तथा औषधियाँ जैसे--जीवकर्षण, काकोल, आमलकी, शालपर्णी, मुग्दरपर्णी माषपर्णी, सारिवा, बला, धारा, श्वसन्ती, वृष्या, बहती, कण्टकारिका, शृङ्गी, शृङ्गाटकी, द्रोणी, वर्षाभू, दर्भ, रेणुका, मधुपर्णी, विदारीकन्द, महाक्षीरा, महातपा, सहदेई, कटुक, एरण्ड, पर्णी, शतावरी, फल्गु, सर्जरयाष्टिका, शुक्राति शुक्रका, अश्मरी, छत्राति छत्रका, वीरणा, इक्षु, इक्षुविकार (सिरका), सिंही अश्वरोधक, मधुक, शतपुष्पा, मधूलिका, मधूक, पीपल, ताल, आत्मगुप्ता, कतुफला, दार्विना, राजशीर्षकी, राजसर्षप (सरसों), धान्याक, उत्कटा, कालशाक, पद्मबीज, गोवल्ली, मधुवल्लिका, शीतपाकी, कुबेराक्षी, काकजिह्वा, उरुपुष्पिका, त्रपुष, गुञ्जातक, पुनर्नवा, कसेरू, कारु काश्मीरी, वल्या, शालूक, केसर, सवतुष धान्य, शमीधान्य, क्षीर, क्षौद्र, तक्र, तैल, वसा, मज्जा, घृत, नीम, अरिष्टिक, सुरा, आसव, मद्य, मण्ड आदि सभी का संग्रह किया जाय।"

यह सूची बहुत बड़ी—इससे लगभग चार-पांच गुनी है। हमने केवल थोड़े से नाम चुन कर दे दिये हैं, जिससे पाठक अनुमान कर सकें कि उस समय भी चिकित्सकों को जड़ी-बूटियों का पर्याप्त ज्ञान था। आजकल भी युद्धक्षेत्रमें सेनाओं के साथ बड़े-बड़े अस्पताल रखे जाते हैं जिनमें सैकड़ों डाक्टर और नर्सें काम करती हैं। उनमें औषधियों का भी बड़ा भण्डार रहता है, जिसमें हजारों तरह के इञ्जेक्शन, कैपसूल, टैबलेट, टिंचर, एसिड आदि होते हैं। पहले जङ्गल की वनस्पतियों अपने असली रूप में ही अधिकतर काम में लाई जाती थीं, अब इनको वैज्ञानिक प्रक्रियासे साररूपमें बदल कर इञ्जेक्शन, टैबलेट आदि के रूप में बना दिया जाता है। साथ ही घावों की चिकित्सा के लिए घी, तेल, चर्बी, मज्जा, अन्तड़ी, हड्डी आदि का प्रयोग भी किया जाता था।

योग्य राज्य कर्मचारियों का चुनाव :—

पर इन सब बातों से भी अधिक महत्वपूर्ण है योग्य राज्य-अधिकारियों और कर्मचारियों का चुनाव। इस प्रकरण के आरम्भमें ही यह कहा गया है कि "चाहे कोई छोटा कार्य भी क्यों न हो पर उसे किसी अकेले व्यक्ति द्वारा पूरा किया जा सकना बड़ा कठिन होता है। फिर राज्य शासन तो परम विशाल और महत्व का कार्य है। अतएव नृपति को स्वयं ही ऐसे कुलीन सहायकों का वरण करना चाहिए जो शूरवीर, उत्तम जाति के, बलशाली और श्री सम्पन्न हों। इस सम्बन्धमें राजा को यह ध्यान रखना चाहिये कि सहायक रूप और अच्छे गुणों से सम्पन्न सज्जन, क्षमाशील, सहिष्णु, उत्साही, धर्म के ज्ञाता और प्रिय बचन बोलने वाले हों।

"सेनापति राजा का परम सहायक होता है। वह कुलीन, शीलस्वभाव से मुक्त, धनुर्विद्या का महान् ज्ञाता, हाथियों और घोड़ों की शिक्षा में प्रवीण, शकुन—शास्त्र को जानने वाला, चिकित्सा के सम्बन्धमें

ज्ञान रखने वाला, कृतज्ञ, कर्मशूर, सहिष्णु, सत्य प्रिय, गूढ़ तत्वों के विधान का ज्ञाता हो। ऐसे विशिष्ट गुणों से युक्त व्यक्ति को सेनाध्यक्ष बनाना चाहिए। राजा का दूत ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो दूसरों के चित्त के भावों को ठीक तरह समझता रहे। वह अपने स्वामी के कथन के आशय को ठीक ढङ्ग से प्रकट करने वाला, देश भाषा का विद्वान् वाग्मी साहसी और देश-काल की परिस्थिति को समझने वाला होना चाहिये, राजा के अङ्गरक्षक हर तरह से मुस्तैद, बहादुर, दृढ़ राजभक्त और धैर्यवान् हों। संधि और विग्रह का निर्णय करने वाला अधिकर्ण (विदेश सचिव) नीति शास्त्रों का पंडित, देशभाषाओं का विद्वान्, षड्गुण का ज्ञाता और परम व्यवहार कुशल होना चाहिए। आय व्यय विभाग का अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति हो जो देश की उपज से अच्छी तरह परिचित हो। रसोई घर का अध्यक्ष पाकशास्त्र के साथ ही चिकित्सा-शास्त्र का भी पूर्ण ज्ञाता हो।''

'मत्स्यपुराण' में राजा के कर्तव्यों और राज्य व्यवस्था का जो वर्णन किया है उससे विदित होता है कि पुराने जमाने में भी राजाओं का जीवन वैसा सुखद और ऐश आराम का न था, जैसा अनजान लोग कल्पना किया करते हैं। निस्सन्देह उसके सर पर रत्नजटित मुकुट होता था वह सोने के सिंहासन पर बैठता था और उसके महल में बीसियों रानियाँ और सैकड़ों दास-दासी होते थे, पर उसे सदा प्राणों का खटका भी बना रहता था। जो राजा इन कर्तव्यों की अवहेलना करते थे और रास-रंग में डूब कर कुशासन करने लगते थे वे प्रायः दूसरे राजाओं के आक्रमण से नष्ट-भ्रष्ट होजाते थे। इसलिए उस समय शासकों को और नहीं तो अपनी सुरक्षा के ख्याल से ही प्रजापालन और न्याययुक्त व्यवहार का ध्यान रखना पड़ता था, जिससे उनकी स्थिति सुदृढ़ बनी रहे और वे बाह्य आक्रमणों का मुकाबला सफलता पूर्वक कर सकें।

पुरुषार्थ की प्रधानता—

हमारे उपरोक्त मन्तव्य की पुष्टि पुराणकार ने भी एक अन्य प्रकार से की है। उसने 'राज-धर्म के प्रसंग में एक अध्याय में यह प्रश्न उठाया है कि "दैव और पुरुषार्थ में कौन बड़ा है ?" इसके उत्तर में मत्स्य भगवान् द्वारा कहलाया गया है कि "दैव नाम वाला जो फल प्राप्त होता है वह भी अपना पूर्व कर्म ही होता है, इसलिए विद्वानों की सम्मति में पुरुषार्थ ही सर्व प्रधान है। यदि दैव प्रतिकूल भी होता है, तो उसका पौरुष के द्वारा हनन हो जाता है। जो श्रेष्ठ आचार वाले और सदैव उत्थान का प्रयत्न करने वाले व्यक्ति होते हैं पुरुषार्थ से प्रतिकूल दैव को बदल डालते हैं यह सत्य है कि कुछ उदाहरणों में अनेक व्यक्तियों को बिना पुरुषार्थ भी अच्छा फल, सौभाग्य युक्त स्थिति प्राप्त हो जाती है, जिसे पूर्व जन्मों के प्रारब्ध का परिमाण माना जाता है। पर यदि वर्तमान में भी पुरुषार्थ और सत्कर्म न किये जायें तो वह स्थिति प्राय: थोड़े ही समय रहती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि दैव, पुरुषार्थ और काल (परिस्थितियां) ये तीनों मिलकर ही मनुष्य को फल देने वाले हुआ करते हैं। पर इनमें भी पुरुषार्थ को ही प्रधान समझना चाहिये, क्योंकि कहा गया है :—

> नालस: प्राप्नवन्त्यर्थान् न च दैव परायण: ।
> तस्मात् सर्वप्रयत्नेन आचरेद्धर्ममुत्तमम् ।।

अर्थात्—"जो व्यक्ति आलसी होते हैं अथवा जो केवल दैव (भाग्य) के ही भरोसे रहते हैं, वे धनोपार्जन में सफल नहीं हो सकते। इसीलिए सदैव प्रयत्न पूर्वक उत्तम धर्म (पुरुषार्थ का पालन करना चाहिए।" जो लोग समझते हैं कि पुराने धर्म ग्रन्थों में भाग्य को ही प्रधान बताकर भारतवासियों को 'भाग्यवादी' बना दिया है उनको 'मत्स्य पुराण' के उपरोक्त कथन से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

भारतीय गृह निर्माण कला—

मत्स्य पुराणान्तर्गत निर्माण सम्बन्धी वर्णन से सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में भी इस विद्या की काफी खोज की गई थी। जो लोग भारत को 'अर्द्धसभ्य' कहते हैं और जिनका ख्याल है कि उस जमाने में यहाँ के मनुष्य जङ्गली प्रदेशों के निवासियों की तरह केवल झोंपड़ों अथवा कच्ची मिट्टी के छप्पर वाले मकानों में ही रहते थे, उनका कथन 'मत्स्य पुराण' के वर्णन से असत्य सिद्ध हो जाता है। उससे मालूम होता है कि 'गृह निर्माण-कला' का आरम्भ और प्रसार बहुत पहले हो चुका था। अध्याय के आरम्भ में ही प्राचीन भारत के उन अठारह 'वास्तु विज्ञान ज्ञाताओं' (इञ्जीनियरों) के नाम दिये गये हैं जिन्होंने इस विषय में विशेष मनन और प्रयत्न करके प्रसिद्धि प्राप्त की थी—

भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा।
नारदोनग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः॥
ब्रह्माकुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च।
बासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्र बृहस्पति॥
अष्टादशंते विख्याता वास्तु शास्त्रोपदेशकः।
संक्षेपेणोपदिष्टन्तु मनवे मत्स्य रूपिणा॥

अर्थात्—"भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित, विशालाक्ष, पुरुन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र और बृहस्पति—ये अठारह प्रसिद्ध 'वास्तु शास्त्र' के उपदेशक हैं और उन्हीं की विधियों का वर्णन संक्षेप में 'मत्स्य भगवान्' ने मनु जी को सुनाया।"

मालूम होता है उस समय इन नामों अथवा उपनामों वाले मनीषियों द्वारा रचित 'वास्तु विज्ञान' सम्बन्धी ग्रन्थ प्राप्त होंगे और उन्हीं में से एकाधिक ग्रन्थ के आधार पर संक्षेप में 'मत्स्य पुराण' ने इस कला का

परिचय दिया है। हो सकता है ब्रह्मा, विश्वाकर्मा, कुमार आदि की नाम इस विषय में भी देवताओं की प्रधानता दिखाने के लिए शामिल कर दिया हो, तो भी प्राचीन समय में कितने ही उच्चकोटि के विद्वानों ने इस विषय पर भी लिखा था, इसमें सन्देह नहीं। अब भी उनमें से 'मानसार' आदि दो-एक ग्रन्थ देखने में आते हैं जिनको जानकर लोगों से बड़ी प्रशंसा सुनने में आती है। 'मय' तो 'दैत्य' जाति वालों को प्रसिद्ध शिल्प शास्त्र ज्ञाता प्रसिद्ध है। महाभारतके अनुसार महाराज युधिष्ठिर के लिये इन्द्रप्रस्थ की अपूर्व राज-सभा उसी ने बनाई थी। संभव है जिस प्रकार आर्य जाति में शिल्प विज्ञान के ज्ञाता को 'विश्वकर्मा' की पदवी दी गई, उसी प्रकार आर्यों की विरोधी दैत्य जाति में शिल्प—कला के प्रमुख ज्ञाता को 'मय' के नाम से पुकारा जाता हो, और पांडवों को संयोगवश उसी जाति का कोई शिल्प विद्या विशारद मिल गया हो। कुछ भी हो 'मत्स्य पुराण' में सामान्य गृह, महल, भवन, प्रासाद, स्तम्भ, दर्वाजे, मंडप, वेदी, आदि के जितने भेद बतलाये हैं और विस्तार पूर्वक उनकी विशेषताओं का वर्णन किया है, उससे यह अवश्य सिद्ध होता है कि उस जमाने में भी इस कला की काफी खोज-बीन की गई थी और तदनुसार अनेक छोटे-बड़े गृहों का निर्माण भी किया जाता था। विभिन्न प्रकार की आकृति के गृहों का वर्णन करते हुए पुराणकार ने लिखा है—

"सबसे उत्तम गृह वह होता है जिसमें चारों तरफ दरवाजे और दालान होते हैं। उनका नाम 'सर्वतोभद्र' कहा जाता है और देवालय तथा राजा के निवास के लिये वही प्रशस्त होता है। जिसमें तीन तरफ द्वार और दालान होते हैं पर पश्चिम की तरफ द्वार नहीं होता वह 'नन्द्यावर्त्त' कहलाता है। जिस भवन में दक्षिण की तरफ द्वार नहीं होता वह 'वर्द्धमान' कहा जाता है। पूर्व की तरफ बिना दरवाजा वाला 'स्वास्तिक' नाम से प्रसिद्ध है। उत्तर की तरफ द्वार से रहित 'रुचक' कहा जाता है।"

"राजा के निवास गृह पाँच प्रकार के होते हैं। जो सर्वोत्तम माना गया है उसकी लम्बाई एक सौ आठ हाथ (५४ गज) होती है। इस घर की जो अन्य चार श्रेणियाँ होती हैं उनमें से प्रत्येक की लम्बाई एक दूसरे से आठ हाथ कम होती जाती है। इसी प्रकार युवराज के प्रथम श्रेणी के महल की लम्बाई ८० हाथ होती है और बाद की चार श्रेणियों वाले गृहों की लम्बाई क्रम से छः-छः हाथ कम होती चली जाती है। इसी तरह सेनापति के उत्तम गृह की लम्बाई चौंसठ हाथ, मन्त्रियों के घरों की साठ हाथ, सरदारों और मन्त्रियों की घरों की अड़तीस हाथ होती है। शिल्प विभाग, व्यवस्था और मनोरञ्जन के अधिकारियों के घर अट्ठाईस हाथ लम्बे होने चाहिये। राजा के यहाँ नियुक्त वैद्य, ज्योतिषी, सभा के प्रबन्धक, पुरोहित के मकान चालीस हाथ लम्बाई के होते हैं। इन सबकी चौड़ाई दर्जे के अनुसार लम्बाई से एक तिहाई, चौथाई या छठवाँ भाग होती है।"

वर्तमान समय में भी अधिकांश व्यक्ति घर के शुभ-अशुभ होने में बहुत विचार किया करते हैं, और नये घर में 'गृह-प्रवेश' का बड़ा महत्व माना जाता है। 'मत्स्य पुराण' के इस सम्बन्ध में बहुत अधिक विधि-विधान दिये गये हैं, और गृह-निर्माण तथा गृह-प्रवेश किन मुहूर्तों में किया जाय इस सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया है।

प्राकृतिक शोभा वर्णन–

यद्यपि प्राचीन काल में जितने संस्कृत ग्रन्थ लिखे गये थे वे सभी पद्य में है, वैद्यक, ज्योतिष, शिल्प, कानून आदि सभी विषयों को भी कारणवश पद्यों में लिखा गया है, पर यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की रचनाओं में उच्च साहित्यिक गुण नहीं आ सकते। उनमें मुख्य रूप से उपयोगिता पर ही ध्यान रखा जाता है, काव्य-सौष्ठव को गौण माना जाता है। पर 'मत्स्य पुराण' में अनेक स्थलों पर प्राकृतिक दृश्यों धा जो

वर्णन किया गया है वह इस दृष्टि से भी उसके लेखक की विद्वता को प्रकट करता है। वैसे साधारण रूप से भी इस पुराण की भाषा कितने ही अन्य पुराणों और उपपुराणों अधिक परिष्कृत जान पड़ती है, पर कवि की विशेषता राजवंश, ऋषिवंश, पूजा उपासना की विधि, प्रायश्चित्त के विधान आदि विषयों का वर्णन करने में नहीं जानी जा सकती। इनमें तो उपयोगिता की दृष्टि से तुकबन्दी की जैसी ही रचना करना पड़ती है।

पर जहाँ कहीं प्राकृतिक शोभा के वर्णन का अवसर आ जाता है वहाँ कवि की कल्पना और प्रतिभा ऊँची उड़ान लेने लगती है और योग्य कवि अपनी विशेषता को प्रकट कर सकता है। 'मत्स्य पुराण' में हिमालय पर्वत, कैलाश, नर्मदा, वाराणसी की शोभा का जो वर्णन किया है उसकी गणना भाषा और भाव की दृष्टि से अपेक्षाकृत उत्तम कविता में की जा सकती है। यद्यपि इस प्रकार की पौराणिक रचनाओं की तुलना कालिदास, भवभूति, माघ आदि जैसे कवियों की रचनाओं से नहीं की जा सकती, जिनका मुख्य उद्देश्य कविता की उत्कृष्टता को ही दिखलाना होता है और जो कवि-कर्म को अपने जीवन का चरम ध्येय मानते हैं। पुराण रचयिता इसके बजाय अपना मुख्य उद्देश्य लोगों को सरल भाषा में धर्मोपदेश देना और विविध प्रकार के विधि विधानों का यथार्थ वर्णन करना समझते हैं, और उसी ढङ्ग की करते हैं। इसलिये साहित्यिक गरिमा किन्हीं पुराणों में विशेष स्थलों पर ही दिखाई पड़ती हे। उदाहरण के लिये हम 'मत्स्य पुराण' के हिमालय-वर्णन का कुछ अंश नीचे देते हैं—

"परम पुण्यमयी सरिता का अवलोकन करता और उसके समीप विश्राम करता हुआ पथिक जब महागिरि हिमालय के निकट पहुँचता है तो उसका दर्शन करके चकित होता है। इस हिमवान पर्वत के भूरे रंग वाले उच्च शिखर आकाश को छूते प्रतीत होते हैं। वे इतने ऊँचे हैं कि पक्षी भी वहाँ नहीं पहुँच सकते। वहाँ नदियों के जल से उत्पन्न होने

वाले महाशब्द के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का शब्द सुनाई नहीं पड़ता। वे सरितायें परम मनोरम और शीतल जल से परिपूर्ण हैं। देवदारु के वृक्षों का जो वन पर्वत के निम्न भागों में लगा है वही मानों उसका हरित अधोवस्त्र है, और ऊपर के भाग में जो मेघ घिरे रहते हैं वही उत्तरीय (ऊपर ओढ़ने वाला वस्त्र) है। सबसे ऊपर जो श्वेत वर्ण का बादल दिखाई पड़ता है वही उसकी पगड़ी है, जिस पर सूर्य और चन्द्रमा मुकुट के समान जान पड़ते हैं। इस प्रकार यह महागिरि एक नृपति की भाँति ही जान पड़ता है। उसका सर्वाङ्ग चन्दन की भाँति श्वेत हिम से चर्चित रहता है और कहीं-कहीं सुवर्ण आदि वस्तुओं की आभा आभूषणों का उद्देश्य भी पूरा कर देती है। अनेक स्थानों पर हरितमा युक्त घास और झाड़ियाँ ऐसी घनी हैं कि उनमें हवा का भी प्रवेश नहीं होता है और कहीं रङ्ग बिरंगे सुन्दर फूलों का बगीचा-सा लगा है। ऐसा यह महा पर्वत "तपस्वि शरणं शैलं कामिनामतिदुर्लभम्" तपस्वियों के लिये उत्तम आश्रय-स्थल काम-सेवन करने वालों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है।"

सावित्री उपाख्यान—

सावित्री उपाख्यान पति व्रत धर्म की महिमा के लिये भारतीय साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है, और उसके आधार पर यहाँ के कवियों ने अनेक उत्कृष्ट कोटि की रचनायें प्रस्तुत की है। भारत ही नहीं इस उपाख्यान ने विदेशों के विद्वानों तक को आकृष्ट किया है और इसको लेकर अंग्रेजी में भी सुन्दर काव्य लिखे गये हैं। उस उपाख्यान का मुख्य उद्देश्य नारियों के सम्मुख पतिव्रत का आदर्श उपस्थित करना ही है जैसा कि इस कथानक के आरम्भ में कहा गया है—

"इसके उपरान्त अपरिमित बल-विक्रम वाले उस राजा (मनु) ने देवेश मत्स्य से कहा—"भगवन्! पतिव्रत नारियों में कौन-सी नारी श्रेष्ठ है और किसने अपने पतिव्रत के द्वारा मृत्यु को भी पराजित कर

दिया था ? मनुष्यों को इस सम्बन्ध में किसके परम शुभ नाम का कीर्तन करना चाहिये ? 'मत्स्य भगवान ने कहा—"निःसन्देह पतिव्रता का माहात्म्य इतना अधिक है कि मृत्यु का अधीश्वर यमराज भी ऐसी नारियों की अवमानना नहीं कर सकता। अब मैं तुमको एक ऐसी ही पापनाशक कथा सुनाता हूँ जिसमें एक परम श्रेष्ठ पतिव्रता ने अपने स्वामी को मृत्यु के पाश से भी छुड़ा लिया था।"

इस वर्णन के आधार पर हम कह सकते हैं कि संभतः यह 'सावित्री उपाख्यान' कवि-कल्पना-प्रसूत ही हो और 'धर्म के अनुयायी' की महिमा को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से ही इसकी रचना की गई हो। फिर भी संसार में ऐसी नारियाँ हुई हैं जिन्होंने वास्तव में अपने पति को 'यमराज' के घर से लौटाया है। इतिहास में एकाध ऐसी वीरांगना का वर्णन मिलता है, जिसका पति युद्ध में विषाक्त बाण लगने से मरने लगा, पर उसने तत्काल अपने मुँह से दूषित रक्त को चूस कर बाहर निकाल दिया और अपने प्राणों की चिन्ता न करके प्रिय पति के प्राणों की रक्षा की। इसी घटना का वर्णन करते हुए ब्रजभाषा के एक आधुनिक कवि ने लिखा था—

सहृदय प्यारी,
मृत्यु पराजित होत प्रेम सों निश्चय जानन हारी ॥
वीरासन ह्वै भूपति पति को लै भुज लता सहारे।
व्रण सों विष चूस्यो लगाय जिन मधुराधर अरुणारे ॥

कुछ भी हो 'सावित्री उपाख्यान' एक ऐसी महान् पतिव्रता की कल्पना है जिसने आज तक लाखों नारियों को प्रेरणा देकर उनको पति की सच्ची सहगामिनी बनाया है। यमराज के सम्मुख उसके द्वारा प्रकट किये गये उद्गार आज भी पति की अनुगामिनी स्त्रियों के कानों में गूँजते रहते हैं—

मत्स्य पुराण

१–मत्स्यावतार वर्णन

प्रचण्डताण्डवाटोपे प्रक्षिप्तायेन दिग्गजाः ।
भवन्तु विघ्नभङ्गाय भवस्य चरणाम्बुजाः ।
पातालादुत्पतिष्णो र्मकरबसतयो यस्य पुच्छाभिघाता-
दूर्ध्वं ब्रह्माण्डखण्डव्यतिकरविहितव्यत्ययनेनापतन्ति ।१
विष्णोर्म्मत्स्यावतारे सकलबसुमतीमण्डलं व्यशुमानं,
तस्यास्योदीरितानां ध्वनिरपहरतादश्रियम्वः श्रुतीनाम् ।२
नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वती व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।३
अजोऽपियः क्रियायोगा नारायण इतिस्मृतः ।
त्रिगुणायत्रिवेदाय नमस्तस्मै स्वयम्भुवे ।४
सूतमेकान्तमासीनं नैमिषारण्यवासिनः ।
मुनयो दीर्घसत्रान्तेपप्रच्छुर्दीर्घसंहिताम् ।५
प्रवृत्तासु पुराणीषु धर्म्यासु ललितासु च ।
कथासु शौनकाद्यास्तु अभिनन्द्य मुहुर्मुहुः ।६
कथितानि पुराणानि यान्यस्माकं त्वयानघ ।
तान्येवामृतकल्पानि श्रोतुमिच्छामहेपुनः ।७

वे भगवान् भव के चरण कम विघ्नों के नाश करने के लिये होवें जिन्होंने अपने परम प्रचण्ड ताण्डव नृत्य के आटोप में दिग्गजों अर्थात् दिशाओं के अधिपतियों के गजों को भी प्रक्षिप्त कर दिया था अर्थात् उठाकर फेंक दिया था ।१। पाताल लोक से उत्पतन शील

जिसके पुच्छके अभिघात से ऊपर की ओर ब्रह्माण्ड के खण्डों के व्यतिकर से किये हुए व्यत्यम से मकरों की बस्तियाँ आकर गिरा करती हैं उन्हीं भगवान् विष्णु के मत्स्यावतार में यह समस्त पृथ्वीमण्डल व्यंशुमान हो गया है उनसे मुख से उदीरितों की ध्वनि आपकी श्रुतियों की अश्री का अपहरण करे ।२। भगवान् नारायण और नरों में सर्वश्रेष्ठ नरदेवी सरस्वती महामहिम महर्षि व्यासदेव को नमस्कार करके इसके अनन्तर 'भगवान् की जय हो'—ऐसा मुख से उच्चारण करना चाहिये ।३। जो अजन्मायी है वह भी किन्तु क्रिया के योग से नारायण कहे गये हैं । उन तीनों गुणों (सत्व, रज, तम) से युक्त तीनों (साम, यजु और ऋक्) वेदों वाले भगवान् स्वयम्भू की सेवा में नमस्कार अर्पित है ।४। एकान्त स्थल में समासीन सूतजी से नैमिषारण्य के निवास करने वाले मुनियों ने अपनी दीर्घसत्र की अवसान बेला में दीर्घ संहिता के विषय में पूछा था ।५। धर्म से संयुत परम ललित पुराणों की कथाओं के प्रवृत्त होने पर शौनक आदि ऋषियों ने बारम्बार अभिनन्दन था।६। महर्षियों ने सूतजी से कहा था—हे अनघ ! हम लोगों को कृपा करके आपने जो पुराण सुनाये हैं ।७।

कथंससर्जभगवान् लोकनाथश्चराचरम् ।
कस्माच्च भगवान्विष्णुमत्स्यरूपत्वमाश्रित: ।८
भैरवत्वं भवस्यापि पुरारित्वञ्च गद्यते ।
कस्य हेतो: कपालित्वं जगाम् वृषभध्वज: ।९
सर्वमेतत्समाचक्ष्व सूत ! विस्तरश: क्रमात् ।
त्वद्वाक्येनामृतस्येव न तृप्तिरिहजायते ।१०
पुण्य पवित्रमायुष्यमिदानीं शृणुत द्विजा: ।
मात्स्यं पुराणमखिलं यज्जागाद गदाधर: ।११
पुरा राजा मनुर्नाम चीर्णवान् विपुलन्तप: ।

पुत्रेराज्यं समारोप्यंक्षमावान् रविनन्दनः ।।१२
मलयस्यैकदेशेतु सर्वात्मगुणसंयुतः ।
समदुःखसुखोवीरः प्राप्तवान् योगमुत्तमम् ।१३
बभूव वरदश्चास्य वर्षायुतशते गते ।
वरम्वृणीष्व प्रोवाच प्रीतः स कमलासनः ।१४

लोकों के स्वामी भगवान् ने इस चराचर सम्पूर्ण सृष्टि का किस प्रकार से सृजन किया था और किस कारण से भगवान् विष्णु ने मत्स्य का स्वरूप धारण किया था ।८। भगवान् भव की भी भैरव स्वरूपता पुरारित्व होना कहा जाया करता है अर्थात् त्रिपुरासुर के हनन करने वाले और भैरव स्वरूप धारण करने वाले भव को कहा करते हैं किन्तु ऐसा कौन-सा कारण है जिसके होने से भगवान वृषभध्वज प्रभु कपाली हो हो गये हैं ।९। हे सूतजी यह सभी कुछ आप विस्तार पूर्वक क्रम से हमको बतलाने का अनुग्रह करें । आपकी परम श्रेयस्करी मधुर वचनावली ही ऐसी है जो अमृत के समान ही है कि इससे हमको कभी तृप्ति नहीं होती है ।१०। श्री सूतजी ने कहा हे द्विजगण ! इस समय में परम में परम पुण्यमय आयु की वृद्धि करने वाला और अति पवित्र सम्पूर्ण मत्स्य पुराण का ही आप लोग श्रवण करिये जिसको भगवान् गदाधर ने स्वयं कहा था।११। प्राचीनकालमें मनु नामधारी एक राजा था जो चीर्ण वाला और बहुतही अधिक तपस्वी था । उसने अपने पुत्र पर समस्त राज्यका भार सौंपकर वह क्षमाकान रविनन्दन योगाभ्यासी होगया था ।१२। मलय देशके एक भाग में वह सम्पूर्ण आत्मा के गुणों से संवृत होकर तथा सुख और दुःख दोनों को समान भाव से मानकर वीर उत्तम योग को प्राप्त हो गया था।१३। जिस समय में एकसौ दश सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये थे तब वह भगवान कमलासन परम प्रसन्न हो गये थे और इसको वरदान देने वाले बन गये थे । उन्होंने मनु के समीप में साक्षात् समुपस्थित होकर कहा था, जो चाहो वरदान माँग लो ।१४।

एवमुक्तोऽब्रवीदाजा प्रणम्य स पितामहम् ।
एकमेवाहमिच्छामि त्वत्तो वरमनुत्तमम् ।१५
भूतग्रामस्य सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च ।
भवेय रक्षणायालं प्रलये समुपस्थिते ।१६
एवमस्त्विति विश्वात्मा तत्रैवान्तरधीयत ।
पुष्पवृष्टिः सुमहती खात्पपात सुरार्पिता ।१७
कदाचिदाश्रमे तस्य कुर्वतः पितृतर्पणम् ।
पपात पाण्डयोरुपरि शफरी जलसंयुता ।१८
दृष्ट्वा तच्छफरीरूपं स दयालुर्महीपतिः ।
रक्षणायाकरोद्यत्नं स तस्मिन् करकोदरे ।१९
अहोरात्रेण चैकेन षोडशांगुलविस्तृतः ।
सोऽभवन्मत्स्यरूपेण पाहि पाहीति चाब्रवीत् ।२०
स तमादाय मणिके प्राक्षिपज्जलचारिणम् ।
तत्रापि चैकरात्रेण हस्तत्रयमवर्धत ।२१

जब राजा ने इस तरह ब्रह्माजी के द्वारा कहा गया तो उसने पितामह के चरणों में प्रणाम किया था और फिर राजा ने कहा—हे भगवन ! मैं आपसे केवल एकही अत्युत्तम वरदान प्राप्त करना चाहता हूँ ।१। जिस समय में इस सम्पूर्ण भूतों के समुदाय का तथा समस्त स्थावर और चर सृष्टि का प्रलयकाल उपस्थित होतो उस भीषणसमय में मैं सबकी रक्षा करने के कर्म से असमर्थ हो जाऊँ ।१६। इस वरकी याचना को सुनकर विश्वात्मा ने कहा—एवमस्तु ! अर्थात् ऐसा होवे । यह कहने के बाद में ही वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे उसी समय में अन्तरिक्ष से देवगण के द्वारा की गई बड़ी भारी पुष्पों की वर्षा होने लगी थी ।१७। इसके अनन्तर किसी समय में वह मनू आश्रम में अपने पितृगण के लिये तर्पण कर रहे थे तो उनके हाथों में एक शफरी (मछली) जल के साथ ही आगई थी ।१८। उस दयालु महीपति ने उस

शफरी के स्वरूप को देखकर उसी की रक्षा करने का यत्न किया था और उसने उसे करकोदर में रख दिया था ।१९। एक ही अर्ध रात्रि के समय में वह सोलह अंगुल के विस्तार वाला हो गया था और वह मत्स्य रूप से सम्पन्न होकर उस राजा से 'मेरी रक्षा करो'—यह बोला ।२०। उस राजा ने उस जलचारी को लेकर एक मणिक में डाल दिया था । वहाँ पर भी वह एक ही रात्रि में तीन हाथ का होकर बढ़ गया था ।२१।

पुनः प्राहार्तनादेन सहस्रकिरणात्मजम् ।
समत्स्यः पाहि पाहीति त्वामहं शरणागतः ।२२
ततः सः कूपेत मत्स्यं प्राहिणोद्रविनन्दनः ।
यदा न माति तत्रापि कूपे मत्स्यः सरोवरे ।२३
क्षिप्तोऽसौ पृथुतामागात्पुनर्योजनसम्मिताम् ।
तत्राप्याह पुनर्दीनः पाहिपाहि नृपोत्तमः ।२४
ततः स मनुना क्षिप्तोगङ्गायामप्यवर्धत ।
यदा तदा समुद्रे त प्राक्षिपन्मेदिनीपतिः ।२५
यदा समुद्रमखिलं व्याप्यासौ समुपस्थितः ।
तदा प्राह मनुर्भीतः कोऽपित्वमसुरेतरः ।२६
अथवा बासुदेवस्त्वमन्य ईदृक्कथं भवेत् ।
योजनायुतविंशत्याकस्य तुल्यं भवेद्वपुः ।२७
ज्ञातस्त्वमत्स्यरूपेण मां खेदयसिकेशव !
हृषीकेष ! जगन्नाथ ! जगद्धाम ! नमोऽस्तुते ।२८

उस मत्स्य ने फिर उस सूर्य के पुत्र नृपति से बड़े ही आर्तनाद में कहा था कि मेरी रक्षा करो—रक्षा करो—मैं तो इस समय में आपकी शरणागति में आ गया हूँ ।२२। इसके पश्चात् उस रवि के पुत्र राजा ने उस मत्स्य को कुये में डाल दिया था । जब वह मत्स्य कुये में भी नहीं समाया था तो उस मत्स्य को एक सरोवर में प्रक्षिप्त कर दिया

था। पर भी वह बहुत बड़ा होकर एक योजन के विस्तार वाला हो गया था और वहाँ पर भी वह फिर अधिक दीन होकर राजासे बोला था—हे नृपश्रेष्ठ ? मेरी रक्षा करो-रक्षा करो।२३-२४। इसके अनन्तर उस मनु के द्वारा वह गङ्गा में प्रक्षिप्त कर दिया गया था किन्तु वह वहाँ पर भी बढ़ गया था। ऐसा जिस समय में देखा तो उसी समयमें राजा ने उस मत्स्य को समुद्र में डाल दिया था। जब यह सम्पूर्ण समुद्र में व्याप्त होकर समुपस्थित हो गया था तो उस राजा मनु ने अत्यन्त भयभीत होकर उससे बोला था—तुम असुरेतर कौन हो ! २५-२६। अथवा आप साक्षात् भगवान वासुदेव ही हैं ! अन्य इस प्रकार का किस तरह हो सकता है। आपका यह शरीर का आकार अयुत विंशति योजन वाला हो गया है।२७। हे केशव ! मैं अब भली भाँति जान गया हूँ कि आप इस विशाल मत्स्यके स्वरूपमें समुपस्थित होकर मुझे खेद दे रहे हैं। हे हृषीकेश! हे जगत् के स्वामिन् ! हे जगद्धाम ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम समर्पित है।२८।

एवमुक्त:सभगवान्मत्स्यरूपीजनार्दनः।
साधुसाध्विवतिचोवाचसम्यग् ज्ञातस्त्वयाऽनघ।२९

अचिरेणैव कालेन मेदिनी मेदिनीपते।
भविष्यति जले मग्नो सशैलवनकानना।३०

नौरियं सर्वदेवानां निकायेन विनिर्मिता।
महाजीवनिकायस्य रक्षणार्थं महीपते।३१

स्वेदाण्डजोद्भिजोयेवैयेचजावाजरायुजा:।
अस्यांनिधायसर्वास्ताननाथान् पाहिसुव्रत।३२

युगान्तवाताभिहता यदाभवतिनौर्नृप !
शृङ्गेऽस्मिन्मम राजेन्द्र ! तदेमां संयमिष्यसि।३३

ततोलयान्ते सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च।
प्रजापतिस्त्वं भविता जगत: पृथिवीपते।३४

एवं कृतयुगस्यादौ सर्वज्ञो धृतिमान्नृपः ।
मन्वन्तराधिपश्चापि देवपूज्यो भविष्यसि ।३५

इस प्रकार से राजा ने जब मत्स्य से निवेदन किया तो उस समय में मत्स्य स्वरूप को धारण करने वाले भगवान जनार्दन ने कहा—बहुत अच्छा बहुत ही ठीक ! हे अनघ! तुमने मुझको अच्छी तरहसे पहिचान लिया है ।२९। हे मेदिनी के स्वामिन् ! अब बहुत ही थोड़े-से समयमें यह पृथ्वी जल में मग्न हो जायगी । जिसमें ये समस्त पर्वत वन और कानन सभी इस मेदिनी के साथ जल में डूब जायेंगे ।३०। हे महीपते! यह नौका समस्त देवों के निकाय से निर्मित हुई और महान जीवों के निकाय की रक्षा के लिये ही इसका निर्माण उत्तम है ।३१। हे सुव्रत ! जो भी स्वदेज-अण्डज-जरायुज और उद्भिज जीव है उन सब अनाथों को इसी नौका में रखकर आप उनकी रक्षा कीजिएगा ।३२। जिस समय में युगान्त की वायु से अभिहत यह नौका होवे तब हे नृप ! हे राजेन्द्र ! इसको मेरे शृङ्ग से संयमित कर देना ।३३। हे पृथिवीपते ! इसके उपरान्त जिस समय में समस्त स्थापर और चर के लय का अन्त हो उस वक्त आप ही इस सम्पूर्ण जगत् के प्रजापति होंगे ।३४। इस प्रकार से सतयुग के आदि काल में सर्वज्ञ और धृतिमान् नृप और देवों के द्वारा पूज्य मन्वन्तर का भी अधिप होगा ।३५।

——

२—मत्स्य-मनुसंवाद वर्णन

एवमुक्तो मनुस्तेन पप्रच्छ मधुसूदनम् ।
भगवन् ! कियद्भिर्वर्षैर्भविष्यत्यन्तरक्षयः ।१
सत्वानि च कथं नाथ ! रक्षिष्ये मधुसूदन !
त्वया सह पुनर्योगः कथं वा भवितामम ।२

अद्य प्रभृत्यनावृष्टिर्भविष्यति महीतले ।
यावद्वर्षशतं साग्रन्दुर्भिक्षमशुभावहम् ।३
ततोऽल्पसत्वक्षयदा रश्मयः सप्त दारुणाः ।
सप्तसप्तेर्भविष्यन्ति प्रतप्ताङ्गारवर्णिनः ।४
और्वानलोऽपि विकृतिङ्गमिष्यति युगक्षये ।
विषाग्निश्चापि पातालात्सङ्कर्षणमुखच्युतः ।
भवस्यापि ललाटोत्थतृतीयनयनानलः ।५
त्रिजगन्निर्दहन् क्षोभंसमेष्यति महामुने !
एवंदग्धा महीसर्वा यदास्यद्भस्मसन्निभा ।६
आकाशमूष्मणा तप्तम्भविष्यति परन्तप !
तत् सदेवनक्षत्रं जगद्यास्यति संक्षयम् ।७

श्री सूतजी ने कहा—उन मत्स्यावतारी भगवान् के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर राजा मनु ने मधुसूदन प्रभु से पूछा था—हे भगवन् ! यह अन्तर क्षय कितने वर्षों में होगा ! ।१। हे मधुसूदन ! हे नाथ ! इन जीवों की रक्षा किस प्रकार से करूँगा ! फिर आपके साथ में मेरा योग कैसे होगा ? ।२। मत्स्य भगवान् ने कहा-आज ही से लेकर इस महीतल में अनावृष्टि (वर्षा का अभाव) होगी । जिस समय तक साग्र सौ वर्ष होंगे तब तक यहाँ पर परम अशुभ का देने वाला अकाल हो जायगा ।३। इसके अनन्तर पूर्ण प्रतप्त अङ्गार के वर्ण के समान वर्ण वाले सप्त सप्ति सूर्य सात दारुण रश्मियाँ हो जायगी जो छोटे-छोटे सत्वों के क्षय को कर देने वाली हैं ।४। युग के क्षय में और्वानल भी विकृतिको प्राप्त हो जायेगा । पाताल लोकसे भगवान् संकर्षण के मुख से च्युत विषाग्नि भी विकृतिस्वरूप धारण करेगा और महादेव जी के ललाट में उत्थित तीसरे नेत्र का अनल भी महान् विकृत रूप धारण करेगा ।५। हे महामुने ! इन तीनों लोकों को निदाघ करते हुए परम क्षोभ को प्राप्त हो जायगा । इस तरह से यह सम्पूर्ण पृथ्वी

दग्ध हो करके जिस समय में भस्म के सदृश हो जायगी उस समय में हे परन्तप ! यह समस्त आकाश मण्डल ऊष्मा से एकदम तप्त हो जायगा । इसके अनन्तर देवगण और नक्षत्रों के सहित यह सम्पूर्ण जगत् क्षय को प्राप्त हो जायगा ।६-७।

सम्वर्तो भीमनादश्च द्रोणश्चण्डोबलाहक: ।
विद्युत्पताक: शोणस्तुसप्तैतेलयवारिदा: ।८
अग्निप्रस्वेदसम्भूतां प्लावयिष्यन्तिमेदिनीम् ।
समुद्रा: क्षोभमागत्य चैकत्वेन व्यवस्थिता: ।९
एतेदेकार्णवंसर्वंङ्करिष्यन्ति जगत्त्रयम् ।
वेदनावमिमां गृह्य सत्यबीजानि सर्वश: ।१०
आरोप्य रज्जुयोगेन मत्प्रदत्तेन सुव्रत ।
संयम्य नावं मच्छृङ्गे मत्प्रभावाभिरक्षित: ।११
एक: स्थास्यसि देवेषु दग्धेष्वपि परन्तप !
सोमसूर्यावहं ब्रह्मा चतुर्लोकसमन्वित: ।१२
नर्मदा च नदीपुण्यामार्कण्डेयोमहानृषि ।
भवोवेदा: पुराणश्चविद्याभि: सर्वतोवृतम् ।१३
त्वया सार्द्धमिदं विश्वं स्थास्यत्यन्तरसंक्षये ।
एवमेकार्णवे जाते चाक्षुषान्तरसंक्षये । १४

सम्वर्त—भीमनाद—द्रोण—चण्ड—बलाहक–विद्युत्पताक और शोण ये सात संसार का लय करने वाले मेघ हैं ।८। अग्नि के प्रस्वेद से सम्भूत इस मेदिनी को ये मेघ प्लावित कर देंगे । समुद्र भी सब क्षोभ को प्राप्त होकर एक रूप वाले व्यवस्थित हो जायेंगे । यह त्रैलोक ही सम्पूर्ण को एक सागरमय कर देंगे अथात् चारों ओर त्रैलोक्य में समुद्र के अतिरिक्त अन्य कुछ भी दिखाई नहीं देगा । उस समय में इस वेद नौका का ग्रहण करके सभी ओर से सत्व बीजों को इसमें समरोपित करके हे सुव्रत ! मेरे द्वारा दिए रज्जु के योग से इस नाव का संयमित

करके मेरे ही शृङ्ग में मेरे प्रभाव से सुरक्षित होगा।९-११। हे परन्तप! समस्त देवों के दग्ध हो जाने पर भी एक देव उस समय में भी स्थित रहेगा। वह सोम और सूर्य समावहन करने वाले चारों लोकों से समन्वित ब्रह्माजी होंगे।१२। नर्मदा परम पुण्यमयी नदी है और मार्कण्डेय महान् ऋषि हैं। सब वेद और पुराण तथा विद्याओं से सर्वतः वृत यह विश्व आपके साथ अन्तर संक्षय में स्थित रहेगा जबकि यह चाक्षुषान्तर संक्षय एकार्णव मात्र रहेगा।१३-१४।

वेदान् प्रवर्त्तयिष्यामि त्वत्सर्गादौ महीपते ।
एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ।१५
मनुरप्यास्थितोयोगं वासुदेवप्रसादजम् ।
अभ्यसन् यावदाभूतसंप्लवं पूर्वसूचितम् ।१६
काले यथोक्ते संजाते वासुदेवमुखोद्गते ।
शृङ्गी प्रादुर्बभूवार्थमत्स्यरूपी जनार्दनः ।१७
भुजङ्गोरज्जुरूपेणमनोः पार्श्वमुपागमत् ।
भूतान्सर्वान्समाकृष्ययोगेनारोप्यधर्म्मवित् ।१८
भुजङ्गरज्वा मत्स्यस्य शृङ्गे नावमयोजयत् ।
उपर्युपस्थितस्तस्याः प्रणिपत्यजनार्दनम् ।१९
आभूसंप्लवे तस्मिन्नतीते योगशायिना ।
पृष्टेन मनुना प्रोक्तं पुराणं मत्स्यरूपिणा ।
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः ।२०
यद्भवद्भिः पुरा पृष्टः सृष्ट्यादिकमहन्द्विजाः ।
तदेवैकार्णवे तस्मिन् मनुः पप्रच्छ केशवम् ।२१

हे महीपते! आपके स्वर्ग के आदिकाल में मैं वेदों को प्रवृत्त करूँगा। इतना कहकर वह भगवान वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे।१५। महीपति मनु भी भगवान वासुदेव के प्रसाद से समुत्पन्न योग से समस्थित हो गये थे जिसका अभ्यास पूर्व में सूचित जब तक भूत संप्लव रहा तब तक करते रहे थे।१६। भगवान् वासुदेव के मुख द्वारा

उद्गत जैसा भी कहा गया था उसी काल के समुपस्थित हो जाने पर मत्स्य स्वरूप को धारण करने वाले जनार्दन शृङ्गी प्रादुर्भूत हो गये थे ।१७। एक भुजङ्ग रज्जु (रस्सा) के स्वरूप में मनु के पार्श्व में समागत हो गया था । धर्म के वेत्ता उस मनु ने समस्त भूतों का समाकर्षित करके योग के द्वारा समारोपित कर दिया था ।१८। उस नौका को भुजङ्ग की रज्जु से मत्स्य के शृङ्ग में योजित कर दिया था । फिर भगवान् जनार्दन की सेवा में प्रणिपात करके उस नौका के ऊपर स्वयं उपस्थित हो गया था ।१६। उस आभूत संप्लव के समाप्त हो जाने पर योगशायी मत्स्य रूपी मनु के द्वारा पूछे जाने पर यह पुराण कहा गया था । उसे ही इस समय में मैं कहूँगा । हे श्रेष्ठ ऋषिगण ! आप सब लोग उसका श्रवण कीजिये ।२०। हे द्विजवृन्द ! आप लोगों ने पहिले मुझसे सृष्टि आदि का वृत्तान्त पूछा था वही उस समय में जब कि यह सम्पूर्ण जगत् एक अर्णव स्वरूप में था मनु ने भगवान् केशव से पूछा था ।२१।

उत्पत्ति प्रलयञ्चैव वंशान्मन्वन्तराणि च ।
वंश्यानुचरितञ्चैव भुवनस्य च विस्तरम् ।२२
दानधर्म्मविधिञ्चैव श्राद्धकल्पञ्च शाश्वतम् ।
वर्णाश्रमविभागञ्च तथेष्टापूर्त्त संज्ञितम् ।२३
देवतानां प्रतिष्ठादि यच्चान्यद्विद्यते भुवि ।
तत्सर्वं विस्तरेण त्वं धर्म्मं व्याख्यातुमर्हसि ।२४
महाप्रलयकालान्त एतदासीत्तमोमयम् ।
प्रसुप्तमिव चातर्क्यमप्रज्ञातमलक्षणम् ।२५
अविज्ञेयमविज्ञातं जगत् स्थास्नुचरिष्णु च ।
ततः स्वयम्भूरव्यक्तः प्रभवः पुण्यकर्म्मणाम् ।२६
व्यञ्जयन्नेतदखिलं प्रादुरासीत्तमोनुदः ।
योऽतीन्द्रियः परोऽव्यक्तादणुर्ज्यायान् सनातनः ।

नारायण इति ख्यातः स एकः स्वयमुद्‌बभौ ।२७
यः शरीरादभिध्याय सिसृक्षुर्विविधं जगत् ।
अतएव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ।२८

मनु ने कहा—हे भगवन् ! इस विश्व की उत्पत्ति तथा इसका प्रलय-राजाओं आदि के वंश तथा मन्वन्तर—वंशमें होने वाला अनुचरित और इस भुवन का विस्तार, दान, धर्म का विधान—शाश्वत श्राद्धकल्प चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों का विभाग तथा इष्टापूर्त्त संज्ञा वाला कर्म्म, देवगणों की प्रतिष्ठा आदि एवं अव्ययी जो कुछभी इस भूमण्डल में विद्यमान है वह सभी कुछ विस्तारपूर्वक तथा धर्म्म की पूर्ण व्याख्या का कथन करने को आप परम योग्य हैं उसे अब कहिये ।२२-२४। मत्स्य भगवान् ने कहा—यह तमोमय महाप्रलय का अन्त काल है। यह प्रसुप्त की भाँति तर्क न करने के योग्य अप्रज्ञात और लक्षण शून्य ही होना है ।२५। यह स्थावर और चर जगत् अविज्ञेय और अविज्ञात सा रहता है । इसके अनन्तर पुण्य कर्मों का प्रभव-अव्यक्त स्वयम्भू तम का नोदन करने वाले इस समस्त जगत् को प्रकट करते हुये प्रादुर्भूत हुए थे । जो इन्द्रियों की पहुँच से अतीत अव्यक्त से पर, अणु, ज्यामान् और सनातन थे । इनका शुभ नाम नारायण प्रसिद्ध था, यह एक ही थे और स्वयं ही उद्‌भूत हुए थे ।२६-२७। जिनने अपने शरीर से अभिध्यान करके इस विविध भाँति के जगत् की रचना करने की इच्छा वाले थे । इसीलिये सृजन किया था और आदि में उन में बीजों का अव सृजन किया था ।२८।

तदेवाण्डं समभवद्धैममरूप्यमयं महत् ।
संवत्सरसहस्रेण सूर्य्यायुतसमप्रभम् ।२९
प्रविश्यान्तर्महातेजाः स्वयमेवात्मसम्भवः ।
प्रभावादपितद्व्याप्त्याविष्णुत्वमगमत्पुनः ।३० ।
तदन्तर्भगवानेष सूर्य्यः समभवत् पुरा ।

आदित्यश्चादिभूतत्वात् ब्रह्माब्रह्मपठन्नभूत् ।३१
दिवं भूमिं समकरोत्तदण्डशकलद्वयम् ।
सचाकरोद्दिश: सर्व्वामध्येव्योमच शाश्वतम् ।३२
जरायुर्मेरुमुख्याश्च शैलास्तस्याभवस्तदा ।
यदुल्वन्तदभूत्मेघस्तडित्सङ्घातमण्डलम् ।३३
नद्योऽण्डनाम्न: सम्भूता: पितरोमनवस्तथा ।
सप्तयेऽमीसमुद्राश्चतेऽपिचान्तर्जलोद्भवा: ।
लवणक्षुसुराद्याश्च नानारत्नसमन्विता: ।३४
स सिसृक्षुरभद्देव: प्रजापतिररिन्दम ।
तत्तेजसश्च तत्रैष मार्तण्ड: समजायत ।३५
मृतेऽडे जायते यस्मान्मार्तंडस्तेन संस्मृत: ।
रजोगुणमयं यत्तद्रूपं तस्य महात्मन: ।
चतुर्मुख: स भगवानभूल्लोकपितामह: ।३६
येन सृष्टं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।
तमवेहि रजोरूपं महत्सत्वमुदाहृतम् ।३७

वही अण्डहेम रूप्यमय महान हो गया था और एक सहस्र सम्वत्सर में वह दश सहस्र सूर्यो की प्रभा के समान प्रभा वाला हो गया था ।२६। महान् तेज से युक्त आत्म सम्भव अर्थात् स्वयम्भू प्रभु अन्तर में स्वयं ही प्रविष्ट होकर प्रभाव से भी उसकी व्याप्ति के द्वारा फिर वह विष्णुत्व को प्राप्त हो गया था ।३०। उसके अन्तर में गये हुये यह भगवान् पहिले सूर्य्य हुए थे ब्रह्मा आदि भूत होने के कारण से ब्रह्मका पाठ करते हुए आदित्य हुए ।३१। उस अण्ड के दो खण्डों ने दिन और भूमि को किया था और उसने सभी दिशाओं को बनाया था तथा मध्य में शाश्वत व्योम की रचना की थी ।३२। उस समय में उसके जटायु और मुख्य शैल हुये थे । जो उल्वण था वही मेघ और विद्युत्

के संघात का मण्डल हो गया था ।३३। उस अणु नाम से नदियाँ तथा पितृगण और मनु वर्ग हुये थे । जो ये सात समुद्र हैं वे भी अन्तर में जल से उद्भव प्राप्त करने वाले हो गये थे । जिनका लवण सागर इक्षु समुद्र और सुरा सागर आदि कहा गया है वे सब अनेक रत्नों से समन्वित हो गये थे ।३४। हे अरिन्दय ! सृजन करने की इच्छा वाले यह देव प्रजापति होगये थे उनके तेज से वहाँ पर यह मार्तण्ड समुत्पन्न हो गया था ।३५। अण्ड के मृत होने पर जिससे यह समुत्पन्न होता है इसी कारण से यह मार्त्तण्ड कहा गया गया है । उस महान् आत्मा वाले का यह रजोगुणमय स्वरूप है । लोकों के पितामह वह भगवान् चार मुखों वाले हो गये थे ।३६। इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन किया है जिसमें देव-असुर और मानव सभी है उसको रजोगुण के रूप वाला समझ लो और महात्सत्व उदाहृत किया गया है ।३७।

३—सृष्टि-प्रकरण

चतुर्मुखत्वमगमत्कस्माल्लोकपितामहः ।
कथं तु लोकानसृजत् ब्रह्मविदाम्वरः ।१
तपश्चचार प्रथममराणां पितामहः ।
आविर्भूतास्ततो वेदाः साङ्गोपांगपदक्रमाः ।२
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्राह्मणा स्मृतम् ।
नित्यं शब्दमयंपुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ।३
अनन्तरश्च वक्त्रेभ्योवेदास्तस्यविनिःसृताः ।
मीमांसान्यायविद्याश्चप्रमाणाष्टकसंयुताः ।४
वेदाभ्यासमरतस्यास्य प्रजाकामस्य मानसाः ।
मनसः पूर्वसृष्टावै जातायत्तेनमानसाः ।५

मरीचिरभवत्पूर्वंततोऽत्रिर्भगवान् ऋषिः ।
अङ्गिराश्चाभवत्पश्चात् पुलस्त्यस्तदनन्तरम् ।६
ततः पुलहनामा वै ततः क्रतुरजायत ।
प्रचेताश्च ततः पुत्रो वशिष्ठश्चाभवत् पुनः ।७

मनु ने कहा—लोकों के पितामह के आपने चार मुख बतलाये हैं सो इनके ये चार मुख कैसे हो गये थे ब्रह्म के वेत्ताओं में सर्वश्रेष्ठ ब्रह्माजी ने इन सब लोकों को सृजन किस प्रकार से किया था ? कृपा कर आप हमको यह बतलाइये ।१। भगवान् मत्स्य ने कहा था—देवों के पितामह ने सबसे प्रथम तो तपश्चर्या की थी। इसके अन्तर सब वेदों का आविर्भाव हुआ था जो अपने अङ्ग शास्त्र उपाङ्ग तथा पद एवं क्रम से संयुत थे ।२। ब्रह्माजी के द्वारा प्रथम समस्त शास्त्रों के पुराण कहे गये हैं जो नित्य-पुण्य शब्दमय और सौ करोड़ विस्तार वाला है ।३। इसके उपरान्त ब्रह्माजी के मुखों से वेद निकले थे जो मीमांसा-न्याय विद्या से संयुत और आठ प्रमाणों से समन्वित थे ।३। ब्रह्माजी उस समय में सर्वदा वेदों के ही अभ्यास करने में निरत रहा करते थे। ऐसी दशा में जब उनकी प्रजा के समुत्पन्न करने की कामना हुई तो उनसे मानस सृष्टि समुत्पन्न हुई थी। क्योंकि सर्व प्रथम मन से ही सृजनहुआ था इसीलिये ये मानस समुभूत होने वाले कहलाये थे ।४-५। सबसे पहिले ब्रह्माजी की मानस सृष्टिमें मरीचि महर्षि उत्पन्न हुई थे। इसके पश्चात् भगवान् अत्रि ऋषि की उत्पत्ति हुई थी। फिर अङ्गिरा ऋषि और इनके पश्चात् पुलस्त्य महर्षि का उद्भव हुआ था ।६। इसके अनन्तर पुलह नाम वाले समुत्पन्न हुये और इनके पीछे क्रतु की समुत्पत्ति हुई थी। फिर प्रचेता और इसके पश्चात् पुत्र वसिष्ठ ने जन्म ग्रहण किया था ।७।

पुत्रो भृगुरभूत्तद्वन्नारदोऽप्यचिरादभूत् ।
दशेमान्मानसान्ब्रह्मामुनीन् पुत्रानजीजनत् ।८

किया था कि बुद्धि से मोह की समुत्पत्ति हुई थी । अहङ्कार ही क्रोध कहा गया है तो फिर यह बुद्धि नाम वाली क्या कही जाती है अर्थात् यह बुद्धि किस स्वरूप वाली है ? ।१३।

सत्वं रजस्तमश्चैव गुणत्रयमुदाहृतम् ।
साम्यावस्थितिरेतेषां प्रकृतिः परिकीर्तिता ।१४
केचित् प्रधानमित्याहुरव्यक्तमपरे जगुः ।
एतदेव प्रजासृष्टिं करोति विकरोति च ।१५
गुणेभ्यः क्षोभमाणेभ्यस्त्रयो देवा विजज्ञिरे ।
एकामूर्तिस्त्रयो भागा ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः ।१६
स विकारात् प्रधानात्तु महत्तत्वं प्रजायते ।
महानितियतः ख्यातिर्लोकानांजायतेसदा ।१७
अहङ्कारश्च महतो जायते मानवर्धनः ।
इन्द्रियाणि ततः पञ्च वक्ष्ये बुद्धिवशानि तु ।
प्रादुर्भवन्ति चान्यानि तथा कर्म्मवशानि तु ।१८
श्रोत्रंत्वाक्चक्षुषीजिह्वान सिकाचयथाक्रमम् ।
पायूपस्थंहस्तपादवाक्चेतीन्द्रियसंग्रहः ।१९
शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसोगन्धश्च पञ्चमः ।
उत्सर्गानन्दनादानगत्यालापाश्चतत्क्रियाः ।२०
मन एकादश तेषांकर्म्मबुद्धिगुणान्वितम् ।
इन्द्रियावयवाः सूक्ष्मास्तस्यमूर्तिमनीषिणः ।२१
श्रयन्ति यस्मात्तन्मात्रा शरीरं तेन संस्मृतम् ।
शरीरयोगाज्जीवोऽपिशरीरीगद्यतेबुधः ।२२

भगवान् मत्स्य ने कहा—सत्व गुण, रजोगुण, तमोगुण ये तीन गुण बतलाये गये हैं । इन तीनों गुणों की जो समान अवस्था होती हैं अर्थात् सभी समान स्वरूपमें (किसी से भी कोई घट-बढ़ कर नहीं रहते हैं ऐसी दशा में) स्थित रहते हैं उसी को 'प्रकृति' इस नाम से परि-कीर्त्तित किया गया है।१४। इसी प्रकृतिको कुछलोग 'प्रधान'—इस नाम

में कहते हैं और दूसरे लोग इसीको अव्यक्त कहा करते हैं। यही प्रकृति प्रधान या अव्यक्त इस सृष्टि को किया करती है तथा इसका विघटन भी कर दिया करती है।१५। जब ये ही तीन गुण क्षोभ को प्राप्त होते तो इनसे तीन देव समुत्पन्न होकर तीन स्वरूपों में सामने आते हैं। सिद्धान्ततः यह एक ही मूर्त्ति है और उस एक के ही ये तीन भाग हो जाया करते हैं जो ब्रह्मा-विष्णु और महेश इन तीन शुभ नामों वाले होते हैं।१६। वह विकार युक्त प्रधान से महत्तत्व समुत्पन्न होता है। इसकी 'महान्' यह ख्याति इसीलिये है कि यह सदा लोकों का होता हैं।१७। मान के बढ़ाने वाला अहङ्कार महत्तत्पन्न होता है। इसके पश्चात् पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं। जिनके विषय में बतलायेंगे तथा पाँच अन्य कर्मेन्द्रियाँ होती हैं।१८। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के नाम श्रोत्र-त्वक् नेत्र-जिह्वा और नासिका ये हैं। पायु-उपस्थ हस्त-पाद वाक्—ये पाँच कर्मेन्द्रियों के नाम हैं; यही दशों इन्द्रियों का संग्रह है।१९। इन दशों इन्द्रियों के भिन्न-२ अपने विषयों के क्रम से ही बतलाते हैं। ज्ञानेन्द्रियों के विषय शब्द-स्पर्श-रूप-रस और गन्ध हैं। कर्मेन्द्रियों के विहय क्रमशः उत्सर्ग, आनन्द, दान, गति और आलाप ये इनकी क्रियायें हैं।२०। मन ग्यारहीं सर्वोपरि इन्द्रिय है। इसमें कर्म और बुद्धि दोनों ही गुणों का समावेश होता है। इन्द्रियों के अवयव बहुत ही सूक्ष्म होते हैं। मनीषीगण उसकी मूर्त्ति का समाश्रय ग्रहण करते हैं। इसी कारण से उसका शरीर तन्मात्रा कहा गया है शरीर के ही योग से यह जीवात्मा भी बुधों के द्वारा शरीरी कहा जाया करता है।।२१-२२।

मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया ।
ओंकारशब्दतन्मात्रादभूच्छब्दगुणात्मकम् ।२३
आकाशविकृतेर्वायुः शब्दस्पर्शगुणोऽभवत् ।
वायोश्च स्पर्शतन्मात्रात्तेजश्चाविरभूत्ततः ।२४
त्रिगुणं तद्विकारेण तच्छब्दस्पर्शरूपवत् ।

तेजोविकारादभवद्वारि राजंश्चतुर्गुणम् ।२५
रसतन्मात्रसम्भूतं प्रायोरसगुणात्मकम् ।
भूमिस्तु गन्धतन्मात्रादभूत्पञ्चगुणान्विता ।२६
प्रायोगन्धगुणा सातु बुद्धिरेषा गरीयसी ।
एभिः सम्पादितं भुङ्क्तेपुरुषः पञ्चविंशकः ।२७

पूजन करने की इच्छासे प्रेरणा प्राप्त हुआ मनसृष्टि किया करता है। यह आकाश शब्द तन्मात्रा से ही समुत्पन्न होता है और इस आकाश का शब्द ही विशेष गुण होता है।२३। आकाश की विकृति से वायु की समुत्पत्ति होती हैं और इस वायु के शब्द और स्पर्श ये ही विशेष गुण हुआ करते हैं। वायु के स्पर्श तनमात्रा से शब्द गुण के स्वरूप वाला तेज प्रादुर्भूत हुआ करता करता है। इस तेज में शब्द के अतिरिक्त स्पर्श और रूप के भी दो गुण और होते हैं। ऐसे यह तीन गुणों वाला होता है। तेज के विकार से जल की उत्पत्ति होती है। इस जल में हे राजन् चार गुण होते हैं।२४-२५। यह इसकी तन्मात्रा से समुद्भूत होता है अतएव यह प्रातः इस गुण से समन्वित होता है। भूमि की तन्मात्रा से उत्पन्न होती है और इसमें रूप, रस, स्पर्श, शब्द गन्ध ये पाँच गुण होते है।२६। प्रायः यह गन्ध गुण वाली ही होती है और यही गरीयसी बुद्धि भी है। इनके द्वारा सम्पादित को यह पञ्च विंशक पुरुष भोजता है।२७।

ईश्वरेच्छावशः सोऽपि जीवात्मा कथ्यते बुधैः ।
एवं षड्विंशकंप्रोक्तं शरीरइहमानवे ।२८
सांख्यसंख्यात्मकत्वाच्चकपिलादिभिरुच्यते ।
एतत्तत्त्वात्मकंकृत्वाजगद्वेधाअजीजनत् ।२९
सावित्रीं लोकसृष्ट्यर्थं हृदि कृत्वासमास्थितः ।
ततः सञ्जपतस्तस्यभित्वादेहमकल्मषम् ।३०
यावदब्दशतं दिव्यं यथान्यः प्राकृतो जनः ।

ततः कालेन महतातस्याः पुत्रोऽभवन्मनुः ।३१
स्वाम्भुव इति ख्यातः स विराडिति नः श्रुतम् ।
तद्रूपगुणसामान्यादधिपूरुष उच्यते ।३२
वैराजा यत्र ते जाता बहवः शंसितव्रताः ।
स्वायम्भुवा महाभावाः सप्त सप्त तथापरे ।३३
स्वारोचिषाद्याः सर्वे ते ब्रह्मतुल्यस्वरूपिणः ।
औत्तमिप्रमुखा स्तद्वद्येषान्त्व सप्तमोऽधुना ।३४

बुधों के द्वारा वह जीवात्मा भी ईश्वर की इच्छा के वश में रहने वाला कहा जाता है। इस प्रकार से इस मानवीय शरीरमें छब्बीसतत्व युक्त था यह षड्विशंक इस नाम से कहा जाया करता है।२८। तत्वों की संख्या के स्वरूप वाला होने ही से कपिल आदिके द्वारा यह सांख्य शास्त्र या दर्शन कहा जाता है वेधा ने इस जगत् को एक तत्व के स्वरूप वाला समुत्पन्न किया है।२९। लोककी सृष्टि के लिये सावित्री को अपने हृदय में करके ही प्रजापति समास्थित होते हैं। इसके उपरान्त भली-भाँति जाप करते हुए उनके कल्मष सहित शरीर का भेदन करके ही सावित्री प्रकट हुई थीं।३०। जिस प्रकारसे कोई प्राकृत मनुष्य होता है उसी भाँति दिव्य सौ वर्ष तक के बहुत महान् काल में उसका अर्थात् सावित्री का मनु पुत्र उत्पन्न हुआ था।३१। इसका स्वायम्भुव मनु—यह शुभ नाम प्रसिद्ध था वह महान् विराट था–ऐसा हमने सुना है। इसके रूप गुण सामान्य से वह अधि पुरुष कहा जाता है।३२। जहाँ पर वे बहुत से शंसित व्रतवाले वैराज समुत्पन्न हुये थे तथा दूसरे सात-सात महाभाग वाले स्वायम्भुव थे।३३। स्वारचिष आदि ये सब ब्रह्मा के ही तुल्य स्वरूप वाले थे। उसी तरह औत्तमि प्रमुख भी थे अर्थात् जिनमें औत्तमि प्रधान था वे भी थे जिनमें आप इस समय में सातवें होते हैं।३४।

———

४—सरस्वती चरित्र

स्वायम्भुवो मनुर्धीमांस्तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।
पत्नीमेवापरूपाढ्यामनन्तींनाम नामतः ।१
प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुस्तस्यामजीजनत् ।
धर्मस्य कन्या चतुरा सूनृतानाम भामिनी ।२
उत्तानपादात्तनयान् प्राप मन्थरगामिनी ।
अपस्यतिमपस्यन्तं कीर्तिमन्तं ध्रुवं तथा ।३
उत्तानपादोऽजनयत् सूनृतायां प्रजापतिः ।
ध्रुवो वर्ष सहस्राणि त्रीणि कृत्वातपः पुरा ।४
दिव्यमाप ततः स्थानमचलं ब्रह्मणोवरात् ।
तमेव पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ।५
धन्या नाम मनोः कन्यां ध्रुवाच्छिष्टमजीजनत् ।
अग्निकन्या तु सुच्छाया शिष्टात्मा सुषुवे सुतान् ।६
कृपं रिपुं जयं वृत्तं वृकं च वृकतेजसम् ।
चक्षुषं ब्रह्मदौहित्र्यां वारिण्यां स रिपुञ्जयः ।७

मत्स्य भगवान् ने कहा—परम धीमान् स्वायम्भुव मनु ने अति दुश्चर तपश्चर्या करके परम रूप लावण्यवती अनन्ती नाम वाली पत्नी बनाई थी ।१। महाराज मनु ने उस अपनी पत्नी में प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र समुत्पन्न किये थे । धर्म की एक अति चतुर सूनृता नाम वाली भामिनी थी । उसने जो मन्थर गमन करने वालीथी उत्तान पाद से पुत्रों की प्राप्ति की थी । उन पुत्रों के नाम अपस्यति, अपस्यन्त कीत्तिमान् और ध्रुव थे थे ।२-३। प्रजापति उत्तानपाद ने अपनी पत्नी सूनृता में इनको जन्म ग्रहण कराया था । उनमें जो ध्रुव नाम वाला पुत्र था उसने प्राचीन काल में तीन सहस्र वर्ष तक तपस्या की थी ।४। फिर उसने इसी तप के फलस्वरूप ब्रह्माजी के वरदान से परम दिव्य और चल स्थान प्राप्त किया था । उसी ध्रुव को अपने आगे करके

सप्तर्षिगण स्थित रहा करते हैं ।५। धन्या नाम धारिणी मनु की कन्या ने ध्रुव से शिष्ट को जन्म दिया था । शिष्टात्मा अग्नि की कन्या सुच्छाया ने सुतों को समुत्पन्न किया था ।६। कृप, रिपु, जय, बल, वृक, तेजस, चक्षुष बह्य दौहित्री में और वह रिपुञ्जय वीरिणी में उत्पन्न हुये थे ।

वीरणस्यात्मजायान्तु चक्षुर्मनुमजीजनत् ।
मनुर्वैराजकन्यायां नड्वलायां सचाक्षुषः ।८
जनयामास तनयान्दश शूरान्कल्मषान् ।
ऊरुः पूरु शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्हविः ।९
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चापराजितः ।
अभिमन्युस्तु दशमो नड्वलायामजायत ।१०
ऊरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी तु सुप्रभान् ।
अग्निंसुमनसंख्याति क्रतुमङ्गिरसङ्गयम् ।११
पितृकन्या सुनीथातु वेनमगादजीजमत् ।
वेनमन्यायिनं विप्रा ममन्थुस्तत्कराद्भूत् ।
पृथुर्नाम महातेजाः स पुत्रौ द्वावजीजनत् ।१२
अन्तर्धानस्तु चारीच शिखण्डिन्यामजीजनत् ।
हविर्धानस्तु षडाग्नेयी धिषणाऽनियत् सुतान् ।
प्राचीनबर्हिषं सांग यमं शुक्रं बलं शुभम् ।१३
प्राचीनबर्हिर्भगवान् महानासीत्प्रजापतिः ।
हविर्धानाः प्रजास्तेन बहवः सम्प्रवर्त्तिताः ।१४

वीरण की आत्मजा में मनु ने चक्षु को प्रसूत किया था और वैराज की कन्या नड्वला में सचाक्षुष मनु ने कल्मष से रहित महान् शूरवीर दश पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था । उन दशों के नाम— ऊरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी सत्यवाक् हवि, अग्निष्टुप्, अतिरात्र, सुद्युम्न, अपराजित और अभिमन्यु दशम था जो नड्वला से उत्पन्न

हुआ था।८-१०। उरु से षडाग्नेयी ने सुन्दर प्रभा वाले पुत्रों को प्रसूत किया था उन पुत्रों के नाम अग्नि, सुमन, ख्याति, क्रतु, अङ्गिरा और गय ये थे।११। पितृ कन्या जिसका शुभ नाम सुनीथा तो अङ्ग से वेन को जन्म दिया था। राजा बेन बहुत ही अधिक अन्यायी हुआ था। अतएव विप्रों ने उसको शाप देकर फिर उसके शरीर का मंथन किया था। उसके हाथ से मंथन करने पर पृथु नाम वाला महान् तेजस्वी का जन्म हुआ था उस मृत्यु ने भी दो पुत्रों को प्रसूत किया था।१२। इसने शिखण्डिनी में अन्तर्धान और मारीच नाम वाले पुत्रों को उत्पन्न किया था। धिषणा षडाग्नेयी ने हविर्धान से सुतों को प्रसूत किया था जिनके नाम प्राचीन वर्हि, सांग, यम, शुक्र, बल और शुभ थे।१३। प्राचीन बर्हि भगवान् एक महान् प्रजापति हुये थे। उसने हविर्धान बहुत सी प्रजायें सम्प्रवर्तित की थीं।१४।

सवर्णायान्तु सामुद्रयान्दशाधत्त सुतान्प्रभुः।
सर्वेपचेतसोनाम धनुर्वेदस्य पारगाः।१५
तत्तपोरक्षिता वृक्षा बभूर्लोके समन्ततः।
देवादेशाच्च तानाग्निरदहद्रविनन्दन !।१६
सोमकन्याऽभवत्पत्नी मारिषा नाम विश्रुता।
तेभ्यस्तु दक्षमेकं सा पुत्र मग्रयमजीजनत्।१७
दक्षादनन्तरं वृक्षानौषधानि च सर्वशः।
अजीजनत्सोमकन्या नन्दीं चन्द्रवतीं तथा।१८
सोमांशस्यचतस्यापिदक्ष स्वाशीतिकोटयः।
तासांतुविस्तरं वक्ष्ये लोके यः सुप्रतिष्ठितः।१९
द्विपदश्चाभवन् केचित् केचिद् बहुपदा नराः।
बलीमुखाः शंकुकर्णाः कर्णप्रावरणास्तथा।२०
अश्वऋक्षमुखाः केचित् केचित् सिंहाननास्तथा।
श्वशूकरमुखाः केचित् केचिदुष्ट्र मुखास्तथा।२१

प्रभु ने सवर्णा सामुद्री में दश सुतों को जन्म प्रदान किया था। ये सभी प्रचेतस नाम से प्रसिद्ध हुए थे।१५। उनके तप से सुरक्षित वृक्ष लोक में सब ओर सुशोभित हुये थे। हे रविनन्दन ! देवों के आदेश से अग्नि ने उनको जला दिया था।१६। मारिषा इस शुभ नाम से प्रसिद्ध उसकी पत्नी हुई थी उनसे एक अग्रय अर्थात् परमोत्तम दक्ष नाम वाले पुत्र को उसने प्रसूत किया था।१७। दक्ष के अनन्तर सभी और बहुत से वृक्ष और औषधियाँ सोम कन्या ने समुत्पन्न की थीं तथा नन्दी चन्द्रवती को भी जन्म दिया था।१८। सोम के अंश उस दक्ष के भी अस्सी करोड़ हुये थे उनका विस्तार बतायेंगे जो लोक में सुप्रतिष्ठित हुआ था।१९। कुछ दो पद वाले और कुछ बहुत पद वाले नर हुये थे। बलीमुख, शंकु कर्ण तथा कर्ण प्रावरण कुछ अश्व और रीछ के मुख वाले तथा कुछ सिंह के समान मुख वाले हुये थे। कतिपय कुत्ता और शूकर के तुल्य मुख वाले और कुछ ऊँट के समान मुख वाले हुये थे। ।२०-२१।

जनयामासधर्मात्माम्लेच्छान् सर्व्वाननेकश: ।
समृष्ट्वामनसादक्ष: स्त्रिय: पश्चादजीजनत् ।२२
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सप्तविंशति: सोमाय ददौ नक्षत्रसंज्ञिता: ।
देवासुर मनुष्यादि ताभ्य: सर्वमभूज्जत् ।२३

उस धर्म्मात्मा ने सब अनेकों म्लेच्छों को भी जन्म दिया था। उस दक्ष ने मन से सृजन करके पीछे स्त्रियों को जन्म दिया था।२२। उसने उन में से दश तो धर्म्म को दी थीं—तेरह कश्यप को प्रदान की थीं और सत्ताईस नक्षत्र संज्ञा वाली सोम को दी थीं। उन्हीं स्त्रियों से देव, असुर और मनुष्य प्रवृत्ति का यह सम्पूर्ण जगत् हुआ था।२३।

५—दक्ष प्रजापति से मैथुनी सृष्टि

देवानां दानवानाञ्च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
उत्पत्तिविस्तरेणैव सूत ! ब्रूहि यथातथम् ।१
सङ्कल्पाद्दर्शनात् स्पर्शात् पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते ।
दक्षात्प्राचेतसादूर्ध्वं सृष्टिर्मैथुनसम्भवा ।२
प्रजासृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा ।
यथा ससर्ज चैवादौ तथैव शृणुत द्विजाः ! ।३
यदा तु सृजतस्तस्त देवर्षिगणपन्नगान् ।
न वृद्धिमगमल्लोकस्तदा मैथुनयोगतः ।
दक्षः पत्रसहस्राणि पाञ्चजन्यामजीजनत् ।४
तांस्तु दृष्ट्वा महाभागः सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
नारदः प्राहहर्यश्वान् दक्षपुत्रान्समागतान् ।५
भुवः प्रमाणं सर्वत्र ज्ञात्वोर्ध्वमध एव च ।
ततः सृष्टि विशेषेण कुरुध्वमृषिसत्तमाः ।६
ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतोदिशम् ।
अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रादिव सिन्धवः ।७

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! अब कृपा करके देवों की-दानवों की—गन्धर्व-उरग और राक्षसों की जो उत्पत्ति हुई थी उसको यथारूप से विस्तारपूर्वक बतलाइये ।१। सूतजी ने कहा—आरम्भ में तो केवल मनके संकल्प से दर्शन से और स्पर्श से ही पूर्व पुरुषों की सृष्टि कही है प्राचेतस दक्ष के बाद में ही मैथुन से होने वाली सृष्टि हुई थी ।२। स्वयम्भू प्रभु ने पहिले दक्ष को आज्ञा प्रदान की थी कि प्रजा का सृजन करो । हे द्विजगण ? आदिकाल में जिस प्रकार से सृजन किया था उस का आप लोग अब श्रवण करो ।३। जिस समय में देव-ऋषि-और पन्नगों का उसने सृजन किया था तो उससे लोकमें कोई भी वृद्धि नहीं हुई थी तब उस प्रजापति दक्ष ने पाञ्चजनी में मैथुन के योग से सहस्र

पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था ।४। विविध भाँति की प्रजा की सृष्टि करने की इच्छा करने की इच्छा करने वाले महाभाग ने उनको देख करके ना रहने समागत हर्यश्व दक्ष के पुत्र से कहा था ।५। हे ऋषि सत्तमो ! सर्वत्र इस भूमण्डल का प्रमाण ऊर्ध्व भाग में और अधोभाग में भली भाँति जानकर फिर विशेष रूप से सृष्टि की रचना करो ।६। उन्होंने भी उन के इस वचन को सुनकर सभी दिशाओं में प्रयाण किया था और तब से गये हुए वे आज तक भी वापिस नहीं लौटे हैं जिस तरह नदियाँ समुद्र में जाकर फिर वापिस नहीं लौटा करती हैं ।७।

हर्यश्वेषु प्रणष्टेषु पुनर्दक्षः प्रजापतिः ।
वीरिण्यामेव पुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः ।८
शबला नाम ते विप्राः समेता सृष्टिहेतवः ।
नारदोऽनुगतान्प्राह पुनस्तान् पूर्ववत्सतान् ।
भुवः प्रमाणं सर्वत्र ज्ञात्वा भ्रातृनथो पुनः ।९
आगत्य चाथ सृष्टिञ्च करिष्यथ विशेषतः ।
तेऽपि तेनैव मार्गेण जग्मुर्भ्रातृन् यथा पुरा ।१०
ततः प्रभृतिः न भ्रात कनीयान्मार्गमिच्छति ।
अन्विषन्दुःखमाप्नोति न तेन तत्परिवर्जयेत् ।११
ततस्तेषु विनष्टेषु षष्टि कन्याः प्रजापतिः ।
वैरिण्यां जनयामास दक्षः प्राचेतसस्तथा ।१२
प्रादात्स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सप्तविंशतिसोमायचतस्रोऽरिष्टनेमये (मिने) ।१३
द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते ।
द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत्तासान्नामानि विस्तरात् ।१४

उन हर्यश्वों के प्रनष्ट हो जाने पर दक्ष प्रजापति ने पुनः वीरिणी में प्रभु ने एक सहस्र पुत्रों का सृजन किया था ।८। वे विप्र शबल इस नाम वाले थे और सभी सृष्टि के हेतु स्वरूप एकत्रित हुयेथे । फिर उन

अनुगत सुनों से पूर्व की भांति ही नारद ने कहा था कि इस भूमि का सर्वत्र प्रमाण को जानकर कि यह कितनी विस्तृत है तथा अपने प्रथम गत भाईयों को भी जानकर फिर यहाँ आकर विशेष रूप से सृष्टि की रचना करोगे । देवर्षि नारद जी के कहने पर वे सभी उसी मार्गसे चले गये थे, जिससे पहिले उनके बड़े भाई लोग गये थे ।९-१०। तभी से लेकर भाई के छोटे भाई उस मार्ग की इच्छा नहीं करता है । अन्वेषण करते हुये दुःख को प्राप्त होता है अतएव इसी कारण से उसका परिवर्तन कर देना चाहिये ।११। इसके अनन्त उनके भी विनष्ट हो जाने पर प्रजापति प्राचेतस दक्ष ने वैरिणी में साठ कन्याओं का सृजन किया था अर्थात् उनको जन्म दिया था ।१२। उन्हीं साठ कन्याओं में से दक्ष ने दस कन्यायें तो धर्म को दी थीं—तेरह कश्यप ऋषि को प्रदान की सत्ताईस सोम को प्रदान की थीं—चार अरिष्टनेमि को दी थीं । अब उनके नाम विस्तारपूर्वक बतलाये जाते हैं ।१३-१४।

शृणुध्वं देवमातृणां प्रजाविस्तरमादितः ।
मरुत्वती वसूर्यामी लम्बा भानुररुन्धती ।१५
संकल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विश्वा च भामिनी ।
धर्मपत्न्यः समाख्यातास्तासां पुत्रान्निबोधत ।१६
विश्वेदेवांस्तु विश्वाया: साध्या साध्यानजीजनत् ।
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा ।१७
भानोस्तु भानवस्तद्वन् मुहूर्त्तायां मुहूर्तकाः ।
लम्बायांघोषनामानोनागवीथीतुयामिजा ।१८
पृथिवीतलसम्भूतमरुन्धत्यामजायत ।
संकल्पायास्तु संकल्पो वसुसृष्टिन्निबोधत ।१९
ज्योतिष्मन्तस्तुयेदेवाव्यापकाः सर्वतोदिशम् ।
वसवस्ते समाख्यात स्तेषां सर्गन्निबोधत ।२०
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौप्रकीर्तिताः ।२१

अब आप लोक उन देवों की माताओं के परम शुभ नामों का तथा आदि से प्रजा के विस्तार का श्रवण करो—धर्म्म को जो कन्यायें दश दी गयी थी उन धर्म की पत्नियों के नाम मरुत्वती-वसूयामी-लम्बा भानु-अरुन्धती-सङ्कल्पा-मुहूर्ता-साध्या-विश्वा और भामिनी ये थे। ये सब धर्म की पत्नियाँ समाख्यात हुई थीं। अब उन दशों पत्नियों के उदर से जो पुत्र समुत्पन्न हुए थे उनको भी जान लो।१५-१६। विश्वा के विश्वेदेवा पुत्र हुए थे और साध्या ने साध्यों को जन्म दिया था। मरुत्वती में मरुत्वायों ने जन्म ग्रहण किया था और वसू से वसुगण समुत्पन्न हुये थे।१७। भानु से भानुगण और उसी भाँति महूर्त्ता में मुहूर्त्तकों ने जन्म लिया था। लम्बा नाम की पत्नी में घोष नाम वाले पुत्र हुए थे तथा यामि से जन्म लेने वाले नागवीथी थे। अरुन्धती में पृथ्वी तल सम्भूत का जन्म हुआ था। सङ्कल्पा से सङ्कल्प समुत्पन्न हुआ था। अब वसुकी सृष्टि का ज्ञान प्राप्त करलो।१८-१९। ज्योतिष्मान जो देव व्यापक हैं और सभी दिशाओं में है वे ही सब वसुगण नाम से समाख्यात हुए थे। अब इनसे जो सृष्टि हुई है उसको भी आप लोग समझलो।२०। आप अर्थात् जल, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्युष, प्रभास ये आठ वसुगण कीर्तित किये गये हैं।२१।

आपस्य पुत्राश्चत्वारः शान्तो वैदण्डएवच ।
शाम्बोऽथमणिवक्त्रश्चयज्ञरक्षाधिकारिणा ।२२

ध्रुवस्य कालपुत्रस्तु वर्चाः सोमादजायत ।
द्रविणो हव्यावाहश्च धरपुत्राबुभौ स्मृतौ ।२३
कल्याणिन्यां ततः प्राणोरमणः शिशिरोऽपि च ।
मनोहराधरात्पुत्रानवापाथ हरेः सुता ।२४
शिवा मनोजवं पुत्रमविज्ञातगतिं तथा ।
अवापाचानलात् पुत्रावग्निप्रायगुणौ ।२५

अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत ।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः ।२६
अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेयस्ततः स्मृतः ।
प्रत्यूषस्यऋषिः (षेः) पुत्रोविभुर्नाम्नाथदेवलः ।
विश्वकर्मा प्रभासस्य पुत्रः शिल्पी प्रजापतिः ।२७
प्रासादभवनोद्यानप्रतिमाभूषणादिषु ।
तडागारामकूपेषु स्मृतः सोमरवर्धकिः ।२८

आपके चार पुत्र समुत्पन्न हुए थे । उनके नाम शान्त, वैदण्ड, शाम्ब और मणिवक्ता ये थे । ये सब यज्ञों की रक्षा करने के अधिकारी हुए थे ।२२। ध्रुव का पुत्र काल हुआ था तथा सोम से वर्चा नामक पुत्र हुआ था । धर के द्रविण और हव्यवाह नाम वाले दो पुत्र हुए थे । ।२३। इसके पश्चात् कल्याणिनी में प्राण, रमण और शिशिर हुए थे । हरि की सुता ने धर से मनोहर सुतों की प्राप्ति की थी ।२४। शिवा मनोजन और अविज्ञात गति नामों वाले ही पुत्रोंको अनलसे जन्मदिया था जो प्रायः अग्नि के समान ही गुणों वाले हुए थे ।२५। अग्नि पुत्र और कुमार शरस्तम्ब में समुत्पन्न हुए थे । उसके पृष्ठज शाख-विशाख और नैगमेय उत्पन्न हुए थे ।२६। कृत्तिकाओं की जो सन्तान थी वही कार्त्तिकेय—इस नाम से कहा गया है । प्रत्यूष ऋषि का जो पुत्र था उसका नाम विभु था । इसके पश्चात् देवल विश्वकर्मा प्रभास का पुत्र हुआ था जो शिल्पी प्रजापति था ।२७। प्रासाद, उद्यान, प्रतिमा और भूषण आदि में तथा तड़ाग, आदाय कूपोंमें वह अमर वर्धकि कहागया है ।२८।

अजैकपादहिर्बुध्न्य विरूपाक्षोऽथ रैवतः ।
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्च सुरेश्वरः ।२९
सावित्रश्च जयन्तश्च पिनाकी चापराजितः ।
एते रुद्राः समाख्याता एकादश गणेश्वराः ।३०

एतेषां मानसानान्तु त्रिशूलवरधारिणाम् ।
कोटयश्चतुराशीतिस्तत्पुत्राश्चाक्षया मता: ।३१
दिक्षु सर्वासु ये रक्षां प्रकुर्वन्ति गणेश्वरा: ।
पुत्रपौत्रसुताश्चैते सुरभी गर्भसम्भवा: ।३२

अज, एकपाद, आदि बुध्न्य, विरूपाक्ष, रैवत, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक-सुरेश्वर-सावित्र-जयन्त-पिनाकी-अराजित—ये रुद्र समाख्यात हुए हैं । एकादश गणेश्वर हुए हैं ।२९-३०। ये मानस त्रिशूलवद के धारण करने वाले है इनकी संख्या चौरासी करोड़हैं और इनके पुत्र तो अक्षय माने गये हैं ।३१। ये गणेश्वर सभी दिशाओं में रक्षा का काम किया करते हैं । पुत्र, पौत्र और ये सुत सभी सुर भी गर्भसे संभूत होने वाले हैं ।३२।

६—कश्यपान्वय वर्णन

कश्यपस्य प्रवक्ष्यामि पत्नीभ्य: पुत्रपौत्रकान् ।
आदितिर्दितिदनुश्चैव अरिष्टासुरसातथा ।१
सुरभिर्विनता तद्वत्ताम्रा क्रोधवशा इरा ।
कद्रू विश्वा मुनिस्तद्वत्तासां पुत्रान्निबोधत ।२
तुषिता नाम ये देवाश्चाक्षुषस्यान्तरे मनो ।
वैवस्वतेऽन्तरे चैते आदित्याद्वादशस्मृता: ।३
इन्द्रोधाना भगस्त्वष्टा मित्रोऽथवरुणोयम: ।
विवस्तान्सवितापूषाअंशुमान्विष्णुरेवच ।४
एते सहस्रकिरणा आदित्या द्वादश स्मृता: ।
मारीचात् कश्यपादाप पुत्रानदितिरुत्तमान् ।५
भृशाश्वस्य ऋषे: पुत्रा देवप्रहरणा:स्मृता: ।
एते देवगणा विप्रा: प्रतिमन्वन्तरेषु च ।६

उत्पद्यन्ते प्रलीयन्ते कल्पे कल्पे तथैव च ।
दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपादिति नः श्रुतम् ।७

श्री सूतजी ने कहा—अब मैं कश्यप ऋषि की पत्नियों से जो पुत्र और पौत्र आदि हुए हैं उनका हाल बतलाने को जा रहा हूँ। कश्यप महर्षिकी पत्नियोंके नाम अदिति-दितिदनु-अरिष्टा सुरसा-सुरभि-विनता ताम्रा-क्रोध वशा-इरा-कद्रू-विश्वा-मुनि-ये थे। अब इन पत्नियोंके उदर से जो पुत्र समुत्पन्न हुए थे उनको भी आप लोग जान लीजिये।१-२। तुषिता नाम वाले जो देवता चाक्षुष मनु के अन्तर में हुए थे ये ही सब वैवस्वत मन्वन्तरमें बारह आदित्य कहे गये हैं।३। उन द्वादश आदित्यों के नाम इन्द्र-धाता भग-त्वष्टा-मित्र-वरुण-यम-विवस्वान-सविता-पूषा अंशुमान-विष्णु-ये हैं ये ही सहस्र किरणों वाले बारह आदित्य कहे गये हैं। मारीच कश्यप महर्षि से अदिति ने परमोत्तम पुत्रों को प्राप्त किया था।४-५। अगस्त्य ऋषि के पुत्र देव प्रहरण कहे गये थे। हे विप्रो ! ये सब देवगण प्रत्येक मन्वन्तर में हुए हैं।६। ये सब उत्पन्न हुआ करते हैं और प्रलीन भी होते रहते हैं और कल्प-कल्प में ऐसा ही होता रहता है। दिति नाम की जो महर्षि कश्यपजी की एक पत्नीथी उसने कश्यप से दो ही पुत्रों की प्राप्ति की थी-ऐसा सुना गया है।७।

हिरण्य कशिपुश्चैव हिरण्याक्षं तथैव च ।
हिरण्यकशिपोस्तद्वज्जातं पुत्रचतुष्टयम् ।८
प्रह्लादश्चानुह्लादश्च संह्लादोह्लाद एव च ।
प्रह्लादपुत्र आयुष्मान् शिविर्बाष्कल एव च ।९
विरोचनश्चतुर्थश्च स बलि पुत्रमाप्तवान् ।
बलेः पुत्रशत त्वासीद्बाणज्येष्ठं ततोद्विजाः ।१०
धृतराष्ट्रस्तथा सूर्यश्चन्द्रश्चन्द्रांशुतापनः ।
निकुम्भनामो गुर्वक्षः कुक्षिभीमो विभीषणः ।११
एवमाद्यास्तु बहवो बाणज्येष्ठा गुणाधिकाः ।

बाण: सहस्रबाहुश्च सर्वास्त्रगणसंयुत: ।१२
तपसा तोषितो यस्य पुरे वसति शूलभृत् ।
महाकालत्वमगमत्साम्यं यश्च पिनाकिन: ।१३
हिरण्याक्षस्य पुत्रोऽभूदुलूक: शकुनिस्तथा ।
भूतसन्तापनश्चैव महानाभस्तथैव च ।१४

उन दिति के पुत्रों के नाम हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष था। हिरण्यकशिपु के उसी भाँति चार पुत्र हुए थे ।८। उन चारों पुत्रों के नाम प्रह्लाद-अनुह्लाद-संह्लाद और आह्लाद ये थे । प्रह्लादके पुत्र आयुष्मान-शिवि-बाष्कल तथा चौथा बिरोचन हुएथे । विरोचनने बाल नामधारी को पुत्र के रूपमें प्राप्त किया था । हे द्विजगण! राजाबालक सौ पुत्र हुए थे जिनमें बाण सबसे बड़ा पुत्र था ।८ १०। धृतराष्ट्र-सूर्य-चन्द्र-चन्द्र चन्द्रांश-तापन-निकुम्भ-गुर्वक्ष-कुक्षिभीम-विभीषण एवं आदि गुणों में सर्वाधिक बहुत से पुत्र थे इनमें बाण ज्येष्ठ था । बाण और सहस्त्र बाहु सभी प्रकार के अस्त्रों के समुदाय से समन्वित थे अर्थात् सभी अस्त्रों के पूर्ण ज्ञाता थे ।११-१२। तपश्चर्या के द्वारा परम सन्तुष्ट हुए भगवान् शूलभृत् जिस के पुर में ही निवास किया करते थे । और जो पिवा की प्रभु के साम्य महा कालत्व को प्राप्त हो गया था । हिरण्याक्ष के पुत्र उलूक-शकुनि-भूत सन्तापन और महाबाम हुए थे ।१३-१४।

एतेभ्य: पुत्रपौत्राणां कोट्य: सप्तसप्तति: ।
महाबला महाकाया नानारूपा महौजस: ।१५
दनु: पुत्रशतं लेभे कश्यपाद्बलदर्पितम् ।
विप्रचित्ति: प्रधानोऽभूद्येषां मध्येमहाबल: ।१६
द्विमूर्द्धा शकुनिश्चैव तथा शंकुशिरोधर: ।
अयोमुख: शम्बरश्च कपिशो नामतस्तथा ।१७
मारीचिर्मेघवांश्चैव इरा गर्भशिरास्तथा ।

विद्रावणश्च केतुश्च केतुवीर्यः शतह्रदः ।१८
इन्द्रजित् सप्तजित चैव वज्रनाभस्तथैव च ।
एकचक्रो महाबाहुर्वज्राक्षस्तारकस्तथा ।१९
असिलोमा पुलोमा च बिन्दुर्बाणो महासुरः ।
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च एवमाद्यादनोः सुताः ।२०
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या शची चैव पुलोमजा ।
उपदानवी मयस्यासीत्तथा मन्दोदरी कुहूः ।२१

इनसे जो पुत्र और पौत्र आदि हुए थे उनकी संख्या सत्तर करोड़ थी। ये महान् बलशाली-महान शरीर के आकार प्रकार वाले, अनेक प्रकार के स्वरूप धारी और महान् ओज वाले सभी हुए थे।१५। दनु ने महा मुनीद्र कश्यप से बल के दर्प से समन्वित एक सौ पुत्रों का जन्म किया था। इन सबके मध्य में महान् बलवान् और प्रधान विप्रचित्ति हुआ था।१६। उन सौ दनु के पुत्रों में कतिपय प्रधान पुत्रों के नाम यहाँ पर बतलाये जा रहे हैं—द्विमूर्धा-शकुनि-शंकुशिरोधर-अयोमुख-शम्बर-कपिश-मारीचि मेघवान्-इरा-गर्भशिरा-विद्रावण-केतु वीर्य्य-ह्रद-इन्द्रजिय सप्तजित-वज्रनाम-एक चक्र-महा बाहु-बज्राक्ष-तारक असिलोमा-पुलोमा-बिन्दु-बाण-महासुर-स्वर्भानु वृषपर्वा एवं आदि दनु के पुत्र हुए थे जो कि प्रमुख थे।१७-२०। स्वर्भानु की कन्या का नाम था और शची थी तथा पलोमजा मय की उपदान थी तथा मंदोदरी और कुहू थी।२१।

शर्मिष्ठा सुन्दरी चैव चन्द्रा च वृषपर्वणः ।
पुलोमा कालका चैव वैश्वानरसुते ह्रिते ।२२
बह्वपत्ये महासत्वे मारीचस्य परिग्रहे ।
तयोः षष्टिसहस्राणि दानवानामभूत्पुरा ।२३
पौलोमान् कालकेयांश्च मारीचोऽजनयत्पुरा ।
अवध्या येऽमराणां वै हिरण्यपुरवासिनः ।२४

चतुर्मुखाल्लब्धवरास्ते हता विजयेन तु ।
विप्रचित्तिः सैंहिकेयान् सिंहिकायामजीजनत् ।२५
हिरण्यकशिपोर्येवैभागिनेया स्त्रयोदश ।
व्यंसः कल्पश्च राजेन्द्र ! नलो वातापिरेव च ।२६
इल्वलो नमुचिश्चैव श्वसृपश्चाजनस्तथा ।
नरकः कालनाभश्च सरमाणस्तथैव च ।२७
कालवीर्यश्च विख्यातो दनुवंशविवर्धनाः ।
संह्लादयस्य तु दैत्यस्यनिवातकवचाः स्मृताः ।२८

वृषपर्वा की शर्मिष्ठा-सुन्दरी और चन्द्रा थीं वैश्वानर की दो सुतायें हुई थीं जिनका नाम पुलोमा और कालका था ।२२। महान् सत्व वाले और बहुत सी सन्तति से समन्वित मारीच का परिग्रह था उन दोनोंके पुरातन कालमें साठ हजार दानव हुए थे।२३। पहले मारीच ने पौलोम और कालकेयोंकी जन्म दिया था । जो ऐसे बलशाली थे कि ये हिरण्य पुरमें निवास करने वाले सब देवगणों के द्वारा वध करने के योग्य नहीं थे ।२४। वे सब चार मुखों वाले ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त करने वालेथे विजय के द्वारा हत हुए थे। विप्रचित्ति सिंहिका में संहिकेयों को जन्म ग्रहण कराया था । जो हिरण्य कशिपुके वैभागी थे वे तेरह हुए थे। हे राजेन्द्र ! उनके नाम ये हैं—व्यंस, कल्प, नल, वातापि, इल्वल, नमुचि श्वसृप, अजन, नरक, कालनाभ, सरमाण और कालवीर्य तथा विख्यात ये दनु के वंश के वर्धन करने वाले हुए हैं । जो संह्लाद नामधारी दैत्य था उसके निवात कवच कहे गये हैं ।२४-२८।

अवध्या सर्वदेवानां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
ये हता भर्गमाश्रित्य त्वर्जुनेन रणाजिरे ।२९
षट्कन्या जनयामास ताम्रा मारीचबीजतः ।
शुकीश्येनीचभासीचसुग्रीवीगृध्रिकाशुचिः ।३०
शुकी शुकानुलूकांश्च जनयामास धर्मतः ।
श्येनी श्येनांस्तथा भासी कुररानप्यजीजनत् ।३१

गृध्री गृध्रान् कपोतांश्च पारावतविहङ्गमान् ।
हंससारसकौञ्चांश्च प्लवान् शुचिरजीजनत् ।३२
अजाश्वमेषोष्ट्रखरान् सुग्रीवो चाप्यजीजनत् ।
एषताम्रान्वय: प्रोक्तो विनतायांनिबोधत ।३३
गरुड: पततांनाथो अरुणश्च पतत्रिणाम् ।
सौदामिनी तथा कन्या येयं नभसि विश्रुता ।३४
सम्पातिश्च जटायुश्च अरुणस्य सुताबुभौ ।
सम्पातिपुत्रो बभ्रुञ्च शीघ्रगश्चापि विश्रुत: ।३५

ये सभी महान बल विक्रमशाली थे और ऐसे बलिष्ठ थे कि समस्त देवगण तथा गँधर्व-उरग और राक्षस भी इनका बध नहीं कर सकते थे । इनको रणक्षेत्र में मार्ग का समाश्रय ग्रहण करके अर्जुन ने ही निहत किया था ।२६। मारीच के बीर्य से ताम्रा ने छै कन्याओं का प्रसव किया था । उन छैओं कन्याओ के नाम ये थे—शुकी, श्येनी,भासी सुग्रीबी, गृध्रिका, शुचि ।३०। शुकी ने शुकों को तथा उलूकों को धर्म से जनम कराया था । श्येनी ने श्येनों को प्रसूत किया था और भासी ने कुररों को सम्भूत किया था ।३१। गृध्री ने गिद्धों को और कबूतरों पारावत बिहङ्गमों, हंस, सारस, क्रौचों को जन्म दिया था तथा शुचि ने प्लवों को समुत्पन्न किया था ।३२। सुग्रीवी नाम धारिणी ने अज, अश्व, मेष, उष्ट्र और खरों (गधों) को जन्म ग्रहण कराया था । यहाँ तक यह ताम्र का बंश वर्णित किया गया है अब यहाँ से आगे आप सब लोग बिनता में समुत्पत्ति हुई थी उसका भी ज्ञान प्राप्त करलो ।३३। पतनशील बपिक्षयों का स्वामी गरुड़ और पतत्रियों में अरुण और सौदामिनी नाम वाली एक कन्या जो नभ में विश्रुत है । अरुणके सम्पाति और जटायु दो पुत्र हुए थे । सम्पाति का पुत्र बभ्रु था और शीघ्रगामी प्रसिद्ध हैं ।३४-३५।

जटायुष: कर्णिकार: शतगाती च विश्रुतौ ।
सारसो रज्जुबालश्चभेरुण्डश्चापि तत्सुता: ।३६

तेषामन्तमभवत् पक्षिणां पुत्रपौत्रकम् ।
सुरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणामभवत्पुरा ।३७
सहस्र शिरसाङ्कद्रू: सहस्रञ्चापि सुव्रत ! ।
प्रधानास्तेषु विख्याताः षड्विंशतिररिन्दम ।३८
शेषवासुकिकर्कोटशङ्खैरावतकम्बलाः ।
धनञ्जयमहानीलपद्माश्वतरतक्षकाः ।३९
एलापत्रमहापद्मधृतराष्ट्रबलाहकाः ।
शङ्खःपाल महाशङ्ख-पुष्पदन्ष्ट्र-शुभाननाः ।४०
शंकुरोमा च बहुलो वामनः पाणिनस्तथा ।
कपिलोदुर्मुखश्चापि पतञ्जलिरितिस्मृताः ।४१
एषामनन्तमभवत् सर्वेषां पुत्रपौत्रकम् ।
प्रायशो यत् पुरादग्धं जनमेजयमन्दिरे ।४२

जटायु के पुत्र कर्णिकार और शतगामी ये दो परम प्रसिद्ध हुए थे । सारस, रज्जुबा और भेरुण्ड भी उसी के पुत्र थे ।३६। उनके पुत्र और पौत्र जो हुए थे वे पक्षियों के अनन्त ही हुए थे । पुरातन समयमें सुरसाके एक सहस्र सर्प हुए थे । हे सुव्रत ! कद्रू के सहस्र शिरवालों के एक सहस्त्र सर्प हुएथे किन्तु हे अरिंदम! उनमें परम प्रमुख छब्बीस ही विख्यात हुए हैं।३७।३८। उन छब्बीस प्रकारके प्रधान सर्पोंके नाम तथा भेद इस प्रकार हैं—शेष, वासुकि, कर्कोट, शंख, ऐरावत, कम्बल, धनञ्जय, महानील, पद्म, अश्वतर, तक्षक, एलापत्र, महापदम, धृतराष्ट्र, बलाहक, शंखपाल, महाशंख, पुष्पदंष्ट्र, शुभानम, शंकुरोमा, बहुल, वामन, पाणिन, कपिल, दुर्मुख और पतञ्जलि—इन नामों से छब्बीस कहे गये हैं । इन सबके पुत्र और पौत्र जो हुए वे सबके अनन्त ही हुए थे । बहुधा जनमेजय ने अपने मंदिर में सर्पों के ध्वंस करने वाले यज्ञ में प्राचीन काल में दग्ध कर दिये थे ।३९-४२।

रक्षोगणं क्रोधवशा स्वनामानमजीजनत् ।
दंष्ट्रिणां नियुतं तेषां भीमसेनादगात्क्षयम् ।४३

रुद्राणाञ्च गणं तद्वद्गोमहिष्यो वरांगना: ।
सुरभिर्जनयामास कश्यपात् संयतव्रता ।४४
मुनिर्मुनीनाञ्च गणं गणमप्सरसां तथा ।
तथा किन्नरगन्धर्व्वानरिष्टाऽजनयद्बहून् ।४५
तृणवृक्षलतागुल्ममिरा सर्वमजीनत् ।
विश्वा तु यक्षरक्षांसि जनयामास कोटिश: ।४६
तत एकोनपञ्चाशन्मरुत: कश्यपाद्दिति: ।
जनयामास धर्म्मज्ञान् सर्वानमरबल्लभान् ।४७

क्रोधवशा नाम वाली पत्नी ने अपने नाम वाले राक्षसों के गण को जन्म दिया था। दाढ़ वालों उनके संख्यामें नियुत ही हुए थे किन्तु भीमसेन से उनका क्षय हो गया ही था।४३। उसी भाँति सुरभिनाम धारणी कश्यप की पत्नीसे कश्यप ऋषि से ही रुद्रोंके गण-गौ-भैंस और वराङ्गनाओं का जन्म संयत व्रत वाली होकर दिया था ।४४। मुनि नाम की पत्नी ने मुनियोंके गण तथा अप्सराओं के गण को उत्पन्न किया था। अरिष्टा पत्नी ने बहुके किनरों और गंधर्वों को समुत्पन्न किया था।४५। इरा ने ये सभी वृक्ष तृण, लता और गुल्मों को जन्म दिया था। विश्वा नाम वाली कश्यपकी पत्नी ने करोड़ों ही यक्षों और राक्षसों को उत्पन्न किया था।४६। इसके अनन्तर दिति ने कश्यपजीसे गर्भ धारण करके उनचास मरुद्गणोंको प्रसूत कियाथा जो परम धर्मज्ञ थे और सभी देवताओं के परम प्रिय भी थे।४७।

७—आधिपत्याभिषेचन

आदिसर्गश्च यः सूत ! कथितो विस्तरेण तु ।
प्रतिसर्गञ्चयेयेषामधिपास्तान् वदस्व नः ।१
यदाभिषिक्तः सकलाधिराज्ये पृथुर्धरित्र्यामधिपो बभूव ।
तदौषधीनामधिपं चकार यज्ञव्रतानां तपसाञ्च चन्द्रम् ।२
नक्षत्र-तारा-द्विज-वृक्ष-गुल्म-लता-वितानस्य च रुक्मगर्भः ।
अपामधीशं वरुणं धनानां राज्ञां प्रभुं वैश्रवणञ्च तद्वत् ।३
विष्णुं रवीणामधिपं वसूनामग्निञ्च लोकाधिपतिश्चकार ।
प्रजापतीनामधिपं च दक्षञ्चकार शक्रं मरुतामधीशम् ।४
दैत्याधिपानामथ दानवानां प्रह्लादमीशं यमं पितृणाम् ।
पिशाचरक्षः-पशु-भूत-यक्ष-वेतालराजन्त्वथ शूलपाणिन् ।५
प्रालेय शैलञ्च पतिं गिरीणामीशं समुद्रं ससरिन्नदानाम् ।
गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणामीशं पुनश्चित्ररथं चकार ।६
नागाधिपं वासुकिमुग्रवीर्यं सर्पाधिपं तक्षकमादिदेश ।
दिशागजानामधिपञ्चकार गजेन्द्रमैरावतनामधेयम् ।७

ऋषिगण ने कहा—हे सूत जी ! आपने यह आदि सर्ग तो बड़े ही विस्तार के साथ वर्णित कर दिया है । अब इनके प्रत्येक सर्ग में जिनके जो अधिक हुए हैं उनका भी वर्णनकर हमको बतलाने की कृपा कीजियेगा ।१। महामुनीन्द्र श्री सूतजी ने कहा—जिस समय में सम्पूर्ण राज्य में इस धरित्री में राजा पृथु अधिप का अभिषेक हुआ था उसी समय ये समस्त औषधियों का तथा यज्ञव्रत वाले तपोंका अधिप चन्द्रमा को बनाया गया था ।२। नक्षत्र, तारा, द्विज, वृक्ष, गुल्म, लता, वितान का रुक्म गर्भ को अधिप नियुक्त किया था सम्पूर्ण जलों को अधीश वरुण को बनाया गया था और उसी भाँति समस्त प्रकार के धनों का तथा राजाओं का स्वामी कुबेर को बनाया गया था ।३। रवियों का सबका अधिप विष्णु और समस्त वस्तुओं का लोकाधिपत्ति अग्निदेव

को किया था प्रजापतियों का प्रधान अधिप दक्ष को और मरुतों का स्वामी इन्द्र को बनाया गया था ।४। दैत्याधिपों का तथा दानवों का स्वामी प्रह्लाद को किया गया था और सब पितृगणों का अधीश यम को नियुक्त कियाथा । पिशाच, राक्षस, राक्षस, पशु, भूत, यक्ष, वेताल इन सबका राजा भगवान शूलपाणि को बनाया गया था ।५। समस्त गिरियों का अधिप प्रालेय गिरि (हिमालय) का बनाया था तथा सब सर-सरित और नदों का अधीश्वर समुद्र को नियुक्त किया गया था । गन्धर्व-विद्याधर और किन्नरों का स्वामी फिर चित्ररथ को ही किया गया था ।६। जितने भी नाग नामधारी थे उनका अधीश उग्रवीर्य वासुकि को किया था और सर्पों का स्वामी तक्षक को नियुक्त किया था । दिशाओं का स्वामी ऐरावत नामधेय वाले गजेन्द्र को किया था ।७।

सुपर्णमीशम्पततामथाश्वराजानमुच्चैः श्रवसञ्चकार ।
सिंहं मृगाणां वृषभं गवाञ्च वृक्षं पुनः सर्ववनस्पतीनाम् ।८
पितामहः पूर्वमथाभ्यषिञ्चेतान् पुनः सर्वदिशाधिनाथान् ।
पूर्वेण दिक्पालमथाभ्यषिञ्चन्ना सुधर्माणमरातिकेतुम् ।९
ततोऽधिपं दक्षिणतश्चकार सर्वेश्वरं शङ्खपदाभिधानम् ।
सकेतुमन्तञ्च दिगीशमीशश्चकार-पश्चाद्भुवनाण्डगर्भः ।१०
हिरण्यरोमाणमुदग्दिगीशं प्रजापतिर्देवसुतञ्चकार ।
अद्यापि कुर्वन्ति दिशामधीशाःशत्रून् दहन्तस्तु भुवोऽभिरक्षाम्।११
चतुर्भिरेभिः पृथुनामधेयो नृपोऽभिषिक्तः प्रथमं पृथिव्याम् ।
गतेऽन्तरे चाक्षुषनामधेये वैवस्वताख्ये च पुनः प्रवृत्ते ।१२
प्रजापतिः सोऽस्य चराचरस्य बभूव सूर्यान्वयवंश चिन्हः ।१३

जो पतनशील पक्षिगण थे उनका राजा सुपर्ण को किया था और सभी प्रकार के अश्वों का राजा उच्चैः श्रवा नाम वाले को बना दिया था । जितने भी प्रकार के वन्य पशु हैं उन सबका शिरोभूषण स्वामी सिंह बनाया गया था—गो जाति का अधिक वृषभ को और सम्पूर्ण

वनस्पतियों का अधीश वृक्ष को बनाया गया था ।८। पितामह ने सबसे पूर्व इनको अभिषिक्त किया और फिर उन्होंने ही इन समस्त दिशाओं के अधिनाथों का अभिषिक्त किया था । पूर्व दिशा में दिक्पाल सुधर्मा नाम वाले को बनाया था जो अरानि केतु हैं ।९। इसके अनन्तर दक्षिण दिशा का पालक अधीश्वर शंखपद अभिधान् वाले सर्वेश्वर को बनाया था । फिर भुवनाण्ड गर्भ ने सकेतुमान ईश को दिगीश किया था ।१०। प्रजापति ने उत्तर दिशा का दिक्पाल स्वामी देवसुत हिरण्य रोमा को बनाया था । ये सब दिक्पाल परम पुरातन समय में नियुक्त किये गये थे किन्तु वे तभी से आज तक भी दिशाओं के अधीश्वर शत्रुओं का दाह करते हुए इस भू मण्डल की रक्षा कर रहे हैं।११। इन चारों के द्वारा पृथु नाम वाला राजा सर्व प्रथम पृथ्वी में अभिषिक्त किया गया था । जब चाक्षुष नाम वाला मन्वन्तर समाप्त हो गया था और वैवस्वत नाम वाला मन्वन्तर प्रवृत्त हो गया था उस समय में इस चराचर सम्पूर्ण विश्व का सूर्यान्वय वंश के चिन्ह वाला प्रजापति हुआ था ।१२-१३।

८—मन्वन्तर वर्णन

एवं श्रुत्वा मनुः प्राह पुनरेव जनार्दनम् ।
पूर्वेषाञ्चरितं ब्रूहि मनूनां मधुसूदन ।१
मन्वन्तराणि सर्वाणि मनूनां चरितञ्च यत् ।
प्रमाणञ्चैवकालस्यतच्छृणुष्वसमाहितः ।२
एकचित्तः प्रशान्तात्मा शृणु मार्तण्डनन्दन ।
यामनामपुरादेवाआसन् स्वायम्भुवान्तरे ।३
सप्तै ऋषयः पूर्वे ये मरीच्यादयः स्मृताः ।
आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च सहः सवन एव च ।४

ज्योतिष्मान्द्युतिमान् हव्योमेधामेधा तिथिर्वसुः ।
स्वायम्भुवस्यास्यमनोर्दशैतेवंशवर्द्धनाः ।५
प्रतिसर्गमिमे कृत्वा जग्मुर्यत्परमम्पदम् ।
एतत्स्वायम्भुवंप्रोक्तं स्वारोचिषमतः परम् ।६
स्वारोचिषस्य तनयाश्चत्वारो देववर्चसः ।
नभो नभस्यप्रसृतिभानवः कीर्तिवर्द्धनाः ।७

श्री सूतजी ने कहा—इस प्रकार से सबका श्रवण करके मनु ने पुनः भगवान् जनार्दन से कहा था कि हे मधुसूदन ! अब आप परमानुग्रह करके पूर्व में होने वाले मनुगण का चरित हमारे सामने वर्णित कीजिए ।१। मत्स्य भगवान् ने कहा अब आप सब लोग पूर्ण रूप से समाहित हो जाइये और श्रवण करिये । मैं सम्पूर्ण मन्वन्तर और मनुओं के चरित्र तथा उनके कालका प्रमाण सभीकुछ बतलाता हूँ।२। हे मार्त्तण्ड नन्दन ! एकनिष्ठ चित्त वाले और परम प्रशान्त आत्मा वाले होकर आप सुनिये । पहिले परम पुरातन समयमें यामा नाम वाले स्वायम्भुव मन्वन्तर में देवता हुए थे ।३। मरीचि आदि पूर्व में ये ही सप्त ऋषि हुए थे । आग्नीध्र-अग्नि बाहु-सह-सवन-ज्योतिष्मान् द्युतिमान्-हव्य-मेधा-मेधातिथि—वसु ये दश ही स्वायम्भुव मनु के वंश के वर्धन करने वाले हुए हैं अर्थात् इन्हीं ने वंश को बढ़ाया था ।४-५। प्रत्येक सर्ग में ये परम पदको प्राप्त हुये थे—यही स्वायम्भुव मंवन्तर का चरित है जो तुमको बता दिया गया है । अब इसके आगे स्वारोचिष मंवन्तर आता है ।६। स्वारोचिष मनु के देवों के समान वर्चस् वाले चार पुत्र हुए थे उनके शुभ नाम ये हैं—नभ—नभस्य—प्रसृति और भानु । ये सभी कीर्त्ति की वृद्धि करने वाले थे ।७।

दत्तोनिश्च्यवनस्तम्बः प्राणः कश्यप एव च ।
और्वो बृहस्पतिश्चैवसप्तैतेऋषयः स्मृताः ।८
देवाश्च तुषितानामस्मृताः स्वारोचिषेऽन्तरे ।

हवीन्द्रः सुकृतोमूर्तिरापोज्योतिरयस्मयः ।९
वसिष्ठस्य सुताः सप्त ये प्रजापतयः स्मृताः ।
द्वितीयमेतत्कथितं मन्वन्तरमतः परम् ।१०
औत्तमीयं प्रवक्ष्यामि तथा मन्वन्तरं शुभम् ।
मनुर्नामौत्तमिर्यत्र दशपुत्रानजीजनत् ।११
ईषऊर्श्च तर्जश्च शुचिः शुक्रस्तथैव च ।
मधुश्च माधवश्चैव नभस्योऽथ नभास्तथा ।१२
सहः कनीयानेतेषामुदारः कीर्त्तिवर्द्धनः ।
भावनास्तत्र देवाः स्युरूर्जाः सप्तर्षयः स्मृताः ।१३
कौकुरुण्डिश्च दाल्भ्यश्च शंखः प्रवहणः शिवः ।
सितश्चसस्मितश्चैवसप्तैतेयोगवर्द्धना ।१४

स्वारोचिष मंवन्तर में दत्त, निश्च्यवन स्तम्ब, प्राण, कश्यप, और्व और बृहस्पति ये सात ही सप्तर्षि कहे गये हैं ।८। स्वारोचिष मंवन्तर में देवता तो तुषित नाम वाले ही थे । हवीन्द्र, सुकृत, मूर्त्ति, आपज्योति, अयसमय ये सात वसिष्ठ ऋषि के पुत्र ही उस समय में प्रजापति कहे गए हैं । यह दूसरा जो स्वारोचिष नाम वाला मंवन्तर था उसका भी वर्णन कर दिया है । इससे आगे तीसरा मंवन्तर का वर्णन करते हैं । इसके समय में औत्तमि नाम वाले मनु ने दश पुत्रोंको जन्म ग्रहण कराया था ।९-११। उन दशों पुत्र के शुभ नाम ये हैं—ईष, ऊर्ज, तर्ज, शुचि, शुक्र, मधु, माधव, नभस्य, नभा और सह । इनमें कनीयान् जो था वह उदार और कीर्त्ति वर्धन था । उस औत्तमीय मंवन्तर में मानना वाले देवगण थे और ऊर्ज सप्तर्षि हुए थे ।१२-१३। करैकुरुण्डि, दल्भ्य, शङ्ख, प्रवहण, शिव, सित, सस्मित ये ही सात योग की वृद्धि करने वाले थे ।१४।

मन्वन्तरं चतुर्थं तु तामसं नाम विश्रुतम् ।
कवि पृथुस्तथैवाग्निरकपिः कपिरेव ।१५

तथैव जल्पधीमानो मुनयः सप्तनामतः ।
साध्या देवगणा यत्र कथितास्तामसेऽन्तरे ।१६
अकल्मषस्तथा धन्वी तपोमूलस्तपोधनः ।
तपो रति तपस्यश्च तपोद्युतिपरन्तपौ ।१७
तपो भागी तपो योगो धर्माचाररताः सदा ।
तामसस्य सुताः सर्व्वदशवंशविवर्द्धनाः ।१८
पञ्चमस्य मनोस्तद्वद्रैवतस्यान्तरं शृणु ।
ऐन्द्रबाहुः सुबाहुश्च पर्जन्यः सोमपो मुनिः ।१९
हिरण्यरोमा सप्ताश्वः सप्तते ऋषयः स्मृताः ।
देवाश्चाभूतरजसस्तथाप्रकृतयः शुभाः ।२०

तीन मन्वन्तरों का वर्णन किया जा चुका है अब चौथे मंवन्तर को बतलाया जाता है जिसका तामस नाम प्रसिद्ध है । कवि, पृथ,अग्नि अकपि, कपि,अल्प और धीमान् ये ही इन नामों वाले सात मुनिगण और साध्य नाम वाले देवगण इस तामस मंवन्तर में हुए थे ।१५-१६। तामस मनु के भी दश पुत्र हुए थे जो सभी वंश के वर्धन करने वाले थे । उनके नाम—अकल्मष, धन्वी, तपोमूल, तपोधन, तपोरति, तपस्य तपोधुति, परंतप, तपोभागी, तपोयोगी ये हैं और ये सदा धर्म्म के आचार में ही रति रखने वाले थे ।१७-१८। इसके अनन्तर अब उसी प्रकारसे पञ्जयमनु रैवत नाम बालक अन्तर आप लोग श्रवण करिए । इस पाँचवें मंवन्तर में ऐन्द्रबाहु-सुबाहु-पर्जन्य-मुनि-हिरण्य रोमा और सप्ताश्च ये सात सप्तर्षि कहे गए थे । देवता आभूत रजस हुए थे तथा शुभ प्रकृतियाँ थीं ।१९-२०।

अरुणस्तत्वदर्शीचधृतिमान्हव्यवान्कविः ।
युक्तोनिरुत्सुकः सत्वोनिर्मोहोऽथप्रकाशकः ।२१
धर्मवीर्यबलोपेता दशैते रैवतात्मजाः ।
भृगुः सुधामा विरजाः सहिष्णुर्नाद एव च ।२२

विवस्वानतिनामा च षष्ठे सप्तर्षयोऽपरे ।
चाक्षुषस्यान्तरे देवालेखा नाम परिश्रुताः ।२३
ऋभवोऽथ ऋभाद्याश्चवारिमूलादिवौकसः ।
चाक्षुषस्या तरेप्रोक्तादेवानांपञ्चयोनयः ।२४
रुरुप्रभृतयस्तद्वच्चाक्षुषस्य सुता दश ।
प्रोक्ताः स्वायम्भुवे वंशे ये मयापूर्वमेव तु ।२५
अन्तरं चाक्षुषं चैतन्मया ते परिकीर्त्तितम् ।
सप्तमं तत्प्रवक्ष्यामि यद्वैवस्वतमुच्यते ।२६
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च कश्यपोगौतमस्तथा ।२७
भरद्वाजस्तथायोगीविश्वामित्रः प्रतापवान् ।२८

अरुण-तत्वदर्शी-धृतिमान्-हव्यवान्-कवि-युक्त-निरुत्सुक-सत्व-निर्मोह प्रकाशक इन नामों वाले धर्म तथा वीर्यबल से समन्वित रैवत मनु के दश पुत्र समुत्पन्न हुए थे । भगु, सुधामा, विरजा, सहिष्णु नाद विवस्वाम, अतिनामा ये छठवें मंवन्तर में दूसरे सप्तर्षि गण थे । चाक्षुष मंवन्तर में लेखा नाम वाले देवता हुए थे जो पूर्णतया परिश्रुत हैं।२१-२३। चाक्षुप मंवन्तर में देवों की पाँच योनियाँ बतलाई गयी हैं—ऋभ ऋभाद्य—वारिमूल और दिवौकरन ये उनके नाम हैं ।२४। उसी प्रकार से चाक्षुष मनु के रुरु प्रभृति वंश पुत्र समुत्पन्न हुए थे जिनका वर्णन मैंने स्वायम्भुव के वंश में पहिले ही कर दिया है ।२५। इसके अनंतर मैंने यह चाक्षुष मन्वन्तर परिकीर्तित किया है । अब सातवाँ मन्वन्तर बतलाते हैं जिसको वैवस्वत मन्वन्तर कहा जाता है । इस मन्वन्तर में अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, भरद्वाज तथा प्रतापवान् योगी विश्वामित्र और जय हानि ये सात इस वर्तमान समय में सात महर्षि हैं । ये सब धर्म की व्यवस्था करके परम पद को चले जाते हैं ।२६-२८।

साध्याविश्वेचरुद्राश्चामरुतोवसवोऽश्विनौ ।
आदित्याश्चसुरास्तद्वत्सप्तदेवगणाः स्मृताः ।२९

इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चास्य दशपुत्राः स्मृता भुवि ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु सप्त सप्तमहर्षयः ।३०
कृत्वा धर्म्मव्यवस्थानं प्रयन्तिपरमम्पदम् ।
सावर्ण्यस्यप्रवक्ष्यामिमनोर्भावितथान्तरम् ।३१
अश्वत्थामा शरद्वांश्चकौशिकोगालवस्तथा ।
शतानन्दः काश्यपश्चरामश्चऋषयः स्मृताः ।३२
धृतिर्वरीयान् यवसः सुवर्णो वृष्टिरेव च ।
चरिष्णुरीड्यः सुमतिर्वसुः शुकश्च वीर्यवान् ।३३
भविष्यादशसावर्णेर्मनोः पुत्राः प्रकीर्त्तिताः ।
रौच्यादयस्तथान्येऽपिमनवः सम्प्रकीर्त्तिताः ।३४
रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नाम भविष्यति ।
मनुर्भूतिसुतस्तद्वद्भौत्योनामभविष्यति ।३५

इस मन्वन्तरमें साध्य, विश्वेदेवा, रुद्र, मरुद्गण, वसुगण, अश्विनी कुमार, आदित्य और सुर ये उसी भाँति सात देवगण कहे गये हैं ।२९। इस वैवस्वत मनुके इक्ष्वाकु जिनमें प्रमुख थे ऐसे दस पुत्र इस भूमण्डल में बताए गए हैं । इस रीति से सभी मन्वन्तरों में सात-सात ही महर्षि हुए हैं ।३०। ये सब महर्षि इसीलिए हुआ करतेहैं कि अपने-२ मन्वन्तर में धर्म की ठीक व्यवस्था कर देवें । इसके उपरान्त ये सप्तर्षि परम पद को चले जाया करते है । अब भावी मनु सावर्ण्य का अन्तर भी हम बतला दिये देते हैं । इस भावी मन्वन्तर में भी उसी भाँति सात महर्षियों का गण होगा । अश्वत्थामा, शरद्वान्, कौशिक, गालव, शतानन्द कश्यप और राम ये सात ऋषि कहे गए हैं । इस मनु के भी दश पुत्र हैं । उनके नाम धृति, वरीयान् यवस, सुवर्ण, वृष्टि, चरिष्णु, ईड्य, सुमति, वसु, शुक्र जो महान् वीर्य वाला है । ये आगे होने वाले सावर्णि मनु के दस पुत्र होंगे जिनके नाम यहाँ पर कीर्त्तित कर दिए गए हैं । इनके अतिरिक्त रौच्य प्रभृति अन्य भी मनु बतलाये गये हैं । रुचि

नामधारी प्रजापति का पुत्र रौच्य नाम वाला होगा। इसी प्रकार से भविष्य में भूतिकी पुत्र एक भौत्य नाम वाला भी मनु होगा।३१-३५

ततस्तु मेरुसावर्णिर्ब्रह्मसूनुर्मनुः स्मृतः।
ऋतश्च ऋतधामाचविष्वक्सेनोमनुस्तथा।३६
अतीतानागश्चैते मनवः परिकीर्तिताः।
षडूनं युगसाहस्त्रमेभिर्व्याप्तं नराधिप।३७
स्वेस्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्य सचराचरम्।
कल्पक्षये विनिर्वृत्ते मुच्यन्तेब्रह्मणा सह।३८
एतेयुगसहस्रान्तेविनश्यन्तिपुनः पुनः।
ब्रह्माद्याविष्णुसायुज्यंयातायास्यन्ति वैद्विजाः।३९

इनके पश्चात् ब्रह्मा का पुत्र मेरु सावर्णि मनु बताया गया है। ऋत, ऋतधामा, विष्वकसेन भी मनु कहे गये हैं जो सभी आगे समागत समय में ही होंगे। जो मनु जब तक हो चुके हैं वे अतीत मंवन्तर और जो अब यहाँ से आने वाले मनु हैं उन सबको परिकीर्त्तित कर दिया गया है। नराधिप ! इन मनुओं के द्वारा छै कम एक सहस्र युगों का समय व्याप्त होता हैं। ये सभी मनु अपने-२ अंतरमें इस सम्पूर्ण चराचर विश्व का समुत्पादन करके नव कल्प का क्षय होता है उस समय में कल्प की विनिवृत्ति में ब्रह्मा के साथ ही मुच्यमान हो जाया करते हैं। इसी प्रकार से ये सब एक सहस्र युगों के अंत में बारम्बार विनष्ट हो जाया करते हैं। द्विजगण ! ब्रह्मा आदि सभी विष्णु भगवान् के सायुज्य में गये हुए चले जायेंगे।३६-३९।

९—पृथ्वीदोहन

बहुभिर्धरणी भुक्ता भूपालैः श्रूयतेपुरा।
पार्थिवाः पृथिवीयोगात्पृथिवीकस्य योगतः।१

किमर्थञ्चकृतासंज्ञाभूमेः किंपारिभाषिणी ।
गौरितीयञ्चविख्यातासूत ! कस्माद्ब्रवीहिनः ।२
वंशे स्वायम्भुवस्यासीदङ्गो नाम प्रजापतिः ।
मृत्योस्तुदुहितातेनपरिणीतासुदुर्मुखा ।३
सुनीथा नाम तस्यास्तु वेनो नामसुतः पुरा ।
अधर्म्मनिरतश्चासीद्बलवान्वसुधाधिपः ।४
लोकेऽप्यधर्म्मकृज्जातः परभार्यापहारकः ।
धर्माचारस्य सिद्ध्यर्थंजगतोऽथमहर्षिभिः ।५
अनुनीतोऽपि न ददावनुज्ञां स यदा ततः ।
शापेन मारयित्वैनमराजकभयार्दिताः ।६
ममन्थु ब्राह्मणास्तस्यवद्देहमकल्मषा ।
पितुरशस्य चांशेन धार्मिको धर्म्मचारिणः ।७

महर्षि गण ने कहा—यह सुना जाता है कि पहले बहुत से भूपालों ने इस पृथ्वी का भोग किया है। इस पृथ्वी के नाम से राजाओं को इसका अधिप या भोग करने वाले होने से पार्थिव कहा गया है। पृथ्वी का जो यह नाम हुआ है वह किसके योग से पड़ा है ? भूमि की यह संज्ञा (पृथ्वी) किसलिए हुई है और क्या परिभाषण करने वाली है अर्थात् इससे क्या बतलाया जाता है। इस धरणी का 'गौ' यह भी नाम कहा जाता है और यह नाम भी परम विख्यात है—यह इनका नाम किस कारण से पड़ा है यह कृपा करके आप हमको बतला दीजिए ।१-२। सूतजी ने कहा—स्वायम्भुव मनु के वंश में अङ्ग नाम वाला प्रजापति हुआ था। उसने मृत्यु की दुहिता सुदुर्मुखा से परिणय किया था ।३। उसका सुनीथा नाम था और पहिले वेन नाम का सुत था। यह वेन सर्वदा अधर्म में ही निरत रहा करता था और महान् बलवान् वसुधा का स्वामी था ।४। यह लोक में भी अधर्म के करने वाला हुआ था और यह पराई भार्या के अपहरण करने वाला था। जगत् के

धर्माचार की सिद्धि के लिए महर्षियों के द्वारा इसको अनुनीत भी किया गया था तो भी जिस समय में अनुज्ञा नहीं दी तो ऋषिगण ने शाप देकर उसके द्वारा इसका हनन कर दिया था और फिर वे अराजकता के भय से अर्दित हो गए थे ।५-६। कल्मष से रहित ब्राह्मणों ने बलपूर्वक उसके देह का मंथन किया था । मंथन की हुई उसकी काया से म्लेच्छ जाति वाले लोग नियमित हुए ।७।

शरीरे मातुरंशेन कृष्णाञ्जनसमप्रभाः ।
पितुरंशस्य चांशेन धार्मिको धर्म्मचारिणः ।८
उत्पन्नो दक्षिणाद्धस्तात्स धनुः सशरोगदी ।
दिव्यतेजोमयवपुः सरत्नकवचाङ्गदः ।९
पृथोरेवा भवद्यत्नात् ततः पृथुरजायत ।
स विप्रैरभिषिक्तोऽपितपः कृत्वा सुदारुणम् ।१०
विष्णोर्वरेण सर्वस्य प्रभुत्वमगमत्पुनः ।
निःस्वाध्यायवषट्कारंनिर्धर्मं वीक्ष्य भूतलम् ।११
दग्धुमेवोद्यतः कोपाच्छरेणामितविक्रमः ।
ततो गोरूपमास्थाय भूः पलायितुमुद्यता ।१२
पृष्ठतोऽनुगतस्तस्याः पृथुर्दीप्तशरासनः ।
ततः स्थित्वैकदेशे तु किं करोमीतिचाब्रवीत् ।१३
पृथुरप्यवदद्वाक्यमोप्सितं देहि सुव्रते ।
सर्वस्य जगतः शीघ्रं स्थावरस्य चरस्य च ।१४

माता के अंश से शरीर में वे कृष्ण अञ्जन के समान प्रभा वाले हुए थे पिता के अंश के द्वारा जो धर्मचारी था धार्मिक हुआ था ।८। दाहिने हाथ से धनुष-शर के सहित गदाधारी समुत्पन्न हुआ था उस समुद्भूत व्यक्ति के शरीर का परम दिव्य तेज था और उसका वह दिव्य तेज पूर्ण शरीर रत्न जटित कवच और अङ्गदों से विभूषित था ।९। यह अधिक यत्न से समुत्पन्न हुआ था इसलिए यह पृथु ही हुआ

था। विप्रों के द्वारा राज्यासन पर उसका अभिषेक भी किया गया था तो भी वह सुदारुण तप करके भगवान् विष्णु के वरदान से इस समस्त भू-मण्डल का प्रभु बन गया था। उसने भूमिपति होकर देखा था कि यह सम्पूर्ण भूतल स्वाध्याय वषट्कार और धर्म से रहित हो गया है। ।१०-११। उस अपरमित बल विक्रमशाली राजा ने जब भूतल का धर्म शून्य देखा तो उसे बड़ा भारी क्रोध हो गया था और कोप से शर के द्वारा उसको दग्ध कर देने को उद्यत हो गया था। जब राजा का इस प्रकार का भीषण क्रोधावेश देखा तो भूमि गो रूप में समास्थित होकर भय से वहाँ से भागने को उद्यत हो गयी थी ।१२। दीप्त शरासन वाले महाराज पृथु भी उसी के पीछे-पीछे अनुगमन करने लगे थे। इसके उपरान्त जब उसने देखा था राजा पीछे-पीछे खदेड़ते हुए ही बराबर चले आ रहे हैं तो वह एक स्थान में घबड़ाकर स्थित हो गई थी और राजा से बोली मैं क्या करूँ? मुझे आप ही बतलायें ।१३। पृथु ने भी यही कहा था—हे सुव्रते ! जो भी सबके अभीष्ट पदार्थ हैं उनको तुम दो। स्थावर और चर सम्पूर्ण जगत्का अभीष्ट तुम्हें देना चाहिए।१४

तथैव सा ब्रवीद्भूमिर्दुदोह स नराधिपः।
स्वके पाणौ पृथुवत्सं कृत्वा स्वायम्भुवं मनुम् ।१५
तदन्नमभवच्छुद्धं प्रजाजीवन्तियेनवै।
ततस्तु ऋषिभिर्दुग्धावत् सः सोमस्तदाभवत् ।१६
दोग्धाबृहस्पतिरभूत्पात्रं वेदस्तपोरसः।
वेदैश्च वसुधा दुग्धा दोग्धामित्रस्तदा भवत् ।१७
इन्द्रोवत् सः समभवत् क्षीरमूर्जस्करं बलम्।
देवानां काञ्चनं पात्रं पितृणां राजतंतथा ।१८
अन्तकश्चाभावद्दोग्धायमोवत्सःस्वधा रसः।
अलाबुपात्रंनागानांतक्षकोवत्सकोऽभवत् ।१९
विषं क्षीरं ततो दोग्धा धृतराष्ट्रोऽभवत्सुनः।

असुरैरपि दुग्धेयमायसे शक्रपीडिनीम् ।२०
पात्रे मायामभूद्वत्सः प्राह्लादिस्तु विरोचनः ।
दोग्धाद्विमूर्धा तत्रासीन्मायायेनप्रवर्त्तिता ।२१

भूमि ने उसी भाँति कहा था और उस नराधिप ने दोहन किया किया था। पृथु ने अपने हाथ में स्वायम्भुव मनु को वत्स बनाकर ही दोहन किया था ।१५। वह अन्न शुद्ध हो गया था जिससे प्रजा जीवित रहा करती है। इसके पश्चात् फिर ऋषियों ने दोहन किया था उस समय में वत्स सोम हुआ था ।१६। फिर दोग्धा बृहस्पति हुए थे और पात्र तो वेद था तथा तप रस था। वेदों के द्वारा भूमि योग्य हुई थी उस समय में दोहन करने वाले मित्र थे ।१७। इन्द्र वत्स बना था और उसका जो क्षीर था वह ऊर्जस्कर बल था। देवों का जो पात्र था, वह तो सुवर्णमय अर्थात् सुवर्ण का था और पितृगण का पात्र राजत अर्थात् चाँदी का था ।१८। जिस समय में अन्तक यमराज ने भूमि का दोहन कियाथा और अन्तक स्वयं दोग्धा बनेथे उस वक्त यम वत्स और स्वधा रस था। नागों का पात्र तो अलाबु था और तक्षक वत्स बना था। ।१९। उस समय में विष ही क्षीर था। इसके अनन्तर पुनः धृतराष्ट्र दोग्धा हुए थे। इसका दोहन असुरों के द्वारा भी हुआ था आयस पात्र अर्थात् लोहे के शुक्रपीडिनी थी दोहन हुआ। पात्र में माया को दुहा था और उस समय में प्रह्लाद विरोचन वत्स हुआ था। वहाँ पर दोग्धा दो मूर्द्धाओं वाला था जिसने माया को प्रवर्त्तित किया था। ।२०-२१।

यक्षैश्च वसुधा दुग्धा पुरान्तर्द्धानमीप्सुभिः ।
कृत्वा वैश्रवणं वत्समामपात्रे महीपते ।२२
प्रेतरक्षोगणैर्दुग्धा धारा रुधिरमुल्वणम् ।
रौप्यनामोऽभवद् दोग्धा सुमाली वत्सएव च ।२३
गन्धर्वैश्चपुरादुग्धा वसुधासाप्सरोगणैः ।

वत्संचैत्ररथंकृत्वा गन्धान् पद्मदलेतथा ।२४
दोग्धा वररुचिर्नामनाट्यवेदस्य पारगः ।
गिरिभिर्वसुधा दुग्धा रत्नानि विविधानि च ।२५
औषधानि च दिव्यानि दोग्धा मेरुर्महाचलः ।
वत्सोऽभूद्धिमवांस्तत्र पात्रंशैलमयं पुनः ।२६
वृक्षैश्चवसुधादुग्धा क्षीरं छिन्नप्ररोहणम् ।
पालाशपात्रंदोग्धातु शालः पुष्पलताकुलः ।२७
प्लक्षोऽभवत्ततो वत्सःसर्ववृक्षोधनाधिपः ।
एवमन्यैश्च वसुधा तदा दुग्धायथेप्सितम् ।२८

पहिले अन्तर्धान की इच्छा रखने वाले यक्षों के द्वारा भी वसुधा दुही गयी थी । हे महीपते ! उस समय में सामवेद को पात्र बनाया था तथा वैश्रवण (कुबेर) को वत्स बनाया गया था ।२२। इस धरा का दोहन प्रेत और राक्षस गणोंके द्वारा भी किया गया था अति बलवान रुधिर दुहा गया था । रौप्य नाम दोग्धा हुए थे और सुमाली वत्सहुआ था ।२३। पहिले काल में गन्धर्वों ने भी इस वसुधा को दुहा था जो कि अप्सराओं के गणों के साथ मिलकर ही दोहन किया गया था । उन्होंने चैत्र रथ को वत्स बनाया था और पद्मों के दलों में गन्धों को दुहा था ।२४। वररुचि नाम वाला तो वसुधा का दोग्धा हुआ था जो कि वर रुचि नाट्य वेद का पारगामी धुरन्धर विद्वान् था । गिरियों के के द्वारा इस वसुधा का दोहन किया गया था जिसमें विविध भाँति के रत्नों का दोहन हुआ था ।२५। महान् अचल मेरु के द्वारा दिव्य औष-धियों का दोहन हुआ था । उस दोहन के समय में वत्स हिमालय बना था और शैलमय ही पात्र था ।२६। वृक्षों ने वसुन्धरा का दोहन किया था। जिस दोहन में छिन्न हुए वृक्षों का पुनः प्ररोहण हो जाना क्षीर था । पलाश (ढाक) का पात्र था और पुष्प तथा लताओं से समाकीर्ण शालवृक्ष दोग्धा अर्थात् दोहन करने वाला था।२७। उस काल में प्लक्ष

(पौखर) ही जो समस्त वृक्षों का धनाधिप है वत्स हुआ था। इसी रीति से इस वसुधा का उस काल में अन्यों के द्वारा भी यथेच्छ रूप से दोहन किया गया था।२८।

आयुर्धनानि सौख्यञ्चपृथौ राज्यंप्रशासति।
न दरिद्रस्तदा कश्चिन्नरोगीन च पापकृत्।२९
नोपसर्गभयंकिञ्चित् पृथुराजनिशासति।
नित्यंप्रमुदितालोका दुःखशोकविवर्जिता:।३०
धनुष्कोट्यांच शैलेन्द्रानुत्सार्य्यंसमहाबल:।
भुवस्तलंसमञ्चके लोकनांहितकाम्यया।३१
न पुरग्रामदुर्गाणि नचायुधधरा नरा:।
क्षयातिशयदु:खञ्च नार्थशास्त्रस्य चादर:।३२
धर्मैकवासनालोका: पृथौ राज्यं प्रशासति।
कथितानिचपात्राणि यत्क्षीरञ्चमयातव।३३
येषां यत्र रुचिस्तत्तद्देयं तेभ्यो विजानता।
यज्ञश्राद्धेषु सर्वेषु मया तुभ्यं निवेदितम्।३४
दुहितृत्वङ्कृता यस्मात् पृथोधर्म्मवतो मही।
तदानुरागयोगाच्च पृथिवी विश्रुता बुधै:।३५

जिस समय में यहाँ पर भू-मण्डल में महाराज पृथु राज्य का प्रशासन कर रहे थे उस वक्त यहाँ आयु सौख्य और धन सभी कुछ था उस काल में यहाँ पर कोई भी दीन दरिद्र नहीं था और न कोई रंग से ही समाक्रान्त व्यक्ति था और न कोई भी पाप कर्मों के ही करने वाला था।२९। पृथु राजा के शासन काल में किसी भी प्रकार के उपसर्ग का भय किसी को भी नहीं था। सभी लोग नित्य ही परम प्रमुदित थे और सभी लोग दु:ख तथा शोक से रहित थे।३०। उस महान् बल शाली राजा ने अपने धनुष की कोटि के द्वारा बड़े-बड़े विशाल समुच्च शैलों को उत्सारित करके इस तल को समतल कर दिया था तथा

ऊबड़ खाबड़पन हटाकर लोकों के हित के सम्पादन की कामना से परम सुन्दर इसको बना दिया था ।२१। उस राजा के शासन काल में नगर और ग्रामों में कोई भी सुरक्षा सम्पादनार्थ दुर्ग आदि की आवश्यकता ही नहीं थी । और कोई भी मनुष्य आयुधों को धारण करने वाले भी नहीं थे क्योंकि अस्त्रायुधों की कोई आवश्यकता ही नहीं रहीथी । भय के अतिशय होने का दुःख लेशमात्र भी नहीं था था तथा अर्थशास्त्र का कुछ भी समादर उस समय में नहीं रह गया था ।२२। राजा पृथु महा राज के द्वारा प्रशासन की बागडोर हाथ में ग्रहण करने पर सभी लोग एक मात्र धर्म्म की वासना रखने वाले हो गये थे । हमने दोहन के पात्र और क्षीर सब बतबा दिए हैं।२३। जिनकी जहाँपर रुचिथी वही विशेष ज्ञान रखने वाले पुरुष को उनको देना चाहिए । यज्ञों में और श्राद्धोंमें सबमें रुचि के अनुसार ही दान करना चाहिए यह हमने तुमको बतला दिया है ।२४। क्योंकि राजा पृथु के होने पर यह धर्मवती पृथ्वी उसकी दुहिता के स्वरूप वाली हो गई थी । यह उसमें एक विशेष अनुराग का ही योग था इसी कारण से पृथु के ही नाम से इस वसुधा का नाम भी लोक में पृथ्वी यह विश्रुत हो गया था । जिसे बुध लोग कहा करते हैं ।२५।

१०—आदित्याख्यान

आदित्यवंशमखिलं वद सूत ! यथाक्रमम् ।
सोमवंशञ्च तत्वज्ञ ! यथावद्वक्तुमर्हसि ।१
विवस्वान् कश्यपात् पूर्वमदित्यामभवत्सुतः ।
तस्यपत्नीत्रयं तद्वत्संज्ञाराज्ञी प्रभा तथा ।२
रैवतस्य सुता राज्ञी रेवतं सुषुवे सुतम् ।
प्रभा प्रभात सुषुवे त्वाष्ट्रीसंज्ञा तथा मम् ।३

यमश्च यमुना चैव यमलौ तु बभूवतुः ।
ततस्तेजोमयं रूपमसहन्ती विवस्वतः ।४
नारीमुत्पादयामास स्वशरीरादनिन्दिताम् ।
त्वाष्ट्रीस्वरूपेणनाम्ना छायेतिभामिनीतदा ।५
किङ्करोमीति पुरतः स्थितां तामभ्यभाषत ।
छाये ! त्वं भज भर्तारमस्मदीयं वरानने ! ।६
अपत्यानि मदीयानि मातृस्नेहेन पालय ।
तथेत्युक्त्वा तु सा देवमगमत् क्वापि सुव्रता ।७

ऋषियों ने पूछा —हे सूतजी ! सूर्य का सम्पूर्ण वंश आप हमारे सामने वर्णन कीजिए जो कि सब क्रमपूर्वक हो । हे तत्वों के पूर्ण ज्ञाता विद्वान् ! इसी भाँति चाँदीवंश का भी यथावत् वर्णन करने के लिए आप परम योग्य हैं ।१। महा मुनीन्द्र सूतजी ने कहा—सबसे पूर्व में कश्यप महर्षि से अदिति नाम धारिणी पत्नी के उदर से विवस्वान् सुत ही समुत्पन्न हुआ था । उस विवस्वानु (सूर्य)की तीन पत्नियाँ थीं और उनके नाम संज्ञा—राज्ञी और प्रभा थे ।२। राज्ञी रैवत की पुत्री थी और उसने रैवत सुत को जन्म दिया था । प्रभा नाम वाली ने प्रभात को प्रसूत किया था तथा त्वाष्ट्री संज्ञा ने मनु को समुत्पन्न किया था ।३। यम ने यमुना समुद्भूत की थी । ये यमल हुए थे । यह विवस्वान के उस तेजोमय स्वरूप को सहन करने वाली नहीं थी ।४। उसने अपने शरीर से एक अनिन्दित नारी को समुत्पादित किया था । उस समय में यह भामिनी स्वरूप से त्वाष्ट्री और नाम से छाया थी ।५। 'मैं इस समय में क्या करूँ'—यह कहने वाली जब सामने वह स्थित हुई तो उससे कहा था—हे छाये! हे वर आनन वाली ! तुम हमारे ही स्वामी का भजन करो ।५-६। जो मेरी सन्तति हो उसे आप माता के समान स्नेह के द्वारा ही पालन करो । 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही होगा—यह कह कर वह सुव्रता कहीं पर देव के समीप में पहुँच गई थी ।७।

कामयामास देवोऽपि संज्ञेयमिति चादरात् ।
जनयामास तस्यां तु पुत्रञ्च मनुरूपिणम् ।८
सवर्णत्वाच्च सावर्णिर्म्मनोर्वैवस्वतस्य च ।
तत: शनिञ्च तपतीं विष्टिं चैव क्रमेण तु ।९
छायायां जनयामास संज्ञेयमिति भास्कर: ।
छाया स्वपुत्रेऽभ्यधिकं स्नेहं चक्रे मनौ तथा ।१०
पूर्वो मनुस्तु चक्षाम न यम: क्रोधमूर्च्छित: ।
सन्तर्जयामासतदा पादमुद्यम्य दक्षिणम् ।११
शशाप च यमं छाया सक्षत: कृमिसंयुत: ।
पादोऽयमेको भविता पूयशोणितविस्रव: ।१२
निवेदयामास पितुर्धर्म्म: शापादमर्षित: ।
निष्कारणमहं शप्तोमात्रा देव ! सकोपया ।१३
बालभावान् मया किञ्चदुद्यतश्चरण: सकृत् ।
मनुना वार्यमाणापि मम शापमदाद्विभो ।१४

यह देवी भी यह संज्ञा है—इसी आदर से उसको चाहने लगे थे । उसमें उन्होंने मनुरूपी पुत्र को जन्म ग्रहण कराया था ।८। वैवस्वत मनु के सवर्ण होने से वह सावर्णि हुआ था । इसके पश्चात् क्रम से शनितपती और विष्टि को समुत्पन्न किया ।९। भगवान् भास्कर ने यह संज्ञा दी है यह समझकर छाया में ही समुत्पन्न किए थे । छाया अपने पुत्र मनु में विशेष अधिक स्नेह किया करती थी ।१०। पूर्व मनु ने तो देखा नहीं था किन्तु यम तो क्रोध से अत्यधिक मूर्च्छित हो गया था । उस समय में उसने अपनी दाहिनी लात उठाकर भली-भाँति उसको डाँट फटकार दी थी ।११। तब तो छाया ने यम को शाप ही दे दिया था कि यह तेरा एक पैर जिसको तूने उठाकर मारनेकी धमकी दी थी कृमियों से युक्त क्षत वाला और मवाद तथा रक्त से विस्रव हो जायगा ।१२। इस शाप से अमर्षित होकर धर्म्म ने पिता से निवेदन किया था

हे देव ! मुझे बिना ही किसी विशेष कारण के माता ने शाप दे दिया है वह मुझ पर अत्यन्त ही कुपित हो गई है ।१३। बल के अभाव होने के ही कारण से मैंने एक ही बार अपना चरण अवश्य ही कुछ उन्नत किया था । हे विभो ! मनु के द्वारा उसे निवारित भी किया गया था तो भी मुझे माता ने शाप देही दिया है ।१४।

प्रायोन माता सास्माकं शापेनाहं यतो हृत: ।
देवोऽप्याहयम भूल: किङ्करोमिमहामते ।१५
मौर्ख्यात्कस्यनदु:खंस्यादथवाकर्म्मसन्तते: ।
अनिवार्याभवस्यापिकाकथान्येषुजन्तुषु ।१६
कृकवाकुर्म्मया दत्तो य: कृमीन भक्षयिष्यति ।
क्लेदञ्च रुधिरञ्चैव वत्सायमपनेष्यति ।१७
एवमुक्तस्तपस्तेपे यमस्तीव्र महायशा: ।
गोकर्णतीर्थं वैराग्यात् फलपत्रानिलाशन: ।१८
आराधयन् महादेव यावद्वर्षायुतायुतम् ।
वरं प्रादात् महादेव: सन्तुष्ट: शूलभृत्तदा ।१९
वव्रसलोकपालत्वं पितृलोकेनृपालयम् ।
धर्माधर्म्माधिर्म्मात्मकस्यापि जगतस्तुपरीक्षणम् ।२०
एव स लोकपालत्वमगमच्छूलपाणिन: ।
पितृणाञ्चधिपत्यञ्च धर्म्माधर्म्मस्य चानघ ।२१

प्राय: वह हमारी माता शाप के द्वारा मुझे कभी हत नहीं किया करती थी इसीलिए बड़ा दु:ख है । उस समय देव ने भी फिर यम से कहा था—हे महामते ! बताओ, अब मैं इसमें क्या करूँ ।१५। मूर्खता के कारण किसको दु:ख नहीं होता है अर्थात् सभी मूर्खता वश दु:खित हुआ ही करते हैं । अथवा यह कर्मों की सन्तति ऐसी अनिवार्य होतीहै जो भी जैसा कर्म्म करता है उसे उसका फल अवश्यही भोगना ही पड़ता है । यह तो साक्षात् भगवान् भव को भी भोगनी पड़ती है

फिर अन्य साधारण जन्तुओं की तो कथा ही क्या है ।१६। यह मैंने कुक्कवक्कु दे दिया है जो कृमियों को खा जायगा । हे वत्स! यह क्लेदन और रुधिर का भी आनयन करेगा ।१७। इस प्रकार से जब उससे कहा गया था तो उस महान् यशस्वी यम ने तीव्र तपश्चर्या का तपन किया था और वह तपस्या भी फल-पत्र और वायु का ही केवल अशन करके गोकर्ण नामक तीर्थ में की थी।१८। अयुतायुत अर्शन दशों हजार वर्ष पर्यन्त भगवान् महादेव का समाराधन किया था । तब तो इस उग्र तप से महादेव परम सन्तुष्ट हो गये थे और उसी समय में जटा धारी प्रभु ने वरदान दे दिये थे ।१६। महादेव ने कहा था लोकपाल-कता हो जायगी और पितृ लोक में नृपालय होगा । तुम्हारा कर्त्तव्य कर्म यही होगा कि सम्पूर्ण जगतका धर्म और अधर्म का आप परीक्षण किया करेंगे कि कौन कितना धर्मनिष्ठ है और कौन घोर पापात्मा है आपके द्वारा यह निर्णय होने पर ही वह दुःख दण्ड तथा सुख स्वर्ग का उपभोग किया करो ।२०। हे अनघ ! इस प्रकार से शूलपाणि के प्रसाद से वह यम लोकपाल हो गया था तथा पितृगणके अधिपति होने का पद तथा धर्मा-धर्म का निर्णायक बन गया था। ।२१।

विवस्वानथ तद्ज्ञात्वा संज्ञायाः कर्म्मचेष्टितम् ।
त्वष्टुः समीपमगमदाचचक्षे चरोषवान् ।२२
तमुवाच ततस्त्वष्टासान्त्वपूर्वं द्विजोत्तमाः ।
तवासहन्ती भगवन् ! महस्तीव्रं तमोनुदम् ।२३
वडवारूपमास्थाय मत्सकाशमिहागता ।
निवारिता मया सातु त्वया चैव दिवाकर ।२४
यस्मादविज्ञाततया मत्सकाशमिहागता ।
तस्मान्मदीयं भवनं प्रवेष्टुं न त्वमर्हसि ।२५
एवमुक्ता जगामाथ मरुदेशमनिन्दिता ।
वडवा रूपमास्थाय भूतले सम्प्रतिष्ठिता ।२६

तस्मात्प्रसादं कुरु मे यद्यनुग्रहभागहम् ।
अपनेष्यामि ते तेजो यन्त्रे कृत्वा दिवाकर ! ।२७
रूपत्वकरिष्यामि लोकानन्दकरं प्रभो !
तथेत्युक्तः स रविणा भ्रमौ कृत्वा दिवाकरम् ।२८

विवस्वान् ने इसके अनन्तर, संज्ञा के उस कर्मों के चेष्टित का ज्ञान प्राप्त किया तो वह त्वष्टा के समीप में आये और अत्यन्त रोष वाले होकर कहा था ।२२। हे द्विजोत्तम गण ! इस पर त्वष्टा ने बहुत ही सान्त्वना पूर्वक उससे निवेदन किया—हे भगवन्! यह विचारी तुम को छिन्न-भिन्न कर देने वाले आपके इस तीव्र तेज को सहन न करती हुई बड़वा के रूप में समास्थित होकर यहाँ मेरे समीप में समायत हुई थी । हे दिवाकर मैंने उसको निवारित कियाथा और आपने भी किया था ।२३-२४। क्योंकि वह अविज्ञानता के कारण से यहाँ पर मेरे समीप में आ गई थी इस कारण से अब आप इस मेरे भवन में प्रवेश करने के योग्य नहीं होगी हैं ।२५। मेरे द्वारा इस प्रकार के कही गयी वह अनिन्दिता मरु देशमें चली गयीथी और वह बड़वा का रूप धारण करके ही इस भूतल में सम्प्रतिष्ठित हो रही है ।२६। हे दिवाकर देव! यदि मैं आपके अनुग्रह का भागी हूं तो अब आप मुझ पर अपने प्रसाद की वृष्टि कीजिए । अब मैं यन्त्र मे करके आपके इस अत्युल्बण उग्रतेज का भी अपनयन कर दूंगा।२७। हे प्रभो ! आपका मैं अब स्वरूप ऐसा सुन्दर बना दूंगा जो लोकों के आनन्द करने वाला ही हो जायगा । इस प्रकार से कहे गये उसको रवि के द्वारा भ्रमि में दिवाकर को कर दिया था ।२८।

पृथक् चकारतत्तेजश्चक्रं विष्णोरकल्पयत् ।
त्रिशूलञ्चापिरुद्रस्यैवज्रमिन्द्रस्यचाधिकम् ।२९
दैत्यदानवसंहर्तुः सहस्रकिरणात्मकम् ।
रूपञ्चाप्रतिमञ्चक्रे त्वष्टा पद्भ्यामृते महत् ।३०

न शशाकाथ तद्द्रष्टुं पादरूपं रवेः पुनः ।
अर्चास्वपि ततः पादौ न कश्चित्कारयेत् क्वचित् ।३१
यः करोति स पापिष्ठां गतिमाप्नोति निन्दिताम् ।
कुष्ठरोगवाप्नोति लोकेऽस्मिन् दुःखसंयुतः ।३२
यस्माच्च धर्म्मकामार्थी चित्रेष्वायतनेषु च ।
न क्वचित्कारयेत्पादौ देवदेवस्य धीमतः ।३३
ततः स भगवान् ! गत्वा भूर्लोकममराधिपः ।
कामयामास कामार्तो मुखएव दिवाकरः ।३४
अश्वरूपेण महता तेजसा च समावृतः ।
संज्ञा च मनसा क्षोभमगमद्भयविह्वला ।३५

उस भ्रमि के द्वारा उसका जो उग्रतेज था उसके पृथक् कर दिया था और उस पृथक्कृत तेज से भगवान् विष्णु के सुदर्शन चक्र की रचना कर डाली थी । उग तेज से भगवान् रुद्र के त्रिशूल की और इन्द्रदेव के अधिक प्रभावशाली वज्र की रचना भी की गई थी ।२६। दैत्यों और दानवों के संहार करने वाले का एक सहस्र किरणों वाले स्वरूप से समन्वित अप्रितम रूप की रचना त्वष्टा ने करदी थी,जो महत् पैरों से रहित था ।३०। फिर वह रवि अपने पदों के रूप को देखने में देखने में भी असमर्थ हो गए थे । उसकी अर्चाओं में भी कोईभी कहीं पर उनके पादों को समर्चितम न किया करे ।३१। यदि कोई सूर्य के पादो का समर्चन किया भी करता है तो वह परम निन्दित और घोर पापिष्ठ गति को प्राप्त हुआ करता है । ऐसा करने वाला पुरुष इस लोक में परम दुःख से संयुत होता हुआ कुष्ठ जैसे महान घोर रोगकी प्राप्ति किया करता है ।३२। इसी कारणसे जो कोई भी धर्म और काम का अर्थी हो उसे चित्रों में तथा आयतनों मे भी कहीं पर भी धीमान् के देवों भी देव के पादों की रचना न करे और करावे ।३३। इनके पश्चात् यह भगवान् अमरों का अधिक भूर्लोक में गये थे और केवल

मुखरूपी, दिवाकर ने कामासक्त होकर कामना की थी।३४। अश्व के रूप से युक्त और महान् तेज से समावृत थे। वह जो संज्ञा थी वह जो संज्ञा थी वह भय से अत्यन्त विह्वल होती हुई मन से अत्यन्त क्षोभ को प्राप्त हो गई थीं।३५।

नासापुटाभ्यामुत्सृष्टंपरोऽयमितिशङ्कया।
तद्रेतसस्ततोजातावश्विनाविर्तिनिश्चितम्।३६
दस्रौसुतत्वात्सञ्जातौ नासत्यौनासिकाग्रत।
ज्ञात्वाचिराच्चं तं देवंसन्तोषमगमत्परम्।
विमानेनागमत् स्वर्गं पत्या सह मुदान्विता।३७
सावर्णोऽपि मनुर्मेरावद्याप्यास्ते तपोधनः।
शनिस्तपोबलादाप ग्रहसाम्यं ततः पुनः।३८
यमुना पतती चैवपुनर्नद्यौ बभूवतु:।
विष्टिर्घोरात्मिका तद्वत् कालत्वेन व्यवस्थिता।३९
मनोर्वैवस्वतस्यासन् दशपुत्रा महाबलाः।
इलस्तु प्रथमस्तेषां पुत्रेष्टयां समजायत।४०
इक्ष्वाकुः कुशनाभश्च अरिष्टो धृष्ण एवच।
नरिष्यतः करूषश्च शर्य्यातिश्च महाबलः।४१
अभिषिच्य मनुः पुत्रमिलं ज्येष्ठं स धार्मिकः।
जगाम तपसेभूयः स महेन्द्रवनालयम्।४२

यह पर है इस शंका से नासा के पुटों से ही उत्सर्जन किया था किन्तु इसके अनन्तर उनके वीर्य से अश्विनीकुमार समुत्पन्न हुए थे—यह निश्चित है। नासिका के अग्र भाग से ये नासत्य दस्र सुत रूप से समुद्भूत हुए थे -बहुत ही अधिक समय के पश्चात् यह जानकर देवको परम सन्तोष हुआथा। वह मुदान्वित होती हुई पतिके ही साथ विमान के द्वारा स्वर्ग को गयी थी।३६-३७। सावर्ण मनु भी अधिक तपोधन आज भी मेरु पर्वत में विद्यमान हैं। इसके अनन्तर वह शनि भी बलसे

ग्रहों की समता को पुनः प्राप्त हो गया था ।३८। यमुना और ताप्ती ल दोनों फिर नदियाँ हो गई थीं । जो विष्टि थी वह परम घोर थी अतएव रूप से अर्थात् भद्रा के स्वरूप में व्यवस्थित हो गई थी ।३९। वैवस्वत मनु के महान् बल वाले दश पुत्र थे । उन दस पुत्रों में इस प्रथम पुत्र था जो पुत्रेष्टि में ही समुत्पन्न हुआ ।४०। इक्ष्वाकु कुशनाभ अरिष्ट, धृष्ण, नरिष्यत्, करुष, शर्याति जो महान् बलशाली था पृषध्र—नाभाग ये उन पुत्रों के शुभ नाम हैं । ये सभी दिव्य मानुष थे । ।४१। परम धार्मिक उस मनु ने जो सबसे बड़ा इल नामक पुत्र उसका अभिषेक करके फिर अधिक तप के लिए महेन्द्र वनालय चला गया था ।४२।

अथ दिग्जयसिध्यर्थमिलः प्रायान् महीमिमाम् ।
भ्रमन् द्वीपानि सर्वाणि क्ष्माभृतः संप्रधर्षयन् ।४३
जगामोपवनं शम्भोरश्वाकृष्टः प्रतापवान् ।
कल्पद्रुमलताकीर्णं नाम्ना शरवणं महत् ।४४
रमते यत्रदेवेशः शम्भुः सोमार्द्धशेखरः ।
उमया समयस्तत्र पुरा शरवणे कृतः ।४५
पुन्नामसत्त्वं यत् किञ्चिदागमिष्यत ते वने ।
स्त्रीत्वमेष्यति तत्सर्वं दशयोजनमण्डले ।४६
अज्ञातसमयो राजा इलः शरवणे पुरा ।
स्त्रीत्वमाप विशन्नेव वडवात्वं हयस्तदा ।४७
पुरुषत्वं हृतं सर्वं स्त्रीरूपे विस्मितो नृप ।
इलेति साभवन्नारी पीनोन्नतघनस्तनी ।४८
भ्रमन्ती च वने तस्मिन् चिन्तयामास भामिनी ।
को मे पिताऽथवा भ्राता का मे माता भवेदिह ।४९

इसके अनन्तर दिग् विजय करने की सिद्धि प्राप्त करने के लिए इल इस भू-मण्डल में चला गया था । समस्त भू-मण्डल के राजाओंको

सम्प्रधर्षित करते हुए उसने इस मही पर भ्रमण किया था ।४३। प्रताप वाले उसने अश्व के द्वारा समाकृष्ट होकर घूमते हुए भगवान् शम्भु के उपवन में वह चले गये थे । वह वन कल्पद्रुम और लताओं से समाकीर्ण था और महत् वन का नाम शरवण था ।४४। जिस वन में सोमार्द्ध को शेखरमें धारण करने वाले भगवान् शम्भु देवेश्वर उमादेवी के साथ रमण किया करते हैं । पहिले ही समय में वहाँ पर शरवण में समय (संकेत) कर दिया गया था ।४५। पुरुष संज्ञा वाला कोई भी जीव यदि तेरे इस वनमें समागत होगा तो वह इस दश योजनके मंडल में तुरन्त ही स्त्रीत्व को प्राप्त हो जायगा चाहे कोई भी हो सभी के लिए यह प्रभाव अवश्य होगा ।४६। यह राजा इल इस समय का ज्ञान ही नहीं रखता था । यह भूल तथा अज्ञानवश उस शरवण नामक वन में पहुँच गया था और उसमें प्रवेश करते ही यह स्त्रीत्व को प्राप्त हो गया था तथा जो इसकी सवारी का अश्व था वह भी वड़वा (घोड़ी) हो गया था । हे नृप ! जब समस्त पुरुषत्व के लक्षण हृत हो गये थे तो इस राजाको बहुत ही अधिक विस्मय हुआ था जब कि उसने अपने आपको एक स्त्रीके रूपमें पाया था । अब तो वह इल इला नाम वाली स्त्री हो गई थी जिसके पीन—उन्नत और परम घनस्तन थे ।४७-४८। उसी वन में भ्रमण करते हुए उस इला भामिनी ने विचार किया था कि ऐसी दशा में मेरा यहाँ कौन तो पिता है अथवा कौन भाई है और कौन मेरी माता ।४९।

११—सूर्यवंश वर्णन

अथान्विषन्तो राजानं भ्रातरस्तस्यमानवाः ।
इक्ष्वाकुप्रमुखाजग्मुस्तदाशरवणान्तिकम् ।१
ततस्तेदहशुः सर्वे वडवामग्रतः स्थिताम् ।
रत्नपर्याणकिरणदीप्तकायामनत्तमाम् ।२

पर्याणप्रत्यभिज्ञानात् सर्वे विस्मयमागताः ।
नयं चन्द्रप्रभो नाम वाजीतस्य महात्मनः ।३
अगमद्वडवा रूपमुत्तमं केनु हेतुना ।
ततस्तु मैत्रावरुणिं पप्रच्छुस्ते पुरोधसम् ।४
किमित्येतदभूच्चित्रंवदयोगविदाम्वर ! ।
वशिष्ठश्चाब्रवीत् सर्वं दृष्ट्वा तद्धयानचक्षुषा ।५
समयः शम्भुदयिताकृतः शरवणे पुरा ।
यः पुमान् प्रविशेदत्र स नारीत्वमवाप्स्यति ।६
अयमश्वोऽपि नारीत्वमगाद्राज्ञा सहैवतु ।
पुनः पुरुषतामेति यथासौ धनदोपमः ।७

श्री महर्षि सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर मनु के पुत्र मानव उस इल राजा के भाई लोग जब उसको लौटने में बहुत अधिक समय हो गया तो उसकी खोज करते हुए इक्ष्वाकु सब उस शरवण नामक वन को गए थे ।१। इसके अनन्तर जैसे ही वे उस वन के समीप तक ही पहुँचे थे कि उन्होंने सबने सामने स्थित वड़वा को देखा था जो रत्नों के पर्याण (रत्न जटित जीव) को किरणों से परम दीप्त शरीर वाली थी और अतीव उत्तम थी ।२। उसके पर्याण के प्रत्यभिज्ञान से वे सभी लोग अत्यन्त विस्मित हो गये । इन्होंने समझ लिया था कि यह तो उसी महात्मा इल राजा का चन्द्रप्रभ नाम वाला अश्व है ।३। किन्तु क्या हेतु हो गया है—जिससे इस वड़वा का ऐसा अत्युत्तम स्वरूप हो गया है । इसके पश्चात् मैत्रा वरुणिनामक अपने पुरोहित से इस विषय में पूछा था ।४। हे योग के ज्ञाताओं में परमश्रेष्ठ ! आप हमको यह बताइए कि यह एक विचित्र घटना क्या और कैसे हो गई है ? तब तो महर्षि वसिष्ठ जी ने ध्यान के नेत्रों से यह सम्पूर्ण घटना को देख लिया था और उनसे वे फिर बोले थे ।५। प्राचीन समय में भगवान् शम्भु की दयिता उमा देवी ने इस शरवण वन में प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई

भी पुमान् इस शरवण वन में प्रवेश करेगा वह निश्चित रूप से स्त्रीत्व को प्राप्त हो जायगा ।६। यह अश्व भी तो पुंस्त्व संज्ञा वाला था अतएव यह राजा के साथ ही स्त्रीत्व को प्राप्त हो गया है अर्थात् अश्व से बडवा बन गया है । यह धनद के समान उपमा वाला पुनः पुरुषत्व को प्राप्त जिस तरह से होता है उसका उपाय करना होगा ।७।

तथैव यत्नः कर्तव्यश्चाराध्यैव पिनाकिनम् ।
ततस्ते मानया जग्मुर्यत्र देवो महेश्वरः ।८
तुष्टुवुर्विविधैःस्तोत्रैः पार्वतीपरमेश्वरौ ।
तावूचतुरलंघयोऽयं समयः किन्तु साम्प्रतम् ।९
इक्ष्वाकोरश्वमेधेनयत्फलं स्यात्तदावयोः ।
दत्त्वा किम्पुरुषोवीरः स भविष्यत्यसंशयम् ।१०
तथेत्युक्तास्ततस्तेस्तुजग्मुर्वैवस्वतात्मजाः ।
इक्ष्वाकोश्चश्वमेधेनचेलः किम्पुरुषोऽभवत् ।११
मासमेकम्पुमान्वीरः स्त्री च मासमभूत् पुनः ।
बुधस्य भवने तिष्ठन्निलो गर्भधरोऽभवत् ।१२
अजीजनत् पुत्रमेकमनेकगुणसंयुतम् ।
बुधश्चोत्पाद्य तं पुत्रं स्वर्लोकमगमत्ततः ।१३
इलस्य नाम्ना तद्वर्षमिलावृतमभूत्तदा ।
सोमार्कवंशयोरादाविलोऽभून्मनुनन्दनः ।१४

उसी प्रकार का एक भगवान् पिनाकी की समाराधना करके यत्न करना चाहिए । इस प्रकार से इस घटित घटनाका हेतु श्रवण करके वे समस्त मनु के पुत्र वहीं पर पहुँचे थे जहाँ पर देवेश्वर शम्भु विराजमान थे ।८। उन सबने पहुँचकर पार्वती और परमेश्वर का अनेकों स्तोत्रों के द्वारा संस्तवन किया था । उन दोनों ने उनसे कहा था कि सब कुछ तुम्हारा निवेदन ठीक है किन्तु यह जो समय (प्रतिज्ञा) किया गया है

वह अब संयम करने के योग्य नहीं है ।९। इक्ष्वाकु के द्वारा किये गये अश्वमेघ से जो भी फल होगा उसको हम दोनों को देकर वह वीर बिना ही किसी संशय के किम्पुरुष हो जायगा ।१०। तथास्तु अर्थात् ऐसा ही होगा । यह कहकर वे सब वैवस्वत मनु के पुत्र वहाँ से चल दिये थे। इक्ष्वाकु ने फिर अश्वमेध यज्ञ किया था और उससे वह इल किम्पुरुष हो गया था ।११। इसका भी यह परिणाम हुआ था कि वह एक मास तक तो नारी होकर रहा करता था और एक मास तब पुरुष बन कर जीवन बिताता था । जिस समय में यह बुध के भवन स्थित रहा था और नारी के रूप में था उसी समय में इल ने गर्भ धारण कर लिया था ।१२। फिर इसने अनेक सद्गुण गुण से समन्वित एक पुत्र को जन्म दिया था । बुध ने उस पुत्र को इसके उदर से समुत्पादित करके वह फिर स्वलोक को चले गये थे ।१३। उसी समय में इल के नाम से वह वर्ष इलावृत इस नाम से प्रसिद्ध हो गया था । सोम और सूर्य के वंश में यही इल सबसे प्रथम मनु का पुत्र हुआ था ।१४।

एवं पुरूरवाः पुंत्तोरभवद्वंशवर्द्धनः ।
इक्ष्वाकुरर्कवंशस्य तथैवोक्तस्तपोधनाः ॥१५

इलः किम्पुरुषत्वे च सुद्युम्न इति चोच्यते ।
पुनः पुत्रत्रयमभूत् सुद्युम्नस्यापराजितम् ॥१६
उत्कलो वै गयस्तद्वद्धरिताश्वश्च वीर्य्यवान् ।
उत्कलस्योत्कलानाम गयस्यतुगयामताः ॥१७
हरिताश्वस्य दिक्पूर्वो विश्रुता कुरुभिः सह ।
प्रतिष्ठानेऽभिषिच्याथ स पुरूरवसं सुतम् ॥१८
जगामेलावृत भोक्तुं वर्षं दिव्यफलाशनम् ।
इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान् ॥१९
नरिष्यन्तस्य पुत्राऽभूच्छुचो नाम महाबलः ।
नाभागस्याम्बरीषस्तु धृष्टस्य च सुतत्रयम् ॥२०

धृतकेतुश्चित्रनाथो रणधृष्टश्च वीर्य्यवान् ।
आनर्तो नाम शर्यातिः सुकन्याचैव दारिका ॥२१

इस प्रकार से पुरूरवा पुमान् के वंश का वर्णन करने वाला हुआ था । उसी भाँति सूर्य व'श की वृद्धि करने वाला तपोधन इक्ष्वाकु हुआ था ऐसा ही कहा गया है ।१५। इल को किम्पुरुषत्व हो जाने पर सुद्यु्म्न इस नाम से कहा जाता है । इसके पश्चात् सुद्यु्म्न के तीन अपराजित पुत्र हुए थे ।१६। उन तीनों के नाम उत्कल, गय और बहुत वीर्यवान् हरिताश्व ये थे । उत्कल की उत्कला नाम वाली-गय की गया पुरी मानी गयी है ।१७। हरिताश्व की कुरुओं के साथ पूर्वदिक् विश्रुत हुई थी । उसने प्रतिष्ठान में पुरूरवा पुत्र का अभिषेक किया था । वह दिव्य फलों अशन वाले इला वृत वर्ष का उपभोग करने के लिए चला गया था । ज्येष्ठ दायाद जो इक्ष्वाकु था उसने मध्य देश को प्राप्त किया था ।१८-१९। नारिष्यन्त का शुच नाम वाला महान् बल वाला पुत्र प्रसूत हुआ था । नाभाग का पुत्र अम्बरीष हुआ था और धृष्ट के तीन पुत्र हुए थे ।२०। उन तीनों के नाम धृष्ट केतु-चित्रनाथ और तीसरा वीर्यवान् रण धृष्ट ये थे । शर्याति का पुत्र आनर्त्त नाम वाला उत्पन्न हुआ था तथा सुकन्या नाम धारिणी एक पुत्री हुई थी ।२१।

आनर्तस्याभवत्पुत्रो रोचमानः प्रतापवान् ।
आनर्तो नाम देशोऽभून्नगरीच कुशस्थली ॥२२
रोचमानस्य पुत्रोऽभूदेवोरैवत एव च ।
ककुद्मीचापरान्नामज्येष्ठः पुत्रशतस्य च ॥२३
रेवती तस्य सा कन्या भार्या रामस्यविश्रुता ।
करूषस्य तु कारुषावहवः प्रथिताभुवि ॥२४
पृषध्रोगोवधानछूद्रो गुरुशापादजायत ।
इक्ष्वाकुवंशं बक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः ! ॥२५
इक्ष्वाकोः पुत्रतामाप विकुक्षिर्नाम देवराट् ।

ज्येष्ठः पुत्रशतस्यासीद्दश पञ्चम तत्सुताः ॥२६
मेरोरुत्तरतस्तेतु जाताः पार्थिवसत्तमाः ।
चतुर्दशोत्तरञ्चान्यच्छ्रुतमस्य तथाभवत् ॥२७
मेरोर्दक्षिणतो ये वै राजानः सम्प्रकीर्त्तिताः ।
ज्येष्ठः ककुत्स्थो नाम्नाऽभूत्तत्सुतस्तु सुयोधनः ॥२८

आनर्त्त का पुत्र परम प्रताप वाला रोचमान हुआ था इस राजा के ही नाम से देश का नाम भी आनर्त्त हो गया था और इसकी नगरी का नाम कुशस्थली था ।२२। रोचमान का पुत्र देव रैवत हुआ था और ककुद्मी अपर नाम था जो सौ पुत्रों में सबसे बड़ा ज्येष्ठ था ।२३। उसकी रेवती नाम वाली कन्या समुत्पन्न हुई थी जो बलरामजी की परम प्रसिद्ध भार्या थी । कल्प के बहुत-से कारूप नामधारी पुत्र भू-मण्डल में प्रसिद्ध हुये थे ।२४। गो बध से पृषध्र समुत्पन्न हुआ था जो गुरु के शाप से शूद्र हो गया था । हे ऋषि श्रेष्ठो ! अब मैं इक्ष्वाकु के बंश का वर्णन करता हूँ उसका आप लोग श्रवण कीजिये ।२५। विकुक्षि नाम वाले देवराट् ने इक्ष्वाकु के पुत्र का स्थान प्राप्त किया था । यह सौ पुत्रों से सबसे बड़ा पुत्र था । इसके भी दश और पांच अर्थात् पन्द्रह पुत्र हुये थे ।२६। ये सब मेरु की उत्तर दिशा में श्रेष्ठ पार्थिव हुये थे । चतुर्दश से उत्तर अन्य इसका वैसा ही विश्रुत हुआ था ।२७। मेरु के दक्षिण भाग में जो भी राजा लोग कीर्तित्त किये गये हैं उनमें ज्येष्ठ काकुत्स्थ हुआ था । उसका पुत्र सुयोधन नाम वाला था ।२८।

तस्य पुत्रः पृथुर्नाम विश्वगश्च पृथोः सुतः ।
इन्दुस्तस्यचपुत्रोऽभूद्युवनाश्वस्ततोऽभवत् ॥२९
श्रावस्तश्चमहातेजावत्सकस्तत्सुतोऽभवत् ।
निर्मिता येन श्रावस्तीगौडदेशेद्विजोत्तमाः ॥३०
श्रावस्ताद् बृहदश्वोऽभूत् कुवलाश्वस्ततोऽभवत् ।

धुन्धूमारत्वमगमद् धुन्धु ना ना हृतः पुरा ॥३१
तस्य पुत्रास्त्रयो जाता दृढाश्वो दण्ड एव च ।
कपिलाश्वश्च विख्यातो धौन्धुमारिः प्रतापवान् ॥३२

दृढाश्वस्य प्रमादश्चहर्यश्वस्तस्यचात्मजः ।
हर्यश्वस्यनिकुम्भोऽभूत्संहताश्वस्ततोऽभवत् ॥३३
अकृताश्वोरणाश्वश्च संहताश्वसुतावुभौ ।
युवनाश्वोरणाश्वस्य मान्धाताचततोऽभत् ॥३४

मान्धातुः पुरुकुत्सोऽद्धम्मसेनश्च पार्थिवः ।
मुचकुन्दश्च विख्यातः शत्रुजिच्चः प्रतापवान् ॥३५

सुयोधन के पुत्र का नाम पृथु और पृथु का आत्मज विश्वग नामधारी था । इसके पुत्र का नाम इन्दु था और इन्दु का सुत युवनाश्व हुआ था ।२६। श्रावस्त महान् तेज वाला था । इसके पुत्र का नाम वत्सक था । हे द्विजगणो ! इसी ने गौड़ देश में श्रीवस्ती नाम वाली पुरी का निर्माण किया था ।३०। श्रीवस्त से वृहदश्व ने जन्म प्राप्त किया था और इसके पुत्र का नाम कुवलाश्व हुआ था । यह धुन्धुन्मारता को प्राप्त हो गया था क्योंकि पहले धुन्धु नामधारी का हनन किया था ।३१। इसके तीन सुतों ने जन्म ग्रहण किया था । उनके नाम दृढ़ाश्व और दड थे तथा तीसरा कपिलाश्व था जो प्रताप वाला धौन्धुमारि नाम से विख्यात हुआ था । ३२ । दृढ़ाश्व का प्रमोद और प्रमोद का हर्यश्व पुत्र हुआ था । हर्यश्व का निकुम्भ सुत उत्पन्न हुआ था फिर इसका पुत्र संहताश्व पैदा हुआ था ।३३। संहताश्व के अकृताव और उरणाश्व ये दो सुत हुये थे । उरणाश्व का पुत्र युवनाश्व हुआ तथा फिर इसके मान्धाता नाम वाले ने जन्म ग्रहण किया था ।३४। मान्धाता के पुत्र का नाम पुरुकुत्स था अधर्मसेन पार्थिव भी हुआ था एवं मुचुकुन्द परम विख्यात हुआ और प्रतापधारी शत्रुजित् भी हुआ था । ऐसे ये चार पुत्र हुये थे ।३५।

पुरुकुत्सस्य पुत्रोऽभूद्वसुदोनर्म्मदापति: ।
सम्भूतिस्तस्यपुत्रोऽभूत्त्रिधंन्वा चततोऽभवत् ॥३६

त्रिधन्वन: सुतोजातस्त्रय्यारुण इति स्मृत: ।
तस्मात्सत्यव्रतोनामतस्मात्सत्यरथ: स्मृत: ॥३७

तस्य पुत्रो हरिश्चन्द्रो हरिश्चन्द्राच्चरोहित: ।
रोहिताच्च वृको जातो वृकाद्वाहुरजायत: ॥३८

सगरस्तस्य पुत्रोऽभूद्राजा परमधार्मिक: ।
द्वे भार्य्ये सगरस्यापि प्रभाभानुमती तथा ॥३९

ताभ्यामाराधित: पूर्वमौर्वोऽग्नि: पुत्रकाम्यया ।
औवंस्तुष्टस्तयो: प्रादाद्यथेष्टं वरमुत्तमम् ॥४०

एका षष्टिसहस्राणि सुतमेकं तथापरा ।
गृह्णातु वंशकर्तारं प्रभाऽगृह्णाद् बहूंस्तदा ॥४१

एकं भानुमती पुत्रमगृह्णादसमञ्जसम् ।
तत: षष्टिसहस्राणि सुषुवे यादवीप्रभा ॥४२

पुरुकुत्स का पुत्र वसुद हुआ था जो नर्मदापति था। इसका सुत सम्भूति था तथा सम्भूति से त्रिधन्वा ने जन्म ग्रहण किया था।३६। त्रिधन्वा के पुत्र का नाम त्रय्यरुण कहा गया है। इससे सत्यव्रत और सत्य व्रत के पुत्र का नाम सत्यरथ था।३७। इस सत्यरथ के ही पुत्र का नाम हरिश्चन्द्र हुआ था जिसका पुत्र रोहित हुआ था। रोहित से वृक का जन्म हुआ था और वृक के पुत्र का नाम बाहु था।३८। इस बाहु के सुत का नाम राजा सगर हुआ था जो परम धार्मिक महीपति हुआ है। इस महाराज सगर की दो पत्नियाँ थीं। एक का नाम प्रभा और दूसरी का नाम भानुमती था।३९। इन दोनों ही पत्नियों ने पहिले पुत्र प्राप्ति की कामना से और्व अग्नि की समाराधना की थी। और्व इनके समाराधन से परम सन्तुष्ट हो गया था और उसने उन दोनों को यथेष्ट उत्तम वरदान दे दिया था। उनमें से एक तो साठ

हजार और दूसरी एक पुत्र करे जो वंश की वृद्धि करने वाला हो। उस समय में प्रभा ने बहुत से पुत्रों की प्राप्ति को ही ग्रहण किया था।४०-४१। भानुमती नाम धारिणी सगर की भार्या ने एक सुत ही प्राप्त किया था जिसका नाम असमञ्जस था। इसके अनन्तर गायत्री प्रभा ने साठ सहस्र पुत्रों को प्रसूत किया था।४२।

खनन्तः पृथिवीं दग्धा विष्णुना येऽश्वमार्गणे।
असमञ्जसस्तु तनयोर्योऽशुमान्नामविश्रुतः ॥४३
तस्यपुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात्तु भगीरथः।
येन भागीरथी गङ्गा तपः कृत्वावतारिता ॥४४
भगीरथस्य तनयोनाभाग इतिविश्रुतः।
नाभागस्यांवरीषोऽभूत्सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत् ॥४५
तस्यायुतायुः पुत्रोऽभूद्वतुपर्णस्ततोऽभवत्।
तस्य कल्माषपादस्तु सर्वकर्मा ततः स्मृतः ॥४६
तस्यानरण्यः पुत्रोऽभून्निघ्नस्तस्य सुतोऽभवत्।
निघ्नपुत्रावुभोजातौ अनमित्ररघूनृपौ ॥४४
अनमित्रो वनमगाद्भविता स कृते नृपः।
रघारभूद दिलोपस्तु दिलीपादजकस्तथा ॥४८
दोर्घवाहुरजाज्जातश्चाजपालस्ततो नृपः।
तस्माद्दशरथो जातस्तस्य पुत्रचतुष्टयम् ॥४९
नारायणात्मका सर्वे रामस्तेष्वग्रजोऽभवत्।
रावणान्तकरस्तवद्रघूणां वंशवर्धनः ॥५०

ये साठ हजार जस पुत्र हुये थे इन्होंने अश्वमेध के घोड़े की खोज करने में भूमिका खनन किया था और खनन करते हुये ही विष्णु के द्वारा ये दग्ध कर दिये गये थे असमञ्जस का पुत्र अंशुमान् नाम से प्रसिद्ध हुआ था।४३। इसके पुत्र का नाम दिलीप था और दिलीप नाम-धारी राजा से ही भगीरथ ने जन्म प्राप्त किया था जिसने परभोगु तपश्चर्या

करके भागीरथी गङ्गा का अवतरण कराया था ।४४। भागीरथ के पुत्र का नाम नाभाग था जो परम प्रसिद्ध हुआ था । नाभाग का पुत्र अम्बरीष और इसके पुत्र का नाम सिन्धु द्वीप हुआ था ।४५। सिन्धु द्वीप का पुत्र अयुतायु हुआ था और इसके पुत्र का नाम ऋतुवर्ण था । ऋतुपर्ण का कल्माषपाद और फिर इसका सुत सर्वकर्मा नामधारी हुआ था ।४६। सर्वकर्मा का अनरण्य हुआ और इसके पुत्र का नाम निघ्न हुआ था । इस निघ्न के दो पुत्रों ने प्रसव प्राप्त किया था एक का नाम अनमित्र था और दूसरा रघु नृप हुआ था ।४७। अनमित्र जो था वह वन में चला गया था अतः रघु ने ही राज्यासन ग्रहण किया था । राजा रघु के पुत्र का नाम दिलीप हुआ था । इस दिलीप का पुत्र अज हुआ था ।४८। अज से दीर्घबाहु से जन्म ग्रहण किया था और इसके अनन्तर अजपाल नृप हुआ था । इस अजपाल से महाराज दशरथ ने जन्म ग्रहण किया था जिन महाराज दशरथ के चार पुत्र हुये थे । ये चारों ही पुत्र नारायण स्वरूप थे जिनमें श्री रामचन्द्र सबसे बड़े पुत्र थे । यह रावण के अन्त करने वाले तथा रघुकुल के वंश की वृद्धि करने वाले हुये हैं । ।४९-५०।

वाल्मीकिस्तस्य चरितं चक्रे भार्गवसत्तमः ।
तस्य पुत्रौ कुशलवाविक्ष्वाकुकुलवर्धनौ ॥५१
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः ।
नलस्तु नैषधस्तस्मान्नभास्तस्मादजायत ॥५२
नभसः पुण्डरीकोऽभूत् क्षेमधन्वा ततः स्मृत ।
तस्य पुत्रोऽभवद्वीरो देवानीकः प्रतापवान् ॥५३
अहीनगुस्तस्य सुतः सहस्राश्वस्ततः परः ।
ततचन्द्रावलोकस्तु तारापीडस्ततोऽभवत् ॥५४
तस्यात्मजश्चन्द्रगिरिर्भानुश्चन्द्रस्ततोऽभवत् ।
श्रुतायुरभवत्तस्माद्भारते यो निपातितः ॥५५

नलोद्वावेवविख्यातौ वंशे कश्यपसम्भवे ।
वीरसेनसुतस्तद्वन्नैषधश्च नराधिपः ॥५६
एते वैवस्वते वंशे राजानो भूरिदक्षिणाः ।
इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्त्तिताः ॥५७

महर्षि प्रवर वाल्मीकि ने जो भार्गव श्रेष्ठ थे उनके चरित का निर्माण ग्रन्थाकार में किया था। महाराज श्रीराम के पुत्र कुश और लव ये दो हुये थे जो इक्ष्वाकु कुल के वर्धन करने वाले हुये थे।५१। कुश से अतिथि ने जन्म ग्रहण किया था और इसके आत्मज का नाम निषध हुआ था। इसी निषध से नैषध नल हुआ था और नल से नभ ने जन्म लिया था।५२। नभ से पुण्डरीक सुत हुआ और इसके पश्चात् क्षेमधन्वा ने जन्म लिया था। इस क्षेमधन्वा का पुत्र वीर एवं प्रताप वाला देवानीक हुआ था।५३। इसका पुत्र अहीन और इसके सुत का नाम सहस्राश्व हुआ था। इसके उपरान्त चन्द्रायलोक हुआ और फिर इसका सुत तारापीड़ समुत्पन्न हुआ था। इस तारापीड का सुत चन्द्रगिरि हुआ और चन्द्रगिरि से भानुचन्द्र ने जन्म ग्रहण किया था। इसके पुत्र का नाम श्रुतायु हुआ जो भारत में निपातित कर दिया गया था। कश्यप से सम्भूत वंश में दो ही नल विख्यात हुए हैं एक वीरसेन का सुत और उसी भाँति नराधिप नैषध प्रसिद्ध था।५४-५५-५६। इस प्रकार से वैवस्वत के वंश में भूरि दक्षिणा वाले राजा लोग हुए थे। प्रधानतया ये सब राजागण इक्ष्वाकु वंश से उत्सव प्रकीर्तित हुए हैं।५७।

१२—देवी के एक सौ आठ नाम

भगवन् ! श्रोतुमिच्छामि पितृणां वंशमुत्तमम् ।
रवेश्चश्चाद्धदेवत्वं सोमस्य च विशेषतः ।।१

हन्तते कथयिष्यामि पितृणां वंशमुत्तमम् ।
स्वर्गेपितृगणाः सप्तत्रयस्येषाममृत्तेयः ।।२

मूर्तिमन्तोऽथ चत्वारः सर्वेषाम मितौजसः ।
अमूत्तयः पितृगणा वैराजस्य प्रजापतेः ।।३

यजन्ति यान् देवगणा वैराजा इति विश्रुताः ।
दिवि ते योगविभ्रष्टाः प्राप्य लोकान् सनातनान् ।।४
पुनर्ब्रह्मविदान्ते तु जायन्ते ब्रह्मवादिनः ।
संप्राप्यतां स्मृतिं भूयो योगं साङ्ख्यमनुत्तमम् ।।५
सिद्धिप्रयान्ति योगेन पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ।
योगिनामेवदेयानि तस्याच्छ्राद्धानिदातृभिः ।।६

एतेषां मानसी कन्यापत्नी हिमवतोमता ।
मैनाकस्तस्यदायादः क्रौञ्चस्तस्याग्रजोऽभवत् ।।७

मनु महाराज ने कहा—हे भगवन् ! अब मैं पितृगण का उत्तम वंश का श्रवण करना चाहता हूँ । रवि का और विशेष रूप से सोम का श्राद्ध देवत्व श्रवण करने की इच्छा उत्पन्न होती है ।१। मत्स्य भगवान् ने कहा—बहुत ही प्रसन्नता का विषय है । अब हम पितृगण के उत्तम वंश का ही वर्णन करेंगे । स्वर्ग में सात पितृगण हैं उनमें से तीन अमूर्त्त स्वरूप हैं ।२। इन सबमें अपरिमित ओज वाले चार पितृगण मूर्त्तिमान् हैं । जो मूर्ति रहित पितृगण हैं । वे प्रजापति वैराज के हैं ।३। देवगण जिनका यजन किया करते हैं वे वैराज इस नाम से विश्रुत हैं । वे दिन लोक में योग से विभ्रष्ट होते हुए सनातन लोकों की प्राप्ति किया करते हैं ।४। पुनः वे ब्रह्म वेत्ताओं में ब्रह्म वादी होकर ही जन्म

ग्रहण किया करते हैं। वे फिर उत्तम सांख्य और योग की उसी स्मृति को प्राप्त कर लिया करते हैं।५। योग के द्वारा पुनः आवृत्ति करने में अत्यन्त दुर्लभ सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं। अतएव दाताओं के द्वारा योगियों को ही श्राद्ध देने चाहिये।६। इनकी जो मानसी कन्या हिमवान् की पत्नी मानी गयी है। उसका दायाद मैनाक पर्वत है और क्रौञ्च उसके उदर के अग्रज सुत समुत्पन्न हुआ है।७।

क्रौञ्चद्वीपः स्मृतो येन चतुर्थो घृतसंवृतः।
मेनाचसुषुवेतिस्रः कन्यायोगवतीस्ततः॥८
उमैकपर्णापर्णा च तीव्रव्रतपरायणाः।
रुद्रस्यैका सितस्यैका जैगीषव्यस्यचापरा॥९
दत्ता हिमवता बालाः सर्वा लोके तपोऽधिकाः।
कस्माद्दाक्षायणी पूर्वं ददाहात्मानमात्मना॥११
हिमवद्दुहिता तद्वत् कथं जाता महीतले।
संहरन्तो किमुक्तासौ सुता वा ब्रह्मसूनुना॥११
दक्षेण लोकजननी सूत ! विस्तरतो वद।
दक्षस्य यज्ञे वितते प्रभूतवरदक्षिणे॥१२
समाहूतेषु देवेषु प्रोवाच पितरं सती।
किमर्थं तात ! भर्तामि यज्ञेऽस्मिन्नाभिमन्त्रितः॥१३
अयोग्य इति तामाह दक्षो यज्ञेषु शूलभृत।
उपसंहारकृद्रुद्रस्तेनामंगलभागयम्॥१४

इसी क्रौञ्च के नाम से क्रौञ्चद्वीप कहा गया है। चतुर्थ घृत संवृत था। सेना में तीनों का प्रसव हुआ था फिर योगवती कन्या हुई।८। उमा—एकापर्ण-पूर्णा ये कन्याएँ थीं जो परम तीव्रव्रत में परायण थीं। एक रुद्र को, एक सित को और दूसरी जैगीषव्य के लिए हिमवान् ने प्रदान की थीं। सभी बालाएँ लोक में अधिक तपस्या वाला हुई थी। ऋषियों ने कहा—हे भगवन् ! यह बतलाइये की दक्ष की पुत्री दाक्षायणी

सती ने किस कारण से अपने ही आप स्वयं अपने को दग्ध कर दिया था ।९-१०। फिर इस महीतल में उसी भाँति वह हिमवान् की दुहिता कैसे और क्यों उत्पन्न हो गयी थी । संहार करती हुई इस सुता से ब्रह्मा के पुत्र दक्ष ने क्या कहा था जो कि समस्त लोकों की जननी थी । हे सूत जी ! आप कथा को कृपया कुछ विस्तार के साथ बतलाइये । सूतजी ने कहा—प्रजापति दक्ष यज्ञ विस्तृत रूप में फैला हुआ चल रहा था और यह यज्ञ ऐसा था जिसमें प्रभूत मात्रा में श्रेष्ठ दक्षिणाएँ दी गई थीं ।११-१२। जिस समय में समस्त देवगण समाभूत किये गये थे और भगवान् शम्भु को आमन्त्रित नहीं किया था तो यह देखकर सहन न करते हुये सती ने अपने पिता से कहा था—हे तात ! आपने किस कारण से केवल मेरे ही स्वामी को इस महान् विशाल यज्ञ में निमन्त्रित नहीं किया है ? उस समय में दक्ष ने उस जगदम्बा को यही उत्तर देते हुये कहा था कि वह शूलपाणि यज्ञों में सम्मिलित होने की योग्यताही नहीं रखते हैं अतः अयोग्य हैं क्योंकि वह शूद्र तो संसार का उपसंहार करने वाला है इसीलिए वह अमङ्गल भागी है ।१३-१४।

चुकापाथ सती देहं त्यक्षामीति त्वबुद्भवम् ।
दशानान्त्वञ्च भविता पितृणामेक पुत्रकः ॥१५

क्षत्रियत्वेऽवमेघे च रुद्रात्वं नाशमेष्यसि ।
इत्युक्त्वायोगमास्थायस्वदेहोद्भवतेजसा ॥१६
निदहन्ती तदात्मानं सदेवासुराकिन्नरैः ।
किं किमेतदिति प्रोक्ता गन्धर्वगणगुह्यकैः ॥१७
उपगम्याब्रवीद्दक्षः प्रणिपत्याथ दुःखितः ।
त्वमस्य जगता माताजगत्सौभाग्य देवता ॥१८
दुहितृत्वङ्गता देवि ममानुग्रहकाम्यया ।
न त्वया रहित किञ्चित् ब्रह्माण्डेसचराचरम् ॥१९
प्रसादं कुरु धर्मज्ञे न मान्त्यक्तुमिहार्हसि ।

प्राह देवी यदारब्धं तत्कार्य्यं मे न संशयः ॥२०
किं त्ववश्यं त्वया मर्त्ये हृतयज्ञेन शूलिना ।
प्रसादेलोकसृष्ट्यर्थं तपः कार्यं ममान्तिके ॥२१

यह कथन करने के अनन्तर ही सती अत्यन्त कुपित हो गई थी और उसने कह दिया था कि तुझसे समुत्पन्न मैं इस देह का भी अब त्याग कर दूँगी। और तू दश पितृगण का एक पुत्र वाला हो जायगा ।१५। इस क्षत्रियत्व वाले अश्व मेध में ही तुम रुद्र से ही नाश को प्राप्त हो जाओगे। बस, इतना ही कह कर सती योग में समास्थित हो गई थी। उसके देह से ही एक प्रकार के तेज का उद्भव हुआ था ।१६। उसी तेज से उस समय में सती ने आप दाह कर दिया था। निर्दहन करती हुई उससे देव, असुर, किन्नर गन्धर्वगण और गुह्यक सभी ने उससे यही कहा था—यह क्या हो रहा है' ।१७। फिर तो दक्ष का स्वयं उस सती के समीप में आकर उपस्थित हुआ था और प्रणिपात करके सती से कहा था–आप तो सम्पूर्ण जगत् की माता हैं और जगत् के सौभाग्य की देवता हैं ।१८। हे देवि ! मेरे ऊपर अनुग्रह करने की ही कामना से आप मेरी पुत्री होने को स्वीकार किया था और दुहिता बन गयी थीं। आपसे रहित इस ब्रह्माण्ड में सचराचर कुछ भी नहीं है ।१९। हे धर्मज्ञ ! अब प्रसाद (प्रसन्नता) कीजिये और मेरा त्याग करने के योग्य आप नहीं बनिये। इस पर देवी ने कहा था कि जो मैंने आरम्भ कर दिया है वह मुझे करना ही है क्योंकि यह परम कर्त्तव्य ही हो गया है - इसमें कुछ भी संशय शेष नहीं है ।२०। किन्तु अब यह परमावश्यक ही है कि अब भगवान् शूली के द्वारा तेरा यह यज्ञ विध्वंस हो ही जायगा तब उनके प्रसाद प्राप्त करने के लिए लोकों की सृष्टि के वास्ते मर्त्य लोक में मेरे ही समीप में तप करना चाहिये ।२१।

प्रजापतिस्त्वं भविता दशानामङ्गजोप्यलम् ।

मदंशेनाङ्गनाषष्टि र्भविष्यन्त्यङ्गजास्तव ॥२२

मत्सन्निधौ: तप: कुर्वंन् प्राप्स्यसेयोगमुत्तमम् ।
एवमुक्तोऽब्रवीद्दक्ष: केषुकेषुमयाऽनघे ॥२३
तीर्थेषु च त्वं द्रष्टव्या स्तोतव्या कैश्च नामभि: ।
सर्वदा सर्वभूतेषु द्रष्टव्या सर्वतो भुवि ॥२४
सर्वलोकेसु यत्किञ्चिद्रहितं न मया विना ।
तथापियेषुस्थानेषुद्रष्टव्यासिद्धिमीप्सुभि: ॥२५
स्मर्तव्याभूतिकामैर्तातानिवक्ष्यामितत्वत: ।
वाराणस्यांविशालाक्षीनैमिषेलिङ्गधारिणी ॥२६
प्रयागे ललिता देवी कामाक्षी गन्धमादने ।
मानसे कुमुदा नाम विश्वकायातथाम्बरे ॥२७
गोमन्ते गोमती नाम मन्दरे कामचारिणी ।
मदोत्कटा चैत्ररथे जयन्ती हस्तिनापुरे ॥२८

दक्षों का अङ्गज भी तुम समर्थ प्रजापति होओगे और मेरे अंश से साठ अंगनाएँ होंगी तथा तुम्हारे अंगज होंगे ।२२। मेरी सन्निधि में तपश्चर्य्या करते हुए उत्तम योग की प्राप्ति करोगे। जब इस प्रकार से जगदम्बा ने कहा था तो वह दक्ष देवी से बोला—हे अनघे ! मुझे आपके किन-२ तीर्थों में दर्शन होंगे और किन-२ नामों से आपको स्तुति करनी चाहिये ? ।२३। देवी ने कहा—इस भू-मण्डल में सर्वदा सभी ओर समस्त प्राणियों में मेरा दर्शन करना चाहिये ।२४। समस्त लोकों में मेरे बिना कुछ भी रहित पदार्थ या प्राणी नहीं है। तो भी सिद्धि की ईप्सा रखने वालों के द्वारा जिन स्थानों में मेरा दर्शन करना चाहिये तथा भूति का कामना रखने वालों को मेरा स्मरण करना चाहिये उन नामों को मैं अब तत्वसे बतला देती हूँ। यहाँ से ही देवी अष्टोत्तर शत नामों को आरम्भ होता है वाराणसी में मेरा विशालाक्षी नाम लेकर स्मरण तथा स्तवन करना चाहिये। नैमिष क्षेत्र में मेरा लिंगधारिणी नाम प्रसिद्ध हैं ।२५-२६। प्रयाग में ललिता देवी और

गन्ध मादन में कामाक्षी देवी है। मानस में मेरा कुमुदा नाम है तथा अम्बर में विश्वकाया नाम है ।२७। गोमन्त में गोमती नाम है और मन्दर में मेरा कामधारिणी यह शुभ नाम स्मरण के योग्य है। चैत्ररथ में मदोत्कटा तथा हस्तिनापुर में मेरा जयन्ती नाम लेकर ही स्तवन करे ।२८।

कान्यकुब्जे तथा गौरी रम्भा मलयपर्वते ।
एकाम्भकेकीर्तिमतीविश्वांश्वेश्वरेविदु ।।२९
पुष्करे पुरुहूतेति केदारे मार्गदायिनी ।
नन्दा हिमवत: पृष्ठे गोकर्णे: भद्रकर्णिका ।।३०
स्थानेश्वरे भवानी तु विल्वकें विल्वपत्रिका ।
श्रीशैले माधवी नाम भद्राभद्रेश्वरेतथा ।।३१
जया वराहशैले तु कमला कमलालये ।
रुद्रकोष्टयाञ्च रुद्राणी कालीञ्जरेगिरौ ।।३२
महालिंगे तु कपिला मर्कोटे मुकुटेश्वरी ।
शालिग्रामे महादेवी शिवलिंगे जलप्रिया ।।३३
मायापुर्यां कुमारी सन्ताने ललिता तथा ।
उत्पलाक्षी सहस्राक्षे कमलाक्षेमहोत्पला ।।३४
गंगाया मंगला नाम विमला पुरुषोत्तमे ।
विपांशायाममोघाक्षी पाटला पुण्ड्रवर्द्धने ।।३५

कान्य कुब्ज देश में गौरी-मलय पर्वत में रम्भा—एकारम्भक में कीर्तिमती तथा बिश्वेश्वर क्षेत्र में मेरा विश्वा नाम ही लिया जाता है ।२९। पुष्कर में पुरुहूता—केदार क्षेत्र मार्गदायिनी-हिमाचल पर्वत के पृष्ठ पर राम नाम यथा गोकर्ण में भद्र कर्णिकर कहकर मुझे याद किया जाता है ।३०। स्थानेश्वर में मेरा भवानी नाम है तथा विल्वक में मेरा विल्व पत्रिका नाम लेकर स्मरण या स्तवन किया जाता है। श्रीशल में मेरा माधवी नाम है तथा भद्रेश्वर में भद्रा नाम से मेरा

स्मरण किया जाता है।३१। वराह शैल में जया नाम लेकर मेरा स्मरण किया जाता है और कमलातप में मेरा ही नाम कामला है। रुद्रकोटि में रुद्राणी कहकर मुझे पूजते हैं तथा कालन्जर गिरि में मेरा ही नाम काली कहलाता है।३२। महालिंग में मेरा कपिला नाम कहा जाता है और मर्कोट में मुकुटेश्वरी मेरा शुभ नाम है। शालिग्राम में महादेवी तथा शिवलिङ्ग में मेरा ही नाम जल प्रिया है।३३। मायापुरी में कुमारी मेरा नाम है तथा सन्तान में ललिता कही जाती हूँ। सहस्ताक्ष में उत्पलाक्षी तथा भमताक्ष में मुझे ही महोत्पला कहा जाता है।३४। गङ्गा में मंगला नाम प्रसिद्ध है तथा पुरुषोत्तम में मेरा ही नाम विमला देवी है। विपाशा में मुझे अमोघाक्षी कहा जाता है और पुण्ड्र वर्धन में मुझे पाटला कह पुकारते हैं।३५।

नारायणी सुपार्श्वे तु विकूटे भद्रसुन्दरी।
विपुले विपुला नाम कल्याणी मलयाचले ॥३६
कौटवीकोटितीर्थे तु सुगन्धा माधवे वने।
कुब्जाग्रके त्रिसन्ध्यातुगङ्गाद्वारेरतिप्रिया ॥३७
शिवकुण्डे सुनन्दा तु नन्दिनी देविकातटे।
रुक्मिणो द्वारवत्यान्तु राधा वृन्दावने वने ॥३८
देवकी मथुरायान्तु पाताले परमेश्वरी।
चित्रकूटे तथा सीताविन्ध्येविन्ध्यनिवासिनी ॥३९
सह्याद्रावेकवीरा तु हर्मचन्द्रेति चन्द्रिका।
रमणा रामतीर्थेतु यमुनायां मृगावती ॥४०
करवीरे महालक्ष्मीरुमादेवी विनायके।
अरोगा वैद्यनाथे तु महाकाले महेश्वरी ॥४१
अभयेत्पुष्णतीर्थेषु चामृता विन्ध्यकन्दरे।
माण्डव्य माण्डवी नाम स्वाहामाहेश्वरेपुरे ॥४२

सुपार्श्व में मेरा नाम नारायणी देवी है और त्रिकूट में भद्रसुन्दरी

मुझे ही कहते हैं। विपुल मे मेरा विपुललेश्वरी नाम है तथा मलयाचल में कल्याणी नाम लेकर मेरा स्मरण किया जाता है।३६। कोटि तीर्थ में कोटवी मेरा शुभ नाम है एवं माधव वन में सुगन्धा मुझे ही कहा जाता है। कुब्जाम्रक स्थल में त्रिसंन्ध्या मुझे कहते हैं और गंगा द्वार में रति प्रिया कहकर मेरा ही स्मरण किया जाता है।३६। शिव कुण्ड में सुनन्दा-देविका तट में नन्दिनी-द्वारावतीपुरी में रुक्मणी और वृन्दावन में मेरा ही नाम राधा है।३८। मथुरा पुरी में देवकी—पाताल में परमेश्वरी-चित्रकूट में सीतादेवी तथा विन्ध्याचल में विन्ध्यवासिनी देवी मुझे कहा करते हैं।३६। सह्याद्रि में एकवीरा-हृम चन्द्रा-चन्द्रिका मेरा ही शुभ नाम है। रामतीर्थ में रमण यौर यमुना में मृगावती मुझे कहा करते हैं।४०। करवीर में मुझे ही महालक्ष्मी पुकारा जाता है तथा विनायक में उमादेवी मेरा नाम विख्यात है। वैद्यनाथ में मुझे अरोगा कहा जाता है और महाकाल स्थान में महेश्वरी मेरा ही नाम है।४१। उष्ण तीर्थों में मुझे अभया और विन्ध्य के कन्दरा में अमृता मुझे ही कहा करते हैं। माण्डव्य में मेरा माण्डवी नाम लेकर स्मरण किया जाया है तथा महेश्वर पुर में मुझे स्वाहा कहा करते हैं।४२।

छागलण्डे प्रचण्डातु चण्डिका मकरन्दके।
सोमेश्वरे वरारोहा प्रभासे पुष्करावती ॥४३

देवमाता सरस्वत्यां पारा पारातटे मता।
महालये महाभागा पयोष्ण्यां पिंगलेश्वरी ॥४४
सिंहिका कृतशौचेतु कार्तिकेये यशस्करी।
उत्पलावर्त्तके लोला सुभद्रा शोणसंगमे ॥४५
माता सिद्धपुरे लक्ष्मीरङ्गना भरताश्रमे।
जालन्धरे विश्वमुखी तारा किष्किन्धपर्वते ॥४६
देवदारुवने पुष्टिर्मेधा काश्मीरमण्डले।

भीमा देवी हिमाद्रौतु पुष्टिर्विश्वेश्वरे तथा ।४७
कपालमोचने शुद्धिर्माता कायावरोहणे ।
शङ्खोद्धारे ध्वरा नाम धृतिः पिण्डारके तथा ।४८
कालातु चन्द्रभागाया मच्छोदे शिवकारिणी ।
वेणायाममृता नाम बदर्यामुर्वशी तथा ।४९

विभिन्न स्थलों में विभिन्न नामों का स्मरण कर मेरी ही समाराधना की जाया करती है-छागलण्ड में प्रचण्डा-मकरन्दक में चण्डिका, सोमेश्वर में वरारोहा और प्रभासमें पुष्करावती मेरा नाम लिया जाता है ।४३। सरस्वती के क्षेत्र में मुझे देव माता कहा जाता है और पारा-तट में मेरा ही नाम पारा है । महालय में मुझे महाभाग कहते हैं तथा पयोष्णी में मुझे पिङ्गलेश्वरी देवी कहकर मेरा स्तवन-स्मरण किया जाता है ।४४। कृतशौच में सिंहिका मेरा शुभ नाम है और कार्तिकेय में मुझे ही यशस्करी कहा जाता है । उत्पलक वर्त्तक स्थान में मेरा ही लोला नाम लिया जाता है । शोण के सङ्गम क्षेत्र में सुभद्रा नाम का स्मरण किया जाता है ।४५। सिद्धपुर में मेरा माता नाम लिया जाता है तथा भरताश्रममें लक्ष्मीअङ्गना कहते हैं । जालन्धरमें मुझे ही विश्व मुखी इस पवित्र नाम से याद किया करते हैं तथा किष्किन्धा पर्वत में तारा देवी कहकर मेरी उपासना करते हैं ।४६। देवदारु वन में पुष्टि-मेरा नाम लिया जाता है और काश्मीर मण्डप में मेधा के नाम से मैं ही पुकारी जाया करती हूँ । हिमाद्रि में मेराही नाम भीमा कहा जाया करता है तथा विश्वेशर क्षेत्र में पुष्टि नाम है ।४७। कपाल मोचन में शुद्धि और कायावरोहण में माता कही जाती हूँ । शंखोद्धारमें ध्वरानाम स्मरण किया जाता है और पिण्डारक में धृति मेरा नाम याद करते हैं ।४८। चन्द्रभागा के तट में काला तथा मच्छोद में शिवकारिणी मेरा नाम है । वेणा में अमृता कही जाती हूँ तथा बदरी में उर्वशी कहते हैं ।४९।

ओषधा चोत्तरकुरौ कुशद्वीपे कुशोदका ।
मन्मथा हेमकूटे तु मुकुटे सत्यवादिनी ।५०
अश्वत्थे वन्दनीया तु निधिर्वैश्रवणालये ।
गायत्री वेदवदने पार्वती शिवसन्निधौ ।५१
देवलोके तथेन्द्राणी ब्रह्मस्येषु सरस्वती ।
सूर्य्यबिम्बे प्रभा नाम मातृणां वैष्णवीमता ।५२
अरुन्धती सतीनान्तु रामासु च तिलोत्तमा ।
चित्ते ब्रह्मकला नाम शक्तिःसर्वशरीरिणाम् ।५३
एतदुद्देशतः प्रोक्तं नामाष्टशतमुत्तमम् ।
अष्टोत्तरञ्च तीर्थानां शतमेतदुदाहृतम् ।५४
यः स्मरेच्छृणुयाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
एषु तीर्थेषु यः कृत्वा स्नानं पश्यति मां नरः ।५५
सर्वपापविनिर्मुक्तः सल्पं शिवपुरे वसेत् ।
यस्तु मत्परमं कालं करोत्येतेषु मानव ।५६
स भित्वा ब्रह्मसदनं पदमभ्येति शाङ्करम् ।
नाम्नामष्टशतं यस्तु श्रावयेच्छिवसन्निधौ ।५७
तृतीयायामथाष्टम्यां बहुपुत्रो भवेन्नरः ।
गोदाने श्राद्धदाने वा अहन्यहनि वा बुधः ।५८
देवार्चनविधौ विद्वान् पठन् ब्रह्माधिगच्छति ।
एवं वदन्ती सा तत्र ददाहात्मानमात्मना ।५९

उत्तर कुरु प्रान्त में औषधी—कुशद्वीप में कुशोदका—हेमकूटा में मंमथा और मुकुट में सत्यवादिनी मेरा नाम लिया जाता है ।५०। अश्वत्थ से वन्दनीय–वैश्रवण के आलय में निधि—वेद वदन में गायत्री तथा भगवान् शिव की सन्निधि में मुझे पार्वती कहते हैं ।५१। देवलोक में जो इन्द्राणी कही जाती है वह भी मैं ही हूँ और पितामह ब्रह्माजीके मुख में सरस्वती भी मैं हूँ । सूर्य के बिम्ब में प्रभा मेरा ही नामःएवं

स्वरूप है तथा मातृगण में वैष्णवी मैं ही कही जाती हूँ ।५२। समस्त सती नारियों में अरुन्धती मेरा ही स्वरूप है । सम्पूर्ण रामाओं में तिलोत्तमा मैं ही हूँ । चित्त में ब्रह्मकला मेरा नामहै तथा समस्त शरीर धारियों में शक्ति मुझे ही समझना चाहिये ।५३। यह अष्टोत्तर शत उत्तम नामावली इसी उद्देश्य से कही गयी है कि यह इसी बहाने से अष्टोत्तर शत तीर्थों के शुभ नाम भी बता दिये गये हैं ।५४। जो इस स्तोत्र का स्मरण करे या श्रवण करे वह सभी पापोंमें प्रमुक्त हो जाया करताहै । ये जो उक्त तीर्थ बताये गयेहैं उनमें जो भी कोई स्नान करके मेरे दर्शन किया करता है वह सभी प्रकार के पापों से विमुक्त होकर एक कल्प पर्यन्त शिवपुर में निवास किया करता है और जो मनुष्य उनमें पूरे समय को मेरे ही समाराधन में लगा दिया करता है वह तो फिर ब्रह्मगस्त्र का भी भेदन करके शङ्कर पद को प्राप्त किया करता है जो इन अष्टोत्तर शत नामों को भगवान् शिव की सन्निधि में स्थित होकर भगवान् को श्रवण कराया करता है और यह भी तृतीया में या अष्टमी तिथि में श्रवण कराता है तो वह मनुष्य ब्रह्मपुत्र ही हो जाता है । गोदाममें अथवा श्राद्ध दानमें जो बुध दिन प्रतिदिन देवार्चन विधि में विद्वान् इसका पाठ करता है वह ब्रह्म को अधिगत हो जाता है । इस प्रकार वह जगदम्बा दक्ष के यज्ञ मण्डप में कहती हुई ही अपने ही अपने ही आप अपने तेज से उस देवीने अपने शरीर का दाह कर लिया था ।५५-५९।

स्वायम्भुवोऽपिकालेनदक्षः प्राचेतसोऽभवत् ।
पार्वतीसाभवद्देवी शिवदेहार्द्धधारिणी ।६०
मेनागर्भसमुत्पन्ना भक्तिमुक्तिफलप्रदा ।
अरुन्धती जपन्त्येतत् प्रप योगमनुत्तमम् ।६१
पुरुरवाश्च राजर्षिर्लोके व्यजयतामगात् ।
ययातिः पुत्रलाभञ्च धनलाभञ्च भार्गवः ।६२
तथान्येदेवदैत्याश्च ब्राह्मणाःक्षत्रियास्तथा ।

वैश्या:शूद्राश्चबहव: सिद्धिमीयुर्यथेप्सिताम् ।६३
यत्रैतल्लिखितं तिष्ठेत् पूज्यते दैवसन्निधौ ।
न तत्र शोको दौर्गत्यं कदाचिदपि जायते ।६४

समय आने पर स्वामम्भुव भी प्राचेतस दक्ष होगया था। वह देवी पार्वती हुई थी जो भगवान् शिवके अर्ध शरीर के धारण करनेवाली थी ।६०। वह फिर मेना के गर्भ से समुत्पन्न हुई थी और भक्ति तथा मुक्ति दोनों ही के प्रदान करने वाली थी। इसका जप करती हुई अरुन्धती ने अत्युत्तम योग को प्राप्त कर लिया था।६१। पुरुरवा नाम वाले राजर्षि ने लोकमें विजय की प्राप्ति की थी। राजा ययाति ने पुत्र का लाभ लिया था और भार्गवने धनका लाभ प्राप्त किया था ।६२। इसी भाँति अन्य भी बहुत से देवगण, दैत्य वर्ग, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि ने भी इसी के समाराधन से यथेष्ट सिद्धि को प्राप्त किया था। ।६३। यह देवी का अष्टोत्तर शत नामक स्तोत्र जहाँ पर लिखित रूपमें स्थित रहता है और देव की सन्निधि में इसकी अर्चा की जाया करतीहै वहाँ पर कभी भी किसी भी प्रकार का शोक एवं कैसी भी दुर्गति कभी भी नहीं हुआ करती है ।६४।

१३—पितृ वंश कीर्तन

विभ्राजानाम चान्येतु दिविसन्ति सुवर्चस: ।
लोकाबर्हिषदोयत्र पितर: सन्तिसुव्रता: ।१
यत्र बर्हिणयुक्तानि विमानानि सहस्रश: ।
संकल्प्य बर्हिषो यत्र तिष्ठन्ति फलदायिन: ।२
यत्राभ्युदयशालासु मोदन्ते श्राद्धदायिन: ।
याञ्च देवासुरगणा गन्धर्वाप्सरसांगणा: ।३

यक्षरक्षोगणाश्चैव यजन्ति दिवि देवताः ।
पुलस्त्यपुत्राः शतशस्तपोयोगसमन्विताः ।४
महात्मानो महाभागा भक्तानामभयप्रदाः ।
एतेषां पीवरी कन्या मानसी दिविविश्रुता ।५
योगिनी योगमाता च तपश्चक्रे सुदारुणम् ।
प्रसन्नो भगवांस्तस्यावरंबव्रीतु सा हरेः ।६
योगवन्तं सुरूपञ्च भर्तारं विजितेन्द्रियम् ।
देहि देव ! प्रसन्नस्त्वं पतिं मे वदताम्वरम् ।७

सूतजी ने कहा—दिव लोक में विभ्रज नाम वाले अन्य भी सुवर्चस हैं जहाँ पर सुव्रत वर्हिण यह पितरलोक हैं ।१। जहाँ पर बर्हिण युक्त सहस्रों विमान हैं और जहाँ संकल्प करके वंषित फलों के प्रदान करने वाले समवस्थित रहा करते हैं ।२। जहाँ पर अभ्युदय शालाओं में श्राद्ध देने वाले परम मोह से समन्वित होकर रहा करतेहैं और जिनका भजन देवासुरगण तथा गन्धर्वों एवं अप्सराओं का समूह भी किया करता है।३। यक्ष और राक्षसों के गण भी तथा दिवलोक में देवता भी जिन का भजनार्चन किया करते हैं । सैंकड़ों ही पुलस्त्य मुनि के पुत्र जो तप और योग से भी समन्वित हैं महान् आत्मा वाले—महान् भाग वाले और भक्तों को अभयका दान देने वाले हैं । इनकी पीवरी मानसी कन्या दिवलोक में विश्रुत है ।४-५। वह योगिनी और योगमाता थी जिसने परम दारुण तपस्या की थी । उस पर जब भगवान् प्रसन्न हुए और उससे वरदान की याचना करने को कहा गया तो उसने हरि से यही वरदान माँगा था ।६। उसने कहा—हे देव ! आप कृपा कर योग वाला—रूप लावण्य से समन्वित-इन्द्रियों को जीतने वाला, बोलने वालों में परमश्रेष्ठ पति भरण करने वाला प्रदान कीजिये यदि आप मेरी तपश्चर्या से परम प्रसन्न हो गये हैं ।७।

उवाच देवो भविता व्यासपुत्रोयदा शुक्रः ।

भविता तस्य भयात्वं योग चार्य्यस्य सुव्रते ।८
भविष्यन्ति च ते कन्या कृत्वी नाम च योगिनी ।
पाञ्चालाधिपतेर्देया मानुष्यस्य त्वया तदा ।९
जननीब्रह्मदत्तस्ययोग सिद्धा च गौ:स्मृता ।
कृष्णोगौर:प्रभुशम्भुर्भविष्यन्तिचेतता: ।१०
महात्मानोमहाभागगमिष्यन्ति परम्पदम् ।
तानुत्पाद्य पुनर्योगात्सवरा मोक्षयेष्यसि ।११
सुमूर्त्तिमन्त: पितरो विशिष्टस्य सुता स्मृता: ।
नाम्ना तु मानसा: सर्व सर्वेते धर्म्ममूर्त्तय: ।१२
ज्योतिर्भासिषुलोकेषुये वसन्ति दिव: परम् ।
विराजमाना:क्रीडन्यित्रतेश्राद्धदायिन: ।१३
सर्वकामसमृद्धेषुविमानेष्वपिपादजा: ।
किं पुन: श्राद्धदा विप्राभक्तिमन्तक्रियान्विता: ।१४

भगवान् ने कहा—जिस समय में कृष्ण द्वैपायन व्यास जी का शुकदेव नामक पुत्र प्रसूता होगा तब उसकी तुम भार्या होओगी । हे सुव्रते ! वह योग के परम प्रमुख आचार्य ही होंगे ।८। उस समय में कृत्वी नाम धारिणी योगिनी कन्या तेरी उत्पन्न होगी । उस कन्या को तुझे पाञ्चाल देश के अधिपति मनुष्य को ही प्रदान करनी होगी ।९। ब्रह्मदत्त को जन्म देने वाली और योगसिद्धा गौ कही गयी है । उस समय में कृष्ण-गौर-प्रभु और शम्भु तेरे पुत्र समुत्पन्न होंगे ।१०। महान् आत्मा वाले महाभाग परम पद को गमन करेंगे । उनका समुत्पादन करके पुन: योग से वर सहित मोक्ष को प्राप्त करोगी ।११। महामुनीन्द्र वसिष्ठ के पुत्र सुमूर्त्तिमान् पितर कहे गयेहैं । नामसे तो ये सभी मानस पुत्र थे किन्तु वे सभी धर्म्ममूर्त्ति थे ।१२। दिवलोक से भी पर ज्योतिर्भासी लोकों में जो निवास किया करते हैं जहाँ पर वे श्राद्ध देने वाले विराजमान होते हुए आनन्द की क्रीड़ा क्रिया करते हैं, सर्व कामों से

समृद्ध विमानों में भी पादज हैं। उनके विषय में तो कहा ही क्या जावे जो भक्तिमान् और क्रिया से समन्वित श्राद्ध देने वाले विप्र होते हैं।१३-१४।

गौनमि कन्या येषान्तु मानसी दिवि राजते ।
शुकस्य दयिता पत्नी साध्यानां कीर्त्तिवर्द्धिनी ।१५
मरीचिगर्भानाम्नातुलोकामार्तण्डमण्डले ।
पितरोयतिष्ठन्तिहविष्यन्तोऽङ्गिरःसुताः ।१६
तीर्थंश्राद्धप्रदायान्ति ये च क्षत्रियसत्तमाः ।
राज्ञान्तु पितरस्तेवै स्वर्गमोक्षफलप्रदाः ।१७
एतेषांमानसीकन्या यशोदा लोकविश्रुता ।
पत्नीह्यंशुमतः श्रेष्ठा स्नुषा पञ्चजनस्य च ।१८
जनन्यथ दिलीपस्य भगीरथपितामही ।
लोकाःकामदुधानाम कामभागफलप्रदाः ।१९
सुस्वधा नाम पितरोयत्रतिष्ठन्तिसुव्रताः ।
आज्यपा नाम लोकेषु कर्दमस्य प्रजापतेः ।२०
पुलहाङ्गजदायादा वैश्यास्तान् भावयन्ति च ।
यत्र श्राद्धकृताः सर्वे पश्यन्तियुगपद्गताः ।२१

जिनकी गौ नाम वाली मानसी कन्या दिवलोक में विराजमान है वह शुक्र मुनि की दयिता पत्नी है और साध्यों की कीर्त्ति का वर्धन करने वाली है।१५। मार्त्तण्ड मण्डल में मरीचिगर्भा नाम से युक्तलोक पितर जहाँ पर अङ्गिरा के पुत्र हवि देते हुए स्थित रहा करते वहाँ पर तीर्थोंमें श्राद्ध देने वाले क्षत्रिय श्रेष्ठ जाया करते हैं। वे पितरगण राजाओं को स्वर्ग एवं मोक्ष के फल प्रदान करने वाले होते हैं।१६।।१७। इनकी मानसी कन्या जो है वह यशोदा के नाम से लोक में प्रसिद्ध है। यह अंशुमान् की श्रेष्ठ पत्नी थी और पञ्चाजन की स्नुषा थी।१८। वह राजा दिलीप को जन्म देने वाली माता थी तथा भगीरथ राजाकी पितामही थी। लोक कामोंके दोहन करने कामदुध थे जो

काम और भोग के फल देने वाले थे ।१९। सुन्दर व्रत वाले सुस्वधा नाम वाले पितृगण जहाँ पर अवस्थित रहा करते है वे प्रजापति कर्दम के लोकों मे आज्यपा नाम वाले हैं ।२०। वे प्रलहाङ्गज के दायाद हैं और उनमें वैश्यगण ही भक्ति का भावना रखा करते हैं । जहाँ पर सब श्राद्धों के करने वाले एक साथ गये हुए देखा करते है ।२१।

मातृभ्रातृपितृष्वसृ सखिसम्बन्धिबान्धवान् ।
अपिजन्मायुतैर्दृष्टाननुभूतान्सहस्रशः ।२२
एतेषां मानसी कन्या विरजानाम विश्रुता ।
या पत्नीनहुषस्यासीद्ययातेर्जननी तथा ।२३
एकाष्टकाऽभवत् पश्चाद् ब्रह्मलोके गता सती ।
त्रय एतेगणाःप्रोक्ताश्चतुर्थन्तुवदाम्यतः ।२४
लोकास्तु मानसा नाम ब्रह्माण्डोपरि संस्थिताः ।
येषान्तु मानसी कन्या नर्मदा नाम विश्रुता ।२५
सोमपानामपितरोयत्रतिष्ठन्तिशाश्वताः ।
कृत्वासृष्ट्यादिकसर्वं मानसेसाम्प्रतस्थिताः ।२६
नर्मदानाम तेषान्तु कन्यातोयवहासरित् ।
भूतानि या पावयति दक्षिणापथगामिनी ।२७
तेभ्यःसर्वे तु मनवःप्रजाःसर्गेषु निर्मिताः ।
ज्ञात्वाश्राद्धानि कुर्वन्तिधर्माभावेऽपिसर्वदा ।२८
तेभ्य एव पुनः प्राप्तुं प्रसादाद्योगसन्ततिम् ।
पितृणामादिसर्गं तु श्राद्धमेवविनिर्मितम् ।२९

वहाँ पर वे उन सबका दर्शन प्राप्त किया करते हैं जिनको दशों सहस्र जन्मों में भी कभी देखा था और सहस्रों की संख्या में उनका कुछ भी अनुभव नहीं है । उनमें माता-पिता-भ्राता-भगिनी-सखा—सम्बन्धी और बान्धव ये सभी होते हैं।२२। इनकी मानसी कन्या विरजा नाम से विश्रुत है जो राजा नहुष की पत्नी हुई थी तथा राजा ययाति

की जननी थी ।२३। पीछे ब्रह्मलोक में गयी हुई यह सती एकाष्टका हो गई थी । ये तीन गण ती हमने पितरों के आप लोगों को बतला दिये हैं । अब आगे चतुर्थगण बतलाते हैं ।२४। जो मानस लोक हैं वे सब ब्रह्माण्ड के ऊपर संस्थित हैं । जिनकी मानसी कन्या नर्मदा-इस नाम से विश्रुत है।२५। जहाँ पर सोमस नाम वाले शाश्वत पितृगण स्थित रहा करते हैं सृष्टि आदि सब कुछ करके इस समय मे मानस मे ही संस्थित हैं ।२६। उनकी नर्मदा नाम धारिणी कन्या तोय वहाँ सरित् है जो दक्षिण पथ का गमन करने वाली भूतों को पावन किया करती हैं ।२७ उनसे सब मनुगण और सर्गोंमें निर्मित प्रजा श्राद्धोंका ज्ञान प्राप्त करके उनकी सर्वदा धर्म के अभाव में क्रिया करते हैं ।२८। उनसे ही पुनः प्रसाद से योग सन्तति को प्राप्त करने के लिए पितृगणों के आदि सर्ग में यह श्राद्ध ही विशेष रूप से निर्मित किया गया है ।२९।

१४—श्राद्ध प्रकरण

श्रुत्वैतत्सर्वमखिलं मनुः पप्रच्छ केशवम् ।
श्राद्धकालञ्च विविधं श्राद्धभेदं तथैव च ।१
श्राद्धेषुभोजनीयाये च वर्ज्याद्विजातयः ।
कस्मिन्वासरभागेवापितृभ्यः श्राद्धमाचरेत् ।२
कस्मिन्दत्तं कथं याति श्राद्धन्तु मधुसूदन ।
विधिनाकेनकर्त्तव्यं कथं प्रीणातितत्पितॄन् ।३
कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ।४
नित्यन्नैमित्तिककाम्यंत्रिविधंश्राद्धमुच्यते ।
नित्यंतावत्प्रवक्ष्यामिअर्घावाहनवर्जितम् ।५

अदैवं तद्विजानीयात् पार्वणं पर्वसु स्मृतम् ।
पार्वणं त्रिविधंप्रोक्तं श्रृणुतावन्महीपते !
पार्वणे ये नियोज्यास्तु ताञ्छृनुष्व नराधिप ।६
पञ्चाग्नि: स्नानकश्चैवत्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ।
श्रोत्रियः श्रोत्रियसुतोविधिवाक्य विशारदः ।७

महर्षि सूतजी ने कहा—यह सब कुछ श्रवण करके मनु ने फिर भगवान् केशव से पूछा था कि श्राद्ध के जो अनेक काल होते हैं वे क्या हैं और श्राद्धों के जो बहुत से भेद हुआ करते हैं वे कौन से हैं ? ।१। श्राद्धों में जिन विप्रों को भोजन कराना चाहिए उनके समुचित स्वरूप क्या होने चाहिये और जो द्विजातिगण श्राद्ध में वर्जनीय हैं उनके क्या लक्षण होते हैं ? श्राद्ध दिन के किस भागमें करना चाहिए जो कि पितृगण के लिए समाचरित किया जाता है ? ।२। हे मधु सूदन ! किसमें दिया हुआ श्राद्ध किस प्रकार से जाकर वहाँ पहुँचता है? यह भी कृपया बतलाइये कि यह श्राद्ध किस विध-विधान से करना चाहिए और यह किस प्रकार से पितृगणों को प्रसन्नता दिया करता है ? ।३। मत्स्य भगवान् ने कहा—श्राद्ध प्रतिदिन ही करना चाहिये । इसे चाहे तो अन्नादि के द्वारा सम्पन्न करे अथवा उदक के द्वारा ही पूर्ण करे या पय-मूल और फलों के द्वारा भी श्राद्ध करे जो कि पितृगण की प्रीतिका समावहन करने वाला है । श्राद्ध देने वाले का कर्तव्य है कि उसकी भावना सदा पितृगण की प्रीतिको प्राप्त करने की अवश्य होनी चाहिए ।४। नित्य-नैमित्तिक और काम्य इस प्रकारसे तीन तरह के श्राद्ध हुआ करते हैं । अब मैं नित्य जो श्राद्ध होता है जो अर्घ और आवाहन से वर्जित है उसे बतलाता हूँ ।५। उसे अदेव ही जानना चाहिये । पर्व में होने वाला पार्वण श्राद्ध कहा गया है । हे महीपते ! यह पार्वण नामक श्राद्ध भी तीन तरह का कहा गया है—इसका भी श्रवण करिये ।६। हे नराधिप ! पार्वण श्राद्ध में जो नियोजन करने के योग्य होते हैं उनके

विषय में भी सुन लीजिये। इसमें नियोजन करने के योग्य ब्राह्मण पंचाग्नि तपने वाला-स्नातक-त्रिसुपर्ण-छहअङ्गशास्त्रों के ज्ञाता-श्रोत्रिय श्रोत्रिय पण्डित का पुत्र और विधि वाक्य का विशेष विद्वान् ही होना चाहिये। तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त गुणों में से उस विप्र में कोई भी एक गुण अवश्य ही होना चाहिये ।७।

सर्वज्ञोवेदविन्मन्त्री ज्ञातवंश: कुलान्वित: ।
पुराणवेत्ता धर्म्मज्ञ: स्वाध्यायजपतत्पर: ।८
शिवभक्त: पितृपर: सूर्य्यभक्तोऽथ वैष्णव: ।९
ब्रह्मण्यो योगविच्छान्तो विजितात्मा च शीलवान् ।
भोजयेच्चापि दौहित्रं यत्नत: स्वसुहृदगुरून् ।१०
विड्पति मातुलं बन्धुमृत्विगाचार्यसोमपान् ।
विड्पति मातुलं बन्धुं मृत्विगाचार्यसोमपान् ।
यश्चव्याकुरुतेवाक्यंयश्चमीमांसतेऽध्वरम् ।११
सामस्वरविधिज्ञश्च पंक्तिपावनपावन: ।
सामगोब्रह्मचारी च वेदयुक्तोऽथब्रह्मवित् ।१२
यत्रैते भुञ्जते श्राद्धे तदेव परमार्थवित् ।
एते भोज्या: प्रयत्नेन वर्जनीयान्निबोध मे ।१३

पार्वण श्राद्ध में वही नियोज्य होता है जो या तो सर्वज्ञ हो या वेदों का वेत्ता, मन्त्र शास्त्री-ऐसा जिसके वंश का पूर्ण ज्ञान हो-सुन्दर कुल में समुत्पन्न-पुराणों का ज्ञाता-धर्म्म का ज्ञान रखने वाला-वेदों के स्वाध्याय करने में तथा मन्त्र जाप में तत्पर हो ।७। जो विप्र भगवान् शङ्कर का परम भक्त हो वह-पितृगण में भक्ति रखकर परायण रहने वाला-भगवान् भुवन भास्कर का भक्त-विष्णु का भक्त-ब्राह्मण अर्थात् ब्राह्मणों पर दया तथा भक्ति रखने वाला-योग शास्त्र का ज्ञाता—परम शान्त स्वभाव से सम्पन्न बिजितात्मा और शील वाला ब्राह्मण को ही पार्वण श्राद्ध में भोजन कराना चाहिए। यदि दौहित्र प्राप्त हो तो यत्न पूर्वक उसे ही भोजन करावे अथवा अपने मित्र के गुरु वर्ग

को भोजन कराना चाहिये।९-१०। त्रिणति-मातुल—बन्धु—ऋत्विक—आचार्य—सोमय—वह जो वाक्य का व्याकरण करता हो—वह जो आधार के विषय में मीमांसा कर सकता हो—सामवेद के स्वरों की विधि का ज्ञाता—पाङ्क्तिपावन—सामग—ब्रह्मचारी—वेद से युक्त अथवा ब्रह्म का वेत्ता इनमें से कोई भी जिस श्राद्ध में भोजन किया करता है वह ही उत्तम प्रकार का श्राद्ध है और वही परमार्थ का वेत्ता श्राद्धदाता होता है। इतने प्रकार के जो ब्राह्मण बतलाये हैं उन्हीं में से किन्हीं को प्रयत्नपूर्वक भोजन श्राद्ध में कराना चाहिये। अब वे भी बतलाये जाते हैं जो श्राद्ध में वर्जित विप्र होते हैं उनको भी मुझसे ही जानलो।११-१३।

पतितोऽभिशस्तः क्लैब्यश्च पिशुनव्यङ्गरोगिणः ।
कुनखीश्यावदन्तश्चकुण्डगोलाश्वपालकाः ।१४
परिवित्तिर्नियुक्तात्मा प्रमत्तोन्मदारुणाः ।
वैडालो वकवृत्तिश्च दम्भोदेवलकादयः ।१५
कृतघ्नान्नास्तिकांस्तद्वन्म्लेच्छदेशनिवासिनः ।
त्रिशंकर्ववरद्राववीतद्रविडकोकणान् ।१६
वर्जयेल्लिङ्गिनः सर्वान् श्राद्धकाले विशेषतः ।
पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा विनीतात्मा निमन्त्रयेत् ।१७
निमन्त्रितान् हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान् ।
वायुभूतानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते ।१८
दक्षिणं जानुमालभ्यत्वमयातुनिमन्त्रितः ।
एवं निमन्त्र्यनियमंश्रावयेत्पितृबान्धवान् ।१९
अक्रोधनः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः ।
भवितव्यं भवद्भिश्च मया च श्राद्धकारिणा ।२०
पितृयज्ञं विनिवर्त्य तर्पणाख्यन्तु योऽग्निमान् ।

पिण्डान्वाहार्यकं कुर्याच्छ्राद्धमिन्दुक्षये मुदा ।२१

जो ब्राह्मण तो है किन्तु किसी कर्म वश पतित हो गया हो उसे—वह जो अभिशस्त हो—क्लीव—पिशुन—विगत या विशेष अङ्ग वाला—रोगी—कुनखी—कृष्ण वर्ण वाले जिसके दांत हों वह कुण्ड—गोलक और अश्वपालक ये ब्राह्मण श्राद्ध में वर्जित हैं। (पति के रहते हुए पर पुरुष से समुत्पन्न और पति के मृत होने पर परपुरुष से उत्पन्न कुण्ड और गोलक संज्ञा वाले होते हैं) ।१४। परिवित्ति—नियुक्ता—प्रमत्त-उन्मत्त-दारुण-वैड्राली-वरु के समान वृत्ति वाला-दम्भी-देवलक आदि विप्र भी श्राद्ध में वर्जनीय होते हैं ।१५। जो किए हुए उपकार को नहीं मानने वाले हैं—ईश्वर की सत्ता के नहीं मानने वाले—म्लेच्छों के देश में निवास करने वाले—त्रिशंकु, बर्बर, द्रावानीत्र, द्रविड, कोंकण में भी सब विप्र श्राद्ध में नियोजन के योग्य नहीं हैं और वर्जित हैं ।१६ श्राद्ध के समय में जितने भी लिङ्गधारी हैं नन सभी को विशेष रूप से वर्जित कर देना चाहिए पहिले दिन में या उससे भी पूर्व दिन में ही श्राद्ध में ब्राह्मण को निमन्त्रण दे देना चाहिये और परम विनीत भावसे सम्पन्न होते हुए निमन्त्रित करे ।१७। जो ब्राह्मण श्राद्ध में निमन्त्रित होते हैं पितृगण उन्हीं द्विजों पर उपस्थान किया करते हैं। वे वायु भूत होते हुये उनका ही अनुगमन किया करते हैं अतएव जब वे समासीन होवें तो उनकी उपासना करे। दक्षिण जानु का आलभन करके मैंने आपको निमन्त्रित किया है—इस रीति से निमन्त्रित करके पितृ गंधर्वों को नियमों का श्रवण कराना चाहिये।१८-१९। उस ब्राह्मणो से प्रार्थना करते हुए श्राद्ध कर्त्ता को कहना चाहिए कि आप लोगों को क्रोध से रहित शौच में परायण और निरन्तर ब्रह्मचर्य्य व्रत का परिपालन पूर्व रूप से करने वाले होना ही चाहिये। मैं श्राद्ध का करने वाला हूँ मुझे भी पितृयज्ञ को पूर्णतया सम्पन्न करके जिसका नाम तर्पण है जो अग्निमान है उसे इन्दुक्षय में परम प्रसन्नता से पिण्डाम्बर दायिक श्राद्ध करना चाहिए ।२०-२१।

गोमयेनोपलिप्ते तु दक्षिणप्रवणेस्थले ।
श्राद्धं समाचरेद्भक्त्या गोष्ठे वा जलसन्निधौ ।२२
अग्निमान्निर्वपेत्पित्र्यं चरुञ्छसाममुष्टिभिः ।
पितृभ्योनिर्वपामीतिसर्वंदक्षिणतोन्यसेत् ।२३
अभिधार्यं ततः कुर्य्यान्निर्वाहत्रयमग्रतः ।
तेऽपि तस्यायताः कार्य्याश्चतुरङ्गुलविस्तृताः ।२४
दर्व्वीत्रयन्तु कुर्व्वीत खदिरं रजतान्वितम् ।
रत्निमात्रं परिश्लक्ष्णं हस्ताकाराग्रमुत्तमम् ।२५
उदपात्रञ्च कांस्यञ्च मेक्षणञ्चसमित्कुशान् ।
तिलाः पात्राणिसद्वासोगन्धधूपानुलेपनम् ।२६
आहरेदपसव्यन्तु सर्वं दक्षिणतः शनैः ।
एवमासाद्य तत्सर्वं भवनस्याग्रतो भुवि ।२७
गोमयेनोपलिप्तायांगोमूत्रेणतुमण्डलम् ।
अक्षताभिः सपुष्पाभिस्तभ्यर्च्यापसव्यवत् ।२८

जो स्थल दक्षिण दिशा की ओर हो उसे ही गोमय से उपलिप्त कर लेना चाहिए और वहीं पर परम भक्ति की भावना से पूरित होकर श्राद्ध का समाचरण करना चाहिये । अथवा गोष्ठ में श्राद्ध करने का उत्तम स्थल रक्खे या किसी भी जलाशय की सन्निधि में श्राद्ध का समाचरण करे ।२२। जो अग्निमान् अर्थात् साग्निक हो उसे पित्र्य चरुका साम मुष्टियों से निर्वपन करना चाहिए । 'मैं' पितृगण के लिये निर्वपन करता हूँ'—यह कहते हुए सभी को दक्षिण की ओर न्यस्त करना चाहिए ।२३। इसके उपरान्त आगे निवपित्रय अभिधार्य्य को करना चाहिए ।२४। वहाँ पर तीन दर्वी करे । वे चाहे खदिर निर्मित हो या रजत से समन्वित हों । रत्निमात्र-परिश्लक्ष्ण और एक हाथ के आकार वाला उत्तम होना चाहिए ।२५। जल का पात्र-कांस्य-मेक्षण-

समिधा-कुशा-तिल-पात्र-सुन्दर वस्त्र-गन्ध-धूप और अनुलेपन इन समस्त पदार्थों का अपसव्य में धीरे से दक्षिण की ओर ही आहरण करना चाहिए। इस रीति से सबका समासाहन करके भवन के अगले भाग में भूमि में जो कि गोमयसे उपलिप्त की हुईहै उसमें गोमूत्र से मण्डल करे और फिर मपस व्यवत् पुष्पों के सहित अक्षतों से उसका अभ्यर्चन करना चाहिए। यही सब श्राद्ध करने के स्थल पर करके ही श्राद्ध का समारम्भ करे।२६-२८।

विप्राणां क्षालयेत्पादावभिनन्द्य पुनः पुनः।
आसनेषूपक्लृप्तेषु दर्भवत्सु विधानवत्।२९
उपस्पृष्टोदकान्विप्रानुपवेश्यानुमन्त्रयेत्।
द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीनेकैकमुभयत्र च।३०
भोजयेदीश्वरोऽपीह न कुर्य्याद्विस्तरं बुधः।
दैवपूर्वं नियोज्याथविप्रानर्घ्यादिनाबुधः।३१
अग्नौ कुर्यादनुज्ञातो विप्रैर्विप्रो यथाविधि।
स्वगृह्योक्तविधानेन कांस्येकृत्वाचरुं ततः।३२
अग्नीषोमयमाभ्यान्तु कुर्यादाप्यायनं बुधः।
दक्षिनाग्नौप्रतीतेवा व एकाग्निर्द्विजोत्तमः।३३
यज्ञोपवीतो निर्वर्त्यं ततः पर्युक्षणादिकम्।
प्राचीनावोतिना कार्यमतः सर्वं विजानता।३४
षट्चतस्माद्धविः शेषात्पिण्डान्कृत्वाततोदकम्।
दद्यादुदकपात्रैस्तु सतिलं सव्यपाणिना।३५

जब विप्रगण जो श्राद्ध में निमन्त्रित किए गये थे उस स्थल पर पदार्पण करें तो उनकी बारम्बार वन्दना करके सर्व प्रथम उनके चरणों का प्रक्षालन करना चाहिए। विधान पूर्वक दर्भोंसे समन्वित उपक्लृप्त आसन हैं उन पर उन विप्रों को जिन्होंने जल से अपना उपस्पर्शन कर कर लिया है उपवेशित करे और अनुमन्त्रण करना चाहिए। दैवकृत्य

में दो तथा पितृ कृत्य में तीन अथवा इन दोनों में ही एक-एक ही विप्र को निमन्त्रित करना चाहिए। इन्हीं ब्राह्मणों को भोजन करावे। चाहे कोई आर्थिकपूर्ण समर्थता भी क्यों न रखता हो श्राद्धकर्म में बुध पुरुष को इससे अधिक विस्तार नहीं करना चाहिए। दैवपूर्व नियोजन करके इसके अनन्तर ही बुध पुरुष को चाहिए कि निमन्त्रित विप्रों को अर्घ्य आदि उपचारों से उपसेवित करे ।२९-३१। विप्र को विधि के ही अनुसार उन निमन्त्रित विप्रों से अनुज्ञा प्राप्त करमें अग्नि में कृत्य का आरम्भ करना चाहिए। अपने गृह्य सूत्र के विधान के अनुसार ही फिर कांस्य पात्र में चरु को कर लेवे। फिर 'अग्नि सोमयम्'—इनसे बुध पुरुषको आच्यायन करना चाहिए। जो एकाग्नि द्विजोत्तम हो उसे दक्षिणाग्नि में अथवा प्रतीत में यज्ञोपवीती होते हुए पर्युक्षण आदि का निर्वर्त्तन करना चाहिए। इसलिये सबका ज्ञान रखने वाले पुरुषको प्राचीनावीति होकर ही करना चाहिए। उस हवि शेषमें छै पिण्डों की रचना करके फिर उदक देवे और तिलों के सहित उदक को सव्यपाणि से ही उदक पात्रों के द्वारा देना चाहिए ।३२-३५।

जान्वाच्य सव्यं यत्नेन दर्भयुक्तो विमत्सरः।
विधाय लेखा यत्नेन निर्वापेष्ववनेजनम् ।३६
दक्षिणाभिमुखः कुर्य्यात् करे दर्वी निधायवै ।
निधाय पिण्डमेकैकं सर्वदर्भेष्वनुक्रमात् ।३७
निनयेदथ दर्भेषु नामगोत्रानुकीर्तनैः।
तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृज्यास्लेभागिनाम् ।३८
तथैव च ततः कुर्यात् पुनः प्रत्यवनेजनम् ।
तदप्येतान्नमस्कृत्य गन्धधूपार्हणादिभः ।३९
एवमावाह्य तत्सर्वं वेदमन्त्रै र्यथोदितैः।
एकाग्नेरेकएव स्यान्निर्वापोदर्विका तथा ।४०
ततः कृत्वान्तरेदद्यात्पत्नीभ्योऽन्नंकुशेषु सः।

तद्वत्पिण्डादिकेकुर्यादावाहनविसर्जनम् ।४१
ततो गृहीत्वा पिण्डेभ्योमात्रा: सर्वा: क्रमेण तु ।
तानेव विप्रान्प्रथमंप्राशयेद्यत्नतोनर: ।४२

सव्य जान्वाच्य होकर यत्न पूर्वक मत्सरता से रहित और दर्भयुक्त होकर लेखा करे तथा फिर यत्न के साथ दक्षिणाभिमुख होदर्वी को हाथ में रखकर निर्वापों में अवनेजन करना चाहिए। एक-एक पिंड को रखकर अनुक्रम से सम्पूर्ण दर्भों में विनीत करे और उन दर्भों में उस समय नाम और गोत्र का भी कीर्तन करते हुए यह क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए।३६-३८। उसी भाँति से इसके पश्चात् पुन: प्रत्यवनेजन करना चाहिए। इन छैओं पिण्डों को गन्ध-धूप आदि की अर्हणा के द्वारा नमस्कार करे।३९। यथोदित जो वेद के मन्त्र हैं उनके द्वारा इसी प्रकार से उन सबका आवाहन करना चाहिए। जो एकाग्नि हो उसका एक ही होना चाहिए तथा निर्वापोदक क्रिया भी वैसी ही होवे ।४०। इसके अनन्तर यह सब सम्पादित करके उसे अन्तर में कुशों में उनकी पत्नियों के लिए अन्न देना चाहिए। और इनके लिए भी उसी भाँति पिण्ड आदि में आवाहन और विसर्जन करने चाहिए।४१। इसके पश्च त् उन्हें ग्रहण करके पिंडों से सब मात्रा क्रमेण अर्थात् क्रमपूर्वक उस श्राद्धदाता पुरुष को यत्नपूर्वक उन्हीं विप्रों को सर्व प्रथम खिला देनी चाहिए।४२।

यस्मादन्नात् धृता मात्राभक्षयन्तिद्विजातय: ।
अन्वाहार्यकमित्युक्तं तस्मात्तच्चन्द्रसंक्षये ।४३
पूर्वं दत्त्वातु तद्धस्तेसपवित्रं तिलोदकम् ।
तत्पिण्डाग्रप्रयच्छेतस्वधैषामस्त्वितिब्रुवन् ।४४
वर्णयन् भोजयेदन्नं मिष्ट पूतञ्च सर्वदा ।
वर्जयेत् क्रोधपरतां स्मरन्नारायण हरिम् ।४५

तृप्तान् ज्ञात्वा ततः कुर्याद्विकिरन् सार्वर्णिकम् ।
सोदकं चान्नमुद्धृत्य सलिलं प्रक्षिपेद्भुवि ।४६
आचान्तेषु पुनर्दद्याज्जलपुष्पाक्षतोदकम् ।
स्वस्तिवाचनकं सर्वं पिण्डोपरिसमाहरेत् ।४७
देवायत्तं प्रकुर्वीतश्राद्धनाशोऽन्यथाभवेत् ।
विसृज्यब्राह्मणांस्तद्वत्तेषांकृत्वा प्रदक्षिणम् ।४८
दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन् पितृन् याचेत मानवः ।
दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ।४९

जिस अन्न से जो मात्रा वहाँ पर धृत की गई है द्विजाति गण उसका भक्षण करते हैं । इसको अन्वाहार्यक कहा गया है । इस कारण से उस चन्द्र के संक्षय में पहिले पविनी के सहित तिलोदक को उनके हाथ में देकर फिर 'एषां स्वधा अस्तु' अर्थात् इनको स्वधा होवे—यह सुखसे बोलता हुआ उस पिण्डका अग्रभाग देवे । फिर सर्वदामिष्ट तथा पूर्त्त मन्त्रकी प्रशंसाका वर्णन करते हुए उनको भोजन कराना चाहिए । उस समय में क्रोध की भावना को सर्वदा वर्जित कर देना चाहिए और श्रीहरिनारायण का स्मरण करते हुए ही यह सब कर्म सम्पन्न करे ।४३-४५। जब यह जान लेवे कि विप्र भोजन से पूर्णतया तृप्त हो गये हैं तो फिर सार्ववर्णिक विकिरन करना चाहिए । उदक के सहित अन्न को उद्धृत करके भूमि में जल का प्रक्षेपण करे ।४६। जब विप्र साचान्त हो जावें तो उन्हें पुनः जल पुष्प, अक्षत और उदक देवे । स्वस्ति वाचनक सर्व का पिण्डों के ऊपर में समाहरण करना चाहिये । सब देवायन करे अन्यथा श्राद्ध का नाश हो जाता है । फिर ब्राह्मणों का विसर्जन करके उनकी प्रदक्षिणा करे । दक्षिण दिशा की ओर आकांक्षा करते हुए मनुष्य को पितृगण से याचना करनी चाहिए कि आप सब दाता हैं और हमारे वेदों तथा सन्तति का अभिवर्द्धन करें ।४७-४९।

श्रद्धाचंनोमाव्यगमत्बहुदेयञ्चनोऽस्त्विति ।
अन्नञ्चनो बहुभवेदतिथींश्च लभामहे ।५०
याचितारश्च नः सन्तुमाचयाचिष्मकञ्चनः ।
एतदस्त्विति तत्प्रोक्तमन्वाहार्यन्तुपार्वणम् ।५१
यथेन्दुसंक्षये तद्वदन्यत्रापि निगद्यते ।
पिण्डांस्तुगोऽजविप्रेभ्योदद्यादग्नौ जलेऽपिवा ।५२
विप्राग्रतो वा विकिरेद्वयोभिरभिवाशयेत् ।
पत्नीतुमध्यमंपिण्डं प्राशयेद्विनयान्विता ।५३
आधत्त पितरोगर्भमत्र सन्तानवर्धनम् ।
तावदुच्छेषणं तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः ।५४
वैश्वदेवं ततः कुर्यान्निवृत्ते पितृकर्मणि ।
इष्टैः सह ततः शान्तोभुञ्जीत पितृसेवितम् ।५५
पुनर्भोजनमध्वानं यानमायासमैथुनम् ।
श्राद्धकृच्छाद्धभुक् चैवसवमेतद्विवर्जयेत् ।५६
स्वाध्यायं कलहं चैव दिवास्वप्नञ्च सर्वदा ।
अनेन विधिना श्राद्धं निरद्धस्येह निर्वपेत् ।५७
कन्याकुम्भवृषस्थेऽर्के कृष्णपक्षेषु सर्वदा ।
यत्र यत्र प्रदातव्य सपिण्डिकरणात्परम् ।
तत्रानेन विधानेन देयमग्निमता सदा ।५८

पितृगण से करबद्ध होकर परमरत भावना से यह भी याचना करे कि आप ऐसी कृपा करें कि हमारे हृदय से कभी भी श्रद्धा का व्यय-गम न होवे और हमारे हृदय में बहुत अधिक दातृत्य शक्ति की वृद्धि होवे । हमारे पास अत्यधिक अन्न होवे और उसे अतिथि गण प्राप्त करते रहें ।५०। हम लोगों से याचना करने वाले लोग होवें जिनकी याचनाओं की पूर्ति हम किया करें तथा हम कभी भी किसी से याचना करने वाले न बने । ऐसीही कृपा आप लोग करें कि ऐसाही हो जावे ।

इसी को अन्वाहार्य पार्वण श्राद्ध कहा गया है।५१। जिस प्रकार से इन्दु के संक्षय में इसे कहा गया है उसी भाँति अन्यत्र भी इसको कहा जाता है। इन पिण्डों को फिर गौ, अजा और विप्रों को दे देना चाहिए अथवा इनको किसी पवित्र जलाशय में या अग्नि में प्रक्षिप्तकर देना चाहिए।५२। विप्रों के आगे विकिरण कर देवे अथवा पक्षियों का खिला देना चाहिए। पत्नी को मध्यम पिण्ड का प्राशन विनय से समन्वित होकर करना चाहिये।५३। इसमें पितृगण सन्तान के वर्धन करने वाला गर्भ रख दिया करते हैं। जब तक विप्रगण वहाँ से विसर्जित न होवें तब तक वह उनका उच्छिष्ट वैसे ही स्थित रहना चाहिए।५४। इस पितृकर्म्म के सांग सम्पन्न होकर निवृत्त हो जाने के पश्चात् वलि-वैश्वदेव करना चाहिए। इसके अनन्तर अपने समस्त इष्ट मित्रों तथा बन्धु-बांधवों के साथ मिलकर परम शान्त भाव से युक्त हो उस पितृ सेवन अन्न को खावें।०५। श्राद्ध करने वाले पुरुष को उसी दिन में दूसरी बार भोजन करना, मार्ग का गमन करना, यान में समारोहण करना, विशेष श्रम का कार्य करना, मैथुन नहीं करनी चाहिए। इस भाँति श्राद्ध भोजन करने वाले विप्र को भी इन नियमों का परिपालन करना चाहिए तथा दोनोंको ही इनका विसर्जन कर देना चाहिए।५६ श्राद्ध वाले दिन में स्वाध्याय भी न करे तथा किसी प्रकार का कलह और दिनमें निद्राभी न लेवे और सर्वदा इसका ध्यान रखना चाहिए। इसी विधि-विधान से यहाँ पर श्राद्धका निर्वपन करना चाहिये। कन्या राशि, कुम्भ और वृष राशि पर सूर्य के स्थित होने पर सर्वदा कृष्ण पक्षों में ही श्राद्ध देना चाहिये। सापिण्डीकरण से आगे ही जहाँ-२ पर श्राद्ध देना चाहिए। जो साधिक हो उसे भी इसी विधान से श्राद्ध देना चाहिए।५७-५८।

१५–साधारण अभ्युदय कीर्तन

अत: परं प्रवक्ष्यामि विष्णुना यदुदीरितम् ।
श्राद्धं साधारणं नामभुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।१
अयने विषुवे युग्मे सामान्ये चार्कसंक्रमे ।
अमावास्याष्टकाकृष्णपक्षे पञ्चदशीषु च ।२
आर्द्रामघारोहिणीषु द्रव्यब्राह्मणसङ्गमे ।
गजच्छायाव्यतीपाते विष्टि वैध तिवासरे ।३
वैशाखस्य तृतीयायां नवमी कार्तिकस्य च ।
पञ्चदशी च माघस्य नभस्येचत्रयोदशी ।४
युगादय: स्मृता ह्येता दत्तस्याक्षय्यकारिका: ।
तथा मन्वन्तरादौचदेयंश्राद्धं विजानता ।५
अश्वयुक् शुक्लनवमी द्वादशीकार्त्तिके तथा ।
तृतीया चैत्र मासस्य तथा भाद्रपदस्य च ।६
फाल्गुनस्य ह्यमावास्यापौषस्यैकादशीतथा ।
आषाढ़स्याऽपिदशमीमाघमासस्यसप्तमी ।७
श्रावणस्याष्टमी कृष्णातथाषाढीचपूर्णिमा ।
कार्तिकीफाल्गुनीचैत्रीज्येष्ठपञ्चदशीसिता ।
मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारिका: ।८

महा महर्षि श्रीसूतजी ने कहा–इससे आगे मैं साधारण श्राद्ध को बतलाऊँगा जो भगवान् विष्णु ने कहा था । यह श्राद्ध भुक्ति-मुक्ति के फल देने वाला है ।१। इस श्राद्ध के देने के समय बतलाये जाते हैं अयन-विषुव-युग्म–सामान्य सूर्य संक्रांति–अमावस्या अष्टकाकृष्णपक्ष पञ्चादशी-आर्द्रा-मघा-रोहिणी-द्रव्यब्राह्मण सङ्गम––गजच्छाया व्यति-पात-विष्टि–वैधृतिवार वैशाख की तृतीया-कार्त्तिक मास की नवमीं तिथि–माघ की पञ्चदशी–नभस्य मास की त्रयोदशी तिथि से युगादय दिए हुए श्राद्ध को अक्षय करने वाले कहे गये हैं । उसी भाँति मन्वन्तर

के आदि में विशेष ज्ञान रखने वाले पुरुष को श्राद्ध देना चाहिए।२। ।३-५। अश्वयुक की शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि तथा कार्तिक में द्वादशी तिथि चैत्र और भाद्र पद मास की तृतीया तिथि—फाल्गुन की अमावस्या और पौष मास की एकादशी तिथि—आषाढ़ की भी दशमी तथा माघ मास की सप्तमी तिथि श्रावण की अष्टमी कृष्ण पक्ष वाली-आषाढ़ी पूर्णिमा तथा कार्त्तिकी-फाल्गुनी-चैत्री और ज्येष्ठ की सिता पक्ष पच तथा मन्वन्तर दिये हुए श्राद्ध के अक्षय करने वाली तिथियाँ हैं।६-८।

यस्यां मन्वन्तरस्यादौ रथमास्तेदिवाकरः ।
माघमासस्यसप्तम्यांसातु स्याद्रथसप्तमी ।६
पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतोमनुष्यः ।
श्राद्धं कृतं तेन समाः सहस्रं रहस्यमेतत् पितरो वदन्ति ।१०
वैशाख्यामुपरागेषु तथोत्सवमहालये ।
तीर्थायतनगोष्ठेषु द्वीपोद्यानगृहेषु च ।११
विविक्तेषूपलिप्तेषु श्राद्धं देय विजानता ।
विप्रान् पूर्वं परेचाह्निविनीतात्मानिमन्त्रयेत् ।१२
शीलवृत्तगुणोपेतान् वयोरूपसमन्वितान् ।
द्वौ दैवे त्रींस्तथा पैत्र्ये एकैकमुभयत्रवा ।१३
भोजयेत्सुसमृद्धोपिनप्रसज्जेतविस्तरे ।
विश्वान्देवान्यवैः पुष्पैरभ्यर्च्यासनपूर्वकम् ।१४

मन्वन्तर के आदि में जिस तिथि में दिवाकर रथ में विराजमान होते हैं वह माघ मास की सप्तमी तिथि है, अतएव वह रथ सप्तमी कही भी जाती है।६। इस तिथि में यदि कोई प्रयुत मनुष्य अपने पितृ के लिए तिलों से बिमिश्रित जल मात्र भी समर्पित कर देता है तो ऐसा मान लिया जाता है कि उस व्यक्ति ने एक सहस्र वर्ष तक का श्राद्ध कर लिया है—इस रहस्य को पितृगण ही कहा करते हैं।१०। वैशाखी

पूर्णिमा में, नपरागों में, उत्सव महालय में, तीर्थ-देवायतन और गोष्ठ में, द्वीप-उद्यान-गृह में तथा परम विविक्त (एकान्त) और गोमय से उपलिप्त स्थल में विशेष ज्ञाता पुरुष को पितृगण के लिए श्राद्ध देना चाहिए। पूर्व या पर दिन में ही नियोजन के योग्य अधिकारी विप्रोंको विनीत आत्मा वाला परम विनम्र होकर निमन्त्रित कर देना चाहिए। ।११-१२। जो भी विप्र श्राद्धके निमन्त्रित किये जावें वे शील-वृत्त और गुणों से युक्त तथा वय एवं रूप से समन्वित होने चाहिए। दैव में दो और पैत्र्य में तीन ही विप्रों को श्राद्ध में निमन्त्रण देना चाहिए अथवा इन दोनों में ही एक-एक विप्र को निमन्त्रित कर देना पर्याप्त होता है ।१३। चाहे कोई कितना ही अधिक समृद्धिशाली भी क्यों न हो जिसे धन के अधिक व्यय होने की कुछ भी परवाह न हो तो भी श्राद्ध में विस्तार करने के लिए प्रसज्जित नहीं होना चाहिए। विश्व देवों को यवों के तथा पुरुषों के द्वारा अभ्यर्चन करते हुए पहले आसन ग्रहण करना चाहिए ।१४।

पूरत्येपात्रयुग्मन्तु स्थाप्य दर्भपवित्रकम् ।
शन्नोदेवीत्यपःकुर्य्याद्यवोऽसीतियवानपि ।१५
गन्धपुष्पैश्च सम्पूज्य वैश्वदेवं प्रतिन्यसेत् ।
विश्वेदेवा स इत्याभ्यामावाह्यविकिरेद्यवान् ।१६
गन्धपुष्पैरलङ्कृत्ययादिव्येत्यपउत्सृजेत् ।
अभ्यर्च्यताभ्यामुत्सृष्टंपितृकार्य्यं समारभेत् ।१७
दर्भासनन्तुतत्स्वादौत्रीणिपात्राणिपूरयेत् ।
सपवित्राणिकृत्वादौशन्नोदेवीत्यपःक्षिपेत् ।१८
तिलोऽसीति तिलान् कुर्य्याद्गन्धपुष्पादिकं पुनः ।
पात्रं वनस्पतिमयंतथापर्णमयं पुनः ।१९
जलजं वाथ कुर्व्वीत तथा सागरसम्भवम् ।
सौवर्णं राजत वापि पितृणां पात्रमुच्यते ।२०

रजतस्य कथा वापि दर्शनं दानमेव वा ।
राजतैर्भाजनैरेषामथवा रजतान्वितैः ।२१

दो पात्रों की स्थापना करके दर्भ और पवित्री के सहित जल से उन्हें पूरित करें तथा 'शन्नोदेवी'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा जल करना चाहिए । 'यवोऽसीति'—इत्यदि मन्त्र को उच्चारण करते हुए यवों को भी डाल देवे ।१५। गन्ध और पुष्पों से वैश्वदेव का भली-भाँति पूजन करके प्रतिन्यास कर देना चाहिए । 'विश्वेदेवास'—इत्यादि मन्त्रों के द्वारा आवाहन करके यवों को विकीर्ण करना चाहिए ।१६। गन्ध पुष्पों से समलंकृत करके 'या दिव्य'—इत्यादि मन्त्र को बोलते हुए जल का उत्सर्ग करे, उन दोनों से अभ्यर्चन करके फिर उत्कृष्ट पितृ कार्य का समारम्भ कर देना चाहिये ।१७। आदि में दर्भासन देकर तीन पात्रों को पूरित कर देवे और आदि में उन पात्रों को पवित्री के सहित करके फिर 'शन्नादेवी रभिष्ठये'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा जल का क्षेपण करना चाहिये ।१८। 'तिलोऽसीति' मन्त्र को पढ़ते हुए तिलों का क्षय करे और फिर गन्ध, पुष्प आदि का क्षेपण करना चाहिए । पात्र को वनस्पतियों से पूर्ण तथा पूर्णमय कर देवे ।१९। अथवा जलज करे तथा सागर सम्भव कर देवे । पितृगणों के पात्र सुवर्ण निर्मित अथवा रजत (चाँदी) से बने हुए रजत कहे जाया करते हैं ।२०। रजत की कथा भी दर्शन और दान ही होना है । इन पितृगणों के लिए श्राद्ध आदि जो कुछ भी दिया जावे वह चाँदी के निर्मित पात्रों के द्वारा ही देना चाहिए अथा चाँदी से समन्वितों के द्वारा करना चाहिए ।२१।

वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते ।
तथार्घ्यपिण्डभोज्यादौ पितॄणां राजतंमतम् ।२२
शिवनेत्रोद्भवं यस्मात्तस्मात्तत्पितबल्लभम् ।
अमङ्गलं तद्यत्नेन देवकार्येषु वर्जयेत् ।२३
एवं पात्राणि संकल्प्य यथालाभं विमत्सरः ।

यादिव्येतिपितुर्नामगोत्रैर्दर्भंकरोन्यसेत ।२४
पितृ न् ।वाहयिष्यामि कुर्वित्युक्तस्तु तै पुन: ।
उशन्तस्त्वा तथायन्तु ऋग्भ्यामावाहयेत्पितृ न् ।२५
यादिव्येत्यर्घ्यमुत्सृज्य दद्याद् गन्धादिकांस्तत: ।
हस्तात्तदुदकं पूर्वं दत्वा संश्रवमादित: ।२६
पितृपात्रे निधायाथन्युब्जमुत्तरतोन्यसेत् ।
पितृभ्य: स्थानमसीतिनिधाय परिषेचयेत् ।२७
तत्रापि पूर्ववत् कुर्यादग्निकार्यं विमत्सर: ।
उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामाहृत्य परिवेषयेत् ।२८

जो श्रद्धापूर्वक केवल जल भी दिया गया है वह भी अक्षय ही उपकालीन हो जाता है । इसी भाँति से अर्घ्य-पिण्ड भोज्य आदि के कर्म में पितृगणों के लिए राजत माना गया है ।२२। भगवान् शिव के नेत्रों से उत्पत्ति होती है इसी कारण से यह पितृगण का प्रिय है । जो अमङ्गल है उसे यत्नपूर्वक देव कार्यों से वर्जित करना चाहिए ।२३। इस रीति से पात्रों का सङ्कल्प करके लब्धानुसार मत्सरता के भाव से रहित होकर ही 'या दिव्या'—इत्यादि मन्त्र से पिता के नाम गोत्रों से हाथ में दर्भ ग्रहण करने वाले को न्यास करना चाहिए ।२४। 'पितृन् आवाहयिष्यामि'—अर्थात् मैं अपने पितृगणों का आवाहन करूँगा—इस रीति से अनुज्ञा प्राप्त करने के लिये पूछो । जब ब्राह्मण कह देवे कि 'कुरु'-अर्थात् आवाहन करो तभी आवाहन पूछकर प्राप्तानुज होकर ही करे । 'उशन्तस्त्वा' 'तथायन्तु'–इन दो ऋचाओंके द्वारा पितृगण का आवाहन करे ।२५। 'या दिव्या'—इस मन्त्र को पढ़कर अर्घ्य का उत्सर्ग करके फिर पीछे गन्ध आदिक अन्य पूजनोपचारों का देना चाहिए । हाथ से पूर्व में उस जल को देकर आदि से संश्रव को पितृगण के पात्र में रखकर उत्तर की ओर न्युब्ज न्यास करना चाहिए। 'पितृभ्यास्थनमसि'—इस मन्त्र से रखकर परिषेचन करे ।२६-२७।

वहाँ पर भी पूर्व की ही भाँति मात्सर्य से रहित होकर ही अग्नि कार्य करना चाहिए। दोनों हाथों से समाहरण करके ही परिवेषण करना चाहिए।२८।

प्रशान्तचित्तः सततं दर्भपाणिरशेषतः।
गुणाढ्यैः सुपशाकैस्तु नानाभक्ष्यैर्विशेषतः।२९
अन्नन्तु सदधिक्षीरं गोघृतं शर्करान्वितम्।
मासम्प्रीणाति वै सर्वान्पितॄन्नित्याह केशवः।३०
यत्किञ्चिन्मधुसमिश्रं गोक्षीरं घृतपायसम्।
दत्तमक्षयमित्याहुः पितरः पूर्वदेवता।३१
स्वाध्यायं श्रावयत् पित्र्यं पुराणान्यखिलानि च।
ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां स्तवानि विविधानि च।३२
इन्द्राग्निसोमसूक्तानि पावनानि स्वशक्तितः।
बृहद्रथन्तरंतद्वज्ज्येष्ठसामसरौहिणम्।३३
तथैव शान्तिकाध्यायं मधु ब्राह्मणमेव च।
मण्डल ब्राह्मणंतद्वत्प्रीतिकारितुयत् पुनः।३४
विप्राणामात्मनश्चैव तत्सर्वं समुदीरयेत्।
भुक्तवत्सु ततस्तेषु भोजनोपान्तिके नृप !।३५

निरन्तर श्राद्ध कर्म में प्रशान्त चित्त वाला रहकर ही उसे करे और सर्वदा हाथमें दर्भ रखे। गुणोंसे युक्त सूक्त तथा शाक आदि अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों का विशेष रूप से परिवेषण करे।२९। जो भी अन्न दिया जावे वह दधि-क्षीर और शर्करा से समन्वित ही देना चाहिए। भगवान् केशव ने कहा है कि इस तरह से दिया हुआ श्राद्ध एक मास पर्यन्त पितृगण को प्रसन्न किया करता है।३०। जो कुछ भी मधुसे संमिश्रित गौ का क्षीर, घृत पायस दिया हुआ है वह सब अक्षय अर्थात् क्षय से रहित हो जाया करता है—ऐसा पितृगण और पूर्वदेवता कहते हैं।३१। पित्र्य अर्थात् पितृगण से सम्बन्धित स्वाध्याय का श्रवण

करावे तथा सभी पुराणों को सुनाना चाहिए। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के विविध स्तवों का श्रवण कराना चाहिए।३२। इन्द्र-अग्नि और सोम के जो परम पावन सूक्त हैं उनका श्रवण अपनी शक्ति से करावे। इसी भाँति वृहद् अन्तर और ज्येष्ठ साम सरौहिण का श्रवण भी शक्ति के अनुसार बन पड़े तो कराना चाहिए।३३। इसी तरह से शान्तिकाध्याय और साधु ब्राह्मण एवं मण्डल तथा ब्राह्मण का श्रवण करावे। तात्पर्य यही है कि जो भी कुछ पितृगण के लिए प्रीति का करने वाला हो वही उस समय में श्रवण कराना उचित होता है।३४। हे नृप ! इसके पश्चात् उन सबके भुक्तवान् हो जाने पर ही भोजन के समीप में ही विप्रों का तथा अपना सब उदीरित करना चाहिए।३५।

सार्ववर्णिकमन्नाद्य सन्नीयाल्पाव्य वारिणा।
समुत्सृजेद् भुक्तवतामग्रतो विकिरेद्भुवि।३६
अग्निदग्धास्तु ये जीवा येऽप्यदग्धाकुले मम।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु प्रयान्तु परमाङ्गतिम्।३७
येषां न माता न पिता न बन्धुर्न गोत्र शुद्धिर्न तथान्नमस्ति।
ततृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतत् प्रयातु लोकेषु सुखाय तद्वत्।३८
असंस्कृतप्रमीतानान्त्यक्तानां कुलयोषिताम्।
उच्छिष्टभागधेय: स्याद्दर्भे विकिरयोश्चय:।३९
तृप्ता ज्ञात्वोदकं दद्यात् सकृद्विप्रकरे तथा।
उपलिप्ते महीपृष्ठे गोशकृन्मूत्रवारिणा।४०
निधाय दर्भान् विविधद्दक्षिणान्प्रयत्नत:।
सर्ववर्णेन चान्नेन पिण्डांतु पितृयज्ञवत्।४१
अवनेजनपूर्वन्तु नामगोत्रेण मानव:।
गन्धधूपादिकं दद्यात् कृत्वा प्रत्यवनेजनम्।४२

सभी वर्णों का अन्न आदि का ग्रहण कर लेवे और उसको लाकर

जल से प्लावित कर लेना चाहिए फिर उसको मुक्त हुओं के सामने समुत्कृष्ट करना चाहिए और भूमि में विकीर्ण कर देवे ।३६। जिस समय में भूमि में अन्न को विकीर्ण करे उस समय में 'अग्नि-दग्धास्तु ये 'जीवाग्नेऽप्यदग्धा कुलेमम । भूमि ......" इत्यादि मन्त्र का मुख से समुच्चारण करना चाहिए । इसका अर्थ है जो भी कोई जीव मेरे कुल में आग से जलकर मृत हो गये हों अथवा जिनका कभी दाह ही नहीं किया गया हो और वैसे ही कहीं मृत शव पड़कर विनष्ट हुआ हो वे सभी भूमि में समर्पित इस विकीर्ण अन्न से तृप्ति को प्राप्त करें । तथा परम गति की प्राप्ति भी करें ।३७। जिनके कोई भी माता-पिता और बन्धु नहीं—न उनके गोत्र की ही शुद्धि है और न अन्न ही प्राप्त हैं उन सबकी तृप्ति के लिए ही यह अन्न भूमि में विकीर्ण करके दिया गया है । यह लोकों में उन सबको उसी भाँति सुख के लिए होवे ।३८। असंस्कृत प्रमीत त्यक्त कुल योषितों का उच्छिष्ट भाग धेय और जो दर्भ में विकीर्ण है वह होवे ।३६। जिस समय में यह समझ लेवे कि भोजन करके विप्र प्रायः तृप्त हो चुके हैं तब एक बार विप्र के कर में उदक देना चाहिए । गोमय और गोमूत्र के द्वारा उपलिप्त भूमि के पृष्ठ भाग पर उन दर्भों को निधापित कर देवे किन्तु विधिपूर्वक दक्षिण की ओर ही उनके अग्रभाग होने चाहिए ऐसा ही प्रयत्न पूर्वक करे । सभी वर्णों वाले पुरुषों के अन्न से पितृ यज्ञ की भाँति पिण्डों की रचना करनी चाहिए ।४०-४१। मानव को अवनेजन पूर्वक नाम और गोत्र के द्वारा गन्ध-धूप आदिक सदा समर्पित करे और फिर प्रत्यवनेजन करना चाहिए ।४२।

जान्वाच्यसव्यं सव्येनपाणिनाथ प्रदक्षिणम् ।
पित्र्यमानीय तत्कार्यं विधिवद्दर्भपाणिना ।४३
दीपप्रज्वालनंतद्वत् कुर्यात्पुष्पार्चनं बुधः ।
अथाचान्तेषु चाचम्यवारिदद्यात्सकृत् सकृत् ।४४

अथ पुष्पक्षतान् पश्चादक्षय्योदकमेव च ।
सतिलं नामगोत्रेणदद्याच्छक्तयाचदक्षिणाम् ।४५
गोभूहिरण्यवासांसि भव्यानि शयनानि च ।
दद्याद्यदिष्टं विप्राणामात्मनः पितुरेव च ।४६
वित्तशाठ्येन रहितः पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ।
ततः स्वधावाचनकं विश्वेदेवेषु चोदकम् ।४७
दत्त्वाशीः प्रतिगृह्णीयाद्विश्वेभ्यः प्राङ्मुखो बुधः ।
अघोराः पितरः सन्तु सन्त्वित्युक्तः पुनर्द्विजैः ।४८
गोत्रं तथावर्द्धतान्नस्तथेत्युक्तश्च तैः पुनः ।
दातारोनोऽभिवर्द्धन्तामिति चैवमुदीरयेत् ।४९

सव्य पाणि से जान्वा वाक्य करे इसके अनन्तर पिण्ड को प्रदक्षिण में लाकर दर्भयुक्त हाथ से विधिपूर्वक वह करना चाहिए ।४३। उसी तरह दीपक का प्रज्वालन करे और बुध पुरुष को पुष्पार्चन करना चाहिए । इसके पश्चात् उन विप्रों के विप्रों के आचान्त होने पर और आचमन करके एक-एक बार जल देवे ।४४। इसके अनन्तर पुष्प और अक्षतों को तथा अक्षय्य उदक जो तिलों के सहित हो नाम और गोत्र का उच्चारण करके देना चाहिए तथा शक्ति के अनुसार दक्षिणा भी देवे । ।४५। दक्षिणा में गौ-भूमि-सुवर्ण-वस्त्र और भव्य शय्या इनमें अपना जो यत्यन्त प्रिय एवं अभीष्ट हो तथा पिता को जो परम इष्ट पदार्थ हों उन्हीं को ब्राह्मणों को देना चाहिए ।४६। दक्षिणा आदि को देने में वित्तशाठ्य से रहित होकर ही पितृगण की प्रीति प्राप्त करता हुआ संकीर्णता दूर रहकर करे । इसके उपरान्त फिर विश्वेदेवों में प्रेरणा करने वाला स्वधा का वाचनक करे ।४७। यह सब समर्पित करके बुध पुरुष को पूर्व की ओर मुख वाला होकर विश्वेदेवों से आशीर्वाद का प्रतिग्रहण करना चाहिए । फिर द्विजों के द्वारा पितृगण अघोर होवें—इस प्रकार से कहा हुआ श्राद्धकर्ता हो—फिर उनके द्वारा

कहा जावे—हमारा—गोत्र वृद्धिशील होवे और इसके अनन्तर हमारे दातागणों का वर्धन होवे—इस प्रकार से यह कहना चाहिए ।४८-४९।

एता: सत्याशिष: सन्तु सन्त्वित्युक्तश्च तै: पुन: ।
स्वस्तिवाचनकं कुर्यात् पिण्डानुद्धृत्य भक्तित: ।५०
उच्छेषणन्तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिता: ।
ततो ग्रहबलिं कुर्यादिति धर्म्मव्यवस्थिति: ।५१
उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्यास्तिकस्य च ।
दासवर्गस्य तत्पित्र्यं भागधेयं प्रचक्षते ।५२
पितृभिर्निर्मितं पूर्वमेतदाप्यायनं सदा ।
अपुत्राणां सपुत्राणां स्त्रीणामपि नराधिप ! ।५३
ततस्तानग्रत: स्थित्वा परिगृह्योदपात्रकम् ।
वाजेवाज इतिजपन् कुशाग्रेण विसर्जयेत् ।५४
बहि: प्रदक्षिणान्कुर्यात् पदान्यष्टावनुव्रजन् ।
बन्धुवर्गेण सहित: पुत्रभार्यासमन्वित: ।५५

ये सभी आशीर्वाद सत्य होवें—उनके द्वारा पुन: यह कहा जावे कि अवश्य सत्य हों । भक्ति भाव से पिण्डों को उद्धृत करके स्वस्तिवाचन करना चाहिए ।५०। जब तक उस श्राद्ध के स्थल से ब्राह्मण लोग विसर्जित होवें तक उनके भोजन का उच्छिष्ट उसी दशा में स्थित रहना चाहिए । इसके अनन्तर ग्रहबलि करे—यही इतनी धर्म्म की व्यवस्था होती है ।५१। जो भूमि पर गिरा हुआ उच्छेपण है वह जो जिह्म न हो तथा आस्तिक हो ऐसे दास वर्गके लिये ही वह पित्र्यभाग धेय कहा जाता है ।५२। हे नराधिप ! पितृगण के द्वारा यह सदा आप्यायन (तृप्त होन) पहिले ही निर्मित किया गया है । यह सभी के लिए है चाहे वे पुत्र पूरित हों या सपुत्र हों या स्त्रियाँ हों ।५३। इसके अनन्तर उनके आगे स्थित होकर उदक पात्र को परिगृहीत करके 'वाजे वाज'—यह जप करता हुआ कुशा के अग्रभाग से पितृगण का

विसर्जन करना चाहिए।५४। आठ कदम तक अनुव्रजन करते हुए अर्थात् विप्रों के पीछे-पीछे चलते हुए प्रदक्षिणा करनी चाहिए। जिस समय में प्रदक्षिणा करे उस समय में सब बन्धु वर्ग को भी साथ में रखना चाहिए तथा अपनी भार्या और पुत्रादि को भी साथ में ले लेना चाहिए।५५।

निवृत्य प्रणिपत्याथ पर्युक्ष्याग्नि समन्त्रवत्।
वैश्वदेवं प्रकुर्वीत नैत्यकं बलिमेव च।५६
ततस्तु वैश्वदेवान्ते सभृत्यसुतबान्धवः।
भुञ्जीतातिथिसंयुक्तः सर्वं पितृनिषेवितम्।५७
एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात् सर्वेषु पर्वसु।
श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम्।५८
भार्याविरहितोऽप्येतत प्रवासस्थोऽपि भक्तिमान्।
शूद्रोऽप्यमन्त्रवत् कुर्यादनेन विधिना बुधः।५९
तृतीयमाभ्युदयिकं वृद्धिश्राद्धं तदुच्यते।
उत्सवानन्दसम्भारे यज्ञोद्वाहादिमङ्गले।६०
मातरः प्रथमं पूज्याः पितरस्तदनन्तरम्।
ततो मातामहा राजन् विश्वेदेवास्तथैव च।६१

इस विसर्जन की क्रिया से निवृत्त होकर प्रणिपात करे और इसके उपरान्त समन्त्रवत् अग्नि का पर्युक्षण करना चाहिए। वैश्वदेव और नैत्यिक बलि देवे।५६। इसके अनन्तर वैश्वदेव के अन्त में भृत्य-सुत और बान्धवोंके सहित अतिथियोंसे संयुक्त होकर सभी पितृगण के द्वारा निषेवित किये हुए पदार्थों का भोजन करना चाहिए।५७। इस श्राद्ध को वह भी समस्त पर्वों में करे जिसका उपनयन संस्कार न हुआ हो। यह साधारण नाम वाला श्राद्ध है जो सम्पूर्ण कामनाओं के फलों को प्रदान करने वाला है।५८। जो कोई भार्या से भी विरहित हो तथा प्रवास में स्थित रखने वाला हो और भक्ति भाव से सम्पन्न शूद्र भी हो

जो मन्त्र रहित होता है उस बुध पुरुष को यह श्राद्ध विधिपूर्वक करना चाहिए ।५९। तीसरा आभ्युदयिक श्राद्ध होता है जिसको वृद्धि श्राद्ध के नाम से कहा जाया करता है। उत्सवों के आनन्द सम्भार में तथा यज्ञ और उद्वाह आदि के मङ्गलमय समय में सर्वप्रथम मातृगण का अभ्यर्चन करना चाहिए और इसके पश्चात् फिर पितरोंका पूजनकरे। हे राजन ! इसके अनन्तर मातामहों का पूजन करे और पीछे उसी भाँति विश्वे देवाओं का अर्चन करना चाहिए ।६०-६१।

प्रदक्षिणोपचारेण दध्यक्षतफलोदकैः ।
प्राङ्मुखो निर्वपेत्पिण्डान् पूर्वं याच कुशैर्युतान् ।६२
सम्पन्नमित्यभ्युदये दद्यादर्घ्यं द्वयोर्द्वयोः ।
युग्मा द्विजातयः पूज्या वस्त्रकार्तस्वरादिभिः ।६३
तिलार्थस्तु यवैः कार्योनान्दिशब्दानुपूर्वकः ।
माङ्गल्यानि च सर्वाणिवाचयेद्द्विजपुङ्गवैः ।६४
एवं शूद्रोऽपि सामान्यवृद्धिश्राद्धेऽपि सर्वदा।
नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादामान्नतः सदा ।६५
दानप्रधानः शूद्रः स्यादित्याह भगवान्प्रभुः ।
दानेन सर्वं कामाप्तिरस्य सञ्जायते यतः ।६६

प्रदक्षिणा के उपचार से दधि-अक्षत-फल और जल के द्वारा पूर्व दिशा की ओर मुख वाला होकर दुर्वा और कुशा से युक्त पिण्डों का निर्वपन करे ।६२। यह श्राद्ध अभ्युदय में सम्पन्न होता है इसीलिए दो-दो को अर्घ्य देना चाहिए । वस्त्र और कार्त्तस्वर (सुवर्ण) आदि के द्वारा युग्म द्विजातियों का पूजन करना चाहिए ।५३। नान्दि शब्दानु पूर्वक तिलार्थ को यवों से ही सम्पन्न करना चाहिए । द्विज श्रेष्ठों के द्वारा सम्पूर्ण माङ्गल्य का वाचन करना चाहिए ।६४। इसी प्रकार से सामान्य वृद्धि श्राद्ध में भी सर्वदा शूद्र को भी नमस्कार मन्त्र के द्वारा कच्चे अन्न से ही सदा करना चाहिए ।६५। भगवान् प्रभु ने कहा है

कि शूद्र को दान की प्रधानता वाला अवश्य होना ही चाहिए कारण यही है कि इस शूद्र वर्ग वाले पुरुष को केवल दानसे ही समस्त काम-नाओं के फलोंकी प्राप्ति हो जाया करती है इसीलिए शूद्र के लिए दान देने का विशेष महत्व होता है ।६६।

१६–एकोद्दिष्टश्राद्धप्रकरण

एकोद्दिष्टमतावक्ष्ये यदुक्तं चक्रपाणिना ।
मृते पुत्रैर्यथाकार्यमाशौचञ्च पितर्यपि ।१
दशाहं शावमाशौचं ब्राह्मणेषु विधीयते ।
क्षत्रियेषु दश द्वे च पक्षं वैश्येषु चैव हि ।२
शूद्रेषु मासमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ।
नैशम्वाऽकृतचूडस्य त्रिरात्रम्परतः स्मृतम् ।३
जननेऽप्यवमेव स्यात् सर्ववर्णेषु सर्वदा ।
तथास्थिसञ्चियादूर्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते ।४
प्रेताय पिण्डदानन्तु द्वादशाहं समाचरेत् ।
पाथेयं तस्य तत् प्रोक्तं यतः प्रीतिकरं महत् ।५
तस्मात् प्रेतपुरं प्रेतो द्वादशाहं न नीयते ।
गृहं पुत्रं कलत्रञ्च द्वादशाहं प्रपश्यति ।६
तस्मान्निधेयमाकाशे दशरात्रं पयस्तथा ।
सर्वदाहोपशान्त्यर्थमध्वश्रमविनाशनम् ।७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा–अब तक पार्वण तथा साधारण श्राद्धों आदि का वर्णन किया जिनके साथ आभ्युदायिक श्राद्धको भी बतला दिया गया था। अब एकोदिष्ट श्राद्ध के विषय में बतलाते हैं जिसे भगवान् चक्र पाणि ने कहा है। पुत्रों के द्वारा पिता के मृत हो जानेपर जिस प्रकार से आशौच करना चाहिए–यह सभी कहा जाता है ।१।

ब्राह्मणों में शाव (मृतक) अशौच दश दिन का माना जाता है-क्षत्रियों में बारह दिन का मृतकाशौच होता है और वैश्यों में एक पक्ष का यही आशौच हुआ करता है ।२। शूद्रों में जो भी सपिण्ड होते हैं एक मास का आशौच रहा करता है । जो बालक चूड़ा संस्कार से रहित हो उस के आशौच एकनिशा का या अधिक से अधिक तीन रात्रि का ही कहा गया है ।३। सर्वदा जिस प्रकार से विभिन्न वर्णों में मृतकाशौच होता है उसी भाँति जनन में भी हुआ करता है । तथा अस्थियों के सञ्चय करने से ऊर्ध्व में अङ्ग स्पर्श का विधान है ।४। प्रेत के लिए पिण्डों का दान बारह दिन समाचरण करे । यह उसका यमपुरी के मार्गका पाथेय कहा गया है अर्थात् मार्ग भोजन है क्योंकि यह उसको महान् प्रीति का करने वाला हुआ करता है ।५। इसलिए यह सुसिद्ध है कि बारह दिन तक प्रेत प्रेतों के पुर में नहीं पहुँचाया जाता है । वह प्रेत बारह दिन तक अपने घर को, पुत्र को और भार्या को बराबर देखता रहता है ।६ इसलिए दश रात्रि पर्यन्त आकाश में अर्थात् पीपल आदि वृक्ष पर पय (जलकुम्भ) रखना चाहिए अर्थात् जलका घट भरे । यह सब प्रकार के दाह की उप शान्ति के लिए और मार्ग के श्रम का विनाश करने के लिए ही होता है ।७।

ततः एकादशाहे तु द्विजानेकाशँव तु ।
क्षत्रादिः सूतकान्ते तु भोजयेदयुतो द्विजान् ।८
द्वितीयेऽह्नि पुनस्तद्वदेकोद्दिष्टं समाचरेत् ।
आवाहनाग्नौकरणं दैवहीनं विधानतः ।९
एकं पवित्रमेकोर्घं एकः पिण्डो विधीयते ।
उपतिष्ठतामित्येतद्देयं पश्चात्तिलोदकम् ।१०
स्वादितं विकिरेद्ब्रूयाद्विसर्गे चाभिरम्यताम् ।
शेषं पूर्ववदत्रापि कार्यं वेदविदा पितुः ।११
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रेतः पार्वणभाग् भवेत् ।

वृद्धिपूर्वेषु योग्यश्च गृहस्थश्च भवेत्ततः ।१२
सपिण्डीकरणे श्राद्धे देवपूर्वं नियोजयेत् ।
पितृ नेवासयेत्तत्र पृथक् प्रतं विनिर्दिशेत् ।१३
गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् ।
अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ।१४

इसके पश्चात् दश रात्रि समाप्त होने पर ग्यारहवें दिन एकादश द्विजों को और क्षत्रियादि को सूतक के अन्तमें अयुतों द्विजों को भोजन कराना चाहिए ।८। दूसरे दिन में उसी तरह से फिर एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे । आवाहनाग्नि में विधान से दैवहीन करे ।९। एक पवित्री—एक अर्घ और एक पिण्ड किया जाता है । 'उपतिष्ठताम्'–इत्यादि के द्वारा पीछे तिलोदक देना चाहिए ।१०। 'स्वादित विकिरेत्'—इसको बोले और विसर्गमें 'अभिरम्यताम्'—यह बोलना चाहिए । शेष सभी पूर्वकी ही भाँति इस पिताके श्राद्ध में भी वेदों के ज्ञाता पुरुष करना चाहिए । ।११। सपिण्डीकरण के पश्चात् ही वह प्रेत पार्वण श्राद्ध ग्रहण करने का हकदार हुआ करता है । वृद्धि पूर्वोंमें योग्य और फिर गृहस्थ होता है ।१२। सपिण्डीकरण श्राद्ध में देव पूर्व का नियोजन करना चाहिये । वहाँ पर पितृगण का ही अधिवास करे और प्रेत का पृथक विनिर्दिष्ट करना चाहिए ।१३। गन्ध-उदक और तिलों से युक्त चार पात्रों को वहाँ पर रखना चाहिए । अर्घ के लिये पितृ पात्रों में प्रेत पात्र का प्रसंचन करे ।१४।

तद्वत्संकल्प्य चतुरः पिण्डान् पिण्डप्रदस्तदा ।
ये समाना इति द्वाभ्यामन्त्यन्तु विभजेत्त्रिधा ।१५
चतुर्थस्य पुनः कार्यं न कदाचिदतोभवेत् ।
ततः पितृत्वमापन्नः सर्वंतस्तुष्टिमागतः ।१६
अग्निष्वात्तादिमध्यत्वं प्राप्नोत्यमृतमुत्तमम् ।
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं तस्मै तस्मान्नदीयते ।१७

पितृष्वेव तु दातव्यं तत् पिण्डोयेषु संस्थित: ।
ततः प्रभृति संक्रान्तावुपरागादि पर्वसु ।१८
त्रिपिण्डमाचरेच्छाद्धमेकोद्दिष्ट मृताहनि ।
एकोद्दिष्टं परित्यज्य मृताहे यः समाचरेत् ।१९
सदैव पितृहा स स्यान्मातृभ्रातृविनाशक: ।
मृताहे पार्वणं कुर्वन्नधोऽधोयाति मानव: ।२०
संपृक्तेष्वाकुलीभाव: प्रेतेषु तु यतोभवेत् ।
प्रतिसंवत्सरं तस्मादेकोद्दिष्टं समाचरेत् ।२१

उस समय में उसी भाँति सङ्कल्प करके पिण्डों के प्रदाता को चार पिण्ड करने चाहिए । जो समान होते हैं । दो से जो अन्त्य है उसका तीन भागों में विभाजन करे ।१५। जो चौथा है उसका पुन: कदाचित् इससे नहीं होवे । इसके उपरान्त ही सब ओर से तुष्टि को प्राप्त होता हुआ वह सुत पितृत्व को प्राप्त हो जाया करता है ।१६। अग्निष्वात्तादि जो पितृगण हैं उनके मध्यत्व को वह प्राप्त कर लेता है जो कि अमृत और उत्तम है । सपिण्डी करण कर्मके करने के ऊर्ध्व में फिर उस सुत के लिए इसी कारण से कुछ नहीं दिया जाया करता है ।१७। फिर तो पितृगणों में ही देना चाहिए जिनमें पिण्ड संस्थित होता है । तभी से लेकर सूर्य संक्रान्ति में और उपराग आदि पर्वोंमे मृत होनेवाले दिन में तीन पिण्डों का समाचरण करे । यही एकोद्दिष्ट श्राद्ध होता है । एकोद्दिष्ट का परित्याग करके जो मृत दिन में श्राद्ध किया करता है वह सदा ही पितृगण का हनन करने वाला है और माता तथा भाई का विनाश करने वाला है । मृत दिन में पार्वण श्राद्ध करने वाला मानव अधोभाग से भी अधोभाग में जाया करता है क्योंकि संयुक्त प्रेतों में आकुली भाग हो जाया करता है । इसी कारण से प्रत्येक सम्वत्सर में एकोद्दिष्ट श्राद्ध का अवश्य ही समाचरण करना चाहिए ।१८-१९।

यावदब्दन्तु योदद्यादुदकुम्भं विमत्सर: ।
प्रेतायान्नसमायुक्तं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।२२

आमश्राद्ध यदा कुर्याद्विधिज्ञः श्राद्धदस्तदा ।
तेनाग्नौकरणंकुर्यात्पिण्डांस्तेनैवनिर्वपेत् ।२३
त्रिभिः सपिण्डिकरणे अशेषत्रितये पिता ।
यदा प्राप्स्यतिकालेनतदामुच्येतबन्धनात् ।२४
मुक्तोऽपिलेपभागित्वंप्राप्नोतिकुशमार्जनात् ।
लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याःपिण्डभागिनः ।
पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्य सप्तपौरुषम् ।२५

जब तक मृत को एक वर्ष पूर्ण हो उस वर्ष मे बराबर जो कोई विगत मत्सरता वाला होकर श्राद्धके सहित जलका कुम्भ दिया करता है और प्रेत के लिये उसे अन्नसे समायुक्त करके देता है वह एक अश्व मेध यज्ञ के करने के पुण्य-फल का लाभ करता है ।२२। जिस समय में विधान का ज्ञान रखने वाला श्राद्ध दाता आम श्राद्ध करे अर्थात् कच्चा ही अन्नादि बिना पाक किये हुए देवे तो उससे अग्निकरण अवश्य ही करना चाहि और उसी से पिण्डों का भी निर्वपन भी करे ।२३। तीनों के द्वारा अशेष त्रितय सपिण्डीकरण में जब पिता प्राप्त होगा तो समय से वह उस समय में बन्धन से मुक्त हो जाता है ।२४। मुक्त हुआ भी कुश के मार्जन लेप भागित्व को प्राप्त किया करता है । चतुर्थादि लेप भागी है और पित्राद्य सब पिण्ड भागी हुआ करते हैं । तात्पर्य यह है कि चौथी पीढ़ी से ऊपर वाले केवल लेप भागी ही हुआ करते हैं और चार पुश्त तक पिण्डों के भागी होते हैं । उनका पिण्ड देने वाला सप्तम होता है अतएव सप्त पुरुष सपिण्डय हुआ करता है ।२५।

१७—श्राद्धयोग्यतीर्थानांवर्णनम्

कस्मिन्‌कालेचतच्छाद्धमनन्तफलदं भवेत् ।
कस्मिद् वासरभागेतुश्राद्धकृच्छाद्धमाचरेत् ।१
तीर्थेषु केषु च कृतं श्राद्धं बहुफलं भवेत् ।
अपराह्णे तु संप्राप्ते अभिजिद्रौहिणोदये ।२
यत्किञ्चिद्दीयते तत्र तदक्षयमुदाहृतम् ।।
तीर्थानि कानि शस्तानि पितृणां बल्लभानिच ।३
नामतस्तानि वक्ष्यामि संक्षेपेण द्विजोत्तमाः ! ।
पितृतीर्थं गया नाम सर्वतीर्थवरं शुभम् ।४
यत्रास्ते देवदेवेशः स्वयमेव पितामहः ।
तत्रैषा पितृभिर्गीता गाथा भागमभीप्सुभिः ।५
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्य कोऽपि गयांव्रजेत् ।
यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ।६
तथावाराणसी पुण्या पितृणां बल्लभासदा ।
यत्राविमुक्तसान्निध्यंभुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।७

ऋषिगण ने कहा—हे भगवन् ! अब आप हम लोगों को यह बतानेकी कृपा कीजिएगा कि किस समयमें वह किया हुआ श्राद्ध अनन्त फल का देने वाला होता है । दिन के किस भाग में श्राद्धका करनेवाला उस श्राद्ध का समाचरण करे । वे कौन से तीर्थ हैं जिनमें किया हुआ श्राद्ध बहुत फल का देने वाला हुआ करता है ? महामहर्षि श्री सूतजी ने कहा—दिन में जिस समयमें अपराह्न सम्प्राप्त हो जावे उसी समय में अभिजिद्रौहिणोदय में जो कुछ भी दिया जाता है वह अक्षय कहा गया है । कौन-कौनसे तीर्थ परम प्रशस्त हैं और पितरों के अधिक प्रिय हैं उनका भी सबका नाम ले लेकर हम बतलाते हैं । हे द्विजोत्तमो! यह सब संक्षेप से ही हम बतलायेंगे । गया नाम वाला पितृ तीर्थ है जो कि समस्त तीर्थों में परम श्रेष्ठ एवं अति शुभ तीर्थ है ।१-४। यह गया

वह उत्तम तीर्थ है जहाँ पर देवों के भी देवेश्वर पितामह स्वयमेव विराजमान रहा करते हैं। वहाँ पर पितृगणों के द्वारा यह गीता कही गयी है। इस गाथा के भाग की अभीप्सा रखने के लिये वह है।४-५। वह यही है कि सर्वदा बहुत से पुत्रों के प्राप्त करने की इच्छा रखनी चाहिये। उन बहुत सारे पुत्रों में यदि कोई एक भी कभी गया तीर्थ में चला जावे अथवा अश्वमेध यज्ञ के द्वारा कभी यजन करे या नील वृष का उत्सर्जन करे। तात्पर्य यही है कि जब बहुत पुत्रों की कामना के अनुसार वे उत्पन्न होंगे तो उनमें कभी कोई एक ऐसा भी समुत्पन्न हो सकताहै जो गया श्रद्धादि करने वाला होवे। इसी भाँति वाराणसी परम पुण्यमयी पुरी है जो कि सदा ही पितृगण की अत्यन्त बल्लभा रही है जहाँ पर अविमुक्त सान्निध्य प्राप्त होताहै जो भुक्ति और मुक्ति दोनों ही के फल को प्रदान करने वाला है।६-७।

पितृणां बल्लभं तद्वत् पुण्यञ्च विमलेश्वरम्।
पितृतीर्थं प्रयागन्तु सर्वकामफलप्रदम्।८
बटेश्वरस्तु भगवान् माधवेन समन्वितः।
योगनिद्राशयस्तद्वत् सदावसदि केशवः।९
दशाश्वमेधिक पुण्य गङ्गाद्वारं तथैव च।
नन्दाथ ललिता तद्वत्तीथ मायापुरी शुभा।१०
तथा मित्रपदं नाम ततः केदारमुत्तमम्।
गङ्गासागरमित्याहुः सर्वतीर्थमयं शुभम्।११
तीर्थं ब्रह्मसरस्तद्वच्छतद्रु सलिले ह्रदे।
तीर्थन्तु नैमिषं नाम सर्वतीर्थफलप्रदम्।१२
गङ्गोद्भदस्तु गोमत्यां यत्रोद्भूतः सनातनः।
तथा यज्ञवराहस्तु देवदेवश्च शूलभृत्।१३
यत्र तत्काञ्चनं द्वारमष्टादशभुजोहरः।
नेमिस्तु हरिचक्रस्य शीर्णा यत्राभवत्पुरा।१४

उसी भाँति पितृगणों का अत्यन्त प्रिय और परम पुण्यमय विमलेश्वर है तथा पितृतीर्थ प्रयाग तो समस्त कामनाओं के फलों का प्रदान करने वाला है ।८। वटेश्वर भगवान् माधव से समन्वित हैं उसी भाँति से योग निद्रा में शयन करने वाले केशव वहाँ पर सदाही निवास किया करते हैं ।९। दशाश्वमेधिकः परम पुण्यशील है और उसी तरह से गङ्गा द्वार है । उसी रीति से नन्दा और ललिता एवं अतीव शुभ मायापुरी तीर्थ है ।१०। तथा मित्रपद नामवाला और उससे आगे अत्युत्तम केदार तीर्थ है । गङ्गा सागर जिसको कहा करतेहैं वह तो सभी तीर्थों से परिपूर्ण शुभ है ।११। ब्रह्मसर एक महान् तीर्थ है और शतद्रु सलिल वाले ह्रद में नैमिष नाम वाला तीर्थ है जो सभी मनोरथोंको पूर्ण करने वाला और सम्पूर्ण तीर्थों के फल को प्रदान करने वाला है ।१२। गोमती में गङ्गोद्भेद है जहाँ पर सनातन उद्भूत हुए हैं । तथा यज्ञ वराह और देवों के भी देव शूलभृत् प्रभु हैं ।१३। जहाँ पर वह काञ्चन द्वार है और अठारह भुजाओं वाले भगवान् हर हैं । जहाँ पर प्राचीन काल में भगवान् हरि के सुदर्शन चक्र की नेमि शीर्ण हो गयी थीं ।१४।

तदेतन्नैमिषारण्यं सर्वतीर्थनिषेवितम् ।
देवदेवस्य तत्रापि वाराहस्य तु दर्शनम् ।१५
यः प्रयाति स पूतात्मा नारायणपदं व्रजेत् ।
कृतशौचं महापुण्यं सर्वपापनिषूदनम् ।१६
यत्रास्ते नारसिंहस्तु स्वयमेव जनार्दनः ।
तीर्थमिक्षुमता नाम पितृणां बल्लभं सदा ।१७
सङ्गमे यत्र तिष्ठन्ति गङ्गायाः पितरः सदा ।
कुरुक्षेत्रं महापुण्यं सर्वतीर्थं समन्वितम् ।१८
तथा च सरयूः पुण्या सर्वदेवनमस्कृता ।
इरावती नदी तद्वत् पितृतीर्थाधिवासिनी ।१९
यमुना देविका काली चन्द्रभागा दृषद्वती ।

नदी वेणुमती पुण्या परा वेत्रवती तथा ।२०
पितॄणां वल्लभा ह्येताः श्राद्धे कोटिगुणा मताः ।
जम्बूमार्गं महापुण्यं यत्र मार्गोहिलक्ष्यते ।२१

वह ही यह नैमिषारण्य है जिसको सभी तीर्थों ने समागत होकर निषेवित किया है । वहाँ पर भी देवों के भी देव वराह भगवान् के दर्शन होते हैं ।१५। जो भी कोई वहाँ पर जाया करता है वह परमपूत आत्मा वाला होकर फिर भगवान् नारायण के ही पद को चला जाया करता है । यह शौच कर देने वाला, महान् पुण्य से युक्त और समस्त प्रकार के पापों का हनन कर देने वाला तीर्थ है ।१६। जहाँ पर स्वयं साक्षात् नारसिंह जनार्दन भगवान् विराजमान् रहा करतेहैं । एक भिक्षुमती नाम वाला तीर्थ है जो सदा ही पितृगणों का परम बल्लभ है।१७ जहाँ पर भागीरथी गङ्गा के सङ्गममें पितर गण सदाही समवस्थित रहा करते हैं । कुरुक्षेत्र महान् पुण्यशाली तीर्थ है जो सम्पूर्ण तीर्थों से संयुत रहा करता है ।१८। उसी प्रकार से परयू नाम वाली सरिता अतीव पुण्यशालिनी है जिसको समस्त वगण नमस्कार किया करते हैं । उसी भाँति इरावती नाम वाली नदी है जो पितृ तीर्थों की अधिवासिनी है ।१९। यमुना, देविका, काली, चन्द्रभागा, दृषद्वती, वेणुमती नदी तथा परम पुण्यमयी वेत्रवती नहीं ये सभी सरितायें पितृगणोंकी अतीवप्यारी है और श्राद्ध में करोड़ों गुण वाली मानी गयी हैं । जम्बूमार्ग महान् पुण्यशाली है जहाँ पर मार्ग दिखलाई दिया करता है ।२०-२१।

अद्यापि पितृतीर्थं तत्सर्वकामफलप्रदम् ।
नीलकुण्डमितिख्यातं पितृतीर्थं द्विजोत्तमाः ! ।२२
तथा रुद्रसरः पुण्यं सरोमानसमेव च ।
मन्दाकिनी तथाच्छोदा विपाशाथ सरस्वती ।२३
पूर्वमित्रपदन्तद्वद्वैद्यनाथं महाफलम् ।
शिप्रा नदी महाकालस्तथाकालञ्जरं शुभम् ।२४

वंशोद्भेदं हरोद्भेदं गङ्गोद्भेदं महाफलम् ।
भद्रेश्वरं विष्णुपदं नर्मदाद्वारमेव च ।२५
गयापिण्डप्रदानेन समान्याहुर्महर्षयः ।
एतानि पितृतीर्थानि सर्वपापहराणि च ।२६
स्मरणादपि लोकानां किमु श्राद्धकृतांनृणाम् ।
ओङ्कारंपितृतीर्थञ्चकावेरीकपिलोदकम् ।२७
सम्भेदश्चण्डवेगायास्तथैवामरकण्टकम् ।
कुरुक्षेत्राच्छतगुणं तस्मिन् स्नानादिकं भवेत् ।२८

हे उत्तम द्विजगणो ! आज भी वह पितृतीर्थ है जो सभी मनोरथों के फलों को प्रदान करने वाला है । वह पितृतीर्थ नीलकुण्ड इस शुभ नाम से विख्यात है ।२२। उसी तरह से रुद्रसर पुण्यमय है और मान-सरोवर भी महान पुण्ययुक्त है । मन्दाकिनी, अच्छोदा, विपाशा, सर-स्वती ये सभी सरितायें महान् पुण्यशालिनी हैं ।२३। उसी भाँति पूर्वमें मित्र पद है और वैद्यनाथ तीर्थ महान् फल देने वाला है । भद्रेश्वर-विष्णुपद, नर्मदा, द्वार, क्षिप्रा नदी महाकाल तथा परम शुभ कालजर वंशोद्भेद—हरोद्भेद और अङ्गोद्भेद महान् फल प्रदान करने वाले सभी पुण्य तीर्थ एवं स्थल हैं ।२४-२५। इन सभी तीर्थो को महर्षिगण गया तीर्थ से पिण्ड प्रदान करने के समान ही करते हैं । ये सभी पितृ तीर्थ हैं और समस्त प्रकार के पापों का संहरण करने वाले हैं ।२६। इन उपर्युक्त सभी तीर्थोंकी ऐसी महिमा है कि इनके केवल स्मरणमात्र से ही सब नष्ट हो जाया करते हैं और जो लोग इनमें जाकर श्राद्ध किया करते हैं उनके पुण्य-फल के विषय में तो कहा ही क्या जाये । ओङ्कार पितृतीर्थ और कावेरी—कपिलोदक—चण्डवेगा का सम्भेद तथा अमर कन्टक ऐसा महान् तीर्थ है उसमें स्नानादिक का फल कुरुक्षेत्र से भी सौ गुना अधिक हुआ करता है ।२७-२८।

शुक्रतीर्थञ्च विख्यातं तीर्थं सोमेश्वरं परम् ।

सर्वव्याधिहरं पुण्यं शतकोटिफलाधिकम् ।२९
श्राद्धे दाने तथा होमे स्वाध्याये जलसन्निधौ ।
कायावरोहण नाम तथा चर्मण्वतीनदी ।३०
गोमती वरुणा तद्वत्तीर्थमाशनसम्परम् ।
भैरवं भृगुतुङ्गञ्च गौरीत्तीर्थमम् ।३१
तीर्थं वैनायकं नाम भद्रेश्वरमतः परम् ।
तथापापहरं नाम पुण्यार्थं तपती नदी ।३२
मूलतापीपयोष्णी च पयोष्णीसङ्गमस्तथा ।
महाबोधिः पाटला च नागतीर्थमवन्तिका ।३३
तथावेणा नदी पुण्या महाशालं तथैव च ।
महारुद्रं महालिङ्गं दशार्णा च नदी शुभा ।३४
शतरुद्रा शताह्वा च तथा विश्वपदं परम् ।
अङ्गारवाहिका तद्वन्नदौ तौ शोणघर्घरौ ।३५

शुक्र तीर्थ परम विख्यात है तथा सोमेश्वर भी परमोत्तम तीर्थ है जो सभी व्याधियों के हरण करने वाला तथा महान् पुण्यशाली और शतकोटि फलोंसे भी अधिक फल प्रदान करने वाला है।२९। श्राद्धकरने में—दान देने में—होम कार्य करने में—स्वाध्याय करनेमें तथा केवल जल की सन्निधि में ही निवास करने में अतीव अधिक पुण्य-फल होता है। एक कायावरोपण नाम वाला तीर्थ है तथा चर्मण्वती नदी है उसी भाँति गोमती एवं वरुणा नदी महान् तीर्थ हैं। उसी भाँति औशनस परम तीर्थ है। भैरव-भृगुतुङ्ग और गौरी तीर्थ सर्वोत्तम तीर्थ है ।३०-३१। एक वैनायक नाम वाला तीर्थ हैं और इससे भी परे भद्रेश्वर है तथा पापहर तीर्थ हैं एवं परम पुण्यमयी तपती नाम वाली नदी है।३२ मूलतापी-पयोष्णी तथा पयोष्णी सङ्गम, महाबोधि, पाटला, नागतीर्थ-अवन्तिका तथा पुण्यमयी वेणा नदी, महाशाल, महारुद्र,महालिङ्ग तथा दशार्णा परम शुभ सरिता है। शतरुद्रा, शताह्न, परम विश्वपद-अङ्गार

वाहिका और इसी प्रकारसे शोण और घर्घर ये दो परम विशाल पुण्य शाली नद है। ये सभी अत्युत्तम तीर्थ स्थल हैं।३३-३५।

कालिका च नदी पुण्या वितस्ता च नदी तथा।
एतानि पितृतीर्थानि शस्यन्ते स्नानदानयो: ।३६
श्राद्धमेतेषु यद्दत्तन्तदनन्तफलं स्मृताम्।
द्रोणी वाटनदो धारासरित् क्षीरनदी तथा ।३७
गोकर्ण गजकर्णञ्च तथा च पुरुषोत्तम: ।
द्वारका कृष्णतीर्थञ्च तथार्बुदसरस्वती ।३८
नदी मणिमती नाम तथा च गिरिकर्णिका ।
धूतपापं तथा तीर्थं समुद्रो दक्षिणस्तथा ।३९
एतेषु पितृतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते ।
तीर्थं मेघकरं नाम स्वयमेव जनार्दन: ।४०
यत्र शार्ङ्गधरो विष्णुर्मेखलायामवस्थित: ।
तथा मन्दोदरी तीर्थं तीर्थं चम्पा नदी शुभा ।४१
तथा सामलनाथश्च महाशालनदी तथा ।
चक्रवाकं चर्म्मकोटं तथा जन्मेश्वरं महत् ।४२

कालिका नदी परम पुण्य शालिनी है तथा वितस्ता नाम धारिणी नदी है। ये सब जो यहाँ तक बताये गये हैं पितृ तीर्थ कहलाते हैं और ये सभी स्नान तथा दान करने में अधिक प्रशस्त माने गये हैं।३६। इन उक्त तीर्थों में जो भी कोई श्राद्ध दिया जाता है वह अनन्त फलों का प्रदान करने वाला हुआ करता है ऐसा ही बताया गया है। इनके भी अतिरिक्त और भी महान् तीर्थ हैं—द्रोणी वाट नदी धारा सरित्-क्षीर नदी-गोकर्ण, गजकर्ण, पुरुषोत्तम, द्वारका, कृष्णा तीर्थ, अर्बुद सरस्वती मणिमती नदी, गिरिकर्म्यिका—धूतपाप नाम वाला तीर्थ तथा दक्षिण समुद्र ये सभी महा महिमा मय तीर्थ है, इनमें जो कि पितृतीर्थ हैं (जो भी श्राद्ध दिया जाता है उसकी अनन्त फल शालिता हो जाया करती

है। एक मेध कर नामक तीर्थ है जहाँ पर साक्षात् भगवान् जनार्दन स्वयं ही विराजमान रहा करते हैं।३७-४०। जिस पुण्य मय क्षेत्र में 'शार्ङ्ग' धनुष को धारण करने वाले भगवान् विष्णु उसकी मेखला में समवस्थित रहा करते हैं। उसी प्रकार से एक मन्दोदरी नाम वाला तीर्थ है और दूसरा चम्पा नाम वाली परम शुभ नदी है जो एक तीर्थ स्थल है।४१। उसी तरह से सामल नाथ और महा शाल नदी है। चक्रवाक, चर्म्म कोट और महान् तीर्थ जन्मेश्वर नाम वाला है।४२।

अर्जुनं त्रिपुरं चैव सिद्धेश्वरमतः परम्।
श्रीशैलं शाङ्कुरं तीर्थं नारसिंहमतः परम् ।४३
महेन्द्रञ्च तथा पुण्यमय श्रीरङ्गसंज्ञितम्।
एतेष्वपि सदा श्राद्धमनन्तफलदं स्मृतम् ।४४
दर्शनादपि चैतानि सद्यः पापहराणि वै।
तुङ्गभद्रा नदी पुण्या तथा भीमरथी सरित् ।४५
भीमेश्वरं कृष्णवेणा कावेरी कुड्मलानदी।
नदी गोदावरी नाम त्रिसन्ध्यातीर्थमुत्तमम् ।४६
तीर्थं त्र्यम्बकं नाम सर्वतीर्थ नमस्कृतम्।
यत्रास्ते भगवानीशः स्वयमेव त्रिलोचनः ।४७
श्राद्धमेतेषु सर्वेषु कोटिकोटिगुणं भवेत्।
स्मरणादपि पापानि नश्यन्ति शतधा द्विजः ।४८
श्रीपर्णी ताम्रपर्णी च जयातीर्थ मनुत्तमम्।
तथा मत्स्यनदी पुण्या शिवधारं तथैव च ।४९

अर्जुन, त्रिपुर-इससे भी परे सिद्धेश्वर-श्रीशैलशाङ्कुर तीर्थ और इससे पर नारसिंह नामक तीर्थ है।४३। उसी भाँति पुण्यशाली महेन्द्र और श्रीरङ्गनाम वाले तीर्थ हैं। इन तीर्थों में भी दिया हुआ श्राद्ध अनन्त फलों के प्रदान करने वाला हुआ करता है। श्राद्ध स्नान आदिके द्वारा होने वाले पुण्यके विषयमें तो कहाँ ही क्या जावे ये तो ऐसेमहान्

प्रभाव शाली तीर्थ है कि इनके केवल दर्शन मात्रसे ही तुरन्त सब पापों का हरण हो जाया करता है। तुङ्गभद्र पुन्यमयी नदी है तथा भीमरथी नाम वाली सरित् है—भीमेश्वर-कृष्ण वेणा, कावेरी, कुड्मला नदी-गोदावरी सरिता और उत्तम त्रिसन्ध्या नाम वाला तीर्थ है। त्रैयम्बक नामधारी तीर्थ सभी तीर्थों के द्वारा वन्द्यमान होता है जहाँ पर भगवान् ईश स्वयंही साक्षात् त्रिलोचन प्रभु विराजमान रहा करते हैं। इन उपरिकथित समस्त तीर्थोंमें किया या दियाहुआ श्राद्ध करोड़ों—करोड़ों गुणों वाला हुआ करता है। हे द्विजगण ! इन तीर्थों की तो ऐसी विलक्षण महिमा है कि इनके केवल स्मरण मात्रसे ही पाप शतधा हरण हो जाया करते हैं। श्रीपर्णी—ताम्रपर्णी—उत्तमयगा तीर्थ—पुण्यमयी मत्स्य नदी और शिवधार ये भी महान् तीर्थ हैं।४४-४९।

भद्रतीर्थंश्च विख्यातं पम्पातीर्थंश्च शाश्वत ।
पुण्यं रामेश्वरं तद्वदेलापुरमलं पुरम् ।५०
अङ्गभूतञ्च विख्यातमानन्दकमलं बुधम् ।
आम्रातकेश्वरं तद्वदेकाम्भकमतः परम् ।५१
गोवर्धनं हरिश्चन्द्रं कृपुचन्द्रं पृथूदकम् ।
सहस्राक्षं हिरण्याक्षं तथा च कदली नदी ।५२
रामाधिवासस्तत्रापि तथा सौमित्रिसङ्गमः ।
इन्द्रकीलं महानादन्तथा च प्रियमेलकम् ।५३
एतान्यपि सदा श्राद्धे प्रशस्तान्यधिकानि तु ।
एतेषु सर्वदेवानां सान्निध्यं दृश्यते यतः ।५४
दानमेतेषु सर्वेषु दत्तं कोटिशताधिकम् ।
बाहुदा च नदी पुण्या तथा सिद्धवनं शुभम् ।५५
तीर्थं पाशुपतं नाम नदी पार्वतिका शुभा ।
श्राद्धमेतेषु सर्वेषु दत्तं कोटिशतोत्तरम् ।५६

भद्र तीर्थ परम विख्यात तीर्थ है तथा शाश्वत पम्पा तीर्थ है—परम पुण्यमय रामेश्वर है और उसी भाँति एलापुर नाम वाला परमोत्तम पुर है—अङ्गभूत विख्यात् तीर्थ है—आनन्द कमल, बुध, आम्रात कश्वर—इसके आगे एकाम्भक तीर्थ है ।५०-५१। गोवर्द्धन-हरिश्चन्द्र कुपुचन्द्र, पृथूदक, सहस्राक्ष, हिरण्याक्ष, कदली, नदी—वहीं पर रामाधिवास है तथा सौमित्रि संगम नाम वाला तीर्थ है । इन्द्रकील—महानाद —प्रिय मेलक नाम वाले तीर्थ हैं ।५२। ये सभी तीर्थ सदा श्राद्ध देने के लिए परम अधिक प्रशस्त माने गये हैं । एक बाहुदा नाम वाली अति पुण्य मयी नदीहै तथा परमशुभ सिद्ध वन नाम वाला तीर्थ है ।५३-५४। एक पाशुपत नाम वाला तीर्थ है । तथा परम शुभ पार्वतिका नाम धारिणी नदी है—इन तीर्थों में दिया हुआ श्राद्ध कोटिशत से भी अधिक पुण्य फल के प्रदान करने वाला हुआ करता है ।५५-५६।

तथैव पितृतीर्थन्तु यत्र गोदावरी नदी ।
युतालिङ्गसहस्रेण सवन्तिरजलावहा ।५७
जामदग्न्यस्य तत्तीर्थं क्रमादायातमुत्तमम् ।
प्रतीकस्य भयाद्भिन्नं यत्र गोदावरी नदी ।५८
तत्तीर्थं हव्यकव्यानामप्सरोयुगसंक्षितम् ।
श्राद्धाग्निकार्यदानेषु तथा कोटिशताधिकम् ।५९
तथा सहस्रलिङ्गञ्च राघवेश्वरमुत्तमम् ।
सेन्द्रफेना नदी पुण्या यत्रेन्द्रः पतितः पुरा ।६०
निहत्य नमुचिं शक्रस्तासा स्वर्गमाप्तवान् ।
तत्र दत्तं नरैः श्राद्धमनन्तफलदं भवेत् ।६१
तीर्थन्तु पुष्करं नाम शालग्रामं तथैव च ।
सोमपानञ्च विख्यातं यत्र वैश्वानरालनम् ।६२
तीर्थं सारस्वतं नाम स्वामितीर्थं तथैव च ।
मलन्दरानदी पुण्या कौशिकीचन्द्रिका तथा ।६३

उसी भाँति वह पितृ तीर्थ है जहाँ पर गोदावरी नदी है जो सहस्र लिंगों से संयुत सर्वान्तर जलावहा है ।५७। वह महर्षि जामदग्न्य का तीर्थ है जो अत्युत्तम है और क्रम से समायात हुआ है । प्रतीक के भय से भिन्न है जहाँ पर गोदावरी नदी है ।५८। वह तीर्थ हव्य और कव्यों का है जो अप्सरों युग की संज्ञा वाला है । यह श्राद्ध-अग्नि कार्य और दानों के देने में सैकड़ों करोड़ अधिक फल देने वाला है ।५९। उसी भाँति सहस्र लिंग उत्तम राघवेश्वर—पुण्य शालिनी सेन्द्रफेना नदी है जिस स्थल पर प्राचीन कालमें इन्द्र पतित हो गया था । इन्द्रने नमुचि का निहनन करके फिर घोर तपश्चर्या की थी जिसके प्रभाव से उसने स्वर्ग को प्राप्त किया था । वहाँ पर मानवों के द्वारा दिया हुआ श्राद्ध अनन्त फल का प्रदान करने वाला हुआ करता है ।६०-६१। पुष्कर नाम वाला तीर्थ है और उसी तरह से शालग्राम तीर्थ है । साम पान तीर्थ भी परम विख्यात तीर्थ है जहाँ पर वैश्वानर का आलय है । एक सारस्वत नाम वाला तीर्थ है तथा वहीं पर कौशिकी और चन्द्रिका नामों वाली भी दो नदियाँहैं जो कि महान तीर्थ हैं ।६२-६३

वैदर्भावाथ वैरा च पयोष्णी प्राङ् मखापरा ।
कावेरी चोत्तरापुण्या तथाजालन्धरोगिरिः ।६४
एतेषु श्राद्धतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते ।
लोहदण्डं तथा तीर्थं चित्रकूटस्तथैव च ।६५
विन्ध्ययोगश्च गङ्गायास्तथा नदीतटं शुभम् ।
कुब्जाम्रन्तु तथा तीर्थं उर्वशी पुलिनंतथा ।६६
संसारमोचनं तीर्थं तथैव ऋणमोचनम् ।
एतेषु पितृतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते ।६७
अट्टहासं तथा तीर्थं गौतमेश्वपमेव च ।
तथा वशिष्ठं तीर्थन्तु हारितं तु ततः परम् ।६८
ब्रह्मावर्तं कुशावर्तं हयतीर्थं तथैव च ।
पिण्डारकञ्च विख्यातं शङ्खोद्धारं तथैव च ।६९

घण्टेश्वरं बिल्वकञ्च नीलपर्वतमेव च ।
तथा च धरणीतीर्थं रामतीर्थं तथैव च ।७०

इनके अतिरिक्त वैदर्भा—वैरा-पयोष्णी-प्राङ्मखापरा-कावेरी—उत्तरा पुण्या नदियाँ भी परम पुण्यमय तीर्थ स्वरूपा है तथा जालन्धर नामक वहीं पर एक गिरि हैं ।६४। ये सभी श्राद्ध देने वाले तीर्थ हैं जिनमें दिया हुआ श्राद्ध अनन्तता के फल वाला हो जाया करता है। लोहदण्ड नाम वाला तीर्थ है तथा चित्रकूट तीर्थ है ।६५। विन्ध्य योग और गङ्गा का शुभ नदी तट है । एक कुब्जाम्र तीर्थ है और उर्वशी पुलिन तीर्थ है। संसार मोचन और ऋण मोचन नाम वाले भी तीर्थ है—इन पितृ तीर्थों में दिया श्राद्ध-श्राद्ध के करने वाले मानव को अनन्त फलों का भोग कराया करता है ।६६-६७। अट्टहास तीर्थ है गौतमेश्वर तीर्थ है । एक वशिष्ठ नामक तीर्थ है और इससे आगे हारित नाम वाला तीर्थ है। ब्रह्मावर्त्त, कुशावर्त्त, हयतीर्थ, विख्यात पिन्डारक तीर्थ तथा शंखोद्धार, घण्टेश्वर, बिल्वक, नील पर्वत, धरणीतीर्थ तथा रामतीर्थ ये सभी पितृ तीर्थ हैं जिनमें श्राद्ध दाता श्राद्ध देकर परमपद की प्राप्ति किया करते हैं ।६८-७०।

अश्वतीर्थञ्च विख्यातमनन्त श्राद्धदानयोः ।
तीर्थं वेदशिरो नाम तथैवौघवती नदी ।७१
तीर्थं वसुप्रदं नामच्छागलाण्डं तथैव च ।
एतेषु श्राद्धदातारः प्रयान्ति परमं पदम् ।७२
तथा च बदरीतीर्थं गणतीर्थं तथैव च ।
जयन्तं विजयञ्चैव शुक्रतीर्थं तथैव च ।७३
श्रीपतेश्च तथा तीर्थं तीर्थं रैवतकं तथा ।
तथैव शारदातीर्थं भद्रकालेश्वरं तथा ।७४
वैकुण्ठतीर्थञ्च परं भीमेश्वरमथापि वा ।
एतेषु श्राद्धदातारः प्रयान्ति परमां गतिम् ।७५

तीर्थं मातागृहं नाम करवीरपुरं तथा ।
कुशेशरञ्च विख्यातं गौरीशिखरमेव च ।७६
नकुलेशस्य तीर्थञ्च कर्दमालं तथैव च ।
दिण्डिपुण्यकरं तद्वत् पुण्डरीकपुरं तथा ।७७

श्राद्ध और दान—इन दोनों ही के लिए अश्व तीर्थ परम विख्यात है । एक वेदशिर नाम वाला तीर्थ है और ओधवती नदी है । वसुप्रद तीर्थ है और उसी तरह से एक छागलाण्ड नामक तीर्थ है । इन तीर्थों में श्राद्ध दाता लोग परमोत्तम पद को प्राप्त किया करते हैं ।७१-७२। बदरी तीर्थगण, जयन्त, विजय, शुक्र, श्रीपति, रैवतक, शारदा, भद्र-कालेश्वर, वैकुण्ठ, भीमेश्वर तीर्थ ये सभी तीर्थ हैं और इन तीर्थों में पहुँच कर श्राद्धों को देने वाले मानव परम गति की प्राप्ति का लाभ किया करते हैं ।७३-७४। मातृगृह नाम वाला तीर्थ—करवीर, कुशेशर विख्यात गौरी शिखर नाम का तीर्थ, नकुलेश का तीर्थ, कर्दमाल, दिण्डि पुण्यकर और पुण्डरीक पुरनाम वाला तीर्थ है ।७५-७७।

सप्त गोदावरी तीर्थं सर्वतीर्थेश्वरम् ।
तत्र श्राद्धं प्रदातव्यमनन्तफलमीप्सुभिः ।७८
एषतूद्दे शतः प्रोक्तस्तीर्थानां संग्रहो मया ।
वागीशोऽपिनक्रोतिविस्तरान् किमुमानुषः ।७९
सत्यं तीर्थं दया तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ।
वर्णाश्रमाणां गेहेऽपि तीर्थन्तु समुदाहृतम् ।८०
एतेत्तीर्थेषु यच्छ्राद्धं तत्कोटिगुणमिष्यते ।
यस्मात्तस्मात् प्रयत्नेन तीर्थे श्राद्धं समाचरेत् ।८१
प्रातः कालोमुहूर्तांनास्त्रीन् सङ्गवस्तावदेव तु ।
माध्याह्नस्त्रिमुहूर्तंस्यादपराह्णस्ततः परम् ।८२
सायाह्नस्त्रिमुहूर्तः स्याच्छ्राद्धं तत्रनकारयेत् ।

राक्षसी नामसा बेला गर्हिता सर्वकर्मसु ।८३
अह्नो मुहूर्तो विख्याता दश पञ्च च सर्वदा ।
तत्राष्टमो मुहूर्तोयः सकालः कुतपः स्मृतः ।८४

सप्त गोदावरी तीर्थ समस्त तीर्थों का ईश्वर तीर्थ है । जो श्राद्ध के देने के अनन्त फल प्राप्त करने के इच्छुक मनुष्य हैं उनको वहाँ पर श्राद्ध अवश्य ही देना चाहिए ।७८। यह श्राद्धके उद्देश्य को लेकर हमने तीर्थों का एक संग्रह आप लोगों के समक्ष में कह दिया है । इन समस्त तीर्थों का विस्तार तो बहुत ही विशाल है जिसको विचारे मानव की तो शक्ति ही क्या है बृहस्पति भी नहीं कह सकते हैं जो वाणों के ईश कहे जाते हैं ।७२। वस्तुतः विचार किया जावे तो सत्य का पूर्ण परिपालन करना भी तीर्थ है—प्राणिमात्र पर दया करना भी एक प्रकार का महान् तीर्थ है तथा अपनी सब इन्द्रियों पर पूर्ण निग्रह रखना भी तीर्थ है । वर्णों और आश्रमों का गेह में भी इस प्रकार से तीर्थ विद्यमान् हैं जो समुदाहृत किये गये हैं । इन तीर्थों में जो भी श्राद्ध दिया जाता है उसका करोड़ गुना फल हुआ करता है । अतएव जिस-जिस प्रयत्न से तीर्थ में अवश्य ही मनुष्य को श्राद्ध देना चाहिए ।७६-८०। प्रातःकाल में तीन मुहूर्त्त तक उतनाही संगव होताहै । फिर मध्याह्न में तीन मुहूर्तों वाला है उसके पश्चात् अपराह्न होता है । सायाह्न में तीन मुहूर्त्त वाला है उसमें श्राद्ध कभी नहीं करना चाहिए । यह राक्षसी नाम वाली बेला हुआ करती है जो सभी कर्मों से गर्हित मानी गयी है । सर्वदा दिन के मुहूर्त्त की दश और पाँच घड़ियाँ विख्यातहै । उनमें जो अष्टम मुहूर्त्त होता है उसी काल को कुतुप काल कहा गया है ।८१-८४।

मध्याह्ने सर्वदा यस्मान्मन्दी भवति भास्करः ।
तस्मादनन्तफलदस्तपारम्भो भविष्यति ।८५
मध्याह्नखड्ग पात्रञ्च तथा नेपालकम्बलः ।

रूप्यं दर्भास्तिला गावो दौहित्रश्चाष्टमः स्मृतः ।८६
पापं कुत्सितमित्याहुस्तस्य सन्तापकारिणः ।
अष्टावेतेयतस्तस्मात् कुतपाइति विश्रुता ।८७
उर्ध्वं मुहूर्तात् कुतपाद्यन्मुहूर्तंचतुष्टयम् ।
मुहूर्तपञ्चकञ्चैतत्स्वधाभवन मिष्यते ।८८
विष्णोर्देहसमुद्भूताः कुशाः कृष्णास्तिलास्तथा ।
श्राद्धस्य रक्षणायालमेतत् प्राहुर्दिवौकसः ।८९
तिलोदकञ्जालिर्देय जलस्थैस्तीर्थवासिभिः ।
सन्दर्भहस्तेनैकेन श्राद्धमेवं विशिष्यते ।९०
श्राद्धसाधनकाले तु पाणिनैकेन दीयते ।
तर्पणन्तु भयेनैव विधिरेष सदा स्मृतः ।९१

अतः मध्याह्न काल में सर्वदा जिस समय में भगवान भास्कर मन्दीभूत हो जाया करते हैं। उस काल में श्राद्ध दिया हुआ अनन्तफल देने वाला होता है तभी उसका आरम्भ होगा ।८५। मध्याह्न खंग, पात्र, नेपाल कम्बल, रूप्य, दर्भ, तिल, गौएँ और आठवाँ दौहित्र कहा गया है। सन्तापकारी उसका कुत्सित पाप कहा जाता है। क्योंकि ये आठ हैं इसी लिए ये कुतुप कहे गये हैं और इसी नाम से विश्रुत भी हैं ।८६-८७। कुतुप मुहूर्त से ऊर्ध्व में जो चार मुहूर्त्त हैं इस तरह से यह मुहूर्त्त पञ्चक स्वधा का भवन अभीष्ट हुआ करता है ।८८। कुश और कृष्ण तिल ये भगवान विष्णु के देह से ही समुद्भूत हुए हैं ये श्राद की रक्षा करने के लिए समर्थ होते हैं—ऐसा देवगण ने कहा है ।८९। तिलों से युक्त जल की अञ्जलि जल में स्थित हुए तीर्थवासियों को देना चाहिए। दर्भ के सहित एक हाथ से करे। इस प्रकार से श्राद्ध विशेषता वाला होता है ।९०। श्राद्ध के साधन काल में एक ही हाथ से दिया जाता है। तर्पण होता है भय ही से होता है। सदा यह बिधि कही गयी है ।९१।

पुण्यं पवित्रमायुष्य सर्वपापविनाशनम् ।
पुरा मत्स्येन कथितन्तीर्थं श्राद्धानुकीर्तनम् ।
शृणोति यः पठेद्वापि श्रीमान् सञ्जायते नरः ।६२
श्राद्धकाले च वक्तव्यं तथा तीर्थनिवासिभिः ।
सर्वपापोपशान्त्यर्थमलक्ष्मीनाशनं परम् ।६३

इदं पवित्रं यशसो निधानमिदं महापापहरञ्च पुंसाम् ।
ब्रह्मार्करुद्रैरपि पूजितञ्च श्राद्धस्य माहात्म्यमुशन्ति तज्ज्ञाः ।६४

महर्षि सूतजी ने कहा—इन तीर्थों में श्राद्ध करने का अनुकीर्त्तन प्राचीन काल में मत्स्य भगवान् ने कहा था। यह परम पुण्यमय-आयु का वर्णन करने वाला और सब प्रकार से महान् से महान् पापों का विनाश करने वाला है। जो इस तीर्थ श्राद्धानुकीर्त्तन का श्रवण किया करता है अथवा इसका पढ़ता है वह मनुष्य श्रीमान् होकर ही जन्म ग्रहण किया करता है।६२। श्राद्ध के समय में तीर्थवासियों को इसे बोलना चाहिए। यह सर्व पापों के लिए और अलक्ष्मी के नाश करने वाला होता है।६३। यह परम पवित्र है तथा यश की खान है और पुरुषों के महान् पापों का संहरण करने वाला है। इसका अभ्यर्चन ब्रह्मा-अर्क और रुद्र के द्वारा भी किया गया है। इसका ज्ञान रखने पुरुष इस श्राद्ध के माहात्म्य को रखा करते हैं।६४।

१८—ययाति चरित्र

अथ दीर्घेण कालेन देवयानी नृपोत्तम ।
वनं तदेव निर्याता क्रीड़ार्थं वरवर्णिनी ।१
तेन दासी सहस्रेण सार्धं शर्मिष्ठया तदा ।
तमेव देशं संप्राप्ता यथा कामं चचार सा ।२

ताभिः सखीभिः सहिताः सर्वाभिर्मु दिता भृशम् ।
क्रीड़न्त्योऽभिरताः सर्व्वा पिबन्त्यो मधु माधवम् ।३
खादन्त्यो विविधान् भक्ष्यान् फलानि विविधानि च ।
पुनश्च नाहुषो राजा मृगलिप्सुर्यदृच्छया ।४
तमेव देश संप्राप्तो जललिप्सुः प्रतर्षितः ।
ददर्श देवयानीञ्च शर्मिष्ठान्ताश्च योषितः ।५
पिबन्त्यो ललनास्ताश्च दिव्याभरणभूषिताः ।
उपविष्टाञ्चदद्दर्शदेवयानींशुचिस्मिताम् ।६
रूपेणाप्रतिमां तासां स्त्रीणांमध्येवराननाम् ।
शर्मिष्ठयासेव्यमानांपादसम्वाहनादिभिः ।७

शौनक मुनि ने कहा—हे नृपोत्तम ! इसके अनन्तर बहुत लम्बे समय के बाद वर वर्णिनी वह देवयानी उसी वन में क्रीडा विहार करने के लिए निकल कर गयी थी ।१। उस समय में एक सहस्र दासी और शर्मिष्ठा के साथ उसी देश में सम्प्राप्त हुई थी और उसने इच्छा के अनुसार वहाँ पर विचरण किया ।२। उन्हीं सब सखियों के साथ अत्यन्त ही मुदित थी । सब क्रीडा करती हुई अभिहित थी तथा माधव मधु का पान कर रही थीं । अनेक के भक्ष्यों को खा रही थीं तथा नाना भाँति के फलों का अशन करती जा रही थीं पुनः मृगया की इच्छा रखने वाला नाहुष राजा यद्दृच्छा से उसी देश से सम्प्राप्त हो गया था । वह राजा जलकी लिप्सा रखनेवाला और अत्यधिक प्यासा था । उसने देवयानी को तथा शर्मिष्ठा अन्य सभी योषितों को वहाँपर देखा था ।३-५। वे सभी ललनायें दिव्य आभरणों से विभूषित थीं और पान कर रही थीं । वहींपर उसने शुचि स्मित वाली उपविष्ट देवयानी को भी देखा था ।६। वह देवयानी उन समस्त ललनाओं के मध्य में विराजमान रूप लावण्य से अनुपम और परम सुन्दर एवं श्रेष्ठ मुख वाली थी शर्मिष्ठा के द्वारा सेव्यमान थी जो कि देवयानी के पादों का सम्वाहन आदि कर रहीं थी ।७।

द्वाभ्यां कन्यासहस्राभ्यांद्वे कन्येपरिवारिते ।
गोत्रेचनामनीचैवद्वयोः पृच्छाम्यतोह्यहम् ।८
आख्यास्याम्यहमादत्स्ववचनंमेनराधिप: ।
शुक्रोनामासुरगुरः सुतांजानीहितस्यमाम् ।९
इयं च मे सखी दासी यत्राहं तत्र गामिनी ।
दुहितादानवेन्द्रस्यशर्मिष्ठावृषपर्वण: ।१०
कथं तु ते सखी दासी कन्येयं वरवर्णिनी ।
असुरेन्द्रसुता सुभ्रु ! परं कौतूहलं हि मे ।११
सवमेव नरव्याघ्र ! विधानमनुवर्त्तते ।
विधिना विहितं ज्ञात्वा माविचित्रंमनः वृथाः ।१२
राजवद्रूपवेषी ते ब्राह्मीं वाचं बिभर्षि च ।
किं नामा त्वं कुतश्चासिकस्यपुत्रश्चशंसमे ।१३
ब्रह्मचर्येण वेदो मे कृतस्नः श्रुतिपथं गतः ।
राजाहं राजपुत्रश्च ययातिरितिविश्रुतः ।१४

राजा ययाति ने कहा—ये दो सहस्र कन्याओं के द्वारा दो कन्यायें परिवारित हैं । अतएव मैं आप दोनों के गोत्र और नाम पूछता हूँ ।८। देवयानी ने कहा—हे नराधिप ! मैं अब कहती हूँ, आप मेरे वचन को ग्रहण कीजिए । शुक्राचार्य नाम वाले असुरों के गुरु हैं उन्हीं की पुत्री मुझको आप जानिए ।९। यह मेरी सखी दासी है । जहाँ पर भी मैं जाती हूँ वहीं पर यह भी मेरे ही साथ में गमन करने वाली होती है । यह तो दानवेन्द्र वृषपर्वा की दुहिता शर्मिष्ठा है ।१०। राजा ययाति ने कहा—यह वरवर्णिनी कन्या तुम्हारी दासी सखी कैसे हो गई है ? हे सुभ्रु ! यह तो असुरेन्द्र की सुता है । यह आपकी दासी कैसे बन गई है ? मेरे हृदय में इस बात का अत्यधिक कौतूहल हो रहा है ।११। देवयानी ने कहा—हे नर व्याघ्र ! इस संसार में सभी कुछ विधाता के द्वारा किए हुए विधान का ही अनुवर्त्तन किया करता है । विधि के

द्वारा किये हुए विधानको समझ कर मन में किसी भी प्रकार का कौतूहल मत करिए ।१२। आपका रूप और वेश भूषा तो एक राजा के ही समान में और जो वाणी बोल रहे है वह ब्राह्मी है । आप यह बतलाइये कि आपका शुभ नाम क्या है और आप कहाँ से आये हैं तथा किसके आप पुत्र हैं ? ।१३। ययाति ने कहा—सम्पूर्ण वेद का अध्ययन मैंने ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करते हुए किया है—मैं अवश्य ही एक राजा और राजा का ही पुत्र हूँ तथा मेरा नाम ययाति—यह विश्रुत है ।१४।

केन चार्थेन नृपते ! ह्येनं देशं समागतः ।
जिघृक्षुर्वारि यत्किञ्चिदथवा मृगलिप्सया ।१५
मृगलिप्सुरहं भद्रे ! पानीयार्थमिहागतः ।
बहुधाप्यनुयुक्तोऽस्मि त्वमनुज्ञातुमर्हसि ।१६
द्वाभ्याकन्यासहस्राभ्यांदास्याशर्मिष्ठयासह ।
त्वदधीनास्मिभद्रंतेसखे ! भर्त्ताचमेव ।१७
विध्यौशनसिभद्रंतेनत्वदर्होऽस्मिभामिनि ।
अविवाह्याः स्मराजानोदेवयानि ? पितुस्तव ।१८
संसृष्टं ब्रह्मणा क्षत्रं क्षत्रं ब्रह्माणि संश्रितम् ।
ऋषिश्च ऋषिपुत्रश्च नाहुषाद्यभजस्वमाम् ।१९
एकदेहोद्भवा वर्णाश्चत्वारोऽपिवरानने ।
पृथक्धर्म्माः पृथक् शौचास्तेषांवैब्राह्मणोवरः ।२०
पाणिग्रहो नाहुषायं न पुंभिः सेवितः पुरा ।
त्वमेनमग्रहीदग्रे वृणोमि त्वामहं ततः ।२१
कथं तुमेमनस्विन्याः पाणिमन्यः पुमान्स्पृशेत् ।
गृहीतमृषिपुत्रेणस्वयंवाप्यृषिणात्वया ।२२

देवयानी ने कहा—हे राजन् ! यहाँ पर इस देश में किस प्रयो-

जन से समागत हुए हैं ? आप क्या कुछ जलपान करने के इच्छुक हैं-या मृगया की इच्छा से ही इस स्थल पर आपने पदार्पण किया है ? ।१५। ययातिने उत्तर दिया-हे भद्रे! मैं मृग की शिकार को करने का इच्छुक ही हूँ यहाँ पर तो केवल जल पीने के ही लिए आ गया हूँ । मैं बहुधा अनुयुक्त भी हुआ हूँ । आपकी कुछ सेवा हो तो आप मुझे अनुज्ञा प्रदान कीजिए ।१६। देवयानी ने कहा—हे सखे ! आपका परम कल्याण हो-में दो सहस्र कन्याओं से युक्त तथा दासी शर्मिष्ठा के सहित अब आपके ही अधीन हो गई हूँ । अब आप ही मेरे भर्ता हो जाइए ।१७। राजा ययाति ने उत्तर दिया—हे भामिनि ! आप विधि के उशना अर्थात् शुक्राचार्य की पुत्री हैं । आपका परमकल्याण हो । मैं आपके पति बनने के योग्य नहीं हूँ । हे देवयानि! आपके पिताके यहाँ राजा लोग विवाह करने के योग्य नहीं हो सकते हैं ।१८। देवयानी ने कहा—ब्रह्मा ने ही सबका सृजन किया है । अतः ब्रह्मा के द्वारा क्षत्रिय वर्ण संतुष्ट है तथा ब्रह्मा में क्षत्र संमिश्रित हैं । ऋषि और ऋषियों के पुत्र सभी तो उन्हीं से हुए हैं । इसमें कुछ भी भेद-भाव नहीं है । हे नाहुष! अब आप मुझे स्वीकार कर लीजिए ।१९। ययाति ने कहा—हे वरानने ! यह ठीक है कि चारों ही वर्ण एक ही ब्रह्माजी के देह से समुद्भूत हुए हैं किन्तु यह भी तो है कि प्रत्येक वर्ण के पृथक्-पृथक् धर्म-शौच और आचार हुआ करते हैं और उन सब वर्णों में ब्राह्मण वर्ण सर्वश्रेष्ठ वर्ण होता है ।२० देवयानी ने कहा—हे नहुष महाराज के पुत्र ! मेरे पाणि (हाथ) का ग्रहण इस समय से पूर्व में किसी भी पुरुषके द्वारा सेवित नहीं हुआहै । आपने ही सबसे आगे इसे ग्रहण किया है । इसलिये मैं तो आपको ही वरण करती हूँ ।२१। अब मनस्विनी मेरा यह पाणि किस तरह कोई अन्य पुरुष स्पर्श करेगा । आप ऋषि के पुत्र ने अथवा स्वयं साक्षात् ऋषि आपने इसको ग्रहण किया है ।२२।

क्रुद्धादाशीविषात्सर्पाज्ज्वलनात्सर्वतोमुखात् ।
दुराधर्षतरो विप्रः पुरुषेण विजानता ।२३

कथमाशीविषात्सर्पाज्ज्वलनात्सर्वतोमुखात् ।
दुराधर्षनरोविप्र इत्यात्थ पुरुषर्षभ ।२४
दशेदाशीविषस्त्वेकं शस्त्रेणंकश्च बध्यते ।
हन्तिविप्रः सराष्ट्राणि पुराण्यपिहिकोपितः ।२५
दुराधर्षतरो विप्रस्तस्मात् भीरु ! मतोमम ।
अतो दत्ताञ्चपित्रात्वां भद्रे ! नविवहाम्यहम् ।२६
दत्तां वहस्व पित्रामांत्वंहिराजन् ! वृतोमया ।
अयाचतो भयं नास्ति दत्ताञ्चप्रतिगृह्णतः ।२७

राजा ययाति ने कहा—अत्यन्त क्रुद्ध सर्पसे तथा सर्वतोमुख अग्नि से भी अधिक विप्र विज्ञान रखने वाले पुरुष के द्वारा दुराधर्षतर हुआ करता है ।२३। देवयानी ने कहा—हे पुरुषों में परमश्रेष्ठ ! आप यह समझाइये कि आशीविष सर्प से और सभी ओर मुख वाले अग्नि से विप्र दुराधर्षतर कैसे होता है ? ।२४। राजा ययाति ने कहा— आशीविष सर्प तो एक ही किसी का दर्शन किया करता है और वह एक शस्त्र के द्वारा वध किया जाता है । यदि कोई कुपित हो जाता हैं तो वह राष्ट्रों के सहित समस्त पुरों का दाह कर दिया करता है । विप्रके वचन और शाप में तो महान् प्रबल शक्ति विद्यमान रहा करती है । हे भीरु ! इसी कारण से विप्र अधिक दुराधर्ष मेरे विचार से माना गया है । इसीलिये हे भद्रे ! आपके पिता के द्वारा भी दी हुई आपके साथ मैं विवाह नहीं करता हूँ ।२५-२६। देवयानी ने कहा—हे राजान् ! आप मेरे पिता के द्वारा प्रदान की गई मुझे वरण करो क्योंकि मैंने तो आप को ही वरण कर लिया है । बिना याचना किए हुए आपको कुछ भी भय नहीं है और दी हुई मुझको आप ग्रहण कीजिए ।२७।

त्वरितदेवयान्याथ प्रेषिता पितुरात्मनः ।
सर्वं निवेदयामास धात्री तस्मै यथातथम् ।२८

श्रुत्वैवञ्च स राजानं दर्शयामास भार्गवः ।
दृष्ट्वैवमागतं विप्रं ययातिः पृथिवीपतिः ।२९
ववन्दे ब्राह्मणं काव्यं प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः ।
तं चाप्यभ्यवदत्काव्यः साम्नापरमवल्गुना ।३०
राजायं नाहुषस्तात दुर्गमे पाणिमग्रहीत् ।
नमस्ते देहि मामस्मै लोकेनान्यं पतिं वृणे ।३१
वृतोऽनया पतिर्वीर ! सुतया त्वं ममेष्टया ।
गृहाणे मां मया दत्तां महिषी नहुषात्मज ! ।३२
अधर्मोमां स्पृशेदेवं पापमस्याश्चभार्गव ! ।
वर्णसंकरतोब्रह्मन् ! इतित्वां प्रवृणोम्यहम् ।
अधर्मात् त्वां विमुञ्चामि वरं वरय चेप्सितम् ।
अस्मिन् विवाहे त्वं श्लाघ्यो रहोपापन्नुदामि ते ।३३
वहस्व भार्यां धर्मेण देवयानीं शुचिस्मिताम् ।
अनया सह संप्रीतिमतुलां समवाप्नुहि ।३४
इयं चापि कुमारी ते शर्मिष्ठ वार्षपर्वणी ।
संपूज्य सन्ततं राजन् ! नचैनांशयनेह्वयः ।३५
एवमुक्तो ययातिस्तु शुक्रं कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
जगामस्वपुरं हृष्टः सोऽनुज्ञातो महात्मना ।३६

शौनक महर्षि ने कहा—इससे अनन्तर देवयानी ने तुरन्त ही अपने पिता के समीप में धात्री को प्रेषित कर दिया था । उस भेजी गयी धात्री ने उनको सभी कुछ ठीक-ठीक निवेदन कर दिया था । धात्री के द्वारा राजाका वहाँ पर आगमन सुनते ही भार्गव मुनिने राजा का वहाँ उपस्थित होकर दर्शन किया था । राजा ययाति ने वहाँ पर समाधान हुए जब विप्र का दर्शन किया तो बड़े वेग के साथ उठकर ययाति ने ब्राह्मण शुक्रकी वन्दना की थी और दोनों हाथ जोड़कर प्रणत होते हुए उनके समक्ष में स्थित हो गया था । भार्गव मुनि ने भी राजा होने के नाते परम वल्गु साम के द्वारा उस ययाति का प्रत्याभिवाहदन किया

था ।२८-३०। देवयानी ने कहा—हे तात ! यह नहुष के पुत्र ययाति नामधारी राजा हैं। इन्होंने दुर्गम दशा में मेरा पाणि का ग्रहण किया था । मैं आपकी सेवा में प्रणाम समर्पित करती हूँ । आप मुझको इन्हीं की पत्नी के रूप में प्रदान कर दीजिए क्योंकि मैं लोक में अन्य किसी को पति के रूप में वरण नहीं करूँगी ।३१। शुक्र ने कहा—हे वीर ! इस कन्या देवयानीने आपको ही अपना पतिवरण कर लिया है । यह मेरी परम प्रिय इष्ट सुता है । नहुषात्मज ! अब मेरे द्वारा समर्पित की हुई इसको ग्रहण कीजिए और अपनी महिषी इसे बना लीजिए ।३२। राजा ययाति ने कहा—हे भार्गव ! इस प्रकार से करने पर तो अधर्म मुझेस्पर्श करेगा और इसे स्वीकार करनेमें पाप होगा । हे ब्रह्मन् ! यह तो वर्णों का सङ्कट हो जायगा-इसलिये मैं आपसे निवेदन करता हूँ । शुक्राचार्य ने कहा—मैं इस अधर्म से आपका विमोचन किये देता हूँ । आपको जो भी कुछ अभीष्ट वरदान हो वह अब मुझसे माँगलो इस विवाहके करने में आप श्लाघ्या के ही योग्य होंगे और यह जो कुछ भी पाप है उससे मैं आपका उद्धार कर दूँगा ।३३। हे राजन् धर्म से इस शुचि स्मित वाली देवयानी को आप भार्या के स्वरूप में वहन कीजिए । इसके साथ आप आतुला प्रीति प्राप्त करेंगे ।३४। यह तुम्हारी कुमारी शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी है । हे राजन् निरन्तर भली भाँति पूजन करके इसके साथ शयन मत करना ।३५। महर्षि शौनकजी ने कहा—इस प्रकार से कहे हुए ययातिने शुक्राचार्यकी परिक्रमा दी और परम प्रसन्न होकर अनुज्ञा प्राप्त होने पर जो कि महात्मा शुक्र ने दी थी वह अपने पुर में चला गया था ।३६।

१९—ययात्यष्टकसम्वादवर्णन

यदा वसन्नन्दने कामरूपे संवत्सराणामयुतं शतानाम् ।
किं कारणं कार्तयुगप्रधान हित्वा तद्वै वसुधामन्वपद्यः ।१
ज्ञाति सुहृत् स्वजनो यो यथेह क्षीण वित्ते त्यज्यते तानवैर्हिः ।
तथा स्वर्गे क्षीणपुण्यं मनुष्यन्त्यजन्ति सद्यः खेचरा देवसङ्घाः ।२
कथं तस्मिन् क्षीणपुण्या भवन्तु संमुह्यते मेऽत्रमनोऽतिमात्रम् ।
किं विशिष्टाःकस्य धामोपयान्ति तद्वै ब्रूहि क्षेत्रवित्त्वं मतोमे।३
इमं भौमं नरकन्ते पतन्ति लालप्यमाना नरदेव ! सर्वे ।
ते कङ्कगोमायुपलाशनार्थं क्षितौ विवृद्धिं बहुधा प्रयान्ति ।४
तस्मादेवं वर्जनीयं नरेन्द्र दुष्टं लोके गर्हणीयञ्च कर्म्म ।
आख्यातं ते पार्थिव सर्वमेतत् भूयश्चेदानीं वद किन्मे वदामि ।५
यदा तु तांस्ते वितुदन्ते वयांसि तथा गृध्राःशितिकण्ठाः पतङ्गाः।
कथं भवन्ति कथमाभवन्ति त्वत्तो भौमं नरकमहं शृणोमि ।६

अष्टक ने कहा—काम रूप नन्दन वन में एक से अयुत (दश सहस्र) सम्वत्सरों तक बास करते हुए कार्त्तयुग प्रधान उसका त्याग करके पुनः इस वसुधा पर प्राप्त हो गया था-इसका क्या कारण है? ।१। ययाति ने कहा—जिस तरह से यहाँ पर वित्त के क्षीण हो जाने पर मानवोंके द्वारा अपनी ज्ञाति वाला—सुहृद और स्वजन त्यागदिया जाया करता है उसी भाँति स्वर्ग में खेचर देवों के संघ में भी क्षीण पुण्य वाले मनुष्य को तुरन्त ही त्याग दिया करते हैं ।२। अष्टक ने कहा—वहाँ पर पुण्यों को क्षीण करने वाले कैसे हो जाते हैं-इस विषय मे मेरा मन अत्यधिक मोहित हो जाता है । किस विशेषता से युक्त पुरुष किसके धाम को जाया करते हैं-यह सब आप हमको बतलाइये क्योंकि मेरे विचार में आप पूर्णतया क्षेत्र के वेत्ता हैं ।३। ययाति ने कहा—हे लालप्यमान सब इस आपके भूमिमे रहने वाले नरक में गिरा करतेहैं ।

वे कङ्क-गोमायु पलाशन के लिए बहुधा भूमि में विशेष वृद्धि को प्राप्त होते हैं।४। हे नरेन्द्र ! इस कारण से इस प्रकार से लोक में दुष्ट और गर्हणा के योग्य कर्मका वर्णन कर देना चाहिए। हे पार्थिव! यह सभी कुछ आपको बता दिया गया है और फिर अब बतलाइये कि अपको मैं क्या बतलाऊँगा ?।५। अष्टक ने कहा—जिस समय में वे पक्षी तथा गृध्र-शितिकण्ठ और पतङ्ग उनको उत्पीड़ित किया है ? आपसे ही इस अत्यन्त भयानक नरक के विषय में श्रवण करना चाहता हूँ।६।

ऊर्ध्वं देहात्कर्म्मणो जृम्भमाणात् व्यक्तं पृथिव्यामनुसञ्चरन्ति ।
इमं भौमं नरकन्ते पतन्ति नावेक्षन्ते वर्षपूगाननेकान् ।७
षष्टिं सहस्राणि पतन्तिव्योम्नि तथाशीतिञ्चैव तु वत्सराणाम् ।
तान्वैतुदन्ते प्रपतन्त:प्रयातान्भीमा भौमा राक्षसास्तीक्ष्णदंष्ट्रा:।८
यदेतांस्ते संपततस्तुदन्ति भीमा भौमा राक्षसास्तीक्ष्णदंष्ट्रा: ।
कथं भवन्ति कथमाभवन्ति कथं भूगर्भभूता भवन्ति ।९
असृग्रेत: पुष्परसानुयुक्तं अन्वेति सद्य: पुरुषेण सृष्टम् ।
तद्वै तस्यारज आपद्यते च स गर्भभूत: समुपैति तत्र ।१०
वनस्पतीनोषधींश्चाविशन्ति अपो वायुं पृथिवीञ्चान्तरिक्षम् ।
चतुष्पदं द्विपदञ्चापि सर्वं एवं भूतां गर्भभूता भवन्ति ।११
अन्यद्वपुर्विदधातीह गर्भे उताहो स्वित् स्वेन कामेन याति ।
आपद्यमानो नरयोनिमतामाचक्ष्व मे संशयात् पृच्छतस्त्वम् ।१२
शरीरदेहादिसमुच्छ्रयञ्च चक्षु: श्रोत्रे लभते केन संज्ञाम् ।
एतत् सर्वं तात आचक्ष्व पृष्ट:क्षेत्रज्ञं त्वां मन्यमाना हि सर्वे।१३

ययाति ने कहा—जृम्भमाण देहात्कर्म्म से ऊर्ध्व में व्यक्त रूप से पृथिवी में अनुसंचरण किया करते हैं। वे इस भूमिमें रहने वाले आपके नरक में गिरा करते हैं और अनेक वर्षों के समूह को नहीं देखते हैं।७ साठ सहस्र तथा अस्सी सहस्र वर्ष तक व्योम में गिरा करते हैं प्रयाण करते हुए उनको प्रयतन करते हुए तीक्ष्ण दाढ़ोंवाले महा भयानक भौम

राक्षस पीड़ित किया करते हैं ।८। अष्टक ने कहा—जिस समय में वे संपतन करते हुए तीक्ष्ण दंष्ट्राओं वाले भयानक भौम राक्षस इनको उत्पीड़ित किया करते हैं तो कैसे होते हैं—कैसे चारों ओर होते हैं और कैसे भूमि के गर्भ में गत हुआ करते हैं ।६। ययाति ने कहा—पुरुष के द्वारा सृष्ट रेत पुष्प रस से अनुयुक्त असृक् (रक्त) तुरन्त ही अनुगमन करता है। वह उसका रज आपन्न होता है और वह वहाँ पर गर्भभूत होता हुआ समुपगमन किया करता है ।१०। वनस्पति और औषधियों में आविष्ट होते हैं—जल, वायु, पृथिवी, अन्तरिक्ष, चतुष्पद, द्विपद ये सब इस प्रकार से होते हुए गर्भभूत होते हैं ।११। अष्टक ने कहा—यहाँ गर्भ में कोई अन्य वपु धारण करता है अथवा अपना ही इच्छा से जाया करता है जब कि इस नर योनि को प्राप्त होता हुआ रहता है-यह सब मुझे बतलाइये, मैं संशय होने के कारण से आपसे पूछ रहा हूँ ।१२। शरीर देहादि का समुच्चय—चक्षु और श्रोत्र किससे संज्ञा को प्राप्त किया करता है ? हे तात ! आप से पूछा गया है आप सभी कुछ बतलाइए। आपको सभी क्षेत्रज्ञ मानते हैं ।१३।

वायुः समुत्कर्षति गर्भयोनिमृतौ रेतः पुष्परसानुयुक्तम् ।
स तत्र तन्मात्रकृताधिकारः क्रमेण संवर्धयतीह गर्भम् ।१४
स जायमानोऽथ गृहीतगात्रः संज्ञामधिष्ठाय ततो मनुष्यः ।
स श्रोत्राभ्यां वेदयतीह शब्दं स वै रूपं पश्यति चक्षुषा च ।१५
घ्राणेन गन्धं जिह्वयाथो रसञ्च त्वचा स्पर्शंमनसा वेदभावम्।
इत्यष्टके होपचितं हि विद्धि महात्मनः प्राणभृतः शरीरे ।१६
यः संस्थितः पुरुषो दह्यते वा निखन्यते वापि निकृष्यते वा ।
अभावभूतः स विनाशमेत्य केनात्मानं चेतयते पुरस्तात् ।१७
हित्वा सोऽसून् सुप्तवन्निष्ठितत्वात् पुरोधाय सुकृतं दुष्कृतञ्च ।
अन्यां योनिं पुण्यपापानुसारां हित्वा देहं भजते राजसिंह ।१८

पुण्यां योनिं पुण्यकृतो विशन्ति पापां योनिं पापकृतो व्रजन्ति ।
कीटाः पतङ्गाश्च भवन्ति पापन्न मे विवक्षास्ति महानुभाव ।१९
चतुष्पदा द्विपदाः पक्षिणश्च तथा भूता गर्भभूता भवन्ति ।
आख्यातमेतन्निखिलं हि सर्वं भूयस्तु किं पृच्छसि राजसिंह ।२०

राजा ययाति ने कहा—पुष्प रस से अनुयुक्त रेत को ऋतुकाल में वायु समुत्कर्षित किया करता है। उतना ही अधिकार करने वाला वह वहाँ पर क्रम से गर्भ को संवर्धित किया करता है ।१४। इसके उपरांत जब वह जायमान होता है तो गात्र को ग्रहण करने वाला हो जाता है। इसके पश्चात् वह मनुष्य संज्ञा को अधिष्ठित हुआ करता है। वह श्रोत्रों से यहाँ पर शब्द का ज्ञान करता है और वह रूप को चक्षु से देखता है ।१५। घ्राण से गन्ध को पहिचानता है तथा जिह्वा से रस और त्वचा से स्पर्श और मन से भेदभाव को जानता है। प्राणधारी महात्मा के शरीर में इस अष्टक में उपचित समझलो ।१६। अष्टक ने कहा-जो संस्थित पुरुष जला दिया जाता है--गाड़ दिया जाताहै अथवा निकृष्ट किया जाता है अभावभूत वह विनाश को प्राप्त होकर फिर किसके द्वारा आगे आत्माको चैतन्य स्वरूप देकर प्रदर्शित किया करता है ।१७। राजा ययाति ने कहा--वह प्राणों का त्याग करके एक लुप्त की भाँति निष्ठित होने से अपने जीवन में विहित सुकृत और दुसकृत आगे रखकर ही पुण्य-पाप के अनुसार अन्य योनि को भजता है और इस देह का त्याग कर दिया करता है। हे राजसिंह ! अधम शरीर के त्याग के बाद ऐसा ही हुआ करता है जिसमें पुण्य-पाप की प्रधानता होती है ।१८। जो पुण्य कर्मों के करने वाले लोग होतेहैं वे पुण्य योनि में ही प्रवेश किया करते हैं और जो पापकर्म करने वाले हैं वे पापयोनि में जाया करते हैं। हे महानुभाव ! कीट और पतङ्ग पाप से होते हैं यह मेरी विवक्षा नहीं है।१६। चतुष्पद-द्विपद और पक्षीवर्ग उस प्रकार से हुए गर्भभूत होते हैं यह हमने सभी कुछ कह दिया है। हे राजसिंह पुनः अब क्या पूछते हैं ।२०।

किंस्वित् कृत्वा लभते तात संज्ञां मर्त्यःश्रेष्ठां तपसा विद्यया वा
तन्मे पृष्टःशंस सर्वं यथावच्छुभान् लोकान्येन गच्छेत् क्रमेण।२१
तपश्च दानञ्च शमो दमश्च ह्रीरार्जवं सर्वभूतानुकम्पा।
स्वर्गस्य लोकस्य वदन्ति सन्तो द्वाराणि सप्तैवमहान्तिपुंसाम्।२२
सर्वाणि चैतानि यथोदितानि तपः प्रधानान्यभिमर्शकेन।
नश्यन्ति मानेन तमाऽभिभूताः पुंसः सदैवेति वदन्ति सन्तः।२३
अधीयानः पण्डितं मन्यमानो यो विद्यया हन्ति यशः पुरस्य।
तस्यान्तवंतः पुरुषस्य लोकानचास्य तद्ब्रह्मफलं ददाति।२४
चत्वारि कर्माणि भयङ्कराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि।
मानाग्निहोत्रमुतमौनं मानेनाधीतमुतमानयज्ञः।२५
न मान्यमानो मुदमाददीत न सन्तापं प्राप्नुयाच्चावमानात्।
सन्तः सतः पूजयन्तीह लोके नासाधवः साधुबुद्धिं लभन्ते।२६
इति दद्यादिति यजेदित्यधीयीत मे श्रुतम्।
इत्येतान्यभयान्याहुस्तान्यवर्ज्यानिनित्यशः।२७
येनाश्रयं वेदयन्ते पुराणं मनीषिणो मानसे मानयुक्तम्।
तन्निश्रेयस्तेन संयोगमेत्य परां शान्तिं प्राप्नुयुः प्रेत्य चेह।२८

अष्टक ने कहा—हे तात! क्या कर्म्म करके मनुष्य श्रेष्ठ संज्ञा को प्राप्त किया करता है, तपश्चर्या से अथवा विद्या से? यही मेरे द्वारा आप से पूछे जा रहे हैं सो सभी यथावत् कहिए और यह भी बतलाइए कि जिस क्रमसे वह शुभ लोकों को चला जाता है।२१। ययातिने कहा-तप, दान, शम, दम, लज्जा, आर्जव और समस्त प्राणियों पर दया—ये सब सात ही पुरुषों के महान् द्वार हैं जिनको स्वर्गलोक के भी सन्त लोग कहा करते हैं।२२। ये सब जो भी उदित किए गये हैं वे तपः प्रधान ही होते है अर्थात् इन सभी में तपश्चर्या का ही प्रमुखता हुआ करती है। जो तमोगुण से अभिभूत होते है वे अभिमर्शक मान से नष्ट हो जाते हैं। वह पुरुष को सदा ही होता है—यही सन्त पुरुष कहते

हैं ।२३। अधीयान अर्थात् पूर्णतया पठित पुरुष अपने आपको पण्डित मानता हुआ अर्थात् अपने पाण्डित्य का अभिमान रखने वाला है और जो विद्या के बल से दूसरे के यश का हनन किया करता है उस पुरुष के अन्त में होने वाले लोक नहीं हुआ करते हैं और न उसको वह ब्रह्मफल ही दिया करता है ।२४। ये चार कर्म्म महान् भयङ्कर हुआ करते हैं और अयथाकृत से भय दिया करते हैं—मानग्निहोत्र, मौन, मान से आधीत और मानयज्ञ वे ये ही चार हैं ।२५। मान्य मान वाला कभी मुद प्राप्त नहीं किया करता है—और वह सन्ताप को भी अब मान होने से नहीं प्राप्त किया करता है। इस लोक में सन्त पुरुष सत्पुरुषों का ही पूजन किया करते हैं और जो असाधु पुरुष होते हैं वे कभी भी साधु बुद्धि को प्राप्त किया करते हैं ।२६। मेरा श्रुत तो यह बतलाता है कि इसको इतना दान करे—यह यजनार्चन करना चाहिए और यह अध्ययन करे—इसी हेतु से यह भय से रहित है और उनको नित्य ही अनर्जनीय कहा जाता है ।२७। पुराण जिससे आश्रय का वेदन मनीषिगण किया करते हैं जो मानस में मानयुक्त हैं वही निश्रेय है उससे संयोग प्राप्त करके यहाँ मृत होकर परा शान्ति को प्राप्त किया करते हैं ।२८।

२०—ययात्यष्टकसम्वाद वर्णन

चरन् गृहस्थः कथमेति देवान् कथं भिक्षः कथमाचार्य्यकर्म्मा ।
वानप्रस्थः सत्पथे सन्निविष्टो बहून्यस्मिन् संप्रति वेदयन्ति ।१।
आहूताध्यायी गुरुकर्मसु चोद्यतः पूर्वोत्थायी चरमञ्चाथशायी ।
मृदुर्दान्तो धृतिमानप्रमत्तः स्वाध्यायशीलः सिद्धयति ब्रह्मचारी।२
धर्मागतं प्राप्य धनं यजेत दद्यात्सदैवातिथीन् भोजयेच ।
अनाददानश्च परैरदत्तं सैषा गृहस्थोपनिषत्पुराणी ।३

स्ववीर्य्यंजीवी वृजिनान्निवृत्तो दाता परेभ्यो न परोपतापी ।
ताद्दङ्मुनिः सिद्धिमुपैति मुख्या वसन्नरण्ये नियताहारचेष्टः ।४
अशिल्पजीवी विगृहश्च नित्यं जितेन्द्रियः सर्वतो विप्रमुक्तः ।
अनोकशायी लघु लिप्समानश्चरन् देशानेकाम्बरः स भिक्षुः ।५
रात्र्या यया चाभिरताश्च लोका भवन्ति कामाभिजिताःसुखेनच
तामेव रात्रिं प्रयतेत विद्वानरण्यसंस्थो भवितुं यतात्मा ।६
दशैव पूर्वान् दश चापरांस्तु ज्ञातींस्तथात्मानमथैकविंशम् ।
अरण्यवासी सुकृतं दधाति मुक्तवात्वरण्ये स्वशरीरधातून् ।७

अष्टक ने कहा—एक गार्हस्थ्य आश्रम में सञ्चरण करने वाला पुरुष किस प्रकार से देवों को प्राप्त किया करता है भिक्षु (संन्यासी) किस विधान से और जो आचार्य का कर्म्म करने वाला है वह किस रीति से देवपथ के समीप में पहुँचा करता है तथा जो वानप्रस्थाश्रमी पुरुष है और सत्पथ में सन्निविष्ट है उसकी क्या विधि है ? इस विषय में अब बहुत सी बातें वेदन की जाती हैं ।१। राजा ययाति ने कहा—जिस समय में उसको अध्ययन करने के लिए आहूत करें तभी उन आचार्य वर की सन्निधि में समुपस्थित होकर अध्ययन करने वाला—गुरुजी के सम्पूर्ण कर्म्मों के सम्पादन करने के लिए सदा उद्यत रहने वाला गुरुचरण से पहले शय्या त्याग कर उठने वाला और उनके शयन करने के पश्चात् सोने वाला—परम मृदु दमनशील, धृतिमान्, अप्रमत्त एवं जो सर्वदा स्वाध्याय करने के शील वाला है वही ब्रह्मचारी सिद्धि प्राप्त किया करता है ।२। धर्म्म के द्वारा समागत धन से यजन करना चाहिए और सदा ही अतिथियों को दान देवे तथा उनको भोजन करावे—दूसरों के द्वारा नहीं दिये हुए को नहीं ग्रहण करता हुआ गृहस्थ होना चाहिए यही गार्हस्थाश्रम में रहने वाले की परम पुरातन उपनिषत् है ।३। अपने ही बल वीर्य से जीवन यापन करने वाला--पाप कर्म से निवृत्त रहने वाला, दूसरों को दान देने वाला तथा दूसरो को

कभी भी उपताप न देने वाला इस प्रकार की रहनी रहने वाला मुनि जो नियत आहार करनेकी चेष्टा रखते हुए वनमें निवास क्रिया करता है वह परम मुख्य सिद्धि का लाभ लेता है ।४। जो किसी भी प्रकार के शिल्प-कौशल से जीवन का यापन नहीं किया करता है तथा बिना गृह वाला है—नित्य ही अपनी इन्द्रियों को जीतकर रखने वाला है और से प्रमुक्त अर्थात् बन्धन से रहित है—किसी भी गृह में शयन न करने वाला तथा बहुत ही स्वल्प लिप्सा रखने वाला, एकही वस्त्र का धारी और अनेक देशों में विचरण करने वाला जो होता है वही भिक्षु (संन्यासी) है ।५। जिस रात्रि से लोक अभिरत होते हैं तथा सुख से काकाभिजित होते हैं विद्वान् पुरुष को उसी रात्रि में प्रयत्न करना चाहिए कि वह प्रयत आत्मा वाला अरण्य में संस्थित रखने वाला होवे ।६। वह अरण्य में निवास करने वाला अपने शरीर की धातुओं को अरण्य में ही त्याग करके परम सुकृत को धारण किया करता है। वह अपने से पूर्व में हुए दश पुरुषों को और दश दूसरे ज्ञातियों को तथा इक्कीसवाँ अपने आपको सभी का अपने तपोबल से उद्धार कर दिया करता है ।७।

कति स्विद्देवमुनयो मौनानि कति चाप्युत ।
भवन्तीति तदाचक्ष्व श्रोतुमिच्छामहे वयम् ।८
अरण्ये बसतो यस्य ग्रामो भवति पृष्ठतः ।
ग्रामे वा वसतोऽरण्यं स मुनिः स्याज्जनाधिप ।९
कथंस्विद्वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठतः ।
ग्रामे वा वसतोऽरण्यं कथं भवति पृष्ठतः ।१०
न ग्राम्यमुपयुञ्जीत य आरण्यो मुनिर्भवेत् ।
तथास्य बसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठतः ।११
अनग्निरनिकेतश्चाप्यगोत्रचरणो मुनिः ।
कौपीनाच्छादनं यावत्तावदिच्छेच्च चीरगम् ।१२

यावत्प्राणाभिसन्धानं तावदिच्छेच्चभोजनम् ।
तदास्यवसतोग्रामेऽरण्यंभवति पृष्ठतः ।१३

अष्टक ने कहा—कितने देवगण और मुनिगण मौन होते हैं—यह सब आप मुझको बतलाइए। हम सब यह श्रवण करना चाहते है।८। ययाति ने कहा—हे जनाधिप! अरण्य में निवास करने वाले जिसको ग्राम पृष्ठ भाग में रहता में रहता है तथा ग्राम में अरण्य को पृष्ठ में छोड़ देता है वही मुनि होता है।९। अष्टक ने पूछा—अरण्यमें निवास करने वाले का ग्राम किस तरह से पृष्ठ में होता है अथवा ग्राम में निवास करने वाले का अरण्य कैसे पृष्ठ में होता है? ।१०। राजा ययाति ने कहा—जो आरण्य मुनि हो उसे कभी भी ग्राम का उपयोग नहीं करना चाहिये। इस तरह से अरण्य में निवास करने वाले इसका ग्राम पृष्ठ भाग में हो जाया करता है।११। बिना अग्नि वाला अर्थात् निरग्नि बिना घर बनाकर रहने वाला, अगोत्रचरण वाला जो मुनि हैं उसको जितनाभी कौपीन और समाच्छादन करनेके लिए चाहिए उतने ही वस्त्र की इच्छा करनी चाहिये।१२। जितने से अपने प्राणों का अभिसन्धान रहे उतना ही आहार प्राप्त करने की इच्छा रखनी चाहिए। उस समय में ग्राम में निवास करने वाले इसको अरण्य भी पृष्ठ भाग में पड़ जाया करता है।१३।

यस्तुकामान्परित्यज्यक्तकर्माजितेन्द्रियः ।
आतिष्ठेतमुनिर्मौनंसलोकेसिद्धिमाप्नुयात् ।१४
धौतदन्तं कृत्तनखं सदास्नातमलङ्कृतम् ।
असितं सितकर्मस्थं कस्तन्नार्चितुमर्हति ।१५
तपसाकर्शितः क्षामः क्षीणमांसास्थिशोणितः ।
यदाभवतिनिर्द्वन्दो मुनिर्मौन समास्थितः ।१६
अथलोकमिमञ्जित्वा लोकञ्चापि जयेत्परम् ।
आस्येन तु यदाहारं गोवन्मृगयते मुनिः ।
अथास्य लोकः सर्वो यः सोऽमृतत्वाय कल्पते ।१७

जो समस्त प्रकार की इच्छाओं का त्याग करके भस्मों को छोड़ कर पूर्णतया इन्द्रियों के ऊपर अपना नियन्त्रण रखने वाला समास्थित हुआ करता है और मौनव्रत धारण करता है वही मुनि लोक में सिद्धि को प्राप्त किया करता है ।१४। जो धौत दन्तों वाला है—नाखून जिसके कटे हुए रहा करते हैं—सदा स्नान करके साफ-सुथरा रहता है और भली-भाँति अलंकृत रहा करता है और असित तथा सित कर्मों में स्थित रहने वाला सन्यासी है उसे कौन अर्चन करने की भावना रखता है अर्थात् ऐसे भिक्षु की समर्चा की योग्यता ही नहीं होती है ।१५। जो तपश्चर्या से कर्शित, दुबला, पतला, क्षीण मांस अस्थि और रक्त वाला जिस समय में निर्द्वन्द्व होता है वह मुनि मौन व्रत में समास्थित हुआ करता है ।१६। इसके अनन्तर इस लोक को जीतकर वह परलोक पर भी विजय प्राप्त किया करता है । मुनि अपने मुख से गौ की भाँति ही अब आहारको ग्रहण किया करता है तथा खोजता है इस दशा के होने के अनन्तर इसको जो भी सब लोक हैं वह अमृतमत्व के लिए ही कल्पित होते हैं ।१७।

२१—यदुवंश वर्णन

इत्येतच्छौनकाद्राजा शयानीकोनिशम्य तु ।
विस्मितः परयाप्रीत्यापूर्णचन्द्र इवाबुभौ ।१
पूजयामास नृपतिर्विधिच्चार्थं शौनकम् ।
रत्नैर्गोभिः सुवर्णैश्च वासोभिर्विविधैस्तथा ।२
प्रतिगृह्य ततः सर्वं यद्राज्ञा प्रहितं धनम् ।
दत्त्वा च ब्राह्मणेभ्यश्च शौनकोऽन्तरधीयत ।३
ययातिवंशमिच्छामः श्रोतुं विस्तरतो वद ।
यदुप्रभृतिभिः पुत्रै र्यदा लोके प्रतिष्ठितः ।४

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजस:।
विस्तरेणानुपूर्व्या च गदतो मे निबोधत ।५
यदो: पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देवसुतोपमा: ।
महारथा महेष्वासानामतस्तान्निबोधत: ।६
सहस्रजिरथोज्येष्ठ: क्रोष्टुर्नीलोऽन्तिकोलघु: ।
सहस्रजेस्तुदायादोशतजिर्नामपार्थिव: ।७

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—शनातीक राजा ने शौनक से यह जब श्रवण किया था तो वह विस्मित हो गया था और पराप्रीति से पूर्ण चन्द्र की भाँति प्रकाश मान हो गया था ।१। फिर उस राजाने पूर्ण विधान के साथ शौनक का पूजन किया था। पूजन के उपचारोंमें बहुमूल्य रत्न, गौ, सुवर्ण और अनेक भाँति के वस्त्र आदि सभी थे।२। जो भी राजा के द्वारा धन प्रहित कियाथा उस सबका प्रतिग्रहण करके और ब्राह्मणों को दान करके फिर महर्षि शौनक वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे ।३। ऋषियों ने कहा—हे भगवन् ! अब हम सब लोग राजा ययाति के वंशका विस्तार श्रवण करना चाहते हैं। आप परमानुकम्पा करके उसका सविस्तृत वर्णन कीजिये जिस समय में वह इस लोक में यदु प्रभृति पुत्रों से समन्वित होकर प्रतिष्ठित हुआ था ।४। श्री सूतजी ने कहा—सबसे ज्येष्ठ और उत्तम तेज वाले यदु के वंश का मैं वर्णन करूँगा और विस्तार तथा आनुपूर्वी के साथ ही कहूँगा। आप लोग तब कहने वाले मुझसे सब कुछ समझ लीजिए ।५। महाराज यदु के देवताओं के समान पाँच पुत्र सुमुत्पन्न हुए। ये पाँचों ही महारथी और महान् इष्वास को धारण करने वाले थे ।६। इनमें सबसे बड़ा जो था वह सहस्रजि था और सबसे छोटा जो अन्तिम पुत्र था क्रोष्टुनील था। सहस्रजि का दायाद शतजि का दायाद शतजि नाम धारी पार्थिव समुद्भुत हुआ था ।७।

शतजेरपि दायादास्त्रय: परमकीर्त्तय: ।

हैहयश्च हयश्चैव तथा वेणुहयश्च यः ।८
हैहयस्य तु दायादो धर्म्मनेत्रः प्रतिश्रुतः ।
धर्म्मनेत्रस्यकुन्तिस्तुसंहतस्तस्य चात्मजः ।९
संहतस्य तु दायादो महिष्मान्नामपार्थिवः ।
आसीन्महिष्मतः पुत्रोरुद्रश्रेण्यः प्रतापवान् ।१०
वाराणस्यामभूद्राजा कथितं पूर्वमेव तु ।
रुद्रश्रेणस्य पुत्रोऽभूद्दुर्दमो नाम पार्थिवः ।११
दुर्द्दमस्यसुतोधीमान्कनकोनामवीर्य्यवान् ।
कनकस्यतुदायदाश्चत्वारोलोकविश्रुताः ।१२
कृतवीर्य्यः कृताग्निश्च कृतवर्मा तथैव च ।
कृतोजाश्च चतुर्थोऽभूत्कृतवीर्य्यात्तु सोर्जुनः ।१३
जातः करसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरो नृपः ।
वर्षायुतं तपस्तेपे दुश्चरं पृथिवीतिः ।१४

शताजि नाम वाले पुत्र के भी दायाद परम कीत्ति वाले तीन हुए थे जिनके शुभ नाम हैहय-हय और वेणुहय थे ।८। हैहय का जो दायाद उत्पन्न हुआ था वह धर्म्मनेत्र इस शुभ नाम प्रतिश्रुत हुआ था । धर्मनेत्र का दायाद कुन्ति हुआ और कुन्ति का आत्मज संहत नाम वाला हुआ था ।९। संहत के पुत्र महिष्मान् नाम वाला पार्थिव हुआ था । महिष्मान् का पुत्र परम प्रतापधारी रुद्रश्रेण्य ने जन्म ग्रहणकिया था । ।१०। यह वाराणसी में राजा हुआ था जिसका वर्णन पूर्व में ही किया जा चुका है । रुद्रश्रेण का पुत्र दुर्द्दम नाम वाला राजा हुआ था ।११। फिर इस दुर्द्दम का पुत्र परम बुद्धिमान् और बल वीर्य से संयुत कनक नामवाला हुआथा । इस कनकके चार दायाद लोकमें परमप्रसिद्ध हुएथे ।१२। इन चारों के नाम कृतवीर्य-कृताग्नि-कृतवर्मा और चौथा कृतोजा ये थे। कृतवीर्यके पुत्रसे ही सहस्रार्जुन समुत्पन्न हुआ था।१३।इसके एक सहस्र हाथ थे जब इसने जन्म ग्रहण किया था और यह सातों द्वीपोंका

राजा हुआ था। इस राजा ने दश सहस्र वर्ष तक परम दुश्चर तपस्या की थी।१४।

दत्तमाराधयामास कार्तवीर्य्योऽत्रिसम्भवम्।
तस्मै दत्तावरास्तेनचत्वारः पुरुषोत्तम्।१५
पूर्वं बाहुसहस्रन्तु वव्रे राजसत्तमः।
अधर्मं चरमाणस्य सद्भिश्चापिनिवारणम्।१६
युद्धेन पृथिवीं जित्वा धर्मेणैवानुपालनम्।
संग्रामे वर्तमानस्य वधश्चैवाधिकाद्भवेत्।१७
तेनेय पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता।
समोदधिपरिक्षिप्ता क्षात्रेण विधिना जिता।१८
जज्ञे बाहुसहस्रं वै इच्छतस्तस्य धीमतः।
रथो ध्वजश्च संजज्ञे इत्येवमनुशुश्रुमः।१९
दशयज्ञसहस्राणि राज्ञा दीपेषु वै तदा।
निरर्गला निवृत्तानि श्रूयन्ते तस्यधीमतः।२०
सर्वे यज्ञा महाराज्ञस्तस्यासन्भूरिदक्षिणाः।
सर्वेकाञ्चनयूपास्तेसर्वाः काञ्चनवेदिका।२१

इस कार्त्तवीर्य ने अत्रि के पुत्र दत्तात्रेय की समाराधना की थी। हे पुरुषोत्तम ! उसके द्वारा इसको चार वरदान दिये गये थे।१५। सबसे प्रथम उस राजश्रेष्ठ ने एक सहस्र बाहु प्राप्त करने का वरदान माँगा था। अधर्म का समाचरण करने वाले का सत्पुरुषों से निवारण करने का वरदान प्राप्त किया था।१६। युद्ध के द्वारा सम्पूर्ण भूमण्डल पर विजय प्राप्त करके धर्मके ही द्वारा सब पृथिवीका अनुपालन करना प्राप्त किया था। संग्राम में वर्तमान का वध भी हो तो किसी अधिक से ही होवे।१७। उस सहस्रबाहु ने इस पृथिवी को जो सम्पूर्ण सात द्वीपों से युक्त पर्वतों के सहित और समुद्र से घिरी हुई थी उस सबको क्षात्र विधि के द्वारा ही जीत लिया था।१८। उस धीमान् की जैसी इच्छा थी उसी के अनुसार एक सहस्र बाहु समुत्पन्न हो गई थीं। रथ

और ध्वज भी समुत्पन्न हुए थे ऐसा ही अनुश्रवण करते हैं ।१६। उस राजा के द्वारा द्वीपों में दश सहस्र यज्ञ निर्गल उस धीमान् के निवृत्त हुए थे ऐसा भी सुना जाता है ।२०। उस महान् राजा के सभी यज्ञ अत्यधिक दक्षिणा वाले सम्पन्न हुए थे। उन सभी यज्ञों में सुवर्ण के यूप थे और सभी सुवर्ण की वेदियों वाले थे ।२१।

सर्वे देवैः समं प्राप्तैर्विमानस्थैरलङ्कृताः ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः ।२२
तस्य यज्ञे जगौ गाथां गन्धर्वोनारदस्तथा ।
कार्तवीर्य्यस्यराजर्षेर्महिमानंनिरीक्ष्य सः ।२३
न नूनं कार्तवीर्य्यस्य गतिं यास्यन्तिक्षत्रियाः ।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्चविक्रमेणश्रु तेन च ।२४
स हि सप्तसु द्वीपेसु खड्गी चक्रीशरासनी ।
रथीद्वीपान्यनुचरन्योगीपश्यंतितस्करान् ।२५
पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां स नराधिपः ।
स सर्वरत्नसम्पूर्णश्चक्रवर्त्ती बभूवहि ।२६
स एव पशुपालोऽभूत् क्षेत्रपालः स एव हि ।
स एव वृष्टया पर्जन्यो योगित्वादर्ज्जुनोऽभवत् ।२७

सब विमानों में स्थित देवों के साथ प्राप्त हुए गन्धर्व और अप्सराओं से समलंकृत नित्य ही उपशोभित रहा करते थे ।२२। उससे यज्ञ में गन्धर्व तथा नारद ने कार्त्तवीर्य राजर्षि की महिमा को देखकर उनकी गाथा का गायन किया था ।२३। निश्चय ही क्षत्रिय गण कार्त्तवीर्य की गति को नहीं प्राप्त होंगे जिस प्रकार के इसके यज्ञ-दान-तप-विक्रम और श्रु त आदि हैं इस तरह के सभी विधान अन्य क्षत्रियों के के सर्वथा हैं ही नहीं।२४। वह सहस्रबाहु राजा खड्ग धारण करनेवाला

है ही नहीं ।२४। वह सहस्रबाहु राजा खड्ग धारण करने वाला तथा शरासन ग्रहण किए रथी सातो द्वीपों में अनुचरण करते हुए योगी

तस्करों की रक्षा करता था ।२५। वह नराधिप पिचासी सहस्र वर्षों तक सम्पूर्ण रत्नों से सम्पन्न होता हुआ इस भूमण्डल का चक्रवर्ती सम्राट हुआ था ।२६। वही पशुओं के पालन करने वाला हुआ था और वह ही क्षेत्रपाल भी हुआ था। वह वृष्टि के द्वारा पर्जन्य हुआ था और योगी होने के कारण से वही अर्जुन हो गया था ।२७।

योऽसौ बाहु सहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा ।
भाति रश्मिसहस्रेण शारदेनैवभास्करः ।२८
एष नागं मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युतिः ।
कर्कोटकसुतजित्वापुर्य्यां तत्रन्यवेशयत् ।२९
एष वेगं समुद्रस्य प्रावृट्काले भजेत वै ।
क्रीड़ान्नेव मुखोद्भिन्नः प्रतिस्रोतोमहीपतिः ।३०
ललता क्रीड़ता तेन प्रतिस्रादाममालिनी ।
ऊर्मि भ्रुकुटिसन्त्रासाच्चकिताभ्येतिनर्म्मदा ।३१
एको बाहुसहस्रेण वगाहे स महार्णवः ।
करोत्युद्यतवेगान्तु नर्म्मदांप्रावृडुद्यताम् ।३२
तस्य बाहुसहस्रेण क्षोभ्यमाने महोदधौ ।
भवन्त्यतीव निश्चेष्टाःपातालस्था महासुराः ।३३
चूर्णीकृतमहावीचिलीनमीनमहातिमिम् ।
मारुताविद्धफेनौघमावर्त्ताक्षिप्तदुःसहम् ।३४
करोत्यालोडयन्नेव दोःसहस्रेण सागरम् ।
मन्दारक्षोभचकिता ह्यमृतोत्पादशङ्किताः ।३५
तदा निश्चलमूर्द्धानो भवन्ति च महोरगाः ।
सायाह्नेकदलीखण्डानिवतिस्तिमिताइव ।३६

यह सम्राट एक सहस्र बाहुओं के द्वारा धनुष की डोरी के घातों से कठिन त्वचा से युक्त शरदकाल का एक सहस्र रश्मियों से सम्पन्नहो

रहा था ।२८। महान् द्युति वाले इसने महिष्मती पुरी में मनुष्यों के मध्य में कर्कोटक के पुत्र नाग को जीतकर उसी पुरी में निवेशित कर दिया था ।२६। यह प्रावृट् काल में भी समुद्र के वेग का सेवन किया करता था । यह महामति प्रतिस्रोत में सुख में उद्भिन्ना होता हुआ क्रीड़ा करता हुआ था विचरण किया करता था ।३०। उसने प्रति-स्रग्दाय मालिनी ललता क्रीड़ित की थी । ऊर्मि भृकुटी में सन्त्रास में नर्मदा चकित होकर उसके समीप में आ गई थी ।३१। वह एक अपनी सहस्रबाहुओं से महार्णव के अवगाहन करने पर उद्धत वेग वाली नर्मदा को प्रावृड् हाता करता है ।३२। उसकी सहस्रबाहुओं से महोदधि के क्षोभ्यमान होने पर पाताल में संस्थित महासुर अत्यन्त ही निश्चेष्ट हो जाते हैं।३३। सहस्र हाथोंमें सागर का आलोड़न करता हुआ ही उसको तोड़ी हुई महान् तरङ्गों में विलीन मीन और महातिमि वाला-मारुतसे आविद्ध फेनों के ओघ वाला तथा आवर्तों (भँवरों) के समक्षिप्त होनेसे दु:सह करता है । उस समय में मन्दार के क्षोभ से चकित अमृत के उत्पादन को शङ्का वाले महारंग निश्चल मूर्द्धावाले हो जाते हैं । जिस प्रकार से सायाह्न समय में निर्वात से स्तिमित कदली खण्डों की दशा होती है वैसी दशा महोरगों की थी ।३४ ३६।

एवं बध्वा धनुर्ज्यायामुत्सिक्त पञ्चभि:शरै ।
लङ्कायांमोहयित्वातुसबलंरावणबलात् ।३७
निर्जित्यबध्वाचानीयमाहिष्मत्याम्बबन्धच ।
ततोगत्वापुलस्त्यस्तुअर्जुनंसंप्रसादयत् ।३८
मुमोच रक्ष: पौलस्त्यं पुलस्त्येनेहसान्त्वितम् ।
तस्यबाहुसहस्रेण बभूव ज्यातलस्वन: ।३९
युगान्ताभ्रसहस्य आस्फोटस्वशनेरिव ।
अहोवत विधेर्वीर्यं भार्गवोऽयं यदाच्छिनत् ।४०
तद्वै सहस्रं बाहूनां हैमतालवनं यथा ।

यत्रापवस्तु संक्रुद्धो ह्यर्जुनं शप्तवान् प्रभुः ।४१
यस्माद्वनं प्रदग्धं वै विश्रुतं मम हैहय ।
तस्मात्ते दुष्करं कर्म्मं कृतमन्योहरिष्यति ।४२

लङ्कापुरी में सबल रावण को बलपूर्वक मोहित करके पाँच शरों से उत्सिक्त करके धनुष की ज्या में इस प्रकार से बाँध दिया था और उसको जीत करके तथा बद्ध करके माहिष्मती अपनी पुरी में ले आया था तथा बाँधकर रख छोड़ा था। इसके अनन्तर पुलस्त्य ऋषि वहाँ आये थे और उन्होंने सहस्राजुन को प्रसन्न किया था।३७-३८। पुलस्त्य ऋषि ने यहाँ पर सान्त्वना दी थी और फिर पौलस्त्य (रावण) को छोड़ दिया था। उसकी सहस्र बाहुओं से ज्या तल का शब्द हुआ था ।३९। यह घोष उसी भाँति हुआ था जैसा कि युगान्त के समय में होने वाले सहस्रों मेघोंके आस्फोट से अशनि का घोष हुआ करता है। बड़ी ही प्रसन्नता की बात है कि विधाता के वीर्य इन भार्गवने छिन्न किया था ।४०। जिस समय में भार्गव प्रभु ने इसकी सहस्रबाहुओं का छेदन हेमताल वन की भाँति किया था और जहाँ पर आप प्रभु ने सक्रुद्ध होकर अर्जुन को शाप दिया था—हे हैहय! क्योंकि मेरा परम विश्रुत बल तुमने प्रदान कर दिया इसलिए इस दुस्तर कर्म को कृतमन्य हरण करेगा ।४१-४२।

छित्वा बाहुसहस्र ते प्रथमन्तरसा बली ।
तपस्वी ब्राह्मणश्च त्वांसवधिष्यति भार्गवः ।४३
तस्य रामस्तदा त्वासीन् मृत्युः शापेन धीमता ।
वरश्चैवन्तु राजर्षेः स्वयमेव वृतः पुरा ।४४
तस्य पुत्रशतं त्वासीत् पञ्च तत्र महारथाः ।
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्म्मात्मानो महाबलाः ।४५
शूरसेनश्च शूरश्च धृष्टः क्रोष्टुस्तथैव च ।
जयध्वजश्च वैकर्ता अवन्तिश्च विशाम्पते ।४६

जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजंघो महाबलः ।
तस्य पुत्रशतान्येव तालजंघा इति श्रुताः ।४७
तेषांपञ्चकुलाख्याता हैहयानांमहात्मनाम् ।
वीतिहोत्राश्चशार्याताभोजाश्चावन्तयस्तथा ।४८
कुण्डिकेराश्चविक्रान्तास्तालजंघास्तथैवच ।
वीतिहोत्रसुतश्चापिआनर्तोनामवीर्य्यवान् ।
दुर्जेयस्तस्त पुत्रस्तु बभूवामित्रकर्शनः ।४६

बलवान तपस्वी और ब्राह्मण भार्गव पहिले वेग के साथ तेरी सहस्रबाहुओं का छेदन करके फिर तेरा वही वध भी कर देंगे ।४३। सूतजी ने कहा—उस समय में उसकी मृत्यु शाप के द्वारा राम ही थे। धीमान ने राजर्षि से पहिले ही इस प्रकार का वरदान स्वयं ही वरण कर लिया था ।४४। उसके एक सौ पुत्र हुए थे उनमें पाँच तो महारथ थे। ये सब कृतास्त्र बलशाली, शूरवीर, धर्मात्मा और महान् बल वाले थे ।४५। हे विशाम्पते ! शूरसेन, शूर, धृष्ट, कोष्ट, जयध्वज, वैकर्त्ता और अवन्ति ये उनके नाम थे ।४६। जयध्वज का पुत्र महान बलवान तालजंघ हुआ था। उसके भी एक सौ पुत्र थे जो पुत्रथे जो सर्व तालजंघ इसी नाम से प्रसिद्ध थे ।४७। उन हैहय महात्माओं के पाँच कुल विख्यात थे। वीति होत्र-शार्यात-भोज-अवन्तिप-कुण्डिकेरा-विक्रान्त और तालजंघ थे। वीतिहोत्र का पुत्र भी आनर्त्त नाम वाला महान् वीर्यवान् हुआ था। उसका पुत्र दुर्जय था जो शत्रुओं का दर्शन करने वाला था ।४८-४६।

सद्भावेन महाराज ! प्रजा धर्मेण पालयन् ।
कार्तवीर्यार्जुनो नामराजा बाहुसहस्रवान् ।५०
येन सागरपर्यन्ता धनुषा निर्जिता मही ।
यस्तस्य कीर्तयेन्नाम कल्पमुत्थाय मानवः ।५१
न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टञ्च लभते पुनः ।

कार्त्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमतः।
यथावत् स्विष्टपूतात्मा स्वर्गलोके महीयते ।५२

हे महाराज ! कार्त्तवीर्यार्जुन नाम वाला राजा एक सहस्रबाहुओं से समन्वित था और सद्भावना से धर्म्म के साथ प्रजा का परिपालन किया करता था ।५०। वह ऐसा प्रतापी राजा हुआ था जिसने अपने धनुष के द्वारा सागर पर्यन्त भूमि को जीत लिया था। जो मानव प्रातःकाल में ही उठकर उसके शुभ नाम का कीर्त्तन किया करता है उसके वित्त का कभी भी नाश नहीं होता है और जो किसी का वित्त नष्ट भी हो गया हो तो वह नष्ट हुआ धन पुनः प्राप्त हो जाया करता है। परम धीमान् कीर्त्तवीर्य के जन्म की गाथा को कोई कहता है तो वह मानव यथावत् स्विष्ट पूतात्मा होकर स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ।५१-५२।

२२—क्रोष्टुवंश वर्णन

किमर्थं तद्वनं दग्धमापवस्य महात्मनः।
कार्तवीर्येण विक्रम्यं सूत ! प्रब्रूहि तत्वतः ।१

रक्षिता स तु राजर्षिः प्रजानामिति नः श्रुतम्।
सकथं रक्षिताभूत्वा अदहत्तत्तपोवनम् ।२
आदित्यो द्विजरूपेण कार्तवीर्यमुपस्थितः।
तृप्तिमेकां प्रयच्छस्वआदित्योऽहं नरेश्वर ।३
भगवन् ! केन तृप्तिस्ते भवत्येव दिवाकर।
कीदृशं भोजनं दद्मिश्रुत्वातु विदधाम्यहम् ।४
स्थावरन्देहि मे सर्वमाहारन्ददतां वर।
तेन तृप्तो भवेयं वै सा मे तृप्तिर्हि पार्थिव ।५

न शक्या: स्थवरा: सर्वें तेजसाचबलेनच्च ।
निर्दग्धु' तपतांश्रेष्ठ ! तेन त्वांप्रणमाम्यहम् ।६

ऋषिगण ने कहा—हे सूतजी ! महात्मा आपव का बल किस प्रयोजन के लिए कार्त्तवीर्य ने विक्रम करके दग्ध कर दिया था ? इस गाथा को तात्विक रूप से बतलाइए ।१। यह राजर्षि तो प्रजाओं की रक्षा करने वाला था ऐसा ही हमने सुना है फिर वह रक्षिता होते हुये उस तपोवन को दग्ध करने वाला कैसे और क्यों बन गया था ? ।२। सूतजी ने कहा—एक बार ऐसा हुआ था कि भगवान आदित्य एक द्विज के स्वरूप में होकर कार्त्तवीर्य के समीप में समुपस्थित हुए थे और उन्होंने कार्त्तवीर्य से कहा था कि हे नरेश्वर ! मैं आदित्य हूं हमको एक तृप्ति दीजिए ।३। राजा ने कहा—हे भगवन् ! हे दिवाकर देव ! किससे आपकी तृप्ति होती है ? आप मुझ बतलाइए कि किस प्रकार का भोजन मैं आपको समर्पित करूँ । यह आप जब मुझे आज्ञा देंगे तो उसका श्रवण करके ही मैं प्रस्तुत करूँ ।४। आदित्य देव ने कहा—हे पार्थिव ! आप तो दान शीलों में परम श्रेष्ठ महानुभाव हैं । आप मुझे स्थावरों का सब आहार प्रदान कीजिए उससे मैं तृप्त हो जाऊँगा वही मेरी पूर्ण तृप्ति होगी ।५। कार्त्तवीर्य ने कहा—हे तपनशीलों में परमश्रेष्ठ ! तेज के द्वारा और बल के द्वारा सम्पूर्ण स्थावर निर्दग्ध नहीं किये जा सकते हैं । इसलिए मैं आपको प्रणाम करता हूं ।६।

तुष्टस्तेऽहं शरान् ददि्म अक्षयान् सर्वतोमुखान् ।
ये प्रक्षिप्ता ज्वलिष्यन्ति मम तेज:समन्विता: ।७
आविष्टाममतेजोभि:शोषयिष्यन्तिस्थावरान् ।
शुष्कान्भस्मीकरिष्यन्तितेनतृप्तिर्नराधिप ।८
तत: शरांस्तदादित्यस्त्वर्जुनाय प्रयच्छत ।
ततो ददाह संप्राप्तान्स्थावरान्सर्वमेवच ।९
ग्रामास्तथाश्रमांश्चैव घोषाणि नगराणि च ।

तथा वनानि रम्याणि वनान्युपवनानि च ।१०
एवं प्राचीसमदहत् तत: सर्वांश्चपक्षिण: ।
निर्वृक्षा निस्तृणाभूमिर्हताघोरेण तेजसा ।११
एतस्मिन्नेव काले तु आपवो जलमास्थित: ।
दश वर्षसहस्राणि तत्रास्तेसमहानृषि: ।१२
पूर्णे व्रते महातेजा उदतिष्ठंस्तपोधन: ।
सोऽपश्यदाश्रमं दग्धमर्जुनेन महामुनि: ।१३
क्रोधाच्छशाप राजर्षिकीर्तितं वो यथा मया ।
क्रोष्टो: शृणुतराजर्षेर्वंशमुत्तमपौरुषम् ।१४

आदित्य देव ने कहा—मैं तुमसे परम सन्तुष्ट हूँ। मैं आपको अक्षय और सर्वतोमुख वाले शरों को प्रदान करता हूँ। जो प्रक्षिप्त किये हुये जला देंगे क्योंकि वे सब मेरे तेज से समन्वित होंगे ।७। मेरे तेज से समावेश होने से वे समस्त स्थावरों का शोषण कर देंगे। हे नराधिप ! वे शुष्कों को भस्मीभूत कर देंगे। उसी से मेरी तृप्ति होगी ।८। सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर आदित्य देव ने उन शरों को अर्जुन के लिए दे दिये थे। इसके पश्चात् सभी सम्प्राप्त स्थावरों को दग्ध कर दिया था ।९। ग्राम, आश्रम, घोष, नगर, वन और सुरम्य उपवन सभी का दाह कर दिया था ।१०। इस प्रकार से सम्पूर्ण प्राची दिशा को तथा सभी पक्षियों को निर्दग्ध कर दिया था। उस समय में इस महादाह के होने से सम्पूर्ण भूमि वृक्षों से रहित और तृणों से एकदम शून्य उस महान् घोर तेज से हो गई थी तथा हतप्राया हो गई थी ।११। इसी काल में आपवी जल में समास्थित थे। वह महान् ऋषि दश सहस्र वर्ष पर्यन्त वहाँ पर थे ।१२। जब उनका वह जल में स्थित रहकर किये जाने वाला व्रत पूर्ण हो गया था तो वह तपोधन उठकर खड़े हुए थे। उस समय में उस महामुनि ने देखा था कि उनका वह सम्पूर्ण आश्रम अर्जुन ने दग्ध कर दिया था ।१३। उस महामुनि को महान् क्रोध

समुत्पन्न हो गया था उन्होंने राजर्षि कीर्त्तवीर्य्य को तभी शाप दे दिया था जैसा कि मैंने आपको बतलाया था। हे राजर्षिवर ! अब मुझसे क्रोष्टु को उत्तम पौरुष वाला वंश श्रवण करो।१४।

यस्यान्ववाये सम्भूतो विष्णुर्वृष्णिकुलोद्वहः।
क्रोष्टोरेवाभवत् पुत्रो वृजिनीवान् महारथः।१५
वृजनीवतश्च पुत्रोऽभूत् स्वाहोनाममहाबलः।
स्वाहपुत्रोऽभवद्राजन् ! रुषंगुर्वदतांवरः।१६
स तुप्रसूतिमिच्छन् वैरुषङ्कः सौम्यमात्मजम्।
चित्रश्चित्ररथश्चास्य पुत्रः कर्मभिरन्वितः।१७
अथ चैत्ररथिर्वीरो जज्ञे विपुलदक्षिणः।
शशविन्दुरिति ख्यातश्चक्रवर्त्ती बभूव ह।१८
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतस्तस्मिन्पुराऽभवत्।
शशविन्दोस्तु पुत्राणां शतनामभवच्छतम्।१९
धीमतां चाभिरूपाणां भूरिद्रविणतेजसाम्।
तेषां शतप्रधानानां पृथुसाह्वा महाबलाः।२०
पृथुश्रवाः पृथुयशाः पृथुधर्मा पृथुञ्जयः।
पृथुकीर्त्तिः पृथुमनाः राजानः शशविन्दवः।२१

जिसके वंश में वृष्णि कुल का उद्वहन करने वाले भगवान विष्णु ने समुद्गति प्राप्त की थी उस क्रोष्टु के महारथ वृजनिवान् नाम वाला पुत्र प्रसूत हुआ था।१५। वृजनी का पुत्र महान् बल विक्रमशाली स्वाह नाम वाला समुत्पन्न हुआ था। हे राजन ! स्वाहा के पुत्र का नाम रुषङ्ग था जो बोलने वाले वक्ताओं में अतीत श्रेष्ठ था।१६। उषंगु से जब अपनी परम सौम्य सन्तति के होने की इच्छा की थी तो इससे चित्र और चित्ररथ हुए थे। इसके कर्मों से समन्वित चैत्ररथि वीर ने जन्म ग्रहण किया था जो कि बहुत ही अधिक दक्षिणा देने वाला था। यह शशबिन्दु—इसी नाम से विख्यात हुआ था और चक्रवर्ती राजा हो

गया था ।१७–१८। इससे यह अनुवंश का श्लोक प्राचीन उस समय में गाया गया था कि शशबिन्दु के सौ पुत्रों के सौ ही पुत्र हुये थे ।१९। वे सभी परम धीमान्-अभिरूप और बहुत अधिक द्रविण और तेज वाले हुये थे । उन शम प्रधानों के महाबलशाली पृथुसाह्व हुये थे ।२०। पृथुश्रवा, पृथुयशा, पृथुधर्मा, पृथुञ्जय, पृथुकीर्ति, पृथुमना शशबिन्दु के राजा हुये थे ।२१।

शंसन्ति च पुराणज्ञा: पृथुश्रवसमुत्तमम् ।
अन्तरस्य सुयज्ञस्य सुयज्ञस्तनयोऽभवत् ।२२
उशना तु सुयज्ञस्य यो रक्षन्पृथिवीमिमाम् ।
आजहाराश्वमेधानांशतमुत्तमधार्मिक: ।२३
तितिक्षुरभवत् पुत्र औशन: शत्रुतापन: ।
मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षीणामनुत्तम: ।२४
आसीन्मरुत्ततनयो वीर: कम्बलबर्हिष: ।
पुत्रस्तु रुक्मकवचो विद्वान्कम्बलबर्हिष: ।२५
निहत्य रुक्मकवच: परान् कवचधारिण: ।
धन्विनोविविधैर्बाणैरवाप्यपृथिवीमिमाम् ।२६
अश्वमेधे ददौ राजा ब्राह्मणेभ्यस्तु दक्षिणाम् ।
यज्ञेतु रुक्मकवच: कदाचित्परवीरहा ।२७
जज्ञिरे पञ्चपुत्रास्तु महावीर्या धनुर्भृत: ।
रुक्मेषु पृथुरुक्मश्च ज्यामघ: परिघो हरि: ।२८

जो पुराणों के ज्ञाता महामनीषी हैं, वे उत्तम पृथुश्रवा की बहुत अधिक प्रशंसा किया करते हैं । अन्तर सुयज्ञ के सुयज्ञ तनय हुआ था । ।२२। उस सुयज्ञ का पुत्र उशना समुत्पन्न हुआ था-जिस परम उत्तम धार्म्मिक राजा ने इस पृथ्वी की रक्षा करते हुए एक सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे ।२३। उस उशना का पुत्र औसन शत्रुओं को ताप देने वाला तितक्षु उत्पन्न हुआ था । इसके पुत्र का नाम मरुत्त था जो राजर्षियों

में परमोत्तम था ।२४। इस मरुत का पुत्र अतिवीर कम्बल वर्हिष नाम वाला हुआ था । कम्बल वर्हिष के पुत्र का नाम रुक्म कवच था जो महान् विद्वान् हुआ था ।२५। इस रुक्म कवच ने दूसरे कवचधारी और धन्वियों का अनेक प्रकार के बाणों के द्वारा निहनन करके इस पृथिवी को प्राप्त किया था ।२६। फिर उस राजा ने इस भूमि को अपने बल-विक्रम से प्राप्त करके भी अश्वमेध यज्ञ में ब्राह्मणों के लिए दक्षिणा के रूप में प्रदान कर दी थी । किसी समय में वीर शत्रुओं के हनन करने वाले रुक्म कवच ने यज्ञ में पाँच पुत्रों को जन्म दिया था । वे पाँचों पुत्र महान बलवीर्य वाले और धनुषधारी हुये थे । रुक्मों में पृथुरुक्म, ज्यामघ, परिघ, हरि थे ।२७-२८।

परिघं च हरिं चैव विदेहेऽस्थापयत्पिता ।
रुक्मेषुरभवद्राजा पृथुरुक्मस्तदाश्रयः ।२६
तेभ्यः प्रव्राजितो राज्यात्ज्यामघस्तुतदाश्रमे ।
प्रशान्तश्चाश्रमस्थश्चब्राह्मणेनावबाधितः ।३०
जगाम धनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथी ।
नर्मदां नृपएकाकी केवलं वृत्तिकामतः ।३१
ऋक्षवन्तं गिरिं गत्वा भुक्तमन्यैरुपाविशत् ।
ज्यामघस्याभवद्भार्या चैत्रापरिणतासती ।३२
अपुत्रो न्यवसद्राजा भार्यामन्यान्नविन्दत ।
तस्यासीद्विजयो युद्धेतत्रकन्यामवाप्यसः ।३३
भार्यामुवाच सन्त्रासात् स्नुषेयं ते शुचिस्मिते ।
एवमुक्ताब्रवीदेनंकस्यचेयस्नुषेति च ।३४

पिता ने परिघ और हरि को विदेह में स्थापित किया था । रुक्मों में पृथुरुक्म राजा उसके आश्रम वाला हुआ था ।२६। उनमें से ज्यामघ राज्य से प्रव्राजित हो गया था और उस आश्रम में रहने लगा था । वह परम प्रशान्त होकर आश्रम में स्थित रहता था तथा ब्राह्मण के द्वारा

सब बोधित किया गया था ।३०। ध्वजी रथी धनुष लेकर अन्य देश को चला गया था। वह नृप केवल वृत्ति की कामना से अकेला ही नर्मदा पर चला गया था ।३१। अन्यों के द्वारा मुक्त ऋक्षमान् नाम गिरि पर जाकर वह उपविष्ट हो गया था। ज्यामघ की भार्या चैत्रा परिणत और सती थी ।३२। वह राजा बिना ही पुत्र वाला रहा करता था और इसने अन्य किसी भी भार्या को नहीं प्राप्त किया था। उसका युद्ध में विजय हुआ था वहाँ पर एक कन्या को प्राप्त किया था ।३३। उसने सन्त्रास से अपनी भार्या से कहा था हे शुचिस्मिते ! यह कन्या तेरी स्नुषा है जब राजा ने भार्या से इस तरह से कहा था तो वह उससे बोली थी कि यह किसकी स्नुषा है ? ।३४।

यस्तेजनिष्यते पुत्रस्यस्य भार्या भविष्यति ।
तस्मात्सातपसोग्रणकन्यायाः सम्प्रसूयत ।३५
पुत्रं विदर्भं सुभगा चैत्रा परिणता सती ।
राजपुत्र्यांचविद्वान्सस्नुषायांक्रथकैशिकौ ।
लोमपादं तृतीयन्तु पुत्रं परमधार्मिकम् ।३६
तस्यां विदर्भोऽजनयच्छूरान्रणविशारदान् ।
लोमपादान्मनुः पुत्रोज्ञातिस्तस्यतुचात्मजः ।३७
कैशिकस्य चिदिः पुत्रो तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः ।
क्रथो विदर्भपुत्रस्तु कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत् ।३८
कुन्तेर्धृष्टः सुतो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान् ।
धृष्टस्यपुत्रोधर्मात्मानिर्वृतिः परवीरहा ।३९
तदेको निर्वृतेः पुत्रो नाम्ना सतुविदूरथः ।
दशार्हस्तस्यवैपुत्रोव्योमस्तस्यचैवस्मृतः ।
दाशार्हाच्चैव व्योमात्तु पुत्रो जीमूत उच्यते ।४०
जीमूतपुत्रो विमलस्तस्तस्यभीमरथः सुतः ।
सुता भीमरथस्यासीत् स्मृतोनवरथ किल ।४१

तस्य चासीद्दृढरथः शकुनिस्तस्यचात्मजः ।
तस्मात्करम्भः कारम्भिर्देवरातोबभूवह ।४२

राजा ने अपनी भार्या के इस प्रश्न पर उत्तर दिया था कि जो पुत्र तेरे उदर से जन्म ग्रहण करेगा उसी की यह भार्य्या होगी इससे उसने अत्यन्त उग्र तपश्चर्या की थी फिर उस सुसाग-परिणता—सती चैत्रा ने उस कन्या के लिए विदर्भ पुत्र को प्रसूत किया था उस विद्वान् ने राजपुत्री में क्रथ-कैशिक और तृतीय परम धार्म्मिक लोमपाद को जन्म दिया था ।३५-३६। उसमें विदर्भ ने रण के महान् विशारद अत्यन्त शूरवीर पुत्रों को समुत्पन्न किया था । लोमपाद से मनु पुत्र उत्पन्न हुआ था और उसका आत्मज ज्ञाति हुआ था । कैशिक का पुत्र चिदि नामधारी उत्पन्न हुआ था । उससे जो समुत्पन्न हुये थे वे चैद्य नृप कहे गये थे । विदर्भ का पुत्र क्रथ हुआ था और उसका आत्मज कुन्ति नाम वाला उत्पन्न हुआ था ।३७-३८। कुन्ति से धृष्ट नामक सुत ने जन्म ग्रहण किया था जो रण में परम धृष्ट ही था और परमाधिक प्रताप वाला था । धृष्ट का पुत्र धर्म्मात्मा निर्वृ ति नामधारी हुआ जो शत्रुवीरों का हनन करने वाला था ।३९। उस निर्वृति से केवल एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसका नाम विदूरथ था । इसके जो पुत्र प्रसूत हुआ था उसका नाम दशार्ह था तथा इस दशार्ह के ही पुत्र का नाम व्योम हुआ था । इस दशार्ह व्योम से जीमूत कहे जाने वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था ।४०। जीमूत का पुत्र विमल हुआ था और फिर इस का पुत्र भीमरथ उत्पन्न हुआ था । इस भीमरथ का जो दायाद हुआ था वह नवरथ कहा गया है ।४१। इसका ध्रुव दृढ़रथ हुआ तथा दृढ़रथ का शकुनि नाम वाला आत्मज उत्पन्न हुआ था । इससे कारम्भ और कारम्भ से कारम्भि देवरात जन्म प्राप्त किया था ।४२।

देवक्षत्रोऽभवद्राजा देवरातिर्महायशाः ।
देवगर्भसमो यज्ञे देवनक्षत्रनन्दनः ।४३

मधुर्नाम महातेजा मधोः पुरवसस्तथा ।
आसीत् पुरवसः पुत्रः पुरुद्वान् पुरुषोत्तमः ।४४
जन्तुर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां भद्रसेन्यांपुरुद्वतः ।
ऐक्ष्वाकीचाभवद्भार्याजन्तोस्तस्यामजायत ।४५
सात्वतः सत्वसंयुक्तः सात्वतांकीर्तिवर्द्धनः ।
इमां विसृष्टिंविज्ञायज्यामघस्यमहात्मनः ।
प्रजावानेति सायुज्यं राज्ञः सोमस्य धीमतः ।४६
सात्वतान्सत्वसम्पन्नान्कौशल्यासुषुवेसुतान् ।
भजिनंभजमानन्तुदिव्यंदेवावृधनृप ! ।४७
अन्धकञ्च महाभोजं वृष्णि च यदुनन्दनम् ।
तेषांतु सर्गाश्चत्वारोविस्तरेणैवतच्छृणु ।४८
भजमानस्यसृञ्चय्यांबाह्यकायाञ्च बाह्यकाः ।
सृञ्जयस्य सुतेद्वे तुबाह्यकास्तुतदाभवन् ।४९
तस्यभार्येभगिन्यौ द्वे सुषुवाते बहून् सुतान् ।
निमिश्चकृमिलश्चैववृष्णिपरपुरञ्जयम् ।
ते बाह्यकायां सृञ्जय्या भजमामाद्विजज्ञिरे ।५०

देवरात का पुत्र दैवराति देवक्षत्र ने प्रसव प्राप्त किया था जो महान् यश वाला राजा हुआ था। देवक्षत्र का पुत्र देवगर्भसम उत्पन्न हुआ था ।४३। मधु नाम वाला महान् तेजस्वी हुआ था इस मधु से पुर-वसने जन्म प्राप्त किया था। पुरवस का पुत्र पुरुषों में उत्तम पुरुद्वान् हुआ था ।४४। पुरुद्वान् से वैदर्भी भद्रसेनी में जन्तु ने जन्म लिया था। इस जन्तु की भार्य्या ऐक्ष्वाकी नाम वाली हुई थी। उस भार्या में सत्त्व सेसम्पन्न सात्वत नाम वाला सात्वतों की कीर्ति के वर्धन करने वाला पैदा हुआ था। महात्मा ज्यामघ की इस विशेष सृष्टि का ज्ञान प्राप्त करलो जो उपर्युक्त रीति से हुई थी। धीमान् राजा सोम का सायुज्य प्राप्त करता है ।४५-४६। कौशल्या ने सत्त्व से सुसम्पन्न सात्वतों को

प्रसूत किया था। हे नृप ! भजिन—भजमान—दिव्य—देवावृध अन्धक—महाभोज और वृष्णि हे यदुनन्दन ! ये उत्पन्न हुये थे। उनके चार प्रमुख सर्ग थे। अब विस्तार से उनका श्रवण करो।४७-४८। भजमान के सृञ्जयी में और बाह्युका में बाह्यक हुये थे। सृञ्जय की दो सुताएँ थीं। उस समय में बाह्यक हुए थे।४६। उसकी दोनों बहिनें भार्य्याएँ थीं जिन्होंने बहुत से सुतों को प्रसूत किया था। निमि-कृमिल-वृष्णि और परयुरञ्जय ये सब बाह्यका और सृञ्जयी में भजमान से समुत्पन्न हुये थे।५०।

जज्ञे देवावृधो राजा बन्धूनां मित्रवर्द्धनः।
अपुत्रस्त्वभवद्राजा चचार परमतपः।
पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति स्पृहन्।५१
संयोज्य मन्त्रमेवाथ पर्णाशाजलमस्पृशत्।
तपोपस्पर्शनात्तस्य चकार प्रियमापगा।५२
कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्मसानिम्नगोत्तमा।
चिन्तयाथपरीतात्माजगामाथविनिश्चयम्।५३
नाधिगच्छाम्यहं नारीं यस्मामेवंविधः सुतः।
जायेय तस्माद्द्याहं भवाम्यथसहस्रशः।५४
अथ भूत्वा कुमारी सा बिभ्रती परमं वपुः।
ज्ञापयामास राजानं तामियेष महाव्रतः।५५
अथ सा नवमे मासि सुषुवे सहितां वरा।
पुत्रं सर्वगुणोपेतं बभ्रु देवावधान्नृपात्।५६

बन्धुओं का मित्र वर्धन राजा देववृध ने जन्म ग्रहण किया था किन्तु यह राजा पुत्रहीन ही हुआ था और इसने परम उग्र तप का समाचरण किया था। उसकी यही इच्छा थी मेरा पुत्र हो जो वह समस्त गुणों से समुत्पन्न होना चाहिये।५१। इसके अनन्तर मनज का संयोजन करके उसने पर्णशाके जल का उपस्पर्शन किया था। उस समय में उसके

उपस्पर्शन से उस सरिता ने उसका प्रिय कर दिया था ।५२। नरपति के कल्याण के हेतु से वह नदी उसके लिये अस्यूत्समा हुई थी । वह चिन्ता से परीत आत्मा वाला था किन्तु इसके उपरान्त वह विनिश्चाम को प्राप्त हो गया था ।५३। मेरे पास ऐसी नारी ही नहीं प्राप्त है जिससे इस प्रकार का सकल गुणाढ्य समन्वित पुत्र समुत्पन्न होवे । इसलिये मैं आज सहस्रशः होता हूं ।५४। इसके अनन्तर वह परम सुन्दर शरीर धारण करने वाली कुमारी होकर उसने राजाको शापित किया था और उस महाव्रत ने उसी कुमारी को प्राप्त करने की इच्छा की थी ।५५। फिर इसके उपरान्त उस सरिताओं में परम श्रेष्ठा न नवम मास में देववृध नृप से समस्त गुणगण से युक्त बभ्रु नामक पुत्र किया था ।५६।

अनुवंशे पुराणज्ञा गायन्तोतिपरिश्रुतम् ।
गुणान् देवावृधस्यापिकीर्त्तन्तो महात्मनः ।।५७
यथैवं शृणुमो दूरादपश्यामस्तथान्तिकात् ।
बभ्रु: श्रेष्ठोमनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ।५८
षष्टिश्च पूर्वपुरुषाः सहस्राणि च सप्ततिः ।
एतेऽमृतत्वं संप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधान्नृप ! ।५९
यज्वा दान पतिर्वीरो ब्रह्मण्यश्च दृढव्रतः ।
रूपवान्सुमहातेजाः श्रुतवीर्य्यधरस्तथा ।६०
अथ कङ्कस्य दुहिता सुषुवे चतुरः सुतान् ।
कुकुरं भजमानञ्च शशि कम्बलबर्हिषम् ।६१
कुकुरस्यसुतोवृष्णिवृष्णेस्तुतनयोधृतिः ।
कपोतरोमातस्याथतैत्तिरिस्तस्यचात्मजः ।६२
तस्यासीतनुजापुत्रो सखाविद्वान्नलः किल ।
ख्यायतेतस्यनाम्नाचनन्दनोदरदुन्दुभिः ।६३

पुराणों के ज्ञाता विद्वान् इस अनुवंश में इस परिश्रुत आख्यान का गायन किया करते हैं और महान् आत्मा वाले देववृध के गुणों का भी

कीर्तन किया करते हैं। जिस तरह से हम दूर से श्रवण किया करते हैं उसी भाँति समीप में पहुँच कर देखते हैं—बभ्रु मनुष्यों में परम श्रेष्ठ हैं और देवा वृधदेवों के ही समान है।५७-५८। हे नृप ! आठ और सत्तर सहस्र पूर्व पुरुष देवावृध बभ्रु के अमृतत्व को प्राप्त होगये थे।५९। यह यजन करने वाला—दानबलि—वीर—ब्रह्मण्य—दृढ़व्रत वाला—रूप लावण्य से युक्त—महान् तेज वाला तथा श्रुतवीर्य्यधर था।६०। इसके अनन्तर कङ्क की पुत्री ने चार सुतों को प्रसूत किया। उनके नाम कुकुर—भजमान—शशि और कम्बल बर्हि थे।६१। कुकर का पुत्र वृष्णि समुत्पन्न हुआ था और वृष्णि का सुत धृति हुआ था। इसका दायाद कपोतरोमा था और उसका आत्मज तैत्तिरि समुत्पन्न हुआ था।६२। उसके तनुजा का पुत्र सखा तथा विद्वान् नल था। उसके नाम से नन्द नौदर दुन्दुभि ख्यात होता है।६३।

तस्मिन्प्रवितते यज्ञे अभिजात: पुनर्वसु: ।
अश्वमेधं च पुत्रार्थमाजहार नरोत्तम: ।६४
तस्यमध्येतिरात्रस्यसभामध्यात्समुत्थित: ।
अतस्तुविद्वान्कर्मज्ञोयज्वादातापुनर्वसु: ।६५
तस्यासीत् पुत्रमिथुनं बभूवाविजित किल ।
आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातमतिमतांवर ! ।६६
इमांश्चोदाहरन्त्यत्रश्लोकान्प्रतितमाहुकम् ।
सोपासङ्गानुकर्षाणां सध्वजानांवरूथिनाम् ।६७
रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु ।
नासत्यवादी नतिजा नायज्वा नासहस्रद: ।६८
नाशुचिर्नाप्यविद्वान् हियोभोजेष्वभ्यजायत ।
आहुकस्यभृति प्राप्ताइत्येतद्वैतदुच्यते ।६९
आहुकश्चाप्यवन्तीषुस्वसारं चाहुकीं ददौ ।
आहुकात्काश्यदुहिता द्वौ पुत्रौसमसूयत ।७०

उस यज्ञ के वितत होने पर पुनर्वसु अभिजात हुआ था। नरों में उत्तम उसने पुत्र की प्राप्ति के लिये अश्वमेध यज्ञ किया था ।६४। अतिरात्र उसके मध्य में सभा के मध्य से समुत्पित्त हुआ था। इसलिए पुनर्वसु यत्वा (यज्ञ न करने वाला)- विद्वान्---कर्मों का ज्ञान रखने वाला और दानशील था। हे मतिमानोंमें परमश्रेष्ठ ! आपके अविजित पुत्रों का एक जोड़ा समुत्पन्न हुआ था जिनके नाम आहुक और आहुको प्रसिद्ध हुए थे ।६५। यहाँ पर उस आहुक के प्रति इन श्लोकों की उपाहृत करते हैं कि उपासङ्गानुकर्मों के सहित और ध्वजाओं के सहित-वरूथी-मेघघोष रथों की दस सहस्र संख्या उसके पास थी। वही असत्यवादी नहीं था-तेजहीन-यजमान करने वाला और एक सहस्र से कम देने वाला नहीं था ।६६-६७। वह अशुचि---अविद्वान् भी नहीं था। जो भोगों में अभिजात हुआ था। आहुक की भृति को प्राप्त हुए थे---यही कहा जाता है ।६८-६९। आहुक ने अवन्तीयों में आहुक को दिया था। आहुक से काश्य दुहिता ने दो पुत्रों को प्रसूत किया था ।७०।

देवकश्चोग्रसेनश्च देवगर्भसमकभौ।
देवकस्य सुता वीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमाः ।७१
देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः।
तेषां स्वसारः सप्तासन् वसुदेवाय ता ददौ ।७२
देवकी श्रुतदेवी च यशोदा च यशोधरा।
श्रीदेवी सत्यदेवी चसुतापी चेतिसप्तमी ।७३
नवोग्रसेनस्या सुताः कंसस्तेषांतु पूर्वजः।
न्यग्रोधश्च सुनामा च कङ्कशङ्कुश्च भूयसः ।७४
सुतन्तू राष्ट्रपालश्चायुद्धमुष्टि सुमुष्टिदः।
तेषां स्वसारः पञ्चासत् कंसाकंसवती तथा ।७५
सुतलन्तू राष्ट्रपाली च कङ्का चेतिवराङ्गनाः।

उग्रसेनः सहापत्यो व्याख्यातः कुकुरोद्भवः ।७६
भजमानस्य पुत्रोऽथ रथिमुख्यो विदूरथः ।
राजाधिदेव शूरश्च विदूरथसुतोऽभवत् ।७७

उन दोनों का देवक और उग्रसेन ये दो नाम थे। ये दोनों देवगर्भ के समान थे। देवक के सुत परम बीर और देवों के ही समान थे ।७१। उनके नाम देववान्---उपदेव---सुदेव और उपरक्षित थे। इनकी सात भगिनियाँ थी जो वे सब बसुदेव के लिए ही गयी थीं ।७२। इन सातों के नाम देवकी-श्रुतदेवी-यशोदा यशोधरा-श्रीदेवी-सत्यदेवी और इनमें सातवीं बहिन का नाम वसुतापी हुआ था ।७३। महाराज उग्रसेन के नौ सुत हुए थे उन सबसे कंस सबसे बड़ा प्रथम पुत्र था। शेष नौ में से आठ के नाम---न्यग्रोध--सुनामा---कङ्क---शंकु--सुतन्तु---राष्ट्रपाल--युद्धमुष्टि और समुष्टिद थे। उनकी बहनें भी पाँच थीं---कंसा---कंसावती---सुतन्तु---राष्ट्रपाली और कङ्का ये उन पाँचों के नाम हैं। ये सभी वराङ्गनायें थीं। उग्रसेन सहापत्य कुकुरोद्भव व्याख्यान किया गया है। यजमान का पुत्र रथियों में प्रमुख और राजाधिदेव विदूरथ हुआ था। विदूरथ के यहाँ शूर नामक पुत्र ने जन्म लिया था ।७४-७७।

राजाधिदेवस्य सुतौ जज्ञाते देवसंमितौ ।
नियमव्रतप्रधानौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः ।७८
शोणाश्वस्यसुताः पञ्चशूरारणविशारदाः ।
शमीच वेदशर्मा च निकुन्तः शक्रशत्रुजित् ।७९
शमिपुत्रः प्रतिक्षत्र प्रतिक्षत्रस्य चात्मजः ।
प्रतिक्षेत्रः सुतोभोजोहृदीकस्तस्य चात्मजः ।८०
हृदीकस्याभवत् पुत्रा दश भीमपराक्रमाः ।
कृतवर्माग्रजस्तेषां शतधन्वा च मध्यमः ।८१
देवार्हश्चैव नाभश्च भीषणश्च महाबलः ।

अजातो वनजातश्च कनीयककरम्भकौ ।८२
देवार्हस्य सुतोविद्वान्जज्ञेकम्बलबर्हिषः ।
असमञ्जाः सुतस्तस्य तमोजास्तस्यचात्मजः ।८३
अजातपुत्रा विक्रान्तास्त्रयः परमकीर्त्तयः ।
सुदंष्ट्रश्च सुनाभश्च कृष्ण इत्यन्धकामताः ।८४
अन्धकानामिमं वंशं यः कीर्त्तयतिनित्यशः ।
आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावानाप्नुते नरः ।८५

राजाधिदेव को दो पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था और ये दोनों ही देवों के सदृश थे। दोनों के नियम और व्रत की प्रधानता थी। इनके शुभ नाम शोणाश्व और श्वेत वाहन थे ।७८। शोणाश्व के परम शूरवीर और रण विद्या के महा विद्वान पाँच पुत्रों ने जन्म धारण किया था। शमी–वेदशर्म्मा–निकुन्त–शक्रशत्रुजित–ये उन पाँचों के शुभ नाम है। शमीका पुत्र प्रतिक्षत्र हुआ और प्रतिक्षत्र का आत्मज प्रतिक्षेत्र था। प्रतिक्षेत्र का सुत भोज और उसका आत्मज हृदीक उत्पन्न हुआ था ।७६-८०। हृदीक के भीम पराक्रम वाले दश पुत्रों ने जन्म लिया था। उसमें कृतवर्मा सबके प्रथम उत्पन्न हुआ था और शतध्वा उनसे मध्यम पुत्र था ।८१। शेष देवार्ह—नाभ भीषण—महाबल—अजात—वनजात कनीयक करम्भक ये नाम हैं ।८२। देवार्ह की भार्या में देवार्ह से अतिशय विद्वान् कम्बल बर्हि ने प्रसव प्राप्त किया था। उसके पुत्र असमञ्जा था और इसके पुत्र तमोजा समुत्पन्न हुआ था ।८३। अजात के परम विक्रान्त अर्थात् बल विक्रम वाले और उत्तम कीर्तिशाली तीन पुत्र हुए थे। सुदंष्ट्र–सुनाभ और कृष्ण ये उन तीनों के शुभ नाम थे। ये सब अन्धक माने गये हैं ।८४। अन्धकों के इस वंश का जो कोई पुरुष नित्य ही कीर्त्तन किया करता है वह प्रजावान नर अपने आपका विपुल वंश प्राप्त किया करता है ।८५।

—×—

२३—स्यमन्तकमणि का संक्षिप्त चरित्र

गान्धारी चैव माद्री च वृष्णिभार्येबभूवतु: ।
गान्धारी जनयामास सुमित्रंमित्रनन्दनम् ।१
माद्री युधाजितं पुत्रं ततो वै देवमीढुषम् ।
अनमित्रं शिबिचैव पञ्चमं कृतलक्षणम् ।२
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्यापितुद्वौ सुतौ ।
प्रसेनश्चमहावीर्य: शक्तिसेनश्च तावुभौ ।३
स्यमन्तक प्रसेनस्य मणिरत्नमनुत्तमम् ।
पृथिव्यां सर्वरत्नानांराजावै सोऽभवन्मणि: ।४
हृदिकृत्वातुबहुशो मणिन्तमभियाचितम् ।
गोविन्दोऽपितत लेभेशक्तोऽपिनजहारस: ।५
कदाचिन्मृगयां यात: प्रसेनस्तेन भूषित: ।
यथाशब्दं च शुश्राव बिले सत्वेन पूरिते ।६
तत: प्रविश्य स बिलं प्रसेनो ऋक्षमैक्षत ।
ऋक्ष: प्रसेनञ्च तथा ऋक्षं चैवप्रसेनजित् ।७

महर्षि प्रवर श्री सूतजी ने कहा—गान्धारी और माद्री ये दोनों वृष्णि की भार्यायें हुईं थीं। गान्धारी ने सुमित्र मित्र नन्दन को जन्म दिया था ।१। माद्री ने पहले पुत्र युधाजित को फिर देव मीढुष—अनमित्र—शिवि और पाँचवाँ कृत लक्षण ये उत्पन्न किये थे ।२। अनमित्र का सुत निघ्न हुआ था तथा उस निघ्न के दो पुत्रों ने जन्म लिया था। महान् वीर्य वाला प्रसेन तथा दूसरा शक्ति सेन था। इस तरह ये दोनों पुत्र हुए थे ।३। प्रसेन की ही परमोत्तम मणियों में भी रत्न स्यमन्तक मणि थी। यह स्यमन्तक मणि पृथिवी में समस्त रत्नों की राजा मणि हुई है ।४। हृदय में उसके प्राप्त करने की बहुत कुछ मनोरथ करके उस मणि की याचना की गयी थी किन्तु साक्षात् गोविन्द

ने भी उसको प्राप्त नहीं किया था। वह सर्व समर्थ होते हुए भी उसका हरण उन्होंने नहीं किया था।५। किसी समय में उसी मणि से भूषित होकर प्रसेन मृगया की क्रीड़ा करने के लिए चला गया था। किसी हिंसक पशु जैसा उसने बिल में शब्द का श्रवण किया था जो कि सत्व पूरित था।६। इसके पश्चात् मृगया के मत्त प्रसेन ने उसमें प्रवेश किया था। वहाँ पर उसमें ऋक्ष को देखा था। वहाँ पर दोनों ऋक्ष और प्रसेन में युद्ध हुआ अन्त में ऋक्ष ने प्रसेन पर विजय प्राप्त करली थी।७।

हत्वा: ऋक्ष: प्रसेनन्तु ततस्तं मणिमाददात्।
अदृष्टस्तु हतस्तेन अन्तर्बिलगतस्तदा।८
प्रसेनन्तु हतं ज्ञात्वागोविन्द: परिशङ्कित:।
गोविन्देन हतोव्यक्तं प्रसेनोमणिकारणात्।९
प्रसेनस्तु गतोऽरण्यं मणिरत्नेन भूषित:।
तं दृष्ट्वा हतस्तेन गोविन्द: प्रत्युवाचं ह।
हन्मि चैनं दुराचारं शत्रुभूतं हि वृष्णिषु।१०
अथ दीर्घेण कालेन मृगयांनिर्गत: पुन:।
यदृच्छयाच गोविन्दोबिलस्याभ्यासमागमत्।११
तं दृष्ट्वातुमहाशब्दंसचक्रेऋक्षराट्बली।
शब्दं श्रुत्वातु गोबिन्द: खड्गपाणि: प्रविश्यस:।
अपश्यज्जाम्बवन्तं तं ऋक्षनाजं महाबलम्।१२
ततस्तूर्णं हृषीकेशस्तमृक्षपतिमञ्जसा।
जाम्बवन्तं स जग्राह क्रोध संरक्त लोचन:।१३
तुष्टावैनं तदा ऋक्ष: कर्मभिर्वैष्णवै: प्रभुम्।
ततस्तुष्टस्तु भगवान् वरेणैनमरोचयत्।१४

ऋक्ष ने प्रसेन का वध करके उससे वह मणि ग्रहण करली थी। उस समय में वह हत हुआ किसी के द्वारा भी नहीं देखा गया था और

बिल के अन्दर चला गया था ।८। प्रसेन को हृत जानकर गोविन्द बहुत अधिक परिशंकित होगये थे। यही उस समय में स्पष्टतया प्रतीत हो गया था कि गोविन्द ने ही स्यमन्तक मणि के कारण से उसका हनन किया है ।९। प्रसेन तो उस मणि रत्न से विभूषित होकर ही अरण्य में गया था। उसको देखकर उसी के द्वारा उसको हृत किया गया है— यही गोविन्द ने उत्तर दिया। मैं वृष्णियों शत्रु के समान उस दुराचारी का अवश्य ही हनन करूंगा ।१०। इसके अनन्तर बहुत लम्बे समय के पश्चात् यह इच्छा से गोविन्द पुनः मृगया के लिये निकल कर गये थे। विचरण करते हुए यह इच्छा से ही गोविन्द उसी बिल के समीप में प्राप्त हो गये थे ।११। उनको देखकर बली ऋक्षराट् ने महान् शब्द किया था। उस ऋक्ष के महारव को श्रवण करके गोविन्द ने हाथ में खड्ग धारण करके उस बिल में प्रवेश किया था और वहाँ पर महान् बलशाली ऋक्षराज उस जामवन्त को जाकर देखा था ।१२। उसको देखकर क्रोध से रक्त नेत्रों वाले होकर हृषीकेश ने तुरन्त ही एकदम उस ऋक्षपति जामवन्त को पकड़ लिया था ।१३। उस समय में ऋक्षराज जामवन्त ने वैष्णव कर्म्मों के द्वारा इन प्रभु की स्तुति की थी। इसके पश्चात् भगवान् परम सन्तुष्ट हो गये थे और वरदान के द्वारा इसको भी प्रसन्न कर दिया था ।१४।

इच्छे चक्र प्रहारेणत्वत्तोऽहं मरणंप्रभो ! ।
कन्याचेयंममशुभा भर्त्तारंत्वामवाप्नुयात् ॥
योऽयं मणिः प्रसेनन्तु हत्वा प्राप्तो मया प्रभो ।१५
ततः सजाम्बवन्तं तं हत्वाचक्रेणवै प्रभुः ।
कृतकर्मा महाबाहुः सकन्यं मणिमाहरत् ।१६
ददौ सत्राजितायैनं सर्वंसात्वदसंसदि ।
तेन मिथ्यापवादेन सन्तप्ता ये जनार्दने ।१७
ततस्ते यादवाः सर्वे वासुदेवमथाब्रुवन् ।

अस्माकन्तु मतिर्ह्यासीत्प्रसेनस्तुत्वयाहत: ।१८
कैकेयस्य सुता भार्यादशसत्राजित: शुभा: ।
तासूत्पन्ना: सुतास्तस्य सर्वलोकेषुविश्रुता: ।
ख्यातिमन्तो महावीर्य्या भङ्गकारस्तु पूर्वज: ।१९
अथ व्रतवती तस्मात् भङ्गकारात्तु पूर्वजात् ।
सुषुवे सुकुमारीस्तु तिस्र: कमललोचना: ।२०
सत्यभामा वरास्त्रीणां व्रतिनीचदृढ़व्रता ।
तथा पद्मावतीचैवत्ताश्च कृष्णायसोऽददात् ।२१

जाम्बवन्त ने कहा—हे प्रभो ! मैं तो अब आपसे ही चक्र के प्रहार के द्वारा मृत्युकी ही इच्छा करता हूँ । यह एक मेरी परमशुभ एक कन्या है वह आप को ही अपना भर्त्ता प्राप्त कर लेवे । हे प्रभो ! मैंने ही प्रसेन का हनन करके यह मणि प्राप्त की है ।१५। इसके अनन्तर उन प्रभु ने चक्र के द्वारा जाम्बवन्त का उसी की इच्छा के अनुसार हनन कर दिया था और कर्म समाप्त करके महान् बाहुओं वाले प्रभु उस कन्या के साथ ही मणिका समाहरणकर लिया था ।१६। फिर द्वारकामें समस्त सात्वतों की सभा में बुलाकर उस मणि को सत्राजित को दे दिया था । फिर जो जनार्दन प्रभु के विषय में मिथ्या अपवाह लगा रहे थे वे बहुत ही सतप्त हुए थे ।१७। इसके उपरान्त सभी यादवों ने भगवान् वासुदेव से कहा था कि हमारा सबका विचार तो यही निश्चित होगया था कि प्रसेन को आपने ही मार दिया है ।१८। कैकेय की दश शुभ सुतायें सत्राजित् की भार्याऐं थीं । उस सत्राजित्के उन दशों भार्य्याओंसे समुत्पन्न पुत्र समस्त लोकों में विश्रुत थे ।१९। ये सब बड़ी ही अधिक ख्याति वाले थे और महान् बल-वीर्य से सुसम्पन्न हुए थे । इनमें भृङ्गकार सबसे प्रथम उत्पन्न वाला ज्येष्ठ था । इसके अनन्तर उस पूर्वज भृङ्गकार से व्रतवती पत्नी ने कमल के सदृश नेत्रों वाली परम सुन्दरी तीन सुकुमारी कन्याओं को प्रसूत किया था ।२०। सत्यभामा सभी स्त्रियों में परम श्रेष्ठ थी—

वृतिनी सद्दृढ़व्रत वाली थी और तीसरी पद्मावती थी। उन तीनों को ही उसने श्रीकृष्ण के लिये दे दिया था।२१।

अनमित्रात् शनिर्जज्ञे कनिष्ठाद् वृष्णिनन्दनात् ।
सत्यवांस्तस्य पुत्रस्तु सात्यकिस्तस्य चात्मज: ।२२
सत्यवान्युयुधानस्तुशिनेर्नप्ताप्रतापवान् ।
असङ्गोयुयुधानस्यद्युम्निस्तस्यात्मजोऽभवत् ।२३
द्युम्नेयुंगन्धरः पुत्रइतिशैन्याः प्रकीर्त्तिताः ।
अनमित्रान्यवोह्येषव्याख्यातोवृष्णिवंशजः ।२४
अनमित्रस्य संजज्ञे पृथ्व्यां वीरोयुधाजितः ।
अन्यौतु तनयौ वीरौ वृषभः क्षत्रएव च ।२५
वृषभः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत ।
जयन्तस्तु जयन्त्यान्तुपुत्रः समभवच्छुभः ।२६
सदा यज्ञोऽति वीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः ।
अक्रूरः सुषुवे तस्मात्सदायज्ञोऽतिदक्षिणः ।२७।

वृष्णि के सबसे छोटे पुत्र से जिसका नाम अनमित्र था शनि ने जन्म धारणकिया था। उसका पुत्र सत्यवान् हुआ था और इस सत्यवान् का आत्मज सात्यकि नाम वाला उत्पन्न हुआ था।२२। सत्यवान् और युयुधान शिनि के प्रतापशाली नप्ता (नाती) थे। युयुधान का पुत्र असङ्गम नामधारी हुआ और उसका आत्मज द्युम्नि हुआ था।२२। द्युम्नि का पुत्र युगन्धर उत्पन्न हुआ था—ये सभी सैन्य नाम से ही प्रकीर्त्तित हुए थे। यह अनमित्र का वंशजो कि वृष्णि वंशसे ही समुत्पन्न है पूर्णतया कह दिया गया है।२४। अनमित्र का पृथ्वी में वीर युधाजित ने जन्म लिया था। अन्य भी दो वीर-तनय हुए थे जिनके अपनी भार्या के रूप में प्राप्त किया था। जयन्ती में जयन्त नामक शुभ पुत्र समुत्पन्न

हुआ ।२६। वह सदा ही यज्ञों के करने वाला और अत्यन्त वीर था तथा श्रुतवाम अर्थात् शास्त्रों का ज्ञाता और अतिथियों से प्यार करने वाला था। उससे कक्रूर समुत्पन्न हुआ था। यह भी सदा-सर्वदा यज्ञों के करने वाला और अत्यधिक दक्षिणा देने वाला हुआ था।२७।

रत्ना कन्याचशैव्यस्य अक्रूरस्तामवाप्तवान् ।
पुत्रानुत्पादयामास एकादशमहाबलान् ।२८
उपलम्भः सदालम्भो वृकलो वीर्य्यएवच ।
सिरी ततो महापक्षः शत्रुघ्नोवारिमेजयः ।२९
धर्म्मवृद्धर्म्मवर्माणौ धृष्टमानस्तथैव च ।
सर्वे च प्रतिहोतारो रत्नायांजज्ञिरे च ते ।३०
अक्रूरादुग्रसेनायां सुतौ द्वौ कुलवर्द्धनौ ।
देववानुपदेवश्च जज्ञाते देवसन्निभौ ।३१
अश्विन्यां च ततः पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च ।
अश्वत्थामा सुवाहश्च सुपाश्वकगवेषणौ ।३२
वृष्टिनेमिः सुधर्मा च तथा शर्यातिरेवच ।
अभूमिवर्जभूमिश्च श्रमिष्ठ श्रवणस्तथा ।३३
इमांमिथ्याभिशस्तियोवेदकृष्णादपोहिताम् ।
नसमिथ्याभिशापेनअभिशाप्योऽथकेनचित् ।३४

शैव्य की कन्या का नाम रत्ना था। अक्रूर ने उसको प्राप्त किया था। उसमें अक्रूरने ग्यारह महान् बलशाली पुत्रों को जन्म देकर उत्पन्न किया था। उनके नाम ये हैं—उपलम्भ, सदालम्भ, वृकल, वीर्य्य, सिरी, महापक्ष, शत्रुघ्न, वारिमेजय, धर्मभृत, धर्मवर्म्मा और धृष्टमान। ये सभी प्रतिहोता हुए थे। जिन्होंने रत्ना से जन्म प्राप्त किया था।२८-३०। अक्रूर से उग्रसेना में दो पुत्र कुल के वर्धन करने वाले हुए थे। इनके नाम देववान् और उपदेव थे जो बिल्कुल देवों के ही तुल्य थे।

।३१। इसके पश्चात् शाम्बिनी जो पुत्र हुए थे उनके शुभ नाम ये होते हैं—पृथु, पितृथु, अश्वत्थामा, सेवाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, वृष्टिनेमि, सुधर्म्मा, शर्याति, अभूमि, वर्णभूमि, श्रमिष्ठ, श्रवण। इस मिथ्या अभिशस्ति को जो भगवान् कृष्ण से अपोहित की गयी है जो भी कोई जानता है तथा नित्य नियम से इसका पाठ तथा श्रवण किया करता है वह पुरुष कभी भी किसी के भी द्वारा मिथ्याभिशाप से अभिशाप्य नहीं होगा।३२-३४।

—×—

२४—कृष्णोत्पत्ति वर्णन

ऐक्ष्वाकी सुषुवे शूरं ख्यातमद्भुतमीढुषम्।
पौरुषाज्जज्ञिरे शूरात् भोजायांपुत्रकादश।१
वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः।
देवमार्गस्ततो जज्ञे ततो देवश्रवाः पुनः।२
अनाधृष्टिः शिनिश्चैव नन्दश्चैव ससृञ्जयः।
श्यामः शमाकः संयूप पञ्चास्यवराङ्गनाः।३
श्रुतकीर्तिः पृथा चैव श्रुतदेवीश्रुतश्रवाः।
राजाधि देवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः।४
कृतस्य तु श्रुता देवी सुग्रहं सुषुवे सुतम्।
कैकय्यां श्रुतकीर्त्यान्तु जज्ञे सोऽनुव्रतोनृपः।५
श्रुतश्रवसि चैद्यस्य सुनीथः समपद्यत।
वार्षिको धर्म्मशारीरः स बभूवारिमर्दनः।६
अथ सख्येन वृद्धेऽसौ कुन्तिभोजेसुतांददौ।
एवकुन्तीसमाख्याताबसुदेवस्वसा पृथा।७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा—ऐक्ष्वाकी ने शूर-ख्यात-अद्भुत, ईढुष पुत्र का उत्पन्न किया था। शूर पौरुष ये भोजा में दश पुत्रों के जन्म

ग्रहण किया था ।१। आनक दुन्दुभि महान् बाहुओं वाले वासुदेव ने सर्व प्रथम देवमार्ग और इसके अनन्तर वेदश्रवा को जन्म प्रदान किया था ।२। फिर अनाधृष्टि, शिनि, नन्द, ससृञ्जय, श्याम, शमीक, संयूप को समुत्पन्न किया था। इन वसुदेव के पाँच वराङ्गनायें थीं। श्रुत देवी पृथा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधि देवी, ये उन पाँचों के शुभ नाम थे। ये पाँचों ही वीरों को जन्म प्रदान करने वाली मातायें थीं ।३—४। कृतकी सुता देवी ने सुग्रह सुत को प्रसूत किया था। कैकेयी और श्रुतकीर्ति में वह अनुव्रत नृप समुत्पन्न हुए थे ।५। श्रुतश्रवा में चौद्य का सुनीथ हुआ था। जिस समय में वह एक ही वर्ष का था वह परम धर्म से समन्वित शरीर वाला और अपने अरियों के मर्दन करने वाला हो गया था ।६। इसके अनन्तर संख्य में इस कुन्ति भोज के बड़े हो जाने पर सुता दे दी थी। इस प्रकार से कुन्ती वसुदेव की स्वस्त पृथा समाख्यात् हुयी थी ।७।

वसुदेवेन सा दत्ता पाण्डोर्भार्याह्यनिन्दिता ।
पाण्डोरर्थेनसाजज्ञे देवपुत्रान्महारथान् ।८
धर्माद्युधिष्ठरो जज्ञे वायोर्जज्ञे वृकोदरः ।
इन्द्राद्धनञ्जयश्चैव शक्रतुल्य पराक्रमः ।९
माद्रवत्यान्तु जनितावश्विभ्यामिति शुश्रुमः ।
नकुलः सहदेवश्च रूपशीलगुणान्वितौ ।१०
रोहिणी पौरवी सा तु ख्यातमानकदुन्दुभेः ।
लेभेज्येष्ठंसुतरामंसारणञ्चसुतं प्रियम् ।११
दुर्दमं दमनं सुभ्रु ं पिण्डारक महहान् ।
चित्राक्ष्यौ द्वे कुमार्य्यौ तु रोहिण्यांजज्ञिरेतदा ।१२
देवक्यां जज्ञिरे शौरेः सुषेणः कीर्तिमानपि ।
उदासी भद्रसेनश्च ऋषिवासस्तथैव च ।
षष्ठो भद्र विदेहश्च कंसः सर्वानघातयत् ।१३

प्रथमाया अमावास्या वार्षिकी तु भविष्यति ।
तस्यां जज्ञे महा ह्हु: पूर्वंकृष्ण: प्रजापति: ।१४

वसुदेव ने उसको पाण्डु के लिए प्रदान कर दी थी जो कि उसकी परम प्रशस्त भार्य्या हुई थी । उसने पाण्डु के अर्थ के द्वारा महारथ देव पुत्रों का जन्म दिया था ।८। धर्म से युधिष्ठिर ने जन्म लिया था । वायु देव से वृकोदर में प्रसव प्राप्त किया था । इन्द्रदेव से धनञ्जय को समुत्पन्न किया था जो शक्र के ही तुल्य बल पराक्रम वाला हुआ था । ।९। माद्रवती में तो ऐसा सुनते हैं अश्विनी कुमारोंमें दो पुत्र नकुल और सह समुत्पन्न हुए थे जो रूप लावण्य शील और अनेक गुण गणों से समन्वित थे ।१०। पौरवी रोहिणी नाम वाली भार्य्या ने आनक दुन्दुभि से परम विख्यात ज्येष्ठ सुत बलराम की प्राप्ति का लाभ उठाया था और उस प्रिय सुत का सारण भी हुआ ।११। अन्य सुत जो हुए थे उनके नाम इस प्रकार से हैं—दुर्द्दम-दमन-सुभ्रु-पिण्डारक महाहनु । उस समय में चित्रा अक्षी दो कुमारियों ने भी रोहिणी में जन्म ग्रहण किया था ।१२। देवकी में शौरि से कीत्तिमान् सुषेण—उदासी—भद्रसेन तथा ऋषिवास–छटवाँ पुत्र भद्र नाम वाला था और विदेह ये पुत्र समुत्पन्न हुए थे किन्तु कंस के सभी का घात कर दिया था ।१३। प्रथम अमावस्या से वार्षिकी होगी । उसमें महान् बाहुओं वाले प्रजापति श्रीकृष्ण पूर्व में समुत्पन्न हुए थे ।१४।

अनुजात्य भवत् कृष्णात् सुभद्राभद्रभाषिणा ।
देववक्यान्तु महातेजा जज्ञेशूरोमहायशा :।१५
सहदेवस्तु ताम्रायां जज्ञे शौरिकुलोद्वह: ।
उपासङ्गधर् लेभे तनय देवरक्षिता ।
एकां कन्याश्च सुभगाङ्कंसस्तामभ्यघातयत् ।१६
विजय रोचमानश्च वद्ध मानन्तु देवलम् ।

एते सर्वे महात्मानो ह्युपदेव्याः प्रजज्ञिरे ।१७
अवगाहो महात्मा च वृकदेव्यामजायत ।
वृकदेव्यां स्वयं जज्ञे नन्दको नामनामतः ।१८
सप्तमं देवकी पुत्रं मदनं सुषुवे नृप ।
गवेषणं महाभागं संग्रामेष्व पराजितम् ।१९
श्रद्धा देव्या विहारे तु वने हि विचरन् पुरा ।
वैश्यायामदधात् शौरिः पुत्रंकौशिकमग्रजम् ।२०
सुतनुरथराजी च शौरेरास्तां परिग्रहौ ।
पुण्ड्रश्चा कपिलश्चैव वसुदेवात्मजौ बलौ ।२१

कृष्ण से पीछे एक अनुजा सुभद्रा नाम वाली समुत्पन्न हुई थी जो परम भद्र भाषण करने वाली थी । देवकी में तेजस्वी तथा महा यशस्वी शूर ने जन्म ग्रहण किया था ।५१। शौरिकुल का उद्वहन करने वाले सहदेव ने ताम्रा में जन्म प्राप्त किया था और देवरक्षिता ने उपासङ्ग-धर पुत्र प्राप्त करने का लाभ उठाया था । परम सुभगा एक कन्या समुत्पन्न हुई थी किन्तु उसी समय में दुष्ट कंस ने उसका घातकर दिया था ।१६। विजय-रोचमान वर्द्धमान-देवल ये समस्त महान् आत्माओं वाले पुत्रों ने उपदेवी के उदर से जन्म प्राप्त किया था ।१७। महात्मा अवगाह वृकदेवी में उत्पन्न हुआ । वृकदेवी में नन्दक नाम धारी ने स्वयं जन्म प्राप्त किया था ।१८। हे नृप ! देवकी ने सातवाँ पुत्र मदनक को प्रसूत किया था और संग्रामों में पराजित न होने वाले महाभाग गवेषण नामक पुत्र को उत्पन्न किया था ।१९। परम प्राचीन समय में श्रद्धा देवी से वन में बिहार के समय में विचरण करते हुए शौरि ने वैश्या में अग्रज पुत्र कौशिक को धारण किया था ।२०। सुतन रथराजी ये ही दो शौरि के परिग्रह हुए थे ।२१।

जरानाम निषादोऽभूत प्रथमः स धनुर्धरः ।
सौभद्रश्चा भवश्चैव महासत्वौ बभूवतः ।२२

देवभागसुतश्चापि नाम्नाऽसावुद्धव: स्मृत: ।
पण्डितं प्रथम प्राहुर्देवश्रव: शमुद्भवम् ।२३
ऐक्ष्वाक्यलभतापत्य अनाधृष्टेर्यशस्विनी ।
निर्धूतसत्वं शत्रुघ्नं श्राद्धस्तस्मादजायत: ।२४
करूषायानपत्याय कृष्णस्तुष्ट: सुतन्ददौ ।
सुचन्द्रन्तु महाभाग वीर्यवन्तं महाबलम् ।२५
जाम्बवत्या: सुतावेतौ द्वौ च सत्कृतलक्षणौ ।
चारु ष्णश्च साम्बश्चवीर्यवन्तौ महाबलौ ।२६
तन्तिपालश्च तन्तिश्च नन्दनस्य सुतावुभौ ।
शमीकपुत्राश्चत्वारोविक्रान्ता: सुमहाबला: ।।
विराजश्च धनुश्चैव श्याम्यश्च सृञ्जयस्तथा ।२७
अनपत्योऽभवच्छ्याम: शमीकस्तुवनंययौ ।
जुगुप्समानोभोजत्वं राजर्षित्वंमवाप्तवान् ।२८
कृष्णास्य जन्माभ्युदयं य: कीर्तयतिनित्यश: ।
शृणोति मानवोनित्यंसर्वपापै: प्रमुच्यते ।२९

एक जरा नामधारी निषाद हुआ था और वह प्रथम धनुर्धर था । सौभद्र और भव ये भी महान सत्व हुए थे ।२२। देवभाग का भी सुत हुआ था जो कि यह उद्धव इस शुभ नाम से प्रसिद्ध हुआ था । देवश्रुव इस समुदभूत पुत्र को प्रथम पण्डित कहा करते थे ।२३। यशस्विनी ऐक्ष्वाकी ने अनाधृष्ठि से सन्तति प्राप्त करने का लाभ उठाया था । निर्धूत सत्व—शत्रुघ्न और श्राद्ध उससे समुत्पन्न हुए थे ।२४। करूष जो कि सन्तति से विहीन था उसको श्रीकृष्ण परम तुष्ट होकर ही सुत दे दिया था । महाभाग सुचन्द्र महान् बलवान् वीर्यवान् हुआ था ।२५। जाम्बवती के दो पुत्र सत्कृत्य लक्षणों वाले हुए थे । उन दोनों के शुभ नाम चारुदेष्ण और साम्ब थे । ये दोनों वीर्यवान् और महान् बलशाली थे ।२६। नन्दन के तन्तिपाल और तन्ति दो सुत समुत्पन्न हुये थे । शमीक के चार पुत्र परम विक्रमशाली और सुमहान् बल से सम्पन्न हुए

थे जिनके नाम विराज—धनु—श्याम और सृञ्जय थे ।२७। इनमें श्याम असत्य से रहित हो गया था अर्थात् उसके कोई भी सन्तति नहीं हुई थी । शमीक तो बन में चला गया था और भोजत्व की जुगुप्सा करता हुआ वह राजर्षि के पद को प्राप्त हो गया था ।२८। यह श्रीकृष्ण के जन्म का अभ्युदय है इसको जो पुरुष नित्य ही नियम से कीर्तित किया करता है अथवा इसका श्रवण किया करता है वह मानव समस्त प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है ।२९।

२५—कृष्णसन्तान वर्णन

अथ देवो महादेवः पूर्वं कृष्णः प्रजापतिः ।
विहारार्थं स देवेशो मानुषेष्विह जायते ।१
देवक्यां वसुदेवस्य तपसा पुष्करेक्षणः ।
चतुर्बाहुस्तदा जातोदिव्यरूपोज्वलन्श्रिया ।२
श्रीवत्सलक्षणं देव दृष्टवा लक्षणैः ।
उवाच वसुदेवस्तं रूपं संहर व प्रभो ।३
भीतोऽहं देव ! कंसस्य ततस्त्वेतद्ब्रवीमि ते ।
ममपुत्राहतास्तेनज्येष्ठास्तेभीमविक्रमाः ।४
वसुदेववचः श्रुत्वा रूपं संहरतेच्युतः ।
अनुज्ञाप्य ततः शौरिं नन्दगोपगृहेऽनयत् ।५
दत्वैनं नन्दगोपस्य रक्ष्यतामिति चाब्रवीत् ।
अतस्तु सर्वकल्याणंयादवानांभविष्यति ।६

महामहर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर महान् देव देव प्रजापति श्री कृष्ण पूर्व में विहार के लिये ही वह देवेश्वर यहाँ संसार में मनुष्यों में समुत्पन्न हुआ करते हैं ।१। वसुदेव की तपश्चर्या से ही देवकी में पुष्करेक्षण-चार भुजाओं वाले दिव्य रूपसे समन्वित श्री से जाज्वल्य-

मान होते हुए उस समय में प्रादुर्भूत हुए थे ।२। श्रीवत्स धारण करने के लक्षण वाले तथा दिव्य लक्षणों से संयुत देव का उस समय में दर्शन करके ही वसुदेव ने उनसे प्रार्थना की थी कि हे प्रभो ! आप अपने स्वरूप को संहृत कर लीजिए ।३। हे देव ! मैं राजा कंस से अत्यन्त ही भयभीत हो रहा हूँ इसीलिए आपसे यह निवेदन करता हूँ । इस दुष्ट कंस ने आपसे पहिले समुत्पन्न हुए आपके ज्येष्ठ भाई मेरे पुत्रों का हनन कर डाला है जो कि भीम बल पराक्रम से युक्त थे ।४। वसुदेव की प्रार्थना के इन वचनों का श्रवण करके भगवान् अच्युत ने उसने उस-दिव्य स्वरूप का संवरणकर लिया था । इसके उपरान्त उन्होंने शौरिको अनुज्ञापन दिया था और वह उनको नन्द गोप के गृह में ले गये थे ।५। इनको वसुदेव ने नन्द गोप के सुपुर्द करके यह कहा था कि आप ही मेरे इस पुत्र की रक्षा कीजिए । इनसे ही सब यादवों का कल्याण होगा ।६।

क एष वसुदेवस्तु देवकी च यशस्विनी ।
नन्दगोपश्च कस्त्वेष यशोदा च महाव्रता ।७
यो विष्णु जनयामास यञ्च ततित्यभाषत ।
या गर्भं जनयामास याचैनं त्वभ्यवर्द्धयत् ।८
पुरुष कश्यपस्त्वासीददितिस्तु प्रिया स्मृता ।
ब्रह्मण कश्यपस्त्वांश पृथिव्यास्त्वदितिस्तथा ।९
अथ कामान् महाबाहुर्देववया: समपूरयत् ।
ते तया काङ्क्षितानित्यमजातस्यमहात्मनः ।१०
सोऽवत र्णो महीं देवः प्रविष्टो मानुषींतनुम् ।
मोहयन्सर्वभूतानियोगात्मा योगमायया ।११
नष्टे धर्मे तथा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः ।
कर्तुं धर्म्मस्य संस्थानंअसुराणांप्रणाशनम् ।१२
रुक्मिणीसत्यभामाचसत्यानाग्नजितीतथा ।

सुभामाचतथाशैब्यागान्धारीलक्ष्मणा तथा ।१३
मित्रविन्दा चकालिन्दीदेवीजाम्बवतीतथा ।
सुशीलाचतथामाद्रीकौशल्याविजयातथा ।
एवमादीनि देवीनां सहस्राणि च षोडश ।१४

मुनिगण ने कहा—यह वसुदेव कौन थे और परम यशस्विनी यह देवकी कौन थी ? नन्द नाम वाला यह जो गोप आपने बतलाया था यह भी कौन हुआ था तथा महान् व्रत वाली।यशोदा कौन थी ? ।७। जिसने भगवान् विष्णु को पुत्र के रूप में जन्म दिया था और जिसको लाल कह कर पुकारा था जिसने अपने गर्भ में रखकर इनको जन्म ग्रहण कराया था और जिसने इनका बाल्यावस्था में परिवर्द्धन किया था ।८। सूतजी ने कहा—कश्यप नाम वाले पुरुष थे और अदिति नाम वाली उनकी प्रिया बताई गयी है । यह कश्यप तो ब्रह्माजी का अंश था और अदिति पृथ्वी का अंश हुई थी ।९। इसके उपरान्त महान् बाहुओं वाले प्रभु ने देवकी की कामनाओं को पूर्ण कर दिया था । जो नित्य ही अज्ञात है ऐसे अजन्मा प्रभु को उसने पुत्र के रूपमें देखने की इच्छा की थी ।१०। इसी लिये वह देव इस मही मण्डल में अवतीर्ण हुए थे और फिर मानुषी तनु में उन्होंने प्रवेश किया था । यह प्रभु तो योगात्मा थे । इन्होंने अपनी योग माया से ही समस्त भूतोंको मोहित कर दिया था ।११। जिस समय में इस मही मण्डल में धर्म नष्ट हो गया था उसी समय में प्रभु विष्णुने वृष्णि कुल में जन्म ग्रहण किया था । इनके वृष्णि कुल में उत्पन्न होकर अवतार धारण करने का प्रमुख प्रयोजन ही धर्म को संस्थापित करना और बढ़े हुए दुष्ट असुरों का नाश करना ही था ।१२। जब प्रभु ने श्री कृष्णवतार धारण किया था उस समय में प्रभु की षोडश सहस्र पत्नियाँ थीं । उनमें प्रमुख नामों का ही थोड़ा सा प्रदर्शन यहाँ पर किया जाता है—रुक्मिणी—सत्यभामा—सत्या—नाग्नजिती—सुभामा—शैब्या—गान्धारी—लक्ष्मण—मित्रविन्दा—कालिन्दी देवी—

जाम्बवती-सुशीला-माद्री—कौशल्या तथा विजया एवं माद्री देवियाँ थीं ।१३-१४।

रुक्मिणी जनयामास पुत्रं रणविशारदम् ।
चारुदेष्णं रणे शूरं प्रद्युम्नञ्च महाबलम् ।१५
सुचारु भद्रचारु च सुदेष्णं भद्रमेव च ।
परशुञ्चारु गुप्तञ्च चारु भद्रं सुचारुकम् ।
चारुहासं कनिष्ठञ्च कन्यां चारुमतीं तथा ।१६
जज्ञिरे सत्यभामायां भानुर्भ्रमरतेक्षणः ।
रोहितोदीप्तिमांश्चैव ताम्रश्चक्रो जलन्धमः ।१७
चतस्रोजज्ञिरेतेषांस्वसारस्तुयवीयसीः ।
जांम्बवत्याः सतोजज्ञेसाम्बः समिति शोभनः ।१८
मित्रवान्मित्रविन्दश्चमित्रविन्दावसङ्गना ।
मित्रबाहुः सुनीथश्चनाग्नजित्याः प्रजाहिसा ।१९
एवमादीनि पुत्राणां सहस्राणि निबोधत ।
अशीतिश्च सहस्राणिवासुदेव सुतास्तथा ।।
लक्षमेकं तथा प्रोक्तं पुत्राणाञ्च द्विजोत्तमा ।२०
उपासङ्गस्य तु सुतौ वज्रः संक्षिप्त एव च ।
भूरीन्द्रसेनो भूरिश्च गवेषण सुतावुभौ ।२१

रुक्मिणी देवी ने रण में विशारद पुत्र को जन्म दिया था । चारुदेष्ण रणविद्या में महान् शूर था—प्रद्युम्न महान बलवान् था—सुचारु-भद्रचारु सुदेष्ण-भद्र-परशु-चारुगुप्त चारुभद्र-सुचारुक-चारुहास-कनिष्ठ ये पुत्र हुए थे तथा चारुमती नाम वाली एक कन्या थी ।१५-१६। सत्यभामा में भानुभ्रमरतेक्षण—रोहित—दीप्तिमान्—ताम्रचक्र—जलन्धर ये पुत्र हुए थे और उन सबकी चार छोटी बहिनों ने जन्म ग्रहण किया था । जाम्बवती के समिति शोभन साम्ब पुत्र ने जन्म लिया था ।१७-१८। मित्रविन्दा के मित्रवान् और मित्रविन्द पुत्र हुए थे । नग्नजिता

की प्रजा मित्रबाहु और सुनीथ हुई थी अर्थात् इन नामों वाले पुत्र ने प्रसव प्राप्त किया था। इस प्रकार के सहस्रों ही पुत्र समुत्पन्न हुए थे—ऐसा ही समझ लेना चाहिए। अस्सी सहस्र तो वासुदेव प्रभु के ही पुत्र समुत्पन्न हुए थे। हे द्विजों में परमोत्तम गण! फिर उन पुत्रों के जो पुत्र हुए थे उनकी संख्या एक लाख थी।१६-२०। उपासङ्ग के वज्र और संक्षिप्त ये दो सुत हुए थे। भूरीन्द्र सेन और भूरि ये दो पुत्र गवेषण के समुत्पन्न हुए थे।२१।

प्रद्युम्नस्य तु दायादो वैदर्भ्यां बुद्धिसत्तमः।
अनिरुद्धो रणे रुद्धः जज्ञेऽस्यमृगकेतनः।२२
काश्या सुपार्श्वतनयासाम्बाल्लेभेतरस्विनः।
सत्यप्रकृतयोदेवाः पञ्चवीराः प्रकीर्तिताः।२३
तिस्रः कोटचः प्रवीराणां यादवानां महात्मनाम्।
षष्टिः शतसहस्राणि वीर्यवन्तो महाबलाः।
देवांशाः सर्व एवेह उत्पन्नास्ते महौजसः।२४
देवासुरे हता ये च असुरा ये महाबलाः।
इहोत्पन्ना मनुष्येषु बाधन्ते सर्वमानवान्।२५
तेषामुत्सादनार्थाय उत्पन्नो यादवे कुले।
कुलानां शतमेकञ्च यादवानां महात्मनाम्।२६
सर्वमेतत् कुलं यावद्वर्तते वैष्णवे कुले।
विष्णुस्तेषां प्रणेता च प्रभुत्वे च व्यवस्थितः।
निदेशस्थायिनस्तस्य कथ्यन्ते सर्वयादवाः।२७

प्रद्युम्न का दायाद बुद्धि सत्तम वैदर्भी में अनिरुद्ध हुआ था जो रण में रुद्ध था फिर इसका पुत्र मृगकेतन प्रसूत हुआ था।२२। साम्ब से काश्या सुपार्श्वतनया को प्राप्त किया था। ये तपस्वी-सत्य प्रकृति वाले पाँच वीर देव कीर्तित किये हैं।२३। प्रकृत वीर महान् आत्मा वाले यादवों की संख्या तीन करोड़ थी। साठ सौ सहस्र अत्यधिक वीर्य

वाले और महान् बलवान् हुये थे। ये महान् ओज वाले सभी यहाँ पर देवताओं के अंशावतार ही समुत्पन्न हुए थे।२४। देवासुर संग्राम में जो महान् बलवान् असुर हत हो गये थे। वे ही सब यहाँ पर मनुष्यों में समुत्पन्न हो गये थे जो कि सब मानवों को बाधायें पहुँचाया करते हैं। उन सबके उत्पादन करने के लिए ही यादव कुल में उत्पन्न हुए थे। महात्मा यादव कुलों का एक शत परिवार था यह समस्त कुल अब तक वैष्णव कुल में वर्तमान है। भगवान् विष्णु उनके प्रणेता थे और प्रभुत्व में व्यवस्थित थे। समस्त यादवगण उनके निर्देश में स्थित रहने वाले कहे जाते हैं।२५-२७।

—×—

२६—ययाति वंश की शाखाओं का वर्णन

तुर्वसोस्तुसुतोगर्भोगोभानुस्यचात्मजः।
गाभानोस्तुसुतोवीरस्त्रिसारिरपराजितः।१
करन्धमस्तु त्रैसारिर्भरतस्तस्य चात्मजः।
दुष्यन्तः पौरवस्यापि तस्यपुत्रो ह्यकल्मषः।२
एव ययातिशापेन जरासक्रमणे पुरा।
तुर्वसोः पौरवं वंशं प्रविवेश पुराकिल।३
दुष्यन्तस्य तु दायादावरूथोनामपार्थिवः।
वरूथात्तु तथावीरः सन्धानस्तस्यचात्मजः।४
पाण्ड्यश्चकेरलश्चैवचोलः कर्णस्तथैवच।
तेषां जनपदास्फीताः पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः।५
द्रुह्यस्य तनयौ शूरौ सेतुः केतुस्तथैव च।
सेतु पुत्रः शरद्वांस्तु गन्धारस्यस्यचात्मजः।६
ख्यायते यस्य नाम्नासं गंन्धारविषयो महान्।
आरट्टदेशजास्तस्य तुरगावाजिनांवराः।७

महामहर्षि प्रवर श्री सूतजी ने कहा—तुर्वसु का सुत गर्भ हुआ था और इसका आत्मज गोभानु था। गोभानु का पुत्र अपराजित वीर

त्रिसारि उत्पन्न हुआ था ।१। करन्धम त्रिसारि का आत्मज था और इसका पुत्र भरत समुत्पन्न हुआ था । पौरव का पुत्र दुष्यन्त था तथा उसका पुत्र अकल्मष हुआ था ।२। इस प्रकार से प्राचीन काल में ययाति के शाप से पहिले जरा के संक्रमण में तुर्वसु के पौरव वंश ने प्रवेश किया था ।३। दुष्यन्त का दायाद वरुथ नाम वाला पार्थिव हुआ था । वरुथ से सन्धान वीर पुत्र हुआ था । इसके आत्मज पाण्डय-केरल-चोल और कर्ण थे । इनके जनपद भी महान् स्फीत थे । जो पाण्ड्य-चोल और केरल नाम वाले ही हुए थे ।४-५। द्रुह्य के दो पुत्र थे जो बड़े ही शूर थे उनके नाम सेतु और केतु थे । सेतु का पुत्र शरद्वान् हुआ था और फिर इसका पुत्र गान्धार नाम वाला था ।६। इसी के नाम से महान् देश भी गान्धार ख्यात हुआ था । उसके आरट्ट देश में उत्पन्न होने वाले अश्वों में परम श्रेष्ठ थे ।७।

गन्धारपुत्रोधर्म्मस्तु घृतस्तस्यात्मजोऽभवत् ।
घृता चविदुषोजज्ञे प्रचेतास्तस्यचात्मजः ।८
प्रचेतसः पुत्रशतं राजानः सर्व एव ते ।
म्लेच्छराष्ट्राधिपाः सर्वे उदीचीन्दिशमाशिताः ।९
अनोश्चैव सुता वीरास्त्रयः परमधार्मिकाः ।
सभानरश्चाक्षुषश्च परमेषु तथैव च ।१०
सभान स्यपुत्रस्तु विद्वान्कोलाहलो नृपः ।
कोलाहलस्य धर्मात्मा सञ्जयोनामविश्रुतः ।११
सञ्जयस्याभगत् पुत्रो वीरो नाम पुरञ्जयः ।
जनमेजयो महाराज ! पुरञ्जयसुतोऽभवत् ।१२
जनमेजस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवत् सुतः ।
आसीदिन्द्रसमो राजा प्रतिष्ठितयशाभवत् ।१३
महामनाः सुतस्तस्य महाशालस्य धार्मिकः ।
सप्तद्वीपेश्वरो जज्ञे चक्रवर्त्ती महामनाः ।१४

उस गान्धार का पुत्र धर्म्म हुआ और उसका आत्मज घृत नाम वाला था। विद्वान् घृत से प्रचेता ने जन्म प्राप्त किया था।८। प्रचेता के एक सौ पुत्र हुए थे वे सभी राजा हुए थे। ये सब मलेच्छ राष्ट्रों के अधिप थे और सभी ने उत्तरी दिशा का समाश्रय ग्रहण किया।९। अनु के तीन परम धार्म्मिक तथा वीर पुत्रों ने जन्म प्राप्त किया था। उन तीनों के नाम सभानर–चाक्षुष और परमेषु ये तीन थे।१०। सभानर का पुत्र परम विद्वान् कोलाहल नामधारी नृप हुआ था फिर इस कोलाहल का पुत्र भी धर्मात्मा सञ्जय नाम से विश्रुत उत्पन्न हुआ था।।११। सञ्जय के पुत्र का नाम वीर पुरञ्जय हुआ था। हे महाराज! के जनमेजय पुरञ्जय के ही आत्मज हुए थे।१२। राजर्षि जनमेजय महाशाल नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था। यह राजा इन्द्र के ही समान प्रतिष्ठित यश वाला हुआ था।१३। इस महाशालके महामना नाम वाला परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ था। महामना सातों द्वीपों का स्वामी चक्रवर्त्ती सम्राट पैदा हुआ था।१४।

महामनास्तु द्वौ पुत्रौ जनयामास विश्रुतौ।
उशीनरञ्च धर्मज्ञं तितिक्षुं चैव तावुभौ।१५
उशीनरस्य पुत्रस्तु पञ्चराजर्षिसम्भवाः।
भृशा कृशानवा दर्शा या च देवी दृषद्वती।१६
उशीनरस्य पुत्रास्तु तासुजःताः कुलोद्वहाः।
तपसा ते तु महता जाताबृद्धवस्यधार्मिका।१७
भृशायास्तु नृगः पुत्रो नवायानव एवच।
कृशायास्तु कृशो जज्ञे दर्शायाः सुव्रतोऽभवत्।
दृषद्वत्याः सुतश्चापि शिविरौशीनरो नृपः।१८
शिवेस्तु शिवयः पुत्राश्चत्वारो लोक विश्रुताः।
पृथुदर्भः सुवीरश्च कैकयो भद्रकस्तथा।१९
तेषां जनपदाः स्फीताः केकयाभद्रकास्तथा।

सौवीराश्चैवपौराश्च नृगस्यकेकयास्तथा ।२०
सुव्रतस्य तथाम्बष्ठा कुशस्य वृषला पुरी ।
नवस्य नवराष्ट्रन्तु तितिक्षोस्तु प्रजां शृणु ।२१

महाराज महामना ने परम प्रसिद्ध दो पुत्रों को जन्म दिया था। उन दोनों में धर्म का ज्ञाता एक उशीनर था और दूसरे का नाम तितिक्षु था ।१५। उशीनर के पुत्र पञ्च राजर्षि सम्भव थे। उशीनर की भर्या कृशानवा-दर्शा और दृषद्वती देवी ये पत्नियां थीं ।१६। उन्हीं में उशीनर के कुल के उद्वहन करने वाले पुत्र संमुत्पन्न हुए थे। वे महान तप के कारण परम धार्मिक हुए थे ।१७। भृशा के पुत्र का नाम नृग था। नवा का नव था। कृशा का कृश हुआ था और दर्शा के पुत्र का नाम सुव्रत था। तथा दृषद्वती के पुत्र का शुभ नाम औशीवर शिवि नृप हुआ था ।१८। राजा शिवि के शिवय चार पुत्र लोक में परम प्रसिद्ध समुत्पन्न हुए थे। उनके नाम पृथुदर्भ-सुवीर केकय और भद्रक थे ।१९। उन चारों के जो जनपद थे वे भी अतीव फैले हुए विशाल थे जो उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध थे। केकय-भद्रक-सौवीर-पौर तथा नृग केकय थे। सुव्रत को अम्बष्ठा तथा कृश की पुरी का नाम वृषला था। नव के नव राष्ट्र था। अब यहाँ से आगे तितिक्षु की जो प्रजा हुई थी उसको सुनिये ।२०-२१।

तितिक्षुरभवद्राजा पूर्वस्यां दशिविश्रुतः ।
वृषद्रथः सुतस्तस्य तस्य सेनोऽभवत्सुतः ।२२
सेनस्य सुतपा जज्ञे सुतपस्तनयोबलिः ।
जातो मानुषयोन्यान्तु क्षीणे वंशे प्रजेच्छया ।२३
महा योगी तु स वलिर्बद्धो बन्धर्महात्मना ।
पुत्रानुत्पादयामास क्षेत्रजान्पञ्चपार्थिवान् ।२४
अङ्गं स जनयामास वङ्गं सुह्यं तथैव च ।
पुण्ड्रं कलिङ्गं च तथा वालेय क्षेत्रमुच्यते ।

वालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकराः प्रभो ।२५
बलेश्च ब्रह्मणा दत्तो वरः प्रीतेन धीमतः ।
महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणकम् ।२६
संग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मे चैवोत्तमा मतिः ।
त्रैकाल्यदर्शनं चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा ।२७
जयञ्चाप्रतिमं युद्धे धर्मे तत्वार्थदर्शनम् ।
चतुरो नियतान् वर्णान् सवै स्थापयिता प्रभुः ।२८
तेषाञ्च पञ्च दायादादङ्गाङ्गाः सुह्मकास्तथा ।
पुण्ड्राः कलिङ्गाश्च तथा अङ्गस्यतुनिबोधत ।२९

तितिक्षु पूर्व दिशा में एक महान् प्रसिद्ध राजा हुआ था। इसके जो पुत्र उत्पन्न हुआ था उसका नाम वृषद्रथ था और इसके पुत्र का नाम सेन था ।२२। सेन के यहाँ सुतपा नामधारी पुत्र ने जन्म लिया था तथा सुतपा का पुत्र बलि हुआ था। वंश के क्षीण होने पर प्रजा की इच्छा से यह मानुष योनि में प्रसूत हुआ था ।२३। यह महान् योगी बलि महात्मा के द्वारा बन्धों से बद्ध हुआ था। इसने क्षेत्रज पाँच पार्थिव पुत्रों को समुत्पादित किया था। उसने अङ्ग—वङ्ग—सुह्य—पुण्ड्र और कलिंग को जन्म दिया था। वातेयक्षेत्र कहा जाता है। हे प्रभो ! वातेय और ब्राह्मण उसके वंकर हुये थे ।२४-२५। बुद्धिमान बलि को परम प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने वरदान प्रदान किया था कि महायोगित्व प्राप्त होवे—एक कल्प पर्यन्त आयु हो जावे—संग्राम में अजेयत्व की प्राप्ति हो, धर्म में अत्युत्तम मति होवे, तीनों कालों के देखने का ज्ञान होवे—प्रसव में प्रधानता हो तथा युद्ध में अप्रतिम विजय हो और धर्म में तत्वार्थ का दर्शन प्राप्त होवे। ये सभी ब्रह्माजी के प्रदान किये हुए वरदान थे। वह चारों नियत वर्णों का स्थापन करने वाला प्रभु हुआ था ।२६-२७-२८। उनके पाँच दायाद थे—वंग—अंग सुह्मक—

पुण्ड और कलिंग। अब अंग के विषय में ज्ञान प्राप्त करो।२६।

बलिस्तानभिनन्द्याह्पञ्चपुत्रान्।
कृतार्थः सोऽपिधर्मात्मायोगमायावृतः स्वयम्।३०
अदृश्यः सर्वभूतानां कालपेक्षः स वै प्रभुः।
तत्राङ्गस्यतुदायादोराजासीद्दधिवाहनः।३१
दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथः स्मृतः।
आसीद्दिविरथापत्यं विद्वान् धर्मरथोनृपः।३२
स हि धर्मरथः श्रीतास्तेन विष्णुपदे गिरौ।
सोमः शुक्रेण वै राज्ञांसहपीतो महात्मना।३३
अथ धर्मरथस्याभूत् पुत्रश्चित्ररथः किल।
तस्य सत्यरथः पुत्रस्तस्माद्दशरथः किल।३४
लोमपाद इति ख्यातस्तस्य शान्ता सुताभवत्।
अथ दाशरथिर्वीरश्चतुरङ्गोमहायशाः।३५

महाराज बलि ने उन अकल्मष पाँचों पुत्रों का अभिनन्दन किया था और वह धर्मात्मा भी कृतार्थ हो गया था। फिर वह स्वयं योग माया वृत हो गया था।३०। वह सब प्राणियों से अदृश्य रहते हुए काल की अपेक्षा करने वाला हो गया था। उसमें अंग का जो दायाद था वह दधिवाहन राजा हुआ था।३१। दधिवाहन का जो पुत्र हुआ वह दिविरथ नाम से कहा गया था। फिर दिविरथ से जो सन्तति हुई थी वह परम विद्वान् धर्मरथ नृप हुआ था।३२। वह धर्मरथ परम श्रीमान् नृप था। उसने विष्णुपद गिरि में महात्मा शुक्र के साथ राजा ने सोम का पान किया था।३३। इसके अनन्तर उस धर्मरथ के यहाँ चित्ररथ नाम वाले आत्मज ने जन्म लिया था। इसका पुत्र सत्यरथ पैदा हुआ था और सत्यरथ से दशरथ ने जन्म ग्रहण किया था।३४। वह लोमपाद—इस शुभ नाम से विख्यात हुआ था। इसके शान्ता नाम-

धारिणी एक कन्या हुई थी। इसके अनन्तर दशरथ का पुत्र महान् यश वाला दाशरथि चतुरंग हुआ था।३५।

ऋष्यश्रृङ्गप्रसादेन जज्ञे स्वकुलवर्धनः।
चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इमि स्मृतः।३६
पृथुलाक्षसुतश्चापि चम्पनामा बभूव ह।
चम्पस्य तु पुरी चम्पा पूर्वं या मालिनोऽभवत्।३७
पूर्णभद्रप्रसादेन हर्यङ्गोऽस्य सुतोभवत्।
जज्ञे विभाण्डकाच्चास्यवारणः शत्रुवारणः।३८
अवतारयामास महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम्।
हर्यङ्गस्य तु दायादो जातो भद्ररथः किलः।३९
अथ भद्ररणस्यासीन् वृहत्कर्मा जनेश्वरः।
वृहद्भानुः सुतस्तस्यतस्माज्जज्ञे महात्मवान्।४०
वृहद्भानुस्तु राजेन्द्रो जनयास वै सुतम।
नाम्नाजयद्रथं नाम तस्मात्वृहद्रथो नृपः।४१
आसीद्वृहद्रथाच्चावविश्वजिज्जनमेजयः।
दायादस्तस्यचाङ्गोवैतस्मात्कर्णोऽभवन्नृपः।४२

यह ऋष्यश्रृंग के प्रसाद से ही कुल के वर्धन करने वाला समुत्पन्न हुआ था। चतुरंग के पुत्र का नाम पृथुबाक्ष कहा गया है।३६। पृथुलाक्ष के पुत्र चम्प नाम वाला समुत्पन्न हुआ था। चम्प की पुरी चम्पा थी जो पहिले माली की थी।३७। पूर्णभद्र के प्रसाद से इसके यहाँ हर्यंग नाम वाले पुत्र ने प्रसव प्राप्त किया था। विभाण्डक से इसके शत्रुओं का वारण करने वाला वारण ने जन्म लिया था। इसने मन्त्रों के द्वारा इस मही मन्डल में उत्तम वाहन अवतारित किया था। हर्यङ्ग का दायाद अर्थात आत्मज भद्ररथ ने जन्म ग्रहण किया था।३९। इसके उपरान्त उस भद्ररथ वृहत्कर्मा जनेश्वर समुत्पन्न हुआ था। उसके पुत्र का नाम वृहद्भानु था और फिर उससे महात्मा वान् ने जन्म प्राप्त

किया था ।४०। राजाओं में इन्द्र के समान महान् प्रतापी वृनद्भानु ने एक सूत को प्रसूत किया, जिसका नात जयद्रथ था फिर इससे बृहद्रथ नृप सम्‌त्पन्न हुआ था ।४१। इस वृहद्रथ से विश्वजित् जनमेजय ने जन्म प्राप्त किया था । इसका आत्मज अंग हुआ और उस अंग से कर्ण नाम वाले नृप ने जन्म ग्रहण किया था ।४२।

कर्णस्य वृषसेनस्तु:पृथुसेनस्तथात्मज: ।
एतेऽङ्गस्यात्मजा: सर्वेराजन: कीर्तिता मया ।
बिस्तरेणानुपूर्व्याच्च पूरोस्तु शृणुत द्विजा ।४३
कथं सूतात्मज: कर्ण: कथमङ्गस्य चात्मज: ।
एतदिच्छामहेश्रोतुमत्यन्तकुशलोह्यसि ।४४
वृहद्भानुसुतो जज्ञे राजा: नाम्ना वृहन्मना: ।
तस्य पत्नीद्वयं ह्यासीच्छैव्यस्य तनये ह्यु भे ।
यशोदेवी च सत्ता च तयोर्वंशञ्च मे शृणु ।४५
जयद्रथन्तु राजनं यशोदेवा ह्यजीजनत् ।
सा वृहन्मनस: सत्या विजयंनाम विश्रु तम् ।४८
विजस्य वृहत्पुत्रस्तस्य पुत्रो वृहद्रथ: ।
वृहद्रथस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मामहामन: ।४७
सत्यकर्पणोऽधिरथ: सूतश्चाऽधिरथ: स्मृत: ।
य: कर्ण प्रतिजग्राह तेन कर्णस्तु सूतज: ।
तच्चेद्र सर्वमाख्यातं कर्ण प्रति यथोदितम् ।४८

कर्ण नृप का पुत्र वृषसेन हुआ और फिर इससे पृथुसेन ने जन्म लिया था । इतने ये सब अंग के आत्मज हुये थे जो सभी राजा थे । मैंने इन सबके नाम को बतला दिया है । अब हे द्विजगण ! विस्तारपूर्वक तथा आनुपूर्वी के क्रम से जैसे भी एक के पीछे दूसरा हुआ था उसी पूर्वापर के क्रम से पुरु के विषय में आप लोग श्रवण करो ।४३। ऋषियों ने कहा—हे भगवन् ! सूत का आत्मज कर्ण था वह राजा अंग

का आत्मज कैसे हुआ था। हम अब यही सुनना चाहते हैं। आप तो सभी कुछ के ज्ञाता एवं परम कुशल हैं।४४। श्रीसूतजी ने कहा—बृहद्भानु का पुत्र बृहन्मना नाम वाला राजा उत्पन्न हुआ था। इस राजा की दो पत्नियाँ थीं जो कि शैब्य की परम शुभ पुत्रियाँ थीं। एक यशोदेवी थी और दूसरी सत्या थी। अब उन दोनों के वंश को मुझसे आप श्रवण कीजिये।४५। यशोदेवी ने जयद्रथ नाम वाले राजा को प्रसूत किया था, वह जो दूसरी सत्या नाम वाली पत्नी थी उसने बृहन्मना से विजय नाम वाले परम विश्रुत पुत्र को जन्म दिया था।४६। विजय का बृहत्पुत्र और फिर इसका पुत्र बृहद्रथ था। इस बृहद्रथ का पुत्र का नाम महामना सत्यकर्मा हुआ था।४७। सत्यकर्मा का पुत्र अधिरथ था और वह अधिरथ ही सूत कहा गया था जिसने कर्ण को प्रतिग्रहीत किया था। इसी कारण से कर्ण सूतजी कहा गया था। यह मैंने सभी कुछ कह दिया है जो कि कर्ण के प्रति कहा गया है।४८

२७—पूरुवंश वर्णन

पूरोः पुत्रो महातेजा राजा स जनमेजयः।
प्राचीततः सुतस्तस्यय: प्राचीमकरोद्दिशम्।१
प्राचीततस्य तनयोमनस्युश्च तथाभवत्।
राजा पीतायुधो नाम मनस्योरभवत् सुतः।२
दायादस्तस्यचाप्सीद्धुन्धुर्नाममहीपतिः।
धुन्धोर्बहुविधः पुत्रः सम्पातिस्तस्यचात्मजः।३
सम्पातेस्तु रहं वर्चा भद्राश्वस्तचात्मजः।
भद्राश्वस्यघृतायातुदशाप्सरसि सूनवः।४
औचेयुश्च हृषेयुश्च कक्षेयुश्च सनेयुकः।
घृतेयुश्च विनेयुश्च स्थलेयुश्चैव सत्तमः।५

धर्मेयु: सन्नतेयुश्च पुण्येयुश्चेति ते दश ।
औचयोर्ज्वलना नाम भार्या वैतक्षकात्मजा ।६
तस्यां स जनयामास अन्तिनारं महीपतिम् ।
अन्तिनारो मनस्विन्यां पुत्रान् जज्ञे परान् सुभान् ।७

पुरु का पुत्र महान् तेज वाला वह राजा जनमेजय हुआ था। उससे फिर प्राची नामधारी पुत्र हुआ था जिसने प्राची दिशा को किया था ।१। उसके पुत्र का नाम प्राचीन था और फिर इसका तनय मनस्यु हुआ था। मनस्यु का सुत पीताबुध राजा हुआ था ।२। उसका भी दायाद धुन्धु नाम वाला महीपति हुआ था। धुन्धु के यहाँ बहुविध नामक पुत्र ने जन्म लिया था फिर इसका आत्मज सम्पत्ति प्रसूत हुआ था ।३। सम्पति का दायाद रहूवर्चा था और इसका पुत्र भद्राश्व ने प्रसव प्राप्त किया। भद्राश्व के घृता नाम वाली अप्सरा में दश पुत्र समुत्पन्न हुये थे ।४। उन देशों के नाम औचेयु, हृषुयु, कक्षेयु, सनेयुक, घृतेयु, विनेयु, स्थलेयु, धर्मेयु, सन्नतेयु और पुण्यतेयु ये थे। औचेयु की ज्वलना नाम वाली भार्या था जो तक्षक की आत्मजा थी ।५-६। उस भार्या में औचेयु ने अन्तिनार नामक महीपति को जन्म ग्रहण कराया था। उस अन्तिनार ने मनस्विनी नाम वाली भार्या में परम शुभ पुत्रों को जन्म प्रदान किया है ।७।

अमूर्तरयसंवीरं त्रिवञ्चैवधार्मिकम् ।
गौरी कन्या तृतीया च मान्धातुर्जननी शुभा ।८
इलिनातुयमस्यासीत्कन्यायाजजनयत् सुतान् ।
ब्रह्मवादपराक्रन्तांश्छुम्भमात्विलिनाह्यभत् ।६
उपदानवी सुतात् लेभे चतुरस्त्विलिनात्मजात् ।
ऋष्यन्तमथ दुष्यन्तंप्रवीरमनवं तथा ।१०
चक्रवर्ती ततो यज्ञे दुष्यन्तात् समितिञ्जय: ।
शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्नाचभारत: ।।११

दौष्यन्ति प्रति राजानं वागूचे चाशरीरिणी ।
माताभस्त्रापितुः पुत्रोयेनजातं सएवसः ।१२
भर स्वपुत्रं दुष्यन्त ! मावमस्थाः शकुन्तलाम् ।
रेतोधा नयते पुत्रः परेत यमसादनात् ।
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ।१३
भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु पुरा किल ।
पुत्राणामातृकात् कोपात् सुमहान् संक्षयः कृतः ।१४
ततो मरुद्भिरानीय पुत्रः स तु बृहस्पतेः ।
संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिर्भरतस्य तु ।१५

उन पुत्रों के नाम अमूर्त्तरय संवीर और परम धार्मिक त्रिवन थे । तीसरी गौरी नाम वाली कन्या थी जो मान्धाता की शुभ जननी हुई थी ।८। इलिना ऋभ की कन्या थी जिसने सुतों को समुत्पन्न किया था । ये ब्रह्मवाद में पराक्रान्त हुये थे और इलिना शुम्भदा थी ।९। उपदानवी ने इलिना के आत्मज से चार पुत्रों का जन्म प्राप्त किया था उन चारों के नाम ऋष्यन्त–दुष्यन्त–प्रवीर और अनघ थे ।१०। इसके पश्चात् राजा दुष्यन्त से चक्रवर्ती समितिञ्जय ने जन्म ग्रहण किया था तथा शकुन्तला नाम वाली पत्नी में भरत नाम वाला महान् प्रतापी राजा उत्पन्न हुआ था जिसके नाम से भारत हुए हैं ।११। राजा दौष्यन्ति के प्रति बिना शरीर वाली वाणी ने कहा था कि माता भस्त्रा पिता का पुत्र है जिससे वह ही समुत्पन्न हुआ है । हे दुष्यन्त ! अपने पुत्र का भरण करो और इस रेतोधा शकुन्तला का अपमान मत करो । पुत्र परेत को यम सदन से प्राप्त किया करता है । आप ही इसके गर्भ के धाता हैं— यह बात शकुन्तला जो इस समय में कह रही है वह बिल्कुल सत्य है । ।१२-१३। पुरातन समय में निश्चय ही भरत के पुत्रों के विनष्ट हो जाने पर मातृक कोप से पुत्रों का महान् संक्षय किया गया था ।१४। इसके अनन्तर वह बृहस्पति का पुत्र मरुतों के द्वारा भरद्वाज ने भरत को संक्रामित किया था ।१५।

ततो जाते हि वितथे भरतश्च दिवं ययौ ।
भरद्वाजो दिवं यातो ह्यभिषिच्युसुतं ऋषिः ।१६
दायदो वितथस्यासीद्भुवमन्युर्महायशाः ।
महाभूतोपमाः पुत्राश्चत्वारो भुवमन्यवः ।१७
बृहत्क्षेत्रो महावीर्यः नरा गर्गश्च वीर्य्यंवान् ।
नरस्य संकृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रो महायशाः ।१८
गुरुधीरन्तिदेवश्च सत्कृत्यान्तावुभौ स्मृतौ ।
गर्गस्य चैव दायादः शिविर्विद्वानजायत ।१९
स्मृताः शैव्यास्ततो गर्गाः क्षत्रोपेता द्विजातयः ।
आहायतनयश्चैव धीमानासीदुरुक्षवः ।२०
तस्य भार्या विशाला तु सुषुवे पुत्रकत्रयम् ।
त्र्यूषर्णं पुष्करिं चैव कविं चैव महायशाः ।२१

इसके अनन्तर वितथ के समुत्पन्न होने पर भरत दिवलोक को चला गया था । भरद्वाज ऋषि भी सुत का अभिषेक करके दिवलोक को चले गये ।१६। वितथ नामधारी महीपति का आत्मज महान् यश वाला भुवमन्यु समुत्पन्न हुआ था । इस भुवमन्यु के महाभूतों के तुल्य चार पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था । इन चारों ने नाम बृहत्क्षेत्र—महा वार्य्य—नर और वीर्य्यंवान् गर्ग थे । इस नर का पुत्र संकृति हुआ था और संकृति का सुत महायशा समुत्पन्न हुआ था ।१७-१८। गुरुधी और अन्तिदेव ये उनके नाम थे । ये दोनों सत्कुत्यान्त कहे गये थे । गर्ग का जो दायाद उत्पन्न हुआ था उसका नाम शिविथा और वह बहुत बड़ा विद्वान् हुआ था । इसके उपरान्त गर्ग शैब्य और क्षत्रोपेत द्विजाति कहे गये हैं । आहार्य का पुत्र परम बुद्धिमान् दुरुक्षव उत्पन्न हुआ था ।१९-२०। उसकी भार्य्या विशाला थी जिसने तीन पुत्रों को प्रसूत किया था । ये महान् यश वाले इन तीनों के नाम त्र्यूषण—पुष्करि और कवि थे ।२१।

उरुक्षवा: स्मृता ह्येते सर्वे ब्राह्मणताङ्गता: ।
काव्यानान्तु वरा ह्येते त्रय: प्रोक्तामहर्षय: ।२२
गर्गा: संकृतय: काव्या: क्षत्रोपेताद्विजातय: ।
संभृताङ्गिरसो दक्षा: बृहत्क्षत्रस्यचक्षिति: ।२३
बृहत्क्षत्रस्य दायादो हस्तिनामा बभूव ह ।
तेनेदं निर्मितं पूर्वं पुरन्तु गजसाह्वयम् ।२४
हस्तिनश्चैव दायादास्त्रय: परमकीर्त्तय: ।
अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढस्तथैव च ।२५
अजमीढस्य पत्न्यस्त तिस्र: कुरुलोद्वहा: ।
नीलिनीधूमनीचैव केशिनी चैव विश्रुता: ।२६
सतासु जतयामास पुत्रान् व देववर्चस: ।
तपसोऽन्तेमहातेजा जाता वृद्धस्यधार्मिका: ।२७
भारद्वाजप्रसादेन विस्तरं तेषु मे श्रृणु ।
अजमीढस्य कोशन्यां कण्व: समभवत्किल ।२८

ये सब ब्राह्मणत्व को प्राप्त उरुक्षव-इस नाम से विख्यात हुए थे । काव्यों के श्रेष्ठ ये तीनों महर्षि कहे गये थे ।२२। गर्ग—सकृत—काव्य-क्षत्री पति द्विजाति—पभृताङ्गिरस—दक्ष बृहत्क्षत्र काक्षिति ये सब हुए थे । इनमें बृहत्क्षत्र का दायाद हस्ति नाम वाला उत्पन्न हुआ । उसी ने इस गजसा ह्नयपुर को पूर्व में निर्मित किया था ।२२-२४। इस हस्ति के तीन पुत्रों ने जन्म लिया और ये परमोत्तम कीर्त्ति-शाली थे । इनके नाम अजमीढ़, द्विमीढ़ और पुरुमीढ़ थे ।२५। अज-मीढ की कुरु कुल के नद्वहन करने वाली तीन पत्नियाँ थीं । इसके शुभ नाम मलिनी—धूमिनी और केशिनी विश्रुत थे ।२६। उस राजा ने उन तीनों पत्नियों में देवोवर्चस के तुल्य वर्चस वाले पुत्रों को प्रसूत किया था । ये तपश्चर्या की अन्तिम सीमा वाले—महान् तेजस्वी और परम धार्मिक हुए थे ।२७। अब महर्षि भरद्वाज के प्रसाद थे उनके विषय

में विस्तार का श्रवण आप लोग मुझसे भली भाँति करिये। अज उस अजमीढ़ का पुत्र केशिनी में जो उत्पन्न हुआ था उसका नाम कण्व था।२८।

मेधातिथिः सुतस्तस्य तस्मात्काण्वायना द्विजाः।
अजमीढस्य भूमिन्यांजज्ञे बृहदनुर्नृपः।२९
बृहदनोर्बृहन्तोऽथ बृहन्तस्य बृहन्मनाः।
बृहन्मनः सुतश्चापि बृहद्धनुरितिः श्रुतः।३०
बृहद्धनोर्बृहदिषुः पुत्रस्तस्य जयद्रथः।
अश्वजित्तनयस्तस्य सेनजित्तस्य चात्मजः।३१
अथ सेनजितः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः।
रुचिराश्वकाव्यश्च राजा दृढरथस्तथा।३२
वत्सश्चावतको राजा परिवत्सकाः।
रुचिराश्वस्य दायादः पृथुसेनो महायशाः।३३
पृथुसेनस्य पौरस्तु पौरान्नीपोऽथ जज्ञिवान्।
नीपस्यैकशतन्त्वासीत् पुत्राणाममितौजसाम्।३४
नीपा इति समाख्याताः राजानः सर्वएवते।
तेषांवंशकरः श्रीमान् नीपानां कीर्त्तिवर्द्धनः।३५

उस कण्व के पुत्र का नाम मेधातिथि था इसलिये ये काण्वायन द्विज कहे गये थे। उसी अजमीढ़ का भूमिनी नाम वाली पत्नी में बृहदनु नृप ने जन्म प्राप्त किया था।२९। बृहदनु का पुत्र बृहन्त और इसके जो पुत्र हुआ वह बृहन्मना नामधारी था। इसके सुत का नाम बृहद्धनु था जो कि विश्रुत था।३०। बृहद्धनु का दायाद बृहदिषु था और इसके आत्मज का नाम जयद्रथ हुआ। जयद्रथ का सुत अश्वजित और इसका पुत्र सेनजित समुत्पन्न हुआ था।३१। इस सेनजित के चार पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था जो लोक में अधिक विश्रुत थे। जिनके नाम ये थे—रुचिराश्व—काव्य—राजा दृढ़रथ—वत्स और आवर्त्तक राजा था जिसके

ये परिवत्सक हैं। रुचिराश्व का दायाद महान यशस्वी पृथुसेन हुआ। पृथुसेन का पुत्र पौर और इसका आत्मज नीप ने जन्म लिया था। इस नीप के एक सौ अमित ओज वाले पुत्रों की समुत्पत्ति हुई थी ।३२-३४। वे सभी राजा लोग 'नीपा'—इस नाम से समाख्यात थे। उन नीपों का वंश करने वाला श्रीमान् कीर्त्तिवर्धन था ।३५।

काव्याच्च समरो नाम सदेष्टसमरोऽभवत् ।
समरस्य पारसम्पारा सदश्व इतिते त्रय: ।३६
पुत्रा: सर्वगुणोपेता जाता वै विश्रुता भुवि ।
पारेपुत्र: पृथुर्जात: पृथोस्तु सुकृतोऽभवत् ।३७
जज्ञे सर्वगुणोपेता विभ्राजस्तस्यचात्मज: ।
विभ्राजस्यतुदाथादस्त्वणुह्नोनामवीर्य्यवान् ।३८
बभूव शुक्रजामाता कृत्वीभर्ता महायशा: ।
अणुह्नस्य तु दायादो ब्रह्मदत्तो महीपति: ।३९
युगदत्त: सुतस्तस्य विष्वक्सेनो महायशा: ।
विभ्राज: पुनराजातो सुकृतेनेह कर्मणा ।४०
विष्वक्सेनस्य पुत्रस्तु उदक्सेनो बभूव ह ।
भल्लाटस्तस्य पुत्रस्तु तस्यासीज्जनमेजय: ।
उग्रायुधेवं तस्यार्थे नीपा: प्रणाशिता: ।४१
उग्रायुध: कस्य सुत: कस्य वंशे स कथ्यते ।
किमर्थंतेनते नीपा: सर्वेचैव प्रणाशिता ।४२

काव्य से समर नाम वाला सदेष्ट समर हुआ। उस समर के तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे—पार–सम्पार और सदश्व ये उनके नाम थे ।३६। ये सभी सुत सकल गुण गण से समन्वित थे और भूमण्डल में परम प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले हुए थे। पार का पुत्र पृथु हुआ और पृथु से सुकृत पुत्र की उत्पत्ति हुई थी ।३७। इसका दायाद सब गुणों से

युक्त विभ्राज ने जन्म लिया था। विभ्राज का पुत्र महान् बलवीर्य वाला अशुह नाम वाला हुआ था।३८। शुक जामाता और महायशा कृत्वी भर्त्ता हुआ। इस अशुह का आत्मज महीपति ब्रह्मदत्त समुत्पन्न हुआ।३९। उसका दायाद युगदत्त हुआ था और इसका पुत्र महायश वाला विष्वक्सेनो हुआ था। यहाँ पर सुकृत कर्म्म से विभ्राज पुनः आजात हुआ था।४०। विष्वक्सेन के सुत का नाम उदकन्न था और इसका पुत्र भल्लाट तथा भल्लाट का सुत जनमेजय था। उग्रायुध से उसके लिये समस्त नीपों को प्रणाशित कर दिया था।४१। ऋषियों ने कहा—उग्रायुध किसका पुत्र था और किसके वंश में कहा जाता है उसने किस लिये सब नीपों का विनाश कर दिया था ? ।४२।

उग्रायुधः सूर्य्यवंश्यस्तपस्तेपे वराश्रमे ।
स्थाणुभूतोऽष्टसाहस्रन्तं भेजे जनमेजयः ।४३

तस्य राज्यं प्रतिश्रुत्य नीपानाजघ्निवान्प्रभुः ।
उवाचसान्त्वंविविधं जघ्नुस्तेबहुभावा ।४४

हन्यमाना गतानूचे यस्माद्धेतोर्न मे वचः ।
शरणागतरक्षार्थं तस्मादेवं शपामि वः ।४५

यदि मेऽस्ति तपस्तप्तं सर्वान्नियतु वो यमः ।
ततस्तात् कृष्यमाणां स्तु यमेन पुरतः स तु ।४६

कृपया परयाविष्टो जनमेजयमूचिवान् ।
गतानेतानिमान् वीरांस्त्वं मे रक्षितुमर्हसि ।४७

अरे पापा ! दुराचारा ! भवितारोऽस्यकिङ्करा: ।
तथेत्युक्तस्ततो राजायमेनयुयुधेचिरम् ।४८

व्याधिभिर्नारकैर्घोरैर्यमेन सह तान् बलात् ।
विजित्य मुनयेप्रादात्तदद्भुतमिवाऽभवत् ।४९

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—उग्र युद्ध सूर्य वंश में समुत्पन्न हुआ

था इसने वराश्रम में अत्यन्त घोर तपस्या की थी। स्थाणु भूत होकर आठ सहस्र वर्ष तक तप किया था उसको जनमेजय ने सेवित किया था ।४३। उसके राज्य को प्रतिश्रुत करके उस प्रभु ने नीपों का हनन किया था। विविध प्रकार के सान्त्वना के वचन बोला था। उन्होंने दोनों का हनन कर दिया था ।४४। हन्यमान गये हुओं से बोला था कि जिस कारण से मेरा वचन नहीं है। इसी से शरणागत रक्षा के लिये मैं आपको शाप दे देता हूँ ।४५। मेरा तप तप्त है तो यमराज आप सबको ही ले जावे। इसके पश्चात् यम के द्वारा कृष्यमाण उनको आगे होकर उसने अत्यन्त दया से समाविष्ट होकर जनमेजय से कहा था कि गये हुए इन मेरे वीरों की आप रक्षा करने के योग्य हैं ।४६-४७। उनमें जय ने कहा—अरे पापियो ! हे दुष्ट काचार वालो ! इलके किङ्कर होओगे। इसके पश्चात् तथा इस प्रकार से कहे गये उस राजा ने चिर काल तक यम के साथ युद्ध किया था। नारकीय घोर व्याधियों से यम के साथ बल पूर्वक उनको विजित करके मुनि को दे दिया था—यह सब परम अद्भुत सा ही हुआ था ।४८-४९।

यमस्तुष्टस्ततस्तस्मै मुक्तिज्ञानं ददौ परम् ।
सर्वे यथोचितंकृत्वा जग्मुस्तेकृष्णमव्ययम् ।५०
येषान्तु चरित गृह्य हन्यन्ते नाममृत्युभिः ।
इह लोके परे चैव सुखमक्षय्यमश्नुते ।५१
अजमीढस्य धुमिन्यां विद्वाञ्जज्ञे यवीनरः ।
धृतिमांस्यस्य पुत्रस्तु तस्य सत्यधृतिस्मृतः ।
अथ सत्यधृतेः पुत्रो दृढ़नेमिः प्रतापवान् ।५२
दृढ़नेमिसुतश्चापि सुधर्मा नाम पार्थिवः ।
आसीत् सुतर्मतनयः सार्वभौमः प्रतापवान् ।५३
सार्वभौमेति विख्यातः पृथिव्यामेकराड्विभौ ।
तस्यान्ववाय महति महापौरवनन्दनः ।५४

महापोरवपुत्रस्तु राजा रुक्मरथ स्मृत: ।
अथरुक्मरथ: स्यासीत् सुपार्श्वोनामपार्थिव: ।५५
सुपार्श्वतनयश्चापि सुमतिर्नाम धार्मिक: ।
सुमतेरपि धर्मात्मा राजा सन्नतिमानपि ।५६

इसके अनन्तर यमराज उससे परम संतुष्ट हो गया था और उसने परम मुक्ति का ज्ञान प्रदान किया था । सबने फिर यथोचित किया था और फिर वे अव्यय श्रीकृष्ण के समीप चले गये थे ।५०। जिनके चरित्र को ग्रहण करके अपमृत्युओं से कभी भी हन्यमान नहीं हुआ करते हैं । इस लोक में और परलोक में उभयत्र अक्षय्य सुख का उपभोग किया करता है ।५१। अजमीढ़ की एक पत्नी धूमिनी नाम वाली थी उस में परम विद्वान् यवीनर ने जन्म प्राप्त किया था । उसका सुत धृतिमान् और इसका सुत फिर सत्यधृति समुत्पन्न हुआ था । इसके पश्चात् सत्यधृति का दायाद महान् प्रताप वाला दृढ़नेमि हुआ था ।५२। इस दृढ़नेमि से सुधर्मा नामधारी राजा ने जन्म ग्रहण किया था । इस सुधर्मा का सुत प्रताप वाला सार्वभौम हुआ था ।५३। यह सार्वभौम इसी नाम से विख्यात था यह इस पृथिवी में एक ही राजा शोभित हुआ था । उसके वंश में जो एक महान् था महापौरव नाम वाला सुत समुत्पन्न हुआ था ।५४। इस महापौर का जो सुत हुआ था वह राजा रुक्मरथ नाम से कहा गया था । इसके पश्चात् इसका जो दायाद हुआ था वह सुपार्श्व नाम वाला महीपति था ।५५। सुपार्श्व का सुत परम धार्मिक सुमति प्रसूत हुआ था । इस सुमति का आत्मज भी अत्यन्त धर्मात्मा राजा सन्नतिमान् था ।५६।

तस्यासीत् सन्नतिमत: कृतो नाम सुतो महान् ।
हिरण्यनाभिन: शिष्य: कौशल्यस्य: कौशलस्यमहात्मन ।५७
चतुर्विंशतिधा येन प्रोक्ता व सामसंहिता: ।
स्मृतास्तेप्रा यसामान: कार्तानामेहसामगा: ।५८

कार्तिरुग्रायुधः सो वै महापौरववर्द्धनः ।
बभूव येन विक्रम्य पृथुकस्य पिता हतः ।५९
नीलो नाम महाराजः पञ्चालाधिपतिर्वशी ।
उग्रायुधस्य दायादः क्षेमा नाम महायशाः ।६०
क्षेमात् सुनीथः संजज्ञे सुनीथस्य नृपञ्जयः ।
नृपञ्जयाच्च विरथ इत्येते पौरवाः स्मृताः ।६१

इस सन्नतिमान् का सुत कृत नाम वाला एक महान् पुरुष हुआ था। यह महान् आत्मा वाले हिरण्य नाम कौशल्य का शिष्य था ।५७। जिसने सामवेद की संहिता के चौबीस भेद कहे हैं। वे प्राच्य सामान स्मृत किये गये हैं यहाँ पर कार्तों के सामग थे ।५८। वह उग्रायुध कीर्त्ति महापौरव वर्धन हुआ था जिसने अपना विक्रम करके पृथुक के पिता को हत कर दिया था ।५९। नील नाम वाला महाराज वशी और पञ्चाल का अधिपति था। उग्रायुध के दायाद का नाम महायशस्वी क्षेम था। क्षेम से सुनीथ हुआ और सुनीथ का पुत्र नृपञ्जय से विरथ हुआ था—ये सब पौरव कहे गये थे ।६०-६१।

२८—कुरुवंश वर्णन

अजमीढस्य नीलिन्यां नीलः समभवन्नृपः ।
नीलस्य तपसोग्रेण सुशान्तिरुपपद्यत ।१
पुरुजानुः सुशान्तेस्तु पृथुस्तु पुरुजानुतः ।
भद्राश्वः पृथुदायादो भद्राश्वतनयाञ्छृणु ।२
सुद्गलश्च जयश्चैव राजा बृहदिषुस्तथा ।
यवीनरश्च विक्रान्तः कपिलश्चैव पञ्चमः ।३

पञ्चानाञ्चैव पञ्चलानेतान् जनपदान् विदुः ।
पञ्चाल रक्षिणो ह्येतेदेशानामितिनः श्रुतम् ।४
मुद्गलस्यापिमौद्गल्याः क्षत्रोपेता द्विजातयः ।
एते ह्यङ्गिरसः पक्षं संश्रिताः काण्वमुद्गलाः ।५
मुद्गलस्यसुताजज्ञे ब्रह्मिष्ठ सुमहायशाः ।
इन्द्रसेनः सुतस्तस्य विन्ध्याश्वस्तस्यचात्मजः ।६
विन्ध्याश्वान्मिथुनं जज्ञे मेनकायामितिश्रुतिः ।
दिवोदासश्च राजर्षिरहल्याचयशस्विनी ।७

महा महर्षि श्रीसूतजी ने कहा—अजमीढ की एक पत्नी का नाम नलिनी था उसमें नील नृप ने जन्म ग्रहण किया था । नील का अति उग्रतप था उसके प्रभाव से उसके सुशान्ति नाम वाले पुत्र की समुत्पत्ति हुई थी ।१। सुशान्ति का सुत पुरुजानु और इसका आत्मज पृथु उत्पन्न हुआ था । पृथु का पुत्र भद्राश्व हुआ था । अब भद्राश्व के जो तनय समुत्पन्न हुए थे उनके विषय में श्रवण करिए ।२। मुद्गल-जय राजा बृहदिषु—यवीनर और पाँचवा महान् विक्रमशाली कपिल था ।३। इन पाँचों के ही ये पञ्चाल जनपद हुए थे । हमने ऐसा श्रवण किया है कि पंचाल देशों के ये रक्षा करने वाले महीपति हुए हैं ।४। मुद्गल के भी जो हुए थे वे मौद्गल्य क्षत्रोपेत द्विजाति थे । ये काण्व मुद्गल अंगिरस पक्ष के संश्रय करने वाले हुए थे ।५। मुद्गल के जो सुत समुत्पन्न हुआ था वह सुन्दर और महान् यश वाला ब्रह्मिष्ठ था । इसका पुत्र इन्द्रसेन नामधारी हुआ था तथा फिर इस इन्द्रसेन का सुत विन्ध्याश्व हुआ । इस विन्ध्याश्व से मेनका में एक जोड़ा समुत्पन्न हुआ था—ऐसा सुना जाता है । दिवोदास एक राजर्षि हुआ था और परम यशस्विनी अहल्या ने जन्म ग्रहण किया था ।६-७।

शरद्वतस्तु दायादमहल्या सम्प्रसूयत ।
शतानन्दमृषिश्रेष्ठं तस्यापि सुमहातपाः ।८

सुत: सत्यधृतिर्नाम धनुर्वेदस्य पारगः ।
आसीत् सत्यधृतेः शुक्रममोघं धार्मिकस्य तु ।९
स्कन्नं रेत: सत्यधृतेर्दृष्ट्वा चाप्सरसजले ।
मिथुनं तत्र सम्भूतं तस्मिन् सरसिसम्भृतम् ।१०
ततः सरसि तस्मिस्तु क्रममाणं महीपतिः ।
दृष्ट्वा जग्रहा कृपया शन्तनुर्मृगयां गतः ।११
एते शरद्वतः पुत्रा आख्याता गौतमावराः ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दिवोदासस्यवैप्रजा: ।१२
दिवोदासस्य दायादो धर्मिष्ठो मित्रयुर्नृपः ।
मैत्रायणावरः सोऽथमैत्रेयस्तुततः स्मृतः ।१३
एतेवंश्यायतेः पक्षाः क्षत्रापेतास्तु भार्गवाः ।
राजा चैद्यवरो नाममैत्रेयस्य सुतः स्मृतः ।१४

उस अहल्या ने शरद्वान् से एक दायाद का प्रसव किया था जो शतानन्द परज श्रेष्ठ ऋषिथे। उसके भी सुमहान् तपस्वी सत्यधृतिनाम वाला सुत समुत्पन्न हुआ था जो धनुर्विदा पारगामी प्रौढ़ विद्वान्था। परम धार्मिक उस सत्यधृति का शुक्रवीर्या अमोघ था।८-९। उस सत्य-धृति का वीर्यजल में स्कन्न हो गया था। उसको देखकर वहाँ पर सरोवर में अप्सराओं का एक मिथुन सम्भूत हो गया था।१०। इसके पश्चात् उस सर में क्रममाण होते हुए उसको देखकर मृगया करने के लिए गए हुए महीपति शन्तनु ने कृपा करके उसे ग्रहण कर लिया था।११। ये सब गौतम वर शरद्वान् के पुत्र विख्यात हुए थे। अब इसके आगे मैं दिवोदास की जो सन्तन्ति समुत्पन्न हुई थी उसे बतलाता हूँ।।१२। दिवोदास का पुत्र अतीव धर्मिष्ठ नृप मित्रयु उत्पन्न हुआ था। वह मैत्रायण वर था और इसके अनन्तस मैत्रेय कहा गया था।१३। ये वंश्यायति के पक्ष हैं जो क्षत्रोपेत भार्गव थे। मैत्रेय के पुत्र का नाम चैद्यवर हुआ था।१४।

अथचैद्यवरात् विद्वान् सुदासस्तस्यचात्मजः ।
अजमोढः पुनर्जातः क्षीणेवंशेतुसोमकः ।१५
सोमकस्य सुतोजन्तुर्हते तस्मिन् शतं बुभौ ।
पुत्राणामजमीढ़स्य सोमकस्य महात्मनः ।१६
महिषीत्वजमीढ़स्य धूमिनो पुत्रवर्धिनी ।
पुत्राभावे तपस्तेपे शत वर्षाणि दुश्चरम् ।१७
हुत्वाग्नि विधिवत् सम्यक् पवित्रीकृतभोजना ।
अग्निहोत्रक्रमेणैव सा सुष्वाप महाव्रताः ।१८
तस्यां वै धूमवर्णायामजमीढः समोयिवान् ।
ऋक्षं सा जनयामासधूमवर्णं शताग्रजम् ।१९
ऋक्षात् संवरणोजज्ञे कुरुः संवरणात्ततः ।
यः प्रयागमयिक्रम्य कुरुक्षेत्रमकल्पयत् ।२०
कृष्यतस्तु महाराजो वर्षाणि सुबहून्यथ ।
कृष्यमाणस्ततः शक्रोभयात्तस्मै वरन्ददौ ।२१

इसके उपरान्त उस चैद्यवर से विद्वान् सुदास उसका पुत्र उत्पन्न हुआ था। अजमीढ़ पुनः क्षीण वंश में सोमक नाम से समुत्पन्न हुआ था ।१५। सोमक का पुत्र जन्तु हुआ था जो उसके हत हो जाने पर सौ वर्ष तक दीप्तिमान् रहा था। महात्मा अजमीढ़ सोमक के पुत्रों में यह ऐसा हुआ था ।१६। अजमीढ़ की एक पत्नी धूमिनी थी जो पुत्र वर्धिनी थी। उसने पुत्रों के अभाव में सौ वर्ष पर्यन्त परम दुश्चर तपश्चर्या की थी ।१७। विधि-विधान के साथ भली-भाँति अग्नि में हवन करके पवित्रीकृत भोजन वाली वह रहा करती थी। इस तरह अग्निहोत्र के क्रम से ही वह महान् व्रत वाली शयन करती थी ।१८। वह धूम्रवर्णा में अजमीढ़ प्राप्त हो गया था और उसने धूम्र वर्ण शताग्रज ऋक्ष को प्रसूत किया था ।१९। फिर उस ऋक्ष से सवरण ने जन्म प्राप्त किया था और सवरणसे कुरु की समुत्पत्ति हुई थी। जिसने प्रयाग अदिक्रमण

करके कुरुक्षेत्र की कल्पना की थी ।२०। बहुत वर्षों तक महाराज कृष्ण हुए थे । इस प्रकार से जब कृष्यमाण हुए तो इन्द्र ने भय से उसको वरदान दिए थे ।२१।

पुण्यञ्चरमणं यञ्चकुरुक्षेत्रन्तु तत्स्तृतम् ।
तस्यान्ववाय: सुमहान् यस्यानाम्नातुकौरवा: ।२२
कुरोस्तु दयिता: पुत्रा: सुधन्वा जह्नु रेवच ।
परीक्षिच्चमहातेजा: प्रजनश्चारिमदन: ।२३
सुधन्वनस्तुदायाद. पुत्रो मतिमतांवर: ।
च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु राजा धर्माथतत्त्ववित् ।२४
च्यवनस्य कृमि: पुत्र ऋक्षाज्जज्ञे महातपा: ।
कृमे: पुत्रो महावीर्य: ख्यात इन्द्रसमो विभु: ।२५
चैद्योपरिचरो वीरो वसुर्नामान्तरिक्षग: ।
चैद्यो परिचराज्जज्ञे गिरिका सप्त वै सुतान् ।२६
महारथी मगधराट् विश्रुतो यो वृहद्रथ: ।
प्रत्यश्रवा: कुशश्चैव चतुर्थो हरिवाहन: ।२७
पञ्चमश्च यजुश्चैव मत्स्य: कालो च सप्तमी ।
वृहद्रथस्य दायाद: कुशाग्रो नामविश्रुत: ।२८

परम पुण्यमय और अत्यन्त रमणीय वह कुरुक्षेत्र विस्तृत हुआ था । उसका वंश भी बहुत विशाल था जिसके नाम से ये सब कौरव हुए हैं ।२२। महाराज कुरु के प्रिय पुत्र सुधन्वा और जन्हु थे । राजा महान् तेजयुक्त परीक्षित और शत्रुओंका मर्दन करने वाला प्रजन था । ।२३। उस सुधन्वा का पुत्र मतिमानों में परम श्रेष्ठ च्यवन हुआ जो धर्मार्थ तत्व का वेत्ता राजा हुआ था ।२४। च्यवन के पुत्र का नाम कृमि था जो महान् तपस्वी ऋक्ष से समुत्पन्न हुआ था । इस कृमि का पुत्र इन्द्र के समान विभु और महावीर्य ख्यात हुआ था ।२५। चैद्य परिचर वीर वसु नाम वाला अन्तरिक्ष गामी था । चैद्य ने परिचर से

गिरिका सात सुतों को जन्म दिया था ।२६। मगधराट् महारथ का जो बृहद्रथ विश्रुत हुआ । प्रत्यश्रना-कुश और चौथा हरिवाहन था ।२७। पाँचवाँ यजु तथा मत्स्य और काली सप्तमी सन्तति थी । बृहद्रथ का पुत्र कुशाग्र नाम वाला विश्रुत हुआ था ।२७।

कुशाग्रस्यात्मजश्चैव वृषभो नामवीर्यवान् ।
वृषभस्यतु दायाद: पुण्यवान्नाम पार्थिव: ।२९
पुण्य पुण्यवतश्चैव राजासत्यधृतिस्तत: ।
दायादस्तस्य धनुषस्यस्मात् सर्वश्चजज्ञिवान् ।३०
सर्वस्य सम्भव: पुत्रस्तस्माद्राजा बृहद्रथ: ।
द्वे तस्य शकले जातेजरया सन्धितश्च स: ।३१
जरया सन्धितो यस्माज्जरासन्धस्तत: ।
जेता सर्वस्य क्षत्रस्य जरासन्धो महाबल: ।३२
जरासन्धस्य पुत्रस्तु सहदेव: प्रतापवान् ।
सहदेवात्मज: श्रीमान् सोमवित्स महातपा: ।३३
श्रुतश्रवास्तु सोमादेमागधा: परिकीर्तित: ।
जह्नुस्त्वजनयत् पुत्रं सुरथं नामभूमिपम् ।३४
सुरथस्यतु दायादो वीरो राजा विदूरथ: ।
विदूरथसुतश्चापि सार्वभौम इति स्मृत: ।३५

इस कुशाग्र का पुत्र वृषभ नामधारी था जो अत्यन्त वीर्य वाला हुआ था । इस वृषभ का दायाद पुण्यवान् नाम वाला पार्थिव समुत्पन्न हुआ था । पुण्यवान् का पुत्र पुण्य हुआ और राजा सत्यधृति हुआ था । इसका जो दायाद हुआथा वह धनुष था और इससे सर्व ने जन्म प्राप्त किया ।२९-३०। सर्व के सम्भव सुत हुआ और फिर इससे राजा बृहद्रथ हुआ था । उसके दो खण्ड हो गये थे जरा से और सन्धि से हुए थे ।३१। क्योंकि जरा और सन्धि से ऐसा हुआ था इसलिए वह जरा सन्ध नाम वाला हो गया था । यह समस्त क्षत्रियों को जीत लेने वाला

जरासन्ध महान् बलवान् हुआ था ।३२। इस जरासन्ध का पुत्र प्रताप शाली सहदेव उत्पन्न हुआ । सहदेव का आत्मज श्रीमान् सोमवित् था और वह महा तपस्वी था ।३३। फिर सोमादि से श्रुतश्रवा हुआ था । ये सब मागध नाम से ही परिकीत्तित हुए हैं । जह्नु ने सुरथ नामक भूमिपति पुत्र को उत्पन्न किया था ।३४। इस सुरथ का दायाद परम वीर राजा विदूरथ हुआ और विदूरथ का पुत्र सार्वभौम नामसे प्रसिद्ध हुआ ।३५।

सार्वभौमात् जयत् सेनो रुचिरस्तस्य चात्मज: ।
रुचिरात्तु ततो भौमस्त्वरितायुस्ततोऽभवत् ।३६
अक्रोधनस्त्वायुसुतस्तस्माद्देवातिथि: स्मृत: ।
देवातिथेस्तु दायदो दक्ष एव बभूव ह ।३७
भीमसेनस्ततोदक्षाद्दिलीपस्तस्यचात्मज: ।
दिलीपस्यप्रतोरस्तुतस्यपुत्रास्त्रय: स्मृता: ।३८
देवापि: शन्तनुश्चैवते बाह्लीकश्चैवते त्रय: ।
बाह्लीकस्य तु दायादा: सप्त: बाह्लीश्वरान्नृप !
देवापिस्तु ह्यपध्यात: प्रजाभिरभवन् मुनि: ।३९
प्रजाभिस्तु किमर्थं वै अपध्यातो जनेश्वर: ।
को दोषो राजपुत्रस्य प्रजाभि: समुदाहृत: ।४०
किलासीद्राजपुत्रस्तुकुष्ठितं नाभ्यपूजयन् ।
भविष्यंकीर्तयिष्यामिशन्तनोस्तुनिबोधत ।४१
शन्तनुस्त्वभवद्राजाविद्वान् सो वै महाभिषक् ।
इदं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं प्रति महाभिषक् ।४२

सार्वभौम से जयत्सेन ने जन्म ग्रहण किया तथा फिर इसका पुत्र रुचिर उत्पन्न हुआ था । रुचिर का पुत्र भौम और भौम का सुत त्वरितायु हुआ ।३६। त्वरितायु का अक्रोधन और फिर इससे देवतिथि ने समुत्पत्ति प्राप्त की थी । देवातिथि का दायाद दक्ष नाम वाला हुआ

।३७। उस दक्ष से भीमसेनने जन्म प्राप्त किया था और इसका आत्मज दिलीप हुआ था। दिलीप का पुत्र प्रतीप उत्पन्न हुआ और इसके फिर तीन पुत्र बताये गए हैं।३८। वे तीन देवापि—शान्तनु और वाह्लीक ये थे। वाह्लीक के दायाद हे नृप! सात वाहीश्वर हुए थे।३९। देवापि अपध्यात होकर प्रजाओं से फिर मुनि हो गया। मुनिगण ने कहा—वह जनेश्वर प्रजाओं से किस प्रकार अपध्यात हो गया था। प्रजाओं ने उस राजपुत्र का कौन सा दोष बतलाया था? ।४०। सूतजी ने कहा—वह राजपुत्र कुष्ठित था अतएव प्रजाओं ने उसका पूजन नहीं किया। मैं भविष्य का कीर्त्तन करूँगा। अब शन्तनुके विषय में समझ लो।४१। शन्तनु जो राजा हुआ था परमोच्च कोटि का विद्वान् था और महान् भिषक् भी था। इस विषय में यह श्लोक उस महाभिषक के सम्बन्ध में उदाहृत किया जाता है।४२।

यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं रोगणिमेवच।
पुनर्युवा च भवति तस्मात्तं शन्तनुं विदुः।४३
तत्तस्य शन्तनुत्वं हि प्रजाभिरिह कीर्त्यते।
ततो वृणुत भार्यार्थे शन्तनुर्जाह्नवीं नृपः।४४
तस्यां देवव्रतं नाम कुमारं जनयत् विभुः।
काली विचित्रवीर्य्यन्तु दासेयोऽजनयद् सुतम्।४५
शन्तनोर्दयितंपुत्रं शान्तात्मानमकल्मषम्।
कृष्णद्वैपायनो नाम क्षेत्रे वैचित्रवीर्य्यके।४६
धृतराष्ट्रञ्च पाण्डुश्च विदुरं चाप्यजीजनत्।
धृतराष्ट्रस्तुगान्धार्य्यां पुत्रानजनजयत् शतम्।४७
तेषां दुर्योधनः श्रेष्ठः सर्वक्षत्रस्य वै प्रभु-।
माद्री कुन्ती तथा चैव पाण्डोर्भार्ये बभूवतुः।४८
देवदत्ताः सुताः पञ्च पाण्डोरर्थेऽभिजज्ञिरे।
धर्माद्युधिष्ठिरो जज्ञे मारुताश्च वृकोदरः।४९

उस राजा शन्तनु में ऐसी एक विशेषता थी कि वह जिस-जिसके शरीर को अपने करों से केवल स्पर्श ही करता था वह चाहे कैसा ही जीर्ण रोगी क्यों न हो सब रोगों से मुक्त होकर पुनः युवा हो जाया करता था। इसी कारण से इसका नाम शन्तनु यह कहा गया।४३। उस राजा के शन्तनु होने को उसकी प्रजाओं के द्वारा कीर्तित किया जाता था। इसके उपरान्त उस राजा शन्तनु ने अपनी भार्या बनाने के लिए जाह्नवी का वरण किया था।४४। उस गंगा में उस विभु से देवव्रत नाम वाले कुमार को उत्पन्न किया था। काली ने विचित्र वीर्य को जन्म दिया था। जिसने दास से सुत को जन्म दिया।४५। शन्तनु का पुत्र अत्यन्त प्रिय-शान्तात्मा और कल्मष रहित था। कृष्ण द्वैपायन ने विचित्रवीर्य के क्षेत्र में धृतराष्ट्र-पाण्डु और विदुर को उत्पन्न किया था। धृतराष्ट्र ने गान्धारी नाम वाली भार्या में सौ पुत्रों को जन्म दिया था।४६-४७। उन एक सौ पुत्रों में दुर्योधन श्रेष्ठ था जो समस्त क्षत्रियों का प्रभु हुआ था। माद्री और कुन्ती ये दो भार्यायें पाण्डु की हुई थीं।४८। देवों के द्वारा दिए हुए पाँच पुत्र पाण्डु के अर्थ में समुत्पन्न हुए थे। धर्म से युधिष्ठिर ने जन्म ग्रहण किया और मारुत के वृकोदर की समुत्पत्ति हुई थी।४९।

इन्द्राद्धानञ्जयश्चैव इन्द्रतुल्यपराक्रमः।
नकुलं सहदेवश्च माद्र्यश्विभ्यामजीजनत् ।५०
पञ्चैते पाण्डवेभ्यस्तु द्रौपद्यां जज्ञिरेसुताः।
द्रौपद्यजनयच्छ्रेष्ठंप्रतिविन्ध्यंयुधिष्ठिरात् ।५१
श्रुतसेनं भीमसेनाच्छ्रुतकीर्त्ति धनञ्जयात्।
चतुर्थं श्रुतकर्माणं सहदेवाद जायत ।५२
नकुलाच्च शतानीकं द्रौपदेयाः प्रकीर्त्तिताः।
तेभ्योऽपरे पाण्डवेयाःषडेवान्येमहारथाः ।५३
हैडम्बो भीमसेनात्तु पुत्रो जज्ञे घटोत्कचः।

काशीबलधरात्भीमाज्जज्ञे सर्वंगसुतम् ।५४
सुहोत्रं तनयं माद्री सहदेवादसूयत ।
करेणुमत्यां चैद्यायां निरमित्रस्तुनाकुलिः ।५५
सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युर जायत ।
योधेयं देवकीचैव पुत्रं यज्ञे युधिष्ठिरात् ।५६

महाराज इन्द्रदेव से धनञ्जय का जन्म हुआ जो पूर्णरूप से इन्द्र के समान ही पराक्रम वाला था । माद्री ने नकुल और सहदेव को अशिवाओं से जन्म दिया था ।५०। ये पाँच पाण्डवों से द्रौपदी से सुत समुत्पन्न हुए थे । द्रौपदी ने युधिष्ठिर से श्रेष्ठ पुत्र प्रतिविन्ध्यको जन्म दिया था । भीमसेन से श्रुतसेन को और श्रुतिकीर्ति को धनञ्जय से तथा चौथे श्रुतकर्मा को सहदेव से एवं शतानीक नामक सुत को नकुल से उत्पन्न किया था । ये सभी पुत्र द्रौपदेय कीर्तित हुए थे । इनसे भी दूसरे षट् अन्य महारथ भी पाण्डवेय हुए थे ।५१-५३। भीमसेन से हिडम्बा का पुत्र हैडम्ब घटोत्कच उत्पन्न हुआ । काशीबलधर भीम से सर्वग सुत ने जन्म ग्रहण किया था ।५४। माद्री ने सहदेव से सुहोत्र नामक तनय को उत्पन्न किया था । करेणुमती चैद्या में नकुल से नाकुलि निरमित्र नामक पुत्र ने जन्म धारण किया ।५५। पार्थ अर्जुन से सुभद्रा पत्नी में रथी अभिमन्यु ने समुत्पत्ति प्राप्त की थी । देवकी ने योधेय नामधारी पुत्र धर्मपुत्र युधिष्ठिर से जन्म दिया था ।५६।

अभिमन्योः परिक्षितु पुत्रः परपुरञ्जयः ।
जनमेजयः परीक्षितः पुत्रः परमधार्मिकः ।५७
ब्रह्माणं कल्पयामास सव वाजसनेयकम् ।
स वैशम्पायनेनैव शप्तः किल महर्षिणा ।५८
न स्थास्यतीहवुर्बुद्धे ! तवैतद्वचनं भुवि ।

यावत् स्थास्यसि त्वं लोकेतावदेवप्रपतूस्यति ।५९
क्षत्रस्य विजयं ज्ञात्वा ततः प्रभृति सर्वशः ।
अभिगम्य स्थिताश्चैव नृपञ्च जनमेजयम् ।६०
ततः प्रभृति शापेन क्षत्रियस्य तु याजिनः ।
उत्सन्ना याजिनो यज्ञे ततः प्रभृति सर्वशः ।६१
क्षत्रस्ययाजिनः केचित् शापात्तस्यमहात्मनः ।
पौर्णमासेनहविषा इष्ट्वातस्मिन्प्रजापतिम् ।
स वैशम्पायनेनैवप्रविशन् वारितस्ततः ।६२
परीक्षितः सुतः सो वै पौरवो जनमेजयः ।
द्विरश्वमेधमाहृत्य महावाजसनेयकः ।६३

अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु से परपुञ्जय अर्थात् शत्रुओं के पुरों पर विजय प्राप्त करने वाले परीक्षित नामक पुत्र का जन्म हुआ था । परीक्षित् से परम धार्मिक जनमेजय पुत्र ने जन्म धारण किया था ।५७। उसने समस्त वेद को वाजसनेयक कल्पित किया था । उसको महर्षि वैशम्पायन ने शाप दे दिया था ।५८। महर्षि ने यही शाप दिया था कि हे दुष्ट बुद्धि वाले ! यह तेरा वचन भूमण्डल में स्थित नहीं रहेगा । जब तक तू इस लोक में स्थित रहेगा तभी तक यह रहेगा।५९। क्षत्रिय की विजय को जानकर तभी से लेकर सभी ओर से नृप जनमेजय के समीप में अभिगमन करके स्थित हो गये थे ।६०। तब से ही लेकर यजन करने वाले क्षत्रिय के शाप से सभी ओर से याजीगण यज्ञ में उत्पन्न हो गये थे ।६१। कुछ क्षत्रिय के याजी उस महात्मा के शाप से पौर्णमास रवि के द्वारा उसमें प्रजापति का यजन करके फिर वह वैशम्पायन के द्वारा ही प्रवेश करते हुए वारित हुआ था ।६२। उस परीक्षित के पुत्र पौरव जनमेजय ने दो अश्वमेधों का आहरण करके वह महावाजसनयक हो गया था ।६३।

प्रवर्तयित्वा तं सर्वमृषिं वाजसनेयकम् ।
विवादे ब्राह्मणैः सार्धमभिशप्तो वनं ययौ ।६४

जनमेजयाच्छतानीकस्तस्माज्जज्ञे स वीर्यवान् ।
जनमेजयः शतानीकं पुत्रं राज्येऽभिषिक्तवान् ।६५
अथाश्वमेधेनततः शतानीकस्यवीर्यवान् ।
जज्ञेऽधिसोमकृष्णाख्यः साम्प्रत यो महायशाः ।६६
तस्मिन् शासति राष्ट्रे तु युष्माभिरिदमाहृतम् ।
दुरापं दीर्घसत्रं वै त्रीणि वर्षाणि पुष्करे ।
वर्षद्वयं कुरुक्षेत्रे दृषद्वत्यां द्विजोत्तमाः ।६७
भविष्यं श्रोतुमिच्छामः प्रजा लोमहर्षणे ।
पुरा किल यदेतद्वै व्यतीतं कीर्तितं त्वया ।६८
येषुवै स्थास्यतेक्षत्रं उत्पत्स्यन्ते नृपाश्चये ।
तेषामायुः प्रमाणञ्चनामतश्चैव तान्नृपान् ।६९
कृतयुगप्रमाणञ्च त्रेताद्वापरयोस्तथा ।
कलियुगप्रमाणञ्च युगदोषं युगक्षयम् ।७०

उस सब वाजसनेयक को ऋषि में प्रवृत्त कराकर ब्राह्मणों के साथ विवाद में अभिशप्त होकर वह फिर वन में चला गया था ।६४। उस जनमेजय से महान् ब वीर्य वाले शतानीक ने जन्म धारण किया था । जनमेजय ने उस अपने पुत्र शतानीक को राज्य के सिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया था ।६५। फिर शतानीक के अश्वमेध से वीर्यवान् अधिसोम कृष्ण नामधारीने जन्म ग्रहण कियाथा जो इस समयमें महान् यश वाला है ।६६। उसी के द्वारा सम्पूर्ण इस राष्ट्र पर शासन करने पर ही आप लोगों ने इस दुराप दीर्घसत्र को तीन वर्ष तक पुष्कर में समाहृत किया था । हे द्विजोत्तमो ! दो वर्ष तक दृषद्वती में कुरुक्षेत्र में किया था ।६७। मुनिगण ने कहा—हे लोमहर्षण ! अब हम हम उन प्रजाओं के भविष्य को श्रवण करने की इच्छा वाले है जिसको आपने पहिले व्यतीत कीर्त्तित किया है ।६८। जिनमें क्षत्रिय स्थित रहेंगे और जो नृप उत्पन्न होंगे । उन सबकी आयु प्रमाण तथा उन नृपों के नाम

से बतलाने की कृपा कीजिए। कृतयुगका प्रमाण तथा त्रेता और द्वापर का प्रमाण और कलियुग का प्रमाण भी बतलाइये। युगों के दोष तथा युगों का क्षय भी कहने की अनुकम्पा कीजिएगा।६९-७०।

सुखदु:खप्रमाणञ्च प्रजादोष युगस्य तु।
एतत्सर्वं प्रसंख्याय पृच्छतां ब्रूहि नः प्रभो।७१
यथा मे कीर्तित पूर्वं व्यासेनाक्लिष्टकर्म्मणा।
भाव्यं कलियुगञ्चैव तथा मन्वन्तराणि च।७२
अनागतानिसर्व्वाणि ब्रुवतो मे निबोधत।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि भविष्या ये नृपास्तथा।७३
ऐडेक्ष्वाकान्वये चैव पौरवे चान्वयेतथा।
येषु संस्थास्यये तच्च ऐडेक्ष्वाकुकुलंशुभम्।
तान् सर्वान् कीर्त्तयिष्यामि भविष्ये कथितान्नृपान्।७४
तेभ्योऽपरेऽपियेत्वन्येह्यु त्पत्स्यन्तेनृपाः पुनः।
क्षत्रा पारशवाः शूद्रास्तथान्ये महीश्वराः।७५
अन्धाः शकाः पुलिन्दाश्चचूलिकायवनास्तथा।
कैवर्त्ताभीरशवरायेचान्येम्लेच्छसम्भवाः।
पर्य्यायतः प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान्नृपान्।७६
अधिसोमकृष्णश्चैतेषां प्रथमंवर्त्ततेनृपः।
तस्यान्ववायेवक्ष्यामि भविष्येकथितान्नृपान्।७७

सुख और दुःख का प्रमाण तथा युग का प्रजा का दोष—यह सभी कहकर हमको बोध दीजिए। हे प्रभो! हम लोग सभी आपसे यह पूछ रहे हैं।७१। महर्षि सूतजी ने कहा जिस प्रकार से अक्लिष्ट कर्म वाले श्री व्यासदेव ने पहिले मुझको बतलाया है। भाव्य कलियुग तथा मन्वन्तर जो कि सभी अब तक अनागत ही हैं उन सबको मैं बतला रहा हूँ आप मुझसे सभी जानलो। इसके आगे यह भी बतलाऊँगा जो नृप भविष्य मे होंगे।७२-७३। इक्ष्वाकु के वंश में तथा पौरव वंश में

जिनमें संस्थित रहेगा वह एक्ष्वाकुल शुभ है। उन सभी भविष्य में कथित नृपों को मैं बतलाऊँगा।७४। उनसे भी और दूसरे जो अन्त नृप पुनः उत्पन्न होंगे वे क्षत्रिय—पारशवा—शूद्र तथा अन्य जो भी महीश्वर भविष्य में होंगे उन्हें भी बतला दिया जायगा।७५। अन्ध, शक, पुलिंद चूलिक, यवन, कैवर्त्त, आभीर, शबर और जो अन्य म्लेच्छ सम्भव हैं उन सब को मैं पर्याय से तथा नाम से नृपों को बतलाऊँगा।७६। इन सब में अधिसोम कृष्ण प्रथम नृप है। अब उसके अन्वाय (वंश) में भविष्य में कथित नृपों में आप लोगों को सब बतलाऊँगा आप लोग सब ध्यान पूर्वक श्रवण कीजिए।७७।

अधिसोमकृष्णपुत्रस्तु विवक्षर्भविता नृपः।
गङ्गया तु हृते तस्मिन् नगरे नागसाह्वये।७८
त्यक्त्वा विवक्षुर्नगरंकौशाम्ब्यान्तुनिवत्स्यति।
भविष्याष्टौसुतास्तस्यमहाबलपराक्रमाः।७९
भूरिज्येष्ठः सुतस्तस्यतस्यचित्ररथः स्मृतः।
शुचिद्रवश्चित्ररथात् वृष्णिमांश्चशुचिद्रवात्।८०
वृष्णिमतः सुषेणश्चभविष्यतिशुचिर्नृपः।
तस्मात् सुषेणात्भवितासुनीथोनामपार्थिवः।८१
नृपात् सुनीथाद्भविता नृचक्षुः सुमहायशाः।
नृचक्षुषस्तु दायादो भविता वै सुखीबलः।८२
सुखीबलसुतश्चापि भावी राजा परिष्णवः।
परिष्णव सुतश्चापि भविता सुतपा नृपः।८३
मेधावी तस्य दायादोभविष्यति न संशयः।
मेधाविनः सुतश्चापि भविष्यति पुरञ्जयः।८४

अधिसोम कृष्ण का पुत्र विवक्षु नाम वाला नृप होगा। उस नागसाह्वय नगर में गङ्गा के द्वारा हृत हो जाने पर अर्थात् गङ्गा के नगर का त्याग कर देने पर वह राजा विवक्षु उस अपने नगर का त्याग

करके फिर कौशाम्बी में निवास करेगा । उसके आठ पुत्र समुत्पन्न होंगे जो महान् बल और पराक्रम से समन्वित होंगे ।७८-७९। उनमें नवसे ज्येष्ठ जो पुत्र होगा वह भूरि होगा । फिर इसका जो पुत्र होगा उसका नाम चित्ररथ होगा । उस चित्ररथ के शुचिद्रव जन्म लेगा। फिर उस शुचिद्रव से वृष्णिमान् समुत्पन्न होगा ।८०। वृष्णिमान् राजा का पुत्र परम शुचि नृप सुषेण जन्म ग्रहण करेगा । फिर उस सुषेण से सुनीथ नाम वाला नृप समुत्पन्न होगा ।८१। इसके अनन्तर उस सुनीथ नामक नृप का पुत्र महान यश से समुत्पन्न नृचक्षु होगा । इस नृचक्षु राजा का दायाद मुखीबल जन्म ग्रहण करेगा ।८२। मुखीबल का पुत्र भविष्य में होने वाला राजा परिष्णव उत्पन्न होगा । इस परिष्णव का पुत्र सुतपा नाम वाला नृप होगा ।८३। इस सुतपा का दायाद मेधावी उत्पन्न होगा- इसमें कुछ भी संशय नहीं है । मेधावी का पुत्र पुरञ्जय होगा ।८४।

उर्वोभाव्य: सुतस्तस्य तिग्मात्मा तस्य चात्मज: ।
तिग्मात् बृहद्रथो भाव्यो बसुदामा बृहद्रथात् ।८५
बसुदाम्न: शतान को भविष्योदयनस्तत: ।
भविष्यते च दयनात् वीरो राजा वहीनर: ।८६
वहीनरात्मजश्चैव दण्डपाणिर्भविष्यति ।
दण्डपाणे निरामित्रो निरामित्रात्तु क्षेमक: ।८७
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतो विप्रै: पुरातनै: ।
ब्रह्मक्षत्रस्ययो योनिर्वंशो देवर्षिसत्कृत ।
क्षेमक प्राप्य राजानं संस्थास्यति कलौ युगे ।८८
इत्येष पौरवो वंशो यथावदिह कीर्त्तित: ।
धीमत: पाण्डुपुत्रस्य अर्जुनस्य महात्मन: ।८९

इस पुरञ्जय का भावी पुत्रउर्व उत्पन्न होगा और उसका आत्मज तिग्मात्मा होगा । तिग्मात्मा का पुत्र बृहद्रथ जन्म लेगा और बृहद्रथ

से व सुदामा का पुत्र शतानीक जन्म धारण करेगा और फिर शतानीक से दयन पैदा होगा। इस दयन के पुत्र का नाम वीर राजा वही नर होगा। वही नर राजा का आत्मज दण्ड पाणि समुत्पन्न होगा फिर दण्ड पाणि से निरामित्र पुत्रकी उत्पत्ति होगी और निरामित्र से क्षेमक नाम वाला जन्म लेगा। यहाँ पर पुरातन विप्रों के द्वारा यह अनु वंश का श्लोक गाया गया है। ब्राह्मण और क्षत्रिय की जो योति है वह वंश देवर्षियोंके द्वारा सत्कृत है। क्षेमक राजा को प्राप्त करके इस कलियुग में संस्थित होगा।८६-८८। इस प्रकार से यह पौरव वंश यहाँ पर यथावत् कीर्तित कर दिया गया है जो धीमान् पाण्डु के पुत्र महान् आत्मा वाले अर्जुन का है।८९।

२९–अग्नि वंश वर्णन

ये पूज्याः स्युर्द्विजातीनामग्नयः सूत ! सर्वदा।
तानिदानीं समाचक्ष्व तद्वंशं चानुपूर्वशः।१
योऽसावग्निभीमानी स्मृतः स्वायम्भुवेन्तरे।
ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्तस्मात् स्वाहा व्यजीजनत्।२
पावकं पवमानञ्चशचिरग्निश्च यः स्मृताः।
निर्मंथ्यः पवमानोऽग्निर्वैद्युतः पावकात्मजः।३
शुचिरग्निः स्मुतः सौरः स्थावराश्चैवतेस्मृताः।
पवमानात्मजो ह्याग्निर्हव्यवाहः सउच्यते।४
पावकिः सहरक्षस्तु हव्यवाहमुखः शुचिः।
देवानां हव्यवाहोऽग्निः प्रथमो ब्रह्म सुतः।५
सहरक्षः सराणान्तु त्रयाणान्ते त्रयोऽनयः।
एतेषां पुत्रपौत्राश्च चत्वारिंशत्तथैव च।६

प्रवक्ष्ये नामतस्तान्वैप्रतिभागेन तान् पृथक् ।
पावनोलौकिको ह्यग्निः प्रथमोब्रह्मणश्चयः ।७

ऋषिगण ने कहा—हे सूतजी ! जो अग्नियाँ द्विजातियों की परम पूज्य हैं उनके विषय में इस समय में इस समय में बतलाइए और उन का वंश की आनुपूर्वी के क्रम से कहने की कृपा कीजिए ।१। महर्षि श्री सूतजी ने कहा—जो यह अग्नि अभी मानीहै जो कि स्वायम्भुव अन्तर में कहा गया है वह तो ब्रह्मा का मानस अर्थात् मन से समुत्पन्न पुत्र है फिर उससे स्वाहा ने जन्म ग्रहण किया था ।२। पावक, पवतान, शुचि और अग्नि ये नाम इसके कहे गये हैं । निर्मथ्य-पवमान अग्नि में तथा पावकात्मज वैद्युत अग्नि है ।३। शुचि सौर होता है । वे सब स्थावर ही कहे गये हैं । पवमानात्मज जो अग्नि है वह हव्यवाह कहा जाता हैं ।४। पावकि सहरक्ष होता है और हव्यवाह मुख शुचि होता है । देवों का अग्नि हव्यवाह होता है । प्रथम अग्नि ब्रह्मा का सुत था ।५। सुरों का सहरक्ष होता है । वे तीनों के तीन अग्नियाँ हैं । इन अग्नियों के पुत्र और पौत्र चालीस हैं । अब उनके नाम लेकर प्रतिभाग के द्वारा उनको पृथक् बतलायेंगे । लौकिक अग्नि पावन होता है जो प्रथम ब्रह्मा का सुत है ।६-७।

ब्रह्मोदनाग्निस्तत् पुत्रोभरतो नाम विश्रुतः ।
वैश्वानरा हव्यवाहो वहन् हव्यममारसः ।८
स्मृतोऽथर्वणः पुत्रो मथितः पुष्करोदधिः ।
योऽथर्वा लौकिको ह्यग्निदक्षिणाग्नि स उच्यते ।९
भृगोः प्रजायताथर्वाह्यङ्गिराथर्वणः स्मृतः ।
तस्यह्यलौकिकोह्यग्निदक्षिणाग्निास: ।१०
अथयः पवमानग्नु निर्मथ्योऽग्निःथ उच्यते ।
स च वै गार्हपत्योऽग्निः प्रथमोब्राह्मणः स्मृतः ।११
ततः सभ्यावसथ्यौच संशत्यास्तो सुताबुभौ ।

ततः षोडशनद्यस्तु चक्रमे हव्यवाहनः ।
यः खल्वाहवनीलोऽग्निरभिमानी द्विजैः स्मृतः ।१२
कावेरी कृष्णवेणीञ्च नर्मदां यमुनां तथा ।
गोदावरीं वितस्ताञ्च चन्द्रभागामिरावतीम् ।१३
विपाशां कौशिकीञ्चैव शतद्रूं सरयूं तथा ।
सीतां मनस्विनीञ्चैव ह्लनदिनीं पावनां तथा ।१४

जो ब्रह्मादीनाग्नि है उसका पुत्र भरत—इस नाम से विश्रुत है। वैश्वानर-हव्यवाह और हव्य को वहन करता हुआ ममारम और स्मृत यह अथर्वण अग्नि होता है। मथित पुष्करी दधि पुत्र है। जो अथर्वा है वह लौकिक अग्नि है और वह दक्षिणाग्नि कहा जाया करता है।८-९ अथर्वा भृगु से प्रजात हुआ था और अथर्वण अङ्गिरा कहा गया है। उसका अलौकिक अग्नि है वह दक्षिणाग्नि कहा गया है।१०। इसके अनन्तर जो पवमान है वह निमथ्य अग्नि कहा जाता है। और वह गार्हपत्य अग्नि है जो प्रथम ब्रह्मा का कहा गया है।११। इसके पश्चात् सभ्य और अवसभ्य ये दोनों संशति के सुत थे। इसके अनन्तर हव्य वाहन ने षोडश नदियों को पादविक्षिप्त किया था। जो आहव नील अग्नि है वह द्विजों के द्वारा अभिमानी कहा गया है।१२। कावेरी कृष्ण वेणी, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती, विपाशा कौशिकी शतद्रू, सरयू, सीता, मनस्विनी, ह्लनदिनी, पावला ये सोलह नदियाँ हैं उनमें सोलह रूपों में आत्माको पृथक्-२ प्रविभक्त करके उस समय में उन नदियों में विहार करते हुए वह धिष्ण्येच्छ हो गया था। १३-१५।

तासुषोडशधात्मानं प्रविभज्य पृथक्-पृथक् ।
तदातु विहरं स्तासु धिष्ण्येच्छः सबभूवह ।१५
स्वाभिधानस्थिता विष्ण्वास्तासुत्पन्नाश्च धिष्णवः ।
धिष्ण्येषु जज्ञिरे यस्मात् ततस्त धिष्णवः स्मृताः ।१६

इत्येते वै नदीपुत्रा धिष्ण्येषु प्रतिपेदिरे ।
तेषां विहरणीया ये उपस्थेयाश्च ताञ्शृणु ।
विभुः प्रवाहणोग्नीऽध्रस्तत्रस्ता धिष्णवोऽपरे ।१७
विहरन्ति यथास्थानं पुण्याहे समुक्रमे ।
अनिर्देश्यानिवार्याणामग्नीनां शृणुत क्रमम् ।१८
वासवोऽग्निः कृशानुर्योद्वितीयोत्तरवेदिकः ।
सम्राडग्निः सुतोह्यष्टावुपतिष्ठन्तिान्द्विजा ।१९
पर्जन्यः पावमानस्तुद्वितीयः सोऽनुद्दश्यते ।
पावकोष्णः सभुह्यस्तुवोत्तरेसोऽग्निरुच्यते ।२०
हव्यसूदोह्यसंमृज्यः शामित्रः संविभाव्यते ।
शतधामासुधाज्योति रौद्रैश्वर्यः स उच्यते ।२१

अपने अभिमान में स्थित धिष्ण्य उनमें समुत्पन्नहै और विष्णु हैं। क्योंकि उन्होंने धिष्ण्यों में जन्म ग्रहण किया था अतएव वे विष्णु में प्रतिपन्न हुए थे । जो उनके विहरणीय तथा उपस्थेय हैं उनके विषय में भी सुनलो । प्रवाहण अग्नीध्र विभु है और उसमें स्थित अपर विष्णु हैं ।१७। किसी पुण्याह के समुपक्रम होने पर यथास्थान में विहारकिया करते हैं । अनिर्देश्य और अनिवार्य अग्नियों का क्रम श्रवण करो ।१८। वसव अग्नि-कृशानु और जो द्वितीय उत्तरवेदिक है । सम्राट अग्नि है द्विजगण ये आठ उनका उपस्थान करते हैं ।१९। पर्जन्य पवमान वह द्वितीय अनुदृश्यमान होता है । पावकोष्ण और समुह्य अग्नि उत्तर में कहा जाता है ।२०। हव्य सूद और असंमृज्य शामित्र सविभावित होता है । शतधामा— सुधा ज्योति वह रौद्रैश्वर्य कहा जाया करता है ।२१।

ब्रह्मज्योतिर्वसुधामा ब्रह्मस्थानीय उच्यते ।
अजैकपादुपस्थेयः स वै शालामुखोयतः ।२२

अनिर्देश्योह्यहिबुध्नो बहिरन्ते तु दक्षिराणः ।
पुत्राह्यते तु सर्वस्य उपस्थेय द्विजैः स्मृताः ।२३
ततोविहरणीयांस्तुवक्ष्याम्यष्टौतुतान् सुतान् ।
होत्रियस्यसुतो ह्यग्निर्वर्हिषो हव्यवाहनः ।२४
प्रशंस्योऽग्निः प्रचेतास्तुद्वितीयः ससहायकः ।
सुतोह्यग्नेर्विश्ववेदाब्राह्मणाच्छंसिरुच्यते ।२५
अपांयोनिः स्मृतः स्वाम्भः सेतुर्नाम विभाव्यते ।
धिष्ण्यआहरणाह्यते सोमेनेज्यन्तवैद्विजः ।२६
ततो यः पावको नाम्ना यः सद्भिर्योग उच्यते ।
अग्निः सोऽवभृथेज्ञ योवरुणेन सहेज्यते ।२७
हृदयस्य सुतो ह्यग्नेर्जठरेऽसौ नृणां पचन् ।
मन्युमान् जाठरश्चाग्निर्विद्धाग्निः सततं स्मृतः ।२८

ब्रह्म ज्योति और वसुधामा अग्नि ब्रह्मस्थानीय कहा जाता है। अजैकपाद उपस्थेय क्योंकि वह शालामुख होता है।२२। अग्निर्देश्य—अहिबुध्न बाहिर अन्तमें दक्षिण हैं ये सर्वके पुत्र हैं और द्विजों के द्वारा उपस्थान करने योग्य कहे गए हैं।२३। इसके अनन्तर विहरणीय उन आठ सुतों के विषय में बतलाते हैं। होत्रिय का वर्हिष वाहन अग्नि सुत है।२४। प्रशंस्य अग्नि प्रचेता दूसरा संसहायक होता है। विश्ववेदा अग्नि का सुत है और ब्राह्मणच्छंसि कहा जाता है।२५। अपांयोनि स्वाम्भ कहा गया है तथा सेतु नाम विभावित होताहै। ये सब धिष्ण्य आहरण है और द्विजों के द्वारा सोम से इज्जमान होते हैं।२६। इसके पश्चात् जो पावक सत्पुरुषों के नाम से योग कहा जाता है वह अग्नि अवभृत में ही जानना चाहिए यह वरुण के साथ इज्यमान होता है।२७। जो मनुष्यों के जठरमें खाये हुए पदार्थों का पाचन करता है वह हृदय की अग्नि का सुत है। जाठर:अग्नि बड़ा मन्दुमान् है निरन्तर वह विद्धाग्नि कहा गया है।२८।

परस्परोत्थितो ह्यग्निर्भूतानीह विभुर्दहन् ।
अग्नेर्मन्युतमः पुत्रो घोरः सम्वर्त्तकः स्मृतः ।२९
पिबन्नाग्निः स वसति समुद्रे बडवामुखे ।
समुद्रवासिनः पुत्रः सह रक्षो विभाव्यते ।३०
सहरक्षस्तुवैकामान्गृहेसवसतेनृणाम् ।
क्रव्यादग्निः सुतस्तस्य पुरुषान्योऽत्तिवैमृतान् ।३१
इत्येतेपावकस्याग्नेर्द्विजैः पुत्राः प्रकीर्त्तिताः ।
ततः सुतास्तु सौवीर्य्याद्गन्धर्वैरसुरैर्हृताः ।३२
मथितोयस्त्वरण्यान्तुसोऽग्निरापमिन्धनम् ।
आयुर्नाम्नातुभगवान् पशौयस्तुप्रणीयते ।३३
आयुषो महिमान्पुत्रो दहनस्तु ततः सुतः ।
पाकयज्ञष्वभीमानीहुतं हव्यं भुनक्ति यः ।३४
सर्वस्माद्देवलोकाच्च हव्यं कव्यं भुनक्ति यः ।
पुत्रोऽस्य सहितो ह्यग्निरद्भुतः समहायशाः ।३५

परस्पर में समुत्थित अग्नि यहाँ पर विभुभूतों का दाह करता है वह अग्निका मन्युतम घोर पुत्र सम्वर्त्तक कहा गयाहै । पीता हुआ वह अग्नि समुद्र में बड़वा के मुख में बास किया करता है । समुद्र में बास करने वाले का वह पुत्र सहरक्ष विभावित होता है ।२९-३०। जो सह-रक्ष नाम वाला अग्नि है वह सब कामों को पूर्ण किया करता है और मनुष्यों के घर में ही निवास करता है । क्रव्याद नामक अग्नि उसका पुत्र हैं जो मृत हुए मनुष्यों को खा जाता है अर्थात् शव को भस्माभूत जलाकर कर दिया करता है ।३१। ये इतने द्विजोंके द्वारा पावक अग्नि के पुत्रों का प्रकीर्त्तन किया गया है । इसके अनन्तर जो सुत हुए थे वे सौवीर्य्य से गन्धर्व और असुरों के द्वारा हृत हो गए हैं ।३२। जो अरणी में मंथित करके समुत्पन्न हुआ अग्नि है वह आप समिन्धन होता है । वह भगवान अग्नि नाम से आयु होता है जो पशु में प्रणीयमान होता

है ।३३। आयु नामक अग्निका महिमात् नाम वाला पुत्र है और उसके आगे दहन उसका पुत्र होता है—ऐसा कहा गया है । पाक यज्ञों में अभिमानी अग्नि है जो हुत किये हुए हव्य का भोग किया करता है । ।३४। जो सम्पूर्ण लोक से हव्य और कव्य को खा जाता है वह इसके अहित पुत्र अग्नि अद्भुत और सुमहान् यश वाला होता है ।३५।

प्रायश्चित्त श्वभीमानी हुतंकव्यं भुनक्ति यः ।
अद्भुतस्य सुतो वीरो देवांशस्तुमहान्मतः ।३६
विवधाग्निस्ततस्तस्यतस्यपुत्रोमहाकविः ।
विविधाग्निसुतादर्कादग्नयोऽष्टौसुता स्मृताः ।३७
काम्यास्विष्टिष्वभीमानी रक्षोहायतिकृच्चयः ।
सुरभिर्वसुमान्नादोहर्य्यश्वः सोऽभवत्पुरा ।३८
प्रवर्ग्यं क्षमवांश्चैव इत्यष्टौ च प्रकीर्त्तिताः ।
शुच्यग्नेस्तु प्रजाह्येषा अग्नयश्च चतुर्दश ।३९
इत्येते ह्यग्नयः प्रोक्ताः प्रणीता ये हि चाध्वरे ।
समतीते तु सर्गे ये यामैः सहसुरोत्तमैः ।४०
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमग्नयस्तेऽभिमानिनः ।
एते विहरणीयेषु चेतनांचेतनोष्विह ।४१
स्थानाभिमानिनोऽग्नीध्राः प्रागासन्हव्यवाहनाः ।
काम्यनैमित्तिकाद्यास्ते ये ते कर्म्मस्ववस्थिताः ।४२

जो पापों के दोषों से निवारणार्थ किये हुए प्रायश्चितों में अभीमानी नामक अग्नि हुत और कव्य को खा लेता है । अद्भुत का पुत्र महान् वीर है जो महान् देवांश कहा गया है ।३६। फिर उससे विविध अग्नि होता है और इसका आत्मज महाकवि होता है । विविध नामक अग्नि के सुत अर्क से आठ सुत अग्नियाँ कहे जाते हैं ।३७। जो सकाम इष्टियाँ हैं उनमें अभीमानी रक्षोहा और यतिकृत् जो है वह पहिले सुरभि वसुमान् नाद और हर्यश्व हुआ था ।३८। प्रवर्ग्य और क्षेम

वान् ये आठ कीर्त्तित किये गये हैं। यह समस्त प्रजा शुच्यग्नि का है और इस तरह से चौदह अग्नि हैं। इतने ये अग्नि बतला दिए गए हैं जो अध्वर में प्रणीत होते हैं। सर्ग के समतीत होने पर जो सुरोत्तम यामों के सहित स्वायम्भुवअन्तर में पूर्व में अग्नि हैं वे सब अभिमानी हैं। ये विहार करने के योग्य चेतन और अचेतनों में यहाँ पर स्थानाभिमानी हव्य वाहन आग्नीध्र पहिले थे।३६-४१। सकाम और नैमित्तिक आद्य वे हैं जो कर्मों में समवस्थित रहा करते हैं। ४२।

पूर्वे मन्वन्तरेऽतीते शुक्रैर्यामैश्च तैः सह ।
एते देवगणैः सार्द्धं प्रथमस्यान्तरे मनोः ।४३
इत्येतो योनयो ह्युक्ताः स्थानाख्याजातवेदसाम् ।
स्वारोचिषादिषुज्ञेयाः सवर्णान्तेषुसप्तषु ।४४
तै रेवन्तु प्रसंख्यातं साम्प्रतानागतेष्विह ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु लक्षण जातवेदसाम् ।४५
मन्वन्तरेषु सर्वेषु नानारूपप्रयजनैः ।
वर्त्तंतं वर्त्तमानश्च यामदेवैः सहाग्नयः ।४६
अनागतैः सुरैः सार्द्धं वत्स्यन्ता नागतास्त्वथ ।
इत्येष प्रचयोऽग्नीनांमयाप्रोक्तोयथाक्रमम् ।
विस्तरेणानुपूर्व्या च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ।४७

पूर्व मन्वन्तर के अतीत हो जाने पर उन शुक यामों के सहित प्रथम मनु के अन्तर में ये सब देवगणों के साथ में हैं ।४३। इतनी से सब स्थानाख्य जात वेदाओं की योनियाँ बतलायी गई हैं वे सब सवर्णान्त सात स्वारोचिष आदि में जाननी चाहिये ।४४। इस प्रकार से उनके द्वारा ही प्रसख्यात हैं। इस समय में यहाँ पर अनागत सब मन्वन्तरों में नाना रूप वाले प्रयोजनों से युक्त और वर्त्तमान याम तथा देवों के साथ अग्नि हैं ।४६। अनागत सुरों के साथ वे भी आगत नहीं है—इस प्रकार से यह अग्नियों का प्रचय मैंने क्रम के अनुसार बता

दिया है जो विस्तार के साथ और अनुपूर्वी के सहित ही कहा गया है। अब इसके आगे आप लोग मुझसे क्या श्रवण करना चाहते हैं ।४७।

३०—कर्मयोग वर्णनम्

इदानीं प्राह यद्विष्णः पृष्टः परममुत्तमम् ।
तमिदानीं समाचक्ष्व धर्माधर्मस्य विस्तरम् ।१
एवमेकार्णवे तस्मिन् मत्स्यरूपी जनार्दनः ।
विस्तारमादिसर्गस्य प्रतिसर्गस्य चाखिलम् ।२
कथयामास विश्वात्मा मनवे सूर्यसूनवे ।
कर्म्मयोगञ्च साङ्ख्यञ्च यथावद्विस्तरान्वितम् ।३
श्रोतुमिच्छामहे सूत ! कर्मयोगस्य लक्षणम् ।
यस्मादविदितं लोके नकिञ्चित्तवसुव्रत ।४
कर्म्मयोगञ्च वक्ष्यामि यथाविष्णुविभाषितम् ।
ज्ञानयोगसहस्राद्धि कर्म्मयोगः प्रशस्यते ।५
कर्म्मयोगोद्भवं ज्ञानं तस्मात्तत्परम्पदम् ।
कर्म्म ज्ञानोद्भवं ब्रह्म नच ज्ञानमकर्म्मणः ।६
तस्मात्कर्मणियुक्तात्मातत्त्वमाप्नोतिशाश्वतम् ।
वेदोऽखिलोधर्म मूलमाचारश्चैवतद्विदाम् ।७

ऋषिगण ने कहा—हे भगवन् ! इस समय में पूछे गये भगवान् विष्णु ने जो परम उत्तम नहीं था उसी धर्म और अधर्म के विस्तार को आप हमको बतलाइए ।१। महामहर्षि श्री सूतजी ने कहा—इस प्रकार से जब सम्पूर्ण विश्व एकार्णव हो गया था अर्थात् यहाँ केवल एक समुद्र ही दिखलाई देता था उस समय में भगवान् मत्स्य के स्वरूप धारण करने वाले जनार्दन प्रभु ने आदि सर्ग और सम्पूर्ण प्रतिसर्ग का विस्तार विश्वात्मा ने सूर्य के पुत्र मनु से कहा था और यथावत् विस्तार

से युक्त कर्म योग तथा सांख्य योग को भी बतलाया था ।२-३। ऋषिगण ने कहा—हे सूतजी ! हम इस समय में कर्म्म योग का लक्षण श्रवण करना चाहते हैं । हे सुव्रत! कारण यह है कि आप तो सर्वज्ञाता महान् पुरुष हैं फिर ऐसा अवसर हमको कब मिलेगा । ऐसी कोई भी बात नहीं है जिसको आप नहीं जानते हैं ।४। सूतजी ने कहा—जिस प्रकार से ठीक-२ भगवान विष्णु ने भाषित किया था उसी कर्म योग को हम बतलाते हैं । कर्म योग की बड़ी प्रशंसा भी है । यह एक सहस्र ज्ञानयोग से भी कहीं अधिक प्रशस्त माना जाता है ।५। कर्मयोग से समुत्पन्न जो ज्ञान है उसी से वह परम पद प्राप्त होता है । कर्म ज्ञानसे उद्भूत होने वाला ब्रह्म है ज्ञान कर्म उद्भव होने वाला नहीं है ।६। इसलिए कर्मयोग की उपासना ही सर्वश्रेष्ठ है । जो मनुष्य कर्म में युक्त आत्मा वाला है वह शाश्वत तत्त्व को प्राप्त किया करता है । अखिल वेद मूलधन है और उसका हित करने वाला आचार भी है।७०

अष्टावात्मगुणास्तस्मिन् प्रधानत्वेन संस्थिताः ।
दया सर्वेषु भूतेषु क्षान्तीरक्षातुरस्य च ।८
अनसूया तथा लोके शौचमन्वहिर्द्विजाः ।
अनायासेषु कार्येषु माङ्गल्याचारसेवनम् ।६
न च द्रव्येषु कार्पण्यमार्तेषूपार्जितेषु च ।
तथा स्पृहा परद्रव्ये परस्त्रीषु च सर्वदा ।१०
अष्टावात्मगुणाः प्रोक्ताः पुराणस्यतु कोविदैः ।
अयमेव क्रियायोगो ज्ञानयोगस्यसाधकः ।११
कर्म्मयोगं विना ज्ञान कस्यचिन्नेह दृश्यते ।
श्रुतिरमृत्युदितं धर्ममुपतिष्ठेत्प्रयत्नतः ।१२
देवतानां पितृणाञ्च मनुष्याणाञ्च सर्वदा ।
कुर्यादहरहर्यज्ञैर्भूतर्षिगणतर्पणम् ।१३
स्वाध्यायैरर्चयेच्चर्षीन् होमैर्विद्वान् यथाविधि ।
पितृन् श्राद्धै रन्नदानैर्भूतानिबलिकर्मभिः ।१४

आत्मा के आठ गुण हैं जो कि उस आत्मा में प्रधान रूप से संस्थित हैं। समस्त प्राणी मात्र पर दया और जो आतुर पुरुष हो उसकी रक्षा करना भी आत्मा का एक प्रधान गुण है।८। लोक में असूया (किसी के भी गुण-दोषों का वर्णन करके बुराई न करना) हे द्विजगण! बाहिर और अन्दर की शुचिता बिना ही अभ्यास (श्रम) के होने वाले कार्यों में माङ्गल्य आचार का सेवन करना भी गुण है। जो आर्त्त हैं उनके विषय में उपार्जित किए धनों में कृपणता नहीं करनी चाहिए। यह उदार भाव भी एक विशेष गुण होता है पराई स्त्री और पराया धन में कभी भूलकर भी स्पृहा नहीं करनी चाहिए। माता के समान पराई स्त्री और पराये सुवर्ण को भी मिट्टी के ढेले के समान ही देखना आत्मा का एक विशेष गुण है।९-१०। इस प्रकार से पुराणों के विद्वानों ने ये आठ आत्मा के गुण बतलाये हैं—यही ज्ञान-योग का साधक क्रिया योग है।११। इस कर्मयोग के बिना यहाँ पर ज्ञान किसी को भी नहीं हुआ करता है जो दिखलाई देवे। अतएव श्रुति तथा स्मृति के द्वारा कहा गया जो धर्म है उसी पर प्रयत्नपूर्वक उपस्थित रहना चाहिए।१२। देवगणों का, पितृवर्णों का और फिर मनुष्यों का सर्वदा प्रतिदिन यज्ञों के द्वारा भूत और ऋषिगण का तर्पण करना चाहिए।१३। ऋषियों का अर्चन वेदों के स्वाध्याय के द्वारा करना चाहिए और विद्वान् पुरुष को बिधान के अनुसार होमोंके द्वारा भी यजन करना परमावश्यक है। पितृगण अभ्यर्चन श्राद्धों के द्वारा करे अन्न के दानों से तथा बलि कर्म्मों के द्वारा समस्त भूतों का समर्चन करना चाहिए।१४।

पञ्चैते विहिता यज्ञाः पञ्चसूनापनुत्तये।
कण्डन पेषणी चुल्ली जलकुम्भी प्रमार्जनी।१५
पञ्चसूना गृहस्थस्य तेन स्वर्गं न गच्छति।
तत्पापनाशनायामी पञ्चयज्ञाः प्रकीर्त्तिता।१६

द्वाविंशति तथाष्टौ च ये संस्कारा: प्रकीर्त्तिता: ।
तद्युक्तोऽपि न मोक्षाय यस्त्वात्मगुणवर्जित: ।१७
तस्मादात्मगुणोपेत: श्रुतिकर्म्म समाचरेत् ।
गोब्राह्मणानां वित्तेन सर्वदा भद्रमाचरेत् ।१८
गोभूहिरण्यवासोभिर्गन्धमाल्योदकेन च ।
पूजयेद् ब्रह्मविष्णवर्करुद्रवस्वात्मकं शिवम् ।१९
व्रतोपवासैर्विधिवत् श्रद्धया च विमत्सर: ।
योऽसावतीन्द्रिय: शान्त: सूक्ष्मोऽव्यक्त: सनातन: ।
वासुदेवो जगन्मूर्त्तिस्तस्य सम्भूतयोह्यमा ।२०
ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान् मार्त्तण्डो वृषवाहन: ।
अष्टौ च वसवस्तद्वदेकादशगणाधिपा: ।
लोकपालाधिपालैश्च पितरो मातरस्तथा ।२१
इमा विभूतय: प्रोक्ताश्चराचरसमन्विता: ।
ब्रह्माद्याश्चतुरो मलव्यक्ताधिपति: स्मृत: ।२२

गार्हस्थ्य आश्रम में रहने वालों को प्रतिदिन स्वाभाविक स्वरूप से ही स्वत: पाँच प्रकार के पाप कर्म अनजान में बन जाया करते हैं। उन पाँच पाप कर्मों की अपनुति के लिये ये पाँच प्रकार के यज्ञों के करने का विधान करना परमावश्यक है। वे पाँच पाप ये हैं—कण्डनी कर्म जो आवश्यक रूप से घरों में होता ही है। छलनी से छानना ही कण्डनी कहा जाता है। पेषणी चक्की आदि से पीसने का काम-चुल्ली चूल्हा जलाना—जलकुम्भी वह स्थल जहाँपर जल आदि को रखा जाता है और पाँचवाँ प्रमार्जनी—बुहारी आदि परिष्कार करना। ये पाँच सून (पाप या हत्या) गृहस्थ को हुआ ही करते हैं। इसी से वह स्वर्ग की प्राप्ति नहीं किया करता है। उनके होने वाले पापोंके नाशके लिए ही ये पाँच दैनिक अत्यावश्यक यज्ञ कीर्त्तित किए गये हैं।१५-१६। बाईस और आठ जो आत्मा के संस्कार बताये गये हैं, जिनसे आत्मा की

शुद्धि हुआ करती है इन संस्कारों से युक्त भी हो तो भी जो आत्मा के उक्त सद्‌गुणों से रहित होता है उसकी मोक्ष नहीं होती है। अतः यह सिद्ध है कि कल्याण के लिए अभीष्ट आत्मा के गुणोंका होना परमावश्यक है।१७। अतएव आत्मा के गुणों युक्त होकर श्रुतिविहित कर्मों का समाचरण करना चाहिए। जो धन पास में न्यायोपार्जित हो उससे सर्वदा गौ और ब्राह्मणों का कल्याणों का कल्याण कर्म करना चाहिए। ।१८। गौ-हिरण्य, वस्त्र, गन्ध, माला, जल आदिके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु सूर्य, रुद्र और वसु स्वरूप शिव का नित्य पूजन करना चाहिए ।१९। मत्सरता के भाव से रहित होकर परम श्रद्धा से विधि पूर्वक व्रत एवं उपवासों का समाचरण करे। जो इन्द्रियों की पहुंच से भी परे हैं—परम शान्त—सूक्ष्म स्वरूप वाला—अव्यक्त-सनातन-जगन्मूर्ति भगवान् वासुदेव हैं उन्हीं की ये सब सम्भूतियां हैं।२०। ब्रह्मा, विष्णु, भगवान् मार्त्तण्ड, वृषवाहन, आठ वसुगण, एकादश गणों के अधिप लोक पाल और अधिपालों के सहित पितृगण तथा मातृ वर्ग—ये सब चर चर से समन्वित विभूतियां बताई गयी हैं। ब्रह्मा आदि चार मूल हैं जो अव्यक्त के अधिपति बताये गये हैं।२१-२२।

ब्रह्मणा चाथ सूर्य्येण विष्णुनाथ शिवेन वा।
अभेदात्पूजितेन स्यात्पूजितं सचराचरम् ।२३
ब्रह्मादीनां परमधामं त्रयाणामपि संस्थितिः।
वेदमूर्तावतः पूषा पूजनीयः प्रयत्नतः ।२४
तस्मादग्निद्विजमुखान् कृत्वा सपूजयेदिमान्।
दानैर्व्रतोपवासैश्च जपहोमादिना नरः।२५
इति क्रियायोगपरायणस्य वेदान्तशास्त्रस्मृतिवत्सलस्य।
विकम्मभीतस्य सदा न किंचित् प्राप्तव्यमस्तीह परे च लोके।२६

ब्रह्मा—सूर्य—विष्णु और शिव ये सब एक ही हैं इनको अभेद समझकर ही इनको पूजित करे ऐसा अभेद भावसे इनका समर्चन करने

पर सभी चराचर का समर्चन हो जाया करता है ।२३। ब्रह्मा आदि तीनों की जहाँ संस्थिति है वही परम धाम है । वेद मूर्त्ति पूषा का सदा प्रयत्न पूर्वक पूजन करना चाहिए ।२४। इसीलिए इन सबका पूजनकर अग्नि और द्विजों को मुख बनाकर ही करना चाहिए अर्थात् अग्नि तथा द्विजों के द्वारा ही इनका अभ्यर्चन हुआ करता है । दान-व्रत-उपवास जप और होम आदि के द्वारा मनुष्य को उक्त अभीष्ट देवों का समार्चन करते रहना चाहिए ।२५। इसी क्रिया योग में तत्पर तथा वेदान्त शास्त्र और स्मृति से प्यार करने वाला और विकर्म्मों अर्थात् बुरे कर्मों से भीत रहने वाले को सदा इस लोक और परलोक में कुछ भी प्राप्त करने के योग्य नहीं रहता है ।२६।

३१—पुराणसंख्या वर्णन

पुराणसंख्यामाचक्ष्व सूत ! विस्तरशः क्रमात् ।
दानधर्म्ममशेषन्तु यथावदनुपूर्वशः ।१
इदमेव पुराणेषु पुराणपुरुषस्तदा ।
यदुक्तवान् स विश्वात्मा मनवे तन्निबोधत ।२
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनन्तरञ्चवक्त्रेभ्यो वेदास्तस्यविनिर्गताः ।३
पुराणमेकमेवासीत् तदा कल्पान्तरेऽनघ ।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ।४
निर्दग्धेषु च लोकेषु वाजिरूपेण व मया ।
अङ्गानि चतुरो वेदाः पुराणं न्यायविस्तरम् ।५
मीमांसां धर्म्मशास्त्रञ्च परिगृह्य मयाकृतम् ।
मत्स्यरूपेण च पुनः कल्पादावुदकार्णवे ।६
अशेषमेतत् कथितमुदकान्तगतेन च ।
श्रुत्वा जगाद स मुनीन् प्रति देवान् चतुर्मुखः ।७

मुनिगण ने कहा—हे सूतजी ! अब आप पुराणों की संख्या बतलाइए और विस्तार के साथ क्रम से कहने की कृपा कीजिए और यथावत् सम्पूर्ण दान धर्म्म आनुपूर्वी के सहित बतलाइए ।१। सूतजी ने कहा—उस समय में विश्व की आत्मा उन पुराण पुरुष ने यह ही जो पुराणों में मनू को कहा था उसको आप लोग समझ लीजिए ।२। भगवान् ने कहा—ब्रह्माजी ने समस्त शास्त्रों में पुराण को ही सबसे प्रथम कहा था । इसके अनन्तर उनके मुखों से वेदों का निर्गमन हुआ था।३। हे अनघ ! उस समय में कल्पान्तर में एक ही पुराण था । वह त्रिवर्ग का साधन, पुण्यमय और शतकोटि विस्तार वाला था ।४। जब सब लोक निर्दग्ध हो गए थे तब मैंने वाजि रूप से चारों वेद-उनके अङ्ग शास्त्र पुराण-न्याय का विस्तारा-मीमांसा और धर्म शास्त्र परिगृहीत करके मैंने किए थे । फिर कल्प के आदि में उदकार्णव में मत्स्यरूप से यह अशेष उदक से अन्तर्गत रहते हुए कहे गये थे । इनका श्रवण करके चतुर्मुख ब्रह्माजी ने मुनियों और देवों के प्रति इनको कहा था ।५-७।

प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्ततः ।
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप ! ।८
व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे युगे ।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा ।९
तथाऽष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते ।
अद्यापि देवलोकेऽस्मिन् शतकोटिप्रविस्तरम् ।१०
तदर्थोऽत्र चतुर्लक्ष संक्षेपेण विशेषितम् ।
पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते ।११
नामतस्तानि वक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ! ।
ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये ।१२
ब्राह्मन्त्रिदशसाहस्रं पुराणं परिकीर्त्यते ।
लिखित्वा तच्च योदद्याज्जलधेनुसमन्वितम् ।१३

वैशाखपूर्णिमायाञ्च ब्रह्मलोके महीयते ।१३
एतदेव यथा पद्ममभूद्धैरन्मयं जगत् ।
तद्वृत्तान्ताश्रयं तद्वत् पाद्ममित्युच्यते बुधैः ।
पाद्मं दत् पञ्च पञ्चाशत् सहस्राणीह कथ्यते ।१४

फिर समस्त शास्त्रों की प्रवृत्ति पुराण से ही हुई थी। फिर कुछ काल में पुराण का ग्रहण न देखकर हे नृप ! मैं फिर व्यास रूप को धारण युग-युग में संहरण किया करता हूँ। सदा द्वापर में चार लाख के प्रमाण से संहरण किया था ।८-६। फिर उन पुराणों के अठारह भेद करके इस लोक में प्रकाशित किया जाता है। इस समय में भी इस देव लोक में सौ करोड़ विस्तार है ।१०। तदर्थ यहाँ पर चार लाख संक्षेप से विशेषित किया है? ।११। हे मुनि सत्तमो ! अब उनके नाम लेकर कहता हूँ। आप श्रवण कीजिए। पहले ब्रह्माजी ने मरीचि के लिये यावन्मात्र कहा था ।१२। ब्राह्म पुराण तेरह सहस्र परिकीर्त्तित किया जाता है। जो कोई उसको हाथ से लिखकर जलधेनु से संयुक्त करके वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि से दान करता है वह अन्त में ब्रह्म लोकमें जाकर प्रतिष्ठित होता है।१३। यह ही जैसे जगत् हैरण्मय पद्म हो गया था उसी के वृत्तान्त का आश्रय ग्रहण करके उसी की भाँति बुध लोगों के द्वारा 'पाद्मम'—यह नाम कहा जाता है। वह पद्मपुराण यहाँ पर पचपन सहस्र कहा जाता है ।१४।

तत्पुराणञ्च यो दद्यात् सुवर्णकलशान्वितम् ।
ज्येष्ठेमासि तिलैर्युक्तमश्वमेधफलंलभेत् ।१५
वाराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः ।
यत्प्राह धर्मानखिलान् तद्युक्तं वैष्णवं विदुः ।१६
तदाषाढ़े च यो दद्यात् घृतधेनुसमन्वितम् ।
पौर्णमास्यांविपूतात्मा स पदंयातिवारुणम् ।
त्रयोविंशतिसाहस्रं तत्प्रमाणं विदुर्बुधः ।१७

श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान् वायुरिहाब्रवीत् ।
यत्र तद्वायवीयस्यात् रुद्रमाहात्म्यसंयुतम् ।
चतुर्विंशत्सहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते ।१८
श्रावण्यां श्रावणे मासि गुड़धेनुसमन्वितम् ।
या दद्यात् वृषसंयुक्तं ब्राह्मणायकुटुम्बिने ।
शिवलोके स पूतात्मा कल्पमेकं वसेन्नरः ।१९
यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्म्मविस्तरः ।
वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते ।२०
सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये ते स्युर्नरोत्तमाः ।
तद्वृत्तान्तोद्भवं लोके तद्भागवतमुच्यते ।२१

इस पुराण को जो कोई पुरुष सुवर्ण की कयश से युक्त करके तथा तिलों से समन्वित ज्येष्ठ मास में दान में दान में देता है वह अश्वमेध यज्ञ के पुण्य-फल को प्राप्त किया करता है।१५। वाराह कल्पके वृत्तान्त का आश्रय लेकर पराशर नें जो समस्त धर्मों का कहा था उससे युक्त वैष्णव जानना चाहिए ।१६। उसको आषाढ़ मास में घृत धेनु से समन्वित करके पूर्णमासी तिथि में जो मनुष्य दान में देता है वह विशेष रूप से पूत आत्मा वाला होकर वारुण पद को प्राप्त किया करता है। बुध लोग इसका प्रमाण तेईस सहस्र पुराण बताया करते हैं।१७। यहाँ पर वायुदेव ने श्वेत कल्प के प्रसङ्गसे धर्मों को बताया था । जिसमें इन धर्मो का कथन कियाथा वही वायनवीय अर्थात् वायुपुराण हुआ था जो भगवान् रुद्र के माहात्म्य से समन्वित था । यह पुराण चौबीस सहस्र श्लोकों की संख्या के प्रणाम वाला पुराण कहा जाता है ।१८। श्रावण मास में श्रावणी पूर्णिमा तिथि में गुड़ और धेनु से समन्वित तथा वृष से संयुत करके जो कोई कुटुम्बी ब्राह्मण के लिए दान में देता है वह मनुष्य पवित्र आत्मा वाला होकर एक कल्प पर्यन्त शिवलोकमें निवास किया करता ।१९। जिसमें गायत्री का अधिकार करके जो धर्म के

विस्तार का वर्णन किया जाता है। वह वृत्रासुर के वध की कथा से युक्त भागवत पुराण कहा जाता है।२०। सारस्वत कल्प के मध्य में जो नरोत्तम हुए थे उनके वृत्तान्त के उद्भव वाले को लोक में उसी को भागवत कहा जाता है।२१।

लिखित्वा तच्च योदद्याद्धेमसिंहसमन्वितम् ।
पौर्णमास्यांप्रौष्ठपद्यां स यातिपरमांगतिम् ।
अष्टादशसहस्राणि पुराणं तत् प्रचक्षते ।२२
यत्राह नारदा धर्मान् बृहत्कल्पाश्रयाणि च ।
पञ्चविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते ।२३
तदिद पञ्चदश्यान्तु दद्याद्धेनुसमन्वितम् ।
परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ।२४
यत्राधिकृत्य शकुनीन् धर्माधर्मविचारणा ।
व्याख्यातावैमुनिप्रश्ने मुनिभिर्धर्मचारिभिः ।२५
मार्कण्डेयेन कथितं तत्सर्वं विस्तरेण तु ।
पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयामिहोच्यते ।२६
प्रतिलिख्यचयोदद्यात् सौवर्णकरिसंयुतम् ।
कार्त्तिक्यांपुण्डरीकस्ययज्ञस्यफलभाग्भवेत् ।२७
यत्तदीशानक कल्पं वृत्तान्तमधिकृत्य च ।
वसिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं तत्प्रचक्षते ।२८

इसको हाथ से लिखकर हेम के सिंह से समन्वित करके जो प्रौष्ठपदी पूर्णिमा तिथि में अर्थात् भाद्रपद मास की पूर्णमासी में दान किया करता है उस मनुष्य की परम गति हो जाया करती है। इस पुराण के अनुष्टुप श्लोकोंका प्रमाण अठारह सहस्र कहा जाता है।२२ जिनमें बृहत् कल्प का आश्रय लेकर देवर्षि नारदजी ने धर्मों का वर्णन किया है। यह नारदीय अर्थात् नारद पुराण कहा जाता है। इसके श्लोकों का प्रमाण पच्चीस सहस्र है। इस पुराण को पूर्णिमा तिथि में

धेनु से समन्वित करके दान में दिया जाता है तो वह दानदाता पुरुष परम सिद्धिको प्राप्त किया करता है जो सिद्धि पुनरावृत्ति दुर्लभ होती है ।२३-२४। जिससे शकुनियों को अधिकृत करके धर्म और अधर्म के विषय में विचार किया है और यह व्याख्यान मुनि के प्रश्न पर धर्मचारी मुनियों के द्वारा ही किया है ।२५। मार्कण्डेय मुनि ने वह सभी कुछ बड़े विस्तार के साथ कहा है । यह पुराण नौ सहस्र अनुष्टुप् श्लोक के प्रमाण वाला है और यहाँ पर यह मार्कण्डेय पुराण के नाम से कहा जाता है ।२६। इस पुराण को हाथ से लिखकर सुवर्ण के निर्मित हाथी सहित जो इसका कोई दान दिया करता है और वह भी कार्तिकी पूर्णिमासी को दिया जाता है तो उस दान के दाता को पुण्डरीक यज्ञ के पुण्य का फल प्राप्त हो जाता है।२७। जो वह ईशानक कल्प का वृतान्त है उसको अधिकृत करके अग्निदेव ने महर्षि वसिष्ठजी से कहा था वही पुराण आग्नेय नामसे प्रसिद्ध है अर्थात् इसी को अग्नि पुराण कहा जाता है ।२८।

लिखित्वा तच्च यो दद्याद्धेमपद्मसमन्वितम् ।
मार्गशीर्ष्यां विधानेन तिलधेनुसमन्वितम् ।
तच्च षोडशसाहस्रं सर्वक्रतुफलप्रदम् ।२९
यत्राधिकृत माहात्म्यमादित्यस्तचतुर्मुखः ।
अघोरकल्पवृत्तान्तप्रसंगेन जगत्स्थितिम् ।
मनवे कथयामास भूतग्रामस्य लक्षणम् ।३०
चतुर्दशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च ।
भविष्यचरितप्रायं भविष्यन्तदिहोच्यते ।३१
तत्पौषेमासियोदद्यात् पौर्णमास्यां विमत्सरः ।
गुड़कुम्भसमायुक्तमग्निष्टोमफलंभवेत् ।३२
रथन्तरस्यकल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य च ।
सावर्णिर्नारदाय कृष्णमाहात्म्यमुत्तमम् ।३३

यत्र ब्रह्मवराहस्य चोदन्तं वर्णितं मुहुः ।
तदष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्त्तमुच्यते ।३४
पुराणं ब्रह्मवैवर्त्तं यो दद्यान्माघमासि च ।
पौर्णमास्यां शुभदिने ब्रह्मलोके महीयते ।३५

इसको हाथ से लिखकर जो हेमनिर्मित पद्म से समन्वित दान देता है । और मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा में धान पूर्वक तिल तथा धेनु से संयुत करके यह दान दिया जाता है तो समस्त ऋतुओंके पुण्य फल को प्रदान करने वाला होता है । इस पुराण के श्लोकों का प्रमाण सोलह सहस्र है ।२६। जिस पुराण में चतुर्मुख भगवान् ने आदित्य देव के माहात्म्य का आश्रय प्राप्त करके अघोर कल्प के वृत्तान्त के प्रसङ्ग से इस जगत की स्थिति को भूतग्राम का लक्षण महाराज मनु से कहा था ।३०। जिसका प्रमाण चौदह सहस्र पाँच सौ है और जिसमें बहुधा भविष्य में होने वाले चरित है उसको ही भविष्य पुराण कहा जाता है ।३१। उसको पौष मास की पूर्णिमा तिथिके दिन विगत मत्सरतावाला होकर दान दिया करताहै और इसके साथ गुड़ कुम्भ भी होना चाहिए तो इस दाता को अग्निष्टोम योग का फल मिला करता है ।३२। रथन्तर एक कल्प है उस कल्प में जो कुछ घटित हुआ उसी वृत्तान्त को अधिकृत करके सावर्णि ने देवर्षि नारद के लिए अत्युत्तम कृष्ण का माहात्म्य बतलाया है जिनमें पुनः ब्रह्मवराह का प्रेरणा किए हुए को वर्णित किया है वह अठारह सहस्र अनुष्टुप् श्लोकों के प्रमाण वाला पुराण ब्रह्मवैवर्त नामसे कहा जाता है।३३-३४। माघ मास की पूर्णिमा तिथि के शुभ दिन में जो कोई इसका लिखकर दान दिया करता है वह ब्रह्म लोक में महान प्रतिष्ठित पदपर अधिष्ठित हुआ करता है।३५

यत्राग्निलिङ्गमध्यस्थः प्राह देवो महेश्वरः ।
धर्मार्थकाममोक्षार्थमाग्नेयधिकृत्य च ।३६
कल्पान्ते लैङ्गमित्युक्त पुराणब्रह्मणा स्वयम् ।

तदेकाशसाहस्रं फल्गुन्यांय: प्रयच्छति ।
तिलधेनुसमायुक्तं स याति शिवसाम्यताम् ।३७
महावराहस्य पुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च ।
विष्णुनाभिहितं क्षोण्यै तद्वाराहमिहोच्यते ।३८
मानवस्य प्रसङ्गेन कल्पस्यमुनिसत्तमा: ।
चतुर्विंशत्सहस्राणि तत् पुराणमिहोच्यते ।३९
काञ्चनं गरुडं कृत्वा तिलधेनुसमन्वितम् ।
पौर्णमास्यां मधौदद्यात् ब्राह्मणायकुटुम्बिने ।
वराहस्य प्रसादेन पदमाप्नोति वैष्णवम् ।४०
यत्र माहेश्वरान्धर्मानधिकृत्य च षण्मुख: ।
कल्पे तत् पूरुषं वृत्तञ्चरितैरुपबृंहितम् ।४१
स्कन्दं नाम पुराणञ्च ह्येकाशीति निगद्यते ।
सहस्राणि शतं चैकमिति मर्त्येषु गद्यते ।४२

जिसमें अग्निलिङ्ग के मध्य में स्थित महेश्वर देव ने अग्नि को अधिकृत करके धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष को कहा है कल्प के अन्त में ब्रह्माजी ने स्वयं यह लैङ्ग पुराण है—ऐसा कहा है। इसका प्रमाण ग्यारह सहस्र श्लोकों का है। इसको लिखकर जो कोईफाल्गुन मासकी पूर्णमासी तिथि में तिल और धेनु से समायुक्त करके दान दिया करता है निश्चय ही भगवान् शिव की साम्यता को प्राप्त हो जाया करताहै। ।३६-३७। फिर माहावराह के माहात्म्य को अधिकृत करके भगवान ने स्वयं पृथ्वी से कहा था उसी को वाराह पुराण-इस नामसे कहा जाया करता है ।३८। हे मुनिसत्तमो ! मानव कल्प के प्रसङ्ग से यहा गया है और इसके श्लोकों का प्रमाण चौबीस हजार है ऐसा यह पुराण कहा है ।३९। एक सुवर्ण का गरुड़ निर्मित कराकर तिल धेनु से उसे संयुत करके मधु मास की पूर्णिमाके दिन किसी कुटुम्बी ब्राह्मण के लिए दान देताहै वह मनुष्य भगवान वराह के प्रसाद से वैष्णव पद को प्राप्तकिया

करता है ।४०। जिसमें माहेश्वर धर्मों का अधिकार करके षण्मुख प्रभु ने कल्प में चरित्तों से उपवृंहित पुरुष वृत्त का वर्णन किया है वही स्कंद नाम वाला पुराण है जिसके अनुष्टुप् श्लोकों का प्रमाण इक्यासीहजार है ऐसा कहा जाता है। एक सौ एक सहस्र है—यह मनुष्यों में कहा जाता है ।४१-४२।

परिलिख्य च यो दद्याद्धेमशूलमन्वितम् ।
शैवं पद्मवाप्नोति मीने चोपागते रवौ ।४३
त्रिविक्रमस्य माहात्म्यमधिकृत्य चतुर्मुखः ।
त्रिवर्गमभ्यधात्तञ्च वामनं परिकीर्त्तितम् ।४४
पुराणं दशसाहस्रं कूर्मकल्पानुगं शिवम् ।
यः शरद्विषुवे दद्याद् वैष्णवं यात्यसौपदम् ।४५
यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले ।
माहात्म्यं कथयामास कूर्मरूपो जनार्दनः ।४६
इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन ऋषिभ्यः शक्रसन्निधौ ।
अष्टादशसहस्राणि लक्ष्मीकल्पानुषङ्गिकम् ।४७
यो दद्यादयने कूर्मं हेमकूर्मसमन्वितम् ।
गौसहस्रप्रदानस्य फलं सम्प्राप्नुयान्नरः ।४८
श्रुतीनां यत्र कल्पादौ प्रवृत्त्यर्थं जनार्दनः ।
मत्स्यरूपेणमानवे नरसिंहोपवर्णनम् ।४९
अधिकृत्याऽब्रवीत्सप्तकल्पवृत्तमुनीश्वराः ।
तन्मात्स्यमिति जानीध्वं सहस्राणिचतुर्दश ।५०

जो कोई हेम के शूल से समन्वित करके इसे लिखकर मीन राशि पर रविके आ आने पर दान दिया करता है वह निश्चय ही शैवके पद को प्राप्त किया करता है ।४३। भगवान त्रिविक्रम के माहात्म्य का आश्रय ग्रहण करके चतुर्मुख प्रभु ने त्रिवर्ग का वर्णन किया है इसी को वामन पुराण कीर्तित किया है । यह कूर्म कल्प का अनुगमन करने

वाला परम शिव पुराण है जिसका प्रमाण दश सहस्र श्लोकों का होता है। जो कोई पुत्र शपद् विषुवमें इसका दान दिया करता है वह वैष्णव पद की प्राप्ति किया करता है।४४-४५। जिसमें भगवान् कूर्म रूपधारी जनार्दन ने धर्म-अर्थ-कर्मों का और रसातल में मोक्ष का माहात्म्य कहा है तथा इन्द्रद्युम्न के प्रसङ्ग से इन्द्र की सन्निधि में ऋषिगण को बताया गया है वह लक्ष्मीकल्प का अनुषङ्गिकहै तथा इसका प्रमाण अठारह सहस्र माना गयाहै। इसको जो भी कोई सुवर्णके द्वारा निर्माण कराये हुए कूर्म से युक्त कूर्म पुराण का दान किया करता है वह मनुष्य एक हजार गौओं के दान करने का पुण्य फल प्राप्त किया करता है। ।४६-४८। जिस कल्प के आदि में भगवान जनार्दन ने श्रुतियों की प्रवृत्ति के लिए मत्स्य के स्वरूप से मनु के लिए नरसिंह भगवान् का वर्णन किया है। हे मुनीश्वरो ! सात कल्पों का हाल का आश्रय लेकर बोला है उसी को मात्स्य जानलो। इसका प्रमाण चौदह सहस्र होता है।४९-५०।

विषुवे हेममत्स्येन धेन्वा चैव समन्वितम्।
योदद्यात्पृथिवी तेन दत्ताभवति चाखिला।५१
यदा चगारुडेकल्पेविश्वाण्डात् गरुडोद्भवम्।
अधिकृत्याऽब्रवीत्कृष्णोगारुडं तदिहोच्यते।५२
तदष्टादशकञ्चैव सहस्राणीह पठ्यते।
सौवर्णं हंससंयुक्तं यो ददाति: पुमानिह।
स सिद्धिं लभते मुख्यां शिवलोके च संस्थितिम्।५३
ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत् पुन:।
तच्चद्वादशसाहस्रं ब्रह्मांडंद्विशताधिकम्।५४
भविष्याणाञ्च कल्पानां श्रूयते यत्र विस्तर:।
तद्ब्रह्माण्डपुराणञ्च ब्रह्मणा समुदाहृतम्।५५
दद्यात्तद्व्यतीपाते पीतोर्णायुगसंयुतम्।

राजसूयसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ।
हेमधेन्वा युतं तच्च ब्रह्मलोकफलप्रदम् ।५६

जो कोई पुरुष विषुव में हेम का निर्मित मत्स्य और धेनु के सहित इसका दान दिया करता है उसका इतना बड़ा पुण्य होताहै मानों उसने सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल का ही दान कर दिया हो ।५१। जिस समय में गारुड़ कल्प में इस विश्वाण्ड से गरुड़का उद्भव हुआ था उसीको अधिकृत करके भगवान श्री कृष्ण ने कहा उसी पुराण को गरुण पुराणकहा जाता है । वह भी अठारह सहस्र ही प्रमाण वाला पढ़ा जाता है इस लोक में जो कोई दानशील मानव सुवर्ण का एक हंस का निर्माण करके उसके साथ इस पुराण का दान देता है वह परम मुख्य सिद्धि को प्राप्त करता है और फिर शिवलोक में संस्थिति प्राप्त किया था ।५२-५३। ब्रह्माजी ने ब्रह्माण्ड ते माहात्म्य का अधिकार करके पुनः बोला है वह दो सौ बारह सहस्र प्रमाण वाला ब्रह्माण्ड पुराण है । भविष्य कल्पोंका विस्तार जिसमें श्रवण किया जाता है । वह ब्रह्माण्ड साक्षात् स्वयं ब्रह्माजी ने ही उदाहृत किया है । इसको जो भी कोई भी कोई पीत ऊन के युग से संयुत करके व्यतीयात में दान में देता है वह पुरुष एक सहस्र राजसूय यज्ञों के पुण्य-फलों की प्राप्ति किया करता है । हेमकी धेनु के पुण्य-फलों की प्राप्ति किया करता है । हेमकी धेनु के सहित उसका दान ब्रह्मलोक के फल को प्रदान करने वाला होता है।५४-५६।

चतुर्लक्षमिदं प्रोक्तव्यं सेनाद्भुतकर्म्मणा ।
मत्पितुर्मम पित्रा च मया तुभ्यं निवेदितम् ।५७
इह लोकहितार्थाय संक्षिप्तं परमर्षिणा ।
इदमद्यापि देवेषु शतकोटिप्रविस्तरम् ।५८
उपभेदान् प्रवक्ष्यामि लोके ये सम्प्रतिष्ठिताः ।
पद्मे पुराणे तत्रोक्तं नरसिंहोपवर्णनम् ।
तच्चाष्टादशसाहस्रं नारसिंहमिहोच्यते ।५९

नन्दाया यत्र माहात्म्यं कार्तिकेयेन वर्ण्यते ।
नन्दीपुराणं तल्लोकैराख्यातमिति कीर्त्यते ।६०
यत्र शाम्बं पुरस्कृत्यभविष्येऽपिकथानकम् ।
प्रोच्यतेतत्पुनर्लोके शाम्बमेतन्मुनिव्रता: ! ।६१
पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधा: ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुराणानामनुक्रमम् ।
एवमादित्यसंज्ञा च तत्रैव परिगद्यते ।६२
अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणंयत्प्रदिश्यते ।
विजानीध्वंद्विजश्रेष्ठा ! स्तदेतेभ्योविनिर्गतम् ।६३

अद्भुत कर्मों वाले भगवान कृष्ण द्वैपायन व्यास जी ने इसको चार लाख प्रमाणवाला बतलायाहै, मेरे पितामहने पिताजीको पिताजी ने मुझको मैंने आप से निवेदित कर दिया है ।५७। परमहर्षि ने लोकके हित का सम्पादन करनेके लिए इसको संक्षिप्त किया है । वह आजभी देवों में सौ करोड़ विस्तार से सम्पन्न है ।५८। अब इसके उपभेदों को बतलाऊँगा जोकि लोक सम्प्रतिष्ठित हैं । वहाँ पाद्म पुराणमें नरसिंह भगवान का अवर्णन किया गया है । उसका प्रमाण अठारह सहस्र है और यहाँ पर वह नारसिंह पुराण के नाम से कहा जाता है ।५९। जिनमें नन्दा के माहात्म्य को स्वामी कार्त्तिकेय भगवान् के द्वारा वर्णन किया जाता है उसी को लोगोंके द्वारा नन्दी पुराण नाम से कहाजाता है—ऐसा ही कीर्तन किया जाता है ।६०। जिसमें भगवान् शाम्ब को पुरस्कृत करके भविष्य में कथानक है ऐसा कहा जाता है कि वह पुनः लोक में हे मुनिव्रतो ! शाम्ब-इस नाम वाला हो गया है । परम पुरातन कल्प के पुराणों को बुध पुरुष जानते हैं । पुराणोंका अनुक्रम परम कल्प के पुराणों को बुध पुरुष जानते हैं । यह पुराणों का अनुक्रमपरम धन्य-आयु की वृद्धि करने वाला है । इस प्रकार से वहीं पर आदित्य संज्ञा भी कही जाती है ।६१-६२। अठारह पुराणों से पृथक् पुराण

जो भी कुछ प्रविष्य किया जाता है हे द्विजश्रेष्ठो ! उसे इन्हीं पुराणों विनिर्गत हुआ समझ लेना चाहिए ।६३।

पञ्चाङ्गानि पुराणेषु आख्यानकमिति स्मृतम् ।
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ।६४
ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां माहात्म्यं भुवनस्य च ।
ससंहारप्रदानाञ्च पुराणे पञ्चवर्णके ।६५
धर्म्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैवात्र कीर्त्यते ।
सर्वेष्वपि पुराणेषु तद्विरुद्धञ्जयत्फलम् ।६६
सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः ।
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्राह्मणोविदुः ।६७
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च ।
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितॄणाञ्च निगद्यते ।६८
अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः ।
भारताख्यानमखिलञ्चक्रे तदुपबृंहितम् ।
लक्षणैकेन यत् प्रोक्तं वेदार्थपरिबृंहितम् ।६९
वाल्मीकिना तु यत् प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम् ।
ब्रह्मणाऽभिहितं यच्च शतकोटिप्रविस्तरम् ।७०

इन समस्त पुराणों के पाँच अङ्ग हुआ करते हैं जो आख्यानक कहा गयाहै । सर्ग—प्रतिसर्ग—वंश और मन्वन्तर तथा वंशों का अनुचरित जिनमें होता हैं—वही पुराण कहा जाताहै और यही पुराणों का पञ्च लक्षण होता है ।६४। ब्रह्मा-विष्णु-सूर्य और रुद्र इनका माहात्म्य और भुवन का ससंहार प्रदानोंका वर्णन होता है जो भी उपर्युक्त पाँच वर्ण वाला पुराण होता है अर्थात् जिसके पाँचों लक्षण हों ऐसा पुराण होता है ।६५। इसमें धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष का कीर्तन किया जाया करता है । सभी पुराणों में उसके विरुद्ध जो फल है सात्विक पुराणों

में हरिका माहात्म्य ही अधिक होता है। जो राजस पुराण होते हैं उन में ब्रह्माजी का माहात्म्य अधिक होता है। उसी भाँति तामस पुराणोंमें अग्निका और शिव का माहात्म्य अधिकांश रूपसे हुआ करता है। जो संकीर्ण पुराण हैं उनमें सरस्वती देवी का तथा पितृगण का माहात्म्य अधिक कहा जाया करता है।६६-६८। सत्यवती के पुत्र भगवान श्री कृष्ण द्वैपायन मुनि ने अठारह पुराणों की रचना करके उनसे समुपबृंहित सम्पूर्ण भारत के आख्यान का वर्णन किया है जो एक लक्षण से वेदों के अर्थ से परिबृंहित ही बनाया है अर्थात् कहा है।६९। वाल्मीकि महर्षि ने जो परमोत्तम श्रीराम का आख्यान कहा है और जो ब्रह्माजी ने कहा है वह सौ करोड़ विस्तार वाला है।७०।

आहृत्य नारदायैव तेन वाल्मीकये पुनः ।
वाल्मीकिनाच लोकेषु धर्मकामार्थसाधनम् ।
एवं सपादाः पञ्चैते लक्षा मर्त्ये प्रकीर्तिताः ।७१
पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुराणानामनुक्रमम् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि स याति परमाङ्गतिम् ।७२
इदं पवित्रं यशसो निधानं इदं पितृणामतिवल्लभञ्च ।
इदञ्च देवेष्वमृतायितञ्च नित्यंत्विदं पापहरञ्च पुंसाम्।७३

उसका आहरण करके नारद के लिए और फिर उसने वाल्मीकि के लिए कहा था और फिर इसके पश्चात् आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने लोगों में इसको धर्म कामार्थका साधन स्वरूप कहा था। इस प्रकार से ये सभी सवा पाँच लाख की संख्या वाले हैं जो इस मनुष्य लोक में प्रकीर्त्तित किये जाते हैं।७१। परम प्राचीन कल्प में जो भी पुराण हुए हैं उनको तो विद्वान पुरुष ही जानते हैं। यह अवश्य ही है कि ऐसा यह पुराणों का जो अनुक्रम है वह परम धन्य है—आयु के वर्धन करने वाला तथा यश को वृद्धि प्रदान करने वाला है।७२। इन पुराणों का

जो भी कोई भाग्यशाली पुरुष पठन किया करता है या इनका केवल श्रवण ही करता वह निश्चित रूप से परम गति को प्राप्त करता है ।७२। यह परम पवित्र है—यश की खान है और यह पितृगण का अत्यन्त प्यारा होता है । यह देवों में अमृतायित होता है और पुरुषों का यह नित्य ही पापों के हरण करने वाला होता है ।७३।

३२—नक्षत्र पुरुष नाम व्रत कथन

अत: परं प्रवक्ष्यामि दानधर्मानशेषत: ।
व्रतोपवाससंयुक्तान् यथा मत्स्योदितानिह ।१
महादेवस्य संवादे नारदस्य च धीमत: ।
यथा वृतं प्रवक्ष्यामि धर्म्मकामार्थसाधकम् ।२
कैलासशिखरसीनमपृच्छन्नारद: पुरा ।
त्रिनयनमनङ्गारिमनङ्गाङ्गहर हरम् ।३
भगवन् ! देव ! देवेश ! ब्रह्मविष्ण्वन्द्रनायक ! ।
श्रीमदारोग्यरूपायुर्भाग्यसौभाग्यसम्पदा ।
संयुक्तस्तव विष्णोर्वा पुमान् भक्ता कथं भवेत् ।४
नारीवाविधवासर्वगुणसौम्यसंयुता ।
क्रमान्मुक्तिप्रदन्देव ! किञ्चिद्व्रतमिहोच्यताम् ।५
सम्यक् पृष्टं त्वयाब्रह्मन् ! सर्वलोकहितावहम् ।
श्रुतमप्यत्र यच्छान्त्यं तद्व्रतश्शृणुनारद ! ।६
नक्षत्रपुरुषं नामव्रतं नारायणात्मकम् ।
पादादि कुर्याद्विधिवत् विष्णुनामानुकीर्तनम् ।७

महामहिम महर्षि श्री सूतजी ने कहा—इससे आगे अब हम दान के धर्मों को पूर्ण रूप से कहता हूँ जो कि व्रत और उपवासों से ही

समन्वित हैं। जिस प्रकार से भगवान मत्स्य ने यहाँ पर कहे हैं ।१। श्रीमान् देवर्षि नारद के और महादेव के सम्वाद में जो जिस तरह से धर्मार्थ काम का साधक हुआ था उसे ही मैं कहता हूँ ।२। परम प्राचीन समय की बात है जब कि देवर्षि नारदजी ने कैलास गिरि के शिखर पर समासीन—तीन नेत्रों वाले–अनङ्ग को भस्म करने वाले तथा अनङ्ग के अङ्गों का हरण करने वाले–भगवान हर से पूछा था ।३। देवर्षि नारद जी ने कहा—हे भगवान् ! हे देव ! हे देवों के स्वामिन ! आप तो ब्रह्मा–विष्णु और इन्द्र इन सबके नायक हैं यथा श्रीमान्—आयु, आरोग्य, रूप, भाग्य और सौभाग्य की सम्पदा से संयुत हैं। कृपया यह बतलाइये कि आपका तथा भगवान् विष्णु का भक्त पुरुष कैसे होता है ? ।४। हे देव ! नारी चाहे वह विधवा हो अथवा सर्वगुण और सौभाग्य से संयुक्त हो, आप ऐसा कोई व्रत बतलाइए जो क्रम से मुक्ति के प्रदान करने वाला हो ।५। ईश्वर ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने इस समय में यह बहुतही श्रेष्ठ प्रश्न पूछा है। यह सभी लोकों के हित का आवाहन करने वाला है। यहाँ पर शान्ति के लिए ऐसा श्रुत भी किया है। हे नारद ! उसी व्रत का श्रवण करो ।६। एक नक्षत्र व्रत नाम वाला व्रत है जो साक्षात् नारायण के स्वरूप से परिपूर्ण है। इसका पादादि विधिपूर्वक विष्णु नामों का अनुकीर्तन करे। ।७।

प्रतिमां वासुदेवस्यमूलर्क्षादिषु चार्चयेत् ।
चैत्रमासं समासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।८
मूले नमो विश्वधराय पादौ गुल्फावनन्ताय च रोहिणीषु ।
जंघेऽभिपूज्ये वरदाय चैव द्वे जानुनी वाश्विकुमार ऋक्षे ।९
पूर्वोत्तराषाढयुगे तथोरू नमः शिवायेत्यभिपूजनीयौ ।
पूर्वोत्तराफल्गुनि युग्मके च मेढ्रं नमःपञ्चशराय पूज्यम्।१०
कटिं नमः शार्ङ्गधराय विष्णोः संपूजयेन्नारद ! कृत्तिकासु।

यथार्च्चयेत् भाद्रपदाद्वये च पार्श्वं नमः केशिनिषूदनाय ।११
कुक्षिद्वयं नारद ! रेवतीषु दामोदरायेत्यभिपूजनीयम् ।
ऋक्षेऽनुराधासु च माधवाय नमस्तथोरस्थलमेव पूज्यम् ।१२
पृष्ठं धनिष्ठासु च पूजनीयमघौघविध्वंसकराय तच्च ।
श्रीशङ्खचक्रासिगदाधराय नमो विशाखासु भुजाश्च पूज्याः ।१३
हस्ते तु हस्ता मधुसूदनाय नमोऽभिपूज्या इति कैटभारेः ।
पुनर्वसावङ्गुलिपूर्वभागाः साम्नामधीशाय नमोऽभिपूज्याः ।१४

मूल नक्षत्र आदि में भगवान् वासुदेव की प्रतिमा का अर्चन करना चाहिए । जब चैत्र मास आ जावे तो उसको प्राप्त करके ही ब्राह्मणों का वाचन करना चाहिए । इसमें प्रत्येक नक्षत्र में भगवान के प्रत्येक अङ्गों का अभ्यर्चन करे । मूल नक्षत्र में विश्वधर के लिए उनके चरणों को नमस्कार करे । अनन्त भगवान् के लिए उनके गुल्फों को रोहिणी नक्षत्रों में समर्पित करना चाहिए । अश्विनी नक्षत्र में वरद प्रभु के लिए उनकी दोनों जघाओं का तथा जानुओं का अभिपूजन करे ।८।९। पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा इन दोनों नक्षत्रों में भगवान् शिव के लिए उनके दोनों ऊरुओं का पूजन करना चाहिए । पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी—इन दोनों नक्षत्रों में पञ्चशर प्रभु के मेढ्र का पूजन करे ।१०। हे नारद ! कृत्तिका आदि नक्षत्रों में शार्ङ्गधर भगवान् विष्णु की कटि का अर्चन करना चाहिए । पूर्वा भाद्रपद और उत्तरा भाद्रपद इन दोनों नक्षत्रोंमें भगवान केशिनषूदन को नमस्कार करे और उनके दोनों पार्श्वों का पूजन करना चाहिए ।११। हे नारद ! रेवती नामक नक्षत्र से भगवान दामोदर की दोनों कुक्षियों का अर्चन करे । अनुराधा नक्षत्र में माधव प्रभु को नमस्कार कर उसके उरास्थल का अभिपूजन करना चाहिए ।१२। अघों के ओघ का विध्वंश करने वाले प्रभु के पृष्ठ भाग या यजन धनिष्ठाओं में करे । श्री शंख, चक्र, असि, और गदा के धारण करने वाले प्रभु को नमन करके विशाखा नक्षत्र में

उनकी भुजाओं का पूजन करना चाहिए ।१३। हस्त नक्षत्र में कैटभ के अरि प्रभु मधुसूदन के लिए नमस्कार कर हाथों का पूजन करे। सामों के अधीश प्रभु को नमस्कार पुनर्वसु नक्षत्र में उनके अंगुलियों के पूर्व भागों का अभिपूजन करना चाहिए ।१४।

भुजङ्गनक्षत्रदिने नखानि संपूजयेन्मत्स्यशरीरभाजः ।
कूर्मस्य पादौ शरणं व्रजामि ज्येष्ठासु कण्ठे हरिरर्चनीयः ।१५
श्रोत्रे वराहाय नमोऽभिपूज्या जनार्दनस्य श्रवणेन सम्यक् ।
पुष्पे मुखं दानवसूदनाय नमो नृसिंहाय च पूजनीयम् ।१६
नमोनमः कारणवामनाय स्वातीषु दन्ताग्रमथार्चनीयम् ।
आस्यं हरेर्भार्गवनन्दनाय सम्पूजनीयं द्विजवारणे तु ।१७
नमोऽस्तु रामाय मघासु नासा संपूजनीया रघुनन्दनस्य ।
मृगोत्तमाङ्गे नयनेऽभिपूज्ये नमोऽस्तुते रामविघूर्णिताक्ष ! ।१८
बुद्धाय शान्ताय नमो ललाटं चित्रासु संपूज्यतमं मुरारेः ।
शिरोऽभिपूज्यंभरणीषुविष्णोर्नमोऽस्तुविश्वेश्वर!कल्किरूपिणे।१९
आर्द्रासु केशाः पुरुषोत्तमस्यसम्पूजनीया हरये नमस्ते ।
उपोषिते नर्क्षदिनेषु भक्तया द्विजपुङ्गवाः स्युः ।२०

भुजङ्ग नक्षत्र के दिन में मत्स्य स्वरूप के धारण करने वाले भगवान् के नखों का पूजन करना चाहिए। भगवान् कूर्म के चरणों की शरणागति में जाता हूँ—यह निवेदन करते हुए ज्येष्ठा नक्षत्र में भगवान् हरि के कण्ठ का समर्चन करना चाहिए ।१५। श्रवण नक्षत्र में वराह के लिए नमन करके जनार्दन प्रभु के श्रोत्रों का भली भाँति पूजन करे। पुष्य नक्षत्र में दानवों के सूदन करने वाले प्रभु को प्रणाम करके और नृसिंह प्रभु को नमस्कार करके उनके श्री मुख का पूजन करना चाहिए ।१६। स्वाती नक्षत्र में कारण के अर्थ वामन स्वरूप धारण करने वाले प्रभु को बारम्बार नमस्कार करके उसके दन्तों के अग्रभाग का पूजन करे। भार्गव नन्दन के लिए नमन करके द्विज वारण में भगवान् हरिके

आस्य का भली भाँति अर्चन करना चाहिए।१७। राघवेन्द्र श्रीराम के लिए नमस्कार हो—इस मन्त्र का उच्चारण करके मघा नक्षत्र में श्री रघुनन्दन भगवान् की नासिका का पूजन करना चाहिए। हे विघूर्णित नेत्रों वाले श्रीराम ! आपकी सेवा में नमस्कारसमर्पित हो-यह प्रार्थना करते हुए मृगोत्तमाङ्ग में भगवान् के दोनों नयनों का पूजन करे।१८। परम शान्त स्वरूप भगवान् बुद्ध के लिए नमस्कार है—यह कहकर चित्रा नक्षत्र में मुरारि प्रभु के ललाट का भली भाँति पूजन करना चाहिए। हे विश्वेश्वर ! कल्कि रूप वाले आपके लिए नमस्कार है—यह मन्त्र उच्चारण करके भरणी नक्षत्र में भगवान् विष्णु के शिर का अशिपूजन करना चाहिए।१९। भगवान् हरि के लिए नमस्कार है-यह कहकर आर्द्रा नक्षत्र में पुरुषोत्तम प्रभु के कशों का समर्चन करे उपोषित होने पर ऋक्ष दिनों में भक्ति की भावना से द्विज श्रेष्ठों का अच्छी रीति से पूजन करना चाहिए।२०।

३३—आदित्य शयन व्रत कथन

उपवासेष्णशक्तस्य तदेव फलमिच्छतः।
अनभ्यासेन रोगाद्वा किमिष्टं व्रतमुत्तमम्।१
उपवासेऽप्यशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते।
यस्मिन् व्रते तदप्यत्र श्रूयतामक्षयं महत्।२
आदित्यशयनं नात यथावच्छङ्कराचनम्।
येषु नक्षत्रयागेषु पुराणज्ञा प्रचक्षते।३
यदा हस्तेन सप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत्।
सूर्य्यस्य चाथ संक्रान्तिस्तिथिः सा सार्वकामिकी।४
उमामहेश्वरस्यार्चामर्चयेत् सूर्यनामभिः।
सूर्य्यार्चां शिवलिङ्गे च प्रकुर्वन् पूजयेद्यतः।५

उमापतेरवेर्वापि न भेदोदृश्यते क्वचित् ।
यस्मात्तस्मान्मुनिश्रेष्ठ ! गृहे शम्भुं समर्चयेत् ।६
हस्ते च सूर्य्याय नमोऽस्तु पादावर्काय चित्रासु सु गुल्फदेशम् ।
स्वातीषु जङ्घे पुरुषोत्तमाय धात्रे विशाखासु च जानुदेशम् ।७

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—यदि कोई उपवास करने में ससमर्थ हो और फल वही चाहता हो तो उसके लिए कौन सा व्रत इष्ट एवं उत्तम होता है। उपवास करनेमें अशक्तता अभ्यास के न होनेसे अथवा किसी भी रोग के कारण हो सकती है ।१। ईश्वर ने कहा—जो दिनभर का पूरा उपवास न कर सकें उनको रात्रि में एक बार भोजन करना भी अभीष्ट हो जाता है। जो अहोरात्र के पूरे व्रत का फल होता है वही इसमें भी होता है। इसका अक्षय महत् श्रवण करो ।२। आदित्य शयन नाम वाला व्रत यथारीति भगवान शङ्करको समर्चन है। पुराणों के ज्ञाता विद्वान जिन नक्षत्रों के योगों में वह होता है उसे कहते हैं ।३। जिस समय में हस्त नक्षत्र के साथ सप्तमी तिथि में आदित्य का दिन होवे और सूर्य की संक्रान्ति होवे तो वह तिथि समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली है ।४। उमा और महेश्वरी की अर्चा को सूर्य के नामों से अचित करना चाहिए। और सूर्य की अच को शिव के लिङ्ग में करता हुआ पूजना चाहिए ।५। उमा के पति भगवान् शिव का और रवि का कहीं पर भी कोई भेद नही दिखलाई देता है। इस कारण से हे मुनिश्रेष्ठ ! गृह में शम्भु का यजन करना चाहिए ।६। हस्त नक्षत्र में भगवान् सूर्य के लिए नमस्कार हो यह उच्चारण कर चरणों का पूजन करे। चित्रा नक्षत्र में अर्क के लिए नमस्कार हो—यह कहकर गुल्फ देश का अर्चन करना चाहिए। स्वाती में पुरुषोत्तम के लिए नमस्कार है—इसके द्वारा दोनों जंघाओं का पूजन करे और विशाखा में धाता के लिए नमस्कार हो—इससे जानु देश का पूजन करे ।७।

तथानुराधासु नमोऽभिपूज्यमूरुद्वयञ्चैव सहस्रभानोः ।

ज्येष्ठास्वनङ्गाय नमोऽस्तु गुह्यमिन्द्राय सोमाय कटी च मूले ।८
पूर्वोत्तरषाणढयुगे च नाभिन्त्वष्ट्रे नमः सप्ततुरङ्गमाय ।
तीक्ष्णांशवे च श्रवणे च चक्षौ पृष्ठं धनिष्ठासु विकर्तनाय ।९
चक्षुस्थलं ध्वान्तविनाशनाय जलाधिपर्क्षे परिपूजनीयम् ।
पूर्वोत्तराभाद्रपदाद्वये च बाहू नमश्चण्डकराय पूज्यौ ।१०
साम्नामधीशाय करद्वयञ्च संपूजनीयं द्विज ! रेवतीषु ।
नखानि पूज्यानि तथाश्विनीषु नमोऽस्तु सप्ताश्वधुरन्धराय ।११
कठोरधाम्ने भरणीषु कण्ठं दिवाकरायेत्यभिपूजनीया ।
ग्रीवाग्नि ऋक्षे श्ररमम्बुजेशे संपूजयेन्नारद ! रोहिणीषु ।१२
मृगोत्तमाङ्गे दशना मुरारेः संपूजनीया हरये नमस्ते ।
नमः सवित्रे रसना शङ्करे च नासाभिपूज्या च पुनर्वसौ च ।१३
ललाटमम्भोरुहवल्लभाय पुष्पेलकावेदशरीरधारिणे ।
शर्वेऽथ मौलिं विबुधप्रियास मघासु कर्णाविति गो गणेशे ।१४

तथा अनुराधा नक्षत्र में नमस्कार करके सहस्रभानु के दोनों ऊर्ध्वों का अभिपूजन करना चाहिए। ज्येष्ठा नक्षत्र में अनंग में लिए नमस्कार होवे—इसके द्वारा गुह्य का यजन करे। इन्द्र सोम के लिए नमस्कार होवे—कोटि और मूल में पूजन करे।८। पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा इन दोनों में त्वष्टा के लिये तथा सप्ततुरंगमों वाले के लिए नमस्कार होवे—यह उच्चारण करके नाभि का पूजन करे। श्रवण में तीक्ष्ण किरण वाले के लिए नमस्कार अर्पित होवे—इससे कुक्षि में पूजन करे तथा धनिष्ठामें विकर्त्तन के लिए नमस्कार हो—इसके द्वारा पृष्ठ भागका अर्चन करना चाहिए।९। ध्वान्तर (अन्धकार) के विनाश करने वाले के लिए प्रणाम समर्पित होवे—यह कहकर चक्षु स्थल का पूजन करे और इस अर्चना को जलाधिप नक्षत्र में करना चाहिए। पूर्वा भाद्रपदा में और उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र में चंड करनेके लिए नमस्कार हो-इसके द्वारा दोनों बाहुओंका पूजनकरना चाहिए।१०। हेद्विज

रेवती में सामों के अधीश के लिए नमस्कार हो-इस मन्त्र को कहकर दोनों करों का पूजन करना चाहिए। तथा अश्विनी में सात अश्वों से धुरन्धर को प्रणाम अर्पित हो—इसके द्वारा नखों का अभ्यर्चन करे। ।११। भरणी से कठोर धाम दिवाकर की सेवा में नमस्कार होवे—इसे कहकर कष्ट का अभिपूजन करे और अग्नि नक्षत्र में ग्रीवा का यजन करना चाहिए। हे नारद ! रोहिणी में अम्बुनेश को प्रणाम हो—इससे घर का पूजन करे ।१२। मृगोत्तमाङ्क में हरि को नमन हो—इससे मुरारि के दर्शनों का यजन करना चाहिए। पुनर्वसु में सविता के लिए नमस्कार हो—इसके द्वारा रसना का तथा शङ्कर को नमस्कार हो—इससे नासिका का अभिपूजन करना चाहिए ।१३। अम्भोरुहों के वल्लभ के लिए नमस्कार हो—इसके द्वारा पुष्य नक्षत्र में ललाट का पूजन करे। वेदों के शरीर को धारण करने वाले को प्रणाम होवे—इससे शाप में पूजन करें। विबुधों के प्रिय के लिए नमस्कार हो-इससे भौतिका यजन करे और मघा में गणेश को प्रणाम हो—इससे दोनों कानों का पूजन करना चाहिए ।१४।

पूर्वासु गोब्राह्मणवन्दनाय नेत्राणि सम्पूज्यतमानि शम्भोः ।
अथोत्तराफाल्गुनि भे भ्रुवौ च विश्वेश्वरायेति च पूजनीये ।१५
नमोऽस्तु पाशङ्कुशशूलपद्मकपालसर्पेन्दुधनुर्धराय ।
गजासुरानङ्गपुरान्धकादिविनाशमूलाय नमः शिवाय ।१६
इत्यादि चास्त्राणि च नित्यं विश्वेश्वरायेति शिराभिपूज्य ।
भोक्तव्यमत्रैवमतैलशाकंममांसमक्षारमभुक्तशेषम् ।१७

पूर्वा फाल्गुनी में गौ और ब्राह्मणों के वन्दन के लिए नमस्कार है इसे कहकर शम्भु के नेत्रों का भली-भाँति से पूजन करे। इसके अनन्तर उत्तराफाल्गुनी में विश्वेश्वर के लिए नमस्कार हो—इस मन्त्र के द्वारा दोनों भ्रुवों का पूजन करना चाहिए ।१५। पाश-अंकुश-शूल-पद्म कपाल-सर्प-इन्दु और धनुष धारण करने वाले तथा गज-

असुर, अनङ्ग, पुर, अन्धक आदिके विनाश करने के मूल भगवान् शिव के लिए नमस्कार समर्पित होवे---इस मन्त्रके द्वारा इत्यादि अङ्गों का पूजन करके विश्वेश्वर के लिए प्रणाम है---इससे शिरा का अभिपूजन करे और फिर यहाँ पर ही तैल शाक-माँस और क्षार से रहित अभुक्त शेष का भोजन करना चाहिए ।१६-१७।

३४—रोहिणीचन्द्र शयन व्रत कथन

दीर्घायुरारोग्यकुलाभिवृद्धियुक्तः पुमान् भूपकुलायतः स्यात्।
मुहुर्मुहुर्जन्मनि येन सम्यक् व्रतं समाचक्ष्व तदिन्दुमौले ! ।१

त्वया पृष्टमिदं सम्यक् उक्तञ्चाक्षय्यकारकम् ।
रहस्यं तव वक्ष्यामि यत्पुराणविदोविदुः ।२
रोहिणीचन्द्रशयनं नामव्रतमिहोत्तमम् ।
तस्मिन्नारायणस्यर्च्यामिच्चयेदिन्दुनामभिः ।३
यदा सोमदिने शुक्ला भवेत् पञ्चदशी क्वचित् ।
अथवा ब्रह्मनक्षत्रं पौर्णमास्यां जायते ।४
तदा स्नानं नरः कुर्यात् पञ्चगव्येन सर्षपैः ।
आप्यायस्वेति तु जपेत् विद्वानष्टशत पुनः ।५
शूद्रोऽपि परया भक्तयापाषण्डलापवर्जितः ।
सोमाय वरदायाथ विष्णवे च नमोनमः ।६
कृतजप्यः स्वभवनादागत्य मधुसूदनम् ।
पूजयेत् फलपुष्पैश्च सोमनामानि कीर्तयन् ।७

देवर्षि नारदजी ने कहा---बार-बार जन्म में जिससे भली भाँति से पुरुष दीर्घ आयु वाला---स्वस्थता से सम्पन्न तथा कुल की अभिवृद्धि से युक्त और भूप के कुल से संयुत होता है हे इन्दु को मौलि में धारण करने वाले ! उस व्रत को आप कहने की दया कीजिए ।१। श्रीभगवान्

ने कहा—आपने यह बहुत ही अच्छा पूछ लिया है इसको अक्षय कारक बतलाया है। अब उसका जो रहस्य है उसे बतलाता हूँ जिसे पुराणोंके ज्ञाता विद्वान् जानते हैं।२। रोहिणी चन्द्र शयन नाम वाला व्रत यहाँ पर एक अति उत्तमव्रत है। उसव्रत में भगवान् नारायणकी अर्चा होती है जो इन्दु के नामों के द्वारा अर्चन करना चाहिए।३। जब भी किसी समय में सोमवार के दिन में मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चदशी पूर्णिमा तिथि हो अथवा ब्रह्म नक्षत्र पूर्णमासी होता हो उस समय में मनुष्यको सर्षप (सरसों) और पञ्चगव्य से स्नान करना चाहिए। फिर विद्वान् पुरुष को 'आप्यायस्व'—इत्यादि मन्त्र का एक सौ आठ बार जाप करना चाहिए।४-५। यदि कोई शूद्र वर्ण वाला भी हो तो उसको भी पराकाष्टि की भक्ति से पाषण्ड और आलाप से रहित 'वरदान देने देने वाले सोम और विष्णु के लिए बारम्बार प्रणाम है'—इसका जप करके अपने भवन आकर सोम के नामों का कीर्तन करते हुए फल-पुष्पों के द्वारा भगवान् मधुसूदन का पूजन करना चाहिए।६-७।

सोमाय शान्ताय नमोऽस्तु पादावनन्तधाम्नेति च जानुजंघे।
ऊरुद्वयञ्चापि जलोदराय सम्पूजयेन्मेढ्रमनन्तबाहवे।८
नमो नमः कामसुखप्रदाय कटिः शशाङ्कस्य सदार्चनीया।
तथोदरञ्चाप्यमृतोदराय नाभिः शशाङ्काय नमोऽभिपूज्या।९
नमोऽस्तु चन्द्राय मुखञ्च पूज्यं दन्ता द्विजानामधिपाय पूज्याः।
हास्यं नमश्चन्द्रमसेऽभिपूज्यमोष्ठौ कुमुद्वन्तवनप्रियाय।१०
नासा च नाथाय वनौषधानां आनन्दभूताय पुनर्भ्रुवौ च।
नेत्रद्वयं पद्मनिभन्तयेन्दारिन्दीवरश्यामकराय शौरेः।११
नमः समस्ताध्वरवन्दिताय कर्णद्वयं दैत्यनिषूदनाय।
ललाटमिन्दोरुदधिप्रियायकेशाः सुषुम्नाधिपते पूज्याः।१२
शिरः शशाङ्काय नमो मुरारेर्विश्वेश्वरायेति नमः किरीटिने।
पद्मप्रिये रोहिणि नाम लक्ष्मीःसोसायसौख्यामृतचारुकाये।१३

देवीं संपूज्य सुगन्धपुष्पैर्नैवेद्यपुष्पादिभिरिन्दुपत्नीम् ।
सुप्त्वाऽथ भूमौ पुनरुत्थितेन स्नात्वा च विप्रायहविष्ययुक्तः।१४

पूजन करने का क्रम और प्रत्येक अङ्ग तथा उनके अर्चन करने के भिन्न-भिन्न मन्त्रों को बतलाते हुए कहते हैं—शान्त सोमके लिए प्रणाम है इसे कहकर मधुसूदन के सर्व प्रथम चरणों का अभ्यर्चन करे । अनन्त-धाम वाले को नमस्कार है—इससे जानु और जंघाओं का यजन करे । जलोदर को नमन है—इसके द्वारा दोनों उरुओंको पूजे । अनन्त बाहुओं वाले की सेवा में प्रणाम है—इससे मेढ़ू का अर्चन करे ।८। काम के सुख को प्रदान करने वाले के लिए बारम्बार नमस्कार है—इस मंत्र से सर्वदा शशाङ्क की कटि अर्चन करना चाहिए । अमृतोदर की सेवा में प्रणाम अर्पित है—इससे उदर का अभ्यर्चन करे और शशाङ्क के लिए नमस्कार है—इसे कहकर नाभि का पूजन करे ।९। चन्द्र को प्रणाम है—इससे मुख और द्विजों के आधिप के लिये नमस्कार है—इसके द्वारा दाँतों का पूजन करना चाहिए । चन्द्रमस को प्रणाम है—इससे हास्य कुमुदों के वन के परम प्रिय की वन्दना है—इसका उच्चारण करके दोनों होठों का पूजन करना चाहिए ।१०। वनौषधियों के नाथ की वन्दना है इसके द्वारा तथा फिर आनन्द स्वरूप को नमस्कार है—इससे पुनः दोनों भौंहों का यजन करे । इन्दीवर के समान श्याम करों वाले को प्रणाम है—इससे शौरिके तथा पद्मिनी के भर्त्ता—इन्दु के दोनों नेत्रों का अर्चन करे ।११। समस्त अध्वरों में वन्दित और दैत्यों के निषूदन करने वाले की प्रणाम है—इससे दोनों कर्णों की अर्चना करे । उदधि के परम प्रिय की सेवा में प्रणाम है—इस मन्त्र से इन्दु के ललाट का तथा सुषुम्ना के अधिपतिके केशों का पूजन करना चाहिए ।१२। शशाङ्क के लिए प्रणाम है—इससे शिरका पूजन करे तथा विश्वेश्वर किरीटधारी को नमस्कार है इससे मुरारि का शिर का यजन करे । हे पद्मों की प्यारी ! हे रोहिणी ! जिसका नाम लक्ष्मी है । हे सौभाग्य और सौख्य

रूपी अमृत से चारु काया वाली ! ये कहते हुए सुगन्धित पुष्पों के तथा नैवेद्य आदि अन्य उचित पूजनोपचारों से इन्दु की पत्नी देवी का भली भाँति पूजन करना चाहिए और फिर भूमि में ही शयन करे और पुनः उठकर स्नान करे तथा हविष्य युक्त होकर विप्र के लिए प्रभातवेला में पापों के विनाश करने वाले को नमस्कार है—इससे सुवर्ण का निर्मित जल का कुम्भ दान करना चाहिए ।१३-१४।

यथा त्वमेव सर्वेषां परमानन्दमुक्तिदः ।
भुक्तिमुक्तिस्तथा भक्तिस्त्वयि चन्द्रास्तु मे सदा ।१५
ति संसारभीतस्य मुक्तिकामस्य चानघ ! ।
रूपारोग्यायुषामेतद्विधायकमनुत्तमम् ।१६
इदमेव पितृणां च सर्वदा वल्लभं मुने ! ।
त्रैलोक्याधिपतिर्भूत्वा सप्तकल्पशतत्रयम् ।
चन्द्रलोकमवाप्नोति विद्युद् भूत्वा तु मन्यते ।१७
नारी वा रोहिणीचन्द्रशयनं या समाचरेत् ।
साऽपितत्फलमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।१८
इति पठति शृणोति वा य इत्थं ।
मधुमथनार्चनमिन्दुकार्तनेन नित्यम् ।१९
मतिमपि च ददाति सोऽपि शौरेर्भवनगतः ।
परिपूज्यतेऽमरौघैः ।२०।

इसके अनन्तर प्रार्थना करे—हे देव ! जिस प्रकार से आप ही सब को परम आनन्द और मुक्ति के प्रदान करने वाले हैं उसी तरह से हे चन्द्र ! मेरी सदा आप में भक्ति होवे और भुक्ति एवं मुक्ति भी मुझे प्राप्त होवे । हे अनघ! यह व्रत संसार की बाधाओं से भीत और मुक्ति प्राप्य करने की कामना वाले को अतीव उत्तम है जो रूप-आरोग्य और आयु का करने वाला होता है ।१५। हे मुने ! यही व्रत पितृगण को भी सर्वदा प्रिय होता है । इसको करने वाला पुरुष सम्पूर्ण त्रिलोकीका

स्वामी होकर तीन सौ सात कल्प तक चन्द्र लोक की प्राप्ति किया करता है तथा विद्यु त् होकर ही मुक्त हुआ करता है ।१६। चाहे कोई पुरुष हो या नारी हो जो भी इस रोहिणी चन्द्र शयन नामक व्रत का समाचरण करता है वह नारी भी पुन: आवृत्ति अर्थात् संसार में जन्म ग्रहण करने को दुबारा आगमन से दुर्लभ यह व्रत है और उसी फल को प्राप्त किया करती है ।१७। इस तरह से भगवान् मधु दैत्य के मंथन करने वालेका अभ्यर्चन जो इन्दुके शुभ नामोंके कीर्त्तनके द्वारा सम्पन्न किया जाता है उसका पठन या श्रवण मात्र किया करता है और अपनी बुद्धि को भी इसमें लगा देता है वह पुरुष भी भगवान् शौरि के ही भवन में पहुंच कर अमरों के समुदाय के द्वारा परिपूजित हुआ करता है ऐसा इस व्रत के श्रवण पठन और मनन मात्र का ही माहात्म्य होता है ।१८-२०।

३५—तड़ागारामकूपादि प्रतिष्ठा विधि वर्णन

जलाशयगतं विष्णुवाच रविनन्दन: ।
तड़ागारामकूपानां वापीषु नलिनीषु च ।१
विधिंपृच्छामि देवेश ! देवतायतनेषु च ।
के तत्र चर्त्विजोनाथ ! वेदो वा कीदृशोभवेत् ।२
दक्षिणावलय: काल: स्थानमाचार्य्यएवच ।
द्रव्याणिकानि शस्तानिसर्वमाचक्ष्वतत्त्वत: ।३
शृणुराजन्महाबाहो ! तड़ागादिषुयो विधि: ।
पुराणेष्विहासोऽयं पठ्यतेवेदवादिभि: ।४
प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते चोत्तरायणे ।
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।५
प्रागुदक्प्रवणे देशे तड़ागस्य समीपत: ।

चतुर्हस्तां शुभां वेदिं चतुरस्रां चतुर्मुखाम् ।६
तथा षोड़शहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः ।
वेद्याश्च परितोगर्ता रत्निमात्रास्ति मेखलाः ।७

महामहिम महर्षि श्री सूतजी ने कहा—रवि के पुत्र ने एक बार जलाशय अर्थात् क्षीर सागर में गत अर्थात् शेष शय्या पर संस्थित भगवान् विष्णु से कहा था--तालाब–आराम (उद्यान) और कूपों का तथा बावड़ी और नलिनियों के निर्माण कराने की विधि मैं आपसे पूछता हूँ। हे देवेश्वर ! हे नाथ ! और देवों के आयतनों की रचना कराने में वहाँ पर कौन ऋत्विज होते हैं और किस प्रकार की वेदी की रचनाकी जाया करती है ? दक्षिणावलय-काल-स्थान और आचार्य कैसा कौन होना चाहिए तथा इसके सम्पादन करने के लिए प्रशस्त द्रव्य कौन से होते हैं ? यह सभी तात्त्विक रूप से कथन करने की कृपा कीजिए। १-३। मत्स्य भगवान ने कहा—हे महान बाहुओं वाले राजन् ! अब आप श्रवण करिये। तालाब आदि की रचना कराने में जो भी कुछ विधान हैं उसे बतलाया जाता है। पुराणों में वेदों के बाद करने वाले विद्वानों के द्वारा वह इतिहास पढ़ा जाया करता है।४। उत्तरायण के अतीत होने पर मास के परम शुभ शुक्लपक्ष को प्राप्त करके किसी भी विप्र के द्वारा बताये गए परम पुण्य दिवस में ब्राह्मण वाचन करे। ।५। जो देश ऐसा हो जिसमें जल की अधिकता रहती है उस उदक् प्रवण देश में तडाग के ही समीप में एक शुभ वेदी की रचना करावे जो चार हाथ प्रमाण वाली हो—चौकोर और चार मुखों वाली होनी चाहिए।६। तथा वहाँ पर सोलह हाथ प्रमाण वाला एक चतुर्मुख मण्डप बनावे। और वेदी के चारों ओर गर्त होवें तथा रत्नि प्रमाण वाली मेखला होनी चाहिए।७।

नव सप्ताथ वा पञ्च नातिरिक्ता नृपात्मज ! ।
वितस्तिमात्रा योनिः स्यात् षट्सप्तां[illegible]लिविस्तृता ।८

गर्ताश्चतस्रः शस्ताः स्युस्त्रिपर्वोच्छितमेखलाः ।
सर्वतस्तुसवर्णाः स्युः पताकाध्वजसंयुताः ।९
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटशाखाकृतानि तु ।
मण्डपस्य प्रतिदिशं द्वाराण्येतानि कारयेत् ।१०
शुभास्तत्राष्ट होतारो द्वारपालास्तथाष्ट वै ।
अष्टौ तु जापकाः कार्य्याः ब्राह्मणावेदपारगाः ।११
सर्वलक्षणसम्पूर्णो मन्त्रविद्विजितेन्द्रियः ।
कुलशीलसमायुक्तः परोधाः स्याद्द्विजोत्तमः ।१२
प्रतिगर्त्तेषु कलशा यज्ञोपकरणानि च ।
व्यञ्जनञ्चामरे शुभ्रे ताम्रपात्रे सुविस्तृते ।१३
ततस्त्वनेकवर्णाः स्युश्चरवः प्रतिदैवतम् ।
आचार्य्यः प्रक्षिपेद्भूमावनुमन्त्र्य विचक्षणः ।१४

हे नृपात्मज ! वह मेखला नौ–सात अथवा पाँच होनी चाहिए इससे अतिरिक्त न होवें । छै-सात अँगुलियों के समान बिस्तृत एक वितस्ति (बिलश्त) प्रमाण उस वेदी की योनी होनी चाहिए ।८। चार ही गर्त्त प्रशस्त होते हैं और तीन पर्वोंके तुल्य उच्छिन्न मेखलायें होनी चाहिए । सभी ओर से वर्णों से युक्त तथा पताका एवं ध्वजाओं से युक्त होनी चाहिए ।९। अश्वत्थ (पीपल) उदुम्बर (गूलर) प्लक्ष (पाखर) और वट (बड़) की शाखाओं के द्वारा बनाये गये प्रत्येक दिशा में मण्डप के द्वार बनवाने चाहिए ।१०। वहाँ पर आठ ही होता परम शुभ हैं तथा आठ ही द्वारपाल होने चाहिए । आठ ही जप करने वाले जापक रक्खे जोकि वेदोंके पारगामी विद्वान ब्राह्मण होने चाहिए ।११। इसका जो पुरोहित हो वह सभी लक्षणों से परिपूर्ण हो—मन्त्रों का ज्ञाता-विजित इन्द्रियों वाला तथा कुल और शीलसे समन्वित श्रेष्ठ द्विज होना चाहिये ।१२। प्रत्येक गर्त में कलश होवें और यज्ञ के सभी उपकरण भी रहने चाहिए–व्यञ्जन—शुभ्रचार तथा

सुविस्तृत तथा ताम्र पात्र होवें ।१३। इसके उपरान्त वहाँ पर अनेक वर्ण वाले प्रत्येक देवता के चरु होने चाहिए । विचक्षण अर्थात् परम कुशल आचार्य को अनुमन्त्रित करके भूमि में प्रक्षेप करना चाहिए । ।१४।

त्र्यरत्निमात्रोयूपःस्यात्क्षीरवृक्षविनिर्मितः ।
यजमानप्रमाणोवासंस्थाप्योभूतिमिच्छता ।१५
शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ।
सर्वौषध्युदकैस्तत्र स्नापितो वेदपारगैः ।१६
यजमानः सपत्नीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
पश्चिम द्वारमासाद्य प्रविशेद्यागमण्डपम् ।१७
ततो मङ्गलशब्देन भेरीणां निस्वनेन च ।
अञ्जसा मण्डलं कुर्य्यात् पञ्चवर्णेन तत्त्ववित् ।१८
षोड़शारन्ततश्चक्रं पद्मगर्भं चतुर्मुखम् ।
चतुरस्रञ्च परितो वृत्तं मध्ये सुशोभनम् ।१९
वेद्याश्चोपरि तत् कृत्वा ग्रहान् लोकपतींस्ततः ।
सन्यसेन्मन्त्रतः सर्वान् प्रतिदिक्षु विचक्षणः ।२०
कूर्मादि स्थापयेन्मध्ये वारुण्यां मन्त्रमाश्रितः ।
ब्रह्माणञ्चशिवंविष्णुं तत्रैवस्थापयेद्बुधः ।२१

तीन अरत्नि के प्रमाण वाला वहाँपर यूप होना चाहिए जो किसी ऐसे वृक्ष से बनाया गया है जिसमें दूध रहता हो । अथवा भूति की इच्छा रखने वाले को यूपकर यजमान के तुल्य ही प्रमाण रखना चाहिए ।१५। यजमान को शुक्ल वर्ण के वस्त्र और माला धारण करने वाला रहना चाहिए । जो गन्ध का अनुलेपन किया जावे वह भी शुक्ल ही होना चाहिए । वहाँ पर जो वेदों का ज्ञान रखने वाले पारगामी मनीषी हैं उनके द्वारा सर्वौषधि समन्वित जलोंके द्वारा ही उसे यजमान को स्नापित कराना चाहिए ।१६। फिर वह यजमान अपनी पत्नी के

सहित तथा पुत्रपौत्रादि से संयुक्त होकर जो मण्डप का पश्चिम दिशा में द्वार है उसी से वह याग मण्डप में प्रवेश प्राप्त करे ।१७। इसके अनन्तर मङ्गलमय शब्दों की ध्वनि से तथा भेरियों के उद्घोष के साथ ही यजमान का प्रवेश होता है। तत्वों के वेत्ता आचार्य को चाहिए कि तुरन्त ही मण्डल को पंचवर्ण से युक्त कर देवे ।१८। इसके पश्चात् सोलह अरों वाला चक्र करे जिसके गर्भ में पद्म हो और चार मुखों से युक्त हो—चौकोर चारों ओर से वृत तथा मध्य में शोभन होना चाहिए ।१९। फिर विद्वान् पुरोधा को वेदी के ऊपर समस्त ग्रहों तथा लोकपतियों को स्थापित करे और प्रत्येक दिशाओंमें सबका न्यासमन्त्रों के द्वारा ही करना चाहिए ।२०। मन्त्रों का समाश्रय ग्रहण करने वाले को वारुणी दिशा में मध्य में कूर्म आदि की स्थापना करनी चाहिए और बुध पुरुष का कर्त्तव्य है कि यहीं पर ब्रह्मा-शिव और भगवान् विष्णु की स्थापना भी कर देवे ।२१।

विनायकञ्च विन्यस्य कमलामम्बिकां तथा ।
शान्त्यर्थं सर्वलोकानां भूतग्रामं न्यसेत्ततः ।२२
पुष्पभक्ष्यफलैर्युक्तमेवंकृत्वाऽधिवासनम् ।
कुम्भान्सजलगर्भांस्तान्वासाभिःपरिवेष्टयेत् ।२३
पुष्पगन्धैरलङ्कृत्य द्वारपालान् समन्ततः ।
पठध्वमिति तान् ब्रूयादाचार्यस्त्वभिपूजयेत् ।२४
बह्वृचौ पूर्वतः स्थाप्यौ दक्षिणेन यजुर्विदौ ।
सामगौ पश्चिमे तद्वदुत्तरेण त्वथर्वणौ ।२५
उदङ्मुखो दक्षिणतो यजमान उपाविशेत् ।
यजध्वमितितान्ब्रूयाद् हौत्रिकान्पुनरेवतु ।२६
उत्कृष्टान् मन्त्रजापेन तिष्ठध्वमिति जापकान् ।
एवमादिश्य तान् सर्वान् पर्युक्ष्याग्निं स मन्त्रवित् ।२७
जुहुयाद्वारुणैर्मन्त्रै राज्यं च समिधस्तथा ।

ऋत्विग्भिश्चाथ होतव्यं वारुणैरेव सर्वतः ।२८

वहाँ पर विघ्न विनाशक विनायक-कमला-अम्बिका का विशेषरूप से न्यास करे तथा सम्पूर्ण लोकों की शान्ति-रक्षा के लिए भूतग्राम का भी न्यास वहाँ पर करे ।२२। पुष्प-भक्ष्य फलों से युक्त इस प्रकार से वहाँ अधिवास करे । जो कुम्भ वहाँ पर जलों से भरे-पूरे स्थापित हैं उनको वस्त्रों से परिवेष्टित कर देना चाहिये ।२३। सभी ओर में जो द्वारपाल हों उनको पुष्प और गन्धोंसे समलंकृत करके फिर उनसे आचार्य को निदेश देना चाहिए कि आप लोग पाठ आरम्भ कर देवें और उसे फिर अभिपूजन करना चाहिए ।२४। ऋत्विजों में बह्वृच हों उन्हीं को पूर्व दिशा में स्थापित करे अर्थात् ऋग्वेद के ज्ञाताओं को पूर्व दिशा में रक्खे । यजुर्वेद के विद्वानों को दक्षिण में-सामवेद के ज्ञाताओं को पश्चिम में और जो अथर्व के विद्वान् हों उनको उत्तर दिशा में संस्थापित करे ।२५। जो यजमान है उसको उत्तरकी ओर मुख करके दक्षिण दिशा में उपविष्ट होना चाहिए । जब यह व्यवस्था पूर्ण होकर सभी यथास्थान स्थितहों जावें तो पहिले आचार्य को चाहिए कि उन सबको निदेश देवे कि यजन का आरम्भ कर देवें फिर जो हौत्रिक हों उनको भी आदेश देवे ।२६। जो वहाँ पर मन्त्रों के जापक ब्राह्मण हैं उनके भी ऐसा निर्देश करना चाहिए कि आप लोग उत्कृष्ट मन्त्रों के जप का आरम्भ करने वाले संस्थित होवें । इस तरह से उन सबको यथोचित कर्म समारम्भ करने का आदेश देकर फिर उस मन्त्रों के वेत्ता आचार्य को अग्नि का पर्युक्षण करना चाहिए ।२७। फिर वारुण मन्त्रों के द्वारा घृत और समिधाओं का हवन करे और जो ऋत्विक होता वहाँ पर है उन सबको भी सब ओर से वारुण मन्त्रों के द्वारा ही हवन करना चाहिए ।२८।

ग्रहेभ्यो विधिवद्हुत्वातथेन्द्रायेश्वराय च ।
मरुद्भ्योलोकपालेभ्योविधिवद्विश्वकर्मणे ।२९

रात्रिसूक्तञ्च रौद्रञ्च पावमानं सुमङ्गलम् ।
जपेयुः पौरुष सूक्त पूर्वतो वह्वृचाः पृथक् ।३०
शाक्र रौद्रञ्च सौम्यच कूष्माण्ड जातवेदसम् ।
सौरसूक्तं जपेन्मन्त्रं दक्षिणेन यजुर्विदः ।३१
वैराज्यं पौरुषं सूक्तं सौवर्ण रुद्रसंहिताम् ।
शैशवं पञ्च निधनं गायत्रं ज्येष्ठसाम च ।३२
वामदेव्यं वृहत्साम रौरवं सरथन्तरम् ।
गवां व्रतं च काण्वञ्च रक्षाघ्नं वयसस्तथा ।
गायेयुः सामगा राजन् ! पश्चिमं द्वारमाश्रिताः ।३३
अथर्वणश्चोत्तरतः शान्तिकं पौष्टिक तथा ।
जपेयुर्मनसा देवमाश्रित्य वरुण प्रभुम् ।३४
पूर्वद्यु रभितो रात्रावेव कृत्वाधिवासनम् ।
गजाश्वरथ्यावल्मीकात् सङ्गमाद्ध्रदगोकुलात् ।
मृदमादाय कुम्भेषु प्रक्षिपेच्चत्वरात्तथा ।३५

समस्त ग्रहों के लिए विधि के साथ हवन करके इन्द्र—ईश्वर मरुद्गण—लोकपाल और विश्वकर्मा के लिए विधान के अनुसार ही आहुतियाँ देनी चाहिए ।२९। पूर्व दिशा में जो बह्वृच स्थित हैं उनको रात्रि सूक्त, रौद्र, पवमान, सुमङ्गल और पुरुष सूक्त का पृथक् जाप करना चाहिए।३०। जो यजुर्वेद के ज्ञाता ऋत्विज दक्षिण दिशा में स्थित रहते हैं उनको शाक्र (इन्द्र का सूक्त—रौद्र (रुद्रदेव का सूक्त) सौम्य अर्थात् सोम का सूक्त—कूष्माण्ड-जातवेदस और सौर अर्थात् सूर्य के मन्त्रों का जाप करना चाहिए ।३१। पश्चिम दिशा को समलंकृत करके द्वार पर समाश्रित जो सामवेदी पारगामी ऋत्विज समवास्थित हैं उन्हें वैराज्य, पौरुष सूक्त, सौवर्ण, रुद्रसंहिताए, शिव, पञ्चनिधन गायत्र, ज्येष्ठ सोम-वामदेव्य, वृहत्साम, रौरव, सरथन्तर, गौओं का व्रत, काण्व रक्षोघ्न तथा वयस इन सबका हे राजन् ! गायन करना चाहिए ।३२।

उत्तर दिशा में अथर्ववेद के विशारद ऋत्विज स्थित हैं उनको शान्तिक और पौष्टि सूक्तों का जाप करना चाहिए तथा मन से प्रभु वरुण देव का समाश्रय ग्रहण करके ही जाप करने का विधान है। अतः ऐसा ही करना चाहिए ।३४। पूर्व दिवस में सभी ओर से इस तरह रात्रि में अधिवासन करे तथा गज, अश्व, रथ्या, वल्मीक, सङ्गम ह्रद, गोकुल, इन स्थलों मे मृत्तिका का ग्रहण करके तथा चत्वरसे ग्रहण करके कुम्भों में प्रक्षेप उसका करना चाहिए ।३५।

रोचनाञ्च ससिद्धार्थां गन्धं गुग्गुलुमेव च ।
स्नपनं तस्य कर्तव्यं पञ्चभङ्गसमन्वितम् ।३६
प्रत्येकन्तु महामन्त्रैरेवं कृत्वा विधानतः ।
एवं क्षपातिवाह्यार्थं विधियुक्तेन कर्मणा ।३७
ततः प्रभाते विमले सञ्जातेऽथ शत गवाम् ।
ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्यमष्टषष्टिश्च वा पुनः ।
पञ्चाशद्वाथ षट्त्रिंशत् पञ्चविंशतिरप्यथ ।३८
ततः साम्वत्सरप्रोक्ते शुभे लग्ने सुशोभने ।
वेदशब्दैश्च गान्धर्वैर्वाद्यैश्च विविधैः पुनः ।३९
कनकालङ्कृतां कृत्वा जले गामवतारयेत् ।
सामगाय च सा देया ब्राह्मणायविशाम्पते ।४०
पात्रीमादया सौवर्णी पञ्चरत्नसमन्विताम् ।
ततो निक्षिप्य मकरमत्स्यादींश्चैव सर्वशः ।
धृतां चतुर्विधैर्विप्र र्वेदवेदाङ्गपारगैः ।४१

सिद्धार्थ के सहित रोचना—गन्ध और गुग्गुल को भी प्रक्षिप्त करे। फिर उसका पंचभङ्ग समन्वित स्नपन करना चाहिए ।३६। महामन्त्रों के द्वारा इस प्रकार से प्रत्येक का विधान के साथ करके फिर विधियुक्त से उस रात्रिका इसी भाँति अति वाहन करे ।३७। इसके अनन्तर जब यह अधिवास की रात्रि समाप्त होकर विमल प्रभात वेला

हो जावे तो उस समय में एक सौ अथवा अड़सठ गौओं का दान ब्राह्मणोंके लिए देनाचाहिए । इतनी न होसकें तो पचास अथवा छत्तीस या पच्चीस ही गौओं का दान अवश्य करना चाहिए ।३८। इसके अनन्तर साम्वत्सर प्रोक्त अर्थात् वर्ष में कथित शुभ लग्न और सुख दिनमें वेदों के शब्दों की ध्वनियों से तथा अनेक प्रकार के गान्धर्व बाद्यों से सुवर्ण से समलंकृत करके गौ को जल में अवतारित कर । हे विशाम्पते फिर उस गौको साम वेदके गायक ब्राह्मणके लिए दान में देनी चाहिए। ।३९।४०। सुवर्ण के द्वारा विनिर्मित तथा पाँच प्रकार के रत्नों से संयुक्त लेकर फिर सब मकर—मत्स्य आदि का निपेक्ष करके वेदों और वेदों के अङ्ग शास्त्रों के पारगामी विद्वान् चार प्रकार के विप्रों के द्वारा वह धारण कीजिए ।४१।

महानदीजलोपेतां दध्यक्षतसमन्विताम् ।
उत्तराभिमुखीं धेनुं जलमध्ये तु कारयेत् ।४२
आथर्वणेन संस्नातां पुनर्मामित्यथेति च ।
आपोहिष्ठेति मन्त्रेण क्षिप्त्वाऽऽगत्य च मण्डलम् ।४३
पजयित्वा सरस्तत्र बलिं दद्यात् समन्ततः ।
पुनर्दिनानि होतव्यं चत्वारि मुनिसत्तमाः ।४४
चतुर्थी कर्म कर्तव्यं देया तत्रापि शक्तितः ।
दक्षिणा राजशार्दूल ! बरुणक्ष्मापनं ततः ।४५

किसी महा नदी के जलसे समुपेत तथा दधि अक्षतों से युक्त और उत्तर दिशा की ओर मुख करने वाली उस धेनु को जल के मध्य में करा देवे ।४२। अथर्ववेद के 'पुनर्माम' इत्यादि मन्त्र से संस्नान करके फिर 'आपोहिष्ठा' इत्यादि मन्त्रों से क्षेपण करे और फिर मंडल में आगमन करे ।४३। वहाँ पर सर का पूजन करके सभी ओर बलि देनी चाहिए । हे मुनिश्रेष्ठो ! पुनः चार दिन पर्यन्त हवन करना चाहिए । इसके पश्चात् चतुर्थी कर्म करना चाहिए वहाँ पर शक्ति पूर्वक दक्षिणा

भी देनी चाहिए। हे राजशार्दूल ! इसके अनन्तर वरुणदेव से क्षमापन करना चाहिए।८४-८५।

३६---सौभाग्य शयन व्रत कथन

तथैवान्यत् प्रवक्ष्यामि सर्वकामफलप्रदम् ।
सौभाग्यशयनं नाम यत्पुराणविदोविदुः ।१
पुरा दग्धेषु लोकेषु भूर्भुवःस्वर्महादिषु ।
सौभाग्यं सर्वभूतानामेकस्थमभवेत्तदा ।
वैकुण्ठं स्वर्गमासाद्य विष्णोर्वक्षस्थलस्थितम् ।२
ततः कालेन महता पुनः सर्गविधौ नृप ! ।
अहङ्कारावृते लोके प्रधानपुरुषास्विते ।३
स्पर्धयाञ्च प्रवृत्तायां कमलासनकृष्णयोः ।
लिङ्गाकारासमुद्भूतां वह्नेर्ज्वालातिभीषणा ।
तयाभितप्तस्य हरेर्वक्षसस्तद्विनिःसृतम् ।४
वक्षस्थलंसमाश्रित्यविष्णोः सौभाग्यमास्थितम् ।
रसरूपन्ततोयावत्प्राप्नोतिवसुधातलम् ।५
उत्क्षिप्तमन्तरिक्षे तद्ब्रह्मपुत्रेण धीमता ।
दक्षेण पीतमात्रन्तद्रूपलावण्यकारकम् ।६
बलं तेजो महज्जातं दक्षस्य परमेष्ठिनः ।
शेषं यदपतद्भूमावष्टधा समजायत ।७

मत्स्य भगवान् ने कहा—उसी प्रकार से एक अन्य समस्त मनोरथों के फलोंका प्रदान करने वाले व्रत का वर्णन करता हूँ जिस व्रतका नाम सौभाग्य शयन है जिसे पुराणों के वेत्ता विद्वान् पुरुष भली भाँति जानते हैं।१। पुरातन समय में भुः-भुवः-स्वः और महर्लोक आदि लोकों के

दग्ध हो जाने पर उस महान् भीषण काल में समस्त भूतों का सौभाग्य एकमें ही स्थित हो गया था।२। यह सौभाग्य बैकुण्ठ और स्वर्गमें पहुँच कर भगवान् विष्णु के वक्षःस्थल में स्थित हो गया था । हे नृप! इसके पश्चात् बहुत अधिक काल के हो जाने पर पुनः सर्गकी विधि प्राप्तहुई तो उस समय में यह लोक अहङ्कार से आवृत और प्रधान-पुरुषसे समन्वित था ।३। भगवान् श्री कृष्ण और कमलासन ब्रह्माजी इन दोनों में स्पर्धा की भावना की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई थी । ऐसी दशा में एक लिङ्ग के आकार वाली अग्नि की भीषण ज्वाला समुद्भूत हुई थी और अत्यन्त अभितप्त भगवान् हरि के वक्षस्थल से वह निःसृत हुई थी ।४। इस वसुधा के तलमें जो भी कुछ रस और रूप जितना भी प्राप्त होता है वह सभी भगवान् विष्णुके वक्षःस्थल का समाश्रय ग्रहणकरके समस्त सौभाग्य वहीं पर समस्थित हो गया था ।५। परम श्रीमान् ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष ने पीतमात्र उस रूप लावण्य के करने वाले को अन्तरिक्ष में उत्क्षिप्त कर दिया था ।६। परमेष्ठी दक्ष का बल और तेज महान् हो गया था । शेष जो भी कुछ भूमण्डल में गिरा था वह आठ प्रकार का हो गया था ।७।

ततोजनानांसञ्जाताः सप्तसौभाग्यदायकाः ।
इक्षवोरसराजाश्चनिष्पावाजाजिधान्यकम् ।८
विकारवच्च गोक्षीरं कुसुम्भं कुंकुमं तथा ।
लवणं चाष्टमन्तद्वत् सौभांग्याष्टकमुच्यते ।९
पीतं यत् ब्रह्मपुत्रेण योगज्ञानविदा पुनः ।
दुहिता साऽभवत्तस्य या सतीत्यभिधीयते ।१०
लोकानतीत्य लालित्यात् ललिता तेन चोच्यते ।
त्रैलोक्यसुन्दरीमेनामुपयेमे पिनाकधृक् ।११
यादेवीसौभाग्यमयी भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।
तामाराध्य पुमान् भक्तयानारीवाकिन्नविन्दति ।१२

इसके उपरान्त जनों के सात सौभाग्य के देने वाले हुए थे—दक्षु (ईख-गन्ना) रसराज-निष्पाव-अजाजि-धान्य-विकार वाला गौ का दुग्ध कुसुम्भ, कुंकुम और आठवाँ लवण। उसकी भाँति यह सौभाग्य का अष्टक कहा जाता है।८-९। योग ज्ञान के वेत्ता ब्रह्माजी के पुत्र ने जो पी लियाथा वह उसकी दुहिता हुई थी जो सती इस नामसे कही जाया करती है।१०। उस दक्ष प्रजापति की पुत्री सती का लालित्य इतना अधिक था कि समस्त लोकों के लालित्य को भी अतिक्रांति कर दिया था। इस लालित्य की अत्यन्ताधिकता के कारण ही उसका शुभ नाम ललिता लोकमें कहा जाता है यह सती त्रैलोक्य की एकही परमसुन्दरी थी। इसके साथ भगवान पिनाकधारी शङ्कर ने परिणय किया था।११ जो देवी परम सौभाग्य से परिपूर्ण है और मुक्ति अर्थात् सांसारिक सब प्रकार के सुखों उपभोग और मुक्ति बारम्बार संसार में, जीवन-मरण के आवागमन से छुटकारा, इन दोनों के फल को प्रदान करने वाली है उसका आराधन भक्तिभाव से करके चाहे पुवान हो या नारी हो या कुछ प्राप्त नहीं कर सकता है अर्थात् सभी कुछ लाभ हो जाता है।१२ मनु ने कहा—हे जनार्दन हे जगन्नाथ ! इस जद्गत् की धात्री उस देवीका आराधन किस प्रकार से किया जाता है ? इसका जो भी विधान हो वह सम्पूर्ण कृपा करके मुझे बतलाइये।१३।

कथमाराधनं तस्या जगद्धात्र्या जनार्दन !।
तद्विधानं जगन्नाथ ! तत् सर्वञ्च वदस्व मे।१३
वसन्तमासमासाद्य तृतीयायां जनप्रिय !।
शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे तिलैः स्नानं समाचरेत्।१४
तस्मिन्नहनि सादेवी किल विश्वात्मना सती।
पाणिग्रहणकैर्मन्त्रै रुवसद्वरवर्णिना।१५
तया सहैव देवेश तृतीयायामथार्चयेत्।
फलैर्नानाविधैर्धूपैर्दीपनवैद्यसंयुतैः।१६

प्रतिमां पञ्चगव्येन तथा गन्धोदकेन तु ।
स्नापयित्वाऽर्चयेत् गौरीमिन्दुशेखरसंयुताम् ।१७
नमोऽस्तुपाटलायैतुपादौदेव्याः शिवस्यतु ।
शिवायेतिचसंकीर्त्यंजयायैगुल्फयोर्द्वयोः ।१८
त्रिगुणायेति रुद्राय भवान्यै जंघयोर्युगम् ।
शिवां रुद्रेश्वराय च विजयायेति जानुनी ।
सङ्कीर्त्य हरिकेशाय तथोरू वरदे नमः ।१९
ईशायैच कटिं देव्याः शङ्करायेति शंकरम् ।
कुक्षिद्वयञ्च कोटव्यै शूलिने शूलपाणये ।२०
मङ्गलायै नमस्तुभ्यसुन्दरं चाभि पूजयेत् ।
सर्वात्मिने नमो रुद्रमीशान्यै च कुचद्वयम् ।२१

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे जनप्रिय ! बसन्त मास को प्राप्त करके शुक्ल पक्ष की तृतीय तिथि में पूर्वाह्न के समयमें तिलों से स्नान करना चाहिए ।१४। उस दिन से वर वर्णिनी वह देवी सती विश्वात्मा के साथ पाणिग्रहण के मन्त्रों में निवास करने वाली हुई थी ।१५। उसी देवी के साथही तृतीयामें देवेश का भी अर्चन करना चाहिए । फल जो अनेक प्रकार के हों उनसे धूप-दीप और नैवेद्य से संयुत करके प्रतिमा का पञ्जगव्य से और गन्धोदक से स्नयन कराकर फिर इन्दु शेखर से समन्वित गौरी का अभ्यर्चन करना चाहिए ।१६-१७। पाटला के लिए नमस्कार हो—इस मन्त्र का उच्चारण करके देवी और शिव के चरणों का यजन करे । शिवाय नमः—जयायै नमः—इनका संकीर्तन करके दोनों देवों के दोनों गुल्फों का अर्चन करे ।१८। त्रिगुण रुद्र का नमस्कार है—भवानी के लिए नमस्कार है—इन मन्त्रों से दोनों जंघाओं की अर्चना करनी चाहिए, शिवा रुद्रेश्वरा को तथा विजया को नमस्कार है—इनसे दोनों जानुओं का पूजन करें । हरिकेश और वरदाके लिए नमस्कार है—इनका संकीर्त्तन करके दोनों ऊरुओं का यजन करे ।१९। ईशा को नमस्कार—इससे देवी की कटिका तथा शङ्कर के लिए

प्रणाम है—इससे भगवान् शंकर की कटिका पूजन करे। कोटवी तथा शूलपाणि शली की सेवा में प्रणाम अर्पित् हो—इन से दोनों कुक्षियों का अर्चन करना चाहिए।२०। मङ्गला आपके लिए नमस्कार है—इसका उच्चारण करके उदर का पूजन करे। सर्वात्मा के लिए नमस्कार है इससे रुद्र का अर्चन करे तथा ईशानी की सेवा में प्रणाम है—इससे देवी दोनों स्तनों का अभ्यर्चन करना चाहिए।२१।

शिवं वेदात्मने तद्वद्रुद्राण्यै कण्ठमर्चयेत्।
त्रिपुरघ्नाय विश्वेशमनन्तायै करद्वयम।२२
त्रिलोचनाय च हरं बाहुकालानलप्रिये।
सौभाग्यभवनायेति भूषणानि सदार्चयेत्।
स्वाहा स्वधायै च मुखमीश्वरायेति शूलिनम्।२३
अशोकमधुवासिन्यै पूज्यावोष्ठौ च भूतिदौ।
स्थाणवेतु हरं तद्वद्वास्यं चन्द्रमुखप्रिये।२४
नमाऽर्द्धनारीशहरमसिताङ्गीति नासिकाम्।
नम उग्राय लोकेशं ललितेति पुनर्भ्रुवौ।२५
शर्वाय पुरहन्तारं वासव्यैतु तथालकान्।
नमः श्रीकण्ठनाथायै शिवकेशांस्ततोऽर्चयेत्।
भीमोग्रसमरूपिण्यै शिरः सर्व्वात्मने नमः।२६
शिवमभ्यर्च्यविधिवत्सौभाग्याष्टकमग्रतः।
स्थापयेद् घृतनिष्पावकुसुम्भक्षीरजीरकान्।२७
रसराजञ्च लवणं कस्तुम्बरुमथाष्टकम्।
दत्तं सौभाग्यमित्यस्मात् सौभाग्याष्टकमित्यतः।२८

वेदात्मा को प्रणाम है—इससे शिवका और रुद्राणी को प्रणाम है इससे देवी के कण्ठ का पूजन करे। त्रिपुर के हनन करने वाले को प्रणाम है—इससे देवी के दोनों करों का पूजन करे।२२। त्रिलोचनाय नमः अर्थात् तीन लोचनों वाले को प्रणाम है—इस मन्त्र को पढ़कर

भगवान् हर का तथा हे बाहु कालानल प्रिये! सौभाग्य भावनाके लिए प्रणाम है—इससे सर्वदा भूषणों का अभ्यर्चन करना चाहिए। स्वाहा स्वधा को नमस्कार है—इससे देवी के मुख का और ईश्वर के लिए नमस्कार है–इससे शूलि की अर्चना करे।२३। अशोक मधुवासिनी को प्रणाम अर्पित हो—इस मन्त्र से देवी के मूर्ति प्रमान करने वाले ओष्ठों का पूजन करना चाहिए। उसी भाँति स्थणु के लिए नमस्कार है-इससे हर का अर्चन करे। हे चन्द्रमुख प्रिये! आपको नमस्कार है--इससे धास्य अर्चन करे अर्धनारीश हर को तथा आसिताङ्गी को नमस्कार है इन मन्त्रों के द्वारा नासिका का अभ्यर्चन करे। उग्र के लिए प्रणाम है—इससे लोकेश का तथा ललिता को प्रणाम है–इससे देवी के दोनों भृकुटियों का अर्चन करना चाहिए।२४-२४। 'शर्वाय नमः' अर्थात् शर्व की सेवा से नमस्कार अर्पित हैं—इस मन्त्र से पुर के हनन करने करने वाले प्रभु का और 'वासुव्यै नमः अर्थात् वासुकी के लिए प्रणाम है–इससे देवीके अलकों का अर्चन करे। 'श्री कण्ठनाथायै नमः' अर्थात् कण्ठ की स्वामिनी को नमस्कार है इससे देवी के केशों का और फिर शिव के केशों का पूजन करें। 'भीमोग्र सम रूपिण्यै नमः'—इस मन्त्र से देवी के तथा 'सर्वात्मने नमः'—इस मन्त्र से देवेश के शिर का पूजन करना चाहिए।२६। इस प्रकार से विधि के साथ भगवान् शिव का समर्चनकरके उनके आगे फिर सौभाग्याष्टक की स्थापना करनी चाहिए उस सौभाग्य के आठ पदार्थों के नाम, घृत,निष्पात,कुसुम्भ,क्षीर,जीरक, रसराज,लवण और तुम्बक ये हैं। इन्हीं का सबका समुदाय अष्टकहोता है इस अष्टक से सौभाग्य का प्रदान किया था अतएव इसका नाम सौभाग्याष्टक हो गया है।२७-२८।

एवं निवेद्य तत्सर्वमग्रतः शिवयोः पुनः।
रात्रौ श्रृङ्गोदकंप्राश्य तद्वद्भूमावरिन्दम!।२९
पुनः प्रभाते तु तथा कृतस्नानजपः शुचिः।
संपूज्य द्विजदाम्पत्यं वस्त्रमाल्यविभूषणैः।३०

सौभाग्याष्टकसंयुक्तं सुवर्णचरणद्वयम् ।
प्रीयतामत्र ललिता ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।३१
एवंसम्वत्सरंयावत्तृतीयायांसदामनो ! ।
कर्त्तव्यं विधिवद्भक्त्यासवसौभाग्यमीप्सुभिः ।३२
प्राशने दानमन्त्रे च विशेषोऽयन्निबोधमे ।
शृङ्गोदकञ्चैत्रमासे वैशाखे गोमय पुनः ।३३
ज्येष्ठेमन्दारकुसुमं बिल्बपत्रं शुचौस्मृतम् ।
श्रावणेदधि सम्प्राश्यं नभस्येचकुशोदकम् ।३४
क्षीरमाश्वयुजेमासि कार्तिके पृषदाज्यकम् ।
मार्गमासेतु गोमूत्रंपौषे संप्राशयेद्घृतम् ।३५

इस प्रकार से उस सबको शिव और शिवा के आगे निवेदन करके रात्रि में भृङ्गोदक का प्राशन करके उसी भाँति भूमि में अरिन्दम को कराये ।२९। पुनः प्राताकाल की बेला में स्नान और जाप करके परम शुचि होकर बस्त्र-माला और भूषणों के द्वारा ब्राह्मण दम्पत्ति का भली भाँति पूजन करना चाहिए ।३०। सौभाग्याष्टक से समन्वित सुवर्ण निर्मित दो चरणोंको इसमें ललिता देवी प्रसन्न हों-यह उच्चारण करते हुए ब्राह्मण को दान देना चाहिए इसी प्रकार से एक वर्ष पर्यन्त हे मनो ! तृतीया तिथि में सदा विधि के सहित भक्ति की भावना से सर्व सौभाग्य के इच्छुक पुरुषों को इस व्रत को करना चाहिए ।३१-३२। प्राशन में और दान के मन्त्र मे यह यहाँ पर विशेषता है उसे आप मुझ से समझ बूझ लो । चैत्र मास में शृङ्गोदक-वैशाख में गोमय का प्राशन करना चाहिए ।३३। ज्येष्ठ मास में मन्दार का कुसुम और आषाढ़ में बिल्व पत्र कहा गया है । श्रावण में दधि का सम्प्राशन करे और भाद्रपद में कुशोदक का प्राशन करना चाहिए ।३४। आश्विन मास में क्षीर और कार्तिक में पृषदाज्य तथा मार्गशीर्ष मे गोमूत्र का प्राशन करे । पौष मास में घृत का प्राशन करना चाहिए ।३५।

माघे कृष्णतिलंतद्वत् पञ्चगव्यञ्ज फाल्गुने ।
ललिताविजयता भद्राभवानी कुमुदाशिवा ।३६
वासुदेवी तथा गौरी मङ्गला कमलासती ।
उमाच दानकालेतु प्रीयतामिति कीर्तयेत् ।३७
मल्लिकाशोककमलं कदम्बोत्पलमालती: ।
कुब्जकं करवीरञ्च वाणमल्मामकुंकुमम् ।३८
सिन्दुवारञ्च सर्वेषु मासेषु क्रमश: स्मृतम् ।
जापकुसुम्भकुसुमं मालती शतपत्रिका ।३९
यथालाभं प्रशस्तानि करवीरञ्च सर्वदा ।
एव सम्वत्सरं यावदुपोष्य विधिवन्नर: ।४०
स्त्रीभक्ता वा कुमारी वा शिवमभ्यर्च्य भक्तित: ।
व्रतान्ते शयनं दद्यात् सर्वोपस्करसंयुतम् ।४१
उमा महेश्वरं हैमं वृषभञ्च गवा सह ।
स्थापयित्वाऽथ शयने ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।४२

माघ मास में काले तिलों का तथा फाल्गुन में पञ्चगव्य का प्राशन करना चाहिये । बारहों मासों के दान कालके भी पृथक २ नाम है क्रम से समझ लेना चाहिये—ललिता, बिजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा शिवा, वासुदेवी, गौरी, मंगला, कमला, सती और उमा ये बारह नाम पूर्वोक्त क्रम से दान के समय में प्रत्येक नामका उच्चारण करके प्रसन्न हों ऐसा कीर्तन करो यथा 'उमा प्रीयताम्' यही क्रम है ।३६-३७। इसी प्रकार से पुष्पों का भी एक क्रम है उसी के अनुसार ग्रहण करके अभ्यर्चन करे—मल्लिका, अशोक, कमल, कदम्ब, उत्पल, मालती, कुब्जक करवीर, वाण, अम्लाअकुंकुम, सिन्धुवार इन पुष्पों से सभी मासों में क्रमपूर्वक पूजन करना कहा गया है । जपा—कुसुम्भ कुसुम मालती शत पत्रिका ये पुष्प यथा लाभ ही प्रशस्त होतेहैं और करवीर तो सभी समयों में प्रशस्त है इस तरह से एक वर्ष जब तक पूर्ण हो मनुष्य को

को विधि के साथ उपवास करना चाहिए ।३८-४०। भक्त कोई स्त्री हो या कोई कुमारी हो भगवान् शिव का भक्ति भाव से अर्चन करके जब व्रत की समाप्ति हो तो उस व्रत करने वाले को सभी उपस्कारों से युक्त शय्या का दान मरना चाहिये । उमा और महेश्वर और वृषभ सुवर्ण के निर्मित कराकर गौ के साथ शयन में स्थापित कराकर ब्राह्मण को दान में देनी चाहिए ।४१-४२।

अन्यान्यपि यथाशक्त्या मिथुनान्यम्बरादिभिः ।
धान्यालंकारगोदानैरभ्यर्चेद्धनसंचयैः ।
वित्तशाठ्येन रहितः पूजयेत् गतविस्मः ।४३
एवं करोति यः सम्यक् सौभाग्यशयनव्रतम् ।
सर्वान् कामानवाप्नोति पदमन्यन्तमश्नुते ।
फलस्यैकस्य त्यागेन व्रतमेतत्समाचरेत् ।४४
य इच्छन् कीर्तिमाप्नोति प्रतिमासनराधिप ।
सौभाग्यारोग्यरूपायुर्वस्त्रालंकारभूषणैः ।
न वियुक्तो भवेद्राजन् ! नवार्बुदशतत्रयम् ।४५
यस्तु द्वादश वर्षाणि सौभाग्यशयनव्रतम् ।
करोति सप्त चाष्टौवा श्रीकण्ठभवनेऽमरैः ।
पूज्यमानो बसेत् सम्यक् यावत्कल्पायुतत्रयम् ।४६
नारीवा कुरुते वापि कुमारीवा नरेश्वर ! ।
सापि तत्फलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता ।४७
शृणुयादपियश्चैव प्रदद्यादथवा मतिम् ।
सोऽपिविद्याधरो भूत्वास्वर्लोगके चिरंवसेत् ।४८
इदमिह मनेन पूर्वमिष्टं शतधनुषा कृतवीर्यसूनुना च ।
कृतमथ वरुणेन नन्दिना वाकिमु जननाथ ततो यदुद्भवस्यात् ।४९

अन्य-अन्य भी मिथुनों को यथा शक्ति वस्त्र आदि के द्वारा तथा धान्य-अलङ्कार और गो-दानों एवं धन के सञ्चयों के द्वारा अभ्यर्चान करे । पूजन वित्त की शठता से रहित होकर ही विस्मय से हीन रह

कर ही करना चाहिए ।४३। इस विधान से जो भी कोई इस सौभाग्य शयन व्रत को भली भाँति किया करता है वह सभी कामनाओं का फल प्राप्त कर लिया करता है और फिर अत्यन्त उन्नत पद का लाभ करता है एक फल के त्याग से इस व्रत का समाचरण करना चाहिए। ।४४। जो नराधिप चाहता है वह प्रतिमास कीर्ति की प्राप्ति किया करता है। हे राजन् ! इस व्रत को करने वाला पुरुष सौभाग्य-आयु-आरोग्य-रूप, लावण्य, वस्त्र, अलंकार और भूषणों से तीन सौ नव अर्बुद पर्यन्त कभी वियुक्त नहीं हुआ करता है ।४५। जो पुरुष बारह वर्ष तक इस सौभाग्य शयन व्रत को करता रहता है अथवा सात या आठ वर्ष तक किया करता है वह अमर गणों के साथ भगवान् श्रीकण्ठ के भवन में पूज्यमान होकर तीन अर्बुद कल्प तक अच्छी तरह निवास किया करता है।४६। हे नरेश्वर ! नारी हो या या कुमारी हो जो भी कोई इस व्रत को करती है वह भी देवी के अनुग्रह से लालित होकर इसके फल को पूर्णतया प्राप्त कर लिया करती है ।४७। जो कोई इस व्रत की कथा का श्रवण कर लेता है या इसमें अपनी मति को लगा देता है वह पुरुष भी विद्याधर होकर स्वर्गलोक में चिरकाल पर्यन्त निवास किया करता है ।४७। इस व्रत को पूर्व में यहाँ पर मदन से किया था फिर शत धनुषों वाले कृतवीर्य के पुत्र ने इसको किया था। इसके अनन्तर वरुण ने, नन्दी ने किया था। हे जनों के नाथ ! इससे जो कुछ भी उत्पन्न होताहै उसके विषयमें क्या कहा तक कहा जावे। तात्पर्य है कि कोईभी प्राप्तव्य शेष नहीं रहता है--यह इस महाव्रत का माहात्म्य है ।४८-४६।

३७—अक्षय तृतीया और सरस्वती व्रत

अथान्यामपि वक्ष्यामि तृतीयां सर्वकामदाम् ।
यस्यां दत्तं हुतं जप्तंसर्वं भवति चाक्षयम् ।१
वैशाखशुक्लपक्षे तु तृतीया यैं रुपोषिता ।
अक्षयं फलमाप्नोति सर्वस्य सुकृतस्य च ।२
सा तथा कृत्तिकोपेता विशेषेण सुपूजिता ।
तत्र दत्तं हुतं जप्तं सर्वमक्षयमुच्यते ।३
अक्षयासन्ततिस्तस्यास्तस्यांसुकृतमक्षयम् ।
अक्षतैस्तुनराः स्नाताविष्णोर्दत्वातथाक्षतान् ।४
विप्रेषु दत्वा तानेव तथा सक्तून् सुसंस्कृतान् ।
यथान्नभुक् महाभागः फलमक्षयमश्नुते ।५
एकामप्युक्तवत् कृत्वा तृतीयां विधिवन्नरः ।
एतासामपि सर्वासांतृतीयानां फलंभवेत् ।६
तृतीयायां समभ्यर्च्य सोपवासो जनार्दनम् ।
राजसूयफलं प्राप्यगतिमग्र्याञ्च विन्दति ।७

ईश्वर ने कहा-इसके अनन्तर मैं अक्षय तृतीया के व्रत का भी वर्णन करता हूँ जो सब कामनाओं को प्रदान करने वाला है। जिसमें दिया हुआ जो भी हो हवन-जप आदि सभी अक्षय हो जाया करतेहैं। ।१। वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की जो तृतीया होती है उसका जिन पुरुषों ने उपवास किया है या किया करते हैं वे सभी सुकृत का अक्षय फल पाने का लाभ किया करते हैं।२। वह तिथि कृत्तिका से उपेत होती विशेष रूप से सुपूजित होती है। उसमें सभी दान किया हुआ—हवन किया हुआ और जाप किया हुआ अक्षय कहा जाता है।३। उसकी सन्तति भी अक्षय अर्थात् कभी भी क्षीण न होने वाली होती है और उसमें किया हुआ सुकृत भी अक्षय होता है। अक्षतोंसे स्नानकिए

हुए मनुष्य भगवान् विष्णु की सेवा में अक्षतों को समर्पित करके उन्हीं को सुसंस्कृत सतुआ कराकर विप्रों को दान में दिया करते हैं वे यथा अन्नमुक महाभाग उसका अक्षय फल प्राप्त किया करते हैं ।४-५। उक्त विधान के अनुसार मनुष्य एक भी तृतीया का व्रत किया करते हैं वे इन सभी तृतीयाओं का फल प्राप्त कर लिया करते हैं। तृतीया के दिनउपवास के सहित रहकर जो भगवान जनार्दनका अभ्यर्चन करता है वह मनुष्य राजसूय यज्ञ का पुण्य-फल प्राप्त करके अत्युत्तम गतिकी प्राप्ति किया करते हैं ।६-७।

मधुरा भारती केन व्रतेन मधुसूदन ! ।
तथैव जनसौभाग्यं मतिं विद्यासुकौशलम् ।८
अभेदश्चापि दम्पत्यो स्तथा बन्धुजनेन च ।
आयुश्च विपुल पुंसा तन्मे कथय माधव ! ।९
सम्यक् पृष्ट त्वया राजन् ! शृणुसारस्वतंव्रतम् ।
यस्य संकीर्तनादेव तुष्यतीह सरस्वती ।१०
यो यद्भक्तः पुमान् कुर्यातिएतद्व्रतमनुत्तमम् ।
तद्वासरादौसम्पूज्यविप्रानेतान्समाचरेत् ।११
अथवादित्यवारेण ग्रहतारावलेन च ।
पायसं भोजयेद्विप्रान् कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।१२
शुक्लवस्त्राणि दत्त्वा च सहिरण्यानि शक्तितः ।
गायत्रीं पूजयेद्भक्त्या शुक्लमाल्यानुलेपनैः ।१३
यथा न देवि ! भगवान् ब्रह्मलोके पितामहः ।
त्वां परित्यज्य सन्तिष्ठेत्तथा भव वरप्रदा ।१४

मनु ने कहा—हे मधुसूदन ! यह मधुरा भारती किस व्रतसे प्राप्त हुआ करती है ? तथा जनोंका सौभाग्यपति और विद्याओंमें परमाधिक कौशल-दम्पत्तिमें किसी भी प्रकार के भेद-भाव का न होना तथा बन्धु जन के साथ भी भेद की भावना का अभाव वायु की विपुलता ये सब

पुरुषों को कौन से व्रत-विधान से हुआ करता है ? हे माधव ! वही आप कृपा करके हमको बतलाइये ।८-६। भगवान मत्स्य ने कहा—हे राजन् ! आपने यह तो बहुत ही अच्छा इस समय में प्रश्न पूछा है। अच्छा तो अब सारस्वत व्रत का श्रवण कीजिए जिसके करने की तो बात ही क्या है केवल कीर्तन मात्रके करने ही से देवी सरस्वती लोक में परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो जाया करती हैं ।१०। जो इसका भक्त पुरुष इस परमोत्तम व्रत को करता है उसे उसका सर के आदि में इन विप्रों का भली भाँति पूजन करके ही इस व्रतका समाचरण करना।११ अथवा रविवार को ग्रहों के और ताराओं के बल से इसका आरम्भ करे । ब्राह्मण वाचन करके विप्रों को पायस का भोजन कराना चाहिए ।१२। परमोज्ज्वल शुक्ल वसज और इनके साथ में अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण भी देकर शुक्ल माल्य और शुक्ल ही अनुलेपन आदि उपचारों के द्वारा भक्ति की भावना से गायत्री देवीकी अभ्यर्चन करना चाहिए ।१३। पूजन की वेला में देवी से यही प्रार्थना—हे देवी ! जिस प्रकार से ब्रह्मलोक में भगवान् पितामह आपका परित्याग करके क्षण मात्र को भी संस्थित नहीं रहा करते हैं उसी प्रकार से आप वरदान देने वाली हो जाइए ।१४।

वेदाः शास्त्राणिसर्वाणिगीतनृत्यादिकञ्चयत् ।
न निहीनंत्वयादेवि ! तथामेसन्तुसिद्धयः ।१५
लक्ष्मीर्मेधा धरापुष्टिर्गौरीतुष्टाप्रभामतिः ।
एताभिः पाहि अष्टाभि स्तनूभिर्मासरस्वती ।१६
एवं सम्पूज्यगायत्रीं वाणीक्षयनिवारिणीम् ।
शुक्लपुष्पाक्षतैर्भक्त्यासकमण्डलुपुस्तकाम् ।
मौनव्रतेन भुञ्जीत सायं प्रातस्तु धर्म्मवित् ।१७

वेद और सम्पूर्ण शास्त्र तथा गीत और नृत्य आदि सभी हे देवि! आप से हीन न होवें उसी प्रकार की मेरी सिद्धियाँ हो जानी चाहिए

।१५। हे सरस्वती देवि ! आप लक्ष्मी, मेधा, धरा, पुष्टि, गौरी, तुष्टा प्रभा, इन आठ तनुओं से संयुता होकर मेरी रक्षा करिए ।१६। इस प्रकार से क्षय का निवारण करने वाली वाणी गायत्री देवी का भली-भाँति अर्चन करके जो शुक्ल पुष्प और अक्षतों से संयुत है और भक्ति के द्वारा कमण्डलु एवं पुस्तक को धारण करने वाली है फिर मौन व्रत पूर्वक धर्म के ज्ञाता पुरुष को सायंकाल में और प्रातःकाल में अशन करना चाहिए ।१७।

३८—चन्द्रादित्योपराग में स्नान विधि कथन

चन्द्रादित्योपरागेतु यत्स्नानमभिधीयते ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि द्रव्यमन्त्रविधानवित् ।१
यस्य राशिसमासाद्य भवेद्ग्रहणसंप्लवः ।
तस्य स्नानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधविधानतः ।२
चन्द्रोपरागंसम्प्राप्य कृत्वाब्राह्मणवाचनम् ।
संपूज्यचतुरो विप्रान् शुक्लमाल्यानुलेपनैः ।३
पूर्वमेवोपरागस्य समासाद्यौषधादिकम् ।
स्थापयेच्चतुरः कुम्भानव्रणान् सागरानिति ।४
गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमाद्ध्रदगोकुलात् ।
राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय चाक्षिपेत् ।५
पञ्चगव्यञ्च कुम्भेषु शुद्धमुक्ताफलानि च ।
रोचनां पद्मशङ्खौ च पञ्चरत्नसमन्वितम् ।६

मनु ने कहा—हे भगवन् ! आपके द्वारा चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहण की वेला में जो स्नान कहा जाता है उसको द्रव्य-मन्त्र और विधान के जानने वाले आपसे मैं पूर्ण रूप से श्रवण करना चाहता हूँ ।१।

मत्स्य भगवान् ने कहा—जिस राशि को प्राप्त करके ग्रहण का संप्लव होता है उसका स्नान मन्त्र और औषधि के विधान से मैं आपको बत लाता हूँ ।१-२। जब चन्द्रमा का उपराण (ग्रहण) सम्प्राप्त हो तो उस समय में ब्राह्मण वाचन करे और चार विप्रों का शुक्ल माल्या तथा शुक्ल अनुलेपनों के द्वारा भली भाँति पूजन करे। नव उपराग का आरम्भ हो उससे पूर्व ही औषधि आदि का समासादन करे। चार कुम्भों को स्थापना करे जो व्रणों से रहित हों। ये कुम्भ सागर स्था-नीय होते हैं ।३-४। गजशाला, अश्वशाला, वल्मीक (सांप की बामी) सङ्गम, ह्रद, गोकुल (गायों के बैठने तथा बँधने का खिरक) राजद्वार का प्रवेश-इन स्थलों से मृत्तिका का आनयन करके उसका प्रक्षेप करना चाहिए ।५। कुम्भों में पञ्चगव्य (गौ का दूध-दही-घृत मूत्र और गोमय-इन सबका सम्मिश्रण) शुद्ध मुक्ताफल, रोचना, पद्म, शङ्ख तथा पाँचों प्रकार के रत्न, स्फटिक, चन्दन श्वेत, तीर्थों का जल, सरसों, राजदन्त, कुमुद उशीर (खस) और गूगल इन समस्त पदार्थों को एक-त्रित कर लेना चाहिए ।६।

स्फटिकं चन्दनं श्वेत तीर्थवारि ससर्षपम् ।
राजदन्त सकुमुदं तथैवोशीरगुग्गुलम् ।
एतत्सर्वं विनिक्षिप्य कुम्भेष्वावाहयेत् सुरान् ।७
सर्वं समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ।८
योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः ।
सहस्रनयनश्चेन्द्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु ।९
मुखं यः सर्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युतिः ।
चन्द्रोपरागसम्भूतां अग्निः पीडां व्यपोहतु ।१०
यः कर्मसाक्षी भूतानां धर्मो महिषवाहनः ।
यमश्चन्द्रोपरागोत्थां ममपीडां व्यपोहतु ।११

नागपाशधरो देव: साक्षान्मकरवाहन: ।
स जलाधिपतिश्चन्द्रग्रह पीडां व्यपोहतु ।१२
प्राणरूपेण यो लोकान् पाति कृष्ण मृगप्रिय. ।
वायुश्चन्द्रोपरागोत्था पीडांमत्र व्यपोहतु ।१३
योऽसौ निधिपति र्देव: खड्गशूलगदाधर: ।
चन्द्रोपरागकलषं धनदो मे व्यपोहतु ।१४

'उपर्युक्त पदार्थोंका सबका उन कुम्भों में निक्षेप करके फिर उनमें सुरों का आवाहवन करना चाहिए ।७। आवाहन के समय में प्रार्थना करे—सब समुद्र, समस्त सरितायें, तीर्थ, जलद, नद यहाँ पर आने की कृपा करें जो कि यजमान के दुरितों के क्षय करने में समर्थ हैं ।८। जो यह वज्र के धारण करने वाले देव आदित्यों के प्रभु माने गये है वही सहस्र नेत्रों वाले इन्द्रदेव ग्रहों की पीड़ा का व्यपोह्व करें।९। अपरिमित श्रुति वाले सप्तार्चि समस्त देवों का मुख है । अग्नि, चन्द्र के उपराग से होने वाली पीड़ा का व्यपोन्ह करें जो भूतों के विदित कर्मों का (बुरे—भले जैसे भी हो) साक्षी है वह धर्म महिष के वाहन वाला यमराज चन्द्र के उपराग से समुत्पन्न मेरी पीड़ा को दूर करें ।१०-११। नागों के पाश को धारण करने वाले साक्षात् मकर के वाहन वाले देव जल के अधिपति चन्द्र ग्रह की पीड़ा का व्ययोह्न करें ।१२। कृष्ण मृग पर प्यार करने वाले वायुदेव जो प्राणों के रूप से समस्त लोकों का प्रतिपालन किया करते हैं यहाँ पर इस चन्द्रमा के उपरग से समुस्थित पीड़ा का निवारण कर देवें । जो यह निधियों का स्वामी खड्ग, शूल और गदाके धारण करने वाले देव धनद हैं वे मेरे चन्द्रोपराग के कलुष को दूर करे ।१३-१४।

योऽसौ विन्दुधरो देव: पिनाकी वृषवाहन: ।
चन्द्रोपरागजां पीडां विनाशयतुशङ्कर: ।१५
त्रैलोक्येयानिभूतानि स्थावराणिचराणिच ।
ब्रह्मविष्णवर्कयुक्तानि तानि पापदहन्तुवै ।१६

एवमामन्त्र्यतैः कुम्भैरभिषिक्तोगुणान्वितैः ।
ऋग्यजुः साममन्त्रैश्च शुक्लमाल्यानुलेपनैः ।
पूजयेद्वस्त्रगोदानैर्ब्राह्मणानिष्टदेवताः ।१७
एतानेव ततोमन्त्रान् विलिखेत्करकान्वितान् ।
वस्त्रपट्टेऽ वा पद्मे पञ्चरत्नसमन्वितान् ।१८
यजमानस्य शिरसि निदध्युस्तेद्विजोत्तमाः ।
ततोऽतिवाहयेद्वेलामुपरागानुगामिनीम् ।१९
प्राङ्मुखः पूजयित्वा तु नमस्यन्निष्टदेवताम् ।
चन्द्रग्रहे विनिर्वृत्ते कृतगोदानमङ्गलः ।
कृतस्नानायतं पट्टं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।२०
अनेन विधिना यस्तु ग्रहस्नानं समाचरेत् ।
न तस्य ग्रहपीडां स्यान्न च बन्धुजनक्षयः ।२१
परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ।
सूर्यग्रहे सूर्यनाम सदा मन्त्रेषु कीर्तयेत् ।२२

जो यह बिन्दु के धारण करने वाले वृष के वाहन वाले पिनकी देव शङ्कर हैं वे मेरी चन्द्र के ग्रहण से उत्पन्न होने वाली पीड़ा का विनाश कर देवें ।१५। इस त्रिलोकी में जो भी स्थावर और चर भूत हैं जो ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य से संयुक्त हैं वे सब पापों का दाह करें । ।१६। इस तरह से आमन्त्रित करके फिर गुणों के समन्वित उन कुम्भों से अभिषिक्त होकर ऋक्-यजु और सामवेद के मन्त्रों के द्वारा एवं शुक्ल माल्य और अनुलेपनों से इष्ट देवों का अर्चन करे तथा वस्त्र और गोदानों के द्वारा ब्राह्मणों का यजन करना चाहिए ।१७। फिर इन्हीं मन्त्रों को करके लिखे जो पाँच रत्नों से भी समन्वित हों । इन मन्त्रों को किसी वस्त्र पट्ट पर अथवा पद्म पर लिखना चाहिए ।१८। उत्तम द्विजों को यजमान के शिर पर उन्हें रखना चाहिए । फिर उस उपराग की अनुगामिनी वेला का अतिवाहन करे ।१९। पूर्व दिशा की

और मुख वाला होकर पूजन करे तथा अपने इष्ट देवों को नमस्कार करे। जब यह चन्द्रमा का ग्रहण निवृत्त हो जावे तो गो दान और मङ्गल कर्म वाले किए हुए को स्नान ब्राह्मण के लिए उस पट्ट को को निवेदित कर देना चाहिए।२०। इस विधान के साथ जो ग्रह स्नान का समाचरण किया करता है उसको कभी ग्रहों की पीड़ा नहीं हुआ करती है और न कभी बन्धुजनों का ही क्षय होता है। वह मनुष्य पुनरावृत्ति दुर्लभ परम सिद्धि की प्राप्ति किया करता है। सूर्य ग्रह में सूर्य देव के नामों का सदा मन्त्रों में कीर्त्तित करना चाहिए।।२१-२२।

३६—सप्तमीस्नान व्रत कथन

किमुद्वेगाद्भुते कृत्यमलक्ष्मीः केन हन्यते।
मृतवत्साभिषेकादि कार्येषु च किमिष्यते।१
पुरा कृतानि पापानि फलन्त्यस्मिंस्तपोधन।
रोगदौर्गत्यरूपेण तथैवेष्टवधेन च।२
तद्विघाताय वक्ष्यामि सदा कल्याणकारकम्।
सप्तमीस्नपनंनाम जनपीडाविनाशनम्।३
बालानां मरणं यत्र क्षीरपानां प्रदृश्य तम्।
तद्वत्वृद्धतरागाञ्च यौवने चापिवर्त्ततास्।४
शान्तये तत्र वक्ष्यामि मृतवत्साभिषेचनम्।
एतदेवाद्भुतोद्वेगचित्तभ्रमविनाशनम्।५
भविष्यति च वाराहो यत्र कल्पस्तपोधन!।
वैवस्वतश्च तत्रापि यदा तु मनुरुत्तमः।६
भविष्यति च तत्रैव पञ्चविंशतिमं यदा।

कृतं नामयुगं तत्र हैहयान्वयवर्द्धनः।
भावता नृपतिर्वीरः कृतवीर्यः प्रतापवान्।७

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—उद्वेग के अद्भुत दशा के प्राप्त होने पर क्या कृत्य करना चाहिये ? किस कर्म के करने से यह अलक्ष्मी का हनन किया जाता है तथा मृतवत्सा आदि कार्यों में क्या इष्टप्रद हुआ करता है ? श्री भगवान् ने कहा—हे तपोधन ! इस मनुष्य जीवन में पूर्व जन्मों में किये हुए पाप ही फल दिया करते हैं। इस जीवन में रोगों की उत्पत्ति—महा दुर्गति के स्वरूप से और इष्ट के वध होने से अर्थात् जो भी कुछ अभीष्ट हो उसका विनाश के होने से मनुष्य को उन पूर्व कृत पापों का फल मिला करता है।१-२। इन सबके विगात करनेके लिए सदा कल्याणको करने वाले तथा जनोंकी पीड़ात्मा विनाश कर देने वाले सप्तमी स्नपन नाम वाले व्रत को बतलाते हैं।३। जहाँ पर दुधमुँहे छोटे-२ बच्चों का मरण दिखलाई दिया करता है और उसी भाँति जो अभी वृद्धावस्थामें प्राप्त नहीं हुए है ऐसे यौवन में रहने वालों का मरण होता है वहाँ पर शान्ति के सम्पादन करने के लिये मृतवत्साभिषेचन बतलाते है ! यही अद्भुत उद्वेग और चित्त के भ्रम का विनाश करने वाला होता है।४-५। हे तपोधन ! जिस समय में वाराह कल्प होगा वहीं पर जब उत्तम वैवस्वत मनु होगा। वहीं पर जब पच्चीसवाँ कृत युग नाम वाला युग होगा और उस समय में हैहय के वंश की वृद्धि करने वाला महान् प्रताप वाला वीर कृतवीर्य नामक एक नृपति होगा।६-७।

ससप्तद्वीपमखिलं पालयिष्यति भूतलम्।
यावद्वर्षसहस्राणि सप्तसप्तति नारद !।८
जातमात्रञ्च तस्यापि यावत् पुत्रशतं तथा।
च्यवनस्यतु शापेन विनाशमुपयास्यति।९
सहस्रबाहुश्च यदा भविता तस्यवै सुतः।

कुरङ्गनयनः श्रीमान् सस्मृतो नृपलक्षणैः ।१०
कृतवीर्य्यस्तदाराध्य सहस्रांशु दिवाकरम् ।
उपवासै र्व्रतैर्दिव्यैर्वेदसूक्तैश्च नारद ! ।
पुत्रस्य जीवनायालभेतत्स्नानमवाप्स्यति ।११
कृतवीर्य्येण वै पृष्ट इदं वक्ष्यति भास्करः ।
अशेषदुष्टशमनं सदा कल्मषनाशनम् ।१२
अलं क्लेशेन महता पुत्रस्तव नराधिप ! ।
भविष्यति चिरञ्जीवो किन्तु कल्मषनाशनम् ।१३
सप्तमी स्नपनं वक्ष्ये सर्वलोकहिताय वै ।
जातस्य मृतवत्सायाः सप्तमे मासि नारद ! ।
अथवा शुक्लसप्तम्यामेतत् सर्वं प्रशस्यते ।१४

वह राजा सातों द्वीपों के सहित समस्त भूतल का परिपालन करेगा । हे नारद ! सतत्तर सहस्र वर्ष पर्यन्त वह पालन करेगा ।८। उसके भी उत्पन्न मात्र हुए एक सौ पुत्र सबके सब च्यवन के शाप से विनाश को प्राप्त हो जायेंगे ।९। जिस समय में उसका पुत्र सहस्रबाहु होगा जो मृगके समान सुन्दर नेत्रों वाला—श्री से सम्पन्न और सम्पूर्ण नृप के लक्षणों से युक्त होगा।१०। उस समय में राजा कृतवीर्य सहस्रांशु भगवान् दिवाकर की आराधना करके जो कि उपवास-व्रत और हे नारद ! दिव्य वेदों-सूक्तों के द्वारा की गयी थी-पुत्र के जीवन के लिये यह पर्याप्त स्नान प्राप्त करेगा ।११। राजा कृतवीर्य के द्वारा पूछे गये भास्कर प्रभु इस व्रत को उसे बतलायेंगे । यह व्रत सम्पूर्ण कल्मषों का नाश करने वाला और अशेष दुष्टों का भी शमन करने वाला है ।१२। भगवान् भुवन भास्कर ने कहा था—हे नराधिप! अब आप यह महान क्लेश मत करो आपका पुत्र चिरंजीवी होगा किन्तु कल्मषों के नाश करने वाला सप्तमी स्नपन करना होगा जिसको कि मैं सब लोगों के हित संपादन के लिये अभी बतला दूँगा । हे नारद ! मृतवत्सा स्त्री के

समुत्पन्न होने वाले के सातवें मास में अथवा शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि में यह सब प्रशस्त होगा ।१३-१४।

ग्रहताराबलं लब्ध्वा कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।
बालस्य जन्मनक्षत्रं वर्जयेत्तां तिथिं बुधः ।
तद्वद्वृद्धेतराणाञ्च कृत्यंस्यादितरेषु च ।१५
गोमयेनानुलिप्तायां भूमावेकाग्निवत्तदा ।
तण्डुलैरक्तशालीयैश्चसगोक्षीरसंयुतम् ।
निर्वपेत् सूर्य्यरुद्राभ्यां तन्मन्त्राभ्यां विधानतः ।१६
कीर्तयेत् सूर्य्यदैवत्यं सप्तर्चि च घृताहुताः ।
जुहुयाद्रुद्रसूक्तेन तद्वद्रुद्राय नारद ! ।१७
होतव्याः समिधश्चात्र तथैवाकपलाशयोः ।
यवकृष्णतिलहोंमः कर्त्तव्योऽष्टशतं पुनः ।१८
व्याहृतीभिस्तथाज्येन तथैवाष्टशतं पुनः ।
व्याहृतीभिस्तथाज्येन तथैवाष्टशतं पुनः ।
हुत्वा स्नानञ्च कर्त्तव्यं मङ्गल येन धीमता ।१९
विप्रेण वेदविदुषा विधिवद्दर्भपाणिना ।
स्थापयित्वा तु चतुरः कुम्भान्कोणेषु शोभनान् ।२०

ग्रहों के तथा ताराओं के बल को प्राप्त करके अर्थात् जब सब ग्रह और तारा अपने अनुकूल शुभ हों ऐसे समय में ब्राह्मण वाचन करावे । बुध पुरुष को चाहिए कि बालकके जन्म का नक्षत्र और उस तिथि को वर्जित कर देवे । इसी भाँति जो वृद्धों से इतर अर्थात् युवा हैं उनका और इतरों का भी कृत्य होता है ।१५। गोमय से अनुलिप्त भूमि में एकाग्नि के समान उस समय में रक्त शालीय तण्डुलों से गौ के क्षीर से संयुत चरु का सूर्य रुद्र के उन मन्त्रों से विधान पूर्वक निर्वपन करना चाहिए ।१६। सूर्यदैवत्य का की कीर्तन करे तथा सप्तर्चि को घृत की आहुतियों के द्वारा हवन करना चाहिए । हे नारद! उसी प्रकार से रुद्र के लिए रुद्रसूक्त से हवन करे ।१७। उसी प्रकार से अर्क (आक) और पलाश ढाक की समिधाओं का हवन करना चाहिये । फिर यव और

काले तिलों से अष्टोत्तर शत होम करना चाहिये।१। तथा आज्य(घृत) के द्वारा व्याहृतियों से एकसौ आठ बार पुनः हवन करके मङ्गल स्नान करना चाहिये। वेदों के विद्वान् धीमान् दर्भ हाथ में रखने वाले विप्रके द्वारा चार परम शोभन कुम्भों को कोणों में स्थापित कराकर विधिको सुसम्पन्न करे।१९-२०।

पञ्चमञ्च पुनर्मध्ये दध्यक्षतविभूषितम्।
स्थापयेदव्रणं कुम्भं सप्तर्चेनाभिमन्त्रितम्।२१
सौरेण तीर्थतोयेन पूर्णं रत्नसमन्वितम्।
सर्वान्सर्वौषधैर्युक्तान् पञ्चगव्यसमन्विताम्।
पञ्चरत्नफलैः पुष्पैः वासोभिः परिवेष्टयेत्।२२
गजाश्वरथ्यावल्मीकात्सङ्गमाद्ध्रदगोकुलात्।
संशुद्धां मृदमानीय सर्वेष्वेवविनिक्षिपेत्।२३
चतुर्ष्वपि च कुम्भेषु रत्नगर्भेषु मध्यमम्।
गृहीत्वा ब्राह्मणस्तत्र सौरान्मन्त्रानुदीरयेत्।२४
नारीभिः सप्तसंख्याभिरव्यङ्गाङ्गीभिरत्र च।
पूजिताभिर्यथाशक्तया माल्यवस्त्रविभूषणैः।
सविप्राभिश्च कर्त्तव्यं मृतवत्साभिषेचनम्।२५
दीर्घायुरस्तु बालोऽयं जीवत्पुत्राच भामिनी।
आदित्यश्चन्द्रम सार्द्धं ग्रहनक्षत्रमण्डलैः।२६
सशक्रा लोकपाला वै ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः।
एते चान्ये च देवौघाः सदापान्तुकुमारकम्।२७
मित्रोशनिर्वा हुतभुक् ये च बालग्रहाः कचित्।
पीडां कुर्वन्तु बालस्यमामातुर्जनकस्यवै।२८

फिर मध्य में पाँचवें कुम्भ को दधि अक्षत से विभूषित करके विना व्रण वाले कुम्भ सात ऋचाओं से अभिमन्त्रित करके स्थापित करना चाहिये।२१। सौर ऋचाओं से अभिमन्त्रित करके तीर्थों के जल से परिपूर्ण करे तथा रत्नोंसे समन्वित करे। सभी कुम्भों को सर्वौषधि

से संयुत एवं पञ्चगव्य से युक्त करके फिर पंचरत्न फलों और पुष्पोंसे समन्वित करके वस्त्रों से परिवेष्टित कर देना चाहिए ।२२। गज—अश्व–रथ्या–वल्मीक–संगम और ह्रद से तथा गोकुल से मृतिका को लाकर जो कि परम संशुद्ध हो उन समस्त कुम्भों में उसका विनिक्षेप कर देवे ।२३। उन चारों रत्न मध्य में रहने वाले कुम्भों में से उस मध्य में रहने वाले कुम्भ को ग्रहण करके ब्राह्मण वहीं पर सौर सूर्य सम्बन्धी मन्त्रों का उच्चारण करे।२४। सात संख्या वाली।अव्यङ्ग अङ्गों वाली पूजित नारियों के द्वारा जो विप्रों के भी सहित हों यथाशक्ति से माला-वस्त्र और विभूषणों से उनका पूजन किया हुआ है, वे फिर उस मृतवत्सा नारी का अभिषेचन करें ।२५। इस प्रकार से वे कहते हुए अभिषेचन करें—यह बालक दीर्घआयु वाला होवे और यह भामिनी जीवित पुत्रों वाली होवे । ग्रह नक्षत्रों के मण्डलों के साथ आदित्य और चन्द्रदेव-इन्द्र के सहित सब लोकपाल तथा ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर ये सब देवगण तथा इनके अतिरिक्त दूसरे भी देव समुदाय इस कुमार की सदा रक्षा करें ।२६-२७। मित्र अशनि अथवा हुतभुक् जो भी कहीं पर बालग्रह हैं जो बालकी पीड़ा किया करते हैं वे बालक उसकी माता और उसके जनक किसी को भी न सतावें ।२८।

ततः शुक्लाम्बरधरा कुमारपतिसंयुता ।
सप्तक पूजयेद्भक्तया स्त्रीणामथ गुरुं पुनः ।२९
भुक्तवा च गुरुणा चेयमुच्चार्या मन्त्रसन्ततिः ।
दीर्घायुरस्तु बालाऽयं यावद्वर्षशतसुखी ।३०
यत् किञ्चिदस्यदुरिततत् क्षिप्तवडवानले ।
ब्रह्मारुद्रोवसुः स्कन्दोविष्णुःशक्रोहुताशनः ।३१
रक्षन्तु सर्वे दुष्टेभ्यो वरदाः सन्तु सर्वदा ।
एवमादीनि वाक्यानि वदन्त पूजयेद्गुरुम् ।३२
शक्तितः कपिलां दद्यात् प्रणम्य च विसर्जयेत् ।

चरुञ्च पुत्रसहिता प्रणम्य रविशंकरौ ।३३
हुतशेष तदाश्नीयादादित्याय नमोऽस्त्विति ।
इदमेवाद्भुतोद्वेगदुःस्वप्नेषु प्रशस्यते ।३४
कर्तुर्जन्मदिनर्क्षंच त्यक्त्वा संपूजयेत् सदा ।
शान्त्यर्थं शुक्लसप्तम्यामेतत्कुर्वन्न सीदति ।३५

इसके अनन्तर शुक्ल वस्त्र धारण करनी वाला कुमार और पति से समन्वित भक्ति से स्त्रियों के सप्तक का पूजन करे पुनः इसके बाद गुरु का यजन करे ।२९। इसके उपरान्त ताम्रपात्र के ऊपर स्थित धर्मराज की सुवर्ण की प्रतिमा को करे और फिर उस गुरुजी के लिये निवेदित कर देना चाहिये ।३०। वित्त की शठता से रहित होकर अर्थात् धन होते हुए कृपणता न करके उसी भाँति ब्राह्मणों का वस्त्र—सुवर्ण, रत्नों का समूह, भक्ष्य, घृत और पायस से पूजन करना चाहिए। ।३१। भोजन करके गुरु को यह मन्त्रों की सन्तति का उच्चारण करना चाहिए—यह बालक दीर्घायु हो और सौ वर्ष तक सुखी रहे ।३२। जो कुछ भी इसका दुरित (पाप) हो उसको वड़वानल में क्षिप्त कर दिया जावे । ब्रह्मा, रुद्र, वसु, स्कन्द, विष्णु, शक्र, हुताशन ये सब दुष्टों से रक्षा करें और सर्वदा वरदान देने वाले होवें—इस प्रकार के वाक्यों को बोलने वाले गुरु का अभ्यर्चन करे ।३३। अपनी शक्ति के अनुसार एक कपिला गौ का दान करे फिर प्रणाम करके गुरु का विसर्जन कर देना चाहिए । पुत्र से सहित रवि और भगवान् शंकरको प्रणाम करके उस चरु को जो हुत से शेष बचकर रह गया है उसको—"आदित्याय नमोऽस्तु'—इस मन्त्र के साथ उसी समय में प्राशन कर लेवे । यह ही अद्भुतोद्वेगदुः स्वप्नों में प्रशस्त माना जाता है ।३४। कर्त्ता का जन्म दिन और नक्षत्र का त्याग करके सदा ही पूजन करे । मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी में शान्तिके लिये करता हुआ मानव कभी दुःखित नहीं होता है ।३५।

सदनेन विधानेन दीर्घायुरभवेन्नरः ।
सम्वत्सराणां प्रयुतं शशास पृथिवीमिमाम् ।३६
पुण्यं पवित्रमायुष्यं सप्तमीस्नपनं रविः ।
कथयित्वा द्विजश्रेष्ठ ! तत्रैवान्तरधीयत ।३७
एतत् सर्वं समाख्यातं सप्तमीस्नानमुत्तमम् ।
सर्वदुष्टोपशमनं बालानां परमं हितम् ।३८
आरोग्यं भास्करादिच्छेद्ध ुताशनात् ।
ईश्वरराज्ज्ञानमिच्छेच्च मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् ।३९
एतन्महापातकनाशनं स्यात्परं हितं बालविवर्द्धनञ्च ।
शृणोति यश्चैनमनन्यचेतास्तस्यापि सिद्धिर्मुनयो वदन्ति ।४०

इसी विधान से मनुष्य दीर्घायु हुआ है एक प्रयुत सम्वत्सरों तक इस पृथ्वी का शासन किया था ।३६। भगवान् रविदेव इस परम पुण्य मय–महान् पवित्र और आयु की वृद्धि करने वाले सप्तमी स्नपन नामक व्रत को कहकर हे द्विज श्रेष्ठ ! वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे ।३७। यह सब उत्तम सप्तमी स्नपन वर्णित कर दिया गया है जो सब दुष्टों के उपशमन करने वाला तथा बालों का परम हितप्रद है ।३८। आरोग्य भास्कर देव से चाहे और यदि धन की इच्छा करे तो हुताशन देव से करे । ईश्वर से ज्ञान की इच्छा करनी चाहिए तथा जनार्दन प्रभु से मोक्ष की इच्छा करे ।३९। वह सप्तमी स्नपन महान् पातकों का नाश करने वाला है और परम हितकर तथा बालों का विशेष वर्धन करने वाला है । जो कोई अनन्य चित्त वाला होकर इसका श्रवण करता है उसकी भी सिद्धि होती है—ऐसा मुनिगण कहा करते हैं ।४०।

तो लोक भावन उमापति ने मन की प्रीति को करने वाला यह वचन कहा था ।४। ईश्वर ने कहा था---जिस समय में इसके अनन्तर इस तेईसवें रथन्तर कल्प में वाराह कल्प होगा । उसके परम शुभ मन्वन्तर में सप्तम वैवस्वत नाम वालेके समुत्पन्न होने पर सप्तलोक कृत द्वापर नामक युग होगा जिसकी अट्ईसवां कहते हैं ।५-६। उसके अन्त में वह महादेव वासुदेव जनार्दन भार को अवतारण करने के लिये विष्णु के तीन प्रकार के स्वरूप होंगे ।७।

द्वैपायन ऋषिस्तद्वद्रौहिणेयोऽथ केशवः ।
कंसादिदर्पमंथनः केशवः क्लेशनाशानः ।८
पुरीं द्वारवतीं नाम साम्प्रत याकुशस्थली ।
दिव्यानुभावसंयुक्तामधिवासाय शार्ङ्गिणः ।
त्वष्टां ममाज्ञया तद्वत् करिष्यति जगत्पतेः ।९
तस्यां कदाचिदासीनः सभायाममितद्युतिः ।
भार्याभिर्वृ ष्णिभिश्चैव भूभृद्भिर्भू रिदक्षिणैः ।१०
कुरुभिर्देवगन्धर्वैरभितः कैटभार्दनः ।
प्रवृत्तासु पुराणासु धर्म्मसम्बन्धिनाषु च ।११
कथान्ते भीमसेनेन परिपृष्टः प्रतापवान् ।
त्वया पृष्टस्य धर्म्मस्य रहस्यस्यास्य भेदकृत् ।१२
भविता स तदाब्रह्मन् ! कर्त्ताचैववृकोदरः ।
प्रवर्तकोऽस्य धर्म्मस्य पाण्डुपुत्रोमहाबलः ।१३
यस्य तीक्ष्णो वृकोनामजठरे हव्यवाहनः ।
मया दत्तः स धर्म्मात्मा तेनचासौवृकोदरः ।१४

इसी भाँति से द्वैपायन ऋषि---रोहिणेय केशव और कंस आदि दुष्टों के दर्प का मन्थन कर देने वाले क्लेश के नाश करने वाले केशव होंगे ।८। इस समय में द्वारावती नाम वाली पुरी जो कुशस्थली है उसको जो दिव्य अनुभावों से संयुक्त है मेरी ही आज्ञा से त्वष्टा विश्व

कर्मा भगवान् शार्ङ्गी अधिवास करने के लिये जो इस सम्पूर्ण जगत् का पति है उसी प्रकार से निर्मित करेगा ।९। उस द्वारावती पुरी में किसी समय में सभा में विराजमान अमित द्युति वाले भार्याओं से-वृष्णिगणों से-भूरिदा क्षीण वाले भूभृतों से—कुरु गणों से-देवों से और गन्धर्वों से चारों ओर से कैटभार्दन प्रभु घिरे हुए थे । उसी समय में धर्म की बढ़ाने वाली पुराणों की कथायें प्रवृत्त हो रही थीं ।१०-११। जब कथा का अन्त हो गया तो भीमसेन ने प्रतापवान् प्रभु से पूछा था । आपके द्वारा पूछे गये इस धर्म के रहस्य का भेदकृत हे ब्रह्मन् ! उस समय में वृकोदर ही कर्त्ता होगा । इस धर्मका प्रवर्तक महान् बलवान् पाण्डु पुत्र ही है । जिसके जठर में परम तीक्ष्ण वृक नाम वाला हव्यवाहन है । मेरे ही द्वारा वह धर्मात्मा दिया गया है इसी से यह वृकोदर नाम से कहा जाया करता है ।१२-१४।

मतिमान्दानशीलश्च नागायुतबलोमहान् ।
भविष्यत्यरजाः श्रीमान् कन्दर्प इव रूपवान् ।१५
धार्मिकस्याप्यशक्तस्य तीव्राग्नित्वादुपोषणे ।
इदं व्रतमशेषाणां व्रतानामधिकं यतः ।१६
कथयिष्यति विश्वात्मा वासुदेवो जगद्गुरुः ।
अशेषयज्ञफलदमशेषाघविनाशनम् ।१७
अशेषदुष्टशमनशेषसुरपूजितम् ।
पवित्राणां पवित्रञ्च मङ्गलानांच मङ्गलम् ।
भविष्यञ्च भविष्याणां पुराणानां पुरातनम् ।१८
यद्यष्टमी चतुर्दश्योर्द्वादशीष्वथ भारत ! ।
अन्येष्वपि दिनर्क्षेषु न शक्तस्त्वमुपोषितुम् ।१९
ततः पुण्यान्तिथिमिमां सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
उपोष्यविधिनानेन गच्छविष्णोः परम्पदम् ।२०
माघमासस्य दशमी यदा शुक्ला भवेत्तदा ।

घृतेनाभ्यञ्जनं कृत्वा तिलैः स्नानं समाचरेत् ।२१

मतिमान्—दान देनेके शी स्वभाव वाला और एक अयुत नागों के बल से सुसम्पन्न महान्—श्रीमान और कन्दर्प के तुल्य रूप लावण्य से परिपूर्ण अरजा होगा ।१५। परम धार्मिक था तो भी तीव्राग्नि के होने के कारण से उपपोषण करने में अशक्त था । उसके लिये ही यह व्रत कहा गया है जो कि अशेष अन्य व्रतों से यह अधिक है ।१६। इस जगत् के गुरु विश्व की आत्मा भगवान् वासुदेव कहेंगे । यह अशेष यज्ञों के फलों का प्रदान करने वाला और समस्त प्रकार के अघों का विनाश कर देने बाला है ।१७। सब दुष्टों के शमन करने वाला और समस्त सुरगण के द्वारा समर्पित है । सभी पवित्रों में यह महा पवित्रहै और सब मङ्गलों में महान् मङ्गल स्वरूप है भविष्यों का भविष्य और पुराणों में परम पुरातन है ।१८। भगवान् वासुदेव ने कहा था—हे भारत ! यदि अष्टमी, चतुर्दशी और द्वादशी इनमें तथा अन्य दिनों और नक्षत्रों में भी किसी में भी आप उपवास करने में समर्थ नहीं हैं । है ।१९। तो परम पुण्यमयी और सब पापों का विनाश करने वाली इस तिथि का इस विधान ने उपवास करो जिससे विष्णु के परम पद को चले जाओ ।२०। माघ मास की दशमी तिथि जिस समय में शुक्लपक्ष में हो उस समय में घृत से अभ्यञ्जन करके तिलों से स्नान का समाचरण करना चाहिए ।२१।

तथैव विष्णुमभ्यर्च्य नमोनारायणेति च ।
कृष्णाय पादौ सम्पूज्य शिरः सर्वात्मनेनमः ।२२
वैकुण्ठायेति वैकुण्ठमुरः श्रीवत्सधारिणे ।
शंखिने चक्रिणे तद्वद् गदिने वरदाय व ।
सर्वं नारायणस्यैव सम्पूज्याः बाहवः क्रमात् ।२३
दामोदरायेत्युदरं मेढ्रं पञ्च शराय वै ।
ऊरू सौभाग्यनाथाय जानुना भूतधारिणे ।२४

नमो नीलायवैजंघेपादौ विश्वसृजे नमः ।
नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमोलक्ष्म्यै नमः श्रियै ।२५
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै धृष्ट्यै हृष्ट्यै: नमोनमः ।
नमो विहङ्गनाथाय वायुवेगाय पक्षिणे ।
विषप्रमाथिने नित्यं गरुडञ्चाभिपूजयेत् ।२६
एवं संपूज्य गोविन्दं उमापतिविनायकौ ।
गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैर्भक्ष्यैर्नानाविधैरपि ।२७
गव्येन पयसा सिद्धङ्कृसरामथ वाग्यतः ।
सर्पिषा सह भुक्त्वा च गत्वाशतपदं बुधः ।२८

उसी भाँति 'नमो नारायण'—इस मन्त्र के द्वारा भगवान् विष्णु का अभ्यर्चन करना चाहिए। श्रीकृष्ण के लिए नमस्कार है—इससे कृष्ण के चरणों की अच्छी तरह पूजन करके 'सर्वात्मने नमः'—इससे शिर का यजन करें। 'वैकुण्ठाय नमः'—इससे वैकुण्ठ का तथा 'श्री वत्स धारिणे नमः'—इससे उरः स्थल का पूजन करे। 'शङ्खिने नमः—चक्रिणे नमः—गदिने नमः—वरदाय नमः'—इन चार मन्त्रों के द्वारा नारायण की सब बाहुओं का भली भाँति क्रम से पूजन करना चाहिए। ।२२-२३। 'दामोदराय नमः'—इससे उदार और 'पञ्चशराय नमः' इससे मेढ़ू का पूजन करे। 'सौभाग्यनाथाय नमः'—इससे दोनों ऊरुओं का और 'भूतधारिणे नमः'—इस मन्त्र का उच्चारण कर दोनों जानुओं का अभ्यर्चन विधि सहित करना चाहिए।२४। 'नीलाभ नमः'—इससे दोनों जघाओं का तथा 'विश्व सृजे नमः' अर्थात् इस सम्पूर्ण विशाल विश्व का सृजन करने वाले की सेवा में नमस्कार समर्पित है—इससे दोनों पादों की अर्चना करें। देवी को प्रणाम है—शान्ति के लिए नमस्कार है। लक्ष्मी को प्रणाम है—श्री के लिए नमस्कार है। पुष्टि—तुष्टि—धृष्टि और हृष्टि के लिये बारम्बार नमस्कार है। दूसरी जिसे देवी-शान्ति-लक्ष्मी-श्री-पुष्टि-धृष्टि और हृष्टि—इन आठों देवियो

का पूजन उक्त मन्त्रों का उच्चारण करके ही करना चाहिए। 'विहङ्ग-नाथाय नमः---वायुवेगाय नमः---वायु वेगाय पक्षिणे नमः---विष प्रमाथिने नमः'---इन मन्त्रों के द्वारा नित्य ही गरुड़ का पूजन करना चाहिये।२५-२६। इस तरह से श्री गोविन्द प्रभु का पूजन करके उमा पति और विनायक का पूजन करे। गन्ध-माल्य-धूप-भक्ष्य जो अनेक प्रकार के हों—गव्य पय से यजन करना चाहिये। फिर सिद्ध कृसरा को मौन रहकर घृत के साथ खाकर बुध पुरुष को सौ कदम भ्रमण करना चाहिए।२७-२८।

न्यग्रोधं दन्तकाष्ठमथवा खादिरं बुधः।
गृहीत्वा धावयेद्दन्तानाचान्तः प्रागुदङ्मुखः।२९
ब्रूयात् सायन्तनीं कृत्वा सन्ध्यामस्तमिते रवौ।
नमोनारायणायेति त्वामहं शरणङ्गतः।३०
एकादश्यांनिराहारः समभ्यर्च्य चकेशवम्।
रात्रिञ्चशकलांस्थित्वास्नानञ्चपयसातथा।३१
सर्पिषा चापि दहनं हुत्वा ब्राह्मणपुङ्गवैः।
सहैव पुण्डरीकाक्ष! द्वादश्यां क्षीरभोजनम्।
करिष्यामि यतात्माऽहं निर्विघ्नोनास्तु तच्च मे।३२
एवमुक्त्वा स्वपेद्भूमावितिहासकथां पुनः।
श्रुत्वा प्रभाते सञ्जाते नदींगत्वा विशाम्पते!।
स्नानं कृत्वा मुदा तद्वत् पाखण्डानभिवर्जयेत्।३३
उपास्य सन्ध्यांविधिवत् कृत्वा च पितृतर्पणम्।
प्रणम्य च हृषीकेशंसप्तलोकैकमीश्वरम्।३४
गृहस्य पुरतो भक्त्या मण्डपं कारयेद् बुधः।
दशहस्तमथाष्टौ वा करान् कुर्याद्विशाम्पते!।३५

न्यग्रोध (बड़) का दन्त काष्ठ (दातुन) अथवा खदिर का दातुन बुध को ग्रहण करके फिर उससे धावन करे अर्थात् दातुन करे। फिर

आचान्त होकर अर्थात् आचमन करके पूर्वमें उत्तर की ओर मुख वाला हो जावे। रवि के अस्ताचलगामी हो जाने पर सायन्तनी संध्योपसना करे और हे नारायण ! आपके लिये मेरा नमस्कार है—मैं तो अब आपकी शरणागति में सम्प्राप्त हो गया हूँ। एकादशी में निराहार रहकर भगवान केशव का समभ्यर्चन करके तथा सम्पूर्ण रात्रि में स्थित होकर और पय से स्नान और घृत से दहन में हवन करके हे पुण्डरीकाक्ष ! श्रेष्ठ ब्राह्मणों के ही साथ द्वादशी में क्षीर का भोजन करूँगा। मैं यतात्मा होकर ही इसको करूँगा और वह मेरे लिये निर्विघ्नता के साथ हो आवे—यह इस प्रकार से कहकर रात्रि में भूमिपर सो जावे। हे विशाम्पते ! इतिहास की कथा का श्रवण कर फिर प्रभात के हो जाने पर नदी पर जाकर स्नान करके मृत्तिका से तद्वत् पाखण्डों का अभिवर्जन कर देवे।२९-३३। विधि पूर्वक सन्ध्या की उपासना करके पितृगण का तर्पण करे और फिर सातों लोकों एक स्वामी भगवान् हृषीकेश को प्रणाम करे। गृह के आगे हो बुध पुरुष को भक्ति की भावना से मण्डप की रचना करानी चाहिए। हे विशाम्पते ! दश हाथ अथवा आठ हाथ का करना चाहिए।३४-३५।

चतुर्हस्तां शुभां कुर्याद्वेदीमरिनिषूदन ! ।
चतुर्हस्तप्रमाणंच विन्यसेत्तत्र तोरणम् ।३६

प्रणम्य कलश तत्र माषष मात्रेण संयुतम् ।
छिद्रेण जलसम्पूर्णमथ कृष्णाजिनस्थितः ।
तस्य धारां च शिरसा धारयेत् सकलान्निशम् ।३७

तथैव विष्णोः शिरसि क्षीरधारां प्रपातयेत् ।
अरत्निमात्रं कुण्डञ्चकुर्यात्तत्र त्रिमेखलम् ।३८

योनिवक्त्रंच तत् कृत्वा ब्राह्मणैः पयसर्पिषी ।
तिलांश्चविष्णुदैवत्यैर्मन्त्रैरेकाग्निवत्तदा ।३९

हुत्वा च वैष्णवंसम्यक्चरुं गोक्षीरसंयुतम् ।
निष्पावार्द्धं प्रमाणांवैधारामाज्यस्यपातयेत् ।४०
जलकुम्भान् महावीर्य्य ! स्थापयित्वा त्रयोदश ।
भक्ष्यं र्नानाविधैर्युक्तान् सितवस्त्रैरलङ्कृतान् ।४१
युक्तानौदुम्बरैः पात्रैः पंचरत्नसमन्वितान् ।
चतुर्भिर्बह्वृचैर्होमस्तत्र कार्य्यं उदङ्मुखैः ।४२
रुद्रजापश्चतुर्भिश्च यजुर्वेदपरायणैः ।
वैष्णवानि तु सामानि चतुरः सामवेदिनः ।४३
अरिष्टवर्गंसहितान्यभितः परिपाठयेत् ।४४

हे अरिनिषूदन ! चार हाथ प्रमाण वाली परम शुभ वाली परम शुभ वेदी बनावे और चार हाथ प्रमाण वाला तोरण का विन्यासकरना चाहिये । वहाँ पर कलश को प्रमाण करके जो माष मात्र में संयुत है और जल से सम्पूर्ण है । कृष्णा जिन पर स्थित होकर छिद्र के द्वारा पूरी रात्रि में उसकी धारा को शिर में धारण करे ।३६-३७। उसी तरह से भगवान् विष्णु के शिर पर क्षीर की धारा का प्रपातन करे । वहाँ पर एक अरत्नि मात्रप्रमाण वाला तथा तीन मेखलाओंसे समन्वित एक कुण्ड की रचना करनी चाहिए । योनिवक्त्र वाला उसे करके फिर ब्राह्मणोंके द्वारा पय-घृत और तिलोंका उस समय में एकाग्नि की तरह विष्णु दैवत्य मन्त्रों से हवन करे और सम्यक् वैष्णव चरु बनावे जो गौ के क्षीरसे संयुत होवे । निष्पावार्द्ध प्रमाण वाली घृत की धारा का प्रपातन करावे ।३८-४०। हे महावीर्य ! वहाँ पर तेरह जल के कुम्भों का स्थापित कराकर नाना भाँति के भक्ष्यों से उन्हें संयुत करे और सफेद वस्त्रों से अलंकृत करे । उदुम्बर से निर्मित पात्रों से युक्त तथा पाँचों रत्नों से समन्वित करे, वहाँ पर चार बह्वृचों के द्वारा जिनका मुख उत्तर की ओर हो होम करना चाहिए । चारों के द्वारा रुद्र का जाप करावे जो कि यजुर्वेद के परायण हों । वैष्णव सामों का चार

सामवेदी करे । अरिष्ट वर्ग सहित सम और परिपाठ कराना चाहिए ।४१-४४।

४१—कल्याण सप्तमी व्रत कथन

भगवन् ! भव ! संसारसागरोत्तारकारक ! ।
किंचिद्व्रतंसमाचक्ष्वस्वर्गारोग्यसुखप्रदम् ।१
सौरं धर्मं प्रवक्ष्यामि नाम्ना कल्याणसप्तमीम् ।
विशोकसप्तमीं तद्वत् फलाढ्यां पापनाशिनीम् ।२
शर्करासप्तमीं पुण्यां तथा कमलसप्तमीम् ।
मन्दारसप्तमीं तद्वच्छुभदां शुभसप्तमीम् ।३
सर्वानन्तफलाः प्रोक्ताः सर्वा देवर्षिपूजिताः ।
विधानमासां वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।४
यदा तु शुक्लसप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत् ।
सातु कल्याणिनी नामविजयाचनिगद्यते ।५
प्रातर्गव्येन पयसा स्नानमस्यां समाचरेत् ।
ततः शुक्लाम्बरः पद्ममक्षताभिः प्रकल्पयेत् ।६
प्राङ्मुखोऽष्टदलं मध्ये तद्वद् वृत्तांच कर्णिकाम् ।
पुष्पाक्षताभिर्देवेशं विन्यसेत् सर्वतः क्रमात् ।७

ब्रह्माजी ने कहा—हे भगवान ! हे भव ! आप तो इस संसार रूपी महार्णव से उत्तारण कराने वाले हैं । ऐसा कोई व्रत हमको बतलाइये जो स्वर्ग और आरोग्य तथा सब प्रकार का सुख प्रदान करने वाला हो।१ ईश्वर ने कहा—अब मैं सौर (सूर्य से सम्बन्धित) धर्म को बतलाता हूँ जो नाम से कल्याण सप्तमी व्रत कहा जाया करता है उसी प्रकार से विशोक सप्तमी भी होती है जो फलोंसे आढय है और समस्त पापोंका नाशकर देने वाली होती है ।२। उसी भाँति परम पुण्यमयी शर्करा

सप्तमी होती है और कमल सप्तमी भी हुआ करती है तथा इसी भाँति मन्दार सप्तमी और शुभों का प्रदान करने वाली शुभ सप्तमी भी होती है ।३। ये सभी सप्तमियाँ अनन्त फलों वाली होती हैं—ऐसा ही कहा गया है । सभी देवर्षियों के द्वारा पूजित है । अब हम इन समस्त सप्तमियों का विधान बतलाते हैं जो ठीक-ठीक यथावत् और आनुपूर्वी के सहित होगा ।४। जिस समयमें मासके शुक्ल पक्ष की सप्तमीमें आदित्य का दिन होवे वही सप्तमी कल्याण करने वाली विजया नाम भी जिस का कहा जाता है इस सप्तमी के दिन में प्रातःकाल ही में गव्य पथ से स्नान करना चाहिए । इसके अनन्तर शुक्ल वस्त्रधारी होकर अक्षतोंसे पद्म की कल्पना करनी चाहिए ।५-६। प्राङ्मुख होकर अष्ट दल वाले कमल के मध्य में उसी भाँति वृत्ताकार कर्णिका की रचना करे और सब ओर क्रम से पुष्प अक्षतों से देवेश का विन्यास करना चाहिए ।७।

पूर्वेण तपनायेति मार्त्तण्डायेति चानले ।
याम्ये दिवाकरायेति विधान इति नैर्ऋते ।८
पश्चिमे वरुणायेति भास्करायेति चानले ।
सौम्यै वैकर्तनायेति रवये चाष्टमे दले ।९
आदावन्तच मध्येच नमोऽस्तु परमात्मने ।
मन्त्रैरेभि: समभ्यर्च्य नमस्कारान्तदीपितैः ।१०
शुल्कवस्त्रैः फलैर्भक्ष्यैर्धूपमाल्यानुलेपनैः ।
स्थण्डिले पूजयेद्भक्त्या गुडेन लवणेन च ।११
ततो व्याहृतिमन्त्रेणविसर्जेद्द्विजपुङ्गवान् ।
शक्तित: पूजयेद्भक्त्या गुडक्षीपघृतादिभिः ।
तिलपात्रं हिरण्यं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।१२
एवं नियमकृत्सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः ।
कृतस्नानजपो विप्रैः सहैव घृतपायसम् ।१३

भुक्त्वा च वेदविदुषि विडालव्रतवर्जिते ।
घृतपात्रं सकनकं सोदकुम्भं निवेदयेत् ।१४
प्रीयतामत्र भगवान् परमात्मा दिवाकरः ।
अनेन विधिना सर्वं मासिमासि व्रतंचरेत् ।१५

पूर्व दिशा में 'तपनाय नमः'—इस मन्त्र से अग्निकोण में 'मार्त्तण्डाय नमः'—इससे याम्य दिशा में 'दिवाकराय नमः'—इससे नैर्ऋत्य में 'विधात्रे नमः'—इससे पश्चिम में 'वरुणाय नमः'—इस मन्त्र से—अनिल दिशा में 'भास्कराय नमः'—इससे सौम्य दिशा में 'वैकर्त्त नमः' इससे 'रवये नमः'—इससे अष्टम दल में पूजन करे ।८-९। आदि से और अन्त में 'परमात्मने नमोऽस्तु' इस मन्त्र से अभ्यर्चन करे । इन उपर्युक्त मन्त्रों से समभ्यर्चन करके जो अन्त ने नमस्कार से दीपित होते हैं फिर शुक्ल वस्त्रोंके द्वारा फल-भक्ष्य-धूप-माल्य और अनुलेपनों से गुड़ और लवणसे भक्तिभावके साथ स्थण्डिल में पूजन करना चाहिए ।१०-११। इसके अनन्तर व्याहृति मन्त्रसे द्विजश्रेष्ठोंका बिसर्जन करे । शक्ति से भरसक पूर्णतया भक्ति पूर्वक गुड़-क्षीर और घृत आदि पदार्थों के द्वारा अर्चनकरे । तिलोंसे परिपूर्ण पात्र और सुवर्ण ब्राह्मण की सेवा में निवेदित करना चाहिए ।१२। इस प्रकार से नियमों को करने वाला पुरुष शयन करके प्रातः काल की वेलामें उठकर खड़ा हो जावे । स्नान और जाप करके विप्रों के साथ ही घृत और वायस का भोजन करे । वेदों का विद्वान् हो और बिडाल व्रत से रहित हो ऐसे किसी योग्य ब्राह्मण को सुवर्ण के सहित घृत का पात्र अर्थात् घृत से भरा हुआपात्र और जल से युक्त कुम्भ निवेदित करे । उस समय में यह कहे कि यहाँ पर भगवान परमात्मा प्रसन्न होवें । इसी विधान से सब मास-मास में इस व्रत का समाचरण करना चाहिये ।१३-१५।

विशोकसप्तमीं तद्वद्वक्ष्यामि मुनिपुङ्गव ! ।
यामुप्योष्य नरः शोकं न कदाचिदिहाश्नुते ।१६

माघे कृष्णतिलैः स्नात्वा षष्ठ्यां वै शुक्लपक्षतः ।
कृताहारः कृसरया दन्तधावनपूर्वकम् ।
उपवासव्रतं कृत्वा ब्रह्मचारी भवेन्निशि ।१७
ततः प्रभात उत्थाय कृतस्नानजपः शुचिः ।
कृत्वा तु काञ्चनं पद्ममर्कायेति च पूजयेत् ।१८
करवीरेण रक्तेन रक्तवस्त्रयुगेन च ।
यथा विशोकं भुवनं त्वयैवादित्य ! सर्वदा ।
तथा विशोकता मेऽस्तु त्वद्भक्तिः प्रतिजन्म च ।१९
एवं संपूज्यषष्ठ्यान्तुभक्त्यासंपूजयेद्द्विजान् ।
सुप्त्वासंप्राश्यगोमूत्रमुत्थायकृतनैत्यकः ।२०
संपूज्य विप्रानन्नेन गुडपात्रसमन्वितम् ।
तद्वस्त्रयुग्मं पद्मञ्च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।२१
अतैललवणं भुक्त्वा सप्तम्यां मौनसंयुतः ।
ततः पुराणश्रवणं कर्तव्यं भूतिमिच्छता ।२२
अनेन विधिना सर्वमुभयोरपि पक्षयोः ।
कृत्वा यावत् पुनर्माघशुक्लपक्षस्य सप्तमी ।२३

ईश्वर ने कहा—हे मुनि पुङ्गव ! अब हम विशोक सप्तमी का वर्णन उसी भाँति करते हैं । जिसका उपवास करके यहाँ संसार में कदाचित् भी मनुष्य शोक को प्राप्त नहीं किया करता है ।१६। माघ मास में काले तिलों से शुक्ल पक्ष की षष्टी तिथि में स्नान करे । दन्तधावन पहिले करके कृसर से आहार का सम्पादन करे । इस उपवास के व्रत को करके रात्रि में ब्रह्मचर्य व्रतका पूर्णतया पालन करना चाहिए ।१७ इसके अनन्तर प्रभात बेला में उठकर स्नान तथा जाप करके परमशुचि हो जावे और सुवर्ण का पद्म निर्माण कराकर भगवान् अर्क के लिए यह पूजन करना चाहिये ।१८। रक्त करवीर के पुष्प से तथा दो रक्त वर्ण के वस्त्रों से अर्चना करे । हे आदित्य ! यह सम्पूर्ण भुवन सर्वदा

आपके ही द्वारा शोक से रहित रहता है—यह प्रार्थना करे। फिर यह भी निवेदन करे कि उसी प्रकार से मेरी भी विशोकता होवे अर्थात् मैं भी शोक से बिल्कुल रहित हो जाऊँ और प्रत्येक जन्ममें आपके चरणों में मेरी सुदृढ़ भक्ति भी होवे।१६। इस प्रकार से षष्ठी तिथि में पूजन करके फिर भक्तिपूर्वक द्विजगणों का अभ्यर्चन करे। गोमूत्र का प्राशन करके शयन करे और उठकर नैत्यिक कृत्य का सम्पादन करे।२०। विप्रों का अन्न से भली भाँति पूजन करके फिर गुड़ पात्र से संयुक्त हो वस्त्र और यह पद्म की सेवा में निवेदित कर देना चाहिए।२१। सप्तमी में तेल और लवण से रहित भोजन करके मौन व्रत से संयुत रहे फिर भूति की इच्छा रखने वाले को पुराणों का श्रवण करना चाहिए।२२। ईसी विधि से दोनों पक्षों में सब करे जब तक माघशुक्ल पक्ष की सप्तमी पुनः आवे करता रहे।२३।

=×=

४२—विशोक द्वादशी व्रत कथन

किमभीष्टवियोगशोकसङ्घादलमुद्धर्तुमुपोषणं व्रतं वा।
विभवोद्भवकारि भूतलेऽस्मिन् भवभीतेरपि सूदनञ्च पुंसः ।१
परिपृष्टमिदं जगत् प्रियन्ते विबुधानामपि दुर्लभं महत्त्वात्।
तव भक्तिमतस्तथापि वक्ष्ये व्रतमिन्द्रासुरमानवेषु गुह्यम् ।२
पुण्यमाश्वयुजे मासि विशोकद्वादशीव्रतम्।
दशम्यां लघुभुग्विद्वाना भेन्नियमेमतु ।३
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा दन्तधावानपूर्वकम्।
एकादश्यानिराहारः समभ्यर्यंतुपूर्वकम्।
श्रियं वाऽभ्यर्च्य विधिवद्भोक्ष्यामि त्वपरेऽहनि ।४

एवं नियमकृत्सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः ।
स्नानं सर्वौषधैः कुर्यात्पञ्चगव्यजलेन तु ।
शुक्लमाल्याम्बरधरः पूजयेच्छ्रीशमुत्पलैः ।५
विशोकाय नमः पादौ जंघे च वरदाय व ।
श्रीशाय जानुनी तद्वदूरू च जलशायिने ।६
कन्दर्पाय नमो गुह्यं माधवाय मनः कटिम् ।
दामोदरायेत्युदरम्पार्श्व च विपुलाय वै ।७

मनु महाराज ने कहा—हे भगवन् ! क्या कोई भूमण्डल में ऐसा व्रत और उपवास है जो अभीष्टकी सिद्धि करने वाला हो और वियोग तथा शोक के संघात से उद्धार करने के लिये समर्थ हो तथा वैभव के उद्भव को करने वाला हो तथा पुरुष के हृदय में जो एक इस संसार का भय घुसा हुआ है उसको नष्ट कर देने वाला भी हो ? ।१। मत्स्य भगवान् ने कहा आपका यह पूछना पूर्व जगत् के लिये प्रिय है और महत्व की दृष्टि से यह देवों के लिये भी परम दुर्लभ है । यह व्रत तो ऐसा ही सब कुछ कर देने वाला है और इन्द्र असुर और मानवों में अति गोपनीय है तो भी क्योंकि आप भक्तिमान् हैं इसीलिए बता रहा हूँ।२। अश्वयुज मासमें परम पुण्यमय यह विशोक द्वादशी का व्रत होता है । दशमी तिथि में विद्वान् पुरुष अत्यन्त लघु भोजन करे और फिर नियम पूर्वक इसका समारम्भ कर देना चाहिए ।३। उत्तर की ओर मुख वाला या पूर्व दिशा की तरफ मुख वाला होकर दन्तधावन आदि दैनिक कृत्य को पहिले करते हुए एकादशी में निराहार रहकर पूर्व में समभ्यर्चन करना चाहिए ।४। पहिले विधि पूर्वक श्री का पूजन करके दूसरे दिन में भोजन करूँगा-ऐसे नियम का संकल्प करके शयन करे और प्रभात में उठकर साधक मानव को सर्वोषधियों से मिश्रित जलसे और पंच गव्य के जल से स्नान करना चाहिए । फिर अतिशुक्ल वस्त्र धारी होकर उत्पलों से श्रीश प्रभुका यजन करना चाहिए ।५। 'विशोकाय नमः'—इससे चरणों का 'वरदाय नमः' इससे दोनों जाँघों का

पूजन करें। 'श्रीशाय नमः' इससे जानुओं का, 'जलशायिने नमः' इससे उरुओं का पूजन करे।६। 'कन्दर्पाय नमः' इस मन्त्र से गुह्य का तथा 'माधवाय नमः—इसका उच्चारण कर कटिका पूजन करना चाहिए। 'दामोदराय' इससे उदरका और 'विपुलाय नमः' इससे दोनों पार्श्वोंका अर्चन करे।७।

नाभिञ्च पद्मनाभाय हृदयं मन्मथाय वै।
श्रीधराय विभोवक्षः करौ मधुजिते नमः।८
चक्रिणे वामबाहुञ्च दक्षिणङ्गदिने नमः।
वैकुण्ठाय नमः कण्ठमास्यं यज्ञमुखाय वै।९
नासामशोकनिधये वासुदेवाय चाक्षिणी।
ललाटं वामनायेति हरयेति पुनर्भ्रुवौ।१०
अलकान् माधवायेति किरीटं विश्वरूपिणे।
ततस्तु मण्डलं कृत्वा स्थाण्डिलंकारयेन्मृदा।११
चतुरस्रं समन्ताच्च रत्निमात्रमुदक्प्लवम्।
श्लक्ष्णं हृद्यं च परितो विप्रत्रयसमावृतम्।१२

'पद्मनाभाय नमः'—इससे नाभि का, 'मन्मथाय नमः' इससे हृदय का, 'श्रीधराय नमः' इससे विभु के वक्ष का और 'मधुजितेनमः' इससे प्रभु के दोनों करों का पूजन करना चाहिए।८। 'चक्रिणे नमः'—इस मन्त्रसे वाम बाहुका 'गदिने नमः' इससे दक्षिण बाहु का, वैकुण्ठाय नमः' इससे कण्ठ का और 'यज्ञमुखाय नमः'—इससे आस्य का पूजन करे।९। 'अशोक निधये नमः' इससे नासिका, वासुदेवाय नमः'—इससे नेत्रों का, 'वामनाय नमः' इस मन्त्र से ललाटका और 'हरयेनमः' इसके द्वारा भ्रूओं का यजन करना चाहिए।१०। 'माधवाय नमः'—इससे अलकों का 'विश्वरूपिणे नमः' इसका उच्चारण कर किरीटका 'सर्वात्मने नमः' इससे उसी भाँति शिरका अभिपूजन करना चाहिए।।११। फल-माल्य और अनुलेपन आदि समुचित उपचारों के द्वारा इस

भाँति गोविन्द का भली भाँति पूजन करके फिर इसके उपरान्त मण्डल का निर्माण कराकर मृत्तिका से स्थण्डिल की रचना करनी चाहिए। ।१२। सभी ओर से चौकोर और रत्निमात्र उदकप्लव वाला—श्लक्ष्ण-हृद्य (मनोहर) दोनो और विप्रत्रय से सताव्रत बनाना चाहिए।१३।

अंग लेनोच्छता विप्रास्तद्विस्तारस्तु द्व्यंगुलः ।
स्थण्डिलस्योपरिष्टाच्च भित्तिरष्टांगुला भवेत् ।१३
नदीवालुकयाशूर्पेलक्ष्म्या प्रतिकृतिन्यसेत् ।
स्थाण्डितेशूर्पमारोप्यलक्ष्मीमित्यर्चयेद्बुधः ।१४
नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमोलक्ष्म्यै नमः श्रियै ।
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यैवृष्ट्यैहृष्ट्यै नमोनमः ।१५
विशोकादुःखनाशायविशोकावरदास्तु मे ।
विशोकाचास्तुसम्पत्त्यै विशोकासर्वसिद्धये ।१६

एक अंगुल विप्र उच्छ्रित हो और उसका विस्तार दो अंगुल का होना चाहिए। स्थण्डिलके ऊपर जो भित्ति हो वह आठ अंगुलप्रमाण वाली रहनी चाहिए।१३। नदी की वालुका से निर्मित हुई लक्ष्मी की प्रतिकृति का न्यास शूर्प में करे। फिर उस स्थण्डिलमें सूर्य का आरोप करके बुध पुरुष को इस तरह लक्ष्मी का अभ्यर्चन करना चाहिए।१४ अर्चाना के समय में उच्चारण किये जाने वाले मन्त्र ये हैं—'देव्यै नमः' शान्त्यै नमः लक्ष्म्यै नमः, श्रियै नमः, तुष्टयें नमः, हृष्टयै नमः'। हे देवि ! आप दुःखों का नाश करने के लिए विगत शोक वाली है। प्रार्थना है कि मुझ पर भी आप अब विशोका हो जावें। सम्पत्ति के लिए विशोका होवें और सब प्रकार की सिद्धि के लिए भी विशोका हो जावें।१५-१६।

४३—ग्रह शान्ति वर्णनम्

वैशम्पायनमासीनमपृच्छच्छौनकः पुरा ।
सर्वकामाप्तयेनित्यं कथंशान्तिकपौष्टिकम् ।१
श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समारभेत् ।
वृष्ठ्यायुः पुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन् पुनः ।
येन ब्रह्मन् ! विधानेन तन्मे निगदतः शृणु ।२
सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्यसंक्षिप्यग्रन्थविस्तरम् ।
ग्रहाश न्तप्रबक्ष्यामिपुराणश्रुतिनोदिताम् ।३
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।
ग्रहान्ग्रहादिदेवांश्चस्थाप्यहोमं समारभेत् ।४
ग्रहयज्ञस्त्रिधा प्रोक्तः पुराणश्रुतिकोविदैः ।
प्रथमोऽयुतहोम स्याल्लक्षहोमस्ततः परम् ।५
तृतीयः कोटिहोमस्तु सर्वकामफलप्रदः ।
अयुतेनाहुतीनांच नवग्रहमखः स्मृतः ।६
तस्य तावद्विधिं बक्ष्ये पुराणश्रुतिभाषितम् ।
गर्तस्योत्तरपूर्वेण बितस्तिद्वयविस्तृताम् ।७

महामहिम श्री सूतजी ने कहा—पुरातन समय में एक स्थल पर समासीन वैशम्पायन मुनिसे शौनकजी ने पूछा था कि समस्त कामनाओं की प्राप्ति के लिए नित्य ही शान्तिक और पौष्टिक कैसे होगा अर्थात् इसका साधन किस प्रकार से किया जा सकता है—यह बतलाइए ।१। भगवान् वैशम्पायनजी ने कहा—श्री की कामन करने वाला कोई पुरुषहो या शान्तिकी इच्छा रखने वाला कोई होवे उन दोनोंही प्रकार के पुरुषों को ग्रह यज्ञ करने का समारम्भ कर देना चाहिए । वृद्धि-आयु तथा द्रष्टिकी कामना वाला हो तथा कोई अभिचारके करने की इच्छा वाला हो उसको भी वैसा ही करना चाहिए । हे ब्रह्मन् ! जिस विधान

से करना है उसको कथन करने मुझसे करलो ।२। समस्त शास्त्रों का अनुक्रमण करके और ग्रन्थ के विस्तार का संक्षेप करके पुराण और श्रुति के द्वारा कथित ग्रहोंकी शान्ति को बतलाते हैं।३। विप्रों के द्वारा बताये हुये किसी भी पुण्य दिन में ब्राह्मणों का वाचन करके फिर ग्रहों को—ग्रहों के आदि देवों को स्थापित करके होम का समारम्भ करदेना चाहिए ।४। पुराणों ने तथा श्रुति महा मनीषियों ने ग्रहयज्ञ तीनप्रकार का कहा है । प्रथम तो वह है जिस ग्रह यज्ञ में दश सहस्र आहुतियोंका होम किया जाता है, द्वितीय वह होता है जिस ग्रह यज्ञ मे एक लाख आहुतियों का होम किया जाता है।५। तीसरा जो इस ग्रह यज्ञ का भेद है उसमें एक करोड़ आहुतियों का होम होता है । यह तो समस्त कामनाओं के फलों का प्रदान करने वाला हुआ करता है । जिसमें शत सहस्र आहुतियाँ दी जाया करती हैं वह नवग्रह मख के नाम से कहा गया है ।६। उसको जो विधि पुराणों के तथा श्रुति के द्वारा भाषित की गयी है उसे ही बतलाऊँगा । जो गर्त हो उससे उत्तर और पूर्व दिशा में दो वितस्ति बालिश्त के बिस्तार वाली वेदी बनावे ।७।

वप्रद्वीयावृतावेदिं वितस्त्युच्छ्रयसन्मिताम् ।
संस्थापनायदेवानाञ्चतुरस्त्रामुदङ्मुखाम् ।८
अग्निप्रणयनं कृत्वा तस्यामावाहयेत्सुरान् ।
देवतानांततःस्थाप्याविंशतिर्द्वादशाधिका ।९
सूर्य्यः सोमस्तथा भौमीबुधजीवसितार्कजाः ।
राहुः केतुरिति प्रोक्ता ग्रहा लोकहितावहाः ।१०
मध्ये तु भास्करं विन्द्याल्लोहितं दक्षिणेन तु ।
उत्तरेण गुरुं विन्द्यालद्बुधं पूर्वोत्तरेण तु ।११
पूर्वेण भार्गवं विन्द्यात् सोमं दक्षिणपूर्वके ।
पश्चिमेन शनिं विन्द्याद्राहुं पश्चिमदक्षिणे ।
पश्चिमोत्तरतः केतुं स्थापयं च्छवलतण्डुलः ।१२

भास्करस्येश्वरंविन्द्यादुमांचशशिनस्तथा ।
स्कन्दमगारकस्यापिबुधस्यचतथाहरिम् ।१३
ब्रह्माणञ्च गुरोर्विन्द्याच्छुक्रस्या प शचीपतिम् ।
शनैश्चरस्यतुयमं राहो:कालं तथैवच: ।१४
केतोर्वै चित्रगुप्तञ्च सर्वेषामधिदेवता: ।
अग्निराप: क्षितिर्विष्णुरिन्द्र ऐन्द्री च देवता: ।१५

उस वेदी को दो वप्रों से आवृत करावे और एक वितस्ति (बलांद) उच्छ्रय (ऊँचाई) से सन्मित करे । यह देवगणों की संस्थापना करने के लिये ही चौकोर और उत्तर की ओर और मुख वाली निर्मित करानी चाहिए ।८। अग्निदेव का प्रणयन करके उसी वेदी में सुरगणों का आवाहन करना चाहिए । वहाँ पर द्वादश अधिक विंशति अर्थात् बत्तीस देवताओं की स्थापना करनी चाहिये ।९। सूर्य, सोम, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु ये लोकों के हित के करने वाले ग्रह कहे गये हैं ।१०। उसमें मध्य भाग में भगवान् भास्कर की स्थापना करे जो लोहित वर्ण का होवे और दक्षिण दिशा की ओर ही रहना चाहिए । इसके उत्तर की ओर गुरु को स्थापित करे और पूर्वोत्तर में बुध ग्रह को स्थापित करना चाहिये ।११। पूर्व दिशा में शुक्र को तथा दक्षिण पूर्वमें सोमकी स्थापना करे । पश्चिम में शनि को तथा पश्चिम दक्षिण में राहु को स्थापित करे । एवं पश्चिम उत्तर भागमें केतु ग्रहकी स्थापना शुक्ल तण्डुलों से करनी चाहिये ।१२। भास्कर ग्रह का अधि-देवता ईश्वरहै और चन्द्रमा का उमा है । भौमका स्कन्द आधिदेवहोता है एवं बुधका हरि है ।१३। गुरु का अधि देवता ब्रह्मा है तथा शुक्र ग्रह का स्वामी शचिपति इन्द्र है । शनैश्चर का अधिदेव यम और राहु का काल बताया गया हैं तथा केतुका अधिदेवता चित्रगुप्त है—इस प्रकार से सब ग्रहों के अधि देवता होते हैं । अग्नि-आप (जल)-क्षिति विष्णु-इन्द्र और ऐन्द्री देवता हैं ।१४-१५।

प्रजापतिश्चसर्पाश्च ब्रह्मा प्रत्यधिदेवता: ।
विनायकं तथा दुर्गां वायुराकाशमेव च ।
आवाहयेद्व्याहृतिभिस्तथैवाश्विकुमारकौ ।१६
संस्मरेद्रक्तकादित्यमङ्गारकसमन्वितम् ।
सोमशुक्रौतथाश्वेतौ बुधजीवौचपिंगलौ ।
मन्दराहू तथा कृष्णौ धूम्रं केतुगणं विदु: ।१७
ग्रहवर्णानि देयानि वासांसि कुसुमानि च ।
धूपामोदोऽत्र सुरभिरुपरिष्टाद्वितानिकम् ।
शोभनं स्थापयेत्प्राज्ञ: फलपुष्पसमन्वितम् ।१८
गुडौदनं रवेर्दद्यात् सोमाय घृतपायसम् ।
अंगारकाय संयावं बुधाय क्षीरषष्टिके ।१९
दध्योदनञ्च जीवाय शुक्रायच गुडौदनम् ।
शनैश्चराय कृसरामऔदंच राहवे ।
चित्रौदनञ्च केतुभ्य: सर्वैर्भक्ष्यैरथार्चयेत् ।२०

प्रजापति और सर्प तथा ब्रह्मा ये प्रत्यधि देवताहैं । विनायक तथा दुर्गा-वायु और आकाश का आवाहन करे तथा व्याहृतियो के द्वारा अश्विनी कुमारों का आवाहन करना चाहिये ।१६। आदित्य ग्रह का स्मरण रक्तवर्ण का करे जो अङ्गारक से समन्वित है अर्थात् रक्तही वर्ण भौम का भी होता है । सोम और शुक्र ये दो ग्रह शुक्ल वर्णों वाले होते हैं । बुध और गुरु ये दो ग्रह पिङ्गल (पीत) वर्णके होते हैं । शनि और राहु ये दो ग्रह कृष्ण वर्ण वाले हैं और केतु का वर्ण धूम्र कहा गयाहै। ।१७। जिस प्रकार के ये ग्रहों के वर्ण बताये गये हैं उसी वर्ण के वस्त्र और कुसुम देने चाहिये । यहाँ पर परम सुरभि धूपामोद करे और ऊपर की ओर वितानकी रचना करनी चाहिये । प्राज्ञ पुरुषको चाहिए कि फल पुष्पों से समन्वित अतीव शोभन स्थापना करे ।१८। रवि का रक्त वर्ण है अतएव उसको गुडौदन समर्पित करना चाहिये जिसका वर्ष

भी तदनुकूल ही होता है। सोम के लिये घृत और पायस समर्पित करे मौन को संयाव अर्पित करे और बुध के लिये क्षीर षष्टिक देवे।१६। गुरु को दधि और ओदन देवे तथा शुक्र को गुडोदन अर्पित करे। शनि को कृसर राहु और केतु को चित्रोदन देवे। इस प्रकार से सबसे जो भक्ष्य पदार्थ हैं उन्हीं से सबका अर्चन करना चाहिए।२०।

प्रागुत्तरेण तस्माच्च दध्यक्षतविभूषितम्।
चूतपल्लवसंछन्नं फलस्त्रयुगान्वितम्।२१
पञ्चरत्नसमायुक्तं पंचभंगसमन्वितम्।
स्थापयेदव्रणं कुम्भंवरुणं तत्र विन्यसेत्।२२
गंगाद्या:सरित सर्वा: समुद्राश्चसरांसिच।
गजाश्वरथ्यावल्मीकसंगमाद्ध्रदगोकुलात्।२३
मृदमानायविप्रेन्द्र ! सर्वौषधिजलान्वितम्।
स्नानर्थं विन्यसेत्तत्र यजमानस्यधर्मवित्।२४
सर्वे समुद्रा: सरित: सरांसिच नदास्तथा।
आयान्तु यजमानस्यदुरितक्षयकारका:।२५
एवमावाह्यदेतानमरान् मनिसत्तम !।
होमसमारभेत् सर्पिर्यवव्रीहितिलादिना।२६
अर्क:पालाशखदिरावपामार्गोऽथपिप्पल:।
औदुम्बर:शमीदूर्वाकुशाश्चसमिध: क्रमात्।२७
एकैकस्याष्टकशतमष्टाविंशतिमेव वा।
होतव्यामधुसर्पिभ्यां दध्ना चैव समन्विता।२८

इसके पूर्व और उत्तर में दधि—अक्षतों से विभूषित—आम्र के पल्लवों से संछन्न-फल और दो वस्त्रों से समन्वित-पाँच प्रकार के रत्नों से युक्त और पंचभङ्ग से संयुत बिना व्रण वाला वरुण देवता के कुम्भ

की स्थापना कर विन्यास करना चाहिये ।२१-२२। गङ्गा आदि सभी सरितायें—समुद्र और सटों का भी विन्यास करे। गज-अश्व की शाला—रथ्या (गली)—वल्मीक (सांप की दामी)—सङ्गम—ह्रद और गौओं के रहने की भूमि इनसे मृत्तिका का आहरण करे। हे विप्रेन्द्र! वहाँ पर धर्मके ज्ञाता पुरुषको यजमान के स्नान के लिये सर्वौषधि और जल से परिपूर्ण कुम्भ का विन्यास भी करना चाहिये ।२३-२४। उस समय के निम्न प्रकार से सम्पूर्ण जलाशयों का आवाहन करे—सभी समुद्र-सरितायें-सरोवर और नद यहाँ पर आवें जो यजमान के दुरितों (पाप कर्मों) के क्षय करने वाले हैं।२५। हे मुनियों में परमश्रेष्ठ ! इसी प्रकार से इन समस्त देवोंका भी वहाँ पर आवाहन करना चाहिए और इसके अनन्तर फिर घृत-यव-व्रीहि और तिलआदि के शाकल्यसे होम का आरम्भ करे।२६। क्रम से समिधायें भी होवे जो अर्क (आक) पलाश (ढाक) खदिर-अपामार्ग-पीपल-गूलर शमी (छौंकर)-दूर्वा और कुशा ये होती हैं।२७। एक-एक के लिये अष्टोत्तर शत (एक सौ आठ) अथवा केवल अट्ठाईस ही आहुतियाँ मधु और घृत से और घृत से और दधि से समन्वित करके देनी चाहिए अर्थात् हवन करे। ।२८।

प्रादेशमात्राअशिफा अशाखाअपलाशिनी: ।
समधि:कल्पयेत्प्राज्ञ: सर्वकर्म्मसुसर्वदा ।२९
देवानामपि सर्वेषामुपांशु परमार्थवित् ।
स्वेन स्वेनैव मन्त्रेण होमव्या: समिध: पृथक् ।३०
होतव्यं च घृताभ्यक्त चरु भक्षादिकं पुन: ।
मन्त्रैर्दशाहुतीर्हुत्वा होमं व्याहृतिभिस्तत: ।३१
उदङ्मुखा: प्राङ्मुखावाकुर्युर्ब्राह्मणपुगवा: ।
मन्त्रवन्तश्च कर्त्तव्याश्चरव: प्रतिदैवतम् ।३२
हुत्वा च तांतचरून् सम्यक् ततो होमं समाचरेत् ।
आकृष्णेति च सूर्य्याय होम: कार्यो द्विजन्मना ।३३

आप्यायस्वेतिसोमायमन्त्रेणजुहुयात् पुन: ।
अग्निमूर्द्धामिवो मन्त्रइतिभौमायकीर्तयेत् ।३४
अग्ने ! विवस्वदुषस इति सोमसुताय वै ।
बृहस्पते ! परिदीया रथेनेति गुरोर्मत: ।३५

सर्वदा सभी कर्म्मों में प्राज्ञ पुरुष को प्रादेश मात्र—अशिका—विनाशाखा वाली और पत्रों से रहित ही समिधाओं की कल्पना करनी चाहिए ।२६। परमार्थ के ज्ञाता पुरुष को सभी देवों के लिये उपांश होते हुए ही अपने-२ उनके मन्त्रोंके द्वारा पृथक्-२ समिधाओंकी आहु-तियाँ देनी चाहिये ।३०। चरु और भक्ष्यादि को घृत से अन्म करके ही हवन करना चाहिये । मन्त्रोंके द्वारा द्वादश आहुतियों का हवनकरके फिर व्याहृतियों के द्वारा होम करना चाहिये ।३१। श्रेष्ठ ब्राह्मण या तो उत्तर की ओर मुखों वाले रहें या पूर्व की ओर मुख करने वाले होने चाहिए । जो मन्त्रों वाले हैं उनको प्रत्येक देव के चरु करने चाहिए । उन चरुओं का हवन करके भली भाँति होम का समाचरण करे । द्विजन्मा के द्वारा 'आकृष्ण'—इत्यादि मन्त्र ही सूर्यके लिये होम करना चाहिये ।३२-३३। 'आप्यायस्व'—इत्यादि मन्त्र से चन्द्रमाके लिए हवन करे । 'अग्निमूर्द्धादिवो' इत्यादि मन्त्र भौम के हवन के लिये उच्चारित करे ।३४। 'अग्ने ! विवस्वदुषस' इत्यादि मन्त्र का प्रयोग सोम सुत बुध के लिये करे तथा 'बृहस्पते ! परिदीया रथेन' इत्यादि का प्रयोग गुरु के लिये माना गया है ।३५।

शुक्रन्ते अन्यदितिच शुक्रस्यापि निगद्यते ।
शनैश्चरायेति पुन: शन्नो देवीति होमयेत् ।
कयानश्चित्र आभुव इयि राहोरुदाहृत: ।३६
केतुं कृण्वन्नपि ब्रूयात् केतूनामपि शान्तये ।
आवो राजेति रुद्रस्य बलिहोमं समाचरेत् ।
आपोहिष्ठेत्युमायास्तु स्योनेयाति स्वामिनस्तथा ।३७

विष्णोरिदं विष्णुरिति तमीशेति स्वयम्भुवः ।
इन्द्रमिद्देवतायेति इन्द्राय जुहुयात्ततः ।३८
तथा यमस्यचायं गौरिति होमः प्रकीत्तितः ।
कालस्यब्रह्मयज्ञानमिति मन्त्रविदो विदुः ।३९
चित्रगुप्तस्य चाज्ञातमिति मन्त्रविदो विदुः ।
अग्निं दूतं वृणीमहे इति वह्नेरुदाहृत् ।४०
उदुत्तमं वरुणमित्यपां मन्त्र प्रकीर्तितः ।
भूमेः पृथिव्यन्तरिक्षमिति वेदेषु पठ्यते ।४१
सहस्रशीर्षा पुरुष इति विष्णोरुदाहृतः ।४२
इन्द्रायेन्दो मरुत्वत इति शक्रस्य शस्यते ।४३

'शुक्रन्ते अन्यद्'—इत्यादि मन्त्र के लिये हवन करने में बोला जाया करता है । 'शन्नोदेवी' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण शनिदेव के होम के लिए करना चाहिए और 'कयानश्चित्रआभुव'—इत्यादि मंत्र से राहु के लिए होम बताया गया है ।३६। 'केतु कृण्वन्नपि' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण केतुओं की शान्ति के लिये करना चाहिये । 'आबो-राज' इत्यादि मन्त्रके द्वारा रुद्रका वलि होम समाचरिता 'आयोदिष्टा' इत्यादि मन्त्र से उमादेवी का तथा 'स्योन' इत्यादि से स्वामि कात्ति-केयका बलि होम करे।३७। 'इदंविष्णु' इत्यादि मन्त्र से भगवान् विष्णु का तथा 'तमीशेति' इत्यादि के द्वारा स्वम्भू का और 'इन्द्रायिदेवताय' इत्यादि से इन्द्रदेव के लिये हवन करना चाहिये ।३८। यम के लिए 'अयं गौरिति' इत्यादि मन्त्र के द्वारा होम करे-ऐसा कीर्तित किया है । 'कालस्य ब्रह्मय जानम्' इत्यादि को काल के लिए मन्त्रों के वेत्ता लोग जानते हैं ।३९। चित्रगुप्त के लिये 'अज्ञानम्' इत्यादि को मन्त्रों के ज्ञाता जानते हैं । अग्निदूतं वृणीमहे—इत्यादि की मन्त्र वह्निदेव के लिए बताया गया है ।४०। 'उदुत्तम वरुणम्' इत्यादि अपों का मन्त्र कहा है और 'पृथव्यन्त रिक्षम्' इत्यादि मन्त्र को भूमि के लिए वेदों में पढ़ा जाया करता है।४१। 'सहस्रशीर्षा पुरुष'—इत्यादि मन्त्र भगवान्

विष्णु के लिए कहा गया है और 'इन्द्रामिन्दो मरुत्वत' इत्यादि मन्त्र शक्र के लिए प्रशस्त माना जाता है ।४२-४३।

उत्तापर्णे सुभगे इति देव्या समाचरेत् ।
प्रजापतेः पुनर्होमः प्रजापतिरिति स्मृतः ।४४
नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति सर्पाणां मन्त्र उच्यते ।
एष ब्रह्माय ऋत्विज्यइतिब्रह्मण्युदाहृतः ।४५
विनायकस्य चानूनमिति मन्त्रो बुधैः स्मृतः ।
जातवेदसे सुनवामितिदुर्गामन्त्रउच्यते ।४६
आदिप्रत्नस्य रेतस आकाशस्य उदाहृतः ।
प्राणाशिशुर्महीनाञ्च वायोर्मन्त्रः प्रकीर्त्तितः ।४७
एषो उषा अपूर्व्वादित्यश्विनोर्मन्त्र उच्यते ।
पूर्णाहुतिस्तु मूर्द्धानि दिवइत्यभिपातयेत् ।४८

'उत्तायर्णे सुभने'—इत्यादि मन्त्र का प्रयोग देवी के लिए करना चाहिए । प्रजापति का पुनः होम 'प्रजा पति' इत्यादि के द्वारा बताया गया है ।४४। 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यः' इत्यादि मन्त्र सर्पों का उदाहृत किया गया है । 'एष ब्रह्माय त्विज्य' इत्यादि मन्त्र को ब्रह्मा के विषय में प्रयुक्त करना चाहिए । विनायक का 'चानूनम्'—इत्यादि मन्त्र है । जिसको बुध लोगों ने कहा है । जात वेदा के लिये 'सुन वाम्' इत्यादि दुर्गामन्त्र कहा जाता है । 'आदि प्रत्नस्य रेतस' इत्यादि मन्त्र आकाश का उदाहृत किया गया है । 'प्राणा शिशु मही नाञ्ज' इत्यादि मन्त्र अश्विनी कुमारों के लिए कहा जाताहै । इसके पश्चात् जो पूर्णाहुतिही दी जावे वह 'मूर्द्धानं दिव' इत्यादि मनज के द्वारा ही अभिपातित करनी चाहिये ।४५-४८।

———

४४-शिव चतुर्दशी व्रत कथन

भगवन् ! भूतभव्येश ! तथान्यदपि यच्छ्रुतम् ।
भुक्तिमुक्तिफलायाल तत्पुनर्वक्तुमर्हसि ।१
एवमुक्तोऽब्रवीच्छम्भुरयं वाङ्मयपारगः ।
मत्समस्तपसा ब्रह्मन् ! पुराणश्रुतिविस्तरैः ।२
धर्मोऽयं वृषरूपेण नन्दीनाम गणाधिपः ।
धर्मान् माहेश्वरान् वक्ष्यत्यतः प्रभृतिनारद ? ।३
शृणुष्वावहितोब्रह्मन् ! वक्ष्येमाहेश्वरंव्रतम् ।
त्रिषुलोकेषुविख्यात नाम्नाशिवचतुर्दशी ।४
मार्गशीर्षे त्रयोदश्यां सितांयामेकभोजनः ।
प्रार्थयेद्देवदेवेश ! त्वामहं शरणं गतः ।५
चतुर्दश्यां निराहारः सम्यगभ्यर्च्य शङ्करम् ।
सुवर्णवृषभं दत्वा भोक्ष्यामि च परेऽहनिः ।६
एवं नियमकृत् स्तुत्वा प्रातरुत्थाय मानव ।
कृतस्नानजपः पश्चादुमया सह शङ्करम् ।
पूजयेत्कमलैः !शुभ्रैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः ।७

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—हे भगवन् ! हे भूत भव्य के ईश ! आपके मुखारविन्द से अन्य जो भी कुछ श्रवण किया है वह भुक्ति और मुक्ति दोनों के फल प्राप्त करने के लिए पर्याप्त है उसे पुनः आप कहने के योग्य होते हैं ।१। इस प्रकारसे जब भगवान् शम्भु से कहा गया तो उन्होंने कहा था यह हे ब्रह्मन् ! पुराण और श्रुति के विस्तारों से तथा तपश्चर्या से वाङ्मय का पारगामी मेरे ही समान है ।२। हे नारद ! नन्दियों का गणाधिप वृष रूप से यह धर्म है जो यहाँ से आगे माहेश्वर धर्मों को बतायेगा ।३। मत्स्य भगवान् ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अब आप

।४। मार्गशीर्ष मास में शुक्ल पक्ष में त्रयोदशी के दिन केवल एक ही बार भोजन करे और प्रार्थना करनी चाहिए—हे देव देवेश ! मैं आपकी शरणागति में सम्प्राप्त हो गया हूँ ।५। चतुर्दशी के दिन पूर्णतया आहार से रहित होकर शंकर का भली भाँति अभ्यर्चन करके ही मैं सुवर्ण का निर्मित वृषभ का दान करके दूसरे दिन भोजन करूँगा—ऐसा मन में संकल्प करे ।६। इस प्रकार से नियम करने वाले पुरुष को स्तवन करके शयन करना चाहिए और प्रभात बेला में उठकर स्नान जप आदि सम्पूर्ण नैत्यिक कर्मों का सुसम्पादन करके फिर जगज्जननी उमा के सहित भगवान शङ्कर का शुभ्र कमलों और गन्ध तथा माल्य एवं अनुलेपन आदि उचित उपचारों से पूजन करना चाहिए ।७।

पादौ नमः शिवायेति शिरः सर्वात्मने नमः ।
त्रिनेत्रायेति नेत्राणि ललाटं हरये नमः ।८
मुखमिन्दुमुखायेति श्रीकण्ठायेतिकन्धराम् ।
सद्योजाताय कर्णौं तु वामदेवायवैभुजौ ।९
अघोरहृदयायेति हृदयञ्चाभिपूजयेत् ।
स्तनौ तत्पुरुषायेति तथेशानाय चोदरम् ।१०
पार्श्वे चानन्तधर्माय ज्ञानभूतायवै कटिम् ।
ऊरू चानन्तवैराग्यसिंहायेत्यभिपूजयेत् ।११
अनन्तैश्वर्य्यनाथाय जानुनीचार्चयेद्बुधः ।
प्रधानायनमोजंघे गुल्फौव्योमात्मनेनमः ।१२
व्योमकेशात्मरूपायकेशान् पृष्ठञ्चपूजयेत् ।
नमः पुष्टयै नमस्तुष्टयै पार्वतीञ्चापिपूजयेत् ।१३
ततस्तु वृषभं हैममुदकुम्भसमन्वितम् ।
शुक्लमाल्याम्बरधरं पञ्चरत्नसमन्वितम् ।
भक्ष्यैर्नानाविधैर्युक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।१४

'नमः शिवाय'—इससे चरणों का यजन करे। 'सर्वात्मने नमः' इस मन्त्र के द्वारा शिर का पूजन करे। 'त्रिनेत्राय नमः'—इससे नेत्रों का 'हरये नमः'—इससे ललाट का पूजन करना चाहिए। 'इन्दुमुखाय नमः—इसके द्वारा मुख का—'श्रीकण्ठाय नमः इससे कन्धरा का—'सद्यो जाताय नमः'—इसके कानों का 'वाम देवाय नमः'—इस मन्त्र से भुजाओं का अर्चन करे। 'अघोर हृदयाय नमः-इससे हृदय का अभिपूजन करना चाहिए। 'तत्पुरुषाय नमः—इससे स्तनों का यजन करे। 'ईशानाय नमः'—इससे उदर का—'अनन्त धर्माय नमः' इससे पार्श्वों का 'ज्ञानभूताय नमः' इसके द्वारा कटिका—'अनन्त वैराग्य सिंहाय नमः'—इससे उरुओं का अभिपूजन करना चाहिए। 'अनन्तैश्वर्य नाथाय नमः' इससे बुध पुरुष को दोनों जानुओं का समर्चन करना चाहिए। 'प्रधानाय नमः'—इसके द्वारा जाँघों का, 'व्योमात्मने नमः'। इसका उच्चारण कर गुल्फों का, 'व्योमकेशात्मरूपाय नमः' इससे केशों का और पृष्ठभाग का पूजन करे। पुष्ठये नमः'—इन मन्त्रों से पार्वती का भी पूजन करना चाहिए। इसके अनन्तर वृषभ का यजन करे तथा सुवर्ण निर्मित कुम्भ को जलसे पूर्ण करके शुक्ल माल्य और अम्बर को धारण करने वाला करके पञ्च रत्नोंसे युक्त करके तथा अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों से समन्वित करके ब्राह्मण के लिए दान देना चाहिए।८-१४।

ततोविप्रान् समाहूय तर्पयेद्भक्तितः शुभान् ।
पृषदाज्यञ्च संप्राश्य स्वपेद्भूमावुदङ्मुखः ।१५
पञ्चदश्यांततः पूज्य विप्रान् भुञ्जीतवाग्यतः ।
तद्वत् कृष्णचतुर्दश्यामेतत् सर्वंसमाचरेत् ।१६
चतुर्दशीषु सर्वासु कुर्य्यात् पूर्ववदर्चनम् ।
येतुमासेविशेषाः स्युस्तान्निबोधक्रमादिह ।१७
मार्गशीर्षादिमासेषु क्रमादेतदुदीरयेत् ।

शंकराय नमस्तेऽस्तु नमस्ते करवीरक !१८
त्र्यम्बकाय नमस्तेऽस्तु महेश्वरमतः परम् ।
नमस्तेऽस्तु महादेव ! स्थाणवे च ततः परम् ।१६
नमः पशुपते नाथ ! नमस्ते शम्भवे पुनः ।
नमस्ते परमानन्द ! नमः सोमार्द्ध धारिणे ।२०
नमो भीमाय इत्येवं त्वामहं शरणं गतः ।
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पि:कुशोदकम् ।२१
पञ्चगव्यं ततोबिल्वं कर्पू रञ्चागुरुं यवा: ।
तिला: कृष्णाश्च विधिवत्प्राशन क्रमशः स्मृतम् ।
प्रतिमासं चतुर्दश्योरेकैकं प्राशनं स्मृतम् ।२२
मन्दारमालतीभिश्च तथा धत्तूरकैरपि ।
सिन्दुवारैरशोकैश्च मल्लिकायिश्च पाटलैः ।२३
अर्कपुष्पैः कदम्बैश्च शतपत्र्या तथोत्पलैः ।
एकैकेन चतुर्दश्योरर्चयेत्पार्वतीपतिम् ।२४

इसके अनन्तर विप्रों का समाह्वान करके जो परम शुभ हों भक्ति भक्तिपूर्वक तृप्त करे। पृषदाज्य खाकर उत्तर ओर मुख वाला होकर भूमि में शयन करे। इसके पश्चात् पंचदशी के दिन में विप्रों का पूजन कर मौन होकर भोजन करे। इसी तरह से कृष्ण चतुर्दशी में यह सब समाचरित करे। सभी चतुर्दशियों पूर्वकी भाँति अर्चन करना चाहिए। जो मास में विशेष हों उनको यहाँ क्रम से आप समझ बूझलो ।१५-१७ मार्गशीर्ष आदि मासों में क्रम से यह उदचिरत करना चाहिए। हे करवीरक ! शङ्कर के लिए मेरा प्रणाम अर्पित होवे और आपको भी नमस्कार समर्पित होवे ।१८। त्र्यम्बक आपके लिए नमस्कार हो। इसके

प्रणाम निवेदित होवे। हे परमानन्द ! सोमार्द्धधारी आपके लिए मेरा प्रणाम अर्पित होवे। भीम के लिये नमस्कार है—इस प्रकार से कहकर अन्त में प्रार्थना करे कि मैं आपकी शरणागति में प्राप्त हो गया हूँ। गोमूत्र, गोमय, क्षीर, दधि, घृत, कुशोदक, पंजगव्य, बिल्व, कर्पूर, अगुरु, यव, कृष्ण तिल इनका विधिवत् क्रम से प्राशन कहा गया है। प्रति मास में दोनों चतुर्दशियों में एक-एक का प्राशन बताया गया है।१९-२०। मन्दार, मालती, धत्तूर, सिन्धुवार, मल्लिका, पाटल, अर्क-पुष्प, कदम्ब, शतपत्री के उत्पल—न पुष्पों में से क्रमशः एक-एक के द्वारा दोनों चतुर्दशियों में पार्वती के स्वामी का अर्चन करना चाहिए। ।२३-२४।

४५-फल त्याग माहात्म्य कथन

फलत्यागस्य माहात्म्यं यद्भवेच्छृणु नारद ! ।
यदक्षयं परं लोके सर्वकामफलप्रदम् ।१
मार्गशीर्षे शुभे मासि तृतीयायां मुने ! व्रतम् ।
द्वादश्यामथवाऽष्टम्यां चतुर्दश्यामथापि वा ।
आरभेच्छुक्लपक्षस्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।२
अन्येष्वपि हि मासेषु पुण्येषु मुनिसत्तम ! ।
सदक्षिणम्पायसेन भोजयेच्छक्तितोद्विजान् ।३
अष्टादशानां धान्यानमवद्य फलमूलकैः ।
वर्जयेदब्दमेकन्तु ऋते औषधकारणम् ।
सवृष कान्चनं रुद्रं धर्म्मराजञ्च कारयेत् ।४
कूष्माण्डं मातुलिङ्गञ्च वार्ताकिम्पनसंतथा ।
आम्राम्रातकपित्थानि कलिङ्गमथवालुकम् ।५
श्रीफलाश्वत्थबदरञ्जम्बीरं कदलीफलम् ।
काश्मरन्दाड़िमं शक्त्या कालधौतानिषोडश ! ।६

मूलकामलकं जम्बूतिन्तिड़ीकरमर्दकम् ।
कंकोलैलाकतुण्डीरकरीर कुटजं शमी ।७

नन्दिकेश्वर ने कहा—हे नारद ! फल के त्याग करने का जो माहात्म्य होता है उनका श्रवण करो । जो लोक में परम अक्षय होता है और सब कामों के फल का प्रदान करने वाला है ।१। हे मुने ! यह मार्गशीर्ष शुभ मास में तृतीया-द्वादशी-अष्टमी अथवा चतुर्दशी तिथि में होता है । ब्राह्मण वाचन करके शुक्ल पक्ष में इसका समारम्भ करना चाहिए ।२। हे मुनिसत्तम ! अन्य पुण्य मासों में भी दक्षिणा के सहित यथा शक्ति पायस से द्विजों को भोजन कराना चाहिए ।३। औषध के कारण के बिना अठारह धान्यों के अवघता का वर्जन कर देना चाहिए और एक वर्ष तक फल मूलों से रहे । वृष के सहित सुवर्ण का रुद्र और धर्म्मराज निर्मित करावे ।४। कूष्माण्ड, मातुलिङ्ग, वर्ताक, आम्रातक पित्थ, कलिंग, आलुक, श्रीफल, अश्वत्थ, बदर, जाम्बीर, कदली फल काश्मर दाड़िम इन सोलह को शक्ति पूर्वक कलधौत (सुवर्ण) के करावे ।५-६। मूली-आंवला जम्बू, तिन्तड़ी, करमर्दक, कङ्कोल, एलाक, तुण्डीर, करीर, कुटज, शमी और दुम्बद, नालिकेर, द्राक्षा—दोनों बृहती इन षोडश फलों को शक्ति के अनुसार रौप्य अर्थात् चाँदी से से निर्मित कराने ।७।

औदुम्बरं नालिकेरं द्राक्षाथ बृहतीद्वयम् ।
रौप्यानि कारयेच्छक्त्या फलानीमानिषोड़श ।८।
ताम्रं तालफलं कुर्य्यादगस्तिफलमेव च ।
पिण्डारकाश्मर्य्यफलं तथा सूरणकन्दकम् ।९
रक्तालुकाकन्दकञ्च कनकाह्वञ्च चिभिटम् ।
चित्रबल्लीफलं तद्वत्कूटशाल्मलिजम्फलम् ।१०
भाम्रनिष्पावमधुकबटमुद्गपटोलकम् ।
ताम्राणि षोडशैतानि कारयेच्छक्तितोनरः ।११
उदकुम्भद्वयंकुर्य्याद्धान्योपरि सवस्त्रकम् ।

ततश्च कारयेच्छय्या यथोपरि सुवाससी ।१२
भक्ष्यपात्रत्रयोपेतं यमरुद्रवृषान्वितम् ।
धेन्वा सहैव शान्ताय विप्रायाथ कुटुम्बिने ।
सपत्नीकाय सम्पूज्य पुण्येऽह्नि विनिवेदयेत् ।१३

ताल फल और अगस्ति फल को ताम्र से निर्मित करावे । पिण्डार, काश्मर्य फल-सूरण कन्द-रक्तालुक कन्द-कलकान्ह- चिमिट चिवबल्ली फल—इसी भांति कूटशाल्मलिज फल-आम्र, निष्पाव-मधुक-वट-मुद्ग-पटोलक इन सोलह को मनुष्य के द्वारा शक्ति पूर्वक ताम्र से निर्मित करना चाहिए ।८-११। धान्य के ऊपर दो जल से पूर्ण कुम्भों को वस्त्र के सहित स्थापना करे । इसके अनन्तर सुन्दर वस्त्रों से समन्वित शय्या ऊपर करावे ।१२। तीन भक्ष्य पात्रों से उसे संयुक्त करे और यम-रुद्र तथा वृष से संयुक्त करे तथा धेनु के सहित किसी परम शान्त स्वभाव वाले कुटुम्बी पत्नी के सहित विप्र का भली-भांति अर्चन करके किसी भी पुण्य दिवस में उसको ये सब बिनिवेदित कर देना चाहिए ।१३।

यथा फलेषु सर्वेषु बसन्त्यमरकोटय: ।
तथा सर्वफलत्यागव्रताद्भक्ति: शिवेऽस्तु मे ।१४
यथा शिवञ्च धर्म्मश्च सदानन्तफलप्रदौ ।
तद्युक्तफलदानेन तौ स्यातां मे वरप्रदौ ।१५
यथा फलान्यनन्तानि शिवभक्तेषु सर्वदा ।
तथानन्तफलावाप्तिरस्तु जन्मनि जन्मनि ।१६
यथा भेदंनपश्यामि शिवविष्ण्वर्कपद्मजान् ।
तथा ममास्तु विश्वात्माशंकर: शंकर: सदा ।१७
इति दत्त्वा च तत्सर्वमलंकृत्य च भूषणै: ।
शक्तिश्चेच्छयनं दद्यात्सार्वोपस्करसंयुतम् ।१८

अशक्यस्तु फलान्येव यथोक्तानि विधानतः ।
तथोदकुम्भसंयुक्तौ शिवधर्मौ च काञ्चनौ ।१६
विप्राय दत्त्वा भुञ्जीत वाग्यतस्तैलवर्जितम् ।
अन्यान्यपि यथा शक्त्या भोजयेच्छक्तितो द्विजाम् ।२०

जिस प्रकार से सब फलों में अमरों की कोटियाँ निवास किया करती हैं उसी भाँति सब फलों के त्याग से मेरी भगवान् शिव में भक्ति होवे ।१४। जिस तरह से भगवान् शिव और धर्म्म सदा अनन्त फलों के प्रदान करने वाले हैं सो युक्त फलदान के द्वारा वे दोनों मुझे वरदान करने वाले होवें ।१५। जिस भाँति शिव के भक्तों में सर्वदा अनन्त फल होते हैं उसी तरह से मुझे जन्म-जन्म में अनन्त फलों की प्राप्ति होवे ।१६। जिस रीति से शिव-विष्णु-सूर्य और ब्रह्मा के भेद को नहीं देखता हूँ अर्थात् इनमें कुछ भी भेद-भाव नहीं समझता हूँ उसी प्रकार से मेरे लिए विश्वात्मा शङ्कर सदा शङ्कर होवें अर्थात् कल्याण-कारी होवें ।१७। यह कहकर वह सब भूषणों से समलंकृत करके दान करे और शक्ति हो तो विधान में यथोत्तम फलों का ही दान करे तथा जल से संयुताशिव और धर्म कंचन के निर्मित करावे । विप्र को दान करके मौन व्रत पूर्वक तैल से रहित पदार्थों का भोजन करें । अपनी शक्ति के अनुसार और दूसरे भी द्विजों को भोजन कराना चाहिए । ।१८—२०।

९६- आदित्यवार व्रत कथन

यदारोग्यकरं पुंसां यदनन्तफलप्रदम् ।
यच्छान्तये च मर्त्यानां वद नन्दीश तद्व्रतम् ।१
यत्तद्विश्वात्मनो धाम परं ब्रह्मसनातनम् ।
सूर्य्याग्निचन्द्ररूपेण तत्त्रिधाजगति स्थितम् ।२

तदाराध्य पुमान् विप्र प्राप्नोतिकुशलं सदा ।
तस्मादादित्यवारेण सदा नक्ताशनोभवेत् ।३
यदा हस्तेन संयुक्तमादित्यस्य च वासरम् ।
तदा शनिदिने कुर्य्यादेकभुक्तः विमत्सरः ।४
नक्तमादित्यवारेण भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ।
पत्रैर्द्वादशसयुक्तं रक्तचन्दनपंकजम् ।५
विलिख्य विन्यसेत्सूर्य्यं नमस्कारेण पूर्वतः ।
दिवाकरं तथाग्नेय विवस्वन्तमतः परम् ।६
भगन्तु नैरॄते देव वरुणं पश्चिमे दले ।
महेन्द्रमनिले तद्वदादित्यञ्च तथोत्तरे ।७

देवर्षि नारदजी ने कहा-हे नन्दीश ! जो भी पुरुषों को आरोग्य के करने वाला हो और जो अनन्त फलों का प्रदान करने वाला हो तथा जो मनुष्यों को शान्ति के लिए हो उसी व्रत को कृपा करके कहिए । ।१। नन्दिकेश्वर ने कहा—जो विश्वात्मा का ब्रह्म सनातन परम धाम है वह सूर्य-अग्नि और चन्द्र के रूप से इस जगत् में तीन प्रकार का स्थित है । हे उसकी आराधना करके पुरुष सदा कुशल की प्राप्ति किया करता है । इसीलिए सदा आदित्यके बारके दिन अर्थात् रविवार को रात्रि में ही अशन करने वाला होना चाहिए ।२-३। जिस समय में हस्त से युक्त सूर्य का बार होवे उस समय में शनिवारके दिन मत्सरता से रहित रहकर एक बार ही भोजन कराना चाहिए ।४। रविवार के दिन में रात्रि के समय में द्विजों को भोजन कराकर पत्रों से रक्त चन्दन के पंक से बारह से संयुक्त लिखकर सूर्य का विन्यास करे । नमस्कार से पूर्व में दिवाकर को विन्यस्त करना चरना चाहिए 'दिवाकर नमः' —यह उच्चारण करते हुए ही विन्यास करे । इसके उपरान्त आग्नेय दिशा में विवस्वान् को—नैरॄत्य में भग को—पश्चिम दल में वरुण देव की—अनिल कोण में महेन्द्र को तथा उसी प्रकार से उत्तर दिशा में आदित्य को विन्यस्त करना चाहिए ।५-७।

शान्तमीशानभागे तु नमस्कारेणविन्यसेत् ।
कर्णिका पूर्वपत्रेतु सूर्य्यस्यतुरंगात्न्यसेत् ।८
दक्षिणेऽर्यमनामानं मार्तण्डं पश्चिमे दले ।
उत्तरे तु रविं देवं कर्णिकायाञ्च भास्करम् ।९
रक्तपुष्पोदकेनार्घ्यं सतिलारुणचन्दनम् ।
तस्मिन् पद्मे ततो दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ।१०
कालात्मा सर्वभूतात्मावेदात्मा बिश्वतोमुख: ।
यस्मादग्नीन्दरूपस्त्वमत:पहिदिवाकर ! ।११
अग्निमीले नमस्तुभ्यमिषेत्वोर्जेचभास्कर: ।
अग्न आयाहि बरद ! नमस्तेज्योतिषाम्पते ! ।१२
अर्घ्यं दत्त्वा विसृज्याथनिशितैलविवर्जितम् ।१३

ईशान दिशा के भाग की ओर शान्त को नमस्कार के सहित बिन्यस्त करना चाहिए । कर्णिका के पूर्व पत्र में सूर्य देव के अश्वों का बिन्यास करना चाहिए ।८। दक्षिण में अर्यमान नाम वाले का तथा पश्चिम दल में मार्त्तण्ड का, उत्तर में रवि देवका और कर्णिका में भास्कर का न्यास करके रक्त पुष्पों के सहित जल से जिसमें तिल, अरुण चन्दन भी हो उस पद्म में निम्न मन्त्र का उच्चारण करते हुए अर्घ्य देना चाहिए ।८-१०। वह मन्त्र यह है—'हे दिवाकर' आप काल की आत्मा हैं या काल स्वरूप ही हैं तथा समस्त भूतों के आत्मा हैं—वेदों को आत्मा और आप विश्वतोमुख हैं क्योंकि आप अग्नि इन्द्र रूप वाले हैं अतएव आप मेरी रक्षा करो ।११। अग्निमीले आपके लिए नमस्कार है । हे भास्कर ! इषेत्वोर्ज आपके लिए प्रणाम है । हे बरद ! आप यहाँ पर पधारिए । हे ज्योतियों के स्वामिन्! आपके लिए प्रणाम समर्पित है । इस प्रकार से सूर्य दैव को अर्घ्य देवे और बिसर्जन करके रात्रि में तैलीय पदार्थों से रहित भोजन करना चाहिए ।१२-१३।

४७-विभूति द्वादशी व्रत कथन

श्रृणु नारद ! वक्ष्यामि विष्णोर्व्रतमनुत्तमम् ।
विभूतिद्वादशी नाम सर्वदेवनमस्कृतम् ।
कार्तिके चैत्रवैशाखे मार्गशीर्षे च फाल्गुने ।१
आषाढे वादशम्यान्तुशुल्कायांलघुभुङ्नरः ।
कृत्वासायन्तनींसन्ध्यां गृह्णीयान्नियमंबुधः ।२
एकादश्यां निराहारःसमभ्यर्च्य जनार्दनम् ।
द्वादश्यांद्विजसंयुक्तः करिष्येभोजनं विभो ! ।३
तदविघ्नेन मे यातु सफलं स्यच्च केशवा ! ।
नमोनारायणायेति वाच्यञ्च स्वपता निशि ।४
ततः प्रभात उत्थायसाविभ्यष्टशतञ्जपेत् ।
पूजयेत् पुण्डरीकाक्ष शुल्कमाल्यानुलेपनैः ।५
विभूतयेनमःपादावशोकायच जानुनी ।
नमःशिवायेत्यूरुच विश्वमूर्ते ! नमः कटिम् ।६
कन्दर्पायनमोमेढ्रं फलं नारायणायच ।
दामोदरायेत्युदरं वासुदेवाय च स्तनौ ।७

नन्दिकेश्वर प्रभु ने कहा—हे नारद ! आप श्रवण कीजिए । अब हम भगवान् विष्णु का सर्वोत्तम व्रतके विषय में वर्णन कर रहे हैं । इस व्रत का शुभ नाम विभूति द्वादशी है और यह व्रत ऐसा उत्तम है कि सभी देवगणों के द्वारा वन्द्यमान होता है ।१। इस व्रत को कई मासोंमें आरम्भ किया जा सकता है । कार्तिक—चैत्र—वैशाख या फाल्गुन मास में करे अथवा आषाढ़ मास में करे । जबभी इसका समाचरण करे उस समय शुक्ल पक्ष को आमी दशमी में अत्यन्त ही स्वरूप हलका भोजन करना चाहिए । मनुष्य जो भी करना चाहे उसे सायङ्कालीन संध्याकी उपासना करके बुध को इसके नियम को ग्रहण करना चाहिए ।२।

एकादशी के दिन बिल्कुल भी आहार न करके भगवान् जनार्दन का अभ्यर्चन करूँगा ओर द्वादशी के दिन द्विजों से संयुक्त होकर ही हे विभो ! मैं फिर भोजन करूँगा—इस प्रकार संकल्प करके नियम ग्रहण करे और फिर प्रार्थना करे हे केशव ! सो यह व्रत मेरी निर्विघ्न सफल हो जावे। इसके पश्चात् 'नमो नारायण'—अर्थात् नारायणाय प्रभु के लिए नमस्कार है—इसका मुख से उच्चारण करके रात्रि में शयन करे। ।३-४। इसके उपरान्त प्रभात वेला में उठकर भगवती सावित्री का अष्टोत्तर शत जाप करना चाहिए और भगवान् पुण्डरीकाक्ष का शुक्ल माल्य एवं अनुलेपन आदि समुचित उपचारों से पूजन करना चाहिए ।५। 'विभूतये नमः'—इस मन्त्र का उच्चारण कर चरणों का यजन करे ।अशोकाय नमः'—इससे जानुओं का—'नमः शिवाय'—इसके द्वारा ऊरुओं का दैविश्वमूर्ते ! 'तुभ्यं नमः' इससे कटिका अर्चन करना चाहिए ।६। 'कन्दर्पाय नमः'—इससे मेढ् का तथा 'नारायणाय नमः' इसके द्वारा फलका पूजन करे। 'नमो दामोदराय'—इस मन्त्र से उदर का 'वासुदेवाय नमः'—इससे दोनों स्तनों का अर्चन करना चाहिए ।७।

माधवायेत्युरोविष्णोः कण्ठमुत्कण्ठिनेनमः ।
श्रीधरायमुखंकेशान् केशवायेतिनारद ! ।८
पृष्ठं शार्ङ्गधरायेत् श्रवणो वरदाय वै ।
स्वनाम्ना शङ्खचक्रासिगदाजलपाणये ।९
शिरः सर्वात्मने ब्रह्मन् ! नमइत्यभिपूजयेत् ।
अल्पवित्तो यथाशक्त्या स्तोकं स्तोकं समाचरेत् ।१०
य चाप्यतीवनिःस्वःस्याद्भक्तिमान्माधवंप्रति ।
पुष्पार्चनविधानेन स कुर्याद्वत्सरद्वयम् ।११
अनेन विधिना यस्तुविभूतिद्वादशव्रतम् ।
कुर्यात् पापविनिर्मुक्तः पितृणां तारयेच्छतम् ।१२
जन्मनां शतसाहस्रेन शोकफलभाग्भवेत् ।

न च व्याधिर्भवेत्तस्य न दारिद्रं न बन्धनम् ।१३
वैष्णवोवाथ शवोवा भवेज्जन्मनि जन्मनि ।१४
यावद्युगसहस्राणां शतमष्टोत्तरं भवेत् ।
तावत्स्वर्गे वसेद्ब्रह्मन् ! भूपतिश्च पुनर्भवेत् ।१५

'माधवाय नमः'—इस मन्त्र के द्वारा विष्णु के उरः स्थल का 'उत्कण्ठिते नमः' इससे कण्ठ का—'श्रीधराय नमः' इसका उच्चारण करके मुख का और हे नारद ! 'केशवाय नमः'—इसके द्वारा केशों का अर्चन करे ।८। 'शार्ङ्गधराय नमः' इस मन्त्र को बोलकर पृष्ठ भाग का, 'वरदाय नमः' इससे श्रवणों का पूजन करना चाहिए । अपने नाम से 'शंख चक्र असि गदा जलज पाणये 'सर्वात्मने नमः' इससे हे ब्रह्मन्! प्रभु के शिर का अर्चन करना चाहिए ।९। जिसके पास बहुत ही थोड़ा सा धन है उसको थोड़ा-थोड़ा ही दान आदि से इस व्रतके अङ्गों का सम्पादन करना चाहिए और अपनी शक्तिके अनुसार ही करे ।१०। जो अत्यन्त ही धनहीन हो और जिसके पास कुछ भी साधन न हों वह भी निर्धन इसको कर सकता है । उसे तो केवल भगवान् माधव के प्रति भक्ति होनी चाहिए और वह केवल पुष्पोंके द्वारा ही अर्चन का विधान करके दो वर्ष पूर्ण करे ।११। इस विधि से जो भी कोई इस विभूति द्वादशी का व्रत किया करता है वह समस्त पापों से निर्मुक्त होकर अपने शत-शत पितृगणों का उद्धार कर दिया करता है ।१२। सौ सहस्र जन्मों तक भी उसको कभी भी शोक का फल नहीं होता है और उसे कोई भी व्याधि नहीं होती है । न कभी दरिद्रता होती है और न ही हुआ करता है ।१३। वह जन्म-जन्म में या तो वैष्णव होता है या शिवका भक्त शैव ही हुआ करता है।१४। हे ब्रह्मन्! इस व्रत का बहुत बड़ा माहात्म्य है जब तक एक सहस्र युगों की अष्टोत्तर शत संख्या

४८-स्नान महत्व वर्णन

नैर्मल्यं भावशुद्धिश्च विना स्नानं नविद्यते ।
तस्मान्मनोविशुद्ध्यर्थं स्नानमादौ विधीयते ।१
अनुद्धतैरुद्धृतैर्वा जलैः स्नानं समाचरेत् ।
तीर्थञ्च कल्पयेद्विद्वान्मन्त्रेण मन्त्रवित् ।
नमो नारायणायेति मूलमन्त्र उदाहृतः ।२
दर्भपाणिस्तु विधिनां आचान्तः प्रयतः शुचिः ।
चतुर्हस्तसमायुक्तं चतुरस्रं समन्ततः ।
प्रकल्प्यावाहयेद्गङ्गामेभिमन्त्रै विचक्षणः ।३
विष्णोःपादप्रसूतासिवैष्णवीविष्णुदेवता ।
त्राहिनस्त्वेनसंस्तमादाजन्ममरणान्तिकात् ।४
तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटीचतीर्थानांवायुरब्रवीत् ।
दिविभूम्यन्तरिक्षेचतानितेसन्तुजाह्नवि ।५
नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषुनलिनीति च ।
दक्षा पृथ्वी च विहंगा विश्वकायाऽमृताशिवा ।६
विद्याधारी सुप्रशान्ता तथा विश्वप्रसादिनी ।
क्षेमा च जाह्नवीचैव शान्ताशान्तिप्रदायिनी ।७
एतानि पुण्यनामानि स्नानकाले प्रकीर्तयेत् ।
भवेत्सन्निहिता तत्र गङ्गा त्रिपथगामिनी ।८

भगवान नन्दिकेश्वर ने कहा—स्नान के किये बिना निर्मलता और भावों की शुद्धि नहीं हुआ करती है । इसलिए मन की विशुद्धि के लिए सबसे आदि में मानव को स्नान करना चाहिए ।१। जल या तो कूप आदि से उद्धृत किये गये हों या किसी जलाशय के अनुद्धृत जल हों उन्हीं से स्नान का समाचरण करे । विद्वान् पुरुष को जो कि मन्त्रों का पूर्ण ज्ञाता है उसे मूल मन्त्रके द्वारा उन्हीं जलों में तीर्थ की कल्पना

कर लेनी चाहिए ।२। 'नमो नारायणाय' यही मूल मन्त्र बताया गया है । विचक्षण पुरुष को हाथ में दर्भका ग्रहण करके विधिपूर्वक आचान्त होकर परम प्रयत और शुचि हो जाना चाहिए । चार हाथ के प्रमाणसे समायुक्त और सभी ओर से चौकोर स्थलकी प्रकल्पना करके नीचे दिये हुए मन्त्रों से भागीरथी गङ्गा का आवाहन करना चाहिए ।३। आवाहन मन्त्र ये हैं—हे हनवि ! आप भगवान् विष्णु के चरणों से प्रसूत हुई हैं । आप परम वैष्णवी और विष्णु के ही देवता वाली हैं । इससे मेरे जन्म मरणान्तिक पाप से मेरी रक्षा कीजिए ।४। भगवान् वासुदेव ने कहा है कि आप साढ़े तीन करोड़ तीर्थों का निवास स्थल हैं । दिवलोक-भूमि और अन्तरिक्ष में वे सब आप में रहते हैं ।५। हे देवि ! आपका देवोंमें नन्दिनी और नलिनी यह नाम है । आपके अन्य भी बहुत से परम पुण्य मय शुभ नाम है—जैसे दक्षा, पृथ्वी, विश्वकाया, अमृता, शिवा, विद्याधरी, सुप्रशान्ता, विश्वप्रसादिनी, क्षेमा, शान्ता, शान्तिप्रदायिनी और जाह्नवी हैं । इन परम पुण्यमय नामोंका स्नान के समयमें कीर्तन करना चाहिए । इस कीर्त्तन के करने से वहीं पर भागीरथी गङ्गा जो त्रिपथों में गमन करने वाली है अर्थात् स्वर्ग—भूमि और पाताल तल में जाने वाली है स्वयं सन्निहित हो जाया करती हैं ।६-८।

सप्तवाराभिजप्तेन करसंपुटयोजित: ।
मूर्द्धिन कुर्य्याज्जलं भूयस्त्रिचतु: पञ्चसप्तकम् ।
स्नानं कुर्य्यान्मृदा तद्वदामन्त्र्य तु विधानत: ।९
अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ।
मृत्तिके ! हर मे पाप यन्मयादुष्कुतंकृतम् ।१०
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।
नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारणि सुव्रते ।११
एवं स्नात्वा तत: पश्चादाचम्य च विधानत: ।
उत्थाय वाससी शुक्ले शुद्धे तु परिधायवै ।

ततस्तु तर्पणं कुर्यात्त्रैलोक्याप्यायनाय वै ।१२
देवायक्षास्तथानागागन्धर्वाप्सिरसः सुराः ।
क्रूराः सर्पाःसुपर्णाश्चतरवोजम्बुका खगाः ।१३
वाय्वाधारा जलाधारास्तथैवाकाशगामिनः ।
निराधाराश्च ये जीवा येतु धर्म्मरतास्तथा ।१४
तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया ।
कृतोपवीती देवेभ्यो निवीती च भवेत्ततः ।१५

हाथों के सम्पुट में जल को योजित करके सात बार अभिजाप करे और फिर मूर्द्धा मे जलको डाले । फिर तीन-चार-पाँच और सात बार स्नान करना चाहिए । इसी भाँति विधानके साथ आमन्त्रित करके मृत्तिका से स्नान करे । अभिमन्त्रित करने का मन्त्र यह है–हे मृत्तिके! आप अश्वों के खुरों से क्रान्त होने वाली हैं–रथों के चक्रों द्वारा भी क्रान्त होती हैं । आप विष्णु भगवान् के द्वारा क्रान्त हैं । हे वसुन्धरे ! जो भी मैंने दुष्कृत किए हों उस सम्पूर्ण पाप का आप संहरण करदो । ।८-१०। हे सुव्रते ! शत बाहुओं वाले वराह श्रीकृष्ण ने आपका उद्धरण किया है अर्थात् आपको उठा लिया है । समस्त लोकों के प्रभव (जन्म) के लिए आरणीके समान विनाश करने वाली आप है । तात्पर्य यह है कि जन्म-मरण के आवागमन को छुडाकर मोक्ष प्रदान किया करती हैं ऐसी आपकी सेवा मे मेरा नमस्कार अर्पित है । इस प्रकार से स्नान करके पीछे विधिपूर्वक आचमन करे और स्नान से उठकर फिर परम शुद्ध एवं शुक्ल वस्त्रों को धारण करना चाहिए । इसके अनन्तर त्रलोक्य की संतृप्ति के लिए तर्पण करना चाहिए ।११-१२। [देव— यक्ष, नाग, गन्धर्व, अप्सरायें, सुर, क्रूर, सर्प, सुपर्ण, तरुगण, जम्बुक, खग, वायु के आधार वाले प्राणी–जल का आश्रय ग्रहण करने

उन सबकी तृप्ति के लिये मेरे द्वारा यह जल दिया जाता है। देवों के लिये कृतोपवीती होकर तर्पण करे और फिर निवीती हो जाना चाहिए ।१३-१५।

मनुष्यांस्तर्पयेद्भक्त्या ब्रह्मपुत्रानृषींस्तथा ।
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ।१६
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा ।
सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुनासदा ।१७
मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
प्रचेतसं वशिष्ठञ्च भृगुन्नारदमेव च ।
देवब्रह्मऋषीन् सर्वास्तर्पयेदक्षतोदकैः ।१८
अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जान्वाच्च भूतले ।
अग्निष्वात्तास्तथा सौम्या हविष्मन्तस्तथोष्मपाः ।१९
सुकालिनो बर्हिषदस्तथान्ये वाज्यपाः पुनः ।
सन्तर्प्य पितरो भक्त्यासतिलोदकचन्दनैः ।२०
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ।२१
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने ।
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः ।
दर्भपाणिस्तु विधिना पितॄन् सन्तर्पयेद् बुधः ।२२

भक्ति की भावना से मनुष्यों का तर्पण करे—ब्रह्मा के पुत्रों का तथा ऋषियों का तर्पण करे। सनक,सनन्द और तीसरे सनातन, कपिल, आसुरि, वोढु, पञ्चशिखये सभी मेरे द्वारा प्रदत्त किये हुए जल से सदा तृप्ति प्राप्त करें ।१६-१७। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद इन देवर्षि और ब्रह्मर्षि सबको अक्षतों से मिश्रित जलों से तर्पण करना चाहिए।१८। इसके पश्चात् अपसव्य करके सव्य जानु भूतल में टेककर अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, अन्य

आज्यप पितरों का भक्ति भाव से तिलोदक चन्दन के द्वारा भली भाँति तर्पण करना चाहिए। फिर धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल सर्वभूत क्षय, औदुम्बर, पद्म, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र और चित्रगुप्त के लिए नमस्कार है। डाभ हाथ में ग्रहण करने वाले बधु पुरुष को विधि के साथ पितृगणों का तर्पण करना चाहिए।१९-२२।

पित्रादीन्नामगोत्रेण तथा माममहानपि।
सन्तर्प्य विधिना भक्त्या इमं मन्त्रमुदीरयेत्।२३
ये बान्धवा बान्धवेया येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।
ते तृप्तिमखिला यान्तु यश्चास्मत्तोऽभिवांछति।२४
ततश्चाचम्य विधिवदालिभेत्पद्ममग्रतः।
अक्षताभिः सपुष्पाभिः सजलारुणचन्दनम्।
अर्घ्यं दद्यात्प्रयत्ने न सूर्य्यंनामानि कीर्तयेत्।२५

पिता आदि का नाम और गोत्र का उच्चारण करके तथा माता-मह आदिका भी नाम गोत्र कहकर विधिपूर्वक भली भाँति तर्पण करके भक्ति के साथ इस मन्त्र को उच्चारित करे।२३। जो मेरे बान्धब और बान्धवेय हों तथा जो मेरे अन्य जन्म में बान्धव रहे हों वे सब तृप्ति को प्राप्त हों और वह भी सन्तृप्त हो जावे जो मुझसे अर्थात् मेरे द्वारा दिए हुए जल प्राप्त करने की इच्छा रखता हो।२४। इसके पश्चात् आचमन करके विधि पूर्वक आगे पद्म का विलेख न करे। पुष्पों के सहित अक्षतों में अरुण चन्दन से समन्वित जल का अर्घ्य देना चाहिए तथा प्रयत्न से सूर्य के नामों का कीर्तन करे।२५।

नमस्ते विष्णुरूपाय नमो विष्णुमुखाय वै।
सहस्ररश्मये नित्यं नमस्ते सर्वतेजसे।२६
नमस्तेशिव ! सर्वेश ! नमस्तेसर्ववत्सल।
जगत्स्वामिन्नमस्तेऽस्तु दिव्यचन्दनभूषित।२७
पद्मासन ! नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदभूषित।
नमस्ते सर्वलोकेश ! जगत्सर्वं विबोधसे।२८

सुकृतं दुष्कृतं चेव सर्वं पश्यसि सर्वग ।
सत्यदेव ! नमस्तेऽस्तु प्रसीद मम भास्कर ।२९
दिवाकर ! नमस्तेऽस्तुप्रभाकर ! नमोऽस्तुते ।
द्विजङ्गां काञ्चनं स्पृष्ट्वा ततो विष्णुहं व्रजेत् ।३०

विष्णु के रूप वाले आपके लिये नमस्कार है । विष्णुमुख आपके लिए प्रणाम है । सहस्र किरणों वाले के लिए नमस्कार है । सबके तेज स्वरूप आपके लिए नमस्कार है ।२६। हे शिव ! आपके लिए नमस्कार है । हे सर्वेश्वर ! हे सब पर वात्सल्य रखने वाले ! आपके लिए नमस्कार है । हे जगत् के स्वामिन् ! दिव्य चन्दन से भूषित ! आपकी सेवा में नमस्कार है । हे पद्मासन ! आपको प्रणाम है । हे कुण्डलों और अङ्गदों से भूषित ! आपको नमस्कार है । हे सब लोकों के ईश ! आपकी सेवा में प्रणाम है । आपही इस सम्पूर्ण जगत् का विशेष बोधन दिया करते हैं । आपही सुकृत और दुष्कृत सबको हे सर्वत्र गमन करने वाले ! देखा करते हैं । हे सत्य देव ! हे भास्कर ! आपकी सेवा में नमस्कार है । आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइए । हे दिवाकर देव ! आपको नमस्कार है । हे प्रभाकर ! आपकी सेवा में प्रणाम है । इस प्रकार से सूर्य को नमस्कार करके तीन बार प्रदक्षिणा करनी चाहिये । फिर किसी द्विज को तथा गौ का एवं काञ्चन का स्पर्श करके फिर विष्णु गृह को जाना चाहिए । अर्थात् भगवान् के मन्दिर में गमन करे ।२७-३०।

४९—प्रयाग माहात्म्य वर्णनम्

भगवन् ! श्रोतुमिच्छामिपुराकल्पेयथास्थितम् ।
ब्रह्मणादेवमुख्येनयथावत्कथितंमुने ।१
कथं प्रयागे गमनं नृपाणां तत्र कीदृशम् ।
मृतानांकागतिस्तत्रस्नातानांतत्रकिम्फलम् ।
ये वसन्ति प्रयागे तु ब्रूहि तेषां च किम्फलम् ।२
कथयिष्यामितेवत्स ! यच्छ्रेष्ठंतत्रयत्फलम् ।
पुराहिसर्वविप्राणां कथ्यमानंमयाश्रुतम् ।
आप्रयागप्रतिष्ठानादापुराद्वासुकेह्लदात् ।
कम्बलाश्वतरौ नागौ नागश्च बहुमूलकः ।३
एतत्प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।४
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्ते पुनर्भवाः ।
ततो ब्रह्मादयो देवा रक्षां कुर्वन्ति सङ्गता ।५
अन्ये च बहवस्तीर्थाः सर्वपापहराः शुभाः ।
न शक्याः कथितुं राजन् ! बहुवर्षशतैरपि ।
संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्य तु कीर्तनम् ।६
षष्टिर्धनुः सहस्राणि यानि रक्षन्ति जाह्नवीम् ।
यमुनां रक्षति सदा सवितासप्तवाहनः ।७

धर्म्मराज युधिष्ठिर ने कहा—हे भगवन् ! पुरातन में जो यथा स्थित हो उसका मैं श्रवण करना चाहता हूँ । हे मुने ! देवों में मुख्य ब्रह्माजी ने यथावत् कथन किया है ।१। प्रयाग में गमन किस प्रकार से है और नरों का किस प्रकार का है ? वहा पर जो निवास करके मृत हो जाते हैं उनकी क्या गति होती है और जो वहाँ पर पहुंच कर स्नान किया करते हैं उनको क्या फल मिला करताहै जो सर्वदा प्रयाग में निवास किया करते हैं उनका क्या फल हुआ करता है ? जो हुआ

करता है ? ।२। महर्षि प्रवर मार्कण्डेयजी ने कहा—हे वत्स ! वहाँ पर जो भी श्रेष्ठतम फल हुआ करता है उसको मैं आपको बतलाऊँगा। पहिले प्राचीन समय में समस्त विप्रों का कथ्यमान (कहा हुआ) मैंने श्रवण किया है ।३। प्रयाग के प्रतिष्ठान से लेकर और वासुकि के ह्रद से पुर के पर्यन्त तक कम्बल और अश्वतर दो भाग हैं और बहु-मूलक नाग है । यही प्रजापति का क्षेत्र है जो तीनों लोकों में विश्रुत है ।३-४। वहाँ पर मनुष्य स्नान करके दिवलोक को चले जाया करते हैं और जिनकी वहाँ पर मृत्यु हो जाती है उनका पुनर्भव नहीं होता है। इसके बाद में ब्रह्मा आदि देव सब सङ्गत होकर रक्षा किया करते हैं ।५। हे राजन् ! अन्य भी बहुत से तीर्थ हैं जो समस्त पापों के हरण करने वाले और परम शुभ हैं। उन सबको कहा नहीं जा सकता है चाहे सैकड़ों ही वर्षों तक क्यों न वर्णन करता रहे। अब मैं अति संक्षेप से प्रयाग का कुछ माहात्म्य कीर्त्तित करूँगा ।६। जो साठ धनु सहस्र है वे जाह्नवी की रक्षा किया करते हैं और सप्त वाहन सवितादेव यमुना की रक्षा किया करते हैं ।७।

प्रयागं तु विशेषेण सदा रक्षति वासवः ।
मण्डलं रक्षति हरिर्दैवतैः सह संगतः ।८
तं वटं रक्षतिसदा शूलपाणिमहेश्वरः ।
स्थानं रक्षन्ति वै देवाः सर्वपापहरं शुभम् ।९
दधर्मेणावृतो लोकेनैव गच्छति तत्पदम् ।
स्वल्पमल्पतरं पापं यदा ते स्यान्नराधिप ।
प्रयागं स्मरमाणस्य सर्वमायाति संक्षयम् ।१०
दर्शनात्तस्य तीर्थस्य नाम संकीर्त्तनादपि ।
मृत्तिका लम्भनाद्वापि नरः पापात्प्रमुच्यते ।११
पञ्चकुण्डानि राजेन्द्र ! तेषां मध्ये तु जाह्नवी ।
प्रयागस्यप्रवेशेतुपापंनश्यतितत्क्षणात् ।१२
योजनानां सहस्रेषु गंगायाः स्मरणान्नरः ।

अपि दुष्कृतकर्मा तु लभते परमांगतिम् ।१३
कीर्त्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वाभद्राणिपश्यति ।
अवगाह्यचपीत्वातुपुनात्यासप्तङ्कुलम् ।१४

विशेषता के साथ वासव देव सदा प्रयाग की रक्षा करते हैं । उस सम्पूर्ण मण्डल की रक्षा देवों के साथ सङ्गत होकर भगवान हरि किया करते हैं ।८। उस वट की सदा शूलपाणि महेश्वर रक्षा करते हैं । समस्त पापों के हरण करने वाले परम शुभ स्थान की रक्षा देवगण किया करते हैं ।९। अधर्म से लोक से आवृत हो उस पद को चला जाया करते हैं हे नराधिप! जिस समयमें स्वल्प और स्वल्पतर आपका पाप होता है तो वह जब भी प्रयाग का स्मरण आप करेंगे उसी समय तुरन्त सब संक्षय को प्राप्त हो जायगा । प्रयाग के केवल स्मरण मात्र का ही इतना महान् फल होता है ।१०। उस महान् तीर्थ के दर्शन से तथा उस तीर्थ के नाम का संकीर्तन करने से भी एवं वहाँ पर केवल मृत्तिका के लम्भन मात्र से भी मनुष्य पाप से मुक्त हो जाया करता है ।११। हे राजेन्द्र ! वहाँ पर पंचकुण्ड हैं उनके मध्य में जान्हवी है । प्रयाग के अन्दर प्रवेश करने पर उसी क्षण में तुरन्त पापों का नाश हो जाया करता है । सहस्रों योजनों पर रहते ही गङ्गा के स्मरण करने में दुष्कृतों के करने वाला भी मनुष्य परम सद्गति की प्राप्ति किया करता है ।१२-१३। गङ्गा के शुभ नाम का कीर्तन करने से पापों से मुक्त हो जाता है और दर्शन करके भद्रोंको देखा करता है अर्थात् दर्शन से भलाइयाँ दिखलाई देती हैं । अवगाहन करके तथा पान करके सात कुल तक को पवित्र कर दिया करता है ।१४।

सत्यवादी जितक्रोधी अहिंसायांव्यवस्थितः ।
धर्मानुसारातत्वज्ञोगोब्राह्मणहितेरतः ।१५
गङ्गायमुनयोर्मध्येस्नातोमुच्येतकिल्बिषात् ।
मनसाचिन्तयन्कानामाप्नोतिसुपुष्कलान् ।१६
ततो गत्वा प्रयागं तु सर्वदेवाभिरक्षितम् ।

५०—भारतवर्ष वर्णन

यदिदं भारतंवर्षं यस्मिन् स्वायम्भुवादय: ।
चतुर्दशैव मनव: प्रजासर्गं ससर्जिरे ।१
एतद्वेदितुमिच्छाम: संकशात्तव सुव्रत ! ।
उत्तरंश्रवणं भूय: प्रब्रूहि वदतां वर ! ।२
एतच्छ्रुत्वा ऋषीणां तु प्राब्रवील्लोमहर्षणि: ।
पौराणिकस्तदासूत ! ऋषीणां भावितात्मनाम् ।३
बुद्धया विचार्य्य बहुधा बिमृश्य च पुन: पुन।
तेभ्यस्तु कथयामास उत्तरश्रवणं तदा ।४
अथाहं वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजा: ।
भरणात्प्रजनाच्चैव मनुर्भरत उच्यते ।५
निरुक्तवचनैश्चैव वर्षं तद्भारतं स्मृतम् ।
यत: स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमश्चापि हि स्मृत: ।६
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौकर्मविधि: स्मृत: ।
भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदान्निबोधत ।७

ऋषिगण ने कहा—जो यह भारतवर्ष है जिसमें स्वायम्भुव आदि मुनिगण अर्थात् मनु चौदह ही हुए हैं जिन्होंने प्रजाओंके सर्ग की रचना की थी ।१। हे सुव्रत ! मैं आपके सकाश से यह जानना चाहता हूँ । हे बोलने वालों में परमश्रेष्ठ ! आप उत्तर श्रावणको पुन: बोलिए ।२। ऋषियों के इस वचन को सुनकर उस समय में लौम हर्षणि पौराणिक सूतजी भवितात्मा ऋषियों से कहा ।३। बुद्धि से बहुत बार विचार करके और पुन: पुन: विमर्श करके उस समय में उनसे उत्तर श्रवण को कहा था ।४। सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर इस भारतवर्ष में प्रजाओं का मैं वर्णन करूँगा । भरण करने से और प्रजनन करने से मनु भरत इस नाम से कहा जाता है ।५। निरुक्त वचनों के द्वारा

ही यह वर्ष भारत कहा गया है क्योंकि यहाँ स्वर्ग—मोक्ष और मध्यम कहा गया है ।६। अन्य किसी भी स्थान में भूमि में मनुष्यों की कर्म्म विधि नहीं कही गयी है । इस भारतवर्ष के नौ भेदों को समझ लो । ।७।

इन्द्रद्वीप: केसरश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमा ।
नागद्वीपस्तथा सौम्योगन्धर्वस्त्वथवारुण: ।८
अयं तु नवमस्तेषां द्वीप: सागरसंवृत: ।
योजनानां सहस्रन्तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तर: ।६
आयतस्तु कुमारीतो गङ्गायाः प्रवहावधि: ।
तिर्यंगुद्ध्वन्तुविस्तीर्णं सहस्राणि दशैव तु ।१०
द्वीपोह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेषु सर्वश: ।
यवनाश्च किराताश्च तस्यान्ते पूर्वपश्चिमे ।११
ब्राह्मणा: क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागश: ।
इज्यायुतवणिज्यादि वर्तयन्तो व्यवस्थिता: ।१२
तेषां सव्यवहारोऽयं वर्तनन्तु परस्परम् ।
धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानान्तु स्वकर्मसु ।१३
संकल्पपञ्चमानान्तु आश्रमाणां यथाविधि ।
इह स्वर्गापगार्थं प्रवृत्तिरिह मानुषे ।१४

इन्द्रद्वीप, केसर, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सोम्य, गन्धर्व, वारुण—यह उनमें सागर से संवृत नवम द्वीप है । यह द्वीप दक्षिणोत्तर एक सहस्र योजनों वाला है । इसका आयतन कन्या कुमारी से गङ्गा के प्रवाह की अवधि है । तिर्यक् और ऊर्ध्व में दश सहस्र विस्तार से युक्त है ।८-१०। द्वीप यह उपनिविष्ट है और सब ओर अन्त भागों में म्लेच्छोंसे घिरा हुआ है । यवन और किरात उसके अन्त में पूर्व-पश्चिम

में है। मध्य में भाग से ब्राह्मण-क्षत्रिय वैश्य और शूद्र हैं। इज्या युत वाणिज्य आदि का वर्णन करते हुए व्यवस्थित हैं ।११-१२। उनका यह सव्यवहार हैं और परस्पर में बर्तन हैं। वर्णों का अपने कर्म्मों में धर्म्म-अर्थ और काम से संयुक्त है। संकल्प पंचमों आश्रमों की यहाँ पर यथाविधि स्वर्ग और अपवर्ग के लिए मानुष जीवन में प्रवृत्ति होती है ।१३-१४।

यस्त्वयं मानवो द्वीपस्तिर्य्यग्यामः प्रकीर्त्तितः।
य एनं जयते कृत्स्नं स सम्राडिति कीर्त्तितः ।१५
अयं लोकस्तु वै सम्राडन्तरिक्षजितां।
स्वराठसौ स्मृतो लोकः पुनर्वक्ष्यामि विस्तरात् ।१६
सप्त चास्मिन् महावर्षे विश्रुताः कुलपर्वताः।
महेन्द्रो मलयः सह्यः शक्तिमान् ऋक्षवानपि ।१७
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च इत्येते कुलपर्वताः।
तेषां सहस्रशश्चान्ये पर्वतास्तु समीपतः ।१८
अभिज्ञातस्ततश्चान्ये विपुलाश्चित्र सानवः।
अन्येतेभ्यः परिज्ञाता ह्रस्वा ह्रस्वोपजीविनः ।१९
तैर्विमिश्रा जानपदा आर्या म्लेच्छाश्च सर्वतः।
पिबन्ति बहुला नद्यो गङ्गासिन्धुः सरस्वती ।२०
शतद्रूश्चन्द्रभागा च यमुना सरयू तथा।
ऐरावती वितस्ता च विशाला देविका कुहूः ।२१
गोमती धौतपापा च बाहुदा च दृषद्वती।
कौशिकी तु तृतीयाचनिश्चलागण्डको तथा।
इक्षुलौहितमित्येता हिमवत्पार्श्वनिःसृता ।२२

जो यह मानव द्वीप है वह तीर्यक्याम कीत्तित किया गया है। जो इस सम्पूर्ण को जीत लेता है वही सम्राट इस नाम से कहा जाया करता है ।१५। इस लोकका तो सम्राट होता है और अन्तरिक्ष को भी

जीत लेता है वह लोक में स्वराट् कहा जाता है। अब पुनः बिस्तार पूर्वक कहूँगा।१६। इस महावर्ष में सात कुल पर्वत प्रसिद्ध हैं। उन सातों के नाम ये हैं—महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, ऋक्षवान्, विन्ध्य पारियात्र—ये ही सात कुल पर्वत कहे जाते हैं। उन कुल के सहस्रों समीप में अन्य पर्वतभी होते हैं। इनके पश्चात् वे अन्य बहुतसे विचित्र शिखरों वाले अभिज्ञात हैं। उनसे भी अन्य ह्रस्व और ह्रस्वों के उपजीवी परिज्ञात हैं।१७-१९। उनसे मिले हुए जनपद हैं जो सब ओर आर्य और म्लेच्छहैं। गङ्गा, सिन्धु और सरस्वती इन बहुत-सी नदियों का दान किया करते हैं।२०। शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, सरयू, ऐरावती, वितस्ता, विशाला, देविका, कुहू, गोमती, धौतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी, तृतीया, निश्चला, गण्डकी, इक्षुलौहित्य, ये इतनी नदियाँ हिमवान् के पार्श्व भाग से निःसृत हुई हैं।२१-२२।

वेदस्मृतिर्वेत्रवती वृतघ्नी सिन्धुरेव च।
पर्णाशा नर्मदा चैव कावेरी महती तथा।२३
पारा च धन्वतीरूपा विदुषावेणुमत्यपि।
शिप्राह्यवन्ती कुन्ती च पारियात्राश्रिताः स्मृताः।२४
मन्दाकिनीदशार्णा च चित्रकूटा तथैव च।
तमसापिप्पलीश्येनी तथा चित्रोत्पलापि च।२५
विमला चञ्चलाचैव तथा च धूतवाहिनी।
शुक्तिमन्ती शुनी लज्जामुकुटाह्लदिकापि च।
ऋक्ष्यवन्तप्रसूतास्तानथामलजलाः शुभाः।२६
तापीपयोष्णी निर्विन्ध्याक्षिप्रा च ऋषभा नदी।
वेणावैतरणी चैव विश्वमालाकुमुद्वती।२७
तोया चैव महागौरीदुर्गमातुशिला तथा।
विन्ध्यपादप्रसूतास्तः सर्वाः शीतजला शुभाः।२८
गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणी च वञ्जुला।

तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा बाह्याकावेरी चैव तु ।
दक्षिणापथनद्यस्ता सह्यपादाद्विनिः सृताः ।२९

वेदस्मृति, वेत्रवती, वृत्रघ्वी, सिन्धु, पर्णाशा, नर्मदा,कावेरी, महती पारा, धवन्तीरूपा, विदुषा, वेणुमती, शिप्रा, अवन्ती, कुन्ती, ये समस्त नदियाँ पारियात्र नाम वाले कुल पर्वत के आश्रित रहने वाली हैं ऐसा ही कहा गया है ।२३-२४। मन्दाकिनी, दशार्णा, त्रिचकूटा, तमसा, पिप्पली, श्येनी, चित्रोत्पला, विमला, चंचला, धूम, वाहिनी, शुक्तिमन्ती, शुनी, लज्जा, मुकुटा, हृदिका ये सब नदियों का उद्गम स्थल ऋष्यवान् कुल पर्वत होता है । इनके जल बहुत ही अमल और शुभ हैं ।२५-२६। तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, क्षिप्रा, ऋषिभा, वेणा,वैतरिणी, विश्वमाला, कुमुद्वती, तोया, महद्गौरी, दुर्गभा,शिला ये समस्त नदियाँ विन्ध्या कुल पर्वत से उत्पन्न हुई हैं । ये सब सब परम शीतल और शुभ जल वाली होती हैं ।२७-२८। गोदावरी, भीमरथी, कृष्ण वेणी, वञ्जुला, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, बाह्या कावेरी ये समस्त नदियाँ दक्षिणा पथ वाली हैं और सह्याद्रि कुल पर्वत के पाद से विनिःस्सृत हुई है ।२९

कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पजा ह्युत्पलावती ।
मलयप्रसूता नद्यः सर्वाः शीतजलाः शुभाः ।३०
त्रिभागा ऋषिकुल्या च इक्षुदा त्रिदिवाचला ।
ताम्रपर्णी तथा मूली शरवाविमला तथा ।
महेन्द्रतनयाः सर्वाः प्रख्याताः शुभगामिनीः ।३१
काशिकासुकुमारी च मन्दगामन्दवाहिनी ।
कृपा च पाशिनीचैव शुक्तिमन्तात्मजास्तुताः ।३२
सर्वाः पुण्यजलाः पुण्याः सर्वगाश्च समुद्रगाः ।
विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वपापहराः शुभाः ।३३
तासां नद्युपनद्यश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।
तास्विमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वाश्चैव सजाङ्गलाः ।३४

शूरसेना भद्रकारा बाह्याः सहपटच्चराः ।
मत्स्याः किराताः कुल्याश्च कुन्तलाः काशिकोशलाः ।३५
आवन्ताश्च कलिङ्गाश्च मूकाश्चैवान्धकैः सह ।
मध्यदेशाजनपदाः प्रायशः परिकीर्त्तिताः ।३६

कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पजा, उत्पलावती—ये सब नदियाँ मलय आदि प्रसूत होने वाली हैं और ये सभी अति शीतल एवं परमशुभ जल वाली हैं ।३०। त्रिभागा, ऋषि, कुल्या, इक्षुदा, त्रिदिचला, ताम्रपर्णी, मूली, शरवा, विमला ये सब नदियाँ महेन्द्र गिरि से समुत्पन्न होने वाली हैं और शुभगमन करने वाली प्रख्यात हैं।३१। काशिका सुकुमारी मन्दगा मन्द वाहिनी, कृपा-पाशिनी ये सब नदियाँ शुक्तिमन्त कुल पर्वत से प्रसव प्राप्त करने वाली हैं । ये सभी पुण्य जलवाली, पुण्यमयी, सर्वत्रगमन करने वाली और समुद्र गामिनी हैं । ये सभी इस विश्व की मातायें हैं और सब पापोंके हरण करने वाली तथा परम शुभ हैं ।३२-३३। इन सरिताओं के जिनके नामों का यहाँ पर अभी उल्लेख किया गया हैं इनकी सैकड़ों और सहस्रों ही अन्य नदियाँ तथा उपनदियाँ हैं । इनमें ये कुरु-, पांचाल, शाल्व, सजाङ्गल, शूरसेन, भद्रकार, वाह्य, सहपरच्चर, मत्स्य, किरात, कुल्य,कुन्तल, काशिकोशल, अवन्त कलिंग मूक, अन्धाक ये सब मध्यदेश के जानपद परिकीर्तित किये गये हैं । ।३४-३६।

सह्यस्यानन्तरे चैते तत्र गोदावरी नदी ।
पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ।३७
यत्र गोवर्धनो नाम मन्दरो गन्धमादनः ।
रामप्रियार्थं स्वर्गीयावृक्षादिव्यास्तथौषधीः ।३८
भरद्वाजेन मुनिना प्रियार्थमवतारिताः ।
ततः पुष्पवरो देशस्तेन जज्ञे मनोरमः ।३९
बाल्हीका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयका ।

पुरन्ध्राश्चैव शूद्राश्च पल्लवाश्चात्तखण्डिका: ।४०
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रका: ।
शकाद्रुह्या पुलिन्दाश्चपारदाहारमूर्त्तिका: ।४१
रामटा: कण्टकाराश्च कैकेया दशनामका: ।
क्षत्रियोपनिवेश्याश्च वैश्या: शूद्रकुलानि च ।४२
अत्रयोऽथ भरद्वाजा: प्रस्थला: सदसेरका: ।
लम्पकास्तलगानाश्च सैनिका: सह जाङ्गलै: ।
एते तेषां उदीच्यास्तु प्राच्यान्देशान्निबोधत: ।४३

ये सभी सह्य अद्रि के अनन्तर में हैं वहीं पर गोदावरी नदी है। सम्पूर्ण पृथ्वी में वह प्रदेश परम सुन्दर है ।३७। जहाँ पर गोवर्द्धन नाम वाला मन्दर और गन्ध मादन है तथा श्रीराम प्रियार्थ स्वर्गीय वृक्ष तथा दिव्य औषधियाँ हैं ।३८। भरद्वाज मुनि के द्वारा प्रियार्थ अवतरित किये गये हैं। इससे पश्चात् उनने पुष्पवर एक मनोरम देश उत्पन्न किया था ।३९। वाह्लीक, वाटधान, आभीर, कालतोयक, प्ररन्ध, पल्लव, आत्तरखण्डिक: गान्धार, गवन, सिन्धु सौवीर मद्रक, शक, द्रुह्य, पुलिन्द पारदा हारमूर्तिक, रामट, कण्टकार, कैकय दशनामक क्षत्रियों के उपनिवेशके योग्य तथा वैश्य और शूद्र कुल हैं ।४०-४२। अत्रय, भारद्वाज, प्रस्थल, सहसेरक,लम्पक, तलगान और जांगलों के साथ सैनिक ये सब उदीच्य (उत्तर दिशा में होने वाले) हैं। अब जो प्राची (पूर्व दिशा में होने वाले) देश हैं उनको भी समझ लो।४३।

अङ्गा वङ्गा मद्गुरका अन्तर्गिरिबहिर्गिरी ।
सुह्योत्तरा: प्रविजया: मार्गवागेयमालवा: ।४४
प्राग्ज्योतिषाश्च पुण्ड्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तका: ।
शाल्वमागधगोनर्दा: प्राच्या जनपदा: स्मृता: ।४५
तेषां परे जनपदा दक्षिणापथवासिन: ।

पाण्ड्याश्च केरलाश्चैव चोला: कुल्यास्तथैव च ।४६
सेतुका: सूतिकाश्चैव कुपथावाजिवासिका: ।
नवरराष्ट्रामाहिषिका: कलिङ्गाश्चैवसर्वश: ।४७
कारूपाश्चसहैषोका आटव्या: शवरास्तथा ।
पुलिन्दाविन्ध्यपुषिका वैदर्भा दण्डकै: सह ।४८
कुलीयाश्च सिरालाश्च रूपसास्तापसै: सह ।
तथातैत्तिरिकाश्चैव सर्वे कारस्कारास्तथा ।४९

अङ्ग, वङ्ग, मद्गुरक, अन्तर्गिरि, सुह्योत्तर, अविजय, मार्गवागेय मालव, प्राग्ज्योतिष, पुण्ड्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, शाल्व, मागधा, गोनर्द—ये सब प्राच्य अर्थात् पूर्व दिशा में होने वाले जनपद कहे गये हैं। ।४४-४५। उनसे भी पर जनपद दक्षिण पथवासी है। पाण्डय, केरल, चोला, कुल्य, सेतुक, सूतिक और कुपथावाजि, नासिक ये अव राष्ट्र माहिषिक हैं और कलिङ्ग सभी ओर हैं ।४६-४७। कारुष, सहैषीक, आटव्य, शवर, पुलिन्द, विन्ध्य पुषिक, वैदर्भ, दण्डक कुलीय, सिराल, रूपस, तापस, तैत्तिरक तथा सब कारस्कार हैं ।४८-४९।

वासिकाश्चैव ये चान्ये ये चैवान्तरनर्मदा: ।
भारुमच्छा: समाहेया: सह सारस्वतैस्तथा ।५०
काच्छीकाश्चैवसौराष्ट्रा आनर्ताअर्बुदै: सह ।
इत्येतेअपरान्तांस्तुश्रृणु ये विन्ध्यवासिन: ।५१
मालवाश्चकरूषाश्चमेकलाश्चोत्कलै: सह ।
औण्ड्रामाषादशार्णाश्चभोजा: किष्किन्धकै: सह ।५२
स्तोशला: कोसलाश्चैव त्रैपुरा वैदिशास्तथा ।
तुमुरास्तुम्बराश्चैव पद्गमा नैषधै: सह ।५३
अरूपा: शौण्डिकेराश्च वीतिहोत्रा अवन्तय: ।
एते जनपदा: ख्याताविन्ध्यपृष्ठनिवासिन: ।५४

अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये ।
निराहारा: सर्वगाश्चकुपथा अपथास्तथा ।५५
कुथप्रावरणाश्चैव ऊर्णादर्वा सशुद्मक : ।
त्रिगर्ता मण्डलाश्चैव किराताश्चामरै: सह ।५६
चत्वारि भारतेवर्षे युगानि मुनयोऽब्रुवन् ।
कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।
तेषां निसर्ग वक्ष्यामि उपरिष्टाच्च कृत्स्नश: ।५७

जो अन्य वासिक हैं और जो नर्मदा के अन्तर में हैं—भारुकच्छ समाहेय, सारस्वत, काच्छीक, सौराष्ट्र, आनर्त अर्बुद—ये सब ऊपर हैं । अब उनका श्रवण करो जो विन्ध्यवासी हैं—मालव करूष, मकेल, उत्कल औण्ड्र, माष, दशार्ण, भोज, किष्किन्धक, स्तोशल, कोसल, त्रैपुर, वैदिश, तुमुर, तुम्बर, पद्गम, नैषध, अरूप, शौण्डिकेर, वीति-होत्र—अनन्ति ये सब जानपद विन्ध्याचल के पृष्ठ फाग पर निवास करने वाले ख्यात हुए हैं ।५०-५४। इसके अनन्तर उन देशों को बत-लाता हूँ जो पर्वतों का आश्रय ग्रहण करने वाले हैं । निराहार, कुपथ-और अपथ है अर्थात् कुछ बिना आहार वाले—और कुछ बुरे मार्ग वाले बिना मार्ग वाले हैं । कुथ के आवरण करने वाले—ऊर्णादर्व, समुद्गक त्रिगर्त्त, मण्डल, किरात और चामर हैं ।५५-५६। मुनिगण ने इस भारतवर्ष में चार युगों का वर्णन किया है । वे चार युग (त्रेतायुग) त्रेता—द्वापर और चौथा कलियुग है—इस तरह से चार युग हैं । अब मैं उनका पूर्णतया ऊपर से ही निसर्ग बतलाऊँगा ।५७।

एतच्छ्रुत्वा तु ऋषय: उत्तरं पुनरेव ते ।
शुश्रूवस्तमूचुस्ते प्रकाम लौमहर्षणिम् ।५८
यच्च किम्पुरुषंवर्षं हरिवर्षं तथैव च ।
आचक्ष्व नो यथातत्वं कीर्तितं भारतं त्वया ।५९

जम्बूखण्डस्य विस्तारं तथान्येषांविदाम्वर ! ।
द्वीपानां वासिनांतेषांवृक्षाणां प्रब्रवीहि नः ।६०
पृष्टस्त्वेवं तदा विप्रैर्यथाप्रश्नं विशेषतः ।
उवाच ऋषिभि र्दृष्टं पुराणाभिमतं यथा ।६१
शुश्रूषवस्तु यद्विप्राः शुश्रूषध्वमतन्द्रिताः ।
जम्बू वर्षःकिंपुरुषः सुमहान्नन्ददोपमः ।६२
दशवर्षसहस्राणि स्थितिः किम्पुरुषे स्मृता ।
जायन्ते मानवास्तत्र सुतप्तकनकप्रभाः ।६३

मत्स्य भगवान् ने कहा—उन ऋषियों ने यह श्रवण करके पुनः उत्तर श्रवण करने की इच्छा वाले उन ऋषियों ने लोमहर्षि से अच्छी तरह से कहा ।५८। ऋषियों ने कहा-हे भगवन् ! आपने भारत का वर्णन तो कर दिया है । अब जो किम्पुरुष वर्ष तथा हरिवर्ष है उनका भी वर्णन यथातत्व करने की कृपा कीजिए ।५६। हे विदाम्बर ! जम्बू खण्ड का बिस्तार तथा अन्य द्वीपों का भी बिस्तार उनके वासियों के एवं वृक्षों के विषय में हमको बतलाइए ।५६-६०। उस समय में विप्रों के द्वारा इस प्रकार से पूछे गये महर्षि ने विशेष रूप से प्रश्नों के अनुसार ही जैसा कि ऋषियों ने देखा था और जो पुराणों से अभिमत था कहा था ।६१। महर्षि प्रवर श्री सूतजी ने कहा—हे विप्र प्रवरो ! आप लोग सब जो भी श्रवण करने की इच्छा वाले हो उसको अब अतन्द्रित होकर श्रवण कीजिये । जम्बू वर्ष और किम्पुरुष सुमहान् और नन्दन के समान हैं । दस सहस्र वर्ष तक किम्पुरुष में स्थित कही गई है । वहाँ पर भली भाँति तपाये हुए सुवर्ण की कान्तिके समान कान्ति वाले मानव उत्पन्न हुआ करते हैं ।६२-६३।

वर्षे किंपुरुषे पुण्य प्लक्षो मधुवहः स्मृतः ।
तस्य किंपुरुषाः सर्वे पिबन्तो रसमुत्तमम् ।६४

अनामया ह्यशोकाश्च नित्यं मुदितमानसाः ।
सुवर्णवर्णाश्चनराः स्त्रिश्चाप्सरसःस्मृताः ।६५
ततः परं किम्पुरुषात् हरिवर्षं प्रचक्षते ।
महारजतसङ्काशा जायन्ते यत्र मानवाः ।६६
देवलोकच्युताः सर्वे बहुरूपाश्च सर्वशः ।
हरिवर्षे नराः सर्वे पिवन्तीक्षुरसं शुभम् ।६७
न जरा बाधते तत्र तेन जीवन्ति ते चिरम् ।
एकादशसहस्राणि तेषामायुः प्रकीर्तितम् ।६८
मध्यमं तन्मया प्रोक्तं नाम्ना वर्षमिलावृतम् ।
न तत्र सूर्यस्तपति न च जीवन्ति मानवाः ।६९
चन्द्रसूर्य्यौ सनक्षत्रावप्रकाशाविलावृत ।
पद्मप्रभाः पद्मवर्णाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः ।७०

परम पुण्यमय किम्पुरुष वर्ष में एक मधु के वहन करने वाला प्लक्ष को बतलाया गया है । उस प्लक्ष के अत्युत्तम रस को सभी किम्पुरुष पान करने वाले हैं ।६४। वे सभी आमय (रोग से रहित-शोक से वर्जित और नित्य ही परम मुदित मन वाले हैं । वहाँ से नर सुवर्ण के तुल्य वर्ण वाले हैं और स्त्रियाँ भी इतनी अधिक सुन्दरी हैं कि वे सब अप्सरायें ही कही गयी हैं ।६५। उससे आगे अर्थात् किम्पुरुष के पीछे हरि वर्ष कहा जाता है जहाँ पर महान् रजत के तुल्य मानव समुत्पन्न हुआ करते हैं ।६६। सभी वहाँ के मनुष्य देव लोक च्युत हुए हैं और सब सभी ओर बहुत रूप वाले हैं। उस हरि वर्षमें सब मनुष्य परमशुभ इक्षु का रस पीया करते हैं।६७। उन मनुष्यों को वृद्धता कुछ भी बाधा नहीं दिया करती है इसीलिए वे लोग चिरकाल तक जीवित रहा करते हैं उन पुरुषों की आयु ग्यारह सहस्र वर्ष की बतलायी गयी है ।६८। मध्यम जो हमने बतलाया है वह इलावृत वर्ष नाम वाला है । वहाँपर कभी भी सूर्य का ताप नहीं रहता है और वहाँ मानव भी जीवित नहीं रहा करते हैं ।६९। इलावृत वर्ष में नक्षत्रों के सहित सूर्य और चन्द्र

दोनों ही प्रकाश रहित रहते हैं और वहाँ के रहने तथा उत्पन्न होने वाले मानवों की पद्म के सदृश प्रभा होती है—पद्म के तुल्य ही उनका वर्ण होता है और पद्म पत्र के समान ही उनके नेत्र हुआ करते हैं। ।७०।

पद्मगन्धाश्च जायन्ते तत्र सर्वे च मानवाः ।
जम्बूफलरसाहाराःअनिष्पन्दाः सुगन्धिनः ।७१
देवलोकच्युताः जायन्ते तत्र सर्वे च मानवाः ।
त्रयोदशसहस्राणि वर्षाणान्ते नरोत्तमाः ।७२
आयुःप्रमाणं जीवन्ति ये तु वर्षं इलावृते ।
मेरोस्तु दक्षिणे पार्श्वे निषधस्योत्तरेण वा ।७३
सुदर्शनो नाम महान् जम्बू वृक्षः सनातनः ।
नित्यपुष्पफलोपेतः सिद्धचारणसेवितः ।७४
तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपो वनस्पतेः ।
योजनानांसहस्रञ्च शतधाचमहान्पुनः ।७५
उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवमावृत्य तिष्ठति ।
तस्य जम्बूफलरसो नदी भूत्वा प्रसर्पति ।७६
मेरुं प्रदक्षिणं कृत्वा जम्बूमूलगता पुनः ।
तं पिबन्ति सदा हृष्टा जम्बूरसमिलावृते ।७७
जम्बूफलरसं पीत्वा न जरा बाधतेऽपि तान् ।
न क्षुधा न क्लमो वापि न दुःखञ्ज तथाविधम् ।७८

इलावृत में जो भी उत्पन्न हुआ करते हैं उन सभी मनुष्यों में पद्म के समान गन्ध हुआ करती है। वे सब जम्बू फलों के रस का आहार करने वाले निष्पन्दन से रहित और सुगन्ध वाले होते हैं ।७१। वे सब देवलोक से ही च्युत होने वालेहैं और महान रजत के वस्त्रधारी हैं। उन नरोत्तम की आयु तेरह सहस्र वर्षों की हुआ करती है ।७२। जो इलावृत में रहते हैं वे सब अपनी पूर्ण आयु तक जीवित रहा करते

हैं अर्थात् मध्य में किसी की भी मृत्यु का अवसर वहाँ पर आता ही नहीं है। मेरु पर्वत के दक्षिण पार्श्व में और निषध के उत्तर की ओर एक महान् सुदर्शन नाम वाला जामुन का वृक्ष है जो हमेशा से चले आने वाला सनातन है। उग वृक्ष पर नित्य ही पुष्प और फल रहा करते हैं।७३-७४। उसी वनस्पति के नाम से जम्बूद्वीप समाख्यात हो गया है। उस वृक्ष का महान उत्सेध (ऊँचाई) है जो एक सहस्र एक सौ योजन है। यह वृक्षराज दिव लोक को समावृत करके ही वहाँ पर स्थित रहता है। उसके जम्बूफल भी बड़े ही विशाल होते हैं जो कि उनके रस से एक सरिता की रचना होकर वह प्रसर्पण किया करती हैं वही नदी मेरु की प्रदक्षिणा करके उस जम्बू के मूल में पुनः गयी थी। इलावृत में वहाँ के प्राणी सर्वदा प्रसन्न होते हुए उस जम्बू रस का पान किया करते हैं।७५-७७। उस जम्बू वृक्ष के रस को पीकर उन्हें फिर वृद्धता कभी बाधा नहीं किया करती हैं। उन्हें न तो कभी क्षुधा ही सताती हैं और न कोई क्लेश ही हुआ करता है तथा उस प्रकार का कोई दुःख ही हुआ करता है।७८।

तत्र जाम्बूनदं नाम कनकं देवभूषणम्।
इन्द्रगोपकसंङ्काशं जायते भासुरञ्च यत्।७९
सर्वेषां वर्ष वृक्षाणां शुभः फलरसस्तु सः।
स्कन्नन्तु काञ्चनं शुभ्रं जायते देवभूषणम्।८०
तेषां मूत्रं पुरीषं वा दिक्ष्वष्टासु च सर्वशः।
ईश्वरानुग्रहाद्भूमिर्मृतांश्च ग्रसतेतु तान्।८१
रक्षः पिशाचा यक्षाश्च सर्वे हैमवतास्तु ते।
हेमकूटेतु विज्ञेया गन्धर्वाःसाप्सरोगणाः।८२
सर्वेनागा निषेवन्ते शेषवासुकितक्षकाः।
महामेरौ त्रयस्त्रिंशत् क्रीडन्ते यज्ञियाः शुभाः।८३
नीलवैदूर्ययुक्तेऽस्मिन् सिद्धाब्रह्मर्षयोऽवसन्।
दैत्यानां दानवानाञ्च श्वेतः पर्वत उच्यते।८४

श्रृङ्गवान् पर्वतश्रेष्ठः पितॄणां प्रतिसञ्चरः ।
इत्येतानि मयोक्तानि नव वर्षाणि भारते ।८५
भूतैरपि निविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ।
तेषां बुद्धिर्बहुविधा दृश्यते देवमानुषैः ।
अशक्या परिसंयातुं श्रद्धेया च विभूषिता ।८६

वहाँ पर जाम्बूनद नाम वाला सुवर्ण देवों का भूषण होता है जो इन्द्रगोप के सदृश और भासुर हुआ करता है ।७६। वह फलों का रस सब वर्ष के वृक्षों का परम शुभ होता है । जब स्कन्द होता है तो वह शुभ्र देव कांचन हो जाता है ।८०। उनका मूत्र और पुरीष आठों दिशाओं में सब ओर जाता है । ईश्वर के अनुग्रह से भूमि मृत उनको ग्रसा करती हैं ।८१। राक्षस-पिशाच-यक्ष सब वे हेमवत हैं । हेम कूट में गन्धर्व और अप्सरा गण जानने चाहिए अर्थात् गन्धर्व और अप्स-रायें रहा करते हैं । शेष-वासुकि और तक्षक आदि सब नाग उसका सेवन किया करते हैं । महा मेरु में तेतीस याज्ञिय क्रीड़ा किया करते हैं ।८२-८३। नीलमणि और वैदूर्यमणि से युक्त इससे सिद्ध और ब्रह्मर्षि गण निवास किया करते थे । दैत्योंका और दानवों का पर्वत श्वेतकहा जाता है ।८४। श्रृङ्गवान् श्रेष्ठवान् श्रेष्ठ पर्वत पितृगण का सञ्चर स्थल है । ये मैं नौ वर्ष बतला दिए हैं ।८५। ये भूतों के द्वारा भी निर्दिष्ट हैं—गतिमान् हैं । उनकी बुद्धि देव मानुषों के द्वारा बहुत प्रकार की दिखलाई दिया करती है । वह परिसंख्या करने में अशक्त है—श्रद्धा करने के योग्य है और विभूषित है ।८६।

५१—हिमवद् वर्णनम्

आलोकयन्नदीं पुण्यान्तत्समीपहृतश्रमः ।
स गच्छन्नेव ददृशे हिमवन्तं महागिरिम् ।१
खमुल्लिखद्भिर्बहुभिर्वृतं शृङ्गैस्तु पाण्डुरैः ।
पक्षिणामपि सञ्चारैर्विना सिद्धगतिं शुभम् ।२
नदीप्रवाहसञ्जातमहाशब्दैः समन्ततः ।
असंश्रुतान्यशब्दन्तं शीततोयं मनोरमम् ।३
देवदारुवनैर्नीलैः कृताधोवसनं शुभम् ।
मेघोत्तरीयकं शैलं ददृशे स नराधिपः ।४
श्वेतमेघकृतोष्णीष चन्द्रार्कमुकुटं क्वचित् ।
हिमानुलिप्तसर्वाङ्गं क्वचिद्धातुविमिश्रितम् ।५
चन्दनेनानुलिप्ताङ्गं दत्तपञ्चाङ्गुलं यथा ।
शीतप्रदं निदाघेऽपि शिलाविकटसङ्कटम् ।
मालक्तकैरप्सरसां मुद्रितं चरणैः क्वचित् ।६
क्वचित्संपृष्टसूर्य्यांशुं क्वचिच्च तमसावृतम् ।
दरीमुखैः क्वचिद्भीमैः पिबन्तं सलिलं महत् ।७

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—परम पुण्यमयी नदी का अवलोकन करता हुआ उसके समीप में हृतश्रम वाला होकर वह जाताहुआ ही महान् गिरि हिमवान् को देखता था ।१। यह हिमवान् पाण्डुर वर्ण वाले—आकाश को छूने वाले बहुत से शिखरों से वृत है और पक्षियोंके संचारों के बिना परम शुभ और सिद्धगति वाला है ।२। नदियों के प्रवाह के कारण समुत्पन्न महान् घोर शब्दों से सभी ओर अन्य कोई भी शब्द सुनाई नहीं देता है और वह परम मनोरथ तथा शीतल जल वाला है ।३। देवगुरु के नील वर्ण वाले वन जो उसके नीचे वाले भाग में हैं वे हो मानों उसका अतीव शुभ अधोवसन है और जो उसके ऊपर

मेघों का घिराव रहता है वही उसका उत्तरीय वस्त्र है ऐसा वह शैल एक राजा ही की भाँति दिखलाई देता था ।४। श्वेत वर्ण का जो मेघ है वही मानों उसके मस्तक की पगड़ी है । कहीं पर चन्द्रमा और सूर्य ही उसके मुकुट की शोभा दिया करते हैं । हिमालय सर्वदा हिम से अनुलिप्त समस्त अङ्गों वाला है और कहीं पर धातु से भी विमिश्रत है । अर्थात् हिमालय में जहाँ-तहाँ धातुयें भी दिखलाई दिया करती है ।५। दत्त पञ्चांगुल की भाँति चन्दन से अनुलिप्त अङ्गों वाला है और ग्रीष्म ऋतु मे भी शीत प्रदान करने वाला है तथा विकर विशाल शिलाओं से संकीर्ण है । कहीं पर अलक्त जिनमें लगा हुआ है ऐसे अप्स राओं के चरणों से भी विह्नित है।६। हिमालय ऐसा एक परम विशाल पर्वत है कि कहीं पर तो उसमें सूर्य की किरणों का संस्पर्श किसी स्थल पर ऐसी विलाल गुफायें है जो महान् भीषण दिखलाई दिया करती हैं और उनके द्वारा सलिल का पान अत्यधिकता के साथ किया करता है ।७।

क्वचिद्विद्याधरगणैः क्रीड़द्भिरुपशोभितम् ।
उपगीत तथा मुख्यैः किन्नराणाङ्गणैः क्वचित् ।८
आपानभूमौ गलितैर्गन्धर्वाप्सिरसां क्वचित् ।
पुष्पैः सन्तानकादीनां दिव्यैस्तमुपशोभितम् ।९
सुप्तोत्थिताभिः शय्याभिः कुसुमानां सथा क्वचित् ।
मृदिताभिः समाकीर्णं गन्धर्वाणां मनोरमम् ।१०
निरुद्धपवनैर्दशैर्नीलशाद्वलमण्डितैः ।
क्वचिच्च कुसुमैर्युक्तमत्यन्तरुचिरं शुभम् ।११
तपस्विशरणं शैलं कामिनामतिदुर्लभम् ।
मृगैर्यथानुचरितन्दन्तिभिन्नमहाद्रुमम् ।१२
यत्र सिंहनिनादेन त्रस्तानां भैरवम् ।

दृश्यते न च संभ्रान्त गजानामाकुलं कुलम् ।१३
तटाश्च तापसैर्यत्र कुब्जदेशैरलङ्कृताः ।
रत्नैर्यस्यसमुत्पन्नैस्त्रैलोक्यंसमलङ्कृतम् ।१४

इस हिमालय पर्वत राज पर कहीं पर कुछ ऐसे भी स्थल विद्यमान है जो क्रीड़ा करने वाले विद्याधर गणों के द्वारा उपशोभित रहा करते हैं और किसी स्थान पर मुख्य किन्नरों के गण गीतों का गायन किया करते हैं।८। कहीं पर आपान भूमि में गन्धर्वो और अप्सराओं के गलित (गिरे हुए) सन्तानक आदिदेव वृक्षों के पुष्पोंसे वह उपशोभित रहता है।९। कुछ स्थल ऐसे भी इस हिमालय में है जो गन्धर्वों की सोकर उठाई हुई पुष्पों की मृदित शय्याओं से समाकीर्ण और मनोरम है।१०। कहीं पर ऐसे भी स्थल हैं जो नील वर्ण की शाद्वल घास से विभूषित और जिनमें पर्वत का एकदम निरोध रहता हो ऐसे देशों से तथा कुसुमों से युक्त और अत्यन्त ही रुचिर एवं शुभ है।११। यह पर्वत हिमवान् तपस्वियों की पूर्णतया रक्षा करने वाला है और जो काम वासना वाले लोगहैं उनको तो अत्यन्त ही दुर्लभहै। यह हाथियों के द्वारा भिन्न महा द्रुमों वाला है तथा मृगों की भाँति अनुचरित है।१२। यह हिमवान् ऐसा गिरि है जिससे सिंहों की गर्जना की भैख (भयावह) ध्वनि नहीं होती है जिससे कि भयभीत अन्य जन्तु कोई भीति सूचक शब्द किया करें। वहाँ पर हाथियों का समुदाय संभ्रान्त और समाकुल नहीं दिखलाई दिया करता है।१३। जिसमें कुंजदेश तापसों से तट मयलंकृत रहा करते हैं। हिमालयमें अनेक अद्भुत महामूल्यवान् रत्न समुत्पन्न हुआ करते हैं जिनसे यह सम्पूर्ण त्रैलोक्य विभूषित होता है।१४।

अहीनशरणं नित्यमहीनजनसेवितम् ।
अहीनः पश्यति गिरि महीनं रत्नसम्पदा ।१५
अल्पेन तपसा यत्र सिद्धिं प्राप्स्यन्ति तापसाः ।
यस्य दर्शनमात्रेण सर्वकल्मषनाशनम् ।१६

महाप्रपातसम्पातप्रपातादिगताम्बुभि ।
वायुनीतैः सदा तृप्तिकृतदेशं क्वचित् क्वचित् ।१७
समालब्धजलैः शृङ्गैः क्वचिच्चापि समुच्छ्रितैः ।
नित्यर्कतापविषमैरगम्यैर्मनसा युतम् ।१८
देवदारुमहावृक्षव्रजशाखानिरन्तरैः ।
वंशस्तम्बवनाकारैः प्रदेशैरुपशोभितम् ।१९
हिमच्छत्रमहाशृङ्गं प्रपातशतनिर्भरम् ।
शब्दलभ्याम्बुविषमं हिमसंरुद्धकन्दरम् ।२०
दृष्टैव तं चारुनितम्बभूमिं महानुभावः स तु भद्रनाथः ।
बभ्राम यत्रैव मुदा समेतस्थानं तदा किञ्चिदथाससाद ।२१

यह हिमवान् नित्य ही महीनों का शरण अर्थात् आश्रम तथा रक्षक होता है और महीनों के द्वारा ही भली भाँति सेवित रहा करता है। जो अहीन होता है वही इस गिरि को देखता है तथा यह सर्वदा रत्नों की सम्पत्ति से अहीन ही रहता है।१५। इसमें बहुत ही स्वल्प तपश्चर्या से तापस लोग सिद्धि की प्राप्ति कर लिया करते हैं जिसकी केवल दर्शनसे ही सब प्रकार के कल्मषोंका तुरन्त ही विनाश हो जाया करता है।१६। महान् प्रपातों (झरनों) के सम्पात से अन्य प्रपात आदि में गत जलों के द्वारा जो कि वायु के द्वारा इधर-उधर किए जाते हैं यह कहीं-कहीं पर पूर्णतया तृप्ति युक्त प्रदेश वाला रहता है। कहीं पर तो इसकी चोटियाँ ऐसीहैं जहाँ जल समालब्ध रहा करता है और कहीं पर ये ही शिखरें अत्यन्त ऊँची हैं जो नित्य ही सूर्य के ताप से विषमता युक्त हैं एवं अगम्य है। इसी प्रकार से यह मनसे युक्त है।१७-१८ इस गिरिराज में ऐसे प्रदेश हैं जहाँ पर देवदारु के महान् विशाल वृक्षों का समुदाय रहता है और उनकी शाखायें ऐसी फैली रहा करती है कि कुछ भी अवकाश नहीं रहता है अर्थात् एक दूसरे वृक्ष से धमाधस है। बाँसों के बड़े बड़े स्तम्बों से विषम वनों वाले प्रदेश से यह शोभा

युक्त है ।१६। बर्फ के ही छत्र से युक्त इसकी महान शिखरें विराजमान रहा करती है और सैकड़ों ही प्रपातों का निर्झरण इसमें होता रहता है । शब्द के द्वारा ही प्राप्त करने के योग्य जल से यह अत्यन्त विषम है और इसकी जो कन्दरायें हैं ये भी सर्वदा हिम (बर्फ) से संरुद्ध रहा करती हैं ।२०। अत्यन्त सुन्दर नितम्बों की भूमि वाले उस गिरिराज को देखकर ही वह महानुभाव भद्रनाथ वहीं पर बहुत ही आनन्द के साथ भ्रमण किया करते थे और उस समयमें कोई समेत स्थान उन्होंने प्राप्त कर लिया था ।२१।

५२–कैलास वर्णन

तस्याश्रमस्योत्तरस्त्रिपुरारिनिषेवितः ।
नानारत्नमयैः शृङ्गैः कल्पद्रुमसमन्वितैः ।१
मध्ये हिमवतः पृष्ठे कैलासो नाम पर्वतः ।
तस्मिन्निवसति श्रीमान् कुवेरः सह गुह्यकैः ।२
अप्सरोऽनुगतो राजा मोदते ह्यलकाधिपः ।
कैलासपादसम्भूतं रम्यं शीतजलं शुभम् ।३
मन्दारपुष्परजसा पूरितं देवसन्निभम् ।
तस्मात् प्रवहते दिव्या नदी मन्दाकिनी शुभा ।४
दिव्यञ्च नन्दनं तत्र तस्यास्तीरे महद्वनम् ।
प्रागुत्तरेण कैलासाद्दिव्यं सौगन्धिकंगिरिम् ।५
सर्वधातुमयं दिव्यं सुवेलं पर्वतं प्रति ।
चन्द्रप्रभो नाम गिरिः स शुभ्रो रत्नसन्निभः ।६
तत्समीपे सरो दिव्यमच्छोदं नाम विश्रुतम् ।
तस्मात् प्रभवते दिव्या नदी ह्यच्छोदिका शुभा ।७

सूतजी ने कहा—इनके आश्रम से उत्तर दिशा की ओर भगवान त्रिपुरारि शिव के द्वारा निषेवित तथा कल्पद्रुमों से संयुत एवं अनेक प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण शिखरोंसे समन्वित हिमवान् के मध्यमें पृष्ठ पर कैलास नाम वाला पर्वत है उसमें कुबेर अपने गुह्यकों को साथ में लेकर निवास किया करते हैं ।१-२। वहाँ पर अलकापुरी का स्वामी कुबेर राजा सर्वदा अप्सराओं से अनुगत होकर प्रसन्नता का अनुभव किया करते हैं । वहाँ कैलास के पाद से समुत्पन्न परमरम्य एवं शुभ शीतल जल है ।३। जो जल मन्दार नाम वाले देववृक्ष के रज पराग से पूरित रहा करता है और देव के ही सदृश है । उसी जल से एक मन्दाकिनी नाम वाली सरिता जो परम दिव्य है और अत्यन्त शुभ है बहन किया करती है ।४। उस नदी के तीर पर ही वहाँ पर अतीव दिव्य एव महान वन है जिसका शुभ नाम नन्दन है । कैलास गिरि से पूर्वोत्तर में एक अति दिव्य सौगन्धिक गिरि है ।५। यह समस्त धातुओं से परिपूर्ण दिव्य और पर्वत के प्रति सुन्दर वेल वाला है । एक चन्द्रप्रभ नाम वाला भी वहाँ पर पर्वत है जो परम शुभ्र और रत्न के तुल्य है ।६। उसके ही समीप में एक परम दिव्य अच्छोद नाम से प्रसिद्ध सरोवर है । उस तट से एक शुभ अच्छोदिका नाम वाली नदी उत्पन्न होती है ।७।

तस्यास्तीरे वनं दिव्यं महच्चैत्ररथं शुभम् ।
तस्मिन् गिरौ निवसति मणिभद्रः सहानुगः ।८
यक्षसेनापतिः क्रूरो गुह्यकैः परिवारितः ।
पुण्या मन्दाकिनी नाम नदी ह्यच्छोदका शुभा ।९
महीमण्डलमध्ये तु प्रविष्टे तु महोदधिम् ।
कैलासदक्षिणे प्राच्यां शिवं सर्वौषधिं गिरिम् ।१०
मनः शिलामयं दिव्यं सुवेलंपर्वतं प्रति ।
लोहितो हेमशृङ्गस्तु गिरिः सूर्यप्रभो महान् ।११

तस्यपादे महाद्दिव्यं लोहितं सुमहत्सरः ।
तस्मान् गिरौ निवसति यक्षोमणिधरोवशी ।१२
दिव्यारण्यं विशोकञ्चतस्य तीरे महद्वनम् ।
तस्मिन् गिरौ निवसति यक्षोमणिधरोवशी ।१३
सोम्यैः सुधार्मिकैश्चैव गुह्यकैः परिवारियः ।
कैलासात् पश्चिमोदीच्यां ककुद्मानौषधी गिरिः ।१४

उस अच्छोदिका सरिता के तट पर एक अत्यन्त शुभ-दिव्य और महान चैत्ररथ नाम वाला वन है । उसमें गिरि पर अपने अनुचरों के साथ मणिभद्र निवास किया करते हैं ।८। यह यक्षों का अत्यन्त क्रूर सेनापति है जो सर्वदा गुह्यकों से परिवारित रहा करता है और वहाँ पर परम पुण्यमयी मन्दाकिनी नाम वाली अच्छोदिका शुभ नदी बहा करती है ।९। मही मण्डल के मध्य में ,महोदधि में प्रविष्ट होने पर कैलास के दक्षिण पूर्व में शिव सर्वौषधि गिरि है ।१०। मैनसिल से परिपूर्ण पर्वत के प्रति सुवेल और दिव्य-हेम की शिखर वाला—लोहित नाम वाला एक महान सूर्य प्रभ गिरि है जिसकी प्रभा सूर्य के समान है । उस पर्वत के निचले भाग में महान् दिव्य लोहित नाम वाला ही एक सर है । उसी सर से लौहित्य नाम वाला एक विशाल नद बहन किया करता है ।११-१२। उस नद के तीर एक अति महान्-दिव्य विशोका रूप है । उसमें पर्वत पर वशी यक्ष मणिधर निवास किया करता है । वह परम सौम्य और सुधार्मिक गुह्यकों से चारों ओर में घिरा हुआ रहा करता है । कैलास पर्वतसे पश्चिमोत्तर दिशा में ककुद्मान् नाम वाला औषधियों का गिरि है ।१३-१४।

ककुद्मति च रुद्रस्य उत्पत्तिश्च ककुद्मिनः ।
तदजनन्त्रैः ककुदं शैलन्त्रिककुदं प्रति ।१५
सर्वधातुमयस्तत्रसुमहान् वैद्युतो गिरिः ।
तस्य पादे महद्दिव्यं मानसं सिद्धसेवितम् ।१६

तस्मात् प्रभवते पुण्या सरयूर्लोकपावनी ।
तस्यास्तीरे वनं दिव्यं वैभ्राजं नामविश्रुत ।१७
कुबेरानुचरस्तस्मिन् प्रहेतितनयो वशी ।
ब्रह्मधाता निवसति राक्षसोऽनन्तविक्रमः ।१८
कैलासात् पश्चिमामाशां दिव्यः सर्वौषधिगिरिः ।
अरुणः पर्वतश्रेष्ठो रुक्मधातुविभूषितः ।१९
भवस्य दयितः श्रीमान्पार्वतोहेमसन्निभः ।
शांतकौम्भमयैर्दिव्यैः शिलाजालैः समाचितः ।२०
शतसंख्यैस्तापनीयैः श्रृङ्गैर्दिवमिवोल्लिखन् ।
शृंगवान् सुमहाद्दिव्यो दुर्गः शैलोमहाचितः ।२१
तस्मिन् गिरौ निवसति गिरिशो धूम्रलोचनः ।
तस्य पादात् प्रभवति शैलोदं नाम तत्सरः ।२२

उस ककुद्मान् में ककुद्मी रुद्र की उत्पत्ति होती है । वह बिना जन वाला त्रिककुद के प्रति वैककुर शैल है ।१५। वहीं पर सम्पूर्ण धातुओं से परिपूर्ण एक अत्यन्त महान् वैद्युत नाम वाला गिरि है । उस पर्वत के पाद में एक अत्यन्त दिव्य मानस नाम वाला सरोवर है जो सदा सिद्धों के द्वारा सेवित रहा करता है ।१६। उस सरोवर से परम पुण्यमयी लोकों को पावन कर देने वाली सरयू नाम वाली नदी समुत्पन्न हुआ करती है । उसके तट पर एक अत्यन्त विशाल वैभ्राज्य नाम से प्रसिद्ध दिव्य वन है ।१७। वहीं पर कुबेर का अनुचर वशी प्रहेति का पुत्र ब्रह्मधाता निवास किया करता है वह राक्षस अनन्त विक्रम वाला था ।१८। कैलास पर्वत से पश्चिम दिशा में एक अति-दिव्य सर्वौषधि गिरि यह पर्वत सम्पूर्ण पर्वतोंमें श्रेष्ठ-अरुण वर्ण वाला और रुक्म (सुवर्ण) धातु से विभूषित होता है ।१९। यह शातकौम्भ सब दिव्य शिलाओं के जालों से चारों ओर समाचित है और हेम सदृश श्री सम्पन्न यह पर्वत भगवान् भव का अत्यन्त प्यारा है ।२०। सैकड़ों

की संख्या वाले तापनीय शिखरों से दिवलोक का मन में उल्लेख न करता हुआ—महान दिव्य शृङ्गवान महाचित शैल दुर्ग के समान है। ।२१। उस शृङ्ग पर धूम्रलोचन गिरिश निवास करते हैं। उस पर्वत पाद भाग से शैलोद नाम वाला एक सरोवर का प्रभव (उत्पत्ति) होता है ।२२।

तस्मात् प्रभवतेपुण्या नदीशैलोदकाशुभा ।
सा चक्षुषी तयोर्मध्ये प्रविष्टापश्चिमोदधिम् ।२३
अस्त्युत्तरेण कैलासाच्छिव: सर्वौषधोगिरि: ।
गौरन्तु पर्वतश्रेष्ठं हरितालमयं प्रति ।२४
हिरण्यशृङ्ग: सुमहान् दिव्योषधिमयो गिरि: ।
तस्यपादे महद्दिव्यं सर: काञ्चनबालुकम् ।२५
रम्यं बिन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथ: ।
गङ्गार्थे स तु राजर्षिरुवास बहुला: समा: ।२६
दिवं यास्यन्तु मे पूर्वे गंगातोयाप्लुतास्थिका: ।
तत्र त्रिपथगा देवी प्रथमं तु प्रतिष्ठिता ।२७
सोमपादात् प्रसूता सा सप्तधा प्रविभज्यते ।
यूपामणिमयास्तत्र विमानाश्च हिरण्मया: ।२८
तत्रेष्ट्वा क्रतुभि: सिद्ध शक्र: सुरगणै: सह ।
दिव्यच्छायापथस्तत्रनक्षत्राणान्तुमण्डलम् ।२९

उस सर से परम पुण्यमयी और अत्यन्त शुभ शैलोदका नाम वाली नदी समुत्पन्न होकर बहती है। वह उन दोनों के मध्यमें चक्षुषी पश्चिम सागर में प्रविष्ट होती है ।२३। कैलास के उत्तर भाग में सर्वौषध शिव गिरि है। यह श्रेष्ठ पर्वत गौर हरिताल मय ही होता है। हिरण्य शृङ्ग बहुत ही महान् और दिव्योषधियों से परिपूर्ण गिरि है। उसके चरणों के भाग में एक महान् दिव्य सर है जिसकी बालुका काञ्चन-मयी है। वहाँ पर एक परम रम्य बिन्दुसर नाम वाला सरो-

वर है जहाँ पर गङ्गा के लाने के लिए तपश्चर्या करता हुआ राजर्षि राजा भगीरथ बहुत से वर्षों तक रहा था ।२४-२६। राजर्षि का कथन था कि पहिले गङ्गा के पवित्र जल में प्लुप्त मेरी अस्थियाँ दिवलोक को चली जावें । वहीं पर त्रिपथ गामिनी देवी सर्व प्रथम प्रतिष्ठित हुई थी ।२७। सोमपाद से समुत्पन्न हुई वह सात भागों में प्रविभक्त की जाती है । वहाँ पर मणियों परिपूर्ण भूप हैं और सुवर्ण से परिपूर्ण अर्थात् स्वर्ण निर्मित विमान हैं ।२८। वहीं पर सुरगणों के सहित इन्द्र-देव ऋतुओं के द्वारा यजन करके सिद्ध हुआ था अर्थात् सिद्धि प्राप्ति की थी । वहाँ पर नक्षत्रों का मण्डल दिवलोक का दिव्य छाया पथ है ।२९।

दृश्यते भासुरा रात्रौ देवी त्रिपथगा तु सा ।
अन्तरिक्षं दिवं चैव भावयित्वाभुवंगता ।३०
भवोत्तमांगे पतिता संरुद्धा योगमायया ।
तस्या ये बिन्दवः केचित्क्रुद्धायाः तिताभुवि ।३१
कृतन्तु तैर्बहुसरस्ततो बिन्दुसरः स्मृतम् ।
ततस्तस्या निरुद्धाया भवेन सहसा रुषा ।३२
ज्ञात्वा तस्या ह्यभिप्रायं क्रूरं देव्याश्चिकीर्षितम् ।
भित्वा विशामि पातालं श्रोतसा गृह्य शङ्करम् ।३३
अथावलेपतं ज्ञात्वा तस्याः क्रुद्धन्तु शंकरः ।
तिरोभावयितु बुद्धिरासीदंगेषुतां नदीम् ।३४
एतस्मिन्नेव काले तु दृष्ट्वा राजानमग्रतः ।
धमनीसन्ततंक्षीणं क्षुधाव्याकुलितेन्द्रियम् ।३५

रात्रि के समय में वह देवी त्रिपथगा भासुर दिखलाई दिया करती है । वह अन्तरिक्ष और दिवलोक को भावित करके पीछे भूलोकमें गई थी ।३०। आरम्भ में जब यह इस भूलोक में आई थी भगवान् शिव के मस्तक पर पतित हुई थी और वहीं पर योग माया के द्वारा यह संरुद्ध

हो गई थी। उस समय में संरोध होने के कारण इसको महान् क्रोध उत्पन्न हो गया था। इस क्रुद्धावस्था वाली उसकी जो कुछ बिन्दु इस भू मण्डल में पतित हुई थी। उनसे यहाँ पर बहुत से सरों की रचना हो गई थी। इसके पश्चात् यह बिन्दुसर कहा गया है। इसके अनन्तर श्रीभव ने निरुद्ध हुई उसका सहस्र क्रोध से युक्त देवी के क्रूर अभिप्राय समझ लिया था। उसका यही चिकीर्षित था कि शिव के मस्तक का भेद न करके अपने स्त्रोत्र के द्वारा शङ्कर का ग्रहण करके पाताल लोक में प्रवेश कर जाऊँगी।३१-३३। इसके उपरान्त भगवान् शङ्कर उसके क्रोध युक्त इस प्रकार के अवलेपन (नीच घमण्ड) को जानकर उनकी ऐसी बुद्धि हो गई थी कि उस नदी को अपने ही अङ्गों में तिरो-भूत कर लिया जावे।३४। इसी बीच में उस राजर्षि भगीरथ को भगवान् शिव ने अपने समक्ष ही में खड़ा हुआ देख लिया था जो धमनियों से सन्तत क्षीण वह था और क्षुधा ने व्याकुलित इन्द्रियों वाला हो रहा था।३५।

अनेन तोषितश्चाहं नद्यर्थे पूर्वमेव तु।
बुध्वास्य वरदानन्तु ततः कोपं न यच्छत।३६
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा यदुक्तं धारयन्नदीम्।
ततो विसर्जयामास संरुद्धा स्वेन तेजसा।३७
नदीं भगीरथस्यार्थे तपसोग्रेण तोषितः।
ततो विसर्जयामास सप्तस्रोतांसि गंगया।३८
त्रीणि प्राचीमभिमुखं प्रतीचीन्त्रीण्यथैव तु।
स्रोतांसि त्रिपथायास्तु प्रत्यपद्यन्तसप्तधा।३९
नलिनी ह्लादिनी चैव पावनी चैव प्राच्यगा।
सीता चक्षुश्च सिन्धुश्च तिस्रस्ता वै प्रतीच्यगाः।४०
सप्तमी त्वनुगा तासां दक्षिणेन भगीरथम्।
तस्मात् भागीरथी सा वै प्रविष्टा दक्षिणोदधिम्।४१

शिव ने जैसे ही उसको देखा उनको उसी समय ध्यान हो आया था कि इस राजर्षि ने तो अत्यधिक समय तक तपस्या करके इस नदीके यहाँ लाने के लिए ही मुझे पूर्णतया प्रसन्न एवं तुष्ट कर लिया था कि मैंने तब इसको वरदान भी दिया था—यह सब स्मरण पथ में लाकर फिर जो क्रोध उस समय में उन्हें आया था वह शान्त होगया था।३६ ब्रह्माजी का कथित वचन का श्रवण करके इस नदी को धारण कर रहे थे। इसके पश्चात् उस संरुद्ध हुई नदी को अपने ही तेज से विसर्जित कर दिया था।३७। राजा भागीरथ के लिए उसकी अत्युग्र तपस्या से नदी को छोड़ देने को भगवान् शिव तोषित हो गये थे और फिर गङ्गा के द्वारा सात स्रोतों का विसर्जन कर दिया गया था।३८। उनमें से तीन तो प्राची की ओर हुए थे और तीन पश्चिम दिशा की ओर चल दिये थे। इस तरह से इस त्रिपथगा गङ्गाके श्रोत सात भागों में उत्पन्न हो गये थे।३९। उन स्रोतों में नलिनी-ह्लादिनी-पावनी ये तो प्राच्यगा अर्थात् पूर्व की ओर गमन करने वाले थे। सीता-चक्षु और सिन्धु ये तीन उसके स्रोत पश्चिम की ओर गमन करने वाले थे।४०। इस प्रकार से ये छैं स्तोत्र तो उक्त दिशाओं में गमनशील हुए थे और उन सातोंमें जो सातवाँ स्रोत था वह दक्षिण की ओर राजा भगीरथ का अनुगमन करने वाला हुआ था। इसीलिए उसका नाम भगीरथी गंगा हुआ था और वह फिर दक्षिण सागर में प्रविष्ट हो गई थी।४१।

सप्त चेता: प्लावयन्ति वर्षन्तु हिमसाह्वयम्।
प्रसूता: सप्त नद्यस्तु शुभा बिन्दुसरोद्भवा:।४२
तान्देशान् प्लावयन्ति स्म म्लेच्छप्रायांश्च सर्वश:।
सशैलान् कुकुरान् रौध्रान् बर्बरान् यवनान् खसान्।४३
पुलिकांश्च कुलत्थांश्च अंगलोक्यान्वरांच यान्।
कृत्वा द्विधा हिमवन्तं प्रविष्टा दक्षिणोदधिम्।४४

अथ वीरभरूंश्चैव कालिकांश्चैवशूलिकान् ।
तुषारान् बर्बरानंगान्यगृह्णात्पारदान्शकान् ।४५
एतान् जनपदांश्चक्ष: प्लावयित्वोदधिगता ।
दरदोर्जगुण्डांश्चैव गान्धारानौरसान्कुहून् ।४६
शिवपौरानिन्द्रमरून् वसतीन् समतेजसम् ।
सैन्धवानुर्वसान् वर्वान् कुपथान् भीमरोमकान् ।४७
शुनामुखांश्चोर्दमरून् सिन्धुरेतान्निषेवते ।
गन्धर्वान् किन्नरान्यक्षान् रक्षोविद्याधरोरगान् ।४८
कलापग्रामकांश्चैव तथा किंपुरुषान्नरन् ।
किरातांश्च पुलिन्दांश्च कुरून् वै भारतीनपि ।४९
पाञ्चालान् कौशिकान् मत्स्यान् मागधाङ्गांस्तथैव च ।
ब्रह्मोत्तराश्च वङ्गांश्च ताम्रलिप्तास्तथैव च ।५०
एतान् जनपदानार्यान् गङ्गा भावयते शुभा ।
तत: प्रतिहता विन्ध्येप्रविष्टादक्षिणोदधिम् ।५१

ये सातों स्रोत हिम साह्वय वर्ष को प्लावित कर दिया करते हैं। फिर विन्दु सरोवरसे उद्भव प्राप्त करने वाली परमशुभ सात सरितायें समुत्पन्न हुई थीं ।४२। वे सब ओर से म्लेच्छप्राय उन देशों को प्लावित कर रही थीं । शैलों के सहित वे देश कुकुर-रौध्र-वर्बर-यवन-खस-पुलिक और कुलत्य थे तथा जो वर अङ्गलोक्य थे । उस सरिता ने हिमवान् दो भागों में करके फिर वह अन्त में दक्षिण सागर में प्रवेश कर गयी थी ।४३-४४। इसके उपरान्त वीर मरु-कालिका-शूलिक—तुषार-वर्बर-अनङ्ग-पारद और शकों को ग्रहण किया था । इन उक्त जनपदों की चक्षु ने प्लावित करके वह चक्षु भी उदधि में चली गयी थी । दरदोर्जगुण्ड-गान्धार-अनौरस-कुहू-शिव पौर-इन्द्र मरु-वसन्ती-सम तेजस-सैन्धव-उर्वस-वर्व-कुपथ-भीम-रोमक-शुनामुख और उर्द-मरु—इन दोनों का सिन्धु सेवन किया करता है । गन्धर्व-किन्नर-यक्ष-राक्षस-

विद्याधर-द्वारा कलाप ग्रामक-किम्पुरुष-नर-किरात-पुलिन्द-मत्स्य-कुरु-भारत-पाञ्चाल-कौशिक-मागध-ब्रह्मोत्तर-वङ्ग और ताम्रलिप्त—इन देशों को जो आर्य हैं उनको शुभा गङ्गा भावित किया करती है। फिर वह विन्ध्य में प्रतिहत होती है और अन्त में दक्षिण उदधि में प्रवेश कर गयी है।४५-५१।

ततस्तु ह्लादिनी पुण्या प्राचीनाभिमुखा ययौ।
प्लावयन्त्युपकांश्चैव निषादानापि सर्वशः।५२
धीवरानृषिकांश्चैव तथा नीलमुखानपि।
केकरानेयकर्णांश्च किरातानपि चैवहि।५३
कालिन्दगतिकांश्चैव कुशिकान्स्वर्गभौमकान्।
सामण्डले समुद्रस्यतीरेभूत्वातुसर्वशः।५४
ततस्तु नलिनीचापि प्राचीमेव दिशं ययौ।
कुपथान् प्लावयन्ती सा इन्द्रद्युम्नसरांस्यपि।५५
तथा खरपथान् देशान् वेत्रशंकुपथानपि।
मध्येनोज्जानकमरून् कुथप्रावरणान् ययौ।५६
इन्द्रद्वीपसमीपे तु प्रविष्टा लवणोदधिम।
ततस्तु पावनी प्रायात् प्राचीमाशाञ्जवेतु।५७

इसके पश्चात् परम पुण्यमयी ह्लादिनी नाम वाली सरिता जो सातों भागों में से एक थी वह प्राचीनाभिमुखी होकर चली गयी है। सब ओर उपक और निषादों का प्लावन करती हुई हो गयी है।५२। धीवर, ऋषिक, नील मुख, केकर, एक कर्ण, किरात, कालिन्द गतिक, कुशिक, स्वर्ग भौमक—इन जनपदों का भी प्लावम करती हुई वह मंडल में समुद्र के तीर पर सब ओर से होकर प्रवेश किया करती है।५३।।५४। इसके पश्चात् नलिनी नाम वाली भी पूर्वदिशा को हो गयी थी। वह कुपथों को और इन्द्रद्युम्न सरों को भी प्लावन करती हुई उसी

भाँति खरपथ देशों की—वेत्र शंकु पथों को-मध्य में नोज्जानक सरुओं को और कुथ प्रावरणों को चली गयी थी।५५-५६। फिर वह इन्द्रद्वीप के समीप में लवणोदधि में प्रवेश कर गयी थी। इसके उपरान्त यावनी नाम वाली बड़े वेग से पूर्व दिशा को चली गयी थी।५७।

तोमरान् प्लावयन्तीचहंसमार्गान् समूहकान्।
पूर्वान्देशांश्चसेवन्तीभित्वासाबहुधागिरिम्।
कर्णप्रावरणान् प्राप्य गता साश्वमुखानपि।५८
सिक्त्वा पर्वतमेरुं सा गत्वा विद्याधरानपि।
शैमिमण्डलकोष्ठन्तु सा प्रविष्टा महत्सरः।५९
तासां नद्युपनद्योऽन्याः शतशोऽथ सहस्रशः।
उपगच्छन्तिता नद्यो यतोवर्षति वासवः।६०
तीरे वंशौकसारायाः सुरभिर्नाम तद्वनम्।
हिरण्यश्रृङ्गो वसतिविद्वान् कौबरको वशी।६१
यज्ञादपेतः सुमहानमितौजाः सुविक्रमः।
तत्रागस्त्यैः परिवृता विद्वद्भिर्ब्रह्मराक्षसैः।६२
कुबेरानुचरा ह्येते चत्वारस्तत्समाश्रिताः।
एवमेव तु विज्ञेया सिद्धिः पर्वतवासिनाम्।६३

वह यावनी सरिता का स्रोत जो उन उपर्युक्त सात स्रोतों में से एक थी तोमर देशों का प्लावन करती हुई हंस मार्गों को—समूहकों को और पूर्व देशों का सेवन करती हुई वह प्रायः गिरिओं का भेदन करके कर्ण प्रावरणोंमें पहुँच कर वह अश्व मुखों को चली गयी थी।५८ वह मेरु पर्वत का सेचन करके फिर विद्याधरों में पहुँच कर अन्त में शैमि मंडल कोष्ठ महान् सर में प्रवेश कर गयी है। उन सातों नदियों में से अन्य सैकड़ों और सहस्रों ही नदियाँ तथा उप नदियाँ उप गमन किया करती हैं। वे ऐसी नदियाँ हैं जिनमें इन्द्र देव वर्षा किया करते हैं। वंशौक सारा के तट पर सुरभि नाम वाला एक विशाल वन है।

वहाँ हिरण्यश्रृंगवशी विद्वान् कौवरक निवास किया करता है। वह यज्ञ से अपत—सुमहान्—अपरिमित ओज वाला—सुन्दर बलविक्रम से सम्पन्न है। वहाँ पर अगस्त्यों के द्वारा परिवृत तथा विद्वान् ब्रह्म राक्षसों से परिवृत ये चार कुवेर के अनुचर हैं जो उसके समाश्रय में रहा करते इसी प्रकार से पर्वतों में निवास करने वालों की सिद्धि समझ लेना चाहिए ।५९-६२।

परस्परेण द्विगुणा धर्म्मतः कामतोऽर्थतः ।
हेमकूटस्य पृष्ठे तु सर्पाणां तत्सरः स्मृतम् ।६४
सरस्वती प्रभवति तस्माद् ज्योतिष्वती तु या ।
अवगाढ़े ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ।६५
सरो विष्णुपद नाम निषधे पर्वतोत्तमे ।
यस्मादग्रे प्रभवति गन्धर्वानुकुले च ते ।६६
मेरोः पार्श्वात् प्रभवति ह्रदश्चन्द्रप्रभो महान् ।
जम्बुश्चैव नदी पुण्या यस्यां जाम्बनदं स्मृतम् ।६७
पयोदस्तु ह्रदो नीलः स शुभः पुण्डरीकवान् ।
पुण्डरीकात् पयोदाच्च तस्माद् वै सम्प्रसूयताम् ।६८
सरसस्तुसरस्त्वेतत् स्मृतमुत्तरमानसम् ।
मृग्याच मृगकान्ताव तस्माद्द्वे सम्प्रसूयताम् ।६९
ह्रदाः कुरुषु विख्याताः पद्ममीनकुलाकुलाः ।
नाम्ना ते वैजयानाम द्वादशोदधिसन्निभाः ।७०

वह सिद्धि परस्पर में धर्म-अर्थ और काम से द्विगुण हुआ करती है। हेमकूट के पृष्ठ पर जो सर है वह सर्पो का बताया गया है। उस सर से सरस्वती की उत्पत्ति हुआ करतीहै जोकि ज्योतिष्मती हैअवगाढ़ में दोनों ओर पूर्व सागर ओर पश्चिम समुद्र हैं ।६४-६५। पर्वतों में अत्युत्तम गिरि निषिध में विष्णु पद नाम वाला सर है जिससे आगे वे गन्धर्वानुकूल प्रसूत होते हैं ।६६। मेरु गिरि के पार्श्व भाग से चन्द्रप्रभ

एक महान् ह्लद प्रभूत होता है और परम पुण्यशालिनी जम्बूनदी है जिसे जाम्बूनद कहा गया है।६७। पयोद नील ह्लद है और वह परम शुभ तथा पुण्डरीकवान् है। पुण्डरीक और पयोद से पैदा होता है।६८। सरस्त यह सरोवर है और इसको उत्तर मानस कहा गया है। उस सर से मृग्या और मृग कान्ता ये दो नदियाँ प्रसूत हुई हैं। पद्मों और मीनों से समाकीर्ण ह्लद कुरु देशों में विख्यात हैं। नाम से वे वैजय कहे जाते हैं और वे बारह हैं जो उदधि के तुल्य है।६९-७०।

तेभ्यः शान्तीच मध्वीच द्वे नद्यौ सम्प्रसूयताम् ।
किंपुरुषाद्यानि यान्यष्टौतेषुदेवोनवर्षति ।७१
उद्भिदान्युदकान्यत्र प्रवहन्ति सरिद्वराः ।
बलाहकश्च ऋषभो चक्रो मैनाक एव च ।७२
विनिविष्टाः प्रतिदिशं निमग्नालवणाम्बुधिम् ।
चन्द्रकान्तस्तथा द्रोणः सुमहांश्चशिलोच्चयः ।७३
उद्गायता उदीच्यान्तु अवगाढा महोदधिम् ।
चक्रो बधिरश्चैव तथा नारदपर्वतः ।७४
प्रतीचीमायतास्ते वै प्रतिष्ठास्ते महोदधिम् ।
जीमूतो द्रावणश्चैव मैनाकश्चन्द्रपर्वतः ।७५
आयतास्ते महाशैलाः समुद्रं दक्षिणम्प्रति ।
चक्रमैनाकयोर्मध्ये दिवि सद्दक्षिणापथे ।७६
तत्रसंवर्तको नामसोऽग्निः पिबति तज्जलम् ।
अग्निः समुद्रवास्तु औवोंऽसोवड़वामुखः ।७७

उन ह्लदों से शान्ति और मध्वी दो नदियाँ प्रसुत हुई हैं। उनमें किम्पुरुष आदि जो आठ है वे ही रहा करतेहैं और उनके देव वर्षानहीं करता है।७१। वे ऐसे ही स्थल है जहाँ पर उदय उद्भव ही होते हैं तथा श्रेष्ठ नदियाँ बहा करती है जिनके नाम बलाहक, ऋषभ, चक्र और मैनाक हैं। ये प्रत्येक दिशा में विशेष रूप निविष्ट हैं और अन्तमें

क्षार सागर में निमग्न हो जाते हैं। चन्द्र कान्त—द्रोण और सुमहान् शिलोच्चय उत्तर दिशा में उद्गान करने वाले हैं तथा महा सागर में अगागाढ़ होते हैं। चक्र—बधिरक और नारद पर्वत ये पूर्व दिशा में आयत हैं और वे महोदधि में प्रतिष्ठिम हैं। जीमूत-द्रावण मैनाक और चन्द्र पर्वत ये महान् विशाल शैल हैं जो अति विस्तुत हैं तथा दक्षिण समुद्र के प्रति रहते हैं और चक्र एवं मैनाक के मध्य में दिवलोक में दक्षिणापथ में हैं।७२-७६। वहाँ संवर्त्तक नाम वाला है और वह अग्नि उसके जल को पी जाया करता है। समुद्र में निवास करने वाला और्व होता है जो कि वड़वामुख नाम वाला है।७७।

इत्येते पर्वताविष्टाश्चत्वारो लवणोदधिम्।
छिद्यमानेषु पक्षेषु पुरा इन्द्रस्य वै भयात्।७८
तेषान्तु दृश्यते चन्द्रे शुक्ले कृष्णे समाप्लुतिः।
ते भारतस्य वर्षस्य भेदा ये न प्रकीर्त्तिताः।७९
इहोदितस्य दृश्यन्ते अन्ये त्वन्यत्र चोदिताः।
उत्तरोत्तरमेतेषां वर्षमुद्रिच्यते गुणैः।८०
आरोग्यायुः प्रमाणाभ्यां धर्म्मतः कामतोऽर्थकः।
समन्वितानि भूतानितेषु वर्षेषुभागशः।८१
वसन्ति नानाजातीनि तेषु सर्वेषु तानि वै।
इत्येतद्धारयद्विश्वं पृथ्वी जगदिदं स्थिता।८२

ये चारों पर्वत लवणोदधि को आविष्ट किए हुए हैं। प्राचीन समय में इन्द्रदेव के द्वारा पर्वतों के पक्षों का छेदन कर दिया गया था जिससे उड़कर स्वेच्छया न जा सकें तो पक्षों के छिद्यमान होने पर वे इन्द्र के भय के कारण ही समुद्र में समाविष्ट हो गये हैं।७८। उनके चन्द्र में शुक्ल में और कृष्ण पक्ष में समाप्लुति दिखलायी दिया करती है। वे भारतवर्ष के भेदा हैं अतएव प्रकीर्त्तित नहीं किए हैं।७९। यहाँ

पर उदित के दिखलाई दिया करते हैं और जो अन्य हैं वे अन्य स्थान में प्रेरित होते हैं। उत्तरोत्तर (आगे से आगे में) इनके वर्ष गुणों के द्वारा उद्रिक्त कहे जाते हैं। आरोग्य और आयु के प्रमाणों से धर्म काम और अर्थ से उन वर्षों में भागशः प्राणी समन्वित हुआ करते हैं। उन सब में अनेक प्रकार की जातियाँ निवास किया करती हैं। इन सबको विश्व धारण किया करता है और यह जगत् जो है वही पृथ्वी स्थित है।८०—८२।

५२—पृथिवी परिमाण वर्णन

अत उद्‌र्ध्वं प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम् ।
सूर्य्याचन्द्रमसावेतौ भ्राजन्तौयावदेवतु ।१
सप्तद्वीपसमुद्राणां द्वीपानां भाति विस्तरः ।
विस्तरार्द्धं पृथिव्यास्तु भवेदत्यत्र वाह्यतः ।२
पर्यासपरिमाणञ्च चन्द्रादित्यौ प्रकाशतः ।
पर्यासपारिमाण्यात्तु बुधैस्तुल्यं दिवः स्मृतम् ।३
त्रीन् लोकान् प्रतिसामान्यात् सूर्य्यो यात्यविलम्वतः ।
अचिरात्तु प्रकाशेन अवनात्तु रविः स्मृतः ।४
भूयो भूयः प्रवक्ष्यामि प्रमाणं चन्द्रसूर्य्ययोः ।
महितत्वान्महच्छब्दोह्यस्मिन्नर्थेनिगद्यते ।५
अस्य भारतवर्षस्य विष्कम्भात्तुल्यविस्तृतम् ।
मण्डलंभास्करस्याद्ययोजनैस्तन्निबोधत ।६
नवयोजनसाहस्रो विस्तारो मण्डलस्य तु ।
विस्तारत्रिगुणश्चापिपरिणाहोऽत्र मण्डले ।७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा—अब इससे आगे हम सूर्यदेव और चन्द्रमा की गतिका वर्णन करेंगे। ये दोनों सूर्य और चंद्रमा जितनीदूर

तक आजमन हुआ करते हैं। सातों द्वीपों के समुद्रों का तथा द्वीपों का महान् विस्तार शोभित एवं दीप्त होता है। इस विस्तार का आधा भाग पृथ्वी का अन्यत्र और बाह्य हुआ करता है।१-२। पर्यास के परिमाण तक चन्द्र और सूर्य प्रकाश दिया करते हैं। पर्यास के परिमाण्यसे बुधों के द्वारा दिवलोक के तुल्य कहा गया गया है।३। प्रति सामान्यसे बिना विलम्ब किये हुए सूर्य तीन लोकों को जाया करता है। शीघ्रही प्रकाश देने के कारण से तथा अवन करने से यह रवि कहा गया है।४। बारम्बार चन्द्र और सूर्य का प्रमाण कहूंगा। महितत्व होने से महत् यह शब्द इस अर्थ में निगदित किया जाता है।५। इस भारतवर्ष के विष्कम्भ से तुल्य विस्तृत भगवान् भुवन भास्कर मण्डल है। इसके अनन्तर अब योजनों के परिमाण में भी उसका ज्ञान प्राप्त करलो। नौ सहस्र योजन मंडल का बिस्तार है और बिस्तार से तिगुना परिणाह भी इस मंडल में होता है।६-७।

विष्कम्भान् मण्डलाच्चैव भास्कराद् द्विगुणः शशी।
अतः पृथिव्या वक्ष्यामि प्रमाणं योजनं पुनः।८
सप्तद्वीपसमुद्रायां बिस्तारो मण्डलस्य तु।
इत्येतदिह संख्यातं पुराणे परिमाणतः।६
तद्वक्ष्यामि प्रसंख्याय साम्प्रतञ्चाभिमानिभिः।
अभिमानिनो ह्यतीता ये तुल्यास्ते साम्प्रतैस्त्विह।१०
देयदेवैरतीतास्तु रूपैर्नामभिरेव च।
तस्माद्वै साम्प्रतैर्देवैर्वक्ष्यामि वसुधातलम्।११
दिव्यस्य सन्निवेशोवै साम्प्रतैरेवकृत्स्नशः।
शतार्द्धं कोटि विस्तारापृथिवीकृत्स्नशः स्मृता।१२
तस्याश्चार्द्धं प्रमाणञ्च मेरोश्चैवोत्तरम्।
मेरोर्मध्ये प्रतिदिशं कोटिरेकातु सा स्मृताः।१३
तथा शतसहस्राणामेकोननवति पुनः।
पञ्चाशच्च सहस्राणि पृथिव्यर्द्धस्य विस्तरः।१४

विष्कम्भ और मण्डल से भास्कर से दुगुना शशि है। इससे पुनः योजनों के द्वारा पृथिवी के प्रमाण को बतलाऊँगा।८। सात द्वीप और सात समुद्रों वालीके मंडल का विस्तार यहाँ पर यह इतना ही संख्यात पुराण में परिमाण से किया गया है।६। उसको प्रशंख्यात बतलाऊँगा। जो इस समय से अभिमानियों के द्वारा किया गया है। जो अभिमानी गण व्यतीत हो गये हैं वे यहाँ पर इस समय में होने वालों के ही तुल्य हैं।१०। देवदेव रूप और नामों से अतीत हो चुके हैं। इसी कारण से इस समय में होने वाले देवों से वसुधा तल को बतलाता हूँ।११। साम्प्रतों के द्वारा दिव्य का सन्निवेश कृत्स्न नहीं है। पूर्ण रूप से यह पृथ्वी शत के अर्ध कोटि विस्तार वाली पूर्णतया बतलाई गयी है।१२। उस पृथिवी का अर्ध प्रमाण उत्तरोत्तर मेरु का ही है। मेरु के मध्य में प्रत्येक दिशा में एक करोड़ वह कही गई है। इस प्रकार से सौ सहस्र नवासी और फिर पचास सहस्र पृथिवी के अर्ध भाग का विस्तार हैं।१३-१४।

पृथिव्या विस्तरं कृत्स्नं योजनैस्तन्निबोधत।
तिस्रः कोटयस्तु विस्तारात् संख्यातास्तु चतुर्दिशम्।१५

तथा शतसहस्राणामेकोनाशातिरुच्यते।
सप्तद्वीपसमुद्रायाः पृथिव्याः स तु विस्तरः।१६

विस्तारंत्रिगुणञ्चैवपृथिव्यन्तरमण्डलम्।
गणितंयोजनानान्तुकोटयस्त्वेकादशस्मृताः।१७

तथा शतसहस्राणां सप्तत्रिंशाधिकास्तु ताः।
इत्येतद्वै प्रसंख्यातं पृथिव्यन्तरमण्डलम्।
तारकासन्निवेशस्य दिवि यावत्तु मण्डलम्।
पर्याप्तसन्निवेशस्य भूमेस्तावत्तु मण्डलम्।१८

पर्यासपरिमाणञ्च भूमेस्तुल्यं दिवः स्मृतम्।

मेरोः प्राच्यांदिशायान्तुमानसोत्तरमूर्द्धानि ।१९
वस्त्वेकसारामाहेन्द्री पुण्या हेमपरिष्कृता ।
दक्षिणेन पुनर्मेरोर्मानसस्य तु पृष्ठतः ।२०
वैवस्वतो निवसति यमः संयमने पुरे ।
प्रतीच्यान्तु पुनर्मेरोर्मानसस्य तु मूर्द्धनि ।२१

अब पृथिवी का पूर्ण विस्तार योजनों के द्वारा समझ लो । चारों दिशाओं में विस्तार से तीन करोड़ संख्यात है ।१५। इस भाँति से सातद्वीप समुद्रों वाली पृथिवी का वह विस्तार गौ सहस्र उन्यासी कहा जाता है ।१६। पृथिवी का अन्तर मण्डल का विस्तार त्रिगुण है। योजनों का गणित किया गयाहै जो एकादश करोड़ कहा गया है । इस रीतिसे सौ सहस्र और सैंतीस अधिक वे हैं—इतना ही यह पृथिवी का अन्तर मंडल होता है ।१७। दिन में तारकाओं के सन्निवेश का जितना मंडल है उतना ही पर्याप्त सन्निवेश वाली भूमिका मंडल है ।१८। दिव का पर्याप्त परिमाण भूमि के ही तुल्य कहा गया है । मेरु से पूर्वदिशा में मानसोतर मूर्द्धा में वस्त्वेक सार वाली पुण्य महेन्द्री हेम से परिष्कृत है । पुनः मेरु के दक्षिण में और मानव के पृष्ठ भाग में संयमन में वैवस्वत यम निवास किया करता है । पुनः मेरु के पश्चिम में और मानस के मूर्धा में वरुण देव की पुरी है ।१९-२१।

सुषा नाम पुरी रम्या वरुणस्यापि धीमतः ।
दिश्युत्तरायां मेरोस्तु मानसस्यैव मूर्द्धनि ।२२
तुल्या महेन्द्रपर्यापि सोमस्यापि विभावरी ।
मानसोत्तरपृष्ठे तु लोकपालश्चतुर्दिशम् ।२३
स्थिता धर्मं व्यवस्थार्थं लोकसंरक्षणाय च ।
लोकपालोपरिष्टात्तु सर्वतोदक्षिणायने ।२४
काष्ठागतस्य सूर्य्यस्य गतिस्तत्र निबोधत ।
दक्षिणोपक्रमे सूर्य्यः क्षिप्तेषुरिव सर्पति ।२५

ज्योतिषाञ्चक्रमादाय सततं परिगच्छति ।
मध्यगश्चामरावत्यां यदा भवति भास्कर: ।२६
वैवस्वते संयमने उद्यन् सूर्य्य: प्रदृश्यते ।
सुषायामर्द्धरात्रस्तु विभावर्यास्तमति च ।२७
वैवस्वते संयमने मध्याह्ने तु रविर्यदा ।
सुषायामथ वारुण्यामुत्तिष्ठन् स तु दृश्यते ।२८

उस धीमान् वरुणदेव की पुरी का नाम सुषा है जो परम रम्य है जो मेरु के उत्तर दिशा में और मानस के मूर्धा में है। महेन्द्र की पुरी के तुल्य ही सोम की भी विभारी है। मानस के उत्तर पृष्ठ में चारों दिशाओं में लोकपाल हैं जो धर्म की व्यवस्था करनेके लिए तथा लोकों के संरक्षण करने के लिए ही हैं। इन लोकपालों के ऊपर सब ओर दक्षिण अयन में सूर्य की गति के विषय में ज्ञान प्राप्ति करलो ।२२-२४ वहाँ पर दिशाओं में गमन करने वाले भगवान् सूर्यदेव की जो गति होती है उसको समझ लेना चाहिए। दक्षिण के उपक्रम में सूर्य क्षिप्त इषु की ही भाँति प्रसर्पण किया करते हैं ।२४। जिस समय में भगवान भास्करदेव अमरावती में मध्य में गमन करने वाले होते हैं उस समय में समस्त ज्योतिषियों के चक्र को लेकर सतत् परिगमन किया करते हैं ।२५। वैवस्वत संयमन में उदित होते हुए सूर्य दिखलाई दिया करते हैं। सुषा में अर्ध रात्रि वाला है और विभावरी में अस्तस्ता को प्राप्त होता है ।२६-२७। जिस समय में वैवस्वत संयमन में मध्याह्न की वेला में रवि हुआ करते हैं उस समय में वारुणी जो सुषा पुरी है उसमें उदित होते हुए वे दिखलाई दिया करते हैं ।२८।

विभावर्यामर्द्धरात्रं माहेन्द्रयामस्तमेव च ।
सुषायामथ वारुण्यां मध्याह्ने तु रविर्यदा ।२९
विभावर्य्यां सोमपुर्य्यां उत्तिष्ठति विभावसु: ।
महेन्द्रस्यामरावत्यामुद्गच्छति दिवाकर: ।३०

अर्द्धं रात्रं संयमने वारुण्यामस्तमेति च ।
स शीघ्रमेव पर्येति भानुरालातचक्रवत् ।३१
भ्रमन् वै भ्रममाणानि ऋक्षाणि चरते रविः ।
एवं चतुर्षु पार्श्वेषु दक्षिणां तेषु सर्पति ।३२
उदयास्तमये वाऽसावुत्तिष्ठति पुनः पुनः ।
पूर्वाह्णे चापराह्णे च द्वौ द्वौ देवालयौ तु सः ।३३
पतत्येकन्तु मध्याह्ने भाभिरेव च रश्मिभिः ।
उदितो वर्द्धमानाभिर्मध्याह्ने तपते रविः ।३४
अतः प ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं स गच्छति ।
उदयास्तमयाभ्यां च स्मृते पूर्वापरे तु वै ।३५

विभावरी में अर्ध रात्रि का समय होता है और माहेन्द्री में अस्त-गत हो जाया करते हैं जब कि वरुण की पुरी सुषा में मध्याह्न में सूर्य होते हैं ।२९। सोम की पुरी विभावरी में विभावसु उदित होता है और महेन्द्र देव की अमरावती में दिवाकर उद्गत हो जाया करते हैं ।३०। सयमन में अर्ध रात्रि होती है तथा वारुणी पुरी में में अस्तगत हुआ करते हैं । वह भानु एक आलात के चक्र की भाँति (आलात-जलती हुई लकड़ी के अङ्गार के सदृश) शीघ्र ही परिगमन किया करता है ।३१। भ्रममाण ऋक्षों (नक्षत्रों) के समीप में भ्रमण करता हुआ रवि विचरण किया करता है । इस प्रकार से उन चारों पार्श्वों में दक्षिणा को यह प्रसर्पण किया करता है ।३२। उदय और अस्त के समय में यह पुनः पुनः उत्तिष्ठमान हुआ करता है । पूर्वाह्न (दोपहर के प्रथम भाग) और अपरान्ह (दोपहर का पिछला भाग) में वह दो-दो देवालयों में पतन किया करता है ।३३। अपनी प्रभाओंके द्वारा मध्याह्न में एक को पतन करके प्रकाशित किया करता है तथा वर्द्धमान अपनी रश्मियों (किरणों) के द्वारा यह रवि मध्याह्न की वेला में तपता है ।३४। इसके पश्चात् ह्रास को शनैः शनैः प्राप्त होने वाली किरणों के द्वारा

अस्ताचल गामी हो जाया करता है। इसके उदयकाल और अस्तकालों के द्वारा ही पूर्व तथा बताये गये हैं।३५।

याद्दक् पुरस्तात्तपति याद्दक् पृष्ठे तु पार्श्वयो:।
यत्रोदयस्तु द्दश्येस्तु तेषां स उदय:स्मृत:।३६
प्रणांशं गच्छते यत्र तेषामस्त: स उच्यते।
सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकालोकस्य दक्षिणे।३७
विदूरभावादर्कस्य भूमेरेषा गतस्य च।
श्रयन्ते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रौ न द्दश्यते।३८
ऊर्ध्वं शतसहस्रांशु: स्थितस्तत्र प्रद्दश्यते।
एवं पुष्करमध्ये तु यदा भवति भास्कर:।३९
त्रिंशद्भागञ्च मेदिन्या मुहूर्त्तेन स गच्छति।
योजनानां सहस्रस्य इमांसख्यां निबोधत।४०
पूर्णं शतसहस्राणां एकत्रिंशच्च सास्मृता।
पञ्चाशच्चसहस्राणितथान्यान्यधिकानि च।४१
मौहूर्तिको गतिर्ह्येषा सूर्य्यस्य तु विधीयते।
एतेन क्रमयोगेन यदा काष्ठान्तु दक्षिणाम्।४२
परिगच्छति सूर्य्योऽसौ मासं काष्ठामुदक् दिनात्।
मध्येन पुष्करस्याथ भ्रमते दक्षिणायने।४३

जिस प्रकार का पहिले तपता है और जैसा पार्श्वों के पृष्ठ भाग में होता है जहाँ पर इसका उदय दिखलाई दिया करता है उनका वह उदय कहा गया है।३६। जहाँ पर यह विनाश को प्राप्त हो जाया करता है उनका वह अस्तकाल कहा जाता है। सब वर्षों के उत्तर में मेरु होता है और लोकालोक पर्वत के दक्षिण के है।३७। इस भूमि से सूर्य के विदुर भाव होनेके कारण यह गत हुए की रश्मियों का सेवन किया करते हैं। इसी कारण से दर्शन रात्रि में नहीं हुआ करते हैं। ।३८। यह शत सहस्रांसु ऊर्ध्व भाग में स्थित होता है वहाँ पर दिख-

लाई दिया करता है इस रीति से जिस समय में भास्कर पुष्कर के मध्य में होता है वह मेदिनी के त्रिशत् गण की मुहूर्त मात्र में चला जाया करता है। यह संख्या सहस्र योजनों को समझ लो।३९-४०। वह सौ सहस्र और इकत्तीस कही गई है तथा पचास सहस्र और अधिक हैं।।४१। सूर्य की यह गति मौहुर्त्तिकी की जाती है। इसी क्रम के योग से जिस समय में यह दक्षिण दिशा में परिगमन किया करता है तो यह सूर्य दिन से उत्तर दिशा में एक मास रहता है और पुष्कर के मध्य द्वारा दक्षिणायन में भ्रमण किया करता है।४२-४३।

मानसात्तरमेरोस्तु अन्तरं त्रिगुणं स्मृतम्।
सर्वतो दक्षिणायान्तुकाष्ठायांतन्निबोधत।४४
नवकोटय: प्रसंख्याता योजनै: परिमण्डलम्।
तथा शतसहस्राणि चत्वारिशञ्च पञ्च च।४५
अहोरात्रात् पतङ्गस्य गतिरेषा विधीयते।
दक्षिणादिङ्निवृत्तोऽसौ विषुवस्थोयदारवि:।४६
क्षीरोदस्य समुद्रस्योत्तरतोऽपि दिश चरन्।
मण्डलं विषुवच्चापियोजनैस्तन्निबोधत:।४७
तिस्र: कोटयस्तु सम्पूर्णं विषुवस्यापि मण्डलम्।
तथा शतसहस्राणि त्रिशत्येकाधिकानि तु।४८
श्रावणे चोत्तरा काष्ठां चित्रभानुर्यदा भवेत्।
गोमेदस्य परद्वीपे उत्तराञ्च दिशं चरन्।४९

मानस के उत्तर मेरु का अन्तर त्रिगुण कहा गया है। सब ओर से उसको दक्षिण दिशा में जानलो।४४। योजनों के द्वारा परिमन्डल नौ करोड़ प्रसंख्यात है। तथा सौ सहस्र और पैंतालीस है।४५। एक: प्रहोरात्र से सूर्य की यह गति कही गयी है। जिस समय में यह रवि दक्षिण दिशा से निवृत होकर विषुव में स्थित होता है क्षीर सागर के उत्तर दिशा में विचरण करता हुआ विषुवत् मण्डल में आता है उसको

भी योजनों के द्वारा ही समझनो ।४६-४७। विषुव का मण्डल सम्पूर्ण तीन करोड़ तथा शत सहस्र और बीस अधिक अधिक है ।४८। श्रावण में जिस समय में उत्तर दिशा में चित्र भानु होता है तो गोमेद के पर-द्वीप में उत्तर दिशा में विचरण करता हुआ होता है ।४९।

उत्तरायाः प्रमाणन्तु काष्ठाया मण्डलस्य तु ।
दक्षिणोत्तरमध्यानि तानि विन्द्याद्यथाक्रमम् ।५०
स्थानं जरद्गवं मध्ये तथैरावतमुत्तरम् ।
वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिह तत्त्वतः ।५१
नागवीथ्युत्तरा वीथी ह्यजवीथिस्तु दक्षिणा ।
उभे आषाढ़मूलन्तु अजवीथ्यादयस्त्रयः ।५२
अभिजित् पूर्वतः स्वातिन्नागवीथ्युत्तरास्त्रयः ।
अश्विनीकृत्तिकायाम्यानागवीथ्यस्त्रयः स्मृताः ।५३
रोहिण्यार्द्रा मृगशिरो नागवीथिरिति ।
पुष्याश्लेषा पुनर्वस्वोर्वीथी चैरावती स्मृता ।५४
त्रिसृस्तु वीथयो ह्येता उत्तरामार्ग उच्यते ।
पूर्वोत्तरफाल्गुन्यो मघा चैवार्षभी भवेत् ।५५
पूर्वोत्तरप्रोष्ठपदौ गोवीथी रेवती स्मृता ।
श्रवणञ्च धनिष्ठा च वारुणञ्च जरद्गवम् ।५६

उत्तर दिशा के मंडल का प्रमाण उनको यथाक्रम दक्षिणोत्तर मध्यों को ही जानना चाहिए ।५०। मध्य में जरद्गव स्थान है तथा उत्तर में ऐरावत है । यहाँ पर दक्षिण में तत्त्वत वैश्वानर निर्दिष्ट किया गया है ।५१। नागवीथी उत्तर बीथी है और अजवीथि दक्षिणा है । वे दोनों आषाढ़ मूल और अजवीथि आदि तीन हैं ।५२। पूर्व में अभिजित्—स्वाति और नागवीथि ये तीन उत्तरा हैं । अश्विनी—कृत्तिका—याम्या तीन नागवीथी कही गयी हैं ।५३। रोहिणी—मृगशिरा और आर्द्रा-यह नागवीथी कही गयी है । पुष्य—अश्लेषा और पुनर्वसु की वीथि ऐरावती

कही गयी है ।५४। ये तीनों वीथियाँ उत्तर मार्ग कहा जाता है । पूर्वा और उत्तरा फाल्गुनी तथा मघा ये आर्ष भी होते है ।५५। पूर्वा और उत्तरा प्रोष्ठपदा दोनों तथा रेवती गोवीथी कही गयी है । श्रवण धनिष्ठा और जरद्गव हैं ।५६।

एतास्तुवीथयस्तिस्रो मध्यमोमार्गउच्यते ।
हस्तचित्रातथास्वातीह्यजवीथिरितिस्मृता ।५७
जेष्ठा विशाखा मैत्रञ्च मृगवीथी तथोच्यते ।
मूलं पूर्वोत्तराषाढ़े वीथीवैश्वानरी भवेत् ।५८
स्मृतास्तिस्रस्तु वीथ्यस्ता मार्गे वै दक्षिणेपुन: ।
काष्ठयोरन्त ञ्चैतद्वक्ष्येयोजनै: पुन: ।५९
एतच्छतसहस्राणामेकत्रिंशत्तु वै स्मृतम् ।
शतानि त्रीणि चा यानि त्रयस्त्रिंशत्तथैव च ।६०
काष्ठयोरन्तरं ह्येतद्योजनानां प्रकीर्तितम् ।
काष्ठयोर्लेखयोश्चैव अयने दक्षिणोत्तरे ।६१
ते वक्ष्यामि प्रसंख्याय योजनैस्तु निबोधत ।
एकैकमन्तरं तद्वद्युक्तान्येतानि सप्तभि: ।६२
सहस्रेणातिरिक्तो च ततोऽन्या पञ्चविंशति: ।
लेखयो: काष्ठयोश्चैव बाह्याभ्यन्तरश्योश्चरम् ।६३
अभ्यन्तरं स पर्येति मण्डलान्युत्तरायणे ।
बाह्यता दक्षिणेनैव सततं सूर्य्यमण्डलम् ।६४

ये तीनों वीथियाँ मध्यम मार्ग कहा जाया करता है । हस्त-चित्रा तथा स्वाती—यह अजवीथी—इस नाम से कही गयी है ।५७। ज्येष्ठा विशाखा और मैत्र इनकी मृगवीथी कही जाती है । मूल-पूर्वा और उत्तरा आषाढ़ा वैश्वानरी वीथी होती है । ये तीनों वीथियाँ दक्षिण मार्ग में बतायी गयी हैं। दिशाओंका जो अन्तर है उसकी पुन: योजनों के द्वारा बतलायेंगे । यह अन्तर एक सहस्र इकतीस योजन का कहा

गया है। तीन सौ और अन्य तेनीस दिशाओं में योजनों का अन्तर कीर्त्तित किया गया है। दिशाओं में—लेखों में और दक्षिणोत्तर अयन में जो अन्तर है उसको प्रसख्यात करके योजनों के द्वारा समझिए। एक-एक का अन्तर है और उसी की तरह सातों से ये युक्त हैं। एक सहस्र से अतिरिक्त अन्य पच्चीस योजन बाह्य और आभ्यन्तर लेखों और दिशाओं में विचरण करता हुआ वह अभ्यन्तर में मण्डलों को जाया करता है। उत्तरायण में बाह्य से और दक्षिण से ही निरन्तर सूर्य मण्डल विचरण किया करता है।५८-६४।

चरन्नसावुदी याञ्च ह्यशीत्या मण्डलान् शतम्।
अभ्यन्तर स पर्येति क्रमते मण्डलानि तु।६५
प्रमाणं मण्डलस्यापि योजनानान्निबोधत।
योजनानां सहस्राणि दश चाष्टौ तथा स्मृतम्।६६
अधिकान्यष्टपञ्चाशद्योजनानि तु वै पुनः।
विष्कम्भो मंडलस्यैव तिर्यक् स तु विधीयते।६७
अहस्तु चरतेनाभेः सूर्य्यो वै मंडलक्रमात्।
कुलालचक्रपर्यन्तो यथा चन्द्रो रविस्तथा।६८
दक्षिणे चक्रवत् सूर्य्यस्तथाशीघ्रं निवर्त्तते।
तस्मात्प्रकृष्टां भूमिं तु कालेनाल्पेनगच्छति।६९
सूर्य्यो द्वादशभिः शीघ्रं मुहूर्त्तैर्दक्षिणायने।
त्रयोदशार्द्धमृक्षाणां मध्ये चरति मंडलम्।७०

इस प्रकार से विचरण करता हुआ यह उत्तर में एक सौ अस्सी मण्डलोंमें अन्दर परिगमन किया करताहै और मण्डलों में क्रमण करता है।६५। मंडल का भी प्रमाण योजनों के रूप में समझलो। एक सहस्र अठारह योजन बताये गये हैं और अट्ठावन योजन और भी अधिक पुनः कहे गये हैं। वह मण्डल का विष्काम्भ तिर्यक किया जाता है।६६-६७। दिन में सूर्य क्रम से नाभि के मण्डल का चरण किया करता

है। कुलाल (कुम्हार बर्तन बनाने वाला) के चाक पर्यन्त जिस प्रकार मे चन्द्रमा है उसी भाँति रवि भी होता है। दक्षिण में चक्र की ही तरह सूर्य उस भाँति शीघ्रता से निवृत्त हुआ करता है कि प्रकृष्ट अर्थात् अति दूर में रहने वाली भी भूमि को अति अल्पकाल से चला जाया करता है।६८-६९। यह सूर्य दक्षिणायन में अत्यन्त शीघ्र ही त्रयोदश के बारह मुहूर्तों से आधे ऋक्षों के मध्य में मण्डल का चरण किया करता है।७०।

मुहूर्त्तैस्तानि ऋक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ।
कुलालचक्रमध्यस्थो यथा मन्द प्रसर्पति ।७१
उदग्याने तथा सूर्यः सर्पते मन्दविक्रमः ।
तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमिं सोऽल्पां प्रसर्पति ।
सूर्योऽष्टादशभिरह्नो मुहूर्तैरुदगायने ।७२
त्रयोदशानां मध्ये तु ऋक्षाणां चरते रविः ।
मुहूर्तैस्तानि ऋक्षाणि रात्रौ द्वादशभिश्चरन् ।७३
ततो मन्दतरं ताभ्यां चक्रन्तु भ्रमते पुनः ।
मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो भ्रमतेऽसौ ध्रुवस्तथा ।७४
मुहूर्तैस्त्रिंशता तावदहोरात्रं ध्रुवो भ्रमन् ।
उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमते मंडलानि तु ।७५
उत्तरक्रमणेऽर्कस्य दिवा मन्दगतिः स्मृता ।
तस्यैव तु पुनर्नक्तं शीघ्रा सूर्यस्य वै गतिः ।७६
दक्षिणप्रक्रमे चापि दिवा शीघ्रं विधीयते ।
गतिः सूर्यस्य व नक्तं मन्दा चापि विधीयते ।७७
एवं गतविशेषेण विभजन् राम्यहानि तु ।
अजवीथ्यां दक्षिणायां लोकलोकस्य चोत्तरम् ।७८

रात्रि के समय में उन नक्षत्रों को अठारह मुहूर्तों में विचरण करता हुआ कुलाल के चक्र के मध्य में स्थित होने की भाँति मन्द प्रस-

र्पण किया करता है ।७१। उत्तर की ओर गमन करने में सूर्य मन्द विक्रम वाला होकर ही गमन किया करता है । इसी मन्दगति होने के कारण से वह बहुत अधिक लम्बे समय से बहुत ही अल्प भूमि का प्रसर्पण किया करता है । उदगायन अर्थात् उत्तरायण में दिन को अठारह मुहूर्तों में सूर्य त्रयोदश ऋक्षों के मध्य में चरण किया करता है और उन्हीं ऋक्षों को रात्रि में बारह मुहूर्तों में चरण करता है । इसी से उन दोनों से चक्र अधिक मन्द भ्रमण किया करता है । एक मिट्टी के पिण्ड की भाँति ही मध्यमें स्थित यह ध्रुव की भाँति भ्रमण करता है । तीस मुहूर्तों में एक अहोरात्र में ध्रुव भ्रमण करता हुआ दोनों दिशाओं के मध्य में मण्डलों का भ्रमण करता है ।७४-७५। सूर्य को उत्तर क्रमण में दिन में मन्द गति कही गयी है । उसी सूर्य की फिर रात्रि के समय में शीघ्रता वाली गति हो जाया करती है । दक्षिण के प्रकमण करने में भी दिन में शीघ्रता का विधान कहा जाता है और रात्रि में सूर्य की गति मन्द हो जाया करती है । इस प्रकार से रात और दिन को अपनी गति की विशेषता के द्वारा विभाजन करता हुआ दक्षिण अजवीथी में लोकालोक के उत्तर में चरण किया करता है । ।७६-७८।

लोकसन्तानतोह्येष वैश्वानरपथाद्बहिः ।
व्युष्टिर्यावत् प्रभा सौरी पुष्करात् संप्रवर्त्तते ।७९
पार्श्वेभ्यो बाह्यतस्तावल्लोकालोकश्च पर्वतः ।
योजनानां सहस्राणि दशोर्द्ध्वं चोच्छ्रितो गिरिः ।८०
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च पर्वतः परिमण्डलः ।
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह ।८१
अभ्यन्तरे प्रकाशन्ते लोकालोकस्य वै गिरेः ।
एतावानेवलोकस्तु निरालोकस्ततः परम् ।८२
लोक आलोकने धातुर्निरालोकस्त्वलोकता ।
लोकालोकौ तु संधत्ते तस्मात्सूर्यः परिभ्रमन् ।८३

तस्मात्सन्ध्येतितामाहुरुषायुष्टैर्यथान्तरम् ।
उषारात्रि स्मृताविप्रैर्व्युष्टिश्चापिअहः स्मृतम् ।८४

लोक सन्तान से यह वैश्वानर पथ से बाहिर ही भ्रमण करता है । जब तक पुष्टि होती है यह सूर्य की प्रभा पुष्कर से संप्रवृत्त हुआ करती है ।७९। पार्श्वों से बाहिर के भाग में लोकालोक नाम वाला महान् पर्वत है । यह गिरि एक सहस्र दश योजन ऊर्ध्व में उच्छ्रित है ।८०। यह परिमण्डल पर्वत प्रकाश और अप्रकाश वाला है । नक्षत्र—चन्द्र और सूर्य ग्रह तारा गणों के साथ लोकालोक पर्वत के अभ्यन्तर में ही प्रकाश दिया करते हैं । इतना ही लोक होता है उसके आगे शेष तो सब निरालोक अर्थात् प्रकाश रहित ही हुआ करताहै । लोकआलोकम में धातु है और निरालोक आलोकता है । इसी से सूर्य परिभ्रमण करता हुआ लोक और आलोक दोनों का सन्धान किया करता है ।८१-८३। इसी कारण उसको सन्ध्या-इस नाम से कहते हैं । यथान्तर व्युष्टों से उषा कही जाती है । उषा रात्रि कही गई है और विप्रों के द्वारा व्युष्टि दिन कहा गया है ।८४।

त्रिंशत्कलो मुहूर्तस्तु अहस्ते दशपञ्च च ।
ह्रासो वृद्धिरहर्भागैर्दिवसानां यथा तु वै ।८५
सन्ध्या मुहूर्तमात्रायां ह्रासवृद्धो तु ते स्मृते ।
लेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्तागते तु वै ।८६
प्रातः स्मृतस्ततः कालोभागश्चाह्नश्च पञ्च च ।
तस्मात् प्रातर्गतात्कालान्मुहूर्ताः सङ्गवस्त्रयः ।८७
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तस्तुतस्मात्कालादनन्तरम् ।
तस्मान्मध्यन्दिनात्कालादपराह्णइतिस्मृतः ।८८
त्रय एव मुहूर्तास्तु काल एषस्मृतो बुधैः ।
अपराह्णव्यतीताच्च कालः सायं स उच्यते ।८९
दशपञ्च मुहूर्ताह्नो मुहूर्तास्त्रय एव च ।
दशपञ्च मुहूर्तं वै अहस्तु विषुवे स्मृतम् ।९०

वर्धत्यतो ह्रसत्येव अयने दक्षिणोत्तरे ।
अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रिस्तु ग्रसते अहः ।९१

तीस कला वाला मुहूर्त्त और पन्द्रह का दिन होता है। दिवसों के भागों से दिव्य में ह्रास और वृद्धि भी यथा रीति हुआ करते हैं। मुहूर्त्त मात्रमें सन्ध्या होती है और वे ह्रास तथा वृद्धि बताये गये हैं। तीन मुहूर्त्त समागत आदित्य में लेखा प्रभृति होती है। फिर वह काल प्रातः कहा गया है और पाँच भाग कहे गए हैं। उस गत काल से तीन सङ्ग व मुहूर्त होते हैं। मध्याह्न जो होता है वह तीन मुहूर्तों का होता है फिर उस काल के अनन्तर उस मध्य दिन के काल से अपराह्न कहा गयाहै ।८५-८८। बुध लोगोंने इस कालको तीन ही मुहूर्त बताया है। उस अपराह्न के व्यतीत होने से जो काल होता है उसी को सायङ्काल कहा जाता है ।८९। पन्द्रह मुहूर्त वाले दिन का तीन मुहूर्त ही सायं होता है। विषुव में यह दिन दश और पाँच मुहूर्त वाला ही कहा गया है ।९०। इसी कारण से दक्षिणायन और उत्तरायण में यह दिन बढ़ जाता है और कम भी हो जाया करता है अर्थात् दिन बड़े छोटे हुआ करते हैं। दिन तो रात्रि का ग्रास कर जाता है और रात्रि दिन को ग्रस जाया करती है। तात्पर्य यही है कि दिन छोटे हैं तो रात्रि बड़ी हो जाती है और रात्रि छोटी होती है तो दिन बड़ा हो जाया करता है ।९१।

शरद्वसन्तयोर्मध्यं विषुवन्तुविधीयते ।
आलोकान्तः स्मृतोलोको लोकाश्चालोकउच्यते ।९२
लोकपालाः स्थितास्तत्र लोकालोकस्य मध्यतः ।
चत्वारस्ते महात्मानस्तिष्ठन्त्याभूत संप्लवम् ।९३
सुधामा चैव वैराजः कर्दमश्च प्रजापतिः ।
हिरण्यरोमापर्जन्यः केतुमान् राजसश्च सः ।९४
निर्द्वन्द्वा निरभीमाना निस्तन्द्रा निष्परिग्रहाः ।
लोकपालाः स्थितास्त्वेते लोकालोके चतुर्दिशम् ।९५

उत्तरं यदगस्त्यस्य शृङ्गं देवर्षिसेवितम् ।
पितृयानः स्मृतः पन्था वैश्वानरपथाद्बहिः ।९६
तत्रासते प्रजाकामा ऋषयो येऽग्निहोत्रिणः ।
लोकस्य सन्तानकराः पितृयानेपथिस्थिताः ।९७
भूतारम्भकृतं कर्म्मं आशिषश्चविशाम्पते ! ।
प्रारम्भन्ते लोककामास्तेषांपन्थाः सदक्षिणः ।९८

शरद् और बसन्त के मध्य में विषुव का विधान किया जाता है। यह लोक आलोकान्त कहा गयाहै और लोक आलोक कहाजाया करता है ।९२। उस लोकालोक के मध्य में वहाँ पर लोकपाल समवस्थित रहा करते हैं। ये महान् आत्माओं वाले लोकपाल चार हैं जो जब तक भूत-सम्प्लव होता है तब तक वहाँ पर स्थित रहा करते हैं ।९३। इन चारों में सुधामा वैराज होता है।प्रजापति कर्दम है-हिरण्यरोमा पर्जन्य है और चौथे वह राजस केतुमान् होता है ।९४। ये लोकालोक पर्वत में चारों दिशाओं में लोकपाल स्थिति रक्खा करते हैं। ये चारों ही बड़े निर्द्वन्द्व-अभिमान से रहित—तन्द्रा शून्य और बिना परिग्रह वाले हुआ करते हैं।९५। उत्तर दिशामें जो शिखर है जिसका देवगण सेवन किया करते हैं। वह वैश्वानर पथ से बाहिर पितृमान मार्ग बताया गया है ।९६। वहाँ पर प्रजा की कामना रखने वाले ऋषिगण रहा करते हैं जो कि अग्निहोत्र करने वाले हुआ करते हैं। ये इस लोक की वृद्धि करने वाले हैं और पितृयान के पथ में स्थित रहा करते हैं ।९७। हे विशाम्पते ! ये लोक की कामना रखने वाले भूतों के आरम्भ के लिए किया हुआ कर्म्म और आशीर्वादों का प्रारम्भ किया करते हैं और उनका पन्था सदक्षिण होता है ।९८।

चलितन्ते पुनर्धर्मं स्थापयन्ति युगे युगे ।
सन्तप्ततपसा चैव मर्यादाभिः श्रुतेन च ।९९
जायमानास्तु पूर्वे पश्चिमानां गृहेषु ते ।

पश्चिमाश्चैव पूर्वेषां जायन्ते निधनेष्विह ।१००
एवमावर्तमानास्ते त्वतंस्त्याभूतसंप्लवम् ।
अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणां गृहमेधिनाम् ।१०१
सवितुर्दक्षिणं मार्गमाश्रित्याभूतसंप्लवम् ।
क्रियावतां प्रसंख्यैषा ये श्मशानानि भेजिरे ।१०२
लोकसंव्यवहारार्थं भूतारम्भकृतेन च ।
इच्छाद्वेषरताच्चैव मैथुनोपगमाच्च वै ।१०३
तथा कामकृतेनेह सेवनाद्विषयस्य च ।
इत्येतैः कारणैः सिद्धाः श्मशानानीह भेजिरे ।१०४
प्रजैषिणः सप्तऋषयो द्वापरेष्विह जज्ञिरे ।
सन्ततिन्ते जुगुप्सन्ते तस्मान्मृत्युर्जितस्तु तैः ।१०५

वे लोग युग-युग में जो धर्म चलित हो जाया करता है उस धर्म को पुनः स्थापित किया करते है और धर्म की संस्थापना भली भाँति किए हुए तप से—मर्यादाओंमें और श्रुतके द्वाराही किया करते हैं ।९९। पहिले होने वाले वे पीछे होने वालों के गृहों में यजमान (समुत्पन्न) हुआ करते हैं और जो पश्चिम अर्थात् पीछे होने वालेहैं वे पूर्व पुरुषोंके निधन हो जाने पर यहाँ पर जन्म ग्रहण किया करते हैं । इस रीति से आवर्त्तमान होनेवाले अर्थात् एक दूसरेके पीछे इस संसारमें जन्म ग्रहण करने की पुनः पुनः आवृत्ति करने वाले वे भूत संप्लव जब होता है तब तक यहाँ पर वर्तमान रहा करते हैं । यह इन ऋषियों की संख्या जो गृहमेधी हैं अट्ठासी सहस्र है ।१००-१०१। ये सविता के दक्षिण मार्ग का समाश्रय ग्रहण करके ही भूत संप्लव जब होता है तब तक क्रिया वाले रहा करते हैं इनकी संख्या यही है जो उपर्युक्त है । ये श्मशानों का भी सेवन किया करतेहैं । लोकके सद्व्यवहारके लिए और भूतारम्भ कर्म के द्वारा ये इच्छा तथा द्वेष में भी रति रखने वाले हैं तथा मैथुन का भी उपगम अभीष्ट की सिद्धि के लिए किया करते हैं । इस रीतिसे

कामना के होने के कारण से वे विषयों का सेवन किया करते हैं। यही कुछ कारण हैं जिनके द्वारा ये सिद्ध लोग श्मशानों का सेवन किया करते थे। यहाँ पर प्रजा की इच्छा वाले सात ऋषि द्वापर में समुत्पन्न हुए थे। फिर उन्होंने सन्तति की लिप्सा की थी और इसी कारण से उन्होंने मृत्यु को जीत लिया था।१०२-१०५।

अष्टाशीतिसहस्राणि तेषामप्यूर्ध्वरेतसाम् ।
उदक् पन्थानपर्यन्तमाश्रित्याभूतसंप्लवम् ।१०६
ते सम्प्रयोगाल्लोकस्य मिथुनस्य च वर्जनात् ।
ईर्ष्याद्वेषनिवृत्त्या च भूतारम्भविवर्जनात् ।१०७
इत्येतैः कारणैः शुद्धैस्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे ।
आभूतसंप्लवस्थानाममृतत्वं विभाव्यते ।१०८
त्रैलोक्यस्थितिकालो हि न पुनर्मारगामिनाम् ।
भ्रूणहत्याश्वमेधादि पापपुण्यनिभैः परम् ।१०९
आभूतसम्प्लवान्ते तु क्षीयन्ते चोर्ध्वरेतसः ।
उर्ध्वोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्रानुसंस्थितः ।११०
एतद्विष्णुपद दिव्यंतृतीयंव्योम्नि भास्वरम् ।
यत्रगत्वा न शोचन्तितद्विष्णोःपरमम्पदम् ।
धर्मे ध्रुवस्य तिष्ठन्ति ये त लोमस्य काङ्क्षिणः ।१११

ऊर्ध्वरेता उन अट्ठासी सहस्र ऋषियों ने उदक पथ पर्यन्त समाश्रय किया था और वह भी आभूत संप्लव तक वे वहाँ समवस्थित रहे थे। वे लोक के सम्प्रयोग से और मिथुन के वर्जन से तथा इच्छा और द्वेष भाव की निवृत्ति से और भूतों का समारम्भ करने के वर्जन से इन्हीं कतिपय कारणों के होने से वे परम विशुद्ध हो गये थे और उन्होंने अमृतत्व को प्राप्त कर लिया था। उनका वह अमृतत्व भी जब तक भूतों का संप्लव हुआ था तभी तक रहा था और वे वहीं पर बराबर स्थित रहा करते थे। जो लोग काम के मार्ग के गमन करने

वाले हैं उनका त्रैलोक्य स्थिति काल नहीं होता है क्योंकि भ्रूण हत्या आदि महापापों से और अश्वमेध आदि पुण्य कर्मों से वह परिपूर्ण हुआ करता है।१०६-१०६। जिस समय में यह समस्त भूतों का संप्लव होता है तो उसके अन्त में ऊर्ध्वरेता लोग भी क्षीण हो जाया करते हैं। ऊर्ध्वत्तर ऋषियों से जहाँ ध्रुव संस्थित होता है। यह विष्णु का व्योम में तृतीय परम भास्कर एवं दिव्य पद है जहाँ पर पहुँच कर उस विष्णु के परम पद की चिन्ता नहीं किया करते हैं और जो लोभ की आकांक्षा रखने वाले हैं वे ध्रुव के ही धर्म में स्थित रहा करते हैं।११०-१११।

५४—ज्योतिष चक्र वर्णन

एवं श्रुत्वा कथां दिव्यामब्रूवन् लोमहर्षणिम् ।
सूर्याश्चन्द्रमसोचारं ग्रहाणाञ्चैव सर्वशः ।१

भ्रमन्ति कथमेतानि ज्योतीषि रविमण्डले ।
अव्यूहेनैव सर्वाणि तथा चासंकरेण वा ।२

कश्च भ्रामयते तानि भ्रमन्ति यदि वा स्वयम् ।
एतद्वेदितुमिच्छामस्ततो निगद सत्तम ! ।३

भूतसंमोहनं ह्येतद्ब्रुवतो मे निबोध तम् ।
प्रत्यक्षमपि दृश्यं तत् संमोहयति वै प्रजाः ।४

योऽसौ चतुर्दशर्क्षेषु शिशुमारो व्यवस्थितः ।
उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवोदिवि ।५

सैष भ्रमन् भ्रामयते चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह ।
भ्रमन्तमनुसर्पन्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ।६

ध्रुवस्य मनसा यो वै भ्रमते ज्योतिषाङ्गणः ।
वाता नीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवेबद्धः प्रसर्पन्ति ।७

ऋषिगण ने कहा—इस प्रकार से ग्रहों की स्थितिकी कथाका श्रवण करके जो परम दिव्य थी वे फिर सूतजी बोले—सूर्य चन्द्रमा का चरण और सब ग्रहों का चरण किस प्रकार से हुआ करता है। ये समस्त ज्योतियाँ रवि के मण्डल में किस प्रकार से भ्रमण किया करती हैं? वे सब अलग-२ व्यूह रहित होकर या असङ्कुर भाव से भ्रमण करती हैं उनका कौन कैसे भ्रामण कराया करता है अथवा वे स्वयं ही भ्रमण किया करती हैं—हम अब यही ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं अतएव हे श्रेष्ठतम ! इसका वर्णन कीजिए।१-३। श्रीसूतजी ने कहा—यह भूतों का संमोहन करने वाला है। उसको आप लोग मेरे द्वारा जान लो ! प्रत्यक्ष होते हुए भी वह दृश्य है और निश्चय ही प्रजाओं को संमोहित करता है। जो यह चतुर्दश नक्षत्रों में शिशुमार व्यवस्थित है वह उत्तानपाद का पुत्र है जो दिवलोक में मेढ़ीभूत ध्रुव है।४-५। वही यह भ्रमण करता हुआ ग्रहों के साथ चन्द्रमा और सूर्य को भ्रमण कराता है। भ्रमण करते हुए उसके पीछे सब नक्षत्र चक्र की भाँति अनुसर्पण किया करते हैं। ध्रुव के मन से ज्योतियों का गण भ्रमण करता है वह वातानीक मय बन्धों से ध्रुव में बद्ध होकर ही प्रसर्पण किया करता है।६-७।

तेषां भेदश्च योगश्च तथा कालस्य निश्चयः।
अस्तोदयास्तथोत्पाता अयनेदक्षिणोत्तरे ।८

विषुवद्ग्रहवर्णश्च सर्वमेतद् ध्रुवेरितम्।
जीमूता नाम ते मेघा यदेभ्यो जीवसम्भवः।९

द्वितीय आवहन् वायुर्मेघास्ते त्वभिसंश्रिताः।
इतोयोजनमात्राच्च श्रध्यर्द्ध विकृताअपि।१०

वृष्टिसर्गास्तथा तेषां धाराधारः प्रकीर्तिताः।
पुष्करावर्तका नाम ये मेघाः पक्षसम्भवाः।११

शक्रेण पक्षाश्छिन्ना वै पर्वतानां महौजसा ।
कामगानां समृद्धानां भूतानां नाशमिच्छताम् ।१२
पुष्करा नाम ते पक्षा बृहन्तस्तोयधारिणः ।
पुष्करावर्तका नाम कारणेनेह शब्दिताः ।१३
नानारूपधराश्चैव महाघोरस्वराश्च ते ।
कल्पान्तवृष्टिकर्तारः कल्पान्ताग्नेर्नियामकाः ।१४

उनके भेद—योग तथा काल का निश्चय—अस्त और उदय और उत्पात दक्षिणायन और उत्तरायण में होते हैं ।८। विषुवद ग्रह वर्ण यह ध्रुव में कहा गया है । वे मेघ जीमूत नाम वाले हैं कि जिनसे जीवों का सम्भव हुआ करता है ।९। दूसरा आवहन करने वाला है और जो मेघ अभिसंश्रित होते हैं यहाँ से एक योजन मात्र से जो अर्द्धविकृत भी होते हैं । उनकी वृष्टि का सर्ग होता है जो धाराधार है । पुष्करावर्त्तक नाम वाले जो पक्ष सम्भव मेघ कहे गये हैं ।१०।११। अति महान ओज वाले इन्द्रदेव ने स्वेच्छया गमन करने वाले और भूतों के नाश को चाहने वाले समृद्ध पर्वतों के पक्षों का छेदन कर दिया था ।१२। जो पक्ष पुष्कर नाम वाले बड़े जल के धारण करने वाले थे । इसी कारण से यहाँ पर वे पुष्करावर्त्तक नाम से शब्दित किए गये हैं ।१३। ये अनेक प्रकार के रूपों को धारण करने वाले और महान् घोर स्वर से युक्त—कल्प के अन्त में वृष्टि करने वाले और कल्पान्त की अग्नि के नियामक हैं ।१४।

वार्य्याधारा वहन्ते वै सामृताः कल्पसाधकाः ।
यान्यस्यांडस्य भिन्नस्य प्राकृतान्यभवेस्त्वा ।१५
यस्मिन् ब्रह्मा समुत्पन्नश्चतुर्वक्त्रः स्वयं प्रभुः ।
तान्येवाण्डकपालानि सर्वे मेघाः प्रकीर्तिताः ।१६
तेषामप्यायनं धूमः सर्वेषामविशेषतः ।
तेषां श्रेष्ठश्च पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः ।१७
गजानां पर्वतानाञ्च मेघानां भोगिभिःसह ।

कुलमेकं द्विधाभूतं योनिरेका जलं स्मृतम् ।१८
पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसम्भवम् ।
तुषारवर्षं वर्षन्ति वृद्धां ह्यन्नविवृद्धये ।१९
षष्ठ: परिवहो नाम वायुस्तेषां परायण: ।
योऽसौ बिभर्ति भगवन् ! गङ्गामाकाशगोचराम् ।२०
दिव्यामृतजलां पुण्यां त्रिपथामिति विश्रुताम् ।
तस्या विस्पन्दितन्तोयं दिग्गजा: पृथुभि: करै: ।२१
शकीरान् सम्प्रमुञ्चन्ति नीहार इति स स्मृत: ।
दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृत: ।२२

जल मे युक्त वे वायु के आधार पर ही कल्प के साधक वहन किया करते हैं । उस समय में भिन्न हुए इस अण्ड के जो प्राकृत के थे हुए थे ।१५। जिसमें चारों मुखों वाला ब्रह्मा प्रभु स्वयं समुत्पन्न हुआ था । वे ही अण्ड कपाल सब मेघ कहे गये हैं ।१६। उन सबका अध्यापन (संमृति) करने वाला धूम जो विशेष रूप से होता है । उनमें श्रेष्ठ पर्जन्य होता है और चार ही दिग्गज हुआ करते हैं ।१७। गजों का—पर्वतों का—मेघों का भोगियों के साथ एक ही कुल है जो द्विधाभूत हो गया है । इन सबकी योनि एक ही जल बतलाई गयी है।१८। पर्जन्य और दिग्गज हेमन्त में शीत समुत्पन्न करने वाले तुषार की वर्षाको वर्षाया करते हैं और अन्न की विशेष वृद्धि के लिए ये वृद्ध हैं ।१९। हे भगवन् ! उनमें परायण छठवां परिवह नाम वाला वायु है जो यह आकाश में गोचर होने वाली गङ्गा का भरण करता है ।२०। वह आकाश गंगा परम दिव्य-अमृत के समान जल वाली—परम पुण्यमयी 'त्रिपथा'—इस नाम से प्रसिद्ध है । उसके विस्पन्दित जल को ये दिग्गज अपने विशाल करो मे शीकरों का मुञ्जन किया करते हैं जो 'नीहार' इस नाम से कहा गया है । दक्षिण दिशा में जो गिरि है वह हेमकूट—इस नाम से कहा गया है ।२१-२२।

उदग्हिमवत: शैलस्योत्तरे चैव दक्षिणे ।
पुण्ड्रं नाम समाख्यात सम्यग्वृष्टिविवृद्धये ।२३
तस्मिन् प्रवर्तते वर्षं तत्तुषारसमुद्भवम् ।
ततो हिमवतो वायुर्हिमं तत्र समुद्भवम् ।२४
आनयत्यात्मवेगेन सिञ्चयानो महागिरिम् ।
हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेषं तत: परम् ।२५
इभास्येचतत: पश्चादिदम्भूतविवृद्धये ।
वर्षद्वयं समाख्यातं सम्यग् वृष्टिविवृद्धये ।२६
मेघाश्चाप्यायनं चैव सर्वमेतत् प्रकीर्त्तितम् ।
सूर्य एव तु वृष्टीनां स्रष्टा समुपदिश्यते ।२७
वर्षं धर्मं हिमं रात्रि सन्ध्ये चैव दिनं तथा ।
शुभाशुभफलानीह ध्रुवात् सर्वं प्रवर्त्तते ।२८

हिमवान् पर्वत के उत्तर भाग में पर्वत के दक्षिण और उत्तर में भली भाँति वृष्टि की वृद्धि के लिए पुण्ड्र नाम वाला बताया गया उसमें तुषार से समुद्भूत वर्षा प्रवृत्त हुआ करती है। इसके उपरान्त वायु हिमवान से हिम को जो कि वहीं पर समुद्भूत हुआ है अपने वेग से महा गिरि का सेचन करता हुआ ले आया करता है। हिमवान् का अतिक्रमण करके उसके बाद में वृष्टिशेष होता है। इसके पश्चात् इस (गज) के आस्य में यह भूतों की विवृद्धि के लिए दो वर्ष समाख्यात किए गए हैं जो अच्छी तरह वृष्टि की विवृद्धि के लिए होता है।२३-२६। और मेघ आप्यायन (संतृप्ति) होते हैं जो सर्वत्र प्रकीर्त्तित है। वृष्टियों का सृजन करने वाले भगवान सूर्य ही समुपदिष्ट हुआ करते हैं। वर्ष, धर्म, हिम, रात्रि, दोनों सन्ध्या काल, दिन, और यहाँ पर शुभ तथा अशुभ फल सब ध्रुव से प्रवृत्त होते हैं।२७-२८।

ध्रुवेणाधिष्ठिताश्चाप: सूर्यो वै गृह्य तिष्ठति ।
सर्वभूतशरीरेषु त्वापो ह्यानुश्रिताश्चया: ।२९

दह्यमानेषु तेष्वेह जङ्गमस्थावरेषु च ।
धूमभूतास्तु ता ह्यापो निष्क्रामन्तीह सर्वशः ।३०
तेन चास्त्राणि जायन्ते स्थानमभ्रमयं स्मृतम् ।
तेजोभिः सर्वलोकेभ्य आदत्ते रश्मिभिर्जलम् ।३१
समुद्राद्वायुसंयोगात् वहन्त्यापो गभस्तयः ।
ततस्त्वृतुवशात्कालेपरिवर्त्तन् दिवाकरः ।३२
नियच्छत्यापो मेघेभ्यः शुक्लाः शुक्लैस्तुरश्मिभिः ।
अभ्रस्थाःप्रपतन्त्यापोवायुनासमुदीरिताः ।३३
ततो वर्षति षण्मासान् सर्वभूतविवृद्धये ।
वायुभिस्तनितंचैव विद्युतस्त्वग्निजाःस्मृताः ।३४
मेहनाच्च मिहेर्धातोर्मेघत्वं व्यञ्जयन्ति च ।
न भ्रश्यन्ते ततोह्यापस्तस्माद्भस्यवैस्थितिः ।
सृष्टाऽसौ वृष्टिसर्गस्य ध्रुवेणाधिष्ठितो रविः ।३५

ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित जल को सूर्य ग्रहण करके स्थित होता है। समस्त भूतों के शरीरोंमें जो जल आनुन्चित हैं। उनके जंगम और स्थावरों में दह्यमान् होने पर वह समस्त जल धूलमूल अर्थात् धूँआ होकर सब ओर निकल जाया करते हैं। और उससे असज उत्पन्न हुआ करते हैं जो कि स्थान अभ्रमय कहा गया है समस्त लोकों के तेज पूर्ण रश्मियों के द्वारा जल का आदान किया करता है ।२६-३१। गभस्तियाँ समुद्र से वायु के संयोग से जल का वहन करती हैं। इसके अनन्तर ऋतु के वश में होनेके कारण दिवाकर समय पर परिवर्त्तित होता हुआ मेघों के लिए शुक्ल रश्मियों से शुक्ल ही जल दिया करता है। मेघ में स्थित जल नीचे गिरा करतेहैं जबकि वे वायुके द्वारा समुदारित होते हैं इसके उपरान्त समस्त भूतों की विवृद्धि के लिये छै मास तक वर्षा करता है। वायु के द्वारा स्तनित और अग्नि से समुत्पन्न विद्युत कहे गये हैं भेदन करने से 'मिहि' —इस धातु से मेघत्व प्रकट किया

करते हैं उनसे जल ध्रंशमान होकर नीचे वहीं गिरा करते हैं ऐसी ही अभ्रकी स्थिति है। वृष्टि के सर्ग की सृष्टिका करने वाला यह रवि ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित है।३२-३५।

ध्रुवेणाधिष्ठितो वायुर्वृष्टि संहरते पुनः।
ग्रहीन्निवृत्या सूर्य्यात्तु चरते ऋक्षमण्डलम्।३६
चारस्यान्ते विशत्यर्कं ध्रुवेण समधिष्ठितम्।
अतः सूर्य्यं रथस्यापि सन्निवेशं प्रचक्षते।३७
स्थितेन त्वेकचक्रेण पञ्चारेण त्रिनाभिना।
हिरण्ययेनाणुना वै अष्टचक्रैकनेमिना।३८
शतयोजनसाहस्रो विस्तारायाम उच्यते।
द्विगुणा च रथोपस्थादीषादण्डः प्रमाणतः।३९
स तस्य ब्रह्मणा सृष्टो रथोह्यर्थवशेन तु।
असङ्गः काञ्चनो दिव्यो युक्तः पवनगैर्हयैः।४०
च्छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तैर्यथाचक्रं समास्थितैः।
वारुणस्य रथस्येह लक्षणैः सदृशश्च सः।४१
तेनासौचरतिव्योम्निभास्वाननुदिनन्दिवि।
अथाङ्गानितु सूर्य्यस्यप्रत्यङ्गानिरथस्य च।
सम्वत्सरस्यावयवैः कल्पितानि यथाक्रमम्।४२

ध्रुव से अधिष्ठित वायु पुनः वृष्टि का संहरण किया करता है। सूर्य ग्रह से निवृत्ति प्राप्त कर फिर ऋक्ष मण्डल में चरण किया करता है। उस चारण के अन्त में ध्रुव से समधिष्ठित सूर्य में प्रवेश किया करता है। इसलिए सूर्य के रथ का भी सन्निवेश बतलाया जाता है। सूर्य के रथ में एक ही चक्र (पहिया) होता है और उसमें पाँच अरा होते हैं तथा तीन नाभि हुआ करती है। वह हिरण्यय अणु और अष्ट चक्रैक नाभि वाले चक्र के द्वारा भास्वमान प्रसर्पण करने वाले रथ से सूर्य सौ सहस्र योजन के विस्तार से आयाम वाला कहा जाता है। रथोपस्थ से ईषा दण्ड प्रमाण से द्विगुण है। वह उसका रथ ब्रह्मा के

द्वारा अर्थ के वश सृजन किया गया था जो असङ्गकांचन-दिव्य और पर्वत गामी अश्वों से युक्त था। चक्र के अनुसार समास्थित वाजिरूप छन्दों से संयुत था। वह लक्षणों से वरुण के रथ के ही सदृश था। उसी के द्वारा आकाश में यह भास्वान प्रतिदिन दिन में चरण किया करता है। इसके अनन्तर सूर्य के अङ्ग और रथ के प्रसङ्ग यथाक्रम सम्वत्सर के अवयवों से कल्पित किए गये हैं।३६-४२।

अहर्नाभिस्तु सूर्य्यस्य एकचक्रस्य व स्मृतः।
अरात् सम्वत्सरास्तस्य नेम्यः षड् ऋतवः स्मृताः।४३
रात्रिर्वरूथोधर्म्मश्चक्रऊर्ध्वं व्यवस्थितः।
अक्षकोटयायुगान्यस्यअर्तवाहाः कलाः स्मृताः।४४
तस्य काष्ठा स्मृता घोणा दन्तपङ्क्तिः क्षणास्तु वै।
निमेषश्चानुकर्षोऽस्य ईषा चास्य कला स्मृता।४५
यगाक्षकोटी ते तस्यअर्थकामाबुभौस्मृतौ।
सप्ता (श्वा) श्वरूपाश्छन्दासिवहन्तेवायुरंहसा।४६
गायत्री चैव त्रिष्टुप् च जगत्यनुष्टुप् तथैव च।
पङ्क्तिश्च बृहतीचैव उष्णिगेवतुसप्तमः।४७
चक्रमक्षे निबद्धन्तु ध्रुवे चाक्षः समर्पितः।
सहचक्रौ भ्रमत्यक्षः सहक्षोभ्रमति ध्रुवम्।४८
अक्षः सहैव चक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवेरितः।
एवमर्थवशात्तस्य सन्निवेशो रथस्य तु।४९

एक चक्र वाले सूर्य का दिन नाभि है। उसके अरसे सम्वत्सर हैं और उसकी नेमियाँ छौ ऋतुयें कही गयी हैं।४३। वरुण रात्रि है और ऊर्ध्व में व्यवस्थित ध्वज धर्म है। इसकी अक्ष कोटियाँ युग हैं और अर्त्तवाह कला कही गयी हैं।४४। काष्टायें उसकी घोणा (नासिका) बतायी गयी है और क्षण दाँतों की पंक्ति है। निमेष इसका अनुकर्ष है

और इसकी ईषा कला कही गयी है ।४५। उसकी वे युगाक्ष कोटी दोनों अर्थ और काम बताये गये हैं । सात रूप वाले छन्द वायु के वेग से वहन किया करते हैं । गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, वृहती उष्णिक्—ये सात छन्द हैं । चक्र अक्ष में निबद्ध है और वह अक्ष ध्रुव में समर्पित है । चक्र के साथ अक्ष भ्रमण करता है और अक्ष के सहित वह ध्रुव भ्रमा करता है ।४६-४८। ध्रुव के द्वारा प्रेरित हुआ अक्ष चक्र के साथ ही घूमा करता है । इस प्रकार का अर्थ वश से रथ का सन्निवेश होता है ।४९।

तथा संयोगभागेन सिद्धो वै भास्करो रथः ।
तेनाऽसौ तरणिर्मध्ये नभभः सर्पतेदिवम् ।५०
युगाक्षंकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य तु ।
भ्रमतो भ्रमतो रश्मी तौचक्रयुगयोस्तु वै ।५१
मण्डलानि भ्रमे तेऽस्य रथस्य तु ।
कुलालचक्रभ्रमवन्मण्डलं सर्वतोदिशम् ।५२
युगाक्षकोटि ते तस्य वातोर्मीस्यन्दनस्य तु ।
संक्रमे ते ध्रुवमहो मण्डले पर्वतोदिशम् ।५३
भ्रमतस्तस्यरश्मी ते मण्डलेतुत्तरायणे ।
वर्द्धते दक्षिनेष्वत्र भ्रमतो मण्डलानि ।५४
युगाक्षकोटीसम्बद्धौ द्वे रश्मीस्यन्दनस्य ते ।
ध्रुवेण प्रगृहीतौ तौ रश्मी श्रारमतारविम् ।५५
आकृष्यते यदा तें तु ध्रुवेण समधिष्ठिते ।
तदा सोऽभ्यन्तरे सूर्य्यो भ्रमते मण्डलानि तु ।५६
अशीतिमण्डलशतं काष्टयोरुभयोश्चरन् ।
ध्रुवेण मुच्यमाने न पुनारश्मियुगेन च ।५७
तथैव बाह्यतः सूर्य्यो भ्रमते मण्डलानि तु ।
उद्वेष्टयन्वैवेगेन मण्डलानि तु गच्छति ।५८

उस प्रकार मे संयोग के भाग से यह भगवान् भास्कर का रथ सिद्ध हुआ है। उसी रथ के द्वारा यह सूर्य देव आकाश के मध्य में दिव में प्रसर्पण किया करते हैं।५०। उसके रथ की वे युगाक्ष कोटी दक्षिण में भ्रमण करती है और चक्र युगों की वे दोनों रश्मियाँ भ्रमा करती हैं। आकाश में चरण करने वाले इसके रथ के भ्रम में मण्डल हैं और कुम्हार के चाक की भाँति मण्डल सब दिशाओं में भ्रमता है। उसके रथ की वे युगाक्ष कोटी वर्तोर्मी हैं। मण्डल में पर्वतों की दिशाओं में वे ध्रुव को संक्रमित किया करती हैं। भ्रमण करते हुए उसकी रश्मियाँ और वे मण्डल उत्तरायण में वर्द्धित हैं। रथ की वे दो रश्मियाँ युगाक्ष कोटियों मे सम्बद्ध ध्रुव के द्वारा वे दोनों रश्मियाँ प्रगृहीत हैं जो रवि को धारण करने वाले ध्रुव के द्वारा आकर्षित किया जाता है। जिस समय में वे ध्रुव के साथ समधिष्ठित होते हैं उस समय में वह सूर्य मण्डलों को अभ्यन्तर में भ्रमण किया करता है। दोनों काष्ठाओं में अस्सी मण्डल शल में चरण करता हुआ रहता है। पुनः ध्रुव के द्वारा मुच्यमान् रश्मि युग से चरण करता है। उसी भाँति वहिर्मणा में यह सूर्य मण्डलों को भ्रमण किया करता है। वेग के साथ उद्वेष्ठन करता हुआ यह मण्डलों को गमन किया करता है।५१-५८।

=×=

५५—अमावस्या महत्व वर्णन

कथं गच्छत्यमावास्यां मासिमासि दिवं नृप ।
ऐलः पुरूरवाः सूतः ! तर्पयेत कथं पितृन् ।
एतमिच्छामहे श्रोतुं प्रभावन्तस्य धीमतः ।१

तस्य चाह प्रवक्ष्यामि प्रभावं विस्तरेण तु ।
ऐलस्य दिवि संयोगं सोमेन सह धीमता ।२

सोमाच्चैवामृतप्राप्तिः पितृणां तर्पणं तथा ।
सोम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च ।३
यदाचन्द्रश्च सूर्य्यंश्च नक्षत्राणां समागतौ ।
अमावास्यां निवसत एकस्मिन्नथ मण्डले ।४
तदा स गच्छति द्रष्टुं दिवाकर निशाकरौ ।
अमावास्याममावास्यां मातामहपितामही ।५
अभिवाद्य तु तौ तत्र कालापेक्षः स तिष्ठति ।
प्रचस्कन्द ततः सौममर्चयित्वा परिश्रमात् ।६
ऐलः पुरूरवा विद्वान् मासि श्राद्धचिकीर्षया ।
पतः स दिवि सोमं वै ह्य पतस्ते पितृ न्पि ।७

ऋषियों ने कहा—हे श्री सूतजी ! पुरुरवा ऐल नृप मास-मास में अर्थात् प्रति मास में अमावस्या में दिवलोक में कैसे जाया करता है और किस प्रकार से पितृगण का तर्पण करता है ? उस धीमान् के इस प्रभाव के श्रवण करने का हम लोगों की इच्छा है । सूतजी ने कहा—मैं अब उसके प्रभाव को विस्तार के साथ बतलाता हूं । ऐल को दिव लोक में धीमान् सोम के साथ संयोग होता है । सोम से ही अमृत की प्राप्ति हुआ करती है तथा पितृगण का तर्पण होता है । सौम्य-बर्हिषद् काव्य और उसी भाँति अग्निष्वात हैं ।१-३। जिस समय में चन्द्र और सूर्य नक्षत्रों में समागत होते हैं अमावस्या में एक ही मण्डल में निवास किया करते हैं ।४। उस समय में वह मातामह दिवाकर निशाकरों को देखने के लिए अमावस्या—अमावस्या में जाया करता है । वहाँ पर वह उन दोनों का अभिवादन करके काल की अपेक्षा करने वाला स्थित हो जाया करता है । इसके उपरान्त वह बड़े ही परिश्रम से सोम का अभ्यर्चन करके पुस्कन्दित होता है । महा विद्वान् पुरुरवा ऐल मास में श्राद्ध करने की इच्छा से दिवलोक में सोम का और पितृगण का उप-का उपस्थान किया करता है ।५-७।

द्विलवंकुहुमात्रञ्च तावुभौ तु निधाय: स: ।
सिनीवाली प्रमाणाल्पकुहुमात्रव्रतोदये ।८

कुहूमात्रं पितृद्देशं ज्ञात्वा कुहूमुपासते ।
तमुपास्य तत: सोमं कलापेक्षो प्रतीक्षते ।९

स्वधा मृतन्तु सोमाद्वै वसंस्तेषाञ्च तृप्तये ।
दशभि: पञ्चभिश्चैव स्वधाऽमृतपरिस्रवै: ।
कृष्णपक्षभुजां प्रीतिर्दुह्यते परमांशुभि: ।१०

सद्योभिरक्षता तेन सौम्येन मधुना च स: ।
निवापेष्वथ दत्तेषु पित्र्येण विधिना तु वै ।११
स्वधा मृतेन सौम्येन तर्पयामास वै पितृन् ।
सौम्या बर्हिषद: काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च ।१२

ऋतुरग्नि: स्मृतो विप्रै ऋतुं तु सम्वत्सरंविदु: ।
जज्ञिरे ऋतवस्तस्माद्वतभ्यो ह्यार्त्तवाभवन् ।१३

पितरोर्त्तवोर्द्धमासा विज्ञेया ऋतुसूनव: ।
पितामहास्तु ऋतवो ह्यमावास्याब्दसूनव: ।
प्रपितामहा: स्मृता देवा: पञ्चाब्दं ब्रह्मण: सुता: ।१४

द्विलव और कुहू मात्र इन दोनों को वह रखकर सिनीवाली के प्रमाण से अल्प कुहू मात्र को पितृगण का उद्देश्य जानकर कुहू को ही उपासना किया करता है । उसकी उपासना करके इसके उपरान्त वह कलापेक्षी सोम की प्रतीक्षा किया करता है ।८-९। वहाँ वास करता हुआ उनकी तृप्ति के लिए सोम से स्वधामृत ग्रहण करता है दश और पाँच अर्थात् पन्द्रह स्वधामृत परिस्तवों से कृष्णपक्ष में भोग करने वालों की प्रीति होती है जो परमांशुओं के द्वारा दोहित की जाती है ।१०। तुरन्त अभिरक्षण करने वाले उस सौम्य मधु से यह पितृगण के लिए बताई हुई विधि से निकायों के देने पर सौम्य सुधामृत से पितृगण का तर्पण किया किया करता था जो कि सोम्य, बर्हिषद्, काव्य और उसी

भाँति अग्निष्वात्त हैं ।११-१२। अग्नि ऋतु कहा गया है और विप्रों के द्वारा ऋतु को सम्वत्सर कहा जाता जाता है । ऋतुयें उससे समुत्पन्न हुए और ऋतुओं से आर्त्तव हुए थे ।१३। ऋतुओं के सूनु पितर अर्द्ध बोर्द्ध मास जानने चाहिए । पितामह ऋतुयें हैं जो अमावस्याब्द के सूनु हैं प्रपितामह देव कहे गये हैं । पंचाब्द ब्रह्माजी के पुत्र हैं ।१४।

सोम्याबर्हिषदः काव्याः अग्निष्वात्ताइतित्रिधा ।
गृहस्थायेतु यज्वानो हविर्यज्ञार्चवाश्चये ।
स्मृता बर्हिषदस्तो वै पुराणे निश्चयं गताः ।१५
गृहमेधिनश्च यज्वानो अग्निष्वात्तार्त्तवाः स्मृताः ।
अष्टका पतयः काव्याः पञ्चाब्दांस्तु निबोधतः ।१६
तेषुसम्वत्सरोह्यग्निः सूर्य्यस्तु परिवत्सरः ।
सामस्त्विद्द्वत्सरश्चैववायुश्चैवानुवत्सरः ।१७
रुद्रस्तुवसत्सरस्तेषां पञ्चाब्दाये युगात्मकाः ।
कालेनाधिष्ठितस्तेषु चन्द्रमाः स्रवते सुधाम् ।१८
एते स्मृता देवकृत्याः सोमपाश्चाष्मपा ये ।
तास्तेन तर्पयामास यावदासीत्पुरूरवाः ।१९
यस्मात्प्रसूयतेसामो मासिमासिविशेषतः ।
ततः स्वधामृतंतद्वै पितॄणां सोमपायिनाम् ।
एतत्तदमृत सोममवाप मधु चैव हि ।२०
ततः पीतसुधं सोमं सूर्योऽसावेकरश्मिना ।
आप्यायते सुषुम्णेन सोमन्तु सोमपायिनम् ।२१

वे सौम्य—इर्हिषद काव्य और अग्निष्वात्त इस तरहसे तीन प्रकार के हैं । जो गृहस्थयज्वा हैं और जो हविर्यज्ञार्त्तव हैं वे पुराण में निश्चय को प्राप्त हुए बर्हिषद कहे गये हैं ।१५। गृहमेधी यज्वा अग्निष्वात्तार्त्तव कहे गये हैं । अष्टका यति काव्य है । अब पञ्चाब्दों के

भाँति अग्निष्वात्त हैं ।११-१२। अग्नि ऋतु कहा गया है और विप्रों के द्वारा ऋतु को सम्वत्सर कहा जाता जाता है । ऋतुयें उससे समुत्पन्न हुए और ऋतुओं से आर्त्तब हुए थे ।१३। ऋतुओं के सूनु पितर अर्त्तबोर्द्ध मास जानने चाहिए । पितामह ऋतुयें हैं जो अमावस्याब्द के सूनु हैं प्रपितामह देव कहे गये हैं । पंचाब्द ब्रह्माजी के पुत्र हैं ।१४।

सोम्याबर्हिषद: काव्या: अग्निष्वात्ताइतित्रिधा ।
गृहस्थायेतु यज्वानो हविर्यज्ञार्त्तवाश्चये ।
स्मृता बर्हिषदस्तो वै पुराणे निश्चयं गता: ।१५
गृहमेधिनश्च यज्वानो अग्निष्वात्तार्त्त वा: स्मृता: ।
अष्टका पतय: काव्या: पञ्चाब्दांस्तु निबोधत: ।१६
तेषुसम्वत्सरोह्यग्नि: सूर्य्यस्तु परिवत्सर: ।
सामस्त्विड्वत्सरश्चैववायुश्चैवानुवत्सर: ।१७
रुद्रस्तुवसत्सरस्तेषां पञ्चाब्दाये युगात्मका: ।
कालेनाधिष्ठितस्तेषु चन्द्रमा: स्रवते सुधाम् ।१८
एतै स्मृता देवकृत्या: सोमपाश्चाष्मपा ये ।
तास्तेन तर्पयामास यावदासीत्पुरूरवा: ।१९
यस्माप्रस्सूयतेसामो मासिमासिविशेषत: ।
तत: स्वधामृतांतद्वै पितॄणां सोमपायिनाम् ।
एतत्तदमृत सोममवाप मधु चैव हि ।२०
तत: पीतसुधं सोमं सूर्योऽसावेकरश्मिना ।
आप्यायते सुषुम्णेन सोमन्तु सोमपायिनम् ।२१

वे सौम्य—इर्हिषद काव्य और अग्निष्वात्त इस तरहसे तीन प्रकार के हैं । जो गृहस्थयज्वा हैं और जो हविर्यज्ञार्त्तव हैं वे पुराण में निश्चय को प्राप्त हुए बर्हिषद कहे गये हैं ।१५। गृहमेधी यज्वा अग्निष्वात्तार्त्तव कहे गये हैं । अष्टका यति काव्य है । अब पञ्चाब्दों के

विषय में समझ लो ।१६। उनमें सम्वतसर अग्नि है और सूर्य परिवत्सर है। सोम इड्वत्सर है और वायु अनुवत्सर है उनका रुद्रवत्सर है। ये पचाब्द युगात्मक हैं। काल से अधिष्ठित हुआ चन्द्रमा उनमें सुधा का स्रवण किया करता है।१७-१८। ये इतने देवकृत्य बताये गयेहैं। सोमय और उष्मय जो हैं उनको उसीसे पुरुरवा जब तक रहता है तृप्त किया करता है। क्योंकि सोम मास-मास में विशेष रूप से प्रसव किया करता है। वह स्वधामृत सोमपायी पितृगणों के लिए है। यह सोमअमृत और मधु को प्राप्त करता है।१६-२०। इसके अनन्तर सुधा का पान किये हुए सोम को यह सूर्य एक रश्मि के द्वारा सोमपायी सोम को सुषुम्णा से आप्यायित किया करता है।२१।

नि:शेषावैकला: पूर्वायुगपद्व्यापयन्पुरा।
सुषुम्णाप्यायमानस्य भागं भागमहः क्रमात् ।२२
कला: क्षीयन्ति कृष्णास्ता: शुक्ला ह्याप्याययन्ति च।
एवं सा सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनु ।२३
पौर्णमास्यां सदृश्येत शुक्ल सम्पूर्णमण्डल:।
एवमाप्यायित: सोम: शुक्लपक्षेप्यहः क्रमात् ।
देवै: पीतसुधं सोमं पुरापश्चात्पिबेद्रवि: ।२४
पीतं पञ्चदशाहन्तु रश्मिनैकेनभास्कर: ।
आप्याय यन् सुषुम्णेन भागं भागमहः क्रमात् ।२५
सुषुम्णाप्यायमानस्य शुक्लावर्द्धन्तिवैकला:।
तस्माद्ध्रसन्तिवकृष्णा: शुक्लाप्याययन्तिच ।२६
एवमाप्यायतो सोम: क्षीयते च पुन: पुन:।
समृद्धिरेवं सोमस्य पक्षयो: शुक्लकृष्णयो: ।२७
इत्येष पितृमान् सोम: स्मृतस्तद्वत् सुधात्मक:।
कान्त: पञ्चदशै: सार्द्धं सुधामृतपरिस्रवै: ।२८

पहिले सम्पूर्ण पूर्व कला एक ही साथ क्षावित हुई थी। सुषुम्णा के द्वारा अध्याय मान का दिन के क्रम से भाग-भाग हो गए। वे कृष्ण कलायें क्षीण हुआ करती हैं और शुक्लपक्ष की कलायें आप्यायन किया करती हैं। इस प्रकार से सूर्य के ही वीर्यसे चन्द्रमा का तनु आप्यायित है।२२-२३। शुक्लपक्ष का सम्पूर्ण मण्डल पूर्णमासी में दिखलाई दिया करता है। इस प्रकार से ही दिनों के क्रम से शुक्लपक्ष में सोम आप्यायित होता है। देवों के द्वारा जिसकी सुधा का पान कर लिया गया है उस सोम को पहिले और पीछे रवि पान किया करता है।२४। भास्कर एक रश्मि के द्वारा पन्द्रह दिन तक पीत को अहक्रम से भाग-भाग करके सुषुम्णा के द्वारा आप्यायन किया करता है। सुषुम्णा के द्वारा आप्यायमान की शुक्ल कलायें बढ़ा करती हैं। इस कारण से कृष्णपक्ष की कलाओं का ह्रास होता है और शुक्ल कलायें आप्यायन किया करती है।२५-२६। इसी भाँति यह सोम पुनः पुनः आप्यायित होता है और क्षीण हुआ करता है। शुक्लपक्षों में इसी प्रकार से सोम की समृद्धि एवं क्षय हुआ करता है।२७। इस रीति से यह पितृमान सोम बताया गया है और उसी प्रकार से यह सुधात्मक है। सुधामृत परिस्तवों के द्वारा पञ्चदश है उसके साथ ही यह कान्त है।२८।

अतः परं प्रवक्ष्यामि पर्वाणां सन्धयश्च याः।
यथा ग्रथ्नन्ति पर्वाणिआबृत्तादिक्षुवेणुवत् ।२९
तथाब्दमासाः पक्षाश्च शुक्लाः कृष्णास्तु व स्मृताः।
पौर्णमास्यास्तु यो भेदो ग्रन्थयः सन्धयस्तथा ।३०
अर्द्धमासस्य पर्वाणि द्वितीयाप्रभृतीनि च।
अग्न्याधानक्रिया यस्मान्नीयन्ते पर्वसन्धिषु ।३१
तस्मात्तु पर्वणोह्यादौ प्रतिपद्यादिसन्धिषु।
सायाह्ने अनुमत्याश्च द्वौलवौ कालउच्यते।

लवौ द्वावेव राकायाः कालो ज्ञेयोऽपराह्णिकः ।३२
प्रकृतिः कृष्णपक्षस्य कालेऽतीतेऽपराह्निके ।
सायाह्ने प्रतिपद्येष स कालः पौर्णमासिकः ।३३
व्यतीपाते स्थिते सूर्ये लेखादूर्ध्वं युगान्तरम् ।
युगान्तरोदिते चैवचन्द्रे लेखोपरिस्थिते ।३४
पूर्णमासव्यतीपातौ यदा पश्येत्परस्परम् ।
तौ तु वै प्रतिपद्यावत्तस्मिन्काले व्यवस्थितौ ।३५
तत्कालं सूर्यमुद्दिश्य दृष्ट्वा संख्यातुमर्हसि ।
स चैव सत्क्रियाकालः षष्ठः कालोऽभिधीयते ।३६

इसके आगे जो पर्वों की सन्धियाँ होती हैं उनके विषय में वर्णन करते हैं । जिस प्रकार से आवृत्त से ईख के बाँस की तरह पर्व ग्रथित हुआ करते हैं । तथा अब्द, मास, पक्ष शुक्ल और कृष्ण कहे गये हैं । पौर्णमासी का जो भेद होता है वे ग्रन्थियाँ हैं ।२६-३०। अर्ध मास के द्वितीया प्रभृति जो तिथियाँ हैं । ये ही पर्व हैं जिससे पर्व सन्धियों में अग्न्याधान क्रिया प्राप्तकी जाया करती है उससे प्रतिपदा आदि संधियों में पर्व के आदि में होता है । सायाह्न में और अनुमति का दो लव कहा जाया करता है । दो लव ही राका का अपराह्नि काल जानना चाहिए ।३१-३२। अपराह्निक काल के अतीत हो जाने पर कृष्ण पक्ष की प्रकृति है । सायाह्न में प्रतिपदा में वह यह काल पौर्णमासिक होता है ।३३। व्यतीपात में सूर्य के स्थित होने पर लेख से ऊर्ध्व में युगान्तर होता है । लेखा के ऊपर में स्थित चन्द्रमा के युगान्तर में उदित होने पर पूर्णमास और व्यतीपात जिस समय में परस्पर में देखते हैं । वे दोनों जब तक प्रतिपत् हैं उस काल में व्यवस्थित होते हैं । वह काल सूर्य का उद्देश करके देखकर संख्या करने के योग्य होता है और वह ही सत्क्रिय का काल है जो कि षष्ठ काल कहा जाता है ।३४-३६।

पूर्णेन्दुः पूर्णपक्षे तु रात्रिसन्धिषु पूर्णिमा ।
तस्मादाप्यायते नक्तं पौर्णमास्यां निशाकरः ।३७
यदान्योन्यवती पाते पूर्णिमा प्रेक्षते दिवा ।
चन्द्रादित्योऽपराह्णे तु पूर्णत्वात् पूर्णिमा स्मृता ।३८
यस्मात्तामनुमन्यन्ते पितरो दैवतः सह ।
तस्मादनुमतिर्नाम पूर्णत्वात् पूर्णिमा स्मृता ।३९
अत्यर्थं राजते यस्मात् पौर्णमास्यां निशाकरः ।
रञ्जनाच्चैव चन्द्रस्य राकेति कवयो विदुः ।४०
अमावसेतामृक्षे तु यदा चन्द्रदिवाकरौ ।
एका पञ्चदशी रात्रिरमावस्याः स्मृता ।४१
उद्दिश्यताममावास्यां यदा दर्शं समागतौ ।
अन्योऽन्यं चन्द्रसूर्यौ तु दर्शनाद्दर्श उच्यते ।४२

पूर्ण पक्ष में पूर्ण इन्दु होता है और रात्रि सन्धियों में पूर्णिमा होती है। इसी से पूर्णमासी में निशाकर आप्यायन प्राप्त किया करता है।३७। जब अन्योन्यवती पूर्णिमाकार क्षण करके दिव प्रेक्षण करता है और अपराह्न मे चन्द्र और आदित्य होते हैं तब पूर्णत्व होने से पूर्णिमा कही गयी है।३८। क्योंकि पितृगण देवताओं के साथ उसको मानते हैं इसी कारण से उसका अनुमन्य मान होने से अनुमति यह नाम हुआ है और पूर्णत्व होने से पूर्णिमा है।३९। पौर्णमासी में निशाकर बहुत ही अधिक दीप्तिमान् होता है यही कारण है कि चन्द्रमा के रञ्जन होने ही से कविगण उसको राका कहते हैं।४०। जिस समय में चन्द्रमा और दिवाकर दोनों ऋक्ष में अमावसित होते हैं वह एक ही पंचदशी रात्रि होती है जिसको अमावस्या की रात्रि कहा गया है।४१। उस अमावस्या का उस अमावस्या का उद्देश करके जब दर्शक समागम होते हैं और चन्द्र तथा सूर्य अन्योन्य को मिलते हैं तो दर्शन होने के कारण से ही उसका दर्श यह नाम कहा जाता है।४२।

द्वौ द्वौ:लवौवमावास्यां स कालः पर्वसन्धिषु ।
द्व्यक्षरः कुहूमात्रश्च पर्वकालस्तु स स्मृतः ।४३
दृष्टचन्द्रा त्वमावास्या मध्याह्नप्रभृतीह वै ।
दिवा तदूर्ध्वं रात्र्यान्तु सूर्ये प्राप्ते तु चन्द्रमाः ।४४
सूर्येण सहसोद्गच्छेत्ततः प्रातस्तनात्तु वै ।४५
समागम्य लवौ द्वौ तु मध्याह्नान्निपतन्रविः ।
प्रतिपच्छुक्लपक्षस्य चन्द्रमा सूर्य्यमण्डलात् ।४६
निर्मुच्यमानयोमध्येतयोर्मण्डलयोस्तु व ।
स तदान्वाहुतेः कालोदर्शस्यच वषट्क्रियाः ।
एतद्दतुमुखं ज्ञेयमावास्यान्तु पार्वणम् ।४७
दिवा पर्व त्वमावास्यां क्षीणेन्दौ धवले तु वै ।
तस्माद्दिवा त्वमावास्यां गृह्यते यो दिवाकरः ।४८
कुहेति कोकिलेनोक्तं यस्मात् कालात् समाप्यते ।
तत्कालसंज्ञिता ह्येषा अमावास्या कुहूः स्मृता ।४९

दो-दो लव अमावस्या में हैं वह काल पर्व सन्धियों में द्व्यक्षर और कुहू मात्र हैं। वह पर्वकाल कहा गया है।४३। जिसमें चन्द्रमा दिखलाई दिया गया हो वह अमावस्या यहाँ पर मध्याह्न प्रभृति है दिवा है उससे ऊर्ध्व में रात्रि में सूर्य के प्राप्त होने पर चन्द्रमा सूर्य के साथ सहसा उदित होवे उसके पश्चात् प्रातःकालीन होता है।४४-४५। दो लवों का समागम करके मध्याह्न से रवि निपतित हो रहा हो और सूर्य मंडल से चन्द्रमा दिखलाई देवे तब शुक्ल पक्ष की प्रतिपत् होती है। निर्मच्यमान उन दोनों मंडलों के मध्य में वह काल जो होता है आहुति काल है और दर्शकी वषट् क्रिया का है। अमावस्या में यह ऋतुमुख पार्वण जानना चाहिए।४६-४७। धवल क्षीण इन्दु के होने पर अमावस्या में दिवा पर्व होता है। इसी से अमावस्या में जो दिवाकर ग्रहण किया जाता है।४८। कुहू रति कोकिल के द्वारा कहा गया जिस

काल से समाप्त किया जाता है उसी काल से संज्ञा वाली यह अमावस्या कुहू—इस नाम से कही गयी है ।४६।

सिनीवालीप्रमाणन्तु क्षीणशेषो निशाकरः ।
अमावास्या विशत्यर्कं सिनीवाली तदा स्मृता ।५०
अनुमतिश्च राका च सिनीवाली कुहूस्तथा ।
एतासां द्विलवः कालः कुहूमात्रा कुहूः स्मृताः ।५१
इत्येष पर्वसन्धीनां कालोवैद्विलवः स्मृतः ।
पर्वाणान्तुल्यकालस्तु तुल्याहुतिवषट्क्रियाः ।५२
चन्द्रसूर्य्यव्यतीपाते समे वै पूर्णिमे उभे ।
प्रतिपत्प्रतिपन्नस्तु पर्वकालो द्विमात्रकः ।५३
कालः कुहू सिनीवाल्योः समृद्धो द्विलवः स्मृतः ।
अर्कनिर्मण्डले सोमे पर्वकालः कला: स्मृताः ।५४
यस्मादपूर्यते सोमः पञ्चदश्यान्तु पूर्णिमा ।
दशभिः पञ्चभिश्चैव कलाभिर्दिवसंक्रमात् ।५५
तस्मात् पञ्चदशे सोमे कला वै नास्ति षोडशी ।
तस्मात् सोमस्य विप्रोक्तः पञ्चदश्यां मया क्षयः ।५६

सिनी वाली का प्रमाण तो यही है कि निशाकर क्षीण शेष होता है और अमावस्या अर्कमें प्रवेश किया करती है उस समय में यह सिनी वाली कही गयी है ।५०। अनुमति राका—सिनी वाली तथा कुहू इन सबका द्विलव काल होता है । कुहू कही गई है ।५१। पर्व सन्धियों का यह काल हो तब कहा गया है । पर्वों का तुल्य काल तुल्य आहुति वषट् क्रिया वाला है । चन्द्र सूर्य के व्यतीपात में दोनों पूर्णिमायें समान हैं प्रतिपदा से प्रतिपल द्विमात्रक पर्वकाल हुआ करता है ।५२-५३। कुहू और सिनी वाली दोनो का समृद्धकाल द्विलव कहा गया है । अर्क निमन्डल सोम में पर्व काल कला कही गयो हैं ।५४। क्योंकि सोम पञ्चदशी में पूरित नहीं होता है । पूर्णिमा पाँच और दश कलाओ से

दिवसों के क्रम से होती है । इसी से पंचदश सोम में षोडशी कला नहीं है । इससे हे विप्र ! मैंने सोम का पंचादशी में क्षय कहा है ।५५-५६।

इत्येते पितरोदेवाः सोमपाः सोमवर्द्धनाः ।
आर्त्तवा ऋतवोऽथाब्दा देवास्तान् भावयन्ति हि ।५७
अतः परं प्रवक्ष्यामि पितॄन् श्राद्धभुजस्तु ये ।
तेषां गतिञ्चसत्तत्त्व प्राप्तिश्राद्धस्यचैव हि ।५८
न मृतानाङ्गतिः शक्या ज्ञातुं वा पुनरागतिः ।
तपसा हि प्रसिद्धेन किं पुनर्मांसचक्षुषा ।५९
अत्र देवान् पितॄंश्चैते पितरो लौकिकाः स्मृताः ।
तेषान्ते धर्म्मसामर्थ्यात् स्मृताः सायुज्यगा द्विजः ।६०
यदि वाश्रमधर्मेण प्रज्ञानेषु व्यवस्थितान् ।
अन्येचात्र प्रसीदन्ति श्राद्धयुक्तेषु कर्म्मसु ।६१
ब्रह्मचर्येण तपसा यज्ञेन प्रजया भुवि ।
श्राद्धेन विद्यया चैव चान्नदानेन सप्तधा ।६२
कर्म्मस्वेतेषु ये सक्तावत्तन्त्या देहपातनात् ।
स्वर्गता दिवि मोदन्ते पितृमन्त उपासते ।६३

ये इतने पितरदेव, सोमप, सोमवर्द्धन आर्तव—ऋतव हैं । इसके अनन्तर शब्ददेव उनको भावित किया करते हैं ।५७। इसके आगे जो श्राद्धभोगी पितरहै उनको बतलाता हूँ । उनकी गति-सत्तत्व और श्राद्ध की प्राप्ति के विषय में कहता हूँ ।५८। जो मृत हो जाते हैं । उनकी गति तथा पुनरागति जानी नहीं जा सकती है । यह प्रसिद्ध तपके द्वारा भी जब नहीं जानी जाती है तो मेरी तो बात ही क्या जो चक्षु से युत है ।५९। यहाँ पर देवों को पितरों को बताया गया है । ये पितर लौकिक कहे गये हैं । उनमें वे धर्म की सामर्थ्य से द्विजों के द्वारा

सायुज्य में गमन करने वाले बताये गये हैं ।६०। यदि वा आश्रम धर्म से प्रज्ञांतोमें व्यवस्थितों को कहा गया है और यहाँ पर अन्य श्राद्धयुक्त कर्म्मों में प्रसन्न हुआ करते हैं । ब्रह्मचर्य—तपस्या, यज्ञ, भूलोक में प्रजा, श्राद्ध, विद्या और अन्न ये सात यकार है । इन कर्मों में जो सक्त हैं और देह का पातन जब तक होता है तब तक रहा करते हैं वे देनों —पितृगणों के साथ तथा सोमप और ऊष्णवों के साथ स्वर्गलोक में गये हुए दिविलोक में आनन्द की प्राप्ति किया करते हैं और पितृमन्त उपासना किया करते हैं ।६१-६३।

प्रजावता प्रसिद्धैषा उक्ताश्राद्धकृताञ्च वै ।
तेषां निवापे दत्तं हि तत् कुलीनैस्तु बान्धवैः ।६४
मासश्राद्धं हि भुञ्जास्तेऽप्येते सोमलौकिकाः ।
एते मनुष्याः पितरो मासश्राद्धभुजस्तु वै ।६५
तेभ्योऽपरे तु येत्वन्ये सङ्कीर्णाः कर्मयोनिषु ।
भ्रष्टाश्चाश्रमधर्मेषु स्वधास्वाहाविवर्जिताः ।६६
भिन्ने देहे दुरापन्नाः प्रेतभूता यमक्षये ।
स्वकर्माण्यनुशोचन्तो यातनास्थानमागताः ।६७
दीर्घाश्चैवातिशुष्काश्च श्मश्रुलाश्च विवाससः ।
क्षुत्पिपासाभिभूतास्तो विद्रवन्ति त्वितस्ततः ।६८
सरित्सरस्तडागानि पुष्करिण्यश्चसर्वशः ।
परान्नान्यभिकाङ्क्षन्तः काल्यमानाइतस्ततः ।६९
स्थानेषु पात्यमाना ये यातनास्थेषु तेषु वै ।
शाल्मल्यां वैतरिण्याञ्चकुम्भीपाकेद्धवालुके ।७०

जो प्रजा वाले लोग हैं उनके यहाँ यह प्रसिद्ध है और जो श्राद्ध करने वाले हैं उनके यहाँ यह कहा गता है । उनके कुल में होने वाले बान्धवों के द्वारा निकाय में दिया हुआ श्राद्ध अर्थात् मास श्राद्ध का

भोग करने वाले हैं वे भी ये सोम लौकिक हैं। ये मनुष्य पितर हैं जो कि मास श्राद्ध का भोजन करने वाले हैं।६४-६५। उनसे दूसरे जो अन्य हैं जो कर्म योनियों में संकीर्ण हैं वे आश्रम धर्मों में महान् परिभ्रष्ट हैं और स्वाहा तथा स्वधा-इन दोनों से विवर्जित हैं। भिन्न देह में दुर्लभ-प्रेतभूत और यमक्षयमें अपने कृत कर्मों की चिन्ता करते हुए किये हुए कर्मों का दण्ड भोगने का जो स्थान था उस पर लाये गये हैं।६६-६७। दीर्घ-अत्यन्त शुष्क-दाढ़ी मूँछों वाले—वस्त्रोंसे रहित—भूख और प्यास से सताये हुए वहाँ पर इधर-उधर भागे-भागे फिरते हैं।६८। जल के प्राप्त करने के लिए किसी सरिता, सरोवर, तड़ाग और पुष्करिणियों की सब ओर खोज करते हुए दौड़ लगाते फिरा करते हैं। इधर-उधर कात्यमान होते हुए परान्न की इच्छा रखते हुए रहा करते हैं किन्तु वे उन यातनायें भोगने के स्थानों में बरबश पटक दिए जाया करते हैं—नारकीय यातना भोगने के नाम ये हैं—शामली, वैतरिणी, कुम्भीपाक, इक्षवालुक आदि हैं।६९-७०।

असिपत्रवनेचैवयात्यमाना: स्वकर्मभि: ।
तत्रस्थानान्तु तेषां वै दु:खितानामशायिनाम् ।७१
तेषां लोकान्तरस्थानां बान्धवैर्नामगोत्रत: ।
भूमावसव्यं दर्भेषु दत्ता: पिण्डास्त्रयस्तु वै ।७२
प्राप्तांस्तु तर्पयन्त्येव प्रेतस्थानेष्वधिष्ठितान् ।
अप्राप्ता यातनास्थानंप्रभ्रष्टा ये च पञ्चधा ।७३
पश्चाद्ये स्थावरान्तो वै भूतानीके स्वकर्मभि: ।
नानारूपासु जातीनां तिर्यग्योनिषुमूर्त्तिषु ।७४
यदाहारा भवन्त्येते तासु तास्विह योनिषु ।
तस्मिस्तस्मिस्तदाहारेश्राद्धं दत्तन्तु प्रीणयेत् ।७५
काले न्यायागतम्पात्रे विधिना प्रतिपादितम् ।
प्राप्नुवन्त्यन्नमादत्तं यत्र यत्रावतिष्ठति ।

यथा गोषु प्रनष्टासु वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा श्राद्धेषु दृष्टान्तो मन्त्रः प्रापयते तु तम् ।७६
एवं ह्यविकलं श्राद्धं श्राद्धादत्तं मनुरब्रवीत् ।
सनत्कुमारः प्रोवाच पश्यन् दिव्येन चक्षुषा ।७७

अपने ही कृत कर्मों के द्वारा नारकीय मानव असिपत्र वन नाम वाले नरक में डाल दिए जाते हैं जहाँ पर चारों ओर बरछी और तलवारें लगी रहा करती हैं। वहाँ पर जो स्थित रहते हैं वे अत्यधिक दुःखित रहा करते हैं और उन्हें शयन करने तक का कोई वहाँ स्थान नहीं होता है। ऐसे अन्य लोकों में स्थित उनके बान्धवों के द्वारा जो नाम और गोत्र का उच्चारण करके अपसव्य हो भूमि में दर्भों पर तीन पिण्ड दिए गए हैं ।७१-७२। प्रेत स्थानों में अधिष्ठितों को प्राप्त हुए उनको ये पिण्ड तृप्त किया करते हैं। जो यातना के स्थान में अप्राप्त हैं वे प्रभ्रष्ट होकर पाँच प्रकार से विभक्त होते हैं। पीछे जो अपने कर्मों के द्वारा स्थावरान्त में भूत हैं ये तिर्यक योनि वाली मूर्त्तियों में तथा जातियों के नाना रूपोंमें जब आहार होते हैं तो उस-उस आहार में दिया हुआ श्राद्ध उनको प्रसन्न एवं तृप्त किया करता है। समय पर न्याय पूर्वता पात्र में विधि के सहित प्रतिपादित एवं आदत्त अन्न को जहाँ-जहाँ पर अवस्थित होता है प्राप्त करते हैं ।७३-७५। जिस प्रकार से गौओं के प्रनष्ट होने पर वत्स माता को प्राप्त किया करता है उसी प्रकार से श्राद्धों में यह दृष्टान्तहै कि मन्त्र उसको प्राप्त कराया करता है ।७६। इसी प्रकार से श्रद्धा से दिया हुआ अविकल श्राद्ध है—ऐसा ही मनु ने कहा है। अपने दिव्य नेत्रों के द्वारा देखकर भगवान् सनत्कुमार ने कहा है ।७७।

गतागतज्ञः प्रेतानां प्राप्ति श्राद्धस्य चैव हि ।
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ।७८
इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरश्च वै ।

अन्योन्यपितरो ह्येते देवाश्च पितरो दिवि ।७९
एते तु पितरो देवा मनुष्याः पितरश्च ये ।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।८०
इत्येष विषयः प्रोक्तः पितृणां सोमपायिनाम् ।
एतत् पितृमहत्त्वं हि पुराणेनिश्चयंगतम् ।८१
इत्येष सोमसूर्य्याभ्यामैलस्य च समागमः ।
अवाप्ति श्रद्धयाचैवं पितृणाञ्चैवतर्पणम् ।८२
पर्वणाञ्चैव यः कालो यातनास्थानमेव च ।
समासात् कीर्तितस्तुभ्यं समएष सनातनः ।८३
वैरूप्यं येन तत्सर्वं कथितन्त्वेकदेशिकम् ।
अशक्यं परिसंख्यातुं श्रद्धेयं भूतिमिच्छता ।८४
स्वायम्भुवस्य देवस्य एष सर्गो मयेरितः ।
विस्तरेणानुपूर्व्याच्च भूयः किं कथयामि वः ।८५

प्रेतों के गतागत का ज्ञाता और श्राद्ध की प्राप्ति इसके लिए कृष्ण पक्ष के ही दिनहै और जो शुक्ल पक्ष होता है वह तो उनके शयन के लिए रात्रि होती है ।७८। ये इतने पितर देव हैं—देव पितर है । ये अन्योन्य में पितर है और दिवलोक में देव पितर हैं ।७९। ये पितरदेव हैं और जो देव पितर हैं तथा मनुष्य पितर हैं एवं पिता-पितामह और प्रपितामह हैं ।८०। यह इतना सोमपायी पितृगणों का विषय बतला दिया गया है । यह पितृगण का महत्व पुराण में निश्चय को प्राप्तहुआ है ।८१। यह सोम और सूर्यों का तर्पण तथा पर्वों का काल और यातना भोगने का स्थान यह सभी संक्षेप के साथ तुम्हारे सामने वर्णित कर दिया है । यह सम और सनातन है । जिसके द्वारा वैरूप्य होता है वह सभी एक देशिक कह दिया गया है इसकी परिसंख्या नहीं की जा सकती है । जो भूतिकी इच्छा करने वालाहै उसे श्रद्धा करनी चाहिए । स्वायम्भुव देव का यह सर्ग विस्तार के साथ और आनुपूर्वी के सहित

मैंने आपको सब बतला दिया है। अब आगे आप लोगों को मैं क्या बतलाऊँ—यह कहिए।८५।

५६—चतुर्युग मान वर्णन

चतुर्युगानि यानि स्युः पूर्वे स्वायम्भवेऽन्तरे।
एषां निसर्गं संख्याञ्च श्रोतुमिच्छाम विस्तरात्।१
एतच्चतुर्युगं त्वेवं तद्वक्ष्यामि निबोधत।
तत्प्रमाणं प्रसंख्याय विस्तराच्चैव कृत्स्नशः।२
लौकिकेन प्रमाणेन निष्पाद्याऽब्दन्तु मानुषम्।
तेनापीह प्रसंख्यायवक्ष्यामि तु चतुर्युगम्।३
काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव त्रिंशच्च काष्ठाङ्गणयेत् कलान्तु।
त्रिंशत्कलाश्चैव भवेन् मुहूर्तस्तैस्त्रिंशता राज्यहनी समेते।४
अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषलौकिके।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानाञ्चेष्टायै कर्म्मणामहः।५
पित्र्ये राज्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः।
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी।६
त्रिंशद्ये मानुषा मासाः पैत्रो मासः स उच्यते।
शतानि त्रीणि मासानां षष्ठ्या चाभ्यधिकानि तु।
पैत्र संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते।७

ऋषियों ने कहा—पूर्व स्वायम्भुव अन्तर में जो चतुर्युग हैं। अब हम लोग उनका निसर्ग और उनका संख्या काल श्रवण करना चाहते हैं और पूर्ण विस्तार के साथ उसे सुनना चाहते हैं।१। श्री सूतजी ने कहा—यह जो चारों युगों की चौकड़ी जिस प्रकार से है उसको मैं बतलाता हूँ उसे भली भाँति समझलो। उनका जो प्रमाण होता है उसको

प्रसंख्यात करके पूर्ण रूप से विस्तार के सहित मैं बतला रहा हूँ ।२। लौकिक प्रमाण के द्वारा मानुष वर्ष का निष्पादन करके उसी के द्वारा यहाँ पर प्रसंख्यात करके मैं चारों युगों का वर्णन करूँगा ।३। पन्द्रह निमेष की काष्ठा होती है और तीस काष्ठाओं की एक कला गिनी जाती है । तीस कलाओं का एक मुहूर्त्त होता है और तीस मुहूर्त्तों का एक अहोरात्र हुआ करता है ।४। सूर्य मानुष लौकि अहोरात्र में विभक्त होता है । रात्रि का समय प्राणियों के शयन कर निद्रा लेने का होताहै और दिन विविध भाँति के कर्मों की चेष्टा करने के लिए हुआ करता है ।५। पितृगण का मास रात्रि और दिन हुआ करता है उन दोनों का प्रतिभाग इसी भाँति हुआ करता है कि उनका कृष्ण पक्ष मासका दिन हुआ करता है और जो मास का शुक्ल पक्ष होता है वही शर्वरी स्वप्न के लिए होती हैं ।६। जो ये तीस मानुष मास है वह पैत्र मास कहा जाया करता है । तीन सौ आठ मासों का पैत्र सम्वत्सर होता है जो मानुष के द्वारा विभावित हुआ करता है ।७।

मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छतं भवेत् ।
पितॄणां तानि वर्षाणि संख्यातानि तु त्रीणि वै ।
दश च ह्यधिका मासाः पितुसंख्येह कीर्तिताः ।८
लौकिकेन प्रमाणेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः ।
एतद्दिव्यमहोरात्रमित्येषा वैदिकी श्रुति ।९
दिव्ये रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ।
अहस्तु यदुदक् चैव रात्रिर्या दक्षिणायनम् ।
एते रात्र्यहनी दिव्ये प्रसंख्याते तयोः पुनः ।१०
त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः ।
मानुषाणां शतं यच्च दिव्या मासास्त्रयस्तु ।
तथैव सह संख्यातो दिव्य एष विधिः स्मृतः ।११
त्रीणि वर्षशतान्येवं षष्टिवर्षंस्तथैव च ।

दिव्यः सम्वत्सरोह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः ।१२
त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः ।
त्रिंशदन्यानिवर्षाणि स्मृतः सप्तर्षिवत्सरः ।१३
नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि ।
वर्षाणि नवतिश्चैव ध्रुवसम्वत्सरःस्मृतः ।१४

मानुष मास के मान के द्वारा हो जो वर्षों का एक शतक होता है वे पितृगणके तीन वर्ष संख्यात किए गये हैं । दश अधिक मास होतेहैं । यहाँ पर यही पितृसंख्या कीर्त्तित की गयी है।८। लौकिक प्रमाण से जो मानुष शब्द कहा गया है—यह दिव्य अहोरात्र होता है इस प्रकार से यही वैदिकी श्रुति है ।९। दिव्य रात्रि और दिन एकवर्ष होता है और उन दोनों का प्रविभाग इसी प्रकार से हुआ करताहै कि जो उत्तरायण है वह दिन होता है और जो दक्षिणायन होता है वही रात्रि होती है । ये ही रात्रि और दिन दिव्य उनके प्रसंख्यात किये गये हैं ।१०। तीस जो वर्ष होते हैं वही दिव्य मास कहा गया है । मनुष्यों के जो शत हैं वे दिव्य मास कहा गया है । मनुष्यों के जो शत हैं वे दिव्य तीन मास होते हैं । इसी भाँति से यह संख्यात हुआ करता है और यही दिव्य विधि बतलाई गयी हैं ।११। तीन सौ आठ वर्ष का इस प्रकार से एक दिव्य सम्वत्सर मानुष के द्वारा प्रकीर्त्तित किया गया है ।१२। मानुष प्रमाण से जो तीन सहस्र वर्ष होते हैं और तीस और होते हैं वही सप्त र्षियों का वत्सर कहलाता है । नौ सहस्र मानुष वर्ष और नब्बे अधिक अर्थात् नौ हजार नब्बे वर्ष का ध्रुव सम्वत्सर कहा जाया करता है । ।१३-१४।

षट् त्रिंशत्तु सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि च ।
षट्श्चैव सहस्राणि संख्यातानि तु संख्यया ।
दिव्यं वर्ष सहस्रन्तु प्राहुः संख्याविदो जनाः ।१५
इत्येतदृषिभिर्गीतं दिव्यया संख्यया द्विजाः ।
दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्या प्रकल्पिता ।१६

चत्वारि भारते वर्षे युगानि ऋषयोऽब्रुवन् ।
कृतत्रेता द्वापरञ्च कलिश्चैवं चतुर्युगम् ।१७
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेताभिधीयते ।
द्वापरञ्च कलिश्चैव युगानि परिकल्पयेत् ।१८
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत् कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छती सन्ध्यशश्च तथाविधः ।१९
इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु ।
एकपादे निवर्त्तन्तो सहस्राणि शतानि च ।२०
त्रेता त्रीणि सहस्राणि युगसंख्याविदो विदुः ।
तस्यापि त्रिशती सन्ध्या सन्ध्यांशः सन्ध्यया समः ।२१

जो संख्या के वेत्ता पुरुष हैं वे छत्तीस हजार मानुष वर्ष और साठ हजार संख्या के द्वारा जो संख्यात किए गए हैं उनको दिव्यसहस्र वर्ष कहा करते हैं ।१५। हे द्विजगण ! ऋषियगणों के द्वारा दिव्य संख्या से यहाँ बताया गया है और दिव्य प्रमाण के द्वारा ही युग संख्या भी प्रकीर्त्तित की गयी है । ऋषियों ने भारत वर्षमें चार युग बतलाते हैं । उन चारों युगों के नाम कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापर और कलियुग हैं । ये चारों युग क्रम से ही हुआ करते हैं । सबसे पूर्व कृतयुग होता है । उसके पश्चात् त्रेतायुग कहा गया है और फिर द्वापर तथा कलियुग होता है । चार सहस्रवर्षों का कृतयुग होता है । उस कृतयुगकी उतनी ही शत वाली सन्ध्या होती है और उसी प्रकार का सन्ध्यांश होता है । ।१६-१९। इतर तीनों में सन्ध्या से युक्त और सन्ध्यांश से युक्तों में एक पाद में सो सहस्र निवृत्त हो जाते हैं ।२०। युग संख्या के वैत्ता लोग त्रेता को तीन सहस्र कहा करते हैं । उसकी भी तीन शत वाली संध्या होती है और संध्या के समान ही संध्यांश होता है ।२१।

द्वे सहस्रे द्वापरन्तु सन्ध्यांशौ तु चतुःशतम् ।
सहस्रमेकं वर्षाणां कलिरेव प्रकीर्तित ।
द्वे शते च तथान्ये च सन्ध्या सन्ध्यांशयोः स्मृते ।२२
एषा द्वादशसाहस्री युगसंख्या तु संज्ञिका ।
कृतत्रेता द्वापरञ्च कलिश्चेति चतुष्टयम् ।२३
तत्र सम्वत्सराः सृष्टा मानुषास्तान्निबोधत ।
नियुतानि दश द्वे च पञ्च चैवात्र संख्यया ।
अष्टाविंशत्सहस्राणि कृतं युगमथोच्यते ।२४
प्रयतन्तु तथा पूर्णं द्वे चान्ये नियुते पुनः ।
षण्णवतिसहस्राणिसंख्या तानिच संख्यया ।२५
त्रेतायुगस्य संख्यैषा मानुषेण तु संज्ञिता ।
अष्टौ शतसहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु ।
चतुः षष्टिसहस्राणि वर्षाणां द्वापरं युगम् ।२६
चत्वारि नियुतानि स्युर्वर्षाणि तु कलिर्युगम् ।
द्वात्रिंशच्च तथान्यानि सहस्राणि तु संख्यया ।
एतत्कलियुगं प्रोक्तं मानुषेण प्रमागतः ।२७
एषा चतुर्युगावस्था मानुषेण प्रकीर्तिता ।
चतुर्युगस्य संख्याता सन्ध्या सन्ध्यांशकैः सह ।२८

दो सहस्र वर्ष द्वापर के बताये गये हैं तथा उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश भी चार सौ होते हैं । कलियुगका प्रमाण एक सहस्र वर्ष होता है । और उसके भी सन्ध्या तथा सन्ध्यांश दो सौ कहे गये हैं ।२२। इस प्रकार से यह बारह सहस्र वाली युग संख्या वाली होती है । ये चारों युग कृत-त्रेता-द्वापर और कलि इस प्रकार से क्रम से हुआ करते हैं । ।२३। उनमें मानुष सम्वत्सरों का सृजन किया गया है उनको भी आप समझलो । यहाँ पर संख्या से दश—दो और पाँच नियुत और अट्ठाईस सहस्र कृतयुग कहा जाता है ।२४। पूर्ण प्रयुत और दो नियुत

तथा छियानवे सहस्र संख्या के द्वारा त्रेतायुग की यह संख्या मानुष प्रमाण से संज्ञा वाली की गयी है । मानुष वर्ष आठ सौ सहस्र और चौंसठ हजार वर्षों के प्रमाण वाला द्वापर युग कहा गया है ।२५-२६। चार नियुत और अन्य बत्तीस सहस्र वर्षों की संख्या वाला कलियुग मानुष प्रमाण से कहा गया है।२७। यह चारों युगों की अवस्था मानुष प्रमाण के द्वारा कीर्त्तित की गयी है और चारों युगों की संख्या उनकी सन्ध्या और सन्ध्यांश के सहित संख्यात की गयी हैं ।२८।

एषा चतुर्युगाख्या तु साधिका त्वेकसप्ततिः ।
कृतत्रेतादियुक्ता सा मनोरन्तरमुच्यते ।२९
मन्वन्तरस्यसंख्या तु मानुषेण निबोधत ।
एकत्रिंशत्तथाकोटयः संख्याताः संख्ययाद्विजैः ।३०
तथा शतसहस्राणिदशचान्यानि भागशः ।
सहस्राणि तु द्वात्रिंशच्छतान्यष्टाधिकानि च ।३१
अशीतिश्चैव वर्षाणि मासाश्चैवाधिकास्तु षट् ।
मन्वन्तरस्यसंख्यैषामानुषेण प्रकीर्तिता ।३२
दिव्येन च प्रमाणेन प्रवक्ष्याम्यन्तरं मनोः ।
सहस्राणां शतान्याहुः सच वै परिसंख्यया ।३३
चत्वारिंशत् सहस्राणि मनोरन्तरमुच्यते ।
मन्वन्तरस्य कालस्तु युगैः सह प्रकीर्तिता ।३४
एषा चतुर्युगाख्या तु साधिका ह्येकसप्ततिः ।
क्रमेण परिवृत्ता सा मनोरन्तरमुच्यते ।३५
एतच्चतुर्दशगुणं कल्पमाहुस्तु तद्विदः ।
ततस्तु प्रलयः कृत्स्नः स तु संप्रलतो महान् ।३६

इन चारों युगों की साधिका इकहत्तर चौकड़ी जिसमें कृत, त्रेता आदि सभी युग होते हैं एक मनु का अन्तर होता है । अब उसी मन्वन्तर की संख्या मानुष प्रमाण से भी समझ लो । द्विजगणों के द्वारा

संख्या से इकत्तीस करोड़ संख्यात की गई है। तथा सौ सहस्र और अन्य देश सहस्र एवं आठ अधिक बत्तीस सौ वर्ष एवं छै मास अधिक प्रमाण से यह संख्या मन्वन्तर की कही गयी है।२६-३२। अब मैं दिव्य प्रमाण से मनु का अन्तर बतलाता हूँ। वह परिसंख्या से सौ सहस्र कहा गया है। चालीस सहस्र मनु का अन्तर बतलाता हूँ। वह परिसंख्या से सौ सहस्र कहा गया है। चालीस सहस्र मनु का अन्तर कहा जाता है। उसके ज्ञाता लोग इसका चौदह गुना कल्प कहा करते हैं और मन्वन्तरों का काल युगोंके साथ ही कहा गया है। ये चारों युगों की नाम वाली साधिका इकहत्तर चौकड़ी की होती है और क्रम से यह परिवृत होती है तो वही मन्वन्तर कहा जाता है। कल्प के बाद पूर्ण प्रलय होता है। वह महान् संप्रलय है।३३-३६।

कल्पप्रमाणो द्विगुणो यथा भवति संख्यया ।
चतुर्युगाख्या व्याख्याता कृतन्त्रेतायुगञ्चवै ।३७
त्रेतासृष्टिं प्रवक्ष्यामि द्वापरं कलिमेव च ।
युगपत्समवेतौ द्वौ द्विधा वक्तुं न शक्यते ।३८
क्रमागतं मयाप्येतत्तुभ्यं नोक्तं युगद्वयम् ।
ऋषिवंशप्रसङ्गेन व्याकुलत्वात्तथा क्रमात् ।३९
नोक्तं त्रेतायुगे शेषं तद्वक्ष्यामि निबोधत ।
अथ त्रेतायुगस्यादौ मनुः सप्तर्षयश्च ये ।
श्रौतस्मार्तं ब्रुवन्धर्मं ब्रह्मणा तु प्रचोदिताः ।४०
दाराग्निहोत्रसम्बन्धं ऋग्यजुःसामसंहिताः ।
इत्यादिबहुलं श्रौतं धर्मं सप्तर्षयोऽब्रुवन् ।४१
परम्परागतं धर्मं स्मार्तं त्वाचारलक्षणम् ।
वर्णाश्रमाचारयुक्तं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।४२

जिस प्रकार से संख्या से कल्प का प्रमाण द्विगुण होता है। कृत-युग और त्रेतायुग चार युगों की संख्या का व्याख्यान किया गया है।

अब त्रेताकी सृष्टि को बतलाऊँगा। द्वापर और कलियुग को भी बतलाऊँगा। एक ही साथ समवेत ये दोनों दो प्रकार से नहीं बतलाये जा सकते हैं। क्रम से प्राप्त इन दोनों युगों को मैंने भी आपको नहीं बतलाया है। ऋषियों के वंश के प्रसङ्ग से व्याकुलता होने के कारण तथा क्रम से त्रेतायुग में शेष नहीं बतलाया है। उसे अब बतलायेंगे भली भाँति समझ लो। इसके अन्तर त्रेता युग के आदि में मनु और जो सप्तर्षि हैं उनको श्रौत एवं स्मार्त धर्म को बतलाते हुए ब्रह्माजी के द्वारा प्रेरित किया गया था।३७-४०। दारा-अग्निहोत्र का सम्बन्ध—ऋक्, यजु और साम संहितायें—इत्यादि बहुलता वाला श्रौत धर्म सप्तर्षियों ने कहा था। स्मार्त्तत्व आचार के लक्षण वाला और वर्णाश्रमों के आचार से युक्त परम्परा के द्वारा आया हुआ धर्म इस सबको स्वायम्भुव मनु ने बतलाया था।४१-४२।

सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन तपसा तथा।
तेषां सुतप्ततपसा मार्गणानुक्रमेण ह।४३
सप्तर्षीणां मनोश्चैव आदौ त्रेतायुगे ततः।
अबुद्धिपूर्वकं तेन सकृत् पूर्वकमेव च।४४
अभिवृत्तास्तु ते मन्त्रा दर्शनैस्तारकादिभिः।
आदिकल्पेतुदेवानां प्रादुर्भूतास्तुतेस्वयम्।४५
प्रमाणेष्वथ सिद्धानामन्येषाञ्च प्रवर्तते।
मन्त्रयोगो व्यतीतेषु कल्पेष्वथ सहस्रशः।
ते मन्त्रा वै पुनस्तेषां प्रतिमायामुपस्थिताः।४६
ऋचो यजूंषिसामानिमन्त्राश्चाथर्वणास्तु ये।
सप्तर्षिभिश्चयेप्रोक्ताः स्मार्त्तन्तु मनुरब्रवीत्।४७
त्रेतादौ संहता वेदाः केवलं धर्म्मसेतवः।
संरोधादायुषश्चैव व्यस्यन्ते द्वापरे च।
ऋषयस्तपसा वेदानहोरात्रमधीयत।४८
अनादिनिधना दिव्याः पूर्वं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा।

स्वधर्म्मंसंवृता: साङ्गा यथा धर्मा युगे युगे ।
विक्रियन्तो स्वधर्म्मंन्तु वेदवादाद्यथायुगम् ।४६

सत्य से, ब्रह्मचर्य से, श्रुत, तप से और उनके भली भाँति तपे हुए तप से—अनुक्रम मार्ग से बतलाया था ।४३। इसके पश्चात् आदि त्रेता युग में सप्तर्षियों के और मनु के अबुद्धि पुरस्सर ही एक बार पहिले ही उसने मन्त्रों को अभिवृत्त किया था । वे ही अभिवृत्त मन्त्र तारक आदि दर्शनों के द्वारा देवों के आदि कल्प में स्वयं ही प्रादुर्भूत हो गए थे ।४४-४५। इसके अनन्तर वे सिद्धों के तथा अन्यों के प्रमाणों में प्रवृत्त हुए हैं । इसके पश्चात् सहस्रों कल्पों के व्यतीत होने पर यह मंत्र योग रहा है ।४६। फिर उनके वे मन्त्र प्रतिमा के रूप में उपस्थित हुए थे । ऋचायें—यजु, साम और जो अथर्ववेद के मन्त्र हैं तथा सप्तर्षियों के द्वारा जो मन्त्र कहे गये हैं और स्मार्त इनको मनु ने कहा था । त्रेतादि में संहृत हुए वेद केवल धर्म के सेतु थे । फिर आयु के सरोध होने से वे ही द्वापर में व्यवस्थित हुए हैं । ऋषिगण तप के द्वारा रात दिन वेदों का अध्ययन किया करते थे ।४७-४८। भगवान् स्वयम्भू ने पूर्व में अनादि निधन अर्थात् आदि-अन्त से रहित दिव्य वेदों को कहा था । ये युग-युग में धर्म के अनुसार ही अङ्गों के सहित स्वधर्म संवृत हुए थे । युग के अनुसार वेदवाद से अपने धर्म को विकृत किया करते हैं ।४६।

आरम्भयज्ञ: क्षत्रहविर्यज्ञा विश: स्मृता: ।
परिचारयज्ञा: शूद्राश्च जपयज्ञश्च ब्राह्मणा: ।५०
तत: समुदिता वर्णास्त्रेतायां धर्म्मशालिन: ।
क्रियावन्त: प्रजावन्त: समृद्धिसुखिनश्च वैं ।५१
ब्राह्मणैश्च विधीयन्तो क्षत्रिया: क्षत्रियैर्विश: ।
वैश्यान् शूद्रानुवर्तन्तो शूद्रान् परमनुग्रहात् ।५२
शुभा: प्रकृतयस्तेषां धर्मा वर्णाश्रमाश्रया: ।
सङ्कल्पितेन मनसा वाचा वा हस्तकर्म्मणा ।

त्रेतायुगे ह्यविकले कर्मारम्भः प्रसिध्यति ।५३
आयुरूपं बलं मेधा आरोग्यं धर्मशीलता ।
सर्वसाधारणं ह्येतदासीत्त्रेतायुगे तु वै ।५४
वर्णाश्रमव्यवस्थानमेषां ब्रह्मा तथाकरोत् ।
संहिताश्च तथा मन्त्रा आरोग्यधर्मशीलता ।५५
संहिताश्च तथा मन्त्रा ऋषिभिर्ब्रह्मण सुतैः ।
यज्ञः प्रवर्तितश्चैव तदा ह्येव तु दैवतैः ।५६
यामैः शुक्लैर्जयैश्चैव सर्वसाधनसंभृतैः ।
विश्वसृड्भिस्तथा सार्द्धं देवेन्द्रेण महौजसा ।
स्वायम्भुवेन्तरे देवैस्ते यज्ञाः प्राक्प्रवर्तिताः ।५७

आरम्भ यज्ञ क्षत्र हवि थे, फिर वैश्यों के यज्ञ कहे गये हैं। शूद्र परिचार यज्ञों वाले थे तथा जप यज्ञ वाले ब्राह्मण हुए थे ।५०। इसके उपरान्त त्रेतामें धर्मशाली वर्णों का समुदय हुआ था । वे सब क्रियाओं से सम्पन्न प्रजाओं वाले और सुख समृद्धिसे युक्त थे । ब्राह्मणों के द्वारा क्षत्रियों का विधान किया गया था—क्षत्रियों के द्वारा वैश्यों का किया गया था । शूद्र वैश्यों का अनुवर्त्तन करते थे और शूद्रों पर परम अनुग्रह था । उन सबकी प्रकृतियाँ परम शुभ थीं और धर्म भी वर्णों और आश्रमों के समाश्रय बाला था । उस पूर्ण त्रेता युग में सङ्कल्पित मनसे वाणी से और हाथों के द्वारा किए हुए कर्म से वह कर्मों का समारम्भ प्रसिद्ध हुआ था ।५१-५३। उस त्रेता युग में आयु, रूप, बल, मेधा, आरोग्य और धर्मशीलता यह सबकुछ सबके लिए साधारण था । ब्रह्मा जी ने इन सबकी वर्णों और आश्रमोंकी उस प्रकार की व्यवस्था करदी थी कि आरोग्य, धर्मशीलता, मन्त्र और संहिता उसी तरह की थी । ।५४-५५। ब्रह्माजी के पुत्र ऋषियों के द्वारा संहितायें और मन्त्र प्रवृत्त किए गए थे । उस समय में ही दैवतों के द्वारा यज्ञ प्रवर्त्तित किया गया था । समस्त साधनों से संभृत याम-शुक्ल-जपों के द्वारा तथा महान्

ओज वाले देवेन्द्र ने विश्व सृजों के साथ देवों ने सब व्रज स्वायम्भुव अन्तर में पहिले प्रवर्त्तित किए थे ।५६-५७।

सत्यं जपस्तपोदानं पूर्वं धर्मोऽयमुच्यते ।
यदा धर्म्मस्य ह्लसते शाखा धर्म्मस्य वर्द्धते ।५८
जायन्ते च तदा शूरआयुष्मन्तो महाबला: ।
न्यस्तदण्डा महायोगायज्वानोब्रह्मवादिन: ।५९
पद्मपत्रायताक्षाश्च पृथुवक्त्रा: सुसंहता: ।
सिंहोरस्का महासत्वा मत्तमातङ्गगामिन: ।६०
महाधनुर्द्धराश्चैव त्रेतायां चक्रवर्त्तिन: ।
सर्वलक्षणपूर्णास्ते न्यग्रोधपरिमण्डला: ।६१
न्यग्रोधौ तु स्मृतौबाहू व्यामोन्यग्रोधउच्यते ।
व्यामेन तू च्छ्रयोयस्तअतउर्ध्वन्तुदेहिन: ।
समुच्छ्रयो परीणाहो न्यग्रोधपरिमण्डल: ।६२
चक्रं रथो मणिभार्या निधिरश्वोगजस्तथा ।
प्रोक्तानि सप्तरत्नानि पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ।६३

सबसे पूर्व सत्य, जप, तप और दान यही धर्म कहा गया था। जिस समय में धर्म का कुछ ह्रास होता है तो धर्म की शाखा की वृद्धि हुआ करती है ।५८। उस समय में शूरों की समुत्पत्ति हुआ करती थी जो शूर आयुष्मान् और महान बलवानथे । ये शूरन्यस्त दण्ड-महान योग वाले-यज्वा-ब्रह्मवादी-पद्म पत्र के तुल्य आयत नेत्रों वाले-पृथु वक्त्र-सुसहत-सिंह के समान उर: स्थल वाले-महासत्त्व तथा मस्त हाथी के सदृश गमन करने वाले थे । उस समय में होने वाले शूर महान् धनुधारी थे और त्रेता में चक्रवर्त्ती हुए थे । वे शूर समस्त लक्षणों से परिपूर्ण एवं न्यग्रोध परिमण्डल वाले थे ।५९-६१। दोनो न्यग्रोध दो बाहू कहे गये हैं और व्योम को न्यग्रोध कहा जाता है जिसका उच्छ्रम व्योम के समान है इसके उपरान्त देहधारी का समुच्छ्रम न्यगोध परिमण्डल

परीणाह होता था ।६२। पहिले स्वायम्भुव अन्तर में चक्र, रथ, मणि, भार्या, निधि, अश्व, गज ये सात रत्न बताये गये हैं ।६३।

विष्णोरंशेन जायन्ते पृथिव्यां चक्रवर्तिनः ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ह्यतीतानागतेषु वै ।६४
भूतभव्यानि यानीह वर्तमानानि यानि च ।
त्रेतायुगानि तेष्वत्र जायन्ते चक्रवर्तिनः ।६५
भद्राणामानि तेषाञ्च विभाव्यन्ते महीक्षिताम् ।
अत्यद्भुतानि चत्वारि बलं धर्मं सुखं धनम् ।६६
अन्योन्यस्याविरोधेन प्राप्यन्ते नृपतेः समम् ।
अर्थोधर्म्मश्च कामश्च यशोविजयएव च ।६७
ऐश्वर्येणाणिमाद्येन प्रभुशक्तिबलान्विताः ।
श्रुतेन तपसा चैव ऋषीस्तेऽभिभवन्ति हि ।६८
बलेनाभिभवन्त्येते तेन दानवमानवान् ।
लक्षणैश्चैव जायन्ते शरीरस्थैरमानुषैः ।६९
केशास्थिता ललाटेन जिह्वा च परिमार्जनी ।
श्यामप्रभाश्चतुर्दंष्ट्राः श्रवसाश्चोर्द्ध्वरेतसः ।७०

जो व्यतीत हो गये हैं और आने वाले हैं उन सभी मन्वन्तर में इस पृथ्वी मण्डलमें चक्रवर्त्ती नृप भगवान विष्णु के अंशसे ही समुत्पन्न हुआ करते हैं।६४। भूत, भव्य और वर्त्तमान जो भी यहाँ पर त्रेतायुग हैं उनमें चक्रवर्त्ती समुत्पन्न हुआ करते हैं । उन महा के पालक नृपों के बहुत ही भद्र नाम होते हैं और उनमें बल, धर्म, सुख और धन ये चार वस्तुयें अत्यन्त ही अद्भुत हुआ करते हैं ।६५-६६। अन्योन्य के परस्पर में विरोध न होनेसे नृपतिके अर्थ, धर्म, काम, यश और विजय समान ही होते थे अणिमा आदि के ऐश्वर्य से प्रभु शक्ति के बल से समन्वित वे नृपतिगण श्रुत एवं तप के द्वारा ऋषियों को भी अभिभूत करनेवाले

हुआ करते थे ।६७-६८। अमानवीय शरीरों में स्थित लक्षणों के द्वारा वे उत्पन्न हुआ करते थे और ये उस बल के द्वारा दानव-मानवों को तिरस्कृत किया करते थे ।६९। ललाट पर उनके केश स्थित होते थे तथा जिह्वा परिमार्जन करने वाली थी—श्याम उनकी प्रभा थी–चार द्रंष्ट्राओं वाले—श्रवण और ऊर्ध्वरेता होते थे ।७०।

आजानबाहुश्चैव तालहस्तौ वृषाकृती ।
परिणाहप्रमाणभ्यां सिंहस्कन्धाश्च मेधिन: ।७१
पादयोश्चक्रमत्स्यौ तु शङ्खपद्मे च हस्तयो: ।
पञ्चाशीति सर्पंसृाणि जीवन्ति ह्यजरामया: ।७२
असङ्गा गतयस्तेषां चतसृश्चक्रवर्तिनाम् ।
अन्तरिक्षे समुद्रेषु पाताले पर्वतेषु च ।७३
इज्यादानन्तप: सत्यन्त्रेताधर्मास्तु वै स्मृता: ।
तदा प्रवर्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागश: ।७४
मर्यादास्थापनार्थञ्ज दण्डनोति: प्रवर्तते ।
हृष्टपुष्टा जना: सर्वे आरोगा: पूर्णमानसा: ।७५
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायान्तु विधि: स्मृत: ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि जीवन्तेतत्रता: प्रजा ।७६
पुत्रपौत्रसमाकीर्णा म्रियन्ते च क्रमेण ता: ।
एते त्रेतायुगे भावस्त्रेतासंख्यां निबोधत ।७७
त्रेतायुगस्वभावेन सन्ध्यापादेन वर्तते ।
सन्ध्यापाद: स्वभावाच्च योंऽश: पादेनतिष्ठति ।७८

उनकी बाहुयें जानु पर्यन्त लम्बी होती थीं–ताल वृक्ष के सदृश हाथ होते थे तथा वृष के तुल्य आकृति हुआ करती । परिणाह और प्रमाण से सिंह के समान स्कन्धों वाले मेधा युक्त थे । उनके चरणों में चक्र तथा मत्स्य के चिन्ह हुआ करते थे एवं हाथों में शंख और पद्म होते थे । वे सब जरा और रोग से रहित होकर पिचासी हजार वर्ष

पर्यन्त जीवित रहा करते थे। उन चक्रवर्त्तियों की चार सङ्ग सहित गतियाँ हुआ करती थीं—समुद्रों में, अन्तरिक्ष में, पाताल में और पर्वतों में सर्वत्र गतियाँ रहा करती थीं।७१-७३। इज्या, दान, तप और सत्य ये त्रेत्रायुग के धर्म गताये गये हैं। उस समय में वर्णों और आश्रमों का विभाग वाला धर्म प्रवृत्त रहा करता था।७४। सांसारिक समस्त कार्यों की मर्यादाकी स्थापना करनेके लिए दण्ड नीति की प्रवृत्ति हुआ करती थी। वह समय ऐसा होता था कि उसमें प्रायः सभी मनुष्य हृष्ट-पुष्ट और पूर्ण मानस वाले रोगोंसे रहित रहा करते थे। एक वेद और चार पाद थे—यही विधि त्रेता में कही गयी है। उस समय में वे सब प्रजाजन तीन हजार वर्ष तक जीवित रहा करते थे।७५—७६। सभी लोग पुत्रों एवं पौत्रों से समाणीर्थ होने वाले रहकर क्रम से ही मृत्युको प्राप्त हुआ करते है। तात्पर्य यह है कि बड़ों के रहते हुए छोटों की मृत्यु नहीं हुआ करती थी। यह ही त्रेतायुग का भाव था अब त्रेताकी संख्या को भी समझलो।७७। त्रेतायुग के स्वभाव से संध्या का पाद से रहती थी और स्वभाव से सन्ध्या का पाद जो है वह जो अंश है पाद से ही स्थित रहा करता था।७८।

५७—द्वापर और कलियुग वर्णन

अत उदर्ध्वं प्रवक्ष्यामि द्वापरस्य विधिं पुनः।
तत्र त्रेतायुगे क्षीणे द्वापरं प्रतिपद्यते।१
द्वापरादौ प्रजानान्तु सिद्धिस्त्रेतायुगे तु या।
परिवृत्ते युगे तस्मिस्ततः सावैप्रणश्यति।२
ततः प्रवर्त्तिते तासां प्रजानां द्वापरे पुनः।
लोभोधृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनियश्च:।३
प्रध्वंसश्चैव वर्णानां कर्म्मणान्तु विपर्य्ययः।

यात्रा बधः परोदण्डोमानोदर्पोऽक्षमाबलम् ।४
तथा रजस्तोमोभूयः प्रवृत्ते द्वापरे पुनः ।
आद्ये कृतेनाधर्मोऽस्ति स त्रेतायां प्रवर्त्तितः ।५
द्वापरे व्याकुलो भूत्वा प्रणश्यति कलौ पुनः ।
वर्णानां द्वापरेधर्माः सङ्कीर्यन्ते तथाश्रमाः ।६
द्वैधमुत्पद्यते चैव युगे तस्मिन्श्रुतिस्मृतौ ।
द्विधाश्रुतिः स्मृतिश्चैवनिश्चयो नाधिगम्यते ।७

महा महर्षि सूतजी ने कहा—इसके आगे मैं द्वापर की विधि का वर्णन करूँगा । उस त्रेता युग के क्षीण होने पर द्वापर युग प्रतिपन्न हुआ करता है । प्रजाजनों को जो त्रेतायुग में सिद्धि थी वह द्वापर के आदि काल तक रही थी किन्तु ज्योंही उस युगका परिवर्त्तन हुआ वैसे ही वह त्रेता युग की सिद्धि नष्ट हो गई थी । उन्हीं प्रजाओं को द्वापर में युग के प्रवृत्त होने पर लोभ—धृति—वाणीयुद्ध और तत्वों के विषय में विशेष निश्चय का अभाव हो गया था ।१-३। वर्ण जो ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र ये चारों का एक सुन्दर क्रम चला आ रहाथा उसका प्रध्वंस हो गया था और जो लोगों के वर्णों के अनुसार मर्यादित कर्म होते थे उन सबमें विपरीत भाव उत्पन्न हो गया । यात्रा बध-परदण्ड—मान—दर्प—अक्षमा—अबल ये सब उस समय में पनप गये थे और द्वापर युग के प्रवृत्त होने पर रजोगुण तथा तमोगुण की विशेषता सर्वत्र होगई थी । आद्य कृतयुग में जो धर्म समझा जाता था वह त्रेता में प्रवृत्त हुआ था किन्तु वही द्वापर में व्याकुल हो गया था और कलियुग में तो वह सर्वथा ही नष्ट होगया था । द्वापर में वर्णों के धर्म तथा आश्रम सब सङ्कीर्ण हो गये थे । उस युग में श्रुति-स्मृति में द्वैध-भाव समुत्पन्न होगया था । दो प्रकारकी श्रुति और इसी भाँति स्मृत भी द्वैधभाव वाली थी इनसे किसी भी तरह का विशेष निश्चय नहीं होता बराबर संशय रहा करता है ।४-७।

अनिश्चयावगमनाद्धर्मतत्त्वं न विद्यते ।
धर्मतत्त्वे ह्यविज्ञाते मतिभेदस्तु जायते ।८
परस्परं विभिन्नास्ते दृष्टीनां विभ्रमेण तु ।
अतो दृष्टिविभिन्नैस्तैः कृतमत्याकुलन्त्विदम् ।९

एको वेदश्चतुष्पादः संहृत्य तु पुनः पुनः ।
संक्षेपादायुषश्चैव व्यस्यते द्वापरेष्विह ।१०
वेदश्चैकश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ।
ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः ।११
ते तु-ब्राह्मणविन्यासैः स्वरक्रमविपर्ययैः ।
संहृता ऋग्यजुः साम्नां संहितास्तैर्महर्षिभिः ।१२
सामान्याद्वै कृताच्चैव दृष्टिभिन्नैः क्वचित् क्वचित् ।
ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि भाष्यविद्यास्तथैव च ।१३
अन्ये तु प्रस्थितास्तान्वै केचित्तान् प्रत्यवस्थिताः ।
द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते भिन्नार्थैस्तैः स्वदर्शनैः ।१४

जब किसी भी निश्चय का अवगमन नहीं होता है धर्म का तत्व विद्यमान नहीं रहा करता है। धर्म के तत्व के विज्ञात न होने पर मति में भेद स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हो जाता है ।८। इस तरह दृष्टिकोणों के विभ्रम होने से वे सब परस्पर में विभिन्न हो जाते हैं। अतएव विभिन्न दृष्टि वाले उनके द्वारा यह सब संसार मति से आकुल हो जाया करता है ।९। वेद वस्तुतः एक ही है किन्तु उसके चार पाद पुनः पुनः संहृत करके किये गए थे । द्वापर युगमें आयु के संक्षेपसे यह ऐसी व्यवस्था की गयी थी । एक ही वेद के चार भेद द्वापरादि में व्यवस्थित किये गये थे । दृष्टिके विभ्रम वाले ऋषियों के पुत्र के द्वारा फिर वेदों के भेद किए गये थे ।१०-११। ब्राह्मण विन्यास और स्वर क्रम के विपर्ययो से वेद संहृत किये गये हैं और उन महर्षियों के ऋक्-यजु और सामवेदों की संहिताएं की गयी थीं ।१२। सामान्य और

और बहुत होने के कारण से कहीं-कहीं पर दृष्टियोंकी भिन्नता वालों के द्वारा ब्राह्मण भाग —कल्पसूत्र—भाष्य विद्या आदि की रचनायें की गयीं हैं ।१३। अन्य लोगों ने उनका अनुसरण कियाथा तथा कुछ लोगों ने उनका प्रत्यवस्थान किया था । द्वापर युग में भिन्न अर्थ वाले अपने दर्शनों से युक्त उन्होंने प्रवृत्ति की थी ।१४।

एकमाध्वर्यवं पूर्वमासीद्द्वैधन्तु तत् पुनः ।
सामान्यविपरीतार्थैः कृतंशस्त्राकुलन्त्विदम् ।१५
आध्वर्यवञ्च प्रस्थानैर्बहुधा व्याकुलीकृतम् ।
तथैवाथर्वणां साम्नां विकल्पैः स्वस्यसंक्षयैः ।१६
व्याकुलो द्वापरेष्वर्थः क्रियते भिन्नदर्शनैः ।
द्वापरे सन्निवृत्ते ते वेदा नश्यन्ति वै कलौ ।१७
तेषां विपर्ययोत्पन्ना भवन्ति द्वापरे पुनः ।
अदृष्टिर्मरणं चैव तथैव व्याध्युपद्रवाः ।१८
वाङ्गनः कर्मभिर्दुःखैर्निर्वेदो जायते ततः ।
निर्वेदाज्जाते तेषां दुःखमोक्षविचारणा ।१९
विचारणायां वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम् ।
दोषाणां दर्शनाच्चैव ज्ञानोत्पत्तिस्तुजायते ।२०
तेषां मेधाविनां पूर्वं मर्त्ये स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
उत्पत्स्यन्तीहशास्त्राणांद्वापरे परिपन्थिनः ।२१

पूर्व में एक आध्वर्यव था फिर द्वैधभाव को प्राप्त हो गया था । था । सामान्य और विपरीत अर्थों से यह सब उस समय में शस्त्राकुल हो गया था । बहुधा प्रस्थानों से आध्वर्यव व्याकुली कृत हो गया था । उसी भाँति से आथर्वणों और सामों के स्वसंक्षय तथा विकल्पों के द्वारा द्वापर में भिन्न दर्शन वालों ने अर्थ को व्याकुल कर दिया था । फिर द्वापर के सन्निवृत्त हो जाने पर कलियुग में वे वेद सब नष्ट हो जाया करते हैं । द्वापर में उनके विपर्यय से पुनः अदृष्टि, मरण, व्याधि और

उपद्रव समुत्पन्न हो जाते हैं ।१५-१८। इसके पश्चात् वाणी—मन और कर्मों के द्वारा जो दुःख होते हैं उनसे निर्वेद उत्पन्न होता है । जब निर्वेद होता है तो उनको दुःख से मोक्ष प्राप्त करनेकी विचारणा होती है । उस दुःखों से छुटकारा पाने की विचारणा में वैराग्य जो होता है उस वैराग्य से दोषों का दर्शन हुआ करते हैं । जब दोषों पर दृष्टिजाने से वे दोष स्पष्टतया दिखलाई दिया करते हैं तो उस दोष दर्शनसे ज्ञान की समुत्पत्ति होती है । यह ज्ञान की उत्पत्ति उन्हीं मेधावी पुरुषों को होती है जो पहिले मध्य स्वायम्भुव अन्तर में थे । द्वापर युग में संसार में शास्त्रों का विरोध करने वाले लोग उत्पन्न हो जाया करते हैं ।१९-२१।

आयुर्वेदविकल्पाश्च अङ्गानांज्योतिषस्यच ।
अर्थशास्त्रयिकल्पाश्च हेतुशास्त्राविकल्पनम् ।२२

प्रक्रियाकल्पसूत्राणांभाष्यविद्याविकत्थनम् ।
स्मृतिशास्त्रप्रभेदाश्चप्रस्थानानिपृथक्पृथक् ।२३

द्वापरेष्वभिवर्त्तन्ते मतिभेदास्तथा नृणाम् ।
मनसा कर्म्मणा वाचा कृच्छाद्वार्त्ता प्रसिध्यति ।२४

द्वापरे सर्वभूतानां काल: क्लेशपर: स्मृत: ।
लोभो धृतिर्वणिग्युद्धन्तत्त्वानामविनिश्चय: ।२५

वेदशास्त्रप्रणयनं वर्णानां सङ्करस्तथा ।
वर्णाश्रमपरिध्वंस: कामद्वेषो तथैव च ।२६
पूर्णं वर्षसहस्रे द्वे परमायुस्तदा नृणाम् ।
नि: शेषे द्वापरे तस्मिस्तस्य सन्ध्या तु पादत: ।२७

गुणहीनास्तु तिष्ठन्ति धर्म्मस्य द्वारपरस्य तु ।
तथैव सन्ध्या पादेनअंशस्तस्यांप्रतिष्ठित: ।२८

द्वापर में आयुर्वेद विकल्प-ज्योतिष के अङ्गशास्त्र—अर्थ शास्त्र विकल्प-हेतुशास्त्र विकल्प-कल्प सूत्रों की प्रक्रियाभाष्य विद्या विकत्थन-

स्मृति शास्त्र के प्रकार से पृथक्-पृथक् प्रस्थान उस युग में अभिवर्त्तित होते हैं और मनुष्यों में मति के भेद हो जाते हैं अर्थात् सभी मनुष्यों की मति विभिन्न हो जाती हैं और किसी की मति किसी से मेल नहीं खाती है। मन-कर्म और वचन से बहुत ही कष्ट से वार्त्ता प्रसिद्ध होती है।२२-२४। द्वापर-युग का समय ऐसा ही था जो समस्त भूतों के लिए परम क्लेश से परिपूर्ण था। प्राणियों में लोभ की मात्रा अधिक हो गई थी--घृति, वणिग्युद्ध और तत्वों का विलेष निश्चय नहीं था। वेदों और शास्त्रों का प्रणयन---वर्णों का सङ्कर दोष---वर्णों और आश्रमों का सर्वतोभाव से नाश---काम वासना और द्वेष सबमें छाया हुआ था।२५-२६। उस समय में मनुष्यों की परमायु पूरे दो सहस्र वर्ष की थी। द्वापर युग के निःशेष हो जाने पर उसके पादकी उसकी सन्ध्या का काल था। द्वापर युग के धर्म की ऐसी दशा थी कि सब गुणहीन रहा करते थे। उसी प्रकार से उस सन्ध्या में उसका एक पाद से अंश प्रतिष्ठित रहता था।२७-२८।

द्वापरस्य तु पर्येपा पुष्यस्य च निबोधत ।
द्वापरस्यांशशेषे तु प्रतिपत्तिः कलेरथ ।२९
हिंसास्तेयानृतं माया दम्भश्चैव तपस्विनाम् ।
एते स्वाभावाः पुष्यस्य साधयन्ति च ताः प्रजाः ।३०
एष धर्म्मः स्मृतः कृत्स्नोधर्म्मश्चपरिहीयते ।
मनसाकर्मणावाचावार्त्ता सिद्धयन्ति वानवाः ।३१
कलिः प्रमारको रोगः सततं चापि क्षुद्भवम् ।
अनावृष्टिभयञ्चैव देशानाञ्च विपर्ययः ।३२
न प्रमाणे स्थिति ह्यंस्तिपुष्येघोरेयुगेकलौ ।
गर्भस्थोम्रियतेकश्चिद् यौवनस्थस्तथापरः ।३३
स्थावर्ये मध्यकौमारे म्रियन्ते च कलौ प्रजाः ।
अल्पतेजोबलाः पापा महाकोपा ह्यधार्मिकाः ।३४

उत्सीदन्तियथाचैववैश्यैः सार्द्धन्तुक्षत्रिया: ।३८
शूद्राणां मन्त्रयोनिस्तु सम्बन्धो ब्राह्मणैः सह ।
भवतीहकलौ तस्मिन्शयनासनभोजनैः ।३९
राजानः शूद्रभूयिष्ठाः पाषण्डानांप्रवृत्तयः ।
काषायिणश्चनिष्कच्छास्तथाकापालिनश्चह ।४०
ये चान्ये देवव्रतिनस्तथा ये धर्म्मदूषका: ।
दिव्यवृत्ताश्च ये केचिद्वृत्त्यर्थं श्रुतिलिङ्गिनः ।४१
एवंविधाश्च ये केचिद्भवन्तीह कलौ युगे ।
अधीयते तदा वेदान् शूद्राधमर्थकोविदा: ।४२

विप्र अपने कर्मों से दूषित हो गये थे और उनके ही कर्म्मों के दोषों के कारण प्रजाओं का भय उत्पन्न हो जाया करता है । युग में जन्तुओं में हिंसा-मान-ईर्ष्या-क्रोध-असूया-अक्षमा-अधृति-लोभ और सब ओर से मोह ये अवगुण हो जाया करते हैं । इस कलियुग को प्राप्त करके अत्यन्त संक्षोभ जीवों में समुत्पन्न हो जाया करता है ।३६-३७। द्विजाति गण वेदों का अध्ययन नहीं किया करते हैं और न वे यजन ही करते हैं तथा क्षत्रिय लोग वैश्यों के साथ ही सब उत्पन्न हो जाते हैं ।३८। शूद्रों का ब्राह्मणों के साथ मन्त्र और योनि का सम्बन्ध हो जाता है । इस घोर कलियुग में शूद्रों का ब्राह्मणों के साथ शयन-आसन और भोजन के द्वारा भी सम्बन्ध हो जाया करता है ।३९। राजा लोगों में प्राय: शूद्रों की अधिकता होती है तथा पाखण्डियों की प्रवृत्तियाँ बढ़ी-चढ़ी होती हैं । सभी ओर काषाय वस्त्रोंके धारण करने वाले—सिष्कच्छ और कापालिक दिखलाई दिया करते हैं । और जो अन्य कोई देवव्रती हैं तथा जो धर्म दूषक हैं एवम् जो कोई दिव्य वृत वाले हैं वे भी सब वृत्ति के लिए ही श्रुति लिङ्गों के धारण करने वाले होते हैं अर्थात् सबका लक्ष्य केवल धार्मिक आडम्बर दिखाकर रोजी के कमाने का ही हुआ करता है । इस कलियुग में जो कोई भी होते हैं वे इसी प्रकार

के हुआ करते हैं कलि में शूद्र लोग वेदों का अध्ययन किया करते हैं और वे ही धर्म तथा अर्थ के विद्वान् होते हैं ।४०-४२।

यजन्ति ह्यश्वमेधैस्तु राजानः शूद्रयोनयः ।
स्त्रीबालगोवधं कृत्वा हत्वा चैव परस्परम् ।४३
उपहृत्य तथान्योन्यं साधयन्ति तदा प्रजाः ।
दुःखप्रचुरताल्पायुर्देशोत्सादः सरोगता ।४४
अधर्माभिनिवृत्तत्वं कलौवृत्तं कलौस्मृतम् ।
भ्रूणहत्या प्रजानाञ्च तथा ह्येवं प्रवर्त्तते ।४५
तस्मादायुर्बलं रूपं प्रहीयन्ते कलौयुगे ।
दुःखेनाभिप्लुतानां च परमायुः शतं नृणाम् ।४६
भूत्वा च न भवन्तीह वेदाः कलियुगेऽखिलाः ।
उत्सीदन्ते तथा यज्ञाः केवलं धर्महेतवः ।४७
एषाकलियुगावस्थासन्ध्यांशौतु निबोधत ।
युगेयुगे तु हीयन्तेत्रीस्त्रीन् पादांश्चसिद्धयः ।४८
युगस्वभावाः सन्ध्यासुअवतिष्ठन्ति पादतः ।
सन्ध्यास्वभावाः स्वांशेषुपादेनैवावतस्थिरे ।४९

शूद्र योनि से समुत्पन्न राजा लोग इस कलियुग में अश्वमेध यज्ञों के द्वारा यजनकिया करतेहैं । ये लोग स्त्री-बाल और गौका वध करके तथा परस्पर में हनन करते हुई अन्योन्य का अपहरण करके उस समय में प्रजा का साधन किया करते हैं । दुःखोंकी बहुतायत-आयु का स्वल्प होना—देश का उत्पादन—रोगों के सहित रहना और अधर्माभिनिवृत्तम यह इस कलिका वृत्त है जो कि कलियुग में कहा गया है । प्रजाजनों की भ्रूण हत्या (गर्भस्थ बालक को भ्रूण कहते हैं) इसी प्रकार से सबकी प्रवृत्तियाँ कलि में होती हैं । इसी कारण से इस कलियुग में आयु बल और रूप लावण्यकी हीनता हुआ करती है । दुःखोंकी इतनी अधिकता जीवों को रहा करती है कि इस कलि में दुःखों से अभिप्लुत

मनुष्य की परमायु अर्थात् अधिक उम्र सौ वर्षकी ही हुआ करती है। ।४३-४६। इस कलियुग में समस्त वेद होकर भी नहीं हुआ करते हैं अर्थात् होते हुए भी वे सब निष्फल होते हैं। केवल धर्म के हेतु यज्ञ उत्सीदमान हुआ करते हैं। यह ऐसी इस कलियुग की अवस्था होती है। अब उस युग की सन्ध्या और सन्ध्यांशों को भी समझलो। युग-युग में सिद्धियाँ तीन-तीन पाद हीन हुआ करती हैं। युग के स्वभाव सन्ध्याओंमें भी पाद से अवस्थित रहा करतेहैं। अपने अंशोंमें सन्ध्याओं में भी पादसे अवस्थित रहा करते हैं। अपने अंशों में सन्ध्याके स्वभाव एक पाद से अवस्थित रहा करते थे ।४७-४९।

एवं सन्ध्यांशकेकाले सम्प्राप्ते युगान्तिके ।
तेषामधर्मिणां शास्ता भृगुणाञ्च कुले स्थितः ।५०
गोत्रेण वै चन्द्रमसे नाम्ना प्रमतिरुच्यते ।
कलिसन्ध्यांशभागेषु मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।५१
समास्त्रिशत्तु सम्पूर्णाः पर्यटन्वैवसुन्धराम् ।
अस्त्रकर्मा स वै सेनांहस्त्यश्वरथसङ्कुलाम् ।५२
प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ।
स तदातैः परिवृतोम्लेच्छान् सर्वान्निजघ्निवान् ।५३
स हत्वा सर्वशश्चैव राजानः शूद्रयोनयः ।५४
पाषण्डान् स तदा सर्वान्निः शेषानकरोत् प्रभुः ।५५
अधार्मिकाश्चयेकेचित्तान्सर्वान् हन्तिसर्वशः ।
औदीच्यान्मध्यदेशांश्चपार्वतीयांस्तथैवच ।५६

इस प्रकार से युग के अन्त करने वाले सन्ध्यांश काल के सम्प्राप्त होने पर उन अधर्म्मियों का शासन करने वाला भृगुओंके कुल में स्थित चन्द्रमस गोत्र से युक्त नाम से प्रमति कहा जाता है। कलिके सन्ध्यांश भागों में मनु के स्वायम्भुव अन्तर में जब तीस वर्षपूर्ण हो जाते हैं तो शस्त्र कर्म वाला इस वसुन्धरा पर पर्यटन करते हुए एक विशाल सेना

लेकर निकलता है जिस सेना में हाथी-घोड़े और रथ सभी होते हैं और इनसे वह संकुल हुआ करती है। सभी प्रकार के आयुधोंको ग्रहण करने वाला वह हजारों और सैंकड़ों विप्रों के सहित रहता है। उसके साथ उस समय में वह परिवृत रहकर समस्त म्लेच्छों का निहनन कर दिया करता है।५०-५३। वह सभी ओर में जो राजा शूद्र योनि वाले होते हैं उनका हनन कर देता है। उस समय में वह प्रभु सभी पंखड़ियों को निःशेष कर देता था।५४-५५। जो भी कोई अधार्मिक होते थे उन सबको सभी ओर से मार गिराता है। जो औदीच्य हैं अर्थात् उत्तर दिशा में रहने वाले हैं—मध्य देश के निवासी हैं तथा पर्वतीय भागों के रहने वाले हैं इन सबका अन्त कर देने वाला वह था।५६।

प्राच्यान् प्रतीच्यांश्च तथा विन्ध्यपृष्ठापरान्तिकान् ।
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविड़ान् सिंहलैः सह ।५७
गन्धारान् पारदांश्चैव पह्लान् यवनान् शकान् ।
तुषारान् बर्बशान् श्वेतान् पुलिन्दान् बर्बरान् श्वसान् ।५८
लम्पकानान्ध्रकांश्चापि चीरजातींस्तथैव च ।
प्रवृत्तचक्रो बलवान्शूद्राणामन्तकृद् बभौ ।५९
विद्राव्य सर्वभूतानि चचार वसुधामिमाम् ।
मानवस्य तु वंशे तु नृदेवस्येहजज्ञिवान् ।६०
पूर्वजन्मनि विष्णुश्च प्रमतिर्नाम वीर्यवान् ।
स्वतः स वै चन्द्रमसः पूर्वं कलियुगे प्रभुः ।६१
द्वात्रिंशेऽभ्युदितेवर्षे प्रक्रान्तो विंशतिसमाः ।
निजघ्नेसर्वभूतानिमानुषाण्येवसर्वशः ।६२
कृत्वबीजावशिष्टान्तांपृथ्वींक्रूरेणकर्मणा ।
परस्परनिमित्तेन कालेनाकस्मिकेन च ।६३

प्राच्य-प्रतीच्य तथा विन्ध्य के पृष्ठ वासी, अपरान्तिक, दाक्षिणात्य (दक्षिण दिशा वाले)—द्रविण सिंहल, गान्धार, पारद, पह्लन, यवन, शक, तुषार, बवर्ण, श्वेत, पुलिन्द, वर्बर, श्वस, लम्पक, आन्ध्रक तथा चोर जाति वाले सबका शूद्रों का अन्त कर देने वाला वह बलवान् प्रवृत्त चक्र होकर सुशोभित हुआ था ।५७-५९। सभी भूतों को विद्रावित करके वह इस पृथ्वी पर सञ्चरण किया करता था। वह यहाँ पर नृदेव मानव के वश में समुत्पन्न हुआ था। ।६०। पूर्व जन्म में वह विष्णू वीर्यवान् प्रमिति नाम वाला था पूर्व में वह प्रभु कलियुग में चन्द्रमा के कुल में था। बत्तीसवें वर्ष के अभ्युदित होने पर यह प्रकान्त हुआ था। जब बीस वर्ष हो गये तो इसने सभी ओर से मानुष सभी भूतों का निहनन कर दिया था। परस्पर में निमित्त आकस्मिक काल के द्वारा क्रूर कर्म से पृथ्वी को बीजावशिष्टान्त कर दिया था ।६१-६३।

संस्थिता सह सायासे सेना प्रमतिना सह ।
गङ्गायमुनयोर्मध्येसिद्धिंप्राप्ता: समाधिना ।६४
ततस्तेषु प्रनष्टेषु सन्ध्यांशे क्रूरकर्म्मसु ।
उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान् तेष्वतीतेषु वै तदा ।६५
तत: सन्ध्यांशके काले संप्राप्ते च युगान्तके ।
स्थिता: स्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित् ।६६
स्वाप्रदानास्तथातेवै लोभाविष्टास्तुवृन्दश: ।
उपहिंसन्ति चान्यो यंप्रलुम्पन्तिपरस्परम् ।६७
अराजके युगांशे तु सङ्क्षये समुपस्थिते ।
प्रजास्ता वै तदा सर्वा: परस्परभयार्दिता: ।६८
व्याकुलास्ता: परावृत्तास्त्यज्य देवगृहाणि तु ।
स्वान् स्वान् प्राणानवेक्षन्तो निष्कारुण्यात् सुदु:खिता: ।६९।
नष्टे श्रौतस्मृते धर्मे कामक्रोधवशानुगा ।
निर्मर्यादा निरानन्दा नि:स्नेहानिरपत्रता: ।७०

प्रमति के साथ वह सेना सायास मे संस्थित हो गई थी। गङ्गा और यमुना के मध्य में समाधि के द्वारा सिद्धिको प्राप्त हुए थे। इसके पश्चात् सन्ध्यांश में उन क्रूर कर्मों वालों के प्रनष्ट होने पर उस समय में उनके अतीत होने पर सभी पार्थिवों का उत्सादन कर दिया था। इसके अनन्तर युग का अन्त करने वाले सन्ध्यांशक कालके सम्प्राप्तहोने पर यहाँ संसार में कहीं-कहीं पर प्रजाजनों के अल्प रह जाने पर वे स्थित थे। समूहों के रूप में धन न देने वाले और लोभ से आविष्ट चित्त वाले वे सब परस्पर में प्रलुम्पन करते थे और एक दूसरे का उप-हिंसन किया करते हैं।६४-६७। वह युगांश अराजक जैसा था और उसमें संक्षय के समुपस्थित होने पर वह ऐसा समय था जिसमें सम्पूर्ण प्रजाजन परस्पर में भय से अर्दित हो रहे थे। वे सब प्रजायें देव गृहों का परित्याग करके परावृत्त हो गये थे। अपने-अपने प्राणों को देखते हुए निष्कारुण्य भाव से वे सब अच्छी तरह दुःखित हो गये थे।६८-६९। श्रौत तथा स्मार्त्त धर्म के नष्ट हो जाने पर सब लोग काम और क्रोध के वश में होकर उनके ही अनुयायी बन गये थे। सब मर्यादा से रहित—आनन्द से शून्य—स्नेह हीन और निर्लज्ज बन गये थे।७०।

नष्टे धर्मे प्रतिहता ह्रस्वकाः पञ्चविंशकाः।
हित्वा दारांश्च पुत्रांश्च विषादव्याकुलप्रजा।७१
अनावृष्टिहतास्तेवै वार्त्तामुत्सृज्यदुःखिताः।
चीरकृष्णाजिनधरा निष्क्रुद्धानिष्परिग्रहाः।७२
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः सङ्करङ्घोरमास्थिताः।
एवं कष्टमनुप्राप्ता ह्यल्पशेषाः प्रजास्ततः।७३
जन्तवश्च क्षुधाविष्टा दुःखान्निर्वेदमागमन्।
संश्रयन्तिच्च देशांस्तांश्चक्रवत् परिवर्त्तनाः।७४
ततः प्रजास्तु ताः सर्वा मांसाहारा भवन्ति हि।

मृगान् वराहान् वृषभान्ये चान्ये वनचारिण: ।७५
भक्ष्यांश्चैवाप्यभक्ष्यांश्च सर्वास्तान् भक्षयन्ति ता: ।
समुद्रं संश्रिता यास्तु नदींश्चैव प्रजास्तु ता: ।७६
तेऽपि मत्स्यान् हरन्तीह आहारार्थं च सर्वश: ।
अभक्ष्याहारदोषेण एकवर्णगता प्रजा: ।७७

धर्म्म के नष्ट होने पर सब प्रतिहत-ह्रस्वक और पञ्चविंशक हो गये थे। अपनी दाराओं और पुत्रों का त्याग करके सब प्रजा विषाद से व्याकुल थी। अनावृष्टि के कारण हत हुए वे सब वार्ताका त्याग करके अत्यन्त दु:खित थे। चीर तथा कृष्ण जिन (काला मृगचर्म) को धारण करने वाले—निष्कुद्ध और सब बिना परिग्रह वालेथे। वर्ण और आश्रम से परिभ्रष्ट हुए घोर सङ्कुरावस्थामें समस्थित थे। इस प्रकार से कष्ट को प्राप्त हुईं सब प्रजायें अल्प शेष रह गई थीं ।७१-७३। जन्तुगण सब भूख से आविष्ट हुए अत्यन्त दु:ख से निर्वेद को प्राप्त हो गये थे। चक्र की भाँति परिवर्त्तन करने वाले उन देशों का संश्रय किया करते थे। इसके उपरान्त वे समस्त प्रजायें माँस का आहार करने वाली हो गईं थीं। कुछ लोग मृगों को खाते थे तो कुछ वाराह-वृषभ और अन्य वनचारियों का भक्षण किया करते थे ।७४-७५। वे सब प्रजायें उस समय में ऐसी हो गईं थीं कि चाहे भक्ष्य हो या अभक्ष्य हो सभी का भक्षण किया करते थे। कुछ प्रजाजन समुद्रों में तथा कुछ नदियों का संश्रय किया करते थे वे भी अपने आहार के लिए सर्वत्र मत्स्योंका हरण किया करते थे। अभक्ष्य आहार के करने के दोष से सब प्रजा एक वर्णगत हो गई थीं ।७६ ७७।

यथा कृतयुगे पूर्वमेकवर्णमभूत्किल ।
तथा कलियुगस्यान्ते शूद्रीभूता: प्रजास्तथा ।७८
एवं वर्षशतं पूर्णं दिव्यं तेषां न्यवर्त्तत ।
षट्त्रिंशच्च सहस्राणि मनुषाणि तु तानि वै ।७९

अथ दीर्घेण कालेन पक्षिणः पशवस्तथा ।
मत्स्याश्चैव हृताः सर्वैः क्षुधाविष्टैश्चसर्वशः ।८०
निःशेषेष्वथ सर्वेषु मत्स्यपक्षिपशुष्वथ ।
सन्ध्यांशे प्रतिपन्नेतु निःशेषास्तु तदा कृताः ।८१
ततः प्रजास्तु सम्भूय कन्दमूलमथोऽखनन् ।
फलमूलाशनाः सर्वे अनिकेतास्तास्तथैव च ।८२
वल्कलान्यथ वासांसि अधः शय्याश्च सर्वशः ।
परिग्रहो न तेष्वस्ति धनशुद्धिमवाप्नुयुः ।८३
एवंक्षयंगमिष्यन्ति ह्यल्पशिष्टाः प्रजास्तदा ।
तासामल्पावशिष्टानामाहाराद् वृद्धिरिष्यते ।८४

जिस प्रकार से पूर्व में कृत युग में सभी प्रजाजन एक ही वर्ण वाले थे क्योंकि उस आदिकाल में वर्णों की कोई भी व्यवस्था ही नहीं बनी थी उसी भाँति इस कलियुग के इस अन्तिम काल में सभी लोग शूद्रीभूत हो गए थे क्योंकि वर्णों के कर्म धर्म सभी छोड़कर एक वर्ण जैसे बन गये थे । इस प्रकार से पूर्ण दिव्य एक सौ वर्ष उनके व्यतीत हो गये थे जो कि मानुष वर्ष छत्तीस हजार होते थे ।७८-७९। इसके अनन्तर बहुत अधिक दीर्घकाल तक भूखसे व्याकुल लोगोंके द्वारा सभी ओर समस्त पशु-पक्षी और मत्स्य मार दिए गये थे और खा लिए गये थे ।८०। उस कलियुग के सन्ध्यांश काल में जब कि वह प्रतिपन्न हो गया था सम्पूर्ण पक्षी-पक्षी-और मत्स्यों के निःशेष हो जाने पर सभी समाप्त हो गये थे । जब कोई भी जीव प्रजाके लोगोंको खाने के लिए रहे थे तो फिर उन्होंने भूमि से कन्द मूलों को खोदने का आरम्भ कर दिया था । सब लोग फल-मूल और कन्दों को खाने वाले और बिना घरों वाले हो गये थे । सबके वस्त्र वृक्षों की छाल के ही थे और सब नीचे भूमि पर शयन करने वाले थे । उन लोगोंमें कुछ भी परिग्रह शेष नहीं रह गया था और सब लोगों ने धन की शुद्धि को प्राप्त कर लिया

थे। इसी रीति से कलियुग का क्षय और कृत युग की सन्तति हुई थी।८८। साम्यावस्थात्मा के द्वारा विचार करने में निर्वेद होता है और उस निर्वेद से आत्मा का भली भाँति ज्ञान समुत्पन्न हुआ करता है। जब सम्बोध हो जाता है तो धर्मशीलता का प्रादुर्भाव स्वभाविक रूपसे हो जाया करता है।८९। इस रीति से उस कलियुग में जो अवशिष्ट रह जाया करते हैं उनसे पूर्व की भाँति प्रजायें जन्मग्रहण किया करती हैं फिर भावी अर्थ के बल से कृत युग वरता करता था। इस संसार में मन्वन्तर में जो भी कोई अतीत और अनागत हैं वे हुआ करते हैं। ये सब युगों के स्वभाव मैंने अत्यन्त संक्षेप के साथ सब बतला दिये हैं।
।९०-९१।

विस्तरेणानुपूर्व्याच्चर्चा नमस्कृत्य स्वायम्भुवे।
प्रवृत्ततु ततस्तस्मिन् पुनः कृतयुगे तु वै।९२
उत्पन्नाः कलिशिष्टेषु प्रजाः कार्त्त युगास्तथा।
तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धा अदृष्टा विहरन्ति च।९३
सह सप्तर्षिभिर्ये तु तत्र ये च व्यवस्थिताः।
ब्रह्मक्षत्रविशः शुद्रा बीजार्थे य इह स्मृताः।९४
तेषांसप्तर्षयो धर्मं कथयन्तीह तेषु च।
वर्णास्ममाचारयुतं श्रौतस्मार्त्तं विधानतः।९५
एवं तेषु क्रियावत्सु प्रवर्त्तन्तीह वै कृते।९६
श्रौतभार्त्तस्थितानान्तु धर्मे सप्तर्षिदर्शिते।
ते तु धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीह कृते युगे।९७
मन्वन्तराधिकारेषु तिष्ठन्ति ऋषयस्तु ते।
यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्वेवापनक्षितौ।९८

स्वयम्भू भगवान् को नमस्कार करके मैंने विस्तार से और आनुपूर्वी से सभी कुछ बतला दियाहै। फिर इसके बादमें पुनः उस कृतयुग की प्रवृत्ति हो जाया करती है। उसके प्रवृत्त होने पर जो कलियुग में

अथ दीर्घेण कालेन पक्षिणः पशवस्तथा ।
मत्स्याश्चैव हताः सर्वैः क्षुधाविष्टैश्चसर्वशः ।८०
निःशेषेष्वथ सर्वेषु मत्स्यपक्षिपशुष्वथ ।
सन्ध्यांशे प्रतिपन्नेतु निःशेषास्तु तदा कृताः ।८१
ततः प्रजास्तु सम्भूय कन्दमूलमथोऽखनन् ।
फलमूलाशनाः सर्वे अनिकेतास्तास्तथैव च ।८२
वल्कलान्यथ वासांसि अधः शय्याश्च सर्वशः ।
परिग्रहो न तेष्वस्ति धनशुद्धिमवाप्नुयुः ।८३
एवंक्षयंगमिष्यन्ति ह्यल्पशिष्टाः प्रजास्तदा ।
तासामल्पावशिष्टानामाहाराद् वृद्धिरिष्यते ।८४

जिस प्रकार से पूर्व में कृत युग में सभी प्रजाजन एक ही वर्ण वाले थे क्योंकि उस आदिकाल में वर्णों की कोई भी व्यवस्था ही नहीं बनी थी उसी भाँति इस कलियुग के इस अन्तिम काल में सभी लोग शूद्रीभूत हो गए थे क्योंकि वर्णों के कर्म धर्म सभी छोड़कर एक वर्ण जैसे बन गये थे । इस प्रकार से पूर्ण दिव्य एक सौ वर्ष उनके व्यतीत हो गये थे जो कि मानुष वर्ष छत्तीस हजार होते थे ।७८-७९। इसके अनन्तर बहुत अधिक दीर्घकाल तक भूखसे व्याकुल लोगोंके द्वारा सभी ओर समस्त पशु-पक्षी और मत्स्य मार दिए गये थे और खा लिए गये थे ।८०। उस कलियुग के सन्ध्यांश काल में जब कि वह प्रतिपन्न हो गया था सम्पूर्ण पक्षी-पक्षी-और मत्स्यों के निःशेष हो जाने पर सभी समाप्त हो गये थे । जब कोई भी जीव प्रजाके लोगोंको खाने के लिए रहे थे तो फिर उन्होंने भूमि से कन्द मूलों को खोदने का आरम्भ कर दिया था । सब लोग फल-मूल और कन्दों को खाने वाले और बिना घरों वाले हो गये थे । सबके वस्त्र वृक्षों की छाल के ही थे और सब नीचे भूमि पर शयन करने वाले थे । उन लोगोंमें कुछ भी परिग्रह शेष नहीं रह गया था और सब लोगों ने धन की शुद्धि को प्राप्त कर लिया

था। इस प्रकारसे उस समय में जो भी बहुत थोड़ी-सी प्रजा अवशिष्ट रह गई थी वह क्षय को प्राप्त हो जायगी। उन अत्यल्प शेष बचे हुओं के आहार से वृद्धि अभीष्ट हुआ करती है।८१-८४।

एवं वर्षशत दिव्यं सन्ध्यांशस्तस्य वर्त्तते।
ततो वर्षसहस्रान्ते अल्पशिष्टा स्त्रियः सुताः।८५
मिथुनानितुताः सर्वा ह्यन्योन्यंसंप्रजज्ञिरे।
ततस्तास्तु म्रियन्तेवै पूर्वोत्पन्नाः प्रजास्तुयाः।८६
जातमात्रेष्वपत्येषु ततः कृतमवर्त्तत।
यथा स्वर्गे शरीराणि नरके चैव देहिनाम्।८७
उपभोगसमर्थानि एवं कृतयुगादिषु।
एवं कृतस्य सन्तानः कलेश्चैव क्षयस्तथा।८८
विचारणात्तु निर्वेदः साम्यावस्थात्मना तथा।
ततश्चैवात्मसम्बोधः सम्बोधाम्मंशीलता।८९
कलिशिष्टेषु तेष्वेवं जायन्ते पूर्ववत् प्रजाः।
भाविनोऽर्थस्य च वलात्ततः कृतमवर्त्तत।९०
अतीतानागतानि स्युर्य्यानि मन्वन्तरेष्विह!।
एतेयुगस्वभावास्तु मयोक्तास्तु समासतः।९१

इस रीति से उस कलियुग का वह सन्ध्यांश काल दिव्य सौ वर्ष का होता है। जब यह सौ वर्ष समाप्त हो गये थे तब इनके अन्त में बहुत ही थोड़े स्त्रीजन और उनके सुत अवशिष्ट रह गये थे। उनके वे मिथुन सब अन्योन्य में समुत्पन्न हुए थे। इसके उपरान्त जो पूर्व में उत्पन्न प्रजायें थीं वे मर जाया करती थीं। फिर सन्तानोंके जात मात्र होने पर कृत युग वर्त्तमान होने लगा था। जिस तरह देहधारियों के शरीर स्वर्ग में और नरकों में रहा करते हैं।८५-८७। इस प्रकार से कृत युगादि में देहधारियों के शरीर उपभोग करने में समर्थ थे। इसी

थे। इसी रीति से कलियुग का क्षय और कृत युग की सन्तति हुई थी ।८८। साम्यावस्थात्मा के द्वारा विचार करने में निर्वेद होता है और उस निर्वेद से आत्मा का भली भाँति ज्ञान समुत्पन्न हुआ करता है। जब सम्बोध हो जाता है तो धर्मशीलता का प्रादुर्भाव स्वभाविक रूपसे हो जाया करता है ।८९। इस रीति से उस कलियुग में जो अवशिष्ट रह जाया करते हैं उनसे पूर्व की भाँति प्रजायें जन्मग्रहण किया करती हैं फिर भावी अर्थ के बल से कृत युग बरता करता था। इस संसार में मन्वन्तर में जो भी कोई अतीत और अनागत हैं वे हुआ करते हैं। ये सब युगों के स्वभाव मैंने अत्यन्त संक्षेप के साथ सब बतला दिये हैं। ।९०-९१।

विस्तरेणानुपूर्व्याच्चा नमस्कृत्य स्वायम्भुवे।
प्रवृत्ततु ततस्तस्मिन् पुनः कृतयुगे तु वै ।९२
उत्पन्नाः कलिशिष्टेषु प्रजाः कार्त्त युगास्तथा।
तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धा अदृष्टा विहरन्ति च ।९३
सह सप्तर्षिभिर्ये तु तत्र ये च व्यवस्थिताः।
ब्रह्मक्षत्रविशः शुद्रा बीजार्थे य इह स्मृताः ।९४
तेषांसप्तर्षयो धर्मं कथयन्तीह तेषु च।
वर्णास्रमाचारयुतं श्रौतस्मार्त्त विधानतः ।९५
एवं तेषु क्रियावत्सु प्रवर्त्तन्तीह वै कृते ।९६
श्रौतभार्त्त स्थितानान्तु धर्मे सप्तर्षिदर्शिते।
ते तु धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीह कृते युगे ।९७
मन्वन्तराधिकारेषु तिष्ठन्ति ऋषयस्तु ते।
यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्वेवापनक्षितौ ।९८

स्वयम्भू भगवान् को नमस्कार करके मैंने विस्तार से और आनुपूर्वी से सभी कुछ बतला दियाहै। फिर इसके बादमें पुनः उस कृतयुग की प्रवृत्ति हो जाया करती है। उसके प्रवृत्त होने पर जो कलियुग में

थोड़ेसे बचे खुचे रह जाते हैं उन्हींमें कृतयुग की प्रजायें समुत्पन्न हुआ करती हैं। जो यहाँ पर सिद्धगण स्थित रहा करतेहैं वे अदृष्ट होते हुए विहार किया करते हैं। सप्तर्षियोंके साथ वहाँ पर जो व्यवस्थित रहते हैं वे यहाँ पर बीजार्थ में ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य और बतलाये गये हैं। उन लोगों को उनके सप्तर्षिगण श्रौत-स्मार्त्त के विधान से वर्णों और आश्रमों के आचार से युक्त धर्म को कहा करते हैं। इसी प्रकारसे कृत-युगमें क्रियावान् उनमें वे सब प्रवृत्त हुआ करते हैं।६२-६६। श्रौत और स्मार्त्त धर्मों में स्थित रहने वाली की सप्तर्षियों के द्वारा प्रदर्शित धर्म में वे यहाँ पर उस कृतयुग में धर्म की व्यवस्था के लिए ही अवस्थित रहा करते हैं। वे ऋषिगण मन्वन्तरों के अधिकारों में उसी तरह से स्थित रहा करते हैं जैसे आपने क्षिति में दावाग्नि से प्रदग्ध हुए तृणों में वनों की स्थिति हुआ करती है।६७-६८।

वनानां प्रथमं दृष्ट्वा तेषां मूलेषु सम्भवः।
एवं युगाद्युगानां वै सन्तानस्तु परस्परम् ।६६
प्रवर्त्तते ह्यविच्छेदाद्यावन्मन्वन्तरक्षयः।
सुखमायुर्बलं रूपं धर्मार्थौ काम एव च ।१००
युगेष्वेतानि हीयन्ते त्रयः पादाः क्रमेण तु।
इत्येषः प्रतिसन्धिर्वः कीर्त्तितस्तु मया द्विजाः! ।१०१
चतुर्युगाणां सर्वेषामेतदेव प्रसाधनम्।
इषां चतुर्युगाणान्तु गणिता ह्येकसप्ततिः ।१०२
क्रमेण परिवृत्तास्ता मनोरन्तरमुच्यते।
युगाख्यासु तु सर्वासु भवतीह यदा च यत् ।१०३
तदेव च तदन्यासु पुनस्तद्वै यथाक्रमम्।
सर्गे सर्गे यथा भेदा ह्युत्पद्यन्ते तथैव च ।१०४
चतुर्दशसु तावन्तो ज्ञेया मन्वन्तरेष्विह।
आसुरी यातुधानी च पैशाची यक्षराक्षसी ।१०५

जब दावाग्नि मे दग्ध बन हो जाते हैं तो प्रथम दृष्टिपात करने पर ऐसा मालूम होता है कि यह सभी जलभुन कर भस्मसात् हो गयाहै और अब कुछ भी अंश शेष नहीं रहा है किन्तु कुछ समय के बाद ही उनके मूल प्रदेशोंमें कंकुरोत्पत्ति हो जाया करती है। इसी तरहसे युग से अर्थात् एक युगसे दूसरे युगकी सन्तति परस्पर में हुआ करती है जो प्रत्यक्ष में उसका मूल लेशमात्र भी दिखलाई नहीं दिया करता है।जिस समय तक मन्वन्तर क्षय नहीं होता है तब तक बराबर अविच्छेद रूपसे प्रवृत्ति रहा करती है। एक ही मन्वन्तर में कृतयुग आदि की कितनी ही चौकड़ियाँ समाप्त हो जाया करतीहैं। सुख—आयु—बल—रूप-धर्म्म-अर्थ और काम ये सब युगों में हीन हुआ करते हैं। क्रम से तीन पाद होते हैं। हे द्विजगण ! यह ही प्रतिसन्धि हुआ करती है जिस को कि मैंने आपको कह कर बतला दिया है।९९-१०१। सभी चारों युगों का यह ही प्रसाधन हुआ करता है। इन सत्ययुग त्रेता—द्वापर और कलियुग चारों युगों की जो एक चौकड़ी होती है उसी प्रकार का इकहत्तर चौकड़ियों की गणना जब पूरी जाती है और क्रम से वह परिवृत्त होती है तो एक मनु का अन्तर हुआ करता है। जब सब युगोंमें यह पूर्ण होती है तो एक मन्वन्तर समाप्त हुआ करता है। इसी क्रम से फिर दूसरी युगाख्याओं में वही मन्वन्तर होता है। सर्ग-सर्गमें जैसे भेद उत्पन्न होते हैं वैसे ही वे होते हैं।१०२-१०४। चौदह मन्वन्तर होते हैं उनमें उतने ही जानने चाहिये। युग—युग में आसुरी—यातुधानी—पैशाची—यक्षों की और राक्षसों की प्रजा उत्पन्न होती हैं।१०५।

युगे युगे तदा काले प्रजा जायन्ति ताः शृणु।
यथाकल्पं युगैः सार्द्धं भवन्ते तुल्यलक्षणा।
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै यथाक्रमम्।१०६

मन्वन्तराणां परिवर्त्तनानि चिरप्रवृत्तातियुगस्वभावात्।
क्षणं न संतिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्त्तमान।१०७

एते युगस्वभावा वः परिक्रान्ता यथाक्रमम् ।
मन्वन्तराणि यान्यस्मिन् कल्पे वक्ष्यामि तानि च ।१०८

प्रत्येक युग में उस समय में जो भी प्रजा होती हैं उनके विषय में अब श्रवण करो। कल्प के अनुसार युगों के साथ वह प्रजा भी तुल्य लक्षणों वाली होती है। यही युगों का यथाक्रम लक्षण बताया गया है ।१०६। चिर काल में प्रवृत्त अतियुग के स्वभाव मन्वन्तरों के परिवर्तन होते हैं। क्षय और उदय होने के कारण से परिवर्त्तमान यह जीवलोक क्षण भर संस्थित नहीं रहता है। ये युगों के स्वभाव क्रमानुसार हमने आप लोगों को परिक्रान्त कर दिये हैं। इस कल्प में जो भी मन्वन्तर होते हैं उनको भी हम बतलायेंगे ।१०७-१०८।

५८—चतुर्युग गति वर्णन

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम् ।
तस्य तावच्छतो सन्ध्या द्विगुणा रविनन्दन ! ।१
यत्र धर्मश्चतुष्पादस्त्वधर्मः पादविग्रहः ।
स्वधर्मनिरताः सन्तो जायन्ते यत्र मानवाः ।२
विप्राः स्थिता धर्मपरा राजवृत्तौ स्थिता नृपाः ।
कृष्यामभिरता वैश्याः शूद्राः शुश्रूषवः स्थिताः ।३
तदा सत्यञ्च शौचञ्च धर्मश्चैव विवर्धते ।
सद्भिराचरितं कर्म क्रियते ख्यायते च वै ।४
एतत् कार्त्तयुग वृत्त सर्वेषामपि पार्थिव ! ।
प्राणिनांधर्मसञ्ज्ञानामपि वै नीचजन्मनाम् ।५
त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायुगमिहो यते ।
तस्यतावच्छतीसन्ध्याद्विगुणा परिकीर्त्यते ।६

द्वाभ्यामधर्मः पादाभ्यांत्रिभिर्धर्मोव्यवस्थितः ।
यत्र सत्यञ्च सत्वञ्चत्रेताधर्मो विधीयते ।७

मत्स्य भगवान् ने कहा—चार सहस्र वर्षों का कृत युग कहा जाता है और उस युग की उतने ही सौ वर्ष की सन्ध्या होती है जो द्विगुणा हे रविनन्दन ! हुआ करती है ।१। जिस कृत युग में धर्म्म के चार पाद पूर्ण होते हैं और अधर्म का विग्रह केवल एक ही पाद होता है । जिस युग में सभी मनुष्य अपने-अपने धर्म में निरत रहा करते थे। उस समय में सभी विप्रगण धर्म्म में तत्पर होकर रहा करते थे और नृपों के वर्ग राजवृत्ति में स्थिर रहा करते थे। वैश्य लोग कृषिके कर्म्म में स्थित थे और शूद्र सेवा धर्म्म के करने वाले हुआ करते थे ।२-३। उस समय में सत्य, शौच और धर्म्म विशेष रूप से वर्धित हुआ करते थे । सत्पुरुषों के द्वारा सत्कर्म का समाचरण किया जाता था और वही ख्यात हुआ करता था । हे पार्थिव ! इस प्रकार का नीच जाति में भी जन्म ग्रहण करने वाले प्राणी भी सब धर्म्मों को ही सङ्ग रखने वाले जिसमें होते थे । वह कृतयुग का समय हुआ था ।४-५। तीन हजार वर्षों की अवधि वाला त्रेता युग कहा जाता है उस युग की उतने ही ही सौ वर्ष वाली दुगुनी सन्ध्या होती है । इस युग में धर्म्म के केवल तीन ही चरण होते हैं और अधर्म्म दो पादों वाला रहा करता है । जिसमें सत्य और सत्य त्रेता का धर्म हुआ करता है ।६-७।

त्रेतायां विकृति यान्ति वर्णास्त्वेतेन संशयः ।
चतुर्वर्णस्य वैकृत्याद्यान्ति दौर्बल्यमाश्रमाः ।८
एषा त्रेतायुगगतिं विचित्रा देवनिर्मिता ।
द्वापरस्य तु या चेष्टा तामपिः श्रोतुमर्हसि ।९
द्वापरन्द्वे सहस्रे तु वर्षाणां रविनन्दन ! ।
तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा युगमुच्यते ।१०

तत्र चार्थपरा: सर्वे प्राणिनी रजसा हता: ।
सर्वे नैष्कृतिका: क्षुद्रा जायन्तो रविनन्दन ! ।११

द्वाभ्यां धर्म: स्थित: पदभ्यामधर्मस्त्रिभिरुत्थित: ।
विपर्ययाच्छनैर्धर्म: क्षयमेति कलौयुगे ।१२

ब्राह्मण्यभावस्य ततो तथौत्सुक्यं व्यशीर्यते ।
व्रतोपवासास्त्यज्यन्तो द्वापरे युगपर्यये ।१३

तथा वर्षसहस्रन्तु वर्षाणां द्वेषतो अपि ।
सन्ध्ययासह् संख्यात क्रूरङ्कलियुगं स्मृतम् ।१४

त्रेता में ये चारों वर्ण विकृति प्राप्त हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । चारों वर्णों की विकृति से चारों आश्रम भी दुर्बलता को प्राप्त हो जाया करते हैं ।८। यही इस त्रेता युग की गति है जो अति विचित्र और देवों के द्वारा निर्मित है। अब द्वापर युग की जो चेष्टायें हैं उन्हें भी आप श्रवण करने के योग्य होते हैं । हे रविनन्दन ! द्वापर युग की अवधि दो सहस्र वर्षो की होती है और उसके उतनी ही सौ वर्ष की दुगुनी सन्ध्या है—इस प्रकार से यह युग कहा जाता है ।९-१०। उस युग में सभी प्राणी रजोगुण से हत होते हुए अर्थ परायण हुआ करते हैं । हे रविनन्दन! सभी प्राणी इस युगमें नैष्कृतिक और अत्यन्त क्षुद्र होते हैं। धर्म केवल दो ही चरणों वाला स्थित रहता है और अधर्म के तीन पाद समुत्थित होकर रहा करते हैं । कलियुगमें बिल्कुल विपर्यय हो जाने धर्म क्षयको शनै:-शनै: प्राप्त हो जाया करता है ।११-१२। फिर ब्राह्मण्य भाव का विनाश और औत्सुका भी विशीर्ण हो जाया करताहै। द्वापर युगमें विपर्यय हो जाने पर व्रत और उपवास आदि सब त्याग दिये जाया करते हैं ।१३। फिर एक सहस्र वर्ष की अवधि वाला तथा दो सौ वर्ष की सन्ध्या के सहित यह महान्क्रूर कलि युग संख्यात करके बताया गया है ।१४।

यत्राधर्मश्चतुष्पादः स्याद् धर्मः पादविग्रहः ।
कामिनस्तपसाच्छन्नाजायन्तो तत्र मानवाः ।१५
नैवातिसात्त्विकः कश्चिन्न साधुर्न च सत्यवाक् ।
नास्तिका ब्रह्मभक्ता वा जायन्तो तत्र मानवाः ।१६
अहङ्कारगृहीताश्च प्रक्षीणस्नेहबन्धनाः ।
विप्राः शूद्रसमाचाराः सन्ति सर्वे कलौ युगे ।१७
आश्रमाणां विपर्यासः कलौ संपरिवर्तते ।
वर्णानाञ्चैव सन्देहो युगान्तो रविनन्दन ! ।१८
विद्याद् द्वादशसाहस्रीं युगाख्यां पूर्वनिर्मिताम् ।
एवं सहस्रपर्यन्तां तदहो ब्राह्ममुच्यते ।१९

जिस कलियुग में अधर्म चारों पादों से युक्त रहा करता है और धर्म का केवल एक ही चरण अवशिष्ट रहता है । उस युग में मानव तप से समाच्छन्न होकर भी उत्पन्न हुआ करते हैं ।१५। इस युग में न तो कोई अत्यन्त सात्त्विक ही होता है और न कोई भी साधु एवं सत्य वाणी बोलने वाला हुआ करता है । इसमें तो सभी मानव नास्तिक अथवा ब्रह्म भक्त उत्पन्न हुआ करते हैं ।१६। सभी अहङ्कार से जकड़े हुए और क्षीण स्नेहके बन्धनों वाले होते हैं। इस कलियुग में सभी विप्र शूद्र के समान आचरण करने वाले हो जाया करते हैं कलियुग में भली भाँति परिवर्तित होकर आश्रमों का विपर्यास हो जाया करता है । हे रविनन्दन ! इस युग के अन्त में तो वर्णोंका भी सन्देह हो जाया करता है । पूर्व में निर्माण की हुई यह युगोंकी आख्या बारह सहस्र वर्षों की जाननी चाहिए । इस प्रकार से एक सहस्र वर्ष पर्यन्त वह ब्रह्मा का दिन कहा जाया करता है ।१७-१९।

ततोऽहनि गते तस्मिन् सर्वेषामेव जीविनाम् ।
शरीरनिर्वृ तिं दृष्ट्वा लोकसंहारबुद्धितः ।२०
देवतानाञ्च सर्वासां ब्रह्मादीनां महीपते ! ।

दैत्यानां दानवानाञ्च यक्षराक्षसपक्षिणाम् ।२१
गन्धर्वाणामप्सरसां भुजङ्गानाञ्च पार्थिव ! ।
पर्वतानां नदीनाञ्च पशूनाञ्चैव सत्तम ।२२
तिर्यग्योनिगतानाञ्च सत्वानां कृमिणान्तथा ।
महाभूतपतिः पञ्च हृत्वा भूतानि भूतकृत् ।२३
जगत्संहरणार्थाय कुरुते वैशसं महत् ।
भूत्वा सूर्यश्चक्षुषी चाददानो भूत्वावायुः प्राणिनां प्राणजालम् ।
भूत्वा वह्निर्निर्दहन्सर्वं लोकान्भूत्वा मेघोभूय उग्रोऽप्यवर्षत्।२४

उस ब्रह्मा के एक दिन के समाप्त हो जाने पर सभी जीवधारियों के शरीर की निवृ ति को देखकर लोकों के संहार की बुद्धि से हे महीपते ! समस्त देवताओं—ब्रह्मादिकों—दैत्यों—दानवों यक्ष, राक्षस, पक्षियों-गन्धर्वों-अप्सरागणों-हे पार्थिव ! पर्वतों-नदियों—हे श्रेष्ठतम ! पशुओं तिर्यग्योनियों में रहने वाले सत्त्वों और कृमियों के भूतों के करने वाले महाभूतों के पति पाँचों भूतों का हरण करके जगत् के संहरण करने के लिए महान वैशस किया करते हैं। सबके चक्षुओं को आदान करने वाले होकर—सब लोकों का निर्दहन करता हुआ वह्नि होकर एवं फिर अत्युग्र मेघ होकर वर्षा किया करता था ।२०-२४।

५६—प्रलयकाल वर्णन

भूत्वा नारायणो योगी सत्वमूर्तिविभावसुः ! ।
गभस्तिभिः प्रदीप्ताभिः संशोषयति सागरान् ।१
ततः पीत्वार्णवान् सर्वान् नदीः कूपांश्च सर्वशः ।
पर्वतनाञ्च सलिलं सर्वमादायरश्मिभिः ।२
भित्वा गभस्तिभिश्चैव महीङ्गत्वा रसातलात् ।

पातालजलमादाय पिबन्नु रसमुत्तमम् ।३
मूत्रासृक्क्लेदमन्यञ्च यदस्ति प्राणिषु ध्रुवम् ।
तत् सर्वमरविन्दाक्षमादत्ते पुरुषोत्तमः ।४
वायुश्च भगवान् भूत्वा विधुन्वानोऽखिलं जगत् ।
प्राणापानसमानाद्यात् वायुनाकर्षते हरिः ।५
ततो देवगणाः सर्वे भूतान्येव च यानि तु ।
गन्धोघ्राणं शरीरञ्च पृथिवी संश्रितगुणाः ।६
जिह्वा रसश्च स्नेहश्च संश्रिताः सलिले गुणाः ।
रूपं चक्षुर्विपाकश्च ज्योतिरेवाश्रिनागुणाः ।७

श्रीमत्स्य भगवान् ने कहा—सबकी मूर्त्ति योगी नारायण विभावसु होकर अपनी अत्यन्त प्रदीप्त गभस्तियों के द्वारा समस्त सागरों का सशोषण किया करते हैं ।१। इसके अनन्तर सब अर्णवों का—नदियों का और सभी ओर कूपो के जल को पीकर तथा रश्मियों के द्वारा सब पर्वतों के सलिल को ग्रहण करके अपनी किरणों से मही का भेदन करके नीचे पहुंच कर रसातल से पाताल के जल का पान करके वहांके उत्तम रूप को ग्रहण कर लेते हैं सूत्र-असृक् तथा अन्य जो भी क्लेदन करने वाला प्राणियों में होता है निश्चय ही उस सब अपबिन्दाक्ष को पुरुषोत्तम ले लिया करते हैं।२-४।समस्त जगत् का विधूनन करने वाला भगवान् वायु होकर फिर श्रीहरि प्राणायाम समान आदि वायुओं का समाकर्षण किया करते हैं ।५। इसके अनन्तर सब देवगण और जो सब भूत हैं उनका भी समाकर्षण कर लिया करते हैं । गन्ध घ्राण को तथा शरीर पृथ्वी को सब गुण संश्रित हुआ करते हैं। जिह्वा-रस और स्नेह ललित में गुण संक्षिप्त होते हैं । रूप, चक्षु और विपाक ज्योति का ही समाश्रय करने वाले गुण हैं ।६-७।

स्पर्शः प्राणश्च चेष्टा च पवनेसंश्रितागुणाः ।
शब्दः श्रोत्रञ्च खान्येव गगनेसंश्रितागुणाः ।८

लोकमाया भगवता मुहूर्त्तेन विनाशिता ।
मनोबुद्धिश्च सर्वेषां क्षेत्रज्ञश्चेति यः श्रुतः ।९
तं वरेण्यं परमेष्ठि हृषीकेशमुपाश्रिताः ।
ततो भगवतस्तस्य रश्मिभिः परिवारितः ।१०
वायुनाक्रम्यमाणासु द्रुमशाखासुचाश्रिताः ।
तेषां सघर्षणोद्भूतः पावकः शतधाज्वलन् ।११
अदहच्च तदा सर्वं वृतः सम्वर्तकोऽनलः ।
सपर्वतद्रुमान् गुल्मान् लतावल्लीस्तृणानिच ।१२
विमानानि च दिव्यानि पुराणि विविधानि च ।
यानि चाश्रयणीयानि तानि सर्वाणि सोऽदहत् ।१३
भस्मीकृत्वाततः सर्वान लोकानलोकगुरुर्हरिः ।
भूयोनिर्वापयामासयुगान्तेन च कर्मणा ।१४

स्पर्श—प्राण और चेष्टा पवन में संश्रित गुण है । शब्द—श्रोत्र और और आकाश गगन के संश्रय करने वाले गुण हैं । भगवान् ने एक ही मुहूर्त्त में लोकमाया का विनाश कर दिया था । सबके मन, बुद्धि और जो क्षेत्रज्ञ सुना गयाहै वे सब उस वरेण्य परमेष्ठी हृषीकेश का उपाश्रय करने वाले हुए थे । इसके पश्चात् उन भगवान की रश्मियों से सब परिवारित हो गया था ।८-१०। वायु के द्वारा द्रुमों की शाखाओं के आक्रम्य माण होने पर आश्रित हो गये थे । उनके संघर्ष से समुत्पन्न पावक सैंकड़ों रूपों से जलता हुआ हो गया था । उस समय में सबको वृत हुए सम्वर्त्तक अनल ने जला दिया था । द्रुमों से युक्त पर्वतों को—गुल्मों को—लता बल्ली और तृणों को—दिव्य विमानों को—विविधपुरों को और जो भी आश्रणीय थे उन सबको उसने जला दिया था ।११-१३। इसके उपरान्त लोकों के गुरु श्री हरि ने समस्त लोकों को भस्मीभूत करके फिर युगान्तक कर्म के द्वारा नियमित किया था ।१४।

सहस्रवृष्टिः शतधा भूत्वा कृष्णो महाबलः ।
दिव्यतोयेन हविषा तर्पयामास मेदिनीम् ।१५
ततः क्षीरनिकायेन स्वादुना परमाम्भसा ।
शिवेन पुण्येन महीनिर्वाणमगमत् परम् ।१६
तेन रोधेन संच्छन्ना पयसां वर्षतो धरा ।
एकार्णवजलीभूता सर्वसत्वविवर्जिता ।१७
महासत्वान्यपि विभु प्रष्टान्यमितौजसम् ।
नष्टार्कपवनाकाशे सूक्ष्मे जगति संवृते ।१८
संशोषमात्मना कृत्वा समुद्रापि देहिनः ।
दग्ध्वा संलाव्य च तथा स्वपित्येकः सनातनः ।१९
पौराणं रूपमास्थाय स्वपित्यमितविक्रमः ।
एकार्णवजलव्यापी योगी योगमुपाश्रितः ।२०
अनेकानि सहस्राणि युगान्येकार्णवाम्भसि ।
न चैनं कश्चिदव्यक्तं व्यक्तं वेदितुमर्हसि ।२१

महान् बल से सम्पन्न श्रीकृष्ण ने सैकड़ों प्रकार से सहस्र वृष्टि वाले होकर दिव्य तोय हवि के द्वारा इस मेदिनी को तृप्त कर दिया था ।१५। इसके उपरान्त क्षीर-सागर में रहने वाले परम स्वाद से युक्त शिव और पुण्य जल के द्वारा इस मही का परम निर्वाण हो गया था । ।१६। फिर रोध से यह मेदिनी सच्छन्न हुई जलों की वर्षा से एकार्णवी भूत जल पूर्ण हो गई थी और यह सब सत्वों से विवर्जित थी ।१७। सूर्य-पवन और आकाश के नष्ट होने पर सूक्ष्म जगत् का सम्बरण हो जाता है और यज्ञ सत्व भी अमित ओज वाले विभु में संस्पृष्ट हो जाता करते हैं ।१८। अपने ही आपको आत्मा से समस्त समुद्रों का तथा देहधारियों का संशोषण करके सबको दग्ध करके तथा सम्प्लावित करके सनातन प्रभु एक ही उस समय में शयन किया करते हैं ।१९। अमित विक्रम वाले प्रभु पौराण रूप में समस्थित होकर शयन करते हैं और एकार्णव के जल में व्यापक योगी योग का उपाश्रय किया करते हैं

।२०। उस एकमात्र सागर में इस प्रकार से योग निद्रा के आनन्द में शयन करने वाले प्रभू को अनेकों सहस्र युग व्यतीत हो जाया करते हैं। उस अवस्था में इस अव्यक्त को कोई भी व्यक्त रूप से जानने के योग्य नहीं हुआ करता है।२१।

कश्चैव पुरुषोनाम किं योग: कश्चयोगवान्।
असौ कियन्तं कालञ्च एकार्णवविधिप्रभु: ।२२
करिष्यतीति भगवानिति कश्चन्न बुध्यते।
न दृष्टा नैव गमिता न ज्ञाता नैव पार्श्वग: ।२३
तस्य न ज्ञायते किञ्चित्तमृते देवसत्तमम्।
नम: क्षिति: पवनमप: प्रकाशंप्रजापतिं भुवनधरं सुरेश्वरम्।
पितामहंश्रुतिमिजयमहामुनिं प्रशाम्य भूय:शयनह्यरोचयत्।२४

यह पुरुष नाम वाला कौन है—योग क्या है और कौन इसके करने वाला है—यह विभु भगवान् कितने काल पर्यन्त इस एक मात्र सागर में शयन करते रहने की विधि को करेंगे—इसको कोई भी नहीं जानता है। न तो कोई इसके देखने वालाहै—न कोई इसका ज्ञान प्राप्त करने वाला है न कोई ज्ञाता तथा पार्श्व में गमन करने वाला ही होता है।२२-२३। उस देवों में श्रेष्ठ के बिना उसके विषय में कोई भी कुछ नहीं जानता है। क्षिति, पवन, जल, प्रकाश, प्रजापति, भुवनधर, सुरेश्वर, पितामह—श्रुति के नियम वाले महामुनि को प्रशमित करके वह पुन: शयन करने को चाहते हैं उस प्रभु की सेवा में नमस्कार है। ।२४।

६०—यज्ञावतार वर्णन

एवमेकार्णवो भूते शेते लोके महाद्युतिः ।
प्रच्छाद्यसलिलेनोर्वी हंसो नारायणस्तदा ।१
महतो रजसो मध्ये महार्णवसरः सु वै ।
विरजस्कं महाबाहुमक्षयं ब्रह्म यं विदुः ।२
आत्मरूपप्रकाशेन तमसा संवृतः प्रभुः ।
मनः सात्त्विकमाधाय यत्र तत् सत्यमासत ।३
यथातथ्यं परं ज्ञानं भूतन्तद्ब्रह्मणापुरा ! ।
रहस्यारण्यकोद्दिदष्टं यच्चौपनिषदं स्मृतम् ।४
पुरुषोयज्ञइत्येतत् यत्परं परिकीर्तितम् ।
यश्चान्यः पुरुषाख्यः स्यात् स एष पुरुषोत्तमः ।५
ये च यज्ञकरा विप्रा येचर्त्विज इतिस्मृताः ।
अस्मादेवपुरा भूता यज्ञेभ्यः श्रूयतां तथा ।६
ब्रह्माणं प्रथमं वक्त्रादुद्गातारञ्च सागरम् ।
होतारमपि चाध्वर्युं बाहुभ्यामसृजत् प्रभुः ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—इस प्रकार से एकार्णव भूतलोक में उस समय में महान् द्युति वाले हंस नरायण सलिल से उर्वी का प्रच्छादन करके शयन किया करते हैं ।१। महान् रजोगुण के मध्य में, महार्णवसरों में जो विरजस्क (रजोगुण से रहित) महान् बाहुओं वाला अक्षय है जिसको ब्रह्म जानते हैं ।२। अपने रूप के प्रकाश से तम से सम्वृत प्रभु सात्त्विक मन का आधान करके जिसमें रहते हैं वह सत्य है ।३। पहिले ब्रह्मा के द्वारा वह यथा तथ्य परम ज्ञान प्राप्त हुआ था जो रहस्यारण्यक उद्दिष्ट था और जो औपनिषद् ज्ञान कहा गया है ।४ जो परपुरुष यज्ञ—यह परिकीर्तित किया गया है और जो अन्य है। जिसका नाम पुरुष है वह ही पुरुषोत्तम प्रभु है।५। जो यज्ञों में सम्पादन करने वाले विप्र है वे ऋत्विज कहे गये हैं। पहिले इसी से यज्ञों के

कर्मानुष्ठान को करने के लिए जो हुए थे उनके विषय में श्रवण करो।
।६। प्रभु के प्रथम मुख से ब्रह्मा को और उद्गाता सागर को फिर
बाहुओं से होता और अध्वर्यु को सृजित किया था।

ब्रह्मणो ब्राह्मणाच्छंसि प्रस्तोतारञ्च सर्वश: ।
तौ मित्रावरुणौ पृष्ठात् प्रतिप्रस्तारमेव च ।८
उदरात् प्रतिहर्त्तारं होतारञ्चैव पार्थिव ! ।
अच्छावाकमथोर्व्यान्नेष्टारञ्चैव पार्थिव ! ।६
पाणिभ्यामथ चाग्नीध्रं सुब्रह्मण्यञ्च जानुत: ।
ग्रावस्तुतन्तु पादाभ्यामुन्नेतारञ्च याजुषम् ।१०
एवमेवैष भगवान् षोडशैव जगत्पति: ।
प्रवक्तन् सर्वयज्ञानामृत्विजोऽसृजदुत्तमान् ।११
तदेष वै वेदमय: पुरुषो यज्ञसंस्थित: ।
वेदाश्चैतन्मया: सर्वे साङ्गोपनिषदक्रिया: ।१२
स्वपित्येकार्णवे चैव यदाश्चर्यमभूत्पुरा ।
श्रूयन्तां तद्यथा विप्रा ! मार्कण्डेयकुतूहलम् ।१३
गीर्णो भगवतस्तस्य कुक्षावेव महामुनि: ।
बहुवर्षसहस्रायुस्तस्यैव वरतेजसा ।१४

उस प्रभु ने ब्रह्म से ब्राह्मणों को और सब प्रस्तोता का सृजन किया था। दोनों मित्रवरुणों को और प्रति प्रस्तार को पृष्ठ से सृजित किया गया था। हे पार्थिव ! उदर से प्रतिहर्त्ता और होता का सृजन किया गया था। दोनों ऊरुओं से अच्छा वाक तथा नेष्टा की रचना की थी। दोनों हाथों से आग्नीध्र को तथा जानु से सुब्रह्मण्य को रचा था। पादों से ग्रावस्तुत और याजुष उन्नेता को सृजन किया था। इस प्रकार से ही इन जगत् के पति भगवान् ने सोलहों सम्पूर्ण यज्ञों के प्रवक्ता उत्तम ऋत्विजों का सृजन किया था।८-११। वही यह वेदमय पुरुष यज्ञों में संस्थित है। इसी से परिपूर्ण सम्पूर्ण वेद हैं तथा अङ्गों के

सहित उपनिषदों की क्रियायें हैं। वह एकार्णव में शयन किया करते हैं जो पहिले बड़ा भारी उपश्चर्य्य हुआ था। हे विप्रगण ! जिस तरह से मार्कण्डेय को कुतूहल हुआ था। उसका अब आप लोग श्रवण करो। यह मार्कण्डेय को कुतूहल हुआ था। उसका अब आप लोग श्रवणकरो। यह महामुनि उन भगवान् की कुक्षि में ही जीर्ण होगए थे। वरदान के तेज से उनकी आयु भी बहुत से सहस्रों वर्षों की हुई थी।१२-१४।

अटंस्तीर्थप्रसङ्गेन पृथिवीतीर्थगोचरान्।
आश्रमाणि च पुण्यानि देवतायनानि च।१५
देशान् राष्ट्राणि चित्राणि पुराणि विविधानि च।
जपहोमपरः शान्तस्तपोघोरं समा स्थितः।१६
मार्कण्डेयस्ततस्तस्य शनैर्वक्त्राद्विनिःसृतः।
स निष्क्रामन्नचात्मानं जानीते देवमायया।१७
निष्क्रम्याप्यस्य वदनादेकार्णवमथो जगत्।
सर्वतस्तमसाच्छन्नं मार्कण्डेयोऽन्ववैक्षत।१८
तस्योत्पन्न भयन्तीव्रं संशयश्चात्मजीविते।
देवदर्शनसंहृष्टो विस्मयं परमङ्गतः।१९
चिन्तयन् जलमध्यस्थो मार्कण्डेयोऽन्ववैक्षत।
किन्तु स्यान्मम चिन्तेयं मोहः स्वप्नोऽनुभूयते।२०
व्यक्तमन्यतमोभावस्तेषां सम्भावितो मम।
नहीदृशं जगत् क्लेशमयुक्तं सत्यमर्हति।२१

तीर्थों के प्रसङ्ग से पृथिवी में स्थित प्रत्यक्ष तीर्थों का पर्यटन तथा पुण्यमय आश्रम देवों के आयतन, देश, राष्ट्र, विचित्र एवं अनेक पुरों का अटन करते हुए जप एवं होम में परायण तथा परम शान्त होकर घोर तपश्चर्या में समास्थित हो गये थे।१५-१६। इसके पश्चात् उनके मुख से शनैः मार्कण्डेय विनिःसृत हो गये थे। वह निष्क्रमण करते हुए देव की माया ने अपने आपको भी नहीं जानते थे अर्थात् उनको अपने

स्वरूप का भी ज्ञान नहीं था ।१७। मार्कण्डेय मुनि ने इनके मुख से बाहिर निकल कर भी इस सम्पूर्ण जगत् को सब और अन्धकार से समाच्छन्न और एकमात्र सागरमय देखा था ।१८। जब यहाँ पर इस प्रकार जगत् का स्वरूप देखा था तो उसके हृदय में अत्यन्त तीव्र भय समुत्पन्न हो गया था और अपने जीवन के रहने में भी संशय हो गया था । जब देव का दर्शन प्राप्त किया तो उससे वह अत्यधिक प्रसन्न हुआ और उसे महान् विस्मय समुत्पन्न हो गया था ।१६। जल के मध्य में स्थित मार्कण्डेय महर्षि ने चिन्तन करते हुए यह सब कुछ देखा था अपने हृदय में ऐसा विचार हो गया था कि क्यों ऐसी मेरी चिन्ता हो रही है ? क्या यह एक मोहहै अथवा स्वप्न का अनुभव किया जा रहा है।२०। व्यक्त उनका अन्यतम भाव मुझे सम्भावित हुआ था । वह सत्य जगत् इस प्रकार के आयुक्त क्लेश के योग्य नहीं होता है ।२१।

नष्टचन्द्रार्कपवने नष्टपर्वतभूतले ।
कतमः स्यादयं लोक इति चिन्तामवस्थितः ।२२
ददर्श चापि पुरुषं स्वपन्तं पर्वतोपमम् ।
सलिलेऽद्ध मथो मग्नं जीमूतमिव सागरे ।२३
ज्वलन्तमिव तेजोभिर्गोयुक्तमिव भास्करम् ।
शर्वर्यां जाग्रतमिव भासन्तं स्वेन तेजसा ।२४
देवेन्द्रष्टुमिहायातः को भवानिति विस्मयात् ।
तथैव स मुनिः कुक्षिं पुनरेव प्रवेशितः ।२५
सम्प्रविष्टः पुनः कुक्षिं मार्कण्डेयोऽतिविस्मयः ।
तथैव च पुनर्भूयो विजानन् स्वप्नदर्शनम् ।२६
स तथैव यथा पूर्वं यो धरामटते पुरा ।
पुण्यतीर्थजलोपेतां विविधान्याश्रमाणि च ।२७
क्रतुभिर्यजमानांश्च समाप्तिवरदक्षिणान् ।
आपश्यद्देवकुक्षिस्थान् याजकान् शतशोद्विजान् ।२८

नाश को प्राप्त हुए चन्द्र—सूर्य और पवन वाले तथा विनष्ट पर्वत एवं भूतल वाले इसमें यह कौन सा लोक होगा—इसी चिन्ता में वह बहुत समय पर्यन्त अवस्थित रहा था ।२२। पर्वत की उपमा वाला अर्थात् महान् विशाल शयन करते हुए एक पुरुषको देखाथा जो उसका सागर से एक जीमूत की भाँति आधा भाग सलिल में मग्न हो रहा था ।२३। जो इतना तेजोमय था कि अग्नि के समान जाज्वल्यमान था—किरणों से युक्त भास्कर के सदृश था और रात्रि में अपने तेज से भासमान जाग्रत् की भाँति दिखलाई दे रहा था ।२४। वह विस्मय से यह ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से कि आप कौन हैं देव का दर्शन प्राप्त करने के लिए यहाँ पर आये थे ज्योंही वह आये थे वैसे ही वह मुनि उसी भाँति कुक्षि में पुनः प्रवेशित हो गए ।२५। पुनः कुक्षि में सम्प्रविष्ट हुए मार्कण्डेय मुनि अत्यन्त विस्मित हो गए गये थे । फिर दूसरी बार भी उसी भाँति स्वप्न-दर्शन को वे जानने लगे थे । वह भी पूर्व की ही भाँति धरामण्डल में पर्यटन किया करते हैं । जो धरा परम पुण्यमय तीर्थों के जलों से समुपेत थी और इसी भाँति अनेक आश्रमों में भी आह्वान करते हैं । उस समय में ऋतुओं के द्वारा समाप्त कर दी है । श्रेष्ठ दक्षिणा जिनके ऐसे यजमानों को और देव की कुक्षि में स्थित सैकड़ों याजक द्विजों को उसने देखा था ।२६-२८।

सद्वृत्तमास्थिताः सर्वे वर्णाब्राह्मणपूर्वकाः ।
चत्वारश्चाश्रमाः सम्यग्यथोद्दिष्टामया तव ।२९

एवं वर्षशतं साग्रं मार्कण्डेयस्य धीमतः ।
चरतः पृथिवीं सर्वान्न कुक्ष्यन्तः समोक्षितः ।३०

ततः कदाचिदथ वै पुनर्वक्त्राद्विनिस्सृतः ।
गुप्तं न्यग्रोधशाखायां बालमेकं निरैक्षत ।३१
तथैवैकार्णवजले नीहारेणावृताम्बरे ।

अव्यग्रः क्रीडते लोके सर्वभूतविवर्जिते ।३२
स मुनिर्विस्मयाविष्टः कौतूहलसमन्वितः ।
बालमादित्यसङ्काशं नाशक्नोदभिवीक्षितुम् ।३३
स चिन्तयंस्तथैकान्ते स्थित्वा सलिलसन्निधौ ।
पूर्वदृष्टमिदं मन्ये शङ्कितो देवमायया ।३४
अगाधसलिले तस्मिन् मार्कण्डेयः सुविस्मयः ।
प्लवंस्तथार्त्तिमगमत् भयात् सन्त्रस्तलोचनः ।३५

ब्राह्मण जिनमें सर्व प्रथम हैं ऐसे चारों वर्ण वाले लोग सद्वृत्त (चरित) में समास्थित थे । ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रम भी जैसे मैंने तुमको बतलाये थे भली भाँति व्यवस्थित थे । इस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी पर संचरण करते हुए धीमान् मार्कण्डेय मुनि को डेढ़ सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे किन्तु वह फिर भी उस कुक्षि का अन्त नहीं देख पाये थे । इसके उपरान्त फिर किसी समय में पुनः वह मुख से बाहिर निकल पड़े थे और उन्होंने न्यग्रोध की शाखा में छिपे हुए एक बालक को देखा था । नीहार से समावृत जिसका अम्बर है ऐसे उस एकार्णव जल में, जहाँ कि सभी प्रकार के भूतों का अभाव था, ऐसे लोक में वह मुनि आश्चर्यसे पूर्ण तथा समाविष्ट होकर कौतूहल से संयुत हो गया । वह बालक सूर्य के तुल्य तेज से परिपूर्ण था कि उसको वह देख नहीं सका था ।३३। उसने चिन्तन करते हुए सलिल की सन्निधि में उसी भाँति एकान्त में स्थित होकर देव की माया से शङ्का वाला होकर इस सबको पूर्व की भाँति देखा हुआ मानने लगता है।३४। अत्यन्त विस्मय से संयुत होकर उस अगाध जल में भय से सन्त्रस्त नेत्रों वाला वह मार्कण्डेय मुनि प्लवमान होता हुआ अत्यन्त ही अधिक दुःख को प्राप्त हो गया था ।३५।

स तस्मै भगवानाह स्वागतं बालयोगवान् ।

बभाषे मेघतुल्येन स्वरेण पुरुषोत्तमः ।३६
मामैवंत्स ! न भेतव्यमिहैवायाहि मेऽन्तिकम् ।
मार्कण्डेयोमुनिस्त्वाहं बालन्तं श्रमपीडितः ।३७
कोमान्नाम्ना कोर्तयति तपः परिभवन्मम ।
दिव्यं वर्षसहस्राख्यधर्षयन्निवमेव यः ।३८
नह्येष वः समाचारो देवेष्वपि ममोचितः ।
मां ब्रह्मापि हि देवेशो दीर्घायुरिति भाषते ।३९
कस्तपो घोरमासाद्य मामद्य त्यक्तजीवितः ।
मार्कण्डेयेति मामुक्त्वा मृत्युमीक्षितुमर्हति ।४०
एवमाभाष्य तं क्रोधान्मार्कण्डेयो महामुनिः ।
तथैव भगवान् भूयो बभाषे मधुसूदनः ।४१

बाल योग वाले वह भगवान् उस समय में उस मार्कण्डेय से उसके स्वागत को कहने लगे थे और पुरषोत्तम प्रभु मेघके समान गम्भीरस्वर से बोले थे ।३६। पुरुषोत्तम प्रभु ने उससे कहा—हे वत्स! भयभीत मत होओ । डरना तुमको बिल्कुल भी नहीं चाहिए । इस समय तुम मेरे समीप में आ जाओ । इस पुरुषोत्तम के वचन का श्रवण करके श्रम से अत्यन्त पीड़ित होकर वह मार्कण्डेय मुनि उस बालक से बोला था।३७ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—आप कौन हैं जो दिव्य एक सहस्र वर्ष तक इस प्रकार से धर्षण करते हुए और मेरे तप को परिभुत करते हुए मेरे नाम को कीत्तित कर रहे हैं ? ।३८। देवों में भी मेरे साथ आपका यह इस प्रकार का समाचरण करना उचित नहीं है । देवों का ईश्वर ब्रह्मा भी मुझको दीर्घायु कहकर मेरे साथ भाषण किया करते हैं । कौन ऐसा

है जो घोर तपश्चर्या प्राप्त करके आज मेरे पास आकर जीवित को परित्याग कर रहा है ? मुझको मार्कण्डेय मुनि ने उससे अत्यन्त क्रोध से इस प्रकार कहा था तब उसी भाँति भगवान् मधुसूदन पुनः उससे कहने लगे थे ।३९-४१।

अहं ते जनको वत्स ! हृषीकेशः पिता गुरुः ।
आयुः प्रदाता पौराणः किं मान्त्वन्नोपसर्पसि ।४२
मां पुत्रकामः प्रथमं पिता तेऽङ्गिरसोमुनिः ।
पूर्वमाराधयामास तपस्तीव्रं समाश्रितः ।४३
ततस्त्वां घोरतपसा प्रावृणोद मितौजसम् ।
उक्तवानहमात्मस्थं महर्षिभिमतौजसम् ।४४
कः समुत्सहते चान्यो यो न भूतात्मकात्मजः ।
द्रष्टुमेकार्णवगत क्रीडन्तं योगवर्त्मना ।४५
ततः प्रहृष्टवदनो विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।
मूर्द्धिन बद्धाञ्जलिपुटो मार्कण्डेयो महातपाः ।४६
नामगोत्रे ततः प्रोच्य दीर्घायुर्लोकपूजितः ।
तस्मै भगवते भक्त्या नमस्कारमथाकरोत् ।४७

श्री भगवान ने कहा—हे वत्स ! मैं तेरा जनक हूँ । मैं परम पुरातन, हृषीकेश, पिता, गुरु और आयु के प्रदान करने वाला हूँ । क्यों तू मेरे समीप नहीं आ रहा है ? ।४२। पहिले पुत्र की कामना रखने वाले तेरे पिता अङ्गिरस मुनि ने परम तीव्र तपस्या का समाश्रय ग्रहण करके मेरी ही समाराधना की थी ।४३। इसके अनन्तर अत्यन्त घोर तप से

उसने अमित ओज वाले तुमको प्राप्त करने का वरदान प्राप्तकर लिया था। इसके पश्चात् मेरे ही अन्दर स्थित अपरिमित ओज वाले महर्षि से मैंने कहा था जो भूतात्मकात्मज न हो ऐसा अन्य कौन है जो योग के मार्ग से क्रीड़ा करते हुए एकार्णव में गत को देखने का उत्साह किया करता है ? ।४४-४५। इसके पश्चात् प्रहृष्ट मुख वाला-विस्मय से समुत्फुल्ल लोचनों से संयुक्त—मस्तक अञ्जलि पुट को बद्ध करते हुए महान् तपस्वी मार्कण्डेय अपने नाम और गोत्र का उच्चारण करके दीर्घायु और लोक पूजित ने उन भगवान् को भक्तिभाव से नमस्कार किया था।४६-४७।

इच्छेयं तत्त्वतो मायामिमां ज्ञातुन्तवानघ ! ।
यदेकार्णवमध्यस्थः शेषे त्वं बालरूपवान् ।४८
किं संज्ञश्चैव भगवन् ! लोके विज्ञायसे प्रभो ! ।
तर्कये त्वां महात्मानं को ह्यन्यः स्थातुमर्हति ।४९
अहं नारायणो ब्रह्मन् ! सर्वभूः सर्वनाशनः ।
अहं सहस्रशीर्षाख्यैर्यैः पदैरभिसंज्ञितः ।५०
आदित्यवर्णः पुरुषो मखे ब्रह्ममयो मखः ।
अहमग्निर्हव्यवाहो यादसां पतिरव्ययः ।५१
अहमिन्द्रपदे शक्रो वर्षाणां परिवत्सरः ।
अहं योगी युगाख्यश्च युगान्तावर्त एव च ।५२
अहं सर्वाणि सत्वानि दैवतान्यखिलानि तु ।
भुजङ्गानामहं शेषो तार्क्ष्यो वै सर्वपक्षिणाम् ।५३
कृतान्तः सर्वभूतानां विश्वेषां कालसंज्ञितः ।
अहं धर्म्मस्तपश्चाहं सर्वाश्रमनिवासिनाम् ।५४

अहं चैव सरिद्दिव्या क्षीरोदश्च महार्णवः ।

यत्तत् सत्यं च परममहमेकः प्रजापतिः ।५५

अहं सांख्यमहं योगोऽप्यहं तत्परमम्पदम् ।

अहमिज्या क्रिया चाहमहंविद्याधिपः स्मृतः ।५६

मार्कण्डेय महामुनि ने कहा—हे अनघ ! मैं अब तात्विक रूप से आपकी इस देवमाया के ज्ञानको जानने की मैं इच्छा करता हूं कि जो बाल रूप वाले आप इस एकार्णव के मध्यमें स्थित होकर शयनकर रहे हैं।४८। हे प्रभो ! हे भगवन् ! आप इस लोकमें किस संज्ञा वाले होकर जाने जाते हैं अर्थात् लोक में आपका क्या नाम प्रसिद्ध है । मैं ऐसा अनुमान करताहूं कि महात्मा आपको कोई अन्य स्थित करने के योग्यहोता है ।४६। श्री भगवान् ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैं सबकी उत्पत्ति करने वाला तथा सबका नाश करने वाला नारायण हूं मैं सहस्र शीर्षा नाम वाले पदों से अभिसंज्ञित होता हूं ।५०। मैं सूर्य के समान वर्ण वाला पुरुष और मख में ब्रह्ममय मख हूं । मैं हव्य का वहन करने वालाअग्नि हूं तथा मैं अविनाशी यादवों का स्वामी हूं ।५१। मैं इन्द्र के पद पर शक्र हूं-वर्षों में परिवत्सर हूं—मैं युगाख्य योगी हूं-और युगान्तावर्त्त हूं । मैं ये सब सत्वोंके स्वरूप वालाहूं और समस्त दैवत भी मैं ही हूं भुजंगों में मैं शेष हूं, तथा सब पक्षियों में मेरा तार्क्ष्य अर्थात् गरुड़ का स्वरूप है।५२-५३। समस्त भूतों का मैं कृतान्त हूं तथा विश्वेषों में मैं कालकी संज्ञा वाला हूं । मैं सभी आश्रमों में निवास करने वालों का धर्म तथा तप हूं । जो परम दिव्य सरित् हैं वह और क्षीरोद महार्णव मेरा ही स्वरूप है । जो यह परम सत्यहै वह मैं ही हूं तथा मैं एक ही प्रजापति हूं । मैं ही सांख्य तथा योग हूं और मैं ही वह सर्वोपरि परम पद हूं ।

मैं ही इज्या और क्रिया हूँ तथा मुझे ही विद्या का अधिप कहा गया है।५४-५६।

अहं ज्योतिरहं वायुरहं भूमिरहं नभः।
अहमापः समुद्राश्च नक्षत्राणि दिशोदश।५७
अहं वर्षमहं सोमः पर्जन्योऽहमहं रविः।
क्षीरोदसागरे चाहं समुद्रे वडवामुखः।५८
वह्निः संवर्तको भूत्वा पिबंस्तोयमयं हविः।
अहं पुराणः परमं तथैवाहं परायणम्।५९
अहं भूतस्य भव्यस्य वर्तमानस्य सम्भवः।
यत् किञ्चित् पश्यसे विप्र ! यच्छृणोषि च किञ्चन।६०
यल्लोके चानुभवसि तत् सर्वं मामनुस्मर।
विश्वसृष्टं मयापूर्वं सृज्यं चाद्यापि पश्यमाम्।६१
युगे युगे च सृक्ष्यामि मार्कण्डेयाखिलं जगत्।
तदेतदखिलं सर्वं मार्कण्डेयावधारय।६२
शुश्रूषुर्मम धर्मांश्च कुक्षौ चर सुखं मम।
मम ब्रह्मा शरीरस्थो देवैश्च ऋषिभिः सह।६३

मैं ही ज्योति, वायु, भूमि, नभ, आप (जल), समुद्र, नक्षत्र, दश दिशाएँ, वर्ष, सोम, पर्जन्य, रवि हूँ अर्थात् पवनभूमि आदि समस्त मेरा ही एक दूसरा स्वरूप है। क्षीरसागर में मैं विद्यमान हूँ तथा समुद्र में बड़वानल मेरा ही रूप है। सम्वर्त्तक अग्नि होकर जलमय हवि का

पान करने वाला मैं परम पुरातन एवं परायण मैं हूँ। मैं ही अतीत होने वाले-भव्य (भविष्य) और वर्त्तमान काल को समुत्पन्न करनेवाला हूँ। हे विप्र ! इस लोक में जो भी कुछ तुम देखते हो, श्रवण करते हो और जिसका भी कि किंचिमात्र अनुभव किया करते हो वह सभी मुझ को ही अर्थात् मेरा ही स्वरूप समझना चाहिए। मेरे ही द्वारा यह सम्पूर्ण विश्व पहिले सृजित किया गया है और जो कुछ भी आज भी सृजन करने के योग्य है उस सभी को मुझे ही देख लो ।५७-६१। हे मार्कण्डेय ! प्रत्येक युग में इस सम्पूर्ण जगत को मैं ही सृजित किया करता हूँ इसीलिए यह सभी कुछ जो भी है मेरा ही स्वरूप है और मुझको ही तुम समझ लो ।६२। मेरे धर्मों के श्रवण करने की इच्छा वाले यदि तुम हो तो तुम मेरी ही इस कुक्षि में सुख पूर्वक संचरण करते रहो। यह ब्रह्मा भी मेरे इसी शरीर में स्थित है और सब देवगण भी उसके साथ में विद्यमान रहा करते हैं ।६३।

व्यक्तमव्यक्तयोगं मामवगच्छासुरद्विषम् ।
अहमेकाक्षरो मन्त्रस्त्र्यक्षरश्चैव तारकः ।६४
परस्त्रिवर्गादोङ्कारस्त्रिवर्गार्थनिदर्शनः ।
एवमादिपुराणेशो वदन्नेव महामतिः ।६५
वक्त्रमाहृतवानाशु मार्कण्डेयं महामुनिम् ।
ततो भगवतः कुक्षिं प्रविष्टो महामुनिम् ।६६
स तस्मिन् सुखमेकान्ते शुश्रूषुहंसमव्ययम् ।
योऽहमेव विविधतनुं परिश्रितो महार्णवे व्यपगयचन्द्रभास्करे ।
शनैश्चरन् प्रभुरपि हंससंज्ञितोऽसृजं जगद्विरहितकालपर्यये ।६७

व्यक्त-अव्यक्त योग वाला—असुरों का द्रष्टा मुझको ही समझ लो। एकाक्षर और तीन अक्षरों वाला तारक मन्त्र भी मेरा ही एक स्वरूप है।६४। त्रिवर्ग से पर ओङ्कार और त्रिवर्ग के अर्थका निदर्शन-महामति आदि पुराणेश ने इस प्रकार से महामुनीश्वर मार्कण्डेय से कहते हुए ही अपना मुख आहृत कर दिया था और इसके उपरान्त वह मुनि श्रेष्ठ उनकी कुक्षि में प्रविष्ट हो गये थे।६५-६६। वह उसमें एकान्त में सुख पूर्वक अविनाशी हंस का श्रवण करने वाले होकर कुक्षि में संचरण करते हैं। जो यह मैं ही नाना भांति वाले तनुओं का परिश्रम करके इस महार्णव में जिसमें सूर्य और चन्द्र आदि सभी व्यपगत हैं हंस की संज्ञा वाला प्रभु भी धीरे-धीरे चरण करता हुआ विरहित् काल पर्याय में इस जगत् का सृजन मैंने ही किया है।६७।

विश्व ओंकार परिवार की स्थापना

ॐ परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ व स्वाभाविक नाम है। इसे मन्त्र शिरोमणि, मन्त्र सम्राट, मन्त्र-राज, बीज मन्त्र और मन्त्रों का सेतु आदि उपाधियों से विभूषित किया जाता है। इसे श्रेष्ठतम, महानतम और पवित्रतम मन्त्र की संज्ञा भी दी जाती है। सारे विश्व में इसकी तुलना का कोई मन्त्र नहीं है। यह सभी मन्त्रों को अपनी शक्ति से प्रभावित करता है। सभी मन्त्रों की शक्ति ओंकार की ही शक्ति है। यह शक्ति और सिद्धिदाता है। भौतिक व आध्यात्मिक उत्थान के लिए कोई भी दूसरी श्रेष्ठ व सरल साधना नहीं है।

सभी ऋषि मुनि ॐ की शक्ति और साधना से ही अपना आत्मिक उत्थान करते हैं। परन्तु आज आश्चर्य है कि ॐ का अन्य मन्त्रों की तरह व्यापक प्रचार नहीं है। इस कमी को अनुभव करते हुए विश्व ओंकार परिवार की स्थापना की गई है। आप भी अपने यहाँ इसका एक प्रचार केन्द्र स्थापित करें। शाखा स्थापना का सारा सामग्री निःशुल्क रूप से प्रधान कार्यालय बरेली से मँगवा लें। आपको केवल इतना करना है कि स्वयं ओंकारोपासना आरम्भ करके चार अन्य मित्रों व सम्बन्धियों को प्रेरित करें और सभी संकल्प पत्र व शाखा स्थापना का प्रार्थना पत्र प्रधान कार्यालय को भिजवा दें। इस वर्ष ३२००० साधकों द्वारा १५०० करोड़ मन्त्रों के जप का महापुरश्चरण पूर्ण किया जाना है। आशा है कि ओंकार को जन-जन का मन्त्र बनाने के श्रेष्ठतम आध्यात्मिक महायज्ञ में आप सम्मिलित होकर महान पुण्य के भागी बनेंगे।

ओंकार रहस्य, ओंकार दैनिक विधि, ओंकार चालीसा, ओंकार कीर्तन और ओंकार भजनावली नामक १) ६० मूल्य वाली सस्ती पुस्तिकाओं को अधिक से अधिक संख्या में वितरित करें।

विनीत :

विश्व ओंकार परिवार चमनलाल गौतम
ख्वाजाकुतुब, वेदनगर, बरेली—२४३००३ (उ० प्र०)

मत्स्य–पुराण

(द्वितीय खण्ड)

मत्स्य–पुराण

(द्वितीय खण्ड)

[सरल भाषानुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण]

दो शब्द

पुराणों का मुख्य उद्देश्य धर्म-कथाओं और धर्म-इतिहास का वर्णन करना माना गया है, पर बहुसंख्यक पुराणों में इनके अतिरिक्त विभिन्न कलाओं और विद्याओं का विवेचन भी बड़े विस्तारपूर्वक किया गया है। नारद पुराण, गरुड़ पुराण, अग्नि पुराण, विष्णु धर्मोत्तर पुराण आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। नारद पुराण में वेद के छः अंगों—शिक्षा, कला व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द शास्त्र का जैसा विस्तृत और विशद वर्णन किया गया है उसे देखकर आश्चर्य होता है। गरुड़ पुराण में रोग और औषधियों का जितना वर्णन मिलता है, उससे उसे एक छोटा-मोटा पृथक् आयुर्वेद ग्रन्थ ही कहा जा सकता है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में राज-सञ्चालन सम्बन्धी सैकड़ों पृष्ठ व्यापी एक पूरा शास्त्र ही मौजूद है।

'मत्स्यपुराण' के इस दूसरे खण्ड में भी 'राजनीति, गृह निर्माण विद्या' और 'मूतिकला' का पर्याप्त विस्तार के साथ वर्णन पाया जाता है। इसमें केवल राजा के कर्त्तव्य और प्रजापालन का उपदेश दिया गया है, वरन् राजधानी का नगर किस प्रकार बसाया जाय, किलाबन्दी किस प्रकार की जाय, अपनी रक्षा और शत्रुओं का सामना करने के लिए उसमें कैसे अस्त्र-शस्त्रों, युद्ध—सामग्री और हर तरह के घायलों की चिकित्सा, जड़ी-बूटियों तथा औषधियों का संग्रह किया जाय इसका वर्णन दस—बीस अध्यायों में विस्तार के साथ किया गया है।

प्रासाद, भवन, गृह आदि के निर्माण में भी इस देश की प्राचीन 'वास्तु विद्या' (इन्जीनियरिंग) का ज्ञान भली प्रकार प्रदर्शित किया गया है। मकानों में द्वार किस तरफ बनाये जायें और खम्भों के निर्माण में किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है? इसमें चौकोर से लेकर बत्तीस पहलों तक के तरह-तरह के खम्भों का जो वर्णन मिलता है उससे उस जमाने के लोगों की कलाप्रियता का परिचय मिलता है।

देवताओं की मूर्ति निर्माण में तो काफी जानकारी का होना अनिवार्य ही है। प्रत्येक देवता की मूर्तिमें क्या विशेष लक्षण रखे जायें जिस

से उसे ठीक-ठीक पहिचाना जाय और उसके समस्त साम्प्रदायिक चिन्ह उसमें स्पष्ट दिखाई पड़ सकें ? उदाहरण के लिये विष्णु-भगवान् की मूर्ति- निर्माण में वर्णन किये कुछ लक्षण यहाँ दिये जाते हैं—

"शंख, चक्र, पद्म और गदा धारण करने वाला—परम प्रशान्त उनका मस्तक छत्र के आकार से संयुत होता है। शंख के समान ग्रीवा, शुभ नेत्र, ऊँची नाक, सीप के से कान, परम प्रशान्त उरु वाला उनका रूप होता है। उनकी मूर्ति कहीं आठ भुजाओं और कहीं चार भुजाओं से युक्त होती है। यदि भुजा बनाई जायें तो खंग, गदा, शर, दिव्य पद्म ये सब आयुध विष्णु जी के दक्षिण भाग में होने चाहिये और धनुष, खेटक, चक्र ये चार भुजा वाले स्वरूप में गदा और पद्म दक्षिण भाग में और शंख तथा चक्र वाम भाग में रखे जायें। उनके नीचे की ओर पैरों के मध्य भाग में पृथ्वी की कल्पना करनी चाहिये। दक्षिण भाग में प्रणति करते हुये गरुड़ और वाम के हाथों में पद्म धारण किये लक्ष्मी देवी को विराजमान करना चाहिये। विभूति की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को गरुड़ की स्थापना भगवान् के सम्मुख भाग में करनी चाहिए। दोनों पार्श्वों में पद्म से संयुक्त श्री तथा पुष्टि की स्थापना करे। विद्याधरों के ऊपर तोरण बनावे और उसे दुन्दुभिनाद करते हुए गन्धर्व, लतायें, सिंह और व्याघ्र आदि से सजाये।"

इसी प्रकार प्रत्येक देवता के विशेष चिन्हों का मूर्तियों में दर्शाने का पूरा विवरण दिया गया है। अन्त में सब मूर्तियों के अङ्ग अनुपात के अनुसार कितने बड़े और छोटे होने चाहिये इसको भी स्पष्ट कर दिया गया है। एक जगह कहा गया है कि "मूर्ति की कटि अठारह अंगुल की होनी चाहिए। स्त्री-मूर्ति की कटि बाईस अंगुल की रखी जाती है और दोनों स्तन बारह-बारह अंगुल के होते हैं। नाभि के मध्य का परीणाह बयालीस अंगुल का अभीष्ट होता है। पुरुषों में यह विस्तार पचपन अंगुल होता है। दोनों कन्धे छः-छः अंगुल के बताये

गये हैं। ग्रीवा आठ अंगुल और दोनों भुजाओं का आयाम ब्यालीश अंगुल का होता है।'' इसी प्रकार शरीर के प्रत्येक अङ्ग की—हथेलियों और पाँच अंगुलियों तक की नाप ठीक-ठीक बतलाई गई है, जिससे मूर्ति सब प्रकार से सुन्दर दिखाई दे और उसमें कहीं बेडौलपन न हो।

और भी कई अन्य महत्वपूर्ण विषय इस खण्ड में मिलते हैं। भृगु, अङ्गिरस, अत्रि, कुशिक, कश्यप, वसिष्ठ आदि सभी प्रमुख ऋषियों के नाम, गोत्र, वंश, प्रवर स्पष्ट रूप में दिये गये हैं। ये ऋषि भारतीय संस्कृति के आदि जनक माने जाते है और अधिकांश पौराणिक उपाख्यान इन्हीं वंशों से किसी न किसी रूप में सम्बन्धित है। नरसिंह और वाराह अवतारों के चरित्र के विषय में भी मत्स्य पुराण का वर्णन कुछ विशेषता लिये हुए है। देवासुर संग्राम में दोनों पक्षों के सेनानायकों तथा वीरों का परिचय और उनका संग्राम कवि कल्पना का अच्छा परिचय देने वाला है। सावित्री सत्यवान की कथा इस पुराण में भी छः सात अध्यायों में दी गई है और उसकी वर्णन शैली प्रभावशाली है। मंगल-अमंगल सूचक शकुनों, तरह-तरह के स्वप्नों और अङ्गों को फड़कने का जो फलादेश दिया गया है वह अधिकांश पाठकों को आकर्षक जान पड़ेगा।

अठारहों पुराणों के स्तर पर विचार करते हुए ''मत्स्य पुराण'' को महत्वपूर्ण ही माना जायगा। यह न बहुत अधिक बड़ा है और न बहुत छोटा और पुराण के पाँचों अंगों के साथ इसमें पर्याप्त जीवनोपयोगी और समाज की दृष्टि से प्रगतिशील विद्याओं और कलाओं का परिचय दिया गया है। यद्यपि हम एक हजार पृष्ठ में सब बातों को पूरे विस्तार के साथ नहीं दे सकते तब भी संशोधित संस्करण में पाठकों को सभी आवश्यकीय बातों का ज्ञान हो सकेगा और वे स्वयं इसके महत्व को अनुभव कर सकेंगे।

—सम्पादक

मत्स्य पुराण

(द्वितीय खण्ड)

६१—नरसिंह माहात्म्य वर्णन

इदानीं श्रोतुमिच्छामो हिरण्यकशिपोर्वधम् ।
नरसिंहस्य माहात्म्यं तथा पापविनाशनम् ।१
पुरा कृतयुगे विप्रा हिरण्यकशिपुः प्रभुः ।
दैत्यानामादिपुरुषश्चकार स महत्तपः ।२
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
जलवासी समभवत् स्नानमौनधृतव्रतः ।३
ततः शमदमाभ्याञ्च ब्रह्मचर्येण चैव हि ।
ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च ।४
ततः स्वयम्भूर्भगवान् स्वयमागम्य तत्र ह ।
विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता ।५
आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भर्दैवतैस्तथा ।
रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसपन्नगैः ।६
दिग्भिश्चैव विदिग्भिश्च नदीभिः सागरैस्तथा ।
नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः ।७

ऋषिगण ने कहा—हे मुनिवर ! इस समय में हम लोग हिरण्यकशिपु के वधके विषय में श्रवण करने की इच्छा रखते हैं तथा भगवान्

नरसिंह प्रभु के माहात्म्य को भी सुनना चाहते हैं जो सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाला है ।१। महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—हे विप्र-वृन्द ! पहिले कृत युग में हिरण्यकशिपु राजा दैत्यों का आदि पुरुष था और उसने दश सौ दश हजार वर्ष तक महान् घोर तपश्चर्या की थी। वह स्नान-मौन और व्रतको धारण करने वाला होकर जलमें ही निवास करने वाला हो गया था २३। इसके अनन्तर उस हिरण्यकशिपु दैत्य-राज के उस महान् उग्र तप से और नियमों के परिपालन से शमदम और ब्रह्मचर्य के द्वारा ब्रह्माजी उस पर बहुत प्रसन्न हो गये थे। जब वे अत्यधिक प्रसन्न हो गये तो स्वयम्भू भगवान् स्वयं ही वहाँ पर उसके तप के स्थल पर आ गये थे। हंसयुक्त-सूर्य के समान वर्ण वाले भास्वान् विमान के द्वारा ब्रह्माजी ने वहाँ पर पदार्पण किया था। उस समय में उनके साथ आदित्य, वसुगण, साध्य, मरुद्गण, दैवत, रुद्र, विश्व सहायक, यक्ष, राक्षस, पन्नग, दिशायें, विदिशायें, नदियाँ, सागर, नक्षत्र, मुहूर्त्त, खेचर और महान् ग्रह सब थे ।४-७।

देवैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्द्धं सिद्धैः सप्तर्षिभिस्तथा ।
राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिर्गन्धर्वाप्सरसाङ्गणैः ।८
चराचरगुरुः श्रीमान् वृतः सर्वैं दिवौकसैः ।
ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत् ।९
प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसाऽनेनसुव्रत !
वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि ।१०
न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः ।
न मानुषाः पिशाचा वा हन्युर्मान्देवसत्तम ! ।११
ऋषयो वा न मां शापः शपेयुः प्रपितामह ।
यदि मे भगवान् प्रीतो वर एष वृतोमया ।१२
न चास्त्रेण न शस्त्रेण गिरिणा पादपेन च ।
न शुष्केण न चार्द्रेण न दिवा न निशाऽथवा ।१३

भवेयमहमेवार्कः सोमोवायुर्हुताशनः ।
सलिलञ्चान्तरिक्षञ्च नक्षत्राणि दिशो दश ।१४
अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः ।
धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः ।१५

ब्रह्माजी जब वहाँ आये थे तो वे देवगण, ब्रह्मर्षि, सिद्ध और सप्तर्षियों के साथ में थे । बड़े २ राजर्षि, पुण्यवान्, गन्धर्व, अप्सराओं के समुदाय तथा समस्त दिवौकसों के साथमें वे चरों और अचरोंके गुरु ब्रह्मवेत्ताओं में परम श्रेष्ठ श्रीमान् ब्रह्माजी परिवृत थे । वहाँ पहुँचकर जगद्गुरु ब्रह्माजी ने उस दैत्यराज से यह वचन कहा था ।८-९। हे सुव्रत ! तुम मेरे परम भक्त हो । मैं इस समय में आपके इस अत्यन्त उग्र तप से परम प्रसन्न हो गया हूँ । आपका कल्याण हो, अब जो भी कोई वरदान मुझसे चाहते हो माँग लो और जो भी आपकी परम अभीष्ट कामना हो उसे प्राप्त करलो ।१०। वह ब्रह्माजी का वचन सुनकर हिरण्यकशिपु ने कहा—हे देव सत्तम ! मैं यही चाहता हूँ कि देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, उरग, राक्षस, पिशाच और मानुष कोई भी मेरा हनन न करें ।११। हे प्रपितामह ! ये ऋषिगण भी अपने शापों के द्वारा मुझे अभिशप्त न करने पावें । यदि भगवान् आप मुझपर पूर्णतया प्रसन्न हो गये हैं तो मैं आपने यही वरदान प्राप्त करना चाहता हूँ।१२ हे भगवन् ! मेरी मृत्यु का साधन कोई भी अस्त्र, शस्त्र, गिरि, पादप, आदि न होवें अर्थात् इनमें किसीके भी द्वारा मैं न मारा जा सकूँ । मैं किसी भी शुष्क स्थल में अर्थात् भूमि पर और आर्द्र भाग में अर्थात् जल में न मरूँ । मुझे दिन में तथा रात्रि में किसी भी समय में मृत्यु न आवे अर्थात् मुझे दिन और रात में कोई भी न मार सके ।१३। हे ब्रह्मन् ! मैं ही सूर्य हो जाऊँ तथा सोम-वायु और हुताशन मैं ही बन जाऊँ अर्थात् इन सबकी शक्ति मेरे अन्दर ही हो जावे । मैं ही सलिल-अन्तरिक्ष, नक्षत्र, दशों दिशाएँ हो जाऊँ अर्थात् इन सबकी शक्ति मेरे

ही अन्दर उपस्थित हो जावे। हिरण्यकशिपु ने कहा कि मैं क्रोध, काम वरुण इन्द्र, यम, धनद, धन का स्वामी, किम्पुरुषों का अधिप यक्ष हो जाऊँ अर्थात् इन सबकी क्षमता मेरे ही अन्दर हो जानी चाहिए और मेरे सामने ये सब शक्तिहीन हो जावें।१४-१५।

एते दिव्या वरास्तात ! मया दत्तास्तवाद्भुताः ।
सर्वान् कर्मान् सदा वत्स ! प्राप्स्यसे त्वं न संशयः ।१६
एवमुक्त्वा स भगवान् जगामाकाश एव हि ।
वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ।१७
ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा ऋषिभिः सह ।
वरप्रदानं श्रुत्वैव पितामहमुपस्थिताः ।१८
वरप्रदानाद्भगवन् ! वधिष्यति स नोऽसुरः ।
तत्प्रसीदाशु भगवन् ! वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम् ।१६
भगवन् ! सर्वभूतानामादिकर्त्ता स्वयं प्रभुः ।
स्रष्टा त्वं हव्यकव्यानामव्यानामव्यक्तप्रकृतिबुधः ।२०
सर्वलोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः ।
आश्वासयामास सुरान् सुशीतैर्वचनाम्बुभिः ।२१

ब्रह्माजी ने कहा—हे तात ! ये सब दिव्य वरदान हैं और बहुत ही अद्भुत हैं किन्तु मैंने तुमको ये सभी वरदान दे दिये हैं। हे वत्स ! तुम अपने सम्पूर्ण कामों को सदा प्राप्त कर लोगे—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।१६। इस प्रकार से उन भगवान् ब्रह्माजी ने कहा था और फिर आकाश के मार्ग से ही वापिस चले गये थे। ब्रह्माजी उस समय में ब्रह्मर्षि गणों से सेवित ब्रह्माजी के घर वैराज को चले गये थे।१७। इसके पश्चात् देव, नाग, गन्धर्व आदि सब ऋषिगण के साथ इन वरों के प्रदान को सुनकर ही ब्रह्माजी पितामह के समीप में उपस्थित हुए थे।१८। देवगण ने कहा—हे भगवन् ! आपके इस प्रकार के वर-दानों के दे देने से तो यह हमारा सबका वधकर डालेगा। हे भगवन् !

इसलिये आप प्रसन्न होइये और शीघ्र ही इसका कोई वध होने का वध होने का उपाय भी सोचिये ।१९। हे भगवान् ! आप तो समस्त भूतों के आदि कर्त्ता है और स्वयं प्रभु हैं। आप हव्य-द्रव्यों के सृजन करने वाले हैं। अव्यक्त प्रकृति और परम बुध है। इस समस्त लोकों के हित करने वाले वाक्य को सुनकर प्रजापति देव ने सब सुरों को सुशीतल वचन रूपी सुन्दर जलों के द्वारा समाश्वासन दिया था।२०
२१।

अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम् ।
तपसोऽन्तेस्य भगवान् वधं विष्णुः करिष्यति ।२२
तच्छ्रुत्वा विबुधा वाक्यं सर्वे पङ्कजजन्मनः ।
स्वानि स्थानानि दिव्यानि विप्रा जग्मुर्मुदान्विताः ।२३
लब्धमात्रे वरे चाथ सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः ।
हिरण्यकशिपु र्दैत्यो वरदानेन दर्पितः ।२४
आश्रमेषु महाभगवान् स मुनीन् शंसितव्रतान् ।
सत्यधर्मपरान् दान्तान् धर्षयमास दानवः ।२५
देवांस्त्रिभुवनस्थांश्च पराजित्य महासुरः ।
त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति दानवः ।२६
यदा वरमदोत्सिक्तश्चोदितः कालधर्मतः ।
यज्ञियानकरोद्दैत्यानयज्ञियाश्च देवताः ।२७
तदादित्याश्चे साध्याश्च विश्वे च वसवस्तथा ।
सेन्द्रा देवगणायक्षाः सिद्धद्विजमहर्षयः ।२८
शरणं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम् ।
देवदेव यज्ञमयं वासुदेवं सनातनम् ।२९

हे देवगणो ! उस असुर ने तपस्या की है अतएव उसका फल तो उसे अवश्य ही प्राप्त करना ही था। इस तप के फल के अन्त हो जाने

पर इसका वध भगवान् विष्णु ही करेंगे ।२२। हे विप्रो ! उस समय में सब देव पङ्कज से जन्म ग्रहण करने वाले पितामह के इस वाक्य को श्रवण कर प्रसन्नता से युक्त होकर अपने २ दिव्य स्थानों को चले गये थे ।२३। ऐसे वरदानों के प्राप्त होने के साथ ही वह दैत्यराज सम्पूर्ण प्रजाओं को बाधा पहुँचाने लगा था। वह दैत्यराज हिरण्यकशिपु वरदान प्राप्त करने से अत्यन्त दर्पित हो गया था अर्थात् उसे बड़ा घमंड हो गया था ।२४। वह दानव जो अपने-अपने आश्रमों में रहने वाले महाभाग मुनिगण थे और जो शंसित व्रतों वाले-सत्यधर्म में परायण एवं परम दमनशील सत्पुरुष थे उन सबको धर्षित करने लगा था ।२५। त्रिभुवनों में स्थित देवों को उस महासुर ने पराजित करके पूर्ण त्रैलोक्य को अपने वश में ले लिया था और वह दानव स्वयं स्वर्ग में निवास किया करता था। जिस समय में वह वरदान के मद से अत्यन्त ही उत्सिक्त हो गया था तब वह काल के धर्म से प्रेरित हो गया और उसने दैत्यों को यज्ञिय बना दिया था और अयज्ञियों को देवता कर दिया था।२६-२७। उस समय में आदित्य, साध्य, विश्वेदेवा वसुगण इन्द्र के सहित देवगण, यक्ष, सिद्ध, द्विज, और महर्षि, वृन्द सबके सब महान् बल सम्पन्न भगवान् विष्णु की शरणागति में पहुँचे थे जो प्रभु देवों के भी देव—यज्ञमय सनातन वासुदेव थे और आप ही हमारे शरण अर्थात् रक्षक हैं—यह प्रार्थना करने लगे थे ।२८-२९।

नारायण ! महाभाग ! देवास्त्वां शरणंगताः ।
त्रायस्व जहि दैत्येन्द्रं हिरण्यकशिपुं प्रभो ! ।३०
त्वं हि नः परमो धाता त्वं हि नः परमो गुरुः ।
त्वं हि नः परमोदेवो ब्रह्मादीनां सुरोत्तम ।३१
भयन्त्यजध्वममरा अभयं वो ददान्यहम् ।
तथैव त्रिदिवं देवाः प्रतिपद्यत मा चिरम् ।३२

एषोऽहं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम् ।
अवध्यममरेन्द्राणं दानवेन्द्रं निहन्म्यहम् ।३३
एवमुक्त्वा तु भगवान् विसृज्य त्रिदशेश्वरान् ।
वधं सङ्कल्पयामास हिरण्यकशिपोः प्रभुः ।३४
सहायश्च महाबाहुरोंकारं गृह्य सत्वरम् ।
अथोंकारसहायस्तु भगवान् विष्णुरव्ययः ।३५

देवगण ने भगवान् विष्णु से कहा—हे नारायण ! आप तो महान् भाग वाले हैं । हम समस्त देवगण आपकी शरणागति में उपस्थित हो गये हैं । हे प्रभो ! आप हमारी रक्षा करो और इस दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु का वध करो ।३०। हे सुरोत्तम ! हम सबके आप ही परम धाता हैं और आप ही हमारे परम गुरु हैं—आप ही हमारे सर्वोपरि विराजमान देव हैं और ब्रह्मा आदि सब में आप सवश्रेष्ठ देव हैं ।३१। भगवान् विष्णु ने कहा—हे अमर गणो ! भय का पूर्ण रूप से त्याग करदो-मैं आपको अभय का दान करता हूँ । हे देवताओ ! पूर्व की ही भाँति आप सब लोग अपने त्रिदिव को पुनः बहुत ही शीघ्र प्राप्त कर लोगे । ।३२। यह मैं ही वरदान प्राप्त करने ये अत्यन्त घमन्ड में भरा हुआ जो यह दैत्यराज है उसको गणों के सहित मार दूंगा जो कि यह दानवेन्द्र अन्य सग अमरेन्द्रों के द्वारा अवध्य है ।३३। इस प्रकार से कहकर भगवान् ने उन सब त्रिदशेश्वरों को विसर्जित कर दिया था और फिर प्रभु ने उस दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु वध के करने के लिए मन में संकल्प किया था ।३४। सहायता करने वाले महाबाहु प्रभु ने बहुत शीघ्र ओङ्कार का ग्रहण किया था । इसके अनन्तर अव्यय भगवान् विष्णु ओङ्कार की सहायता वाले हो गये थे ।३५।

हिरण्यकशिपुस्थानं जगाम हरिरीश्वरः ।
तेजसा भास्कराकारः शशी कान्त्येवचापरः ।३६
नरस्य कृत्वार्द्धं तनुं सिंहस्यार्द्धं तनुं तथा ।

नारसिंहेन वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना ।३७
ततोऽपश्यत विस्तीर्णां दिव्यां रम्यां मनोरमाम् ।
सर्वकामयुतां शुभ्रां हिरण्यकशिपोः सभाम् ।३८
विस्तीर्णां योजनशतं शतमध्यर्द्धमायताम् ।
वैहायसींकामगमां पञ्चयोजनविस्तृताम् ।३९
जराशोकक्लमापेतां निष्प्रकम्पां शिवां सुखाम् ।
वेश्महर्म्यवतीं रम्यां ज्वलन्तीमिव तेजसा ।४०
अन्तःसलिलसंयुक्तां विहितां विश्वकर्म्मणा ।
दिव्यरत्नमयैर्वृक्षैः फलपुष्पप्रदैर्युताम् ।४१
नीलपीतसितश्यामैः कृष्णैर्लोहितकैरपि ।
अवतानैस्तथा गुल्मैर्मञ्जरीशतधारिभिः ।४२

ईश्वर हरि भगवान् हिरण्यकशिपु के स्थान को गये थे। उस समय में वह तेज से भास्कर के आकार के तुल्य और कान्ति से एक दूसरे चन्द्रमा के समान थे। नर का आधा शरीर बनाकर तथा आधा शरीर सिंह का धारण करके नरसिंह वपुसे युक्त होकर, पाणि के द्वारा पाणि का स्पर्श करते हुए हरि हिरण्यकशिपु की सभामें पहुँचे थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अत्यन्त विस्तीर्ण, दिव्य, रम्य, मनोरम, समस्त कामों से समन्वित और शुभ्र दैत्यराज हिरण्यकशिपु की सभा का अवलोकन किया था।३६—३८। वह सभा सौ योजन विस्तार वाली—शत मध्यर्द्ध, वैहायसी, काम पूर्वक गमन करने वाली तथा पाँच योजन विस्तृत थी।३९। हिरण्यकशिपु की सभा जरा शोक और क्लम से अपेत अर्थात् रहित थी तथा निष्प्रकम्प—शिव—सुखप्रद—वेश्म और हर्म्यों से संयुत रम्य एवं तेज से जाज्वल्यमान जैसी थी।४०। इस सभा के मध्य में सलिल रहता था और इसकी रचना विश्वकर्मा के द्वारा की गयी थी। वह सभा परम दिव्य फल-पुष्प प्रदान करने वाले रत्नों से परिपूर्ण वृक्षों से समन्वित थी। नील—पीत—सित—श्याम—कृष्ण

लोहित अवतारों से युक्त तथा मंजरी शतधारी गुल्मों से संयुक्त वह सभा थी जिसकी अवर्णनीत शोभा हो रही थी ।४१-४२।

सिताभ्रघनसङ्काशा प्लवन्तीव व्यदृश्यत ।
रश्मिवती भास्वरा च दिव्यगन्धमनोरमा ।४३
सुमुखा न च दुःखा सा न शीता न च धर्मदा ।
न क्षुत्पिपासे ग्लानिं वा प्राप्यतां प्राप्नुवन्ति ते ।४४
नानारूपैरुपकृतां विचित्रैरति भास्वरैः ।
स्तम्भैर्न विधृता सा च शाश्वती चाक्षया सदा ।४५
सर्वे च कामाः प्रचुरा ये दिव्या ये च मानुषाः ।
रसयुक्तं प्रभूतञ्च भक्ष्यभोज्यमनन्तकम् ।४६
पुण्यगन्धस्रजश्चात्र नित्यपुष्पफलद्रुमाः ।
उष्णे शीतानि तोयानि शीते चोष्णानि संति च ।४७
पुष्पिताग्रा महाशाखाः प्रवालांकुरधारिणः ।
लताविनानसंछन्ना नदीषु च सरःसु च ।४८
वृक्षान् बहुविधांस्तत्र मृगेन्द्रो ददृशे प्रभुः ।
गन्धवन्ति च पुष्पाणि रसवन्ति फलानिच ।४९

सित मेघाभ्र के सदृश वह सभा प्लवन करती हुई जैसी दिखलाई दिया करती थी । रश्मियों से युक्त—परम भास्कर और दिव्यगन्ध से समन्वित एवं मनोहर थी ।४३। सुन्दर सुखों से परिपूर्ण दुःखों से रहित न अधिक शीत-युक्त और न धूप को प्रदान करने वाली थी । वहाँ पर जो भी पहुँच जाया करते थे वे फिर भूख-प्यास और ग्लानि को प्राप्त नहीं हुआ करते थे । नाना प्रकार के रूपों वाले—विचित्र और भास्कर स्तम्भों से उपकृत वह सभा थी । वह विधृता नहीं थी प्रत्युत शाश्वती तथा सदा अक्षया थी । उस सभा में सभी कामनाएं चाहे वे दिव्य हों या मानुषी हों प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहा करती थीं । रस से युक्त अन्त से शून्य प्रभूत भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थ उसमें रहा करते थे ।४५।

।४६। इस दैत्यराज की महासभा में पुण्य गन्ध वाले वृक्ष बारहों महीने नित्य ही पुष्प और फलों के प्रदान करने वाले थे । वहाँ पर उष्णकाल में शीतल और शीत काल में उष्ण जल रहा करते थे ।४७। नदियों में और सरोवरों में ऐसे वृक्ष थे जिनके अग्रभाग पुष्पित थे—जिनकी महान् शाखायें थी और जो प्रवालांकुरों के धारण करने वाले थे तथा लताओं के वितानों से संच्छन्न थे ।४८। मृगेन्द्र प्रभु ने वहाँ पर इस प्रकार के बहुत-सी तरह के वृक्षों को देखा था जिनमें गन्ध से युक्त पुष्प थे और रस से समन्वित फल थे ।४६।

तस्यां सभायां दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुस्तदा ।
स्त्रीसहस्रैः परिवृतो विचित्राभरणाम्बरः ।५०
अनर्घ्यमणिवज्रार्चिशिखाज्वलितकुण्डलः ।
आसीनश्चासने चित्रे दश मल्वप्रमाणतः ।५१
दिवाकरनिभे दिव्ये दिव्यास्तरणसंस्तृते ।
दिव्यगन्धवहस्तत्रमारुतःसुसुखोववौ ।५२
हिरण्यकशिपुर्दैत्य आस्ते ज्वलितकुण्डलः ।
उपचेरुमहादैत्यं हिरण्यकशिपुं तदा ।५३
दिव्यतानेन गीतानि जगुर्गन्धर्वसत्तमाः ।
विश्वाची महजन्याच प्रम्लोचेत्यभिविश्रुता ।५४
दिव्याथ सौरभेयी च समीची पुञ्जिकस्थली ।
मिश्रकेशीचरम्भाचचित्रलेखाशुचिस्मिता ।५५
चारुकेशी घृताची च मेनका चोर्वशीतथा ।
एताः सहस्रशश्चान्या नृत्यगीतविशारदाः ।५६

उस समय में उस सभा में वह दैत्येन्द्र हिरण्य कशिपु समवस्थित था जो स्त्री समुदायों की सहस्र संख्यासे परिवृत था तथा विचित्र आभरण और वस्त्रों से समलंकृत था ।५०। बहुमूल्य मणि और वज्रों की रश्मियों की शिखाओं से ज्वलित कुण्डलों वाला था । दश मल्व प्रमाण

युक्त विचित्र सिंहासन पर वह दैत्यराज समवस्थित था । वह सिंहासन सूर्य के समान परम दिव्य एवं दिव्य आस्तरण से संस्तृत था । वहाँपर दिव्य गन्ध के वहन करने वाला सुन्दर सुख का देने वाला वायु वहन कर रहा था ।५१-५२। वहाँ पर जाज्वल्यमान कुण्डलों वाला हिरण्य-कशिपु दैत्यराज स्थित था । उस समय में हिरण्यकशिपु दैत्यराज की परिचर्या बहुत सी अप्सराएँ कर रही थीं ।५३। श्रेष्ठ गन्धर्वगण दिव्य मान क द्वारा गीतों का गान कर रहे थे । विश्वाची, सहजन्या, अभि-विश्रुत, दिव्या, सौरभेयी, समीची, पुञ्जिक स्थली, मिश्र केशी, रम्भा शुचिस्मित वाली चित्र लेखा-चारु केशीघृताची-मेनका और उर्वशी ये और सहस्रों अन्य अप्सराएँ जो नृत्य तथा गीतों के गायन करने में परम विशारद उस दैत्यराज की परिचर्या कर रही थीं ।५४।५६।

उपतिष्ठन्त राजानं हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ।
तत्रासीनं महाबाहुं हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ।५७

उपासन्त दितेः पुत्राः सर्वे लब्धवरास्तथा ।
तमप्रतिमकर्माणं शतशोऽथ सहस्रशः ।५८

बलिर्विरोचनस्तत्र नरकः पृथिवीसुतः ।
प्रह्लादो विप्रचित्तश्च गविष्ठश्च महासुरः ।५९

सुरहन्ता दुःखहन्ता सुनामा सुमतिर्वरः ।
घटादरो महापार्श्वः क्रथनः कठिनस्तथा ।६०

विश्वरूपः सुरूपश्च सबलश्च महाबलः ।
दशग्रीवश्च वालीच मेघवासा महासुरः ।६१

घटास्यो कम्पनश्चैव प्रजनश्चेन्द्रतापनः ।
दैत्यदानवसंघास्ते सर्वे ज्वलितकुण्डलाः ।६२

स्रग्विणो वाग्मिनः सर्वे सदैव चरितव्रताः ।
सर्वे लब्धवराः शूराः सर्वे विगतमृत्यवः ।६३

वहाँ पर उस महती राज सभा में समवस्थित महान बाहुओं वाले महाराज हिरण्यकशिपु प्रभु की सेवामें सब उपस्थित होकर सेवायें कर रहे थे ।५७। दिति के सभी पुत्र जिन्होंने वरदान प्राप्त कर लिए थे वे सब सैकड़ों और सहस्रों की महा संख्या में अप्रतिम कर्म वाले उस दैत्य राज की उपासना कर रहे थे । उन दैत्यों में बलि, विरोचन, नरक पृथ्वी सुत प्रह्लाद-विप्रचित्ति महासुर गविष्ठ-सुरहन्ता दुःख हन्ता—सुनामा, सुमति वर, घटोदर, महापार्श्व, क्रथन, कठिन, विश्वरूप,सुरूप सबल, महाबक, दृशग्रीव, वाली, महासुर मेघ बासा, घटास्य, कम्पन, प्रजन, इन्द्र तापन आदि थे । इन सब दैत्य दानवों के संघ थे जो सभी जाज्वल्यमान कुण्डलों वाले थे ।५८-६२। सभी लोग स्रग्वी अर्थात् मालाधारी—वाग्मी और सदैव चरित व्रत वाले थे । इन सभी ने वरदान प्राप्त कर लिए थे—सब शूर वीर और मृत्यु के भय से रहित थे ।६३।

एते चान्ये च बहवो हिरण्यकशिपुं प्रभुम् ।
उपासन्ति महात्मानः सर्वे दिव्यपरिच्छदाः ।६४
विमानैर्विविधाकारैर्भ्राजमानैरिवाग्निभिः ।
महेन्द्रवपुषः सर्वे विचित्राङ्गदबाहवः ।६५
भूषिताङ्गा दितेःपुत्रास्तमुपासन्त सर्वशः ।
तस्यां सभायान्दिव्यायामसुराःपर्वतोपमाः ।६६
हिरण्यवपुषः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः ।
न श्रुतन्न दृष्टं हि हिरण्यकशिपोर्यथा ।६७
ऐश्वर्यं दैत्यसिंहस्य यथा तस्य महात्मनः ।
कनकरजतचित्रवेदिकायां परिहृतरत्नविचित्रवीथिकायाम् ।
स ददर्श मृगाधिपः सभायां सुरचितरत्नगवाक्षशोभितायाम् ।६८
कनकविमलहारविभूषिताङ्गं दितितनयं स मृगाधिपोददर्श ।
दिवसकरमहाप्रभालसं तन्दितिजसहस्रशतैर्निषेव्यमाणम् ।६९

ये तथा अन्य बहुत-से दिव्य परिच्छन्दों वाले सब असुरगण महान् आत्मा वाले उस प्रभु हिरण्यकशिपु की उपासना कर रहे थे ।६४। विविध भाँति के आकार प्रकार वाले अग्निके सदृश भ्राजमान बिमानों के द्वारा अद्भुत अङ्गदों से समलंकृत बाहुओं वाले और महेन्द्र के तुल्य वपु को धारण करने वाले-भूषित अङ्गदोंसे युक्त सब दिति के पुत्र सभी ओर से उस दैत्यराजकी समुपासना कर रहे थे । उस महान् राजसभा में जो कि अत्यन्त दिव्य थी सभी असुरगण पर्वत के समान विशालथे । ।६५-६६। सभी लोग हिरण्यवपु वाले वहाँ पर थे जिनकी दिवाकर के तुल्य प्रभा थी दैत्यों में सिंह के समान उस महान् आत्मा वाले हिरण्यकशिपु का जैसा ऐश्वर्य था वैसा न तो कभी किसी का देखा गया था और न कहीं पर सुना ही गया था । जिस सभा में स्थित होकर वह मृगाधिप नरसिंह देख रहे थे वह भली भाँति निर्मित गवाक्षों से सुशोभित थी और परिहृत किये हुए रत्नों से विचित्र वीथिका वाली थी तथा सुवर्ण एवं चाँदीकी निर्मित अद्भुत वेदिका से समन्वित थी । उन मृगाधिप नरसिंह प्रभु ने सुवर्ण के बिमल हारों से विभूपित अङ्गों वाले तथा सूर्य के तुल्य महती प्रभा से युक्त और सैकड़ों एवं सहस्रों दैत्योंके द्वारा सेवित उस दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु को देखा था ।६७-६८।

६२—अन्य दानवों के साथ नरसिंह का युद्ध

ततो दृष्ट्वा महात्मानं कालचक्रमिवागतम् ।
नरसिंहवपुश्छन्नं भस्मच्छन्नमिवानलम् ।१
हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादोनाम वीर्यवान् ।
दिव्येन चक्षुषा सिंहमपश्यद्देवमागतम् ।२

तं दृष्ट्वा रुक्मशैलाभूतपूर्वान्तनुमाश्रितम् ।
विस्मिता दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः ।३
महाबाहो ! महाराज ! दैत्यानामादिसम्भव ।
न श्रुतं न च नोद्दृष्टं नारसिंहमिदं वपुः ।४
महाबाहो ! महाराज ! दैत्यानामादिसम्भव ।
दित्यान्तकरणं घोरं संशतीव मनो मम ।५
अस्य देवाः शरीरस्थाः सागराः सरितश्च याः ।
हिमवान्पारियात्रश्च ये चान्ये कुलपर्वताः ।६
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रैरादित्यैर्वसुभिः सह ।
धनदो वरुणश्चैव यमः शक्रः शचीपतिः ।७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा—जिस समय में नरसिंह भगवान् उस सभा में पहुँचे थे तो उस समयमें हिरण्यकशिपु के पुत्र वीर्यवान् प्रह्लाद ने महान् आत्मा वाले नरसिंह के शरीर में छिपे हुए साक्षात् आये हुए कालचक्र के समान तथा भस्म में छन्न अग्नि के समान उनको आरम्भ में देखा था ।१-२। वहाँ पर स्थित सब दानवों ने और हिरण्यकशिपु ने भी पूर्व शरीरमें समाश्रित सुवर्णके पर्वत की आभा वाले उन नरसिंह प्रभु को देखकर सभी को उस समय में बहुत विस्मय हो गया था ।३। उसी समय में प्रह्लाद ने कहा था-हे महान् बाहुओं वाले ! हे महाराज ! हे दैत्यों के आदि जन्मधारी ! मैंने तो अब तक ऐसा नरसिंह वपु र कभी देखा है और न कहीं पर सुना ही है। यह अव्यक्त प्रभव (जन्म) वाला—परम दिव्य क्या रूप सामने आ गया है ! मेरे मन में तो ऐसा ही संशय हो रहा है कि यह कोई घोर स्वरूप वाला दैत्यों के अन्त कर देने वाला ही यहाँ आकर समुपस्थित हुआ है ।४-५। इनके इस विशाल शरीर में समस्त देवगण स्थित हैं—सब सागर—समस्त नदियाँ, हिमवान्, पारियात्र और अन्य सब कुल पर्वत भी इनके शरीर में विद्यमान हैं । समस्त नक्षत्रों के साथ तथा वसुगण और आदित्यों के

सहित चन्द्रमा भी इनमें वर्तमान हैं। धनद (कुबेर)—वरुण-यम और शची का पति इन्द्र देव भी इनके इस नारसिंह शरीर में विद्यमान दिखलाई दे रहे हैं।६-७।

मरुतो देवगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधना:।
नागा यक्षा: पिशाचाश्च राक्षसा भीमविक्रमा:।८
ब्रह्मा देव: पशुपतिर्ललाटस्था भ्रमन्ति वै।
स्थावराणि च सर्वाणि जङ्गमानि तथैव च।९
भवांश्च सहितोऽस्माभि: सर्वैं दैवगणैर्वृतः।
विमानशतसङ्कीर्णा तथैव भवत: सभा।१०
सर्वं त्रिभुवनं राजन्! लोकधर्माश्च शाश्वता:।
दृश्यन्ते नारसिंहेऽस्मिंस्तथेदमखिलं जगत्।११
प्रजापतिश्चात्र मनुर्महात्मा ग्रहाश्च योगाश्च महीरुहाश्च।
उत्पातकालश्च धृतिर्मतश्च रतिश्च सत्यञ्च तपो दमश्च।१२
सनत्कुमारश्च महानुभावो विश्वे च देवा ऋषयश्च सर्वे।
क्रोधश्च कामश्च तथैव हर्षो धर्म्मश्च मोह: पितरश्च सर्वे।१३
प्रह्लादस्य वच: श्रुत्वा हिरण्यकशिपु: प्रभु:।
उवाच दानवान् सर्वान् गणश्च स गणाधिप:।१४
मृगेन्द्रा गृह्यतामेष अपूर्वं सत्वमास्थित:।
यदि वा संशय: कश्चिद्वध्यतां वनगोचर:।१५

मरुद्गण, देव, गन्धर्व, तप के ही धनों वाले सब ऋषि वृन्द, नाग यक्ष, पिशाच, भीम विक्रम वाले राक्षस, ब्रह्मा, देव पशुपति ये सब इनके ललाट प्रदेश में स्थित हुए भ्रमण कर रहे हैं। सम्पूर्ण स्थावर तथा सभी जङ्गम जीव इनके शरीर में दिखाई दे रहे हैं।८-९। सब देवों से परिवृत हम सबके सहित आप भी इनके शरीर में स्थित देखे जा रहेहै। सैंकड़ों विमानोंसे संकीर्ण यह आपकी महती राजसभा तथा हे राजन् यह संपूर्ण त्रिभुवन और समस्त शाश्वत लोक धर्म इस नार-

सिंह शरीर में दिखाई दे रहे हैं। उसी भाँति यह सम्पूर्ण जगत्-महात्मा प्रजापति मनु—सब ग्रह—योग—महीरुद्र इसमें दृष्टिगत हो रहे हैं।१०।।१२। इनके अतिरिक्त उत्पात का काल—धृति—मति—रति—सत्य—तप—दम इसमें विद्यमान हैं। महानुभाव सनत्कुमार—विश्वेदेवा—सब ऋषिगण—क्रोध—काम—हर्ष—धर्म—मोह—सब पितृगण इनके इस महान विशाल एवं परम दिव्य शरीर में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई दे रहे हैं।१३। इस प्रकार के कहे हुए वचन का श्रवण कर यह गणों का अधिप प्रभु हिरण्यकशिपु समस्त दानवों और गणों से यह बोला था—देखो, आप सब मिलकर इस अत्यन्त अद्भुत अपूर्व सत्व के रूप में संस्थित नरसिंह को पकड़ लो और यदि कुछ भी संशय हो तो इन वन में भ्रमण करने वाले को मार डालो।१४-१५।

ते दानवगणाः सर्वे मृगेन्द्रं भीमविक्रमम्।
परिक्षिपन्तो मुदितास्त्रासयामासुरोजसा।१६
सिंहनादं विमुच्याथ नरसिंहो महाबलः।
बभञ्ज तां सभां सर्वां व्यादितास्यइवान्तकः।१७
सभायांभज्यमानायांहिरण्यकशिपुःस्वयम्।
चिक्षेपास्त्राणिसिंहस्यरोषाद्व्याकुललोचनः।१८
सर्वास्त्राणामथ ज्येष्ठं दण्डमस्त्रं सुदारुणम्।
कालचक्रं तथा घोरं विष्णुचक्रं तथा परम्।१९
पैतामहं तथात्युग्रं त्रैलोक्यदहनं महत्।
विचित्रामशनीञ्चैव शुष्कार्द्रं चाशनिद्वयम्।२०
रौद्रं तथोग्रशूलञ्च कंकालं मुसलं तथा।
मोहनं शोषणं चैव सन्तापनविलापनम्।२१

हिरण्यकशिपु के इस आदेश को प्राप्त करके वे समस्त दानवगण उस भीम विक्रम वाले मृगेन्द्र पर परिक्षेप करते हुए बहुत ही प्रसन्न हो रहे थे और वे सब अपने ओज के बलसे उन नरसिंह प्रभु को त्रासदेने

लगे थे ।१६। उस समय में महान् बलशाली नरसिंह प्रभु ने एक सिंह-नाद करके उस सम्पूर्ण हिरण्यकशिपु की सभाका फैलाये हुए मुँहवाले अन्तक काल के समान भङ्ग कर दिया था ।१७। जिस समय में वह पूरी सभा भज्यमान हो गई थी तब हिरण्यकशिपु ने स्वयं ही रोष से व्याकुल नेत्रों वाला होकर उन नरसिंह भगवान् के शरीर पर अपने ही अस्त्रों का प्रयोग आरम्भ कर दिया था । समस्त अस्त्रों में सबसे बड़ा-महान् दारुण दण्ड अस्त्र--घोर काल चक्र-परमोत्तम विष्णुचक्र तथा अत्यन्त ही उग्र पितामह का अस्त्र जो इस महान् त्रैलोक्य के दाह कर देने वाला था इन सब अस्त्रोंसे हिरण्यकशिपु ने नारसिंह वपु पर प्रहार किये थे । विचित्र अशनी तथा शुष्क और आर्द्र दोनों प्रकार के अशनि रौद्र तथा उग्रशूल, कङ्काल, मुसल, मोहन, शोषण, सन्तापन, विलापन नाग वाले अस्त्रों से दैत्यराज ने नरसिंह प्रभु के शरीर पर डर-डर कर प्रहार पर प्रहार किए थे ।१८-२१।

वायव्यं मथनं चैव कापालमथ कैंकरम् ।
तथाप्रतिहतां शक्ति क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च ।२२
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव सोमास्त्रं शिशिरं तथा ।
कम्पनं शतनञ्चैव त्वाष्ट्रञ्चैव सुभैरवम् ।२३
कालमुद्‌गरमक्षोभ्यं तपनञ्च महाबलम् ।
संवर्तनं मादनञ्च तथा मायाधरं परम् ।२४
गान्धर्वमस्त्रं दयितमसिरत्नं च नन्दकम् ।
प्रस्वापनं प्रमथनं वारुणं चास्त्रमुत्तमम् ।
अस्त्रं पाशुपतञ्चैव यस्याप्रतिहता गतिः ।२५
अस्त्रं हयशिरश्चैव ब्राह्ममस्त्रं तथैव च ।
नारायणास्त्रमैन्द्रञ्च सार्पमस्त्रं तथाद्‌भुतम् ।२६
पैशाचमस्त्रमजितं शोषदं शामनं तथा ।
महाबलं भावकं च प्रस्थापनविकम्पने ।२७

एतान्यस्त्राणि दिव्यानि हिरण्यकशिपुस्तदा ।
असृजन्नरसिंहस्य दीप्तस्याग्नेरिवाहुतिम् ।२८

वायव्य, मथन, कापाल, कैङ्कुर, अप्रतिहता शक्ति, क्रौञ्च अस्त्र ब्रह्म शिरास्त्र, सोमास्त्र शिशिर, कम्पन, शतत्र, त्वाष्ट्र, सुभैरव, काल मुदगर, अक्षोभ्य, महाबल, सम्वर्त्तन, मादन, परममायाधार, गान्ध-र्वास्त्रदयति, असिरत्न, नन्दक, प्रस्वापन, प्रमथन, उत्तम वारुणास्त्र और पाशुपत अस्त्र जिसकी गति अप्रतिहत हुआ करती है ।२२-२५। हयशिर अस्त्र, ब्रह्मास्त्र, नारायणास्त्र, ऐन्द्र, अद्भुत सार्प अस्त्र, पैशा-चास्त्र अजित, शोषद, शामन, महाबल, भावन, प्रस्थापन, विकम्पन इन सब अस्त्रों को जो महान दिव्य थे दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने भग-वान नरसिंह के शरीर पर छोड़ दिया था किन्तु वे सब अस्त्र उनके शरीर का स्पर्श करते ही ऐसे नष्ट भ्रष्ट होकर भस्मसात् हो गये थे जिस तरहसे प्रदीप्त हुई अग्निमें हवि पड़ते ही जल कर भस्म हो जाया करती है ।२६-२८।

अस्त्रैः प्रज्वलितैः सिंहमावृणोदसुरोत्तमाः ।
विवस्वान् धर्म्मसमयेहिमवन्तमिवांशुभिः ।२९
स ह्यमर्षानिलोद्धूतो दैत्यानां सैन्यसागरः ।
क्षणेन प्लावयामास मैनाकमिव सागरः ।३०
प्रासैः पाशैश्च खड्गैश्च गदाभिर्मुसलैस्तथा ।
वज्रैरशनिभिश्चैव साग्निभिश्च महाद्रुमैः ।३१
मुद्गरैर्भिन्दिपालैश्च शिलोलूखलपर्वतैः ।
शतघ्नीभिश्च दीप्ताभिर्दण्डैरपि सुदारुणैः ।३२
ते दानवाः पाशगृहीतहस्ता महेन्द्रतुल्याशनिवज्रवेगाः ।
समन्ततोऽभ्युद्यतबाहुकाया स्थितास्त्रिशीर्षा इव नागपाशा ।३३
सुवर्णमालाकुलभूषिताङ्गाः पीतांशुकाभोगविभाविताङ्गाः ।
मुक्तावलीदामसनाथकक्षा हंसा इवाभान्ति विशालपक्षाः ।३४

उन असुरोत्तमों ने प्रज्वलित अस्त्रों के द्वारा उन नृसिंह प्रभु को आवृत कर दिया था जैसे घाम के समय सूर्य हिमालय को अपनी किरणों से कर देता है ।२६। अमर्ष की अग्नि से अद्भूत दैत्यों के उस सेनारूपी सागर ने क्षण भर में मैनाक को समुद्र की भाँति सबको प्ला-वित कर दिया था ।३०। असुरों की उस विशाल सेना ने प्राश-पाश, खंग, गदा, मूसल, वज्र, अशनि, अग्नि के सहित महान द्रुम, मुद्गर, भिन्दिपाल, शिला, उलूखल, पर्वत, दीप्त शतघ्नी और सुदारुण दण्ड आदि के द्वारा नृसिंह प्रभु पर प्रहारों की भरमार कर दी थी ।३१-३२ पाशों को हाथों में ग्रहण करने वाले, महेन्द्रके समान अशनि वज्रके वेग से युक्त सभी ओर से अभ्युद्यत बाहु और काया वाले वे सब दानव तीन शीर्षों वाले नागपाशों की भाँति स्थित थे ।३३। सुवर्ण की मालाओं के समूह से विभूषित अङ्गों वाले तथा पीत वर्ण के वस्त्ररूपी आभोग से विभावित अङ्गों से युक्त और मुक्तावली की माला से समन्वित कक्षों से संयुत विशाल पक्षों वाले हंसों के तुल्य वे दानवगण शोभित हो रहे थे ।३४।

तेषां तु वायुप्रतिमौजसां वै केयूरमौलीबलयोत्कटानाम् ।
तान्युत्तमाङ्गान्यभितो विभान्ति प्रभातसूर्यांशुसमप्रभाणि ।३५
क्षिपद्भिरुग्रैर्ज्वलितैर्महाबलैर्महास्त्रपूगैः सुसमावृतो बभौ ।
गिरिर्यथा सन्ततवर्षिभिर्घनैः कृतान्धकारान्तरकन्दरोद्रुमैः ।३६
तैर्हन्यमानोऽपि महास्त्रजालैर्महाबलैर्दैत्यगणैः समेतैः ।
नाकम्पताजौ भगवान् प्रतापस्थितप्रकृत्या हिमवानिवाचलः ।३७
सन्त्रासितास्तेन नृसिंहरूपिणा दितेः सुताः पावकतुल्यतेजसा ।
भयाद्विचेलुः पवनोद्धृताङ्गा यथोर्मयः सागरवारिसम्भवाः ।३८

वायु के समान ओज से युक्त, केयूर-मौली और बलय से उत्कट उन दानवों के उत्तम अङ्ग सभी ओर से प्रातःकाल के सूर्य की किरणों के तुल्य प्रभा वाले शोभित हो रहे थे ।३५। वह नरसिंह प्रभु महान

अस्त्रों के समूहों से भली-भाँति आवृत होकर कन्दराओं के अन्दर अन्ध-कार कर देने वाले द्रुमों से और निरन्तर वर्षा करते हुए मेघों से पर्वत की भाँति सुशोभित हो रहे थे ।३६। महान् बलवान्—सब ओर से एकत्रित हुए उन दैत्य गणों के द्वारा महान् अस्त्रों के जाल से हन्यमान भी वह नृसिंह प्रभु उस युद्ध स्थल में प्रताप से स्थित प्रकृति के द्वारा हिमाचल की भाँति बिल्कुल भी कम्पायमान नहीं हुए थे ।३७। उन नृसिंह के रूपधारी भगवान् के द्वारा जिनका पावक के समान तेज था वे सब दिति के पुत्र दैत्य सन्त्रासित कर दिये गये थे और वे सब भय से भीत होकर पवन से उद्धृत अङ्गों वाली सागर के जल में समुत्पन्न उर्मियों की भाँति भय से विचलित हो गये थे अर्थात् भयभीत होकर इधर-उधर भाग गये थे ।३८।

६३—नरसिंह-हिरण्यकशिपु युद्ध-वर्णन

खराः खरमुखाश्चैव मकराशीविषाननाः ।
ईहामृगमुखाश्चान्ये वराहमुखसंस्थिताः ।१
बालसूर्यमुखाश्चान्ये धूमकेतुमुखास्तथा ।
अर्द्ध चन्द्रार्धवक्त्राश्च अग्निदीप्तमुखास्तथा ।२
हंसकुक्कुटवक्त्राश्च व्यादितास्या भयावहाः ।
सिंहास्याल्लेलिहानाश्च काकगृध्रमुखास्तथा ।३
द्विजिह्वकावक्त्रशीर्षास्तथोल्का मुखसंस्थिताः ।
महाग्राहमुखाश्चान्ये दानवा बलदर्पिताः ।४
शैलसंवर्ष्मणस्तस्य शरीरे शस्त्रवृष्टिभिः ।
अवध्यस्य मृगेन्द्रस्य न व्यथाञ्चक्रुराहवे ।५
एवं भूयोऽपरान् घोरानसृजन् दानवेश्वराः ।

मृगेन्द्रस्योपरि क्रुद्धा निश्वसन्त इवोरगा: ।६
ते दानवशरा घोरा दानवेन्द्रसमीरिता: ।
विलयं जग्मुराकाशे खद्योता इव पर्वते ।७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—उस महान् भीषण युद्ध में बहुत से दानवों ने नृसिंह भगवान से युद्ध किया था जिनके नाम ये हैं—खर,खर मुख, मकराशी, त्रिशानन, ईहामृगमुख, वराह मुख, बाल सूर्यमुख, धूमकेतु, मुख, अर्द्ध चन्द्रार्ध मुख, अग्निदीप्तमुख, हंस कुक्कुट मुख व्यादितास्य, भयावह सिंहास्य लेलिहान, काक गृध्रमुख, द्विवक्त्र, द्विशीर्ष, उल्कामुख, महाग्राह मुख आदि महान् भीषण मुखाकृतियों वाले बल के घमण्ड से परिपूर्ण दानव थे जो शैल के समान संवर्ण वाले और वध के अयोग्य भगवान् मृगेन्द्र के शरीर में निरन्तर शरोंकी वर्षा से भी युद्ध में किञ्चित् मात्र भी व्यथा न कर सके थे।१-५। इसी प्रकार से फिर दूसरी बार उन दानवेश्वरों ने अत्यन्त क्रोधित होकर गर्म श्वास छोड़ते हुए फुसकारें करने वाले सर्पों की भाँति मृगेन्द्र प्रभु के शरीर के ऊपर दूसरे परम घोर अस्त्रों को छोड़ा था ।६। वे सब दानवेन्द्रों के द्वारा प्रक्षिप्त किए हुए अतीव घोर दानवीय शर पर्वत में खद्योतों की भाँति आकाश में जा विलय को प्राप्त हो गए थे ।७।

ततश्चक्राणि दिव्यानि दैत्या क्रोधसमन्विता: ।
मृगेन्द्रायासृजन्नाशु ज्वलितानिसमन्तत: ।८
तैरासीद्गगनं चक्रै: सम्पतद्भिरितस्तत: ।
युगान्ते सम्प्रकाशद्भिश्चन्द्रादित्यग्रहैरिव ।९
तानि सर्वाणिचक्राणिमृगेन्द्रेणाशमात्मना ।
ग्रस्तान्युदीर्णानि तदापावकार्चि: समानिवै ।१०
तानि चक्राणि वदनं विशमानानि भान्ति वै ।
मेघोदरदरीष्विव चन्द्रसूर्यग्रहा इव ।११
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो भूय: प्रासृजदूर्जिताम् ।

शक्ति प्रज्वलितां घोरां धौतशस्त्रतडित्प्रभाम् ।१२
तामापतन्तीं संप्रेक्ष्य मृगेन्द्रः शक्तिमुज्वलाम् ।
हुंकारेणैव रौद्रेण बभञ्ज भगवांस्तदा ।१३
रराज भग्ना सा शक्तिर्मृगेण महीतले ।
स विस्फुलिङ्गा ज्वलिता महोल्केवदिवश्च्युता ।१४

इसके उपरान्त उन दैत्यों ने महान क्रोध से समन्वित होकर चारों ओर से प्रज्वलित होने वाले दिव्य चक्रों को नरसिंह प्रभु के शरीर पर बड़ी ही शीघ्रता से छोड़ दिया था।८। इधर-उधर गिरने वाले उन चक्रों से युग के अन्त में भली भाँति प्रकाश लाने वाले चन्द्र-सूर्य ग्रहों की भाँति उस समय में आकाश था।९। अशमात्मा उन मृगेन्द्र(नरसिंह) के द्वारा वे समस्त चक्र उस समय में अग्नि की अचियों के तुल्य ग्रस्त और उदीर्ण होते थे ।१०। वे सब चक्र जो दानवों के द्वारा नरसिंह प्रभु पर छोड़े गये थे उन्हीं के मुखमें प्रवेश प्राप्त करते हुए बादलों से युक्त घाटियों में चन्द्र-सूर्य ग्रहों के समान शोभा दे रहे थे।११। हिरण्यकशिपु दैत्यराज ने पुनः अत्यन्त प्रज्वलित, परम घोर, धौत शस्त्र विद्युत की प्रभा से समन्वित अतीब अजित शक्ति का प्रहार नरसिंह भगवान् पर किया था ।१२। उस समय में अत्यन्त समुज्वल अपने ऊपर आपतन करती हुई शक्ति को देखकर नृसिंह भगवान् ने महान् रौद्र हुङ्कार की ध्वनि से ही उसका भंजन कर दिया था ।१३। महीतल में मृगेन्द्र भगवान के द्वारा भग्न की हुई वह शक्ति विस्फुलिंगों से युक्त और प्रज्वलित दिवलोक से च्युत महोल्का के समान शोभित हो रही थी । ।१४।

नाराचपङ्क्तिः सिंहस्य प्राप्ता रेजे बिदूरतः ।
नीलोत्पलपलाशानाः मालेवोज्ज्वलदर्शना ।१५
स गर्जित्वा यथान्यायं विक्रम्य च यथासुखम् ।
तत्सैन्यमप्सारितवान् तृणाग्रानेव मारुतः ।१६

ततोऽश्मवर्षं दैत्येन्द्रा व्यसृजन्त नभागताः ।
नगमात्रैः शिलाखण्डैर्गिरिश्रृङ्गैर्महाप्रभैः ।१७
तदश्मवर्षं सिंहस्य महान्मूर्द्धं निपातितम् ।
दिशोदश विकीर्णा वै खद्योतप्रकरा इव ।१८
तदाश्मौघैर्दैत्यगणाः पुनः सिंहमरिन्दमम् ।
छायायां चक्रिरे मेघा धाराभिरिव पर्वतम् ।१९
न च तं चालयामासुर्दैत्यौघादेवसत्तमम् ।
भीमवेगोऽचलश्रेष्ठः समुद्र इव मन्दरम् ।२०
ततोऽश्मवर्षविहिते जलवर्षमनन्तरम् ।
धाराभिरक्षमात्राभिः प्रादुरासीत् समन्ततः ।२१

नृसिंह भगवान के शरीर पर प्राप्त हुई नाराचों की पंक्ति से ही नीलोत्पल के पलाशों की उज्ज्वल दर्शन वाली माला के समान दीप्ति हो रही थी ।१५। नृसिंह महाप्रभु ने न्यायानुसार गर्जना करके और सुखपूर्वक बल-विक्रम दिखाकर उस दानवेन्द्र की सेना को तिनको के अग्रभागों को वायु की तरह अपसारित कर दिया था ।१६। इसके उपरान्त दैत्येन्द्रों ने आकाश में स्थित होते हुए नग मात्र शिला खण्डों के द्वारा, महती प्रभा से युक्त गिरि के द्वारा पाषाणों की वर्षा का विसर्जन कर रहे थे । वह पत्थरों की महान् वर्षा नरसिंह प्रभु के मस्तक पर डाली गयी थी और वह दशों दिशाओंमें खद्योतों के प्रकरों की भाँति विकीर्ण हो गयी थी ।१७-१८। अरियों के दमन करने वाले नृसिंह प्रभु को फिर उन दैत्यों के गणों ने पाषाणों की वृष्टि में डाले हुए पत्थरों के द्वारा मेघ जैसे अपनी वर्षाई हुई जल की धाराओं से पर्वत को ढाँक दिया करते हैं वैसे ही छाया में कर दिया था ।१९। उन दैत्यों के विशाल समुदायों ने देवों में परम श्रेष्ठ नृसिंह महाप्रभु को जिस प्रकार से भीम वेग वाला सागर अचलों में श्रेष्ठ मन्दराचल को चलायमान कर दिया जाता है उसी तरह से चलायमान कर दिया था

।२०। इसके उपरान्त उस पाषाणों से की गई वर्षा के अनन्तर जल की वृष्टि से अकस्मात् धाराओं के द्वारा चारों ओर से प्रादुर्भूत हो गये थे ।२१।

नभस:प्रच्युताधारास्तिग्मवेगा: समन्तत: ।
आवृत्य सर्वतो व्योमदिशश्चोपदिशस्तथा ।२२
धारा दिवि च सर्वत्र वसुधायाञ्च सर्वश: ।
न स्पृशन्ति च ता देवं निपतन्तोऽनिशं भुवि ।२३
बाह्यतो ववृषुर्वर्षं नोपरिष्टाच्च ववृषु: ।
मृगेन्द्रप्रतिरूपस्य स्थितस्य युधि मायया ।२४
हतेऽश्मवर्षे तुमुले जलवर्षे च शोषिते ।
सोऽसृजद्दानवो मायामग्निवायुसमीरिताम् ।२५
महेन्द्रस्तोयदै: सार्द्धं सहस्राक्षो महाद्युति: ।
महता तोयवर्षेण शमयामास पावकम् ।२६
तस्यां प्रतिहतायां तु मायायां युधि दानव: ।
असृजत् घोरसंकाशं तमस्तीव्रं समन्तत: ।२७
तमसा संवृते लोके दैत्येष्वात्तायुधेषु च ।
स्वतेजसा परिवृतो दिवाकर इवाबभौ ।२८

आकाश से अत्यन्त तीव्र वेगों वाली गिरी हुई धारायें चारों ओर से आवृत करके सभी व्योम-दिशाओं और उप दिशाओं को घेर करके हो रही थी तथा दिवलोक में और सर्वत्र पृथ्वी में निरन्तर गिरती हुई वे धाराएँ इस भूमण्डल में उन नृसिंहदेव का फिर स्पर्श नहीं कर रही थीं ।२२-२३। वे धारायें बाहर से बरस रही थीं किन्तु उनके ऊपर वे नहीं बरस रही थीं । उस युद्ध स्थल में एक मृगेन्द्र के प्रतिरूप धारण करने वाले प्रभु की माया से उस तुमुल पाषाणों की वर्षाके हत होनेपर तथा जल की वर्षा के एकदम शोषित कर डालने पर फिर उस दानवने अग्नि और वायु से समीरित माया का सृजन किया था ।२४-२५।

उस समय में महान् द्युति वाले सहस्र महेन्द्रदेव ने जलदों के द्वारा महान् जल की वृष्टि से उस मायाकृत अग्नि का शमन कर दिया था। जब वह माया भी प्रतिहत करदी गई तो उसके पीछे युद्ध में उस महा-दानव ने चारों ओर से महान् घोर तम का बड़ी ही तीव्रता के साथ विशेष रूप से सृजन किया था।२६-२७।सम्पूर्ण लोक तम से जब परि-वृत हो गया था तो उस समय में आयुधों के धारण करने वाले उन दैत्यों के विशाल समुदाय में वह महाप्रभु नृसिंहदेव अपने ही तेज से परिवृत होकर दिवाकर के समान शोभा सम्पन्न हो गये थे ।२८।

त्रिशाखां भृकुटीञ्चास्य ददृशुर्दानवा रणे ।
ललाटस्थां त्रिशूलांकां गङ्गां त्रिपथगामिव ।२९
ततः सर्वासु मायासु हतासु दितिनन्दनाः ।
हिरण्यकशिपुं दैत्यं विवर्णा शरणं ययुः ।३०
ततः प्रज्वलितः क्रोधात् प्रदहन्निव तेजसा ।
तस्मिन् क्रुद्धे तु दैत्येन्द्रे तमोभूतमभूज्जगत् ।३१
आवाह प्रवहश्चैव विवहोऽथ ह्युदावहः ।
परावहः संवहश्च महाबलपराक्रमाः ।३२
तथा परिवहः श्रीमानुत्पातभयशंसनाः ।
इत्येवं क्षुभिताः सप्त मरुतो गगनेचराः ।३३
ये ग्रहाः सर्वलोकस्य क्षये प्रादुर्भवन्ति वै ।
ते सर्वे गगने दृष्टा व्यचरन्त यथासुखम् ।३४
अन्यङ्कते चाप्यचरन्मार्गं निशि निशाचरः ।
संग्रहैः सहनक्षत्रैःराकापतिररिन्दमः ।३५

रणस्थल में स्थित दानवों ने फिर इन नृसिंह प्रभु की तीन शाखाओं वाली भृकुटी का त्रिशूलसे अङ्कित ललाट प्रदेशमें स्थित त्रिपथ गामिनी गङ्गा की भाँति दर्शन किया था। इसके अनन्तर जब सभी की गयी मायाऐं हत हो गयी थीं तो वे सब दितिके पुत्र महादैत्यगण विवर्ण

होकर दैत्यराज हिरण्यकशिपु की शरणागति में प्राप्त हो गये थे ।२९-३०। इसके पश्चात् वह मानो अपने ही तेज से सबको प्रदग्ध कर रहा था ।वह दैत्यराज महान क्रोधसे प्रज्वलित हो गया था ।जब वह दैत्येन्द्र इस भाँति क्रुद्ध हो गया तो उस समय में सम्पूर्ण जगत् अन्धकार से परिपूर्ण हो गया था ।३१। उत्पातों के भय को सूचित करने वाले और महान बल तथा पराक्रम से युक्त आवह, प्रवह, विवह, उदावह, परावह संवह और परिवह ये सात प्रकार के मरुत परम क्षुभित होते हुए आकाश में सञ्चरण करने वाले दिखलाई दे रहे थे ।३२-३३। जो ग्रह सम्पूर्ण लोकों के क्षय होने के समय में प्रादुर्भूत हुआ करते हैं वे सभी ग्रह यथा सुख आकाश में विचरण करते हुए देखे गए थे । रात्रि में निशाचर मार्ग में अन्यगत हो जाने पर विचरण कर रहा था और अरिन्दम राकापति को नक्षत्रों के सहित संग्रहीत कर लिया गया था ।३४-३५।

विवर्णताञ्च भगवान् गतो दिवि दिवाकरः ।
कृष्णं कवन्धं च तथा लक्ष्यते सुमहद्दिवि ।३६
अमुञ्चार्चिषां वृन्दं भूमिवृत्तिर्विभावसुः ।
गगनस्थञ्च भगवानभीक्ष्णं परिदृश्यते ।३७
सप्त धूम्रनिभा घोराः सूर्य्या दिवि समुत्थिताः ।
सोमस्य गगनस्थस्य ग्रहास्तिष्ठन्ति शृङ्गगाः ।३८
वामेन दक्षिणे चैव स्थितौ शुक्रबृहस्पती ।
शनैश्चरो लोहिताङ्गो ज्वलनाङ्गसमुद्यतो ।३९
समं समधिरो हन्त: सर्वे ते गगनेचराः ।
शृङ्गाणि शनकैर्घोरा युगान्तावर्तिनो ग्रहाः ।४०
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रैर्ग्रहैः सह तमोनुदः ।
चराचरविनाशाय रोहिणी नाभ्यनन्दत ।४१

गृह्यते राहुणा चन्द्र उल्काभिरभिहन्यते ।
उल्का: प्रज्वलितश्चन्द्रे विचरन्ति यथासुखम् ।४२

भगवान दिवाकर दिवलोक में विवर्णता को प्राप्त हो गए थे और वह उस सुमहान दिवलोक में कृष्ण कवन्ध की भाँति दिखलाई दे रहे थे ।३६। अचियोंका वृन्द यह भूमि वृत्ति, विभावसु और गगनमें स्थित भगवान् अभीक्ष्ण में परिदृश्यमान हो रहे थे ।३७। दिवलोक में धूम्र के तुल्य महान् घोर सात सूर्य समुत्थित होगये थे ।३८। उसके वाम भाग में और दक्षिण भाग में शुक्र और बृहस्पति ग्रह स्थित हो गये थे । शनैश्चर और लोहितरङ्ग अग्निके अङ्गके समान द्युति वाले थे । वे सम्पूर्ण गगन चर समरूप से ही समाधिरोहण कर रहे थे । ये युगान्त में आवर्त्तन करने वाले महान घोर ग्रह शनैः-शनैः शृङ्गों पर अधिरोहण करते थे । तमका नोदन करने वाला चन्द्रमा नक्षत्रों और ग्रहों के सहित चराचर सबके विनाश करने के लिए रोहिणी क अभिनन्दन नहीं कर रहा था । ।३९-४१। राहु के द्वारा चन्द्र निगृहीत हो रहा था और उल्काओं से उसका अभिहनन किया जा रहा था । प्रज्वलित उल्काएँ सुख पूर्वक चन्द्रमा में विचरण कर रहीं थीं ।४२।

देवानामपि यो देव: सोऽप्यवर्षतशोणितम् ।
अपतन् गगनादुल्का विद्युद्रूपमहास्वना: ।४३
अकाले च द्रुमा:सर्वे पुष्पन्ति च फलन्ति च ।
लताश्च सफला: सर्वा येचाहुर्दैत्यनाशानम् ।४४
फलै:फलान्यजायन्त पुष्पै:पुष्पं तथैव च ।
उन्मीलन्ति निमोलन्ति हसन्तिच रुदन्ति च ।४५
विक्रोशन्ति च गम्भीरा धूमयन्ति ज्वलन्ति च ।
प्रतिमा: सर्वदेवानां वेदयन्ति महद्भयम् ।४६
आरण्यै: सह संसृष्टा ग्राम्याश्च मृगपक्षिण: ।
चक्रु: सुभैरवं तत्र महायुद्धमुपस्थितम् ।४७

नद्यश्च प्रतिकूलानि वहन्ति कलुषोदका: ।
न प्रकाशन्ति च दिशो रक्तरेणुसमाकुला: ।४८
वनस्पत्यो न पूज्यन्ते पूजनार्हा: कथञ्चन ।
वायुवेगेन हन्यन्ते भज्यंते प्रणमन्ति च ।४६

ज्योतिष के अनुसार युगान्तकारी महान् भीषण ग्रहों की स्थिति जो उस समय हुई थी—वह जतला कर उसका प्रतिफल बतलाते हुए कहते हैं कि समस्त देवों का भी जो देव है वह भी इस भीषण ग्रहोंकी स्थिति के कारण रक्त की वर्षा कर रहा था और गमन से महान् घोर ध्वनि करने वाली विद्युत्के स्वरूपमें स्थित उल्काओं का पतन हो रहा था ।४३। अकाल में ही सब वृक्ष पुष्प और फल देने वाले होगये थे जो कि महान् उत्पात के सूचक थे । सम्पूर्ण लतायें भी फलों से युक्त होगई थीं जो दैत्यों के विनाश को स्पष्टतया बतला रही थीं ।४४। फलों में से फल और पुष्पों के द्वारा पुष्पों की उत्पत्ति होने लग गयी थी । ये सब उन्मीलित और निमीलित हुआ करते थे तथा कभी-२ हँसतेथे और किसी समयमें रुदन करने वालेथे । ये सब महाविनाश की सूचना करने वाले हो गये थे ।४५। समस्त देवों की प्रतिमाएँ जो अति गम्भीर थी-धूमित बन रही थी और प्रज्वलित हो जाया करती थीं । ये सभी महान् भय के समागम को प्रकट कर रही थीं और महान् असगुन को ज्ञात कराती थीं ।ग्राम्य पशुगण और पक्षिवृन्द आरण्यक(जंगली) पशु पक्षियों के साथ संतुष्ट होने लगेथे । वहाँ पर अत्यन्त भैरव महान् युद्ध करने लगे थे । कलुषित जलों से युक्त होकर सभी नदियाँ प्रतिकूल रूप से बहने लगी थीं । सभी दिशाएँ लाल वर्ण की रेणुओं से समाकुल होकर प्रकाश नहीं करने वाली हो गई थीं । पूजन करने योग्य वनस्पतियाँ किसी भी समय में पूजित नहीं थीं और वायु के वेग से वे सब हन्यमान-भञ्जन शील और नीचे की ओर झुकी हुई हो गई थी ।४८। ।४६।

यदा च सर्वभूतानां छाया न परिवर्तते ।
अपराह्णगते सूर्ये लोकानां युगसंक्षये ।५०
तदा हिरण्यकशिपोर्दैत्यस्योपरि वेश्मनः ।
भाण्डागारे युधागारे निविष्टमभवन्मधु ।५१
असुराणां विनाशाय सुराणां विजयाय च ।
दृश्यन्ते विविधोत्पाता घोराघोरनिदर्शना: ।५२
एते चान्ये च बहवो घोरोत्पाता: समुत्थिता: ।
दैत्येन्द्रस्य विनाशाय दृश्यन्ते कालनिर्मिता: ।५३
मेदिन्यां कम्पमानायां दैत्येन्द्रेण महात्मना ।
महीधरा नागगणा निपेतुर्नमितौजसः ।५४
विषज्वालाकुलैर्वक्त्रैर्विमुञ्चन्तो हुताशनम् ।
चतुः शीर्षा:पञ्चशीर्षा:सप्तशीर्षाश्च पन्नगा: ।५५
वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनञ्जयौ ।
एलामुखः कालिकश्च महापद्मश्च वीर्यवान् ।५६
सहस्रशीर्षा नागो वै हेमतालध्वजः प्रभुः ।
शेषोऽनंतोमहाभागो दुष्प्रकम्प्य:प्रकम्पित: ।५७
दीप्तान्यन्तर्जलस्थानि पृथिवीधरणानि च ।
तदा क्रुद्धेन महता कम्पितानि समन्ततः ।५८

जिस समय में समस्त प्राणियों की छाया परिवर्त्तित नहीं होती है और लोकोंके युग संक्षय में सूर्य भगवान् अपराह्न गत हो जाया करते हैं ।५०। उस समय में दैत्यराज हिरण्यकशिपु के निवास-गृह के ऊपर भाण्डागार और आयुधागारमें मधु निविष्ट हो गया था ।५१। घोर निदर्शन वाले विविध भाँति के स्वरूप वाले महान् उत्पात इन असुरों के विनाश के लिए तथा देवगणों की विजय प्राप्त होने के लिए दिखाई दे रहे थे ।५२। अन्य भी और जो बहुत-से अत्यन्त घोर उत्पात उठ खड़े हुए थे वे सब काल बलीके द्वारा विनिर्मित उस दैत्येन्द्र के सर्वतो भाव

से विनाश के लिए ही दिखाई दे रहे थे ।५३। उस महान् आत्मा वाले दैत्येन्द्र के द्वारा कम्पायमान इस मेदिनी में अमित ओज से सम्पन्न महीधर और नागगण गिर गये थे ।५४। चार शीर्ष वाले-पाँच फणों से युक्त और सात मस्तकों वाले पन्नग (सर्प) विष की ज्वालाओं से समाकुल मुख से हुताशन का विमुञ्चन कर रहे थे । प्रमुख पन्नगों में वासुकि–तक्षक–कर्कोटक–धनञ्जय–एलामुख–कालिक और महान् वीर्य शाली महापद्म एवं सहस्र शीर्षों वाला–नग–हेमतालध्वज—प्रभु शेष और महाभाग अनन्त—दुष्प्रकम्प्य—प्रकम्पित–-जल के अन्दर स्थित रहने वाले दीप्त और पृथिवी धारण थे । उस समय में ये सब चारों ओर में महान् क्रुद्ध उसके द्वारा कम्पित हो गये थे ।५५-५८।

नागास्तेजोधराश्चापि पातालतलचारिण: ।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्तदा संस्पृष्टवान्महीम् ।५९
संदष्टौष्ठपुट: क्रोधाद्वाराह इव पूर्वज: ।
नदी भागीरथी चैव सरयू: कौशिकी तथा ।६०
यमुना त्वथ कावेरी कृष्णवेणी च निम्नगा ।
सुवेणा च महाभागा नदी गोदावरीतथा ।६१
चर्मण्वती च च सिन्धुश्च तथा नदनदीपति: ।
कलमप्रभवश्चैव शोणोमणिनिभोदक: ।६२
नर्मदा शुभतोया च तथा वेत्रवती नदी ।
गोमती गोकुलाकीर्णा तथा पर्वसरस्वती ।६३
मही कालमही चैव तमसा पुष्पवाहिनी ।
जम्बूद्वीपं रत्नवटं सर्वरत्नोपशोभितम् ।६४

तेज के धारण करने वाले और पाताल तल में संचरण करने वाले नाग भी कम्पायमान हो गये थे । उस समय में दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने इस मही को स्पर्श किया था और वह क्रोध से अपने होंटों को

काटता हुआ पूर्वज बाराह की भाँति हो गया था। समस्त नद और नदियाँ भी प्रकम्पित हो गये थे जिनके प्रमुख नाम ये हैं-भागीरथी नदी सरयू, कौशिकी, यमुना, कावेरी, कृष्णवेर्णी, निम्नगा, सुवेणा, महाभागा गोदावरी नदी, चर्मण्वती, सिन्धुनद, नद नदीपति, कमल प्रभन और मणि के सदृश स्वच्छ जल वाला शोणनद-शुभ तोया मर्मदा, वेत्रवती नदी—गोमती, गोकुलाकीर्णा तथा पूर्व सरस्वती, मही, कालमही, तमसा और पुष्प वापिनी ये सभी नद और नदियाँ प्रकम्पित होगये थे। जम्बू द्वीप और सब प्रकार के रत्नों के उपशोभित रत्न भी कम्पायमान थे। ।५९-६४।

सुवर्णप्रकटञ्चैव सुवर्णाकरमण्डितम् ।
महानदञ्च लौहित्यं शैलकाननशोभितम् ।६५
पत्तनं कोशकरणं ऋषिवीरजनाकरम् ।
मागधाश्च महाग्रामा मुडाः शुङ्गास्तथैव च ।६६
सुह्मा मल्ला विदेहाश्च मालवाः काशिकोसलाः ।
भवनं वैनतेयस्य दैत्येन्द्रेणाभिकम्पितम् ।६७
कैलासशिखराकारं यत् कृतं विश्वकर्मणा ।
रक्ततोयो महाभीमो लौहित्यो नाम सागरः ।६८
उदयश्च महाशैल उच्छ्रितः शतयोजनम् ।
सुवर्णवेदिकः श्रीमान् मेघपङ्क्तिनिषेवितः ।६९
भ्राजमानोऽर्कसदृशैर्जातरूपमयैर्द्रुमैः ।
शालैस्तालैस्तमालैश्च कणिकारैश्च पुष्पितैः ।७०

सुवर्ण के आकरों (खानों) से मण्डित सुवर्ण प्रकट तथा शैल और काननों से शोभा संयुत लौहित्य महान-ऋषि और वीरजनों की खान-कोशकरण पत्तन, मागध, महाग्राम, मुड तथा शुङ्ग, सुह्म, मल्ल, विदेह मालव, काशी, कोसल और वैनतेय का भवन ये सब देश और स्थल उस दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु के द्वारा अभिकम्पित होगये थे।६५-६७। यह

भवन कैलास पर्वत के शिखर के समान आकार वाला था और विश्वकर्मा के द्वारा इसकी रचना की गयी थी। महान् भीम स्वरूप वाला जिसका जलरक्त वर्ण का था ऐसा लोहित नाम वाला सागर–उदय महाशयल जिसकी सौ योजन ऊँचाई थी—मेघों की पंक्तियों से निषेवित सुवर्ण वैदिक जो पुष्पित कर्णिकार, शाल, ताल, तमाल, सूर्य के सदृश जात रूपमय द्रुमों से भ्राजमान था।६८-७०।

अधोमुखश्च विख्यातः सर्वतो धातुमण्डितः।
तमालवनगन्धश्च पर्वतो मलयः शुभः।७१
सुराष्ट्रश्च सवाल्हीकाः शूरभीरास्थैव च।
भोजाः पाण्ड्याश्च बङ्गश्चाकलिङ्गास्ताम्रलिप्तका।७२
तथैवोड्राश्च पौण्ड्रश्च वामचूडाःसकेरलाः।
क्षोभितास्तेन दैत्येन सदेवाश्चाप्सरोगणः।७३
अगस्त्यभवनञ्चैव यदगम्यङ्कृतं पुरा।
सिद्धचारणसङ्घैश्च विप्रकीर्णं मनोहरम्।७४
विचित्रनानाविहगं सुपुष्पितमहाद्रुमम्।
जातरूपमयैः शृङ्गैर्गगनं विलिखन्निव।७५
चन्द्रसूर्यांशुसंकाशैः सागराम्बुसमावृतैः।
विद्युत्वान् सर्वः श्रीमानायतः शतयोजनम्।७६
विद्युतां यत्र सङ्घाता निपात्यन्ते नगोत्तमे।
ऋषभः पर्वतश्चैव श्रीमान् वृषभसंज्ञितः।७७

अधोमुख परम विख्यात था जो सभी ओर से धातुओं से मण्डित था तथा तमाल के बनो की गन्ध से युक्त मलय पर्वत परम शुभ था। सुराष्ट्र, वाह्लीक, शूर, आभीर, भोज, पाण्ड्य, बङ्ग, कलिङ्ग, ताम्रलिप्त, उड्ग। पौण्ड्र, वासचूड़, केरल इन सब देशों को उस दैत्य ने क्षोभ युक्त बना दिया था और देवों के सहित अप्सराओं के समुदाय को भी क्षुब्ध कर दिया था।७१।७२।७३। अगस्त्य भवन

जो कि पहिले अगम्य कर दिया था वह सिद्ध—चरणों के समूहों से विप्रकीर्ण और अत्यन्त मनोहर था ।७४। उसमें विचित्र भाँति के अनेक विहग रहते थे तथा सुन्दर पुष्पोंसे युक्त महान् वृक्ष लगे हुए थे । उसने सुवर्णमय शिखर इतने ऊँचे थे मानो वे गगनको लिखित बना रहे हैं । ।७५। वह सागर के जलों से समावृत चन्द्र सूर्य की किरणों के सदृश विद्युत वाला शोभा से सुसम्पन्न सौ योजन पर्यन्त आयति वाला था । जिस नगोत्तम पर विद्युतों के संघातों का निपातन किया जाता था ऋषभ और श्री सम्पन्न वृषभ संज्ञा वाला पर्वत था ।७६-७७।

कुञ्जर: पर्वत: श्रीमानगस्त्यस्य गृहं शुभम् ।
विशालाक्षश्च दुर्धर्ष: सर्पाणामालय: पुरी ।७८
तथा भोगवतीचापि दैत्येन्द्रेणाभिकम्पिता: ।
महासेनो गिरिञ्चैव पारियात्रश्च पर्वत: ।७९
चक्रवांश्च गिरिश्रेष्ठो वाराहश्चैव पर्वत: ।
प्राग्ज्योतिषपुरञ्चमापि जातरूपमय शुभम् ।८०
यस्मिन्वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानव: ।
विशालाक्षश्च दुर्द्धर्षो मेघगम्भीरनिस्वन: ।८१
षष्टिस्तत्र सहस्राणि पर्वतानां द्विजोत्तमा: ।
तरुणादित्यसंकाशो मेरुस्तत्र महागिरि: ।८२
यक्षराक्षसगंधर्वैं नित्यं सेवितकन्दर: ।
हेमगर्भो महाशैलस्तथा हेमसखोगिरि: ।८३
कैलासश्चैव शैलेन्द्रो दानवेन्द्रेण कम्पिता: ।
हेमपुष्परसक्षेत्रं ते च वैखानसं सर: ।८४

श्री से सम्पन्न कुञ्जर पर्वत अगस्त्य का परम शुभ गृह था भोगवती भी उस दैत्येन्द्र के द्वारा अभिकम्पित हो रही थी । महासेन पर्वत पारियात्र गिरि-चक्रवान् श्रेष्ठ गिरि, वाराह पर्वत-प्राग्ज्योतिषपुर जो परम शुभ और जातरूप मय था । जिसमें दुष्ट आत्मावाला नरक नाम

धारी दानव निवास किया करता था वह मेघ के समान गम्भीर ध्वनि वाला दुर्धर्ष विशालाक्ष था ।७८-८१। हे द्विजोत्तमो ! वहाँ पर साठ हजार पर्वत थे और वहाँ तरुण आदित्य के सदृश महान् गिरि मेरु था ।८२। यक्ष, गन्धर्व, राक्षसों के द्वारा नित्य ही जिसकी कन्दराओं का सेवन किया जाता था वह महान् शैल हेम गर्भ था तथा हेम सखा गिरि था ।८३। ये समस्त महाशैल और शैलो का प्रमुख स्वामी कैलास को भी उस दानवेन्द्र ने कम्पित कर दिया था । उसने हेम पुष्प रस क्षेत्र बैखानस सरोवर को भी प्रकम्पित कर दिया था ।८४।

कपितं मानसञ्चैव हंसकारण्डवाकुलम् ।
त्रिश्रृङ्गपर्वतञ्चैव कुमारी च सरिद्वरा ।८५
तुषारचयसञ्छन्ना मंदरश्चापि पर्वत: ।
उशीरबिंदुश्च गिरिश्चन्द्रप्रस्तथाद्रिराट् ।८६
प्रजापतिगिरिश्चैव तथा पुष्करपर्वत: ।
देवाभ्रपर्वतश्चैव यथाग्नौ रेणुकोगिरि: ।८७
क्रौञ्च: सप्तर्षिशैलश्च धूम्रवर्णश्च पर्वत: ।
एते चान्ये च गिरयो देशा जनपदास्तथा ।८८
नद्य: ससागरा: सर्वा: सोऽकम्पयत दानव: ।
कपिलश्च महोपुत्रो व्याघ्रवांश्चैव कम्पित: ।८९
खेचराश्चैव सतीपुत्रा: पातालतलवासिन: ।
गणस्तथा परोरौद्रो मेघनामांकुशायुध: ।९०
ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च सर्व एवाभिकम्पिता: ।
गदी शूली करालश्च हिरण्यकशिपुस्तदा ।९१

हंसों और कारण्डवों से समाकुल मानस सरोवर को भी कम्पायमान कर डाला था । त्रिश्रृङ्ग पर्वत, सरिताओं में परम श्रेष्ठ, तुषार के समुदाय से सञ्छन्न कुमारी नदी, मन्दर पर्वत, उशीर बिंदु गिरि, अद्रियों का राजा चन्द्रप्रस्थ, प्रजापति गिरि, पुष्कर पर्वत, देवाभ्रपर्वत,

रेणुक गिरि, क्रौञ्च, सप्तर्षि, शैल, धूम्रवर्ण पर्वत तथा अन्य गिरिगण, देश तथा जनपद, सागरों के सहित समस्त नदियों आदि को उस महा-दानव ने कम्पित कर दिया था। मही का पुत्र कपिल और व्याघवान् पर्वत को भी कम्पायमान बना दिया था।८५-८६। खेचर, सतीपुत्र, पाताल तल के निवासिगण, पर रौद्र, मेघ नाम वाला अंकुशायुध, ऊर्ध्वग और भीम वेग ये सभी अभिकम्पित हो गये थे। उस समय में हिरण्यकशिपु गदा के धारण करने वाला, शूलधारी और महान् कराल हो गया था।९०-९१।

जीमूतघनसकाशो जीमूतघननिस्वनः।
जीमूतघननिर्घोषो जीमूत इव वेगवान्।९२
देवारिर्दितिजो वीरो नृःसहं समुपाद्रवत्।
समुत्पत्य ततस्तीक्ष्णैर्मृगेन्द्रेण महानखैः।९३
तदोंकारसहायेन विदार्य निहतोयुधि।
मही च कालश्च वशी नभश्च ग्रहाश्च सूर्यश्च दिशश्चसर्वाः।
नद्यश्च शैलाश्च महार्णवाश्च गताः प्रसादन्दितिपुत्रनाशात्।९४
ततः प्रमुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः।
तुष्टुवुर्नामभिर्दिव्यैरादिदेवं सनातनम्।९५
यत्त्वया विहितं देव ! नारसिंहमिदं वपुः।
एतदेवार्चयिष्यन्ति परावरविदोजनाः।९६
भवान् ब्रह्मा च रुद्रश्च महेन्द्रो देवसत्तमाः !।
भवान् कर्ता विकर्ता च लोकानां प्रभवाप्ययः।९७
पराञ्च सिद्धाञ्च परञ्च देवं परञ्च मन्त्रं परमं हविश्च।
परञ्च धर्मं परमञ्च विश्वं त्वामुहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्।९८

उस हिरण्यकशिपु का स्वरूप उस काल में जीमूत कृष्णमेघ के समान था और मेघके ही तुल्य घोर ध्वनि वाला वह था। उसकीघोर

गर्जना भी मेघ के ही तुल्य थी तथा जीमूत के समान ही वेग से युक्त था ।९२। इस प्रकार के स्वरूप वाला वह दिति का पुत्र और देवों का शत्रु था उस वीर ने नृसिंह महाप्रभु पर आक्रमण किया था। इसके अनन्तर उसी समय में ओङ्कार की सहायता वाले मृगेन्द्र ने उछाल मारकर अपने परम तीक्ष्ण विलाल नखों से उस दानवेन्द्र हिरण्यकशिपु को पकड़ कर विदीर्ण कर दिया था और नृसिंह प्रभु के द्वारा वह युद्ध में निहत हो गया। दिति पुत्र के विनाश हो जाने से यह मही-काल-शशीनभ, सूर्य, सम्पूर्ण ग्रह, समस्त दिशाएँ, नदियाँ, शैल और महा-सागर सब परम प्रसन्नता को प्राप्त हो गए थे।९३ ९४। इसके पश्चात् सब देव वृन्द—ऋषिवर्ग और तापस गण परम प्रमुदित हो गये थे और फिर उन्होंने दिव्य नामों के द्वारा उन सनातन आदि देव का स्तवन किया था ।९५। उन्होंने कहा—हे देव! आपने जो यह नारसिंह वपु धारण किया है आपके इसी स्वरूप का परावर वेत्ता जन अर्चन किया करेंगे ।९६। ब्रह्माजी ने कहा—हे भगवान्! आप ही ब्रह्मा, रुद्र महेन्द्र और परम श्रेष्ठ देव हैं। आप ही इन लोकों के कर्त्ता, विकर्त्ता, प्रभव और अव्यय हैं ।९७। आपको ही परम सिद्ध, पराम्पर देव, परम मन्त्र, परम हवि, परमधर्म, परम विश्व और सबसे आदि में होनेवाला पुरातन पुरुष कहते हैं ।९७-९८।

परं शरीरं परमञ्च ब्रह्म परञ्च योगं परमाञ्च वाणीम् ।
परं रहस्यं परमाङ्कतिञ्च त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ।९९
एवं परस्यापि परं पदं यत् परं परस्यापि परञ्च देवम् ।
परं परस्यापि परञ्च भूतन्त्वामाहुरग्र्यं पुराणम् ।१००
परं परस्यापि परं निधानं परं परस्तापि परं पवित्रम् ।
परं परस्यापि परं च दान्तन्त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ।१०१
एवमुक्त्वा तु भगवान् सर्वलोकपितामहः ।
स्तुत्वा नारायण देवं ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः ।१०२

तप्तो नदत्सु तूर्येषु नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च ।
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं जगाम हरिरीश्वरः ।१०३
नारसिंहं वपुर्देवः स्थापयित्वा सुदीप्तमत् ।
पौराणं रूपमास्थाय प्रययौ गरुडध्वजः ।१०४
अष्टचक्रेण यानेन भूतयुक्तेन भास्वता ।
अव्यक्तप्रकृतिर्देवं स्वस्थानं गतवान् प्रभुः ।१०५

हे भगवन् ! आपको ही परम शरीर—परम ब्रह्म—परमयोग-परम वाणी—परम रहस्य तथा परम गति एवं आद्य पुराण पुरुष कहा करते हैं । इस प्रकार से जो पराक्रमी परम पद है और परकामी परम देव है तथा परकामी परकामी परमभूत है । उस आद्य पुरुष एवं परम पुराण आपको ही कहते हैं ।९९-१००। इसी भाँति परकामी परम निधान—पारकामी परम पवित्र तथा परसेवी परम दान्त आद्य पुराण पुरुष आपको ही कहते हैं ।।१०१।। इस रीति से समस्त लोकों के पितामह भगवान् ने नारायण देव का स्तवन करके प्रार्थना की और फिर वे प्रभु अपने ब्रह्मलोक को वापिस चले गये थे ।१०२। इसके अनन्तर सूर्यो के घोष होने पर और अप्सराओं के नृत्य होने पर ईश्वर श्री हरि क्षीर सागर के उत्तर कूल पर गमन कर गये थे ।१०३। देवेश्वर ने सुदीप्ति से युक्त नारसिंह वपु की स्थापना कराकर फिर गरुड़ध्वज प्रभु पौराण स्वरूप में समास्थित होकर प्रयाण कर गयेथे । भूतयुक्त-भास्वान् आठ चक्रों वाले यान के द्वारा अव्यक्त प्रकृति देव प्रभु अपने स्थान को चले गये थे ।१०४-१०५।

६४—मनुमत्स्य संवाद वर्णन

पद्मरूपमभूदेतत् कथं हेममयं जगत् ।१

कथञ्च वैष्णवी सृष्टि: पद्ममध्येऽभवत्पुरा ।२

श्रुत्वा च नारसिंहंमाहात्म्यं रविनन्दनः ।

विस्मयोत्फुल्लनयन: पुन: प्रपच्छ केशवम् ।३

कथं पाद्मे महाकल्पे तव पद्ममयं जगत् ।

जलार्णवगतस्येह नाभौ जातं जनार्दन ! ।४

प्रभावात् पद्मनाभस्य स्वपत: सागराम्भसि ।

पुष्करे च कथं भूता देवा: सर्षिगणा:पुरा ।५

एनमाख्याहि निखिलं योगं योगविदाम्पते ! ।

शृण्वतस्तस्य मे कीर्तिनं तृप्तिरुपजायते ।६

कियता चैव कालेन शेते वै पुरुषोत्तम: ।

कियन्तं वा स्वपिति च कोऽस्य कालस्य सम्भव: ।७

ऋषिगण ने कहा—हमारी यह प्रार्थना है कि सृष्टि रचना को कुछ और अधिक विस्तार के साथ आप वर्णन कीजिए ।१-२। यह सम्पूर्ण जगत् किस प्रकार से हेममय पद्म के स्वरूप वाला हो गया था और पहिले उस पद्म के मध्य में यह वैष्णवी सृष्टि किस प्रकार से हुई थी ।३। महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—रविनन्दन ने प्रभु नरसिंह के माहात्म्य का श्रवण करके विस्मयसे उत्फुल्ल नेत्रों वाला होकर पुनः केशव प्रभु से पूछा था ।४। मनु ने कहा—हे जनार्दन ! पाद्म महा कल्प में जिस समय में आप जलार्णव में लीन होकर स्थित थे तब यह पद्ममय जगत् आपकी नाभि से किस प्रकार उत्पन्न हुआ था ? सागर के जल में शयन करने वाले पद्मनाभ के प्रभाव से उस पुष्कर में पहिले देव—ऋषिगण और समस्त भूत किस रीति से समुत्पन्न हुए थे ।५। हे योग के वेत्ताओंके स्वामिन् ! इस सम्पूर्ण योग का वर्णन कृपा करके

कीजिए ! उसकी कीर्ति का श्रवण करने वाले मेरे हृदय की तृप्ति नहीं हो रही है। पुरुषोत्तम प्रभु कितने लम्बे समय से वहाँ पर शयन किया करते हैं और किस काल पर्यन्त शयन करते रहते हैं। इस काल की उत्पत्ति क्या है ? ।६-७।

कियता वाथ कालेन ह्युत्तिष्ठति महायशाः ।
कथञ्चोत्थाय भगवान् सृजते निखिलं जगत् ।८
के प्रजापतयस्तावदासन् पूर्वं महामुने ! ।
कथं निर्मितवांश्चैव चित्रं लोकं सनातनम् ।९
प्रथमेकार्णवे शून्ये नष्टस्थावरजङ्गमे ।
दग्धदेवासुरनरे प्रणष्टोरगराक्षसे ।१०
नष्टानिलानले लोके नष्टाकाशमहीतले ।
केवलं गह्वरीभूते महाभूतविपर्यये ।११
विभुर्महाभूतपतिर्महातेजा महाकृतिः ।
आस्ते सुरवरश्रेष्ठो विधिमास्थाय योगवित् ।१२
शृणुयां परया भक्त्या ब्रह्मन्नेतदशेषतः ।
वक्तुमर्हसि धर्मिष्ठ ! यशो नारायणात्मकम् ।१३

यह महान् यशस्वी प्रभु कितने काल में वहाँ पर उत्थित हुआ करते हैं और किस प्रकार से उठकर इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन भगवान् किया करते हैं ? हे महामुने ! पहिले कौन प्रजापति थे और इस अत्यन्त विचित्र जगत् तथा सनातन लोक का किस प्रकार से निर्माण किया था ।८-९। प्रथम इस प्रकार एक मात्र आर्णव में जबकि सभी स्थावर और जङ्गम नष्ट होकर यह एकदम शून्य था और सब देव-असुर एवं नर दग्ध हो गए थे तथा उरग और राक्षस भी सब नष्ट हो गये थे। अनिल और अनल भी विनष्ट हो गए थे। लोक में आकाश एवं महीतल का नाम निशान भी नहीं था। महाभूतों के विपर्यय हो जाने पर यह केवल एक गह्वर के तुल्य ही था। उस समय में महान्

तेजस्वी–सुरवरों में परम श्रेष्ठ–महाभूतों के स्वामी—योगवेत्ता विभु विधि में समास्थित होकर थे ।१०-१२। हे ब्रह्मन् ! मैं परम भक्तिपूर्वक पूर्णरूप से इस सबको श्रवण करना चाहता हूँ । हे धर्मिष्ठ ! आप इस नारायण के ही स्वरूप वाले परम यश का वर्णन करने के योग्य होते हैं ।१३।

श्रद्धया चोपविष्टानां भगवान् ! वक्तुमर्हसि ।
नारायणस्य यशसः श्रवणे या तव स्पृहा ।।१४
तद्वंश्यान्वयभूतस्य न्याय्यं रविकुलर्षभ ! ।
शृणुष्वादिपुराणेषु वेदेभ्यश्च यथाश्रुतम् ।१५
ब्राह्मणानाञ्च वदतां श्रुत्वा वै सुमहात्मनाम् ।
यथा च तपसा दृष्ट्वा बृहस्पतिसमद्युतिः ।१६
पराशरसुतः श्रीमान् गुरुर्द्वैपायनोऽब्रवीत् ।
तत्तेऽहं कथयिष्यामि यथाशक्ति यथाश्रुति ।१७
यद्विज्ञातुं मया शक्यमृषिमात्रेण सत्तमाः ! ।
कः समुत्सहते ज्ञातुं परं नारायणात्मकम् ।१८
विश्वायनश्च यद्ब्रह्मा न वेदयति तत्त्वतः ।
तत्कर्म्म विश्ववेदानां तद्रहस्यं महर्षिणाम् ।१९
तमीज्यं सर्वयज्ञानां तत्तत्वं सर्वदर्शिनाम् ।
तदध्यात्मविदां चिन्त्यंनरकं न विकर्मिणाम् ।२०
अधिदैवञ्च यद्दैवमधियज्ञं सुसंज्ञितम् ।
तद्भूताधिभूतञ्च तत्परं परमर्षिणाम् ।२१

हम सब श्रद्धा के साथ श्रवण करने के लिए यहाँ पर समुपस्थित हैं आप अब कहने की कृपा कीजिए क्योंकि इसके वर्णन करने की पूर्ण क्षमता रखते हैं । मत्स्य भगवान् ने कहा–जो यह आपकी स्पृहा भगवान् नारायण के यशको श्रवण करने की समुत्पन्न हुई है वह हे रविकुलर्षभ! उसी वंश में होने वाले अन्वय में उत्पन्न आपकी बहुत उचित ही है ।

वेदों में तथा आदि पुराणों में जिस प्रकार से सुना गया है उसका अब श्रवण करो ।१४-१५। सुन्दर और महान् आत्मा वाले बोलते हुए ब्राह्मणों का कथन सुनकर और बृहस्पति के समान द्युति वाले पाराशर के पुत्र श्रीमान् गुरु द्वैपायन ने जिस प्रकार से तपश्चर्या के द्वारा देख कर बोला था उसी को मैं अपनी शक्ति और श्रवण के अनुसार आपको सब कहूँगा।१६-१७। हे श्रेष्ठतमो! ऋषि मात्र मेरे द्वारा जो भी जाना जा सकता है उस परम नारायण के स्वरूप को अन्य कौन जानने का उत्साह कर सकता है ।८। विश्व जिसको अपना बनाता है वह ब्रह्माजी तात्विक रूप से जिसको नहीं जानते हैं । विश्व वेदों का यज्ञ कर्म महर्षियों के लिए भी एक रहस्य है। सब यज्ञों के यजन करने के योग्य वह सर्व दर्शियों का तत्व है । वह अध्यात्म के वेत्ताओं के चिंतन के योग्य विषय है और विकर्म्मियों का नरक नहीं है । वह अधिदैव और अधियज्ञ संज्ञा से युक्त एवं वह भूत अधिभूत है तथा परमर्षियों का वह परम है ।१९-२१।

स यज्ञो वेदनिर्दिष्टःस्तत्तपः कवयो विदुः ।
यः कर्ता कारको बुद्धिर्मनः क्षेत्रज्ञ एव च ।२२
प्रणवः पुरुषः शास्ता एकश्चेति विभाव्यते ।
प्राणः पञ्चविधश्चैव ध्रुव अक्षर एव च ।२३
कालः शाकश्च यन्ता च द्रष्टास्वाध्याय एव च ।
उच्यते विविधैर्देवः स एवायं न तत्परम् ।२४
स एव भगवान् सर्वं करोति विकरोति च ।
सोऽस्मान् कारयते सर्वान् सोऽत्येति व्याकुलीकृताम् ।२५
यतामहे तमेवाद्यन्तमेवेच्छाम निर्वृताः ।
यो वक्ता यच्च वक्तव्यं यच्चाहन्तद्ब्रवीमि वः ।२६
श्रूयते यच्च वै श्राव्यं यच्चान्यत् परिजल्प्यते ।
याः कथाश्चैव वर्तन्ते श्रुतयो वाथ तत्पराः ।२७

विश्वं विश्वपतिर्यश्च स तु नारायणः स्मृतः ।
यत् सत्यं यदमृतमक्षरं परं यत् यद्भूतं परममिदं च यद्भविष्यत्
यत् किञ्चिच्चरमचरं यदस्ति चान्यत्
तत् सर्वपुरुषवरः प्रभुः पुराणः ।२८

वह वेदों से द्वारा निर्दिष्ट यज्ञ है और कविगण उसको तप कहते हैं । जो कर्त्ता, कारक, बुद्धि, मन, क्षेत्रज्ञ, प्रणव, पुरुष, शास्त्र और एक ही विभावित होता है । पाँच प्रकार का प्राण—ध्रुव और अक्षर है । काल, शाक, यन्ता, दृष्टा और स्वाध्याय है । विविध देवोंके द्वारा वह देव कहा जाता है और यह वह ही है उससे पर कोई नहीं है । वह ही भगवान सब कुछ किया करते हैं और बिगाड़ते हैं । वह इन सबको कराता है और व्याकुलीकृतों का अतिगमन करता है ।२२-२५। उसी आदि में होने वाले के लिए हम यत्न किया करते हैं और निर्वृत (प्रसन्न) होकर उसी को हम सब चाहते हैं । जो वक्ता है और वक्तव्य है तथा जो मैं हूँ उसको ही मैं आपको बतलाता हूँ । जो श्राव्य सुनाया जाताहै और जो अन्य परिजल्पित किया जाता है । जो कथायें वर्तमान हैं । जो श्रुतियाँ हैं वे तत्पर ही हैं । यह विश्व और विश्व का स्वामी है वह ही नारायण कहा गया है । जो सत्य है—अक्षर और पर है । जो परम भूत हैं और भविष्यत् है—जो चर—अचर तथा जो अन्य है वह सभी पुरुषों में श्रेष्ठ पुराण प्रभु है ।२६-२८।

६५—विष्णु प्रादुर्भाव वर्णन

विष्णुत्वं शृणु विष्णोश्च हरित्वञ्च कृते युगे ।
वैकुण्ठत्वञ्च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च ।१
ईश्वरस्य हितस्यैषा कर्म्मणां गहनागतिः ।

संप्रत्यतीतान् भव्यांश्चश्रृणुराजन् ! यथातथम् ।२
अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो य एष भगवान् प्रभुः ।
नारायणोह्यनन्तात्मा प्रभवोऽव्ययएवच ।३
एष नारायणो भूत्वा हरिरासीत् सनातनः ।
ब्रह्मावायुश्चसोमश्च धर्म्मःशक्रोबृहस्पतिः ।४
अदितेरपि पुत्रत्वं समेत्य रविनन्दन ! ।
एष विष्णुरितिख्यात इन्द्रस्यानुजो विभुः ।५
प्रसादजं ह्यस्य विभोरदित्यः पुत्रकारणम् ।
वधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवराक्षसाम् ।६
प्रधानात्मा पुरा ह्येष ब्रह्माणमसृजत् प्रभुः ।
सोऽसृजत् पूर्वपुरुषः पुराकल्पे प्रजापतीन् ।७

श्रीमत्स्य भगवान ने कहा—अब तुम विष्णु के विष्णुत्व का श्रवण करो और कृत युग में हरित्व का—देवों में वैकुण्ठत्व का और मनुष्यों में कृष्णत्व के स्वरूप का भी श्रवण करलो। हितकारी ईश्वर के कर्मों की अतीव गहन गतियाँ हैं। हे राजन् ! अब इस समय में जो व्यतीत हो गये हैं उनको तथा आने जो होने वाले हैं उनको ठीक ठीक रीति से श्रवण करलो।१-२। यह जो अव्यक्त भगवान प्रभु हैं वह व्यक्त लिंगों (चिह्नों) में स्थित होते हैं वही अनन्त आत्मा वाले सबका प्रभव (उत्पत्ति) और अविनाशी साक्षात् नारायण ही है।३। यह पहिले नारायण होकर सनातन श्रीहरि हुए थे। हे रवि के नन्दन ! फिर इस ने ही ब्रह्मा—वायु—सोम—धर्म—इन्द्र—बृहस्पति तथा अदिति के पुत्रत्व को प्राप्त किया था और यह ही फिर इन्द्र का छोटा पीछे उत्पन्न होने वाला भाई विभु विष्णु इस नाम से विख्यात हुए हैं।४-५। देवगण इस विभु के पुत्र होने का कारण उनकी प्रसन्नता से होने वाला समझते थे जो कि सुरों के शत्रु दैत्य-दानव और राक्षसों के वध

करने के लिए ही था पहिले प्रसन्न आत्मा इस प्रभु ने ब्रह्मा का सृजन किया था। फिर उस पूर्व पुरुष ने पहिले कल्पमें प्रजापतियों का सृजन किया था।६-७।

असृजन्मानवांस्तत्र ब्रह्मवंशाननुत्तमान्।
तेभ्योऽभवन्महात्मभ्यो बहुधाब्रह्म शाश्वतम्।८
एतदाश्चर्यभूतस्य विष्णोः कर्मानुकीर्तनम्।
कीर्तनीयस्य लोकेषु कीर्त्यमानं निबोध मे।९
वृत्ते वृत्रवधे तत्र वर्तमाने कृते युगे।
नासीत्त्रैलोक्यविख्यातः संग्रामस्तारकामयः।१०
यत्र ते दानवा घोराः सर्वे संग्रामदुर्जयाः।
घ्नन्ति देवगणान् सर्वान् सयक्षोरगराक्षसान्।११
ते बध्यमाना विमुखाः क्षीणप्रहरणारणे।
त्रातारं मनसा जग्मुर्देवं नारायणं प्रभुः।१२
एतस्मिन्नन्तरे मेघा निर्वाणाङ्गारवर्चसः।
सार्कचन्द्रग्रहगणंच्छादयन्तो नभस्तलम्।१३
वेणुर्विद्युद्गणोपेता घोरनिह्लादकारिणः।
अन्योन्यवेगाभिहताः प्रवबुः सप्त मारुताः।१४

वहाँ पर अत्युत्तम ब्रह्मा के वंश वाले मानवों का उनने सृजन किया था फिर उन सब महान आत्माओं वालो से यह शाश्वत ब्रह्म ही बहुत से स्वरूपों में समुत्पन्न हुआ था। यह ही आश्चर्य स्वरूप वाले भगवान विष्णु के कर्मो का अनुकीर्त्तन है। लोकों में कीर्त्तन करने के योग्य के उस कीर्त्यमान कर्म को अब मुझसे तुम भली भाँति समझलो। ।८-९। वर्तमान कृत युग में वृत्रासुर वध होने पर वहाँ पर त्रिभुवन में विख्यात तारकामय संग्राम हुआ था। जिस युद्ध में दुर्जय समस्त घोर दानव गण यक्ष-उरग और राक्षसों के सहित सब देवों का हनन किया करते थे।१०-११। उस रण में वध किए जाते हुए क्षीण आयुधों वाले

विमुख होकर सबके सब मन से त्राण करने वाले प्रभु देव नारायण की शरण में गये थे ।१२। इसी बीच में निर्वाण अङ्गार वर्चस वाले मेघ, सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहों से युक्त नभस्तल का आच्छादन करते हुए छा गये थे । ये मेघ वेणु विद्युद्गण से युक्त थे तथा घोर गर्जन करने वाले थे । परस्पर में वेग से अभिहत सातों मरुत वहन करने लगे थे । ।१३-१४।

दीप्ततोयाशनिर्व्योम्नि वेगानलानिलै: ।
रवै: सुघोरैरुत्पातैर्दह्यमानमिवाम्बरम् ।१५
तत उल्कासहस्राणि निपेतुः खगतान्यपि ।
दिव्यानि च विमानानि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च ।१६
चतुर्युगान्ते पर्याये लोकानां यद्भयं भवेत् ।
अरूपवन्ति रूपाणि तस्मिन्नुत्पातलक्षणे ।१७
जातञ्च निष्प्रभं सर्वं न किञ्चन प्रज्ञायते ।
तिमिरौघपरिक्षिप्ता न रेजुश्च दिशोदश ।१८
विवेश रूपिणी काली कालमेघावगुण्ठिता ।
द्यौर्नभश्चाभिभूतार्का घोरेण तमसा वृता ।१९
तान घनौघान् सतिमिरान् दोर्भ्यामाक्षिप्य स प्रभुः ।
वपुः स्वन्दर्शयामास दिव्यं कृष्णवपुर्हरिः ।२०
बलाहकाञ्जननिभं बलाहकतनूरुहम् ।
तेजसा वपुषा चैव कृष्णं कृष्णमिवाचलम् ।२१

उस समय में यह सम्पूर्ण आकाश दीप्त और अशनि (वज्र) से संयुक्त घनों के द्वारा—वज्र वेग अनल और अनिलों के द्वारा—सुघोर ध्वनि और उत्पातों से दह्यमान की तरह हो रहा था ।१५। इसके पश्चात् आकाश में स्थित भी सहस्रों उल्कायें गिर गयी थीं तथा दिव्य विमान उड़ते थे और नीचे की ओर गिरते थे ।१६। चतुर्युगों के अन्त में लोकों के पर्याय में जो भय होता है उस उत्पात के लक्षण में सभी

रूप बिना रूप वाले हो जाते हैं ।१७। लोकोंमें सभी कुछ प्रभा से हीन हो जाता है और कुछ भी नहीं जाना या समझा जाया करता है। अन्धकार के अत्यन्त घोर एवं गहन समुदाय से परिक्षिप्त हुई दशों दिशायें प्रकाशित नहीं होतीथीं । उस समयमें काल मेघ में अवगुण्ठित होकर रूपधारिणी काली का प्रवेश हो जाता था। अत्यन्त घोर तम से समावृत दिवलोक तथा अन्तरिक्ष जिसमें सूर्य एकदम अभिभूत हो जाता है बिल्कुल भी दिखाई नहीं दिया करता है ।१८-१९। तिमिर से परिपूर्ण उन घनों के समूहों को वह प्रभु अपने हाथों से आक्षिप्त करके कृष्ण वपुधारी श्री हरि अपने दिव्य शरीर को दिखाया करते थे ।२०। बलाहक के सदृश काले बलाहक के समान रोमों से युक्त-वपु और तेज के एक कृष्ण स्वरूप को प्रकट किया था ।२१।

दीप्तापीताम्बरधरं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।
धूमान्धकारवपुषं युगान्ताग्निमिवोत्थितम् ।२२
चतुर्द्विगुणपीनांसङ्किरीटाच्छन्नमूर्द्धजम् ।
बभौ चामीरप्रख्यैरायुधैरुपशोभितम् ।२३
चन्द्रार्ककिरणोद्योतं गिरिकूटमिवोच्छ्रितम् ।
नन्दकानन्दितकरं शराशीविषधारिणम् ।२४

शक्तिचित्रफलोदयंशङ्खचक्रगदाधरम् ।
विष्णुशैलं क्षमामूलं श्रीवृक्षं शार्ङ्गधन्विनम् ।२५
त्रिदशोदारफलदं स्वर्गस्त्रीचारुपल्लवम् ।
सर्वलोकमनः कान्तं सर्वसत्वमनोहरम् ।२६
नानाविमानविटपन्तोयदाम्बुमधुस्रवम् ।
विद्याहङ्कारसाराढ्यं महाभूतप्ररोहणम् ।२७
विशेषपत्रंनिचितं ग्रहनक्षत्रपुष्पितम् ।
दैत्यलोकमहास्कन्धं मर्त्यलोके प्रकाशितम् ।२८

वह दीप्तियुक्त पीत अम्बर को धारण करने वाला—तथा तपे हुए सुवर्ण के भूषणों से संयुक्त—धूम सहित अन्धकार के शरीर वाला युगांत करने वाली अग्नि के तुल्य समुपस्थित हुआ था ।२२। चौगुने और दुगुने पीन अंश से संयुक्त—किरीट से समाच्छन्न केशों वाला वह दिव्य वपु चामीर प्रख्य आयुधों से उपशोभित होकर प्रकट हो रहा था ।२३। चन्द्र और सूर्य की किरणों के उद्योत वाला अत्यन्त ऊँचे गिरि के शिखर के सदृश था । नन्दक से आनन्दित करों वाला—शर तथा आशीविष के धारण करने वाला—क्षमा का मूल—विष्णु शैल—श्री वृक्ष और शार्ङ्ग धनुष के धारण करने वाला वह दिव्य स्वरूप था ।२४-२५। उसी दिव्य स्वरूप का वर्णन किया जा रहा है—वह देवों का उदार फल देने वाला—स्वर्गीय स्त्रियों का चारु पल्लव—सब लोगों के मन को रमणीय-सब जीवों में अत्यन्त मनोहर—नाना विमानों के विटपों वाला—मेघों के जलरूप मधु का श्रवण करने वाला—विद्या के अहंकार—सार का आद्य महान् भूतों का प्ररोहरण करने वाला—विशेष पत्रों से निचित ग्रह और नक्षत्र रूपी पुष्पों से संयुक्त और वह दिव्यरूप दैत्यों के लोकका महान् स्कन्ध था जो कि इस मर्त्य लोक में प्रकाशित हुआ था ।२६-२७।

सागराकारनिर्ह्रादं रसातलमहाश्रयम् ।
मृगेन्द्रपाशैर्विततं पक्षजन्तुनिषेवितम् ।२९

शीलार्थचारुगन्धाढ्यं सर्वलोकमहाद्रुमम् ।
अव्यक्तानन्तसलिलं व्यक्ताहंकारफेनिलम् ।३०

महाभूततरङ्गौघं ग्रहनक्षत्रबुद्बुदम् ।
विमानगरुतव्याप्तं तोयदाडम्बराकुलम् ।३१

जन्तुमत्सजनाकीर्णं शैलशङ्खकुलैर्युतम् ।
त्रैगुण्यविषयावर्तं सर्वलोकतिमिङ्गिलम् ।३२

वीरवृक्षलतागुल्मं भुजगोत्कृष्टशैवलम् ।

द्वादशार्कमहाद्वीपं रुद्रैकादशपत्तनम् ।३३
वस्वष्टपर्वतोपेतं त्रैलोक्याम्भोमहोदधिम् ।
सन्ध्यासङ्ख्योर्मिसलिलं सुपर्णानिशसेवितम् ।३४
पितामहमहावीर्यं सर्वस्त्रीरत्नशोभितम् ।३५

पुनरपि उसी परम दिव्य स्वरूप को वर्णित किया जा रहा है कि वह सागरके आकारके तुल्य निर्हादि था और रसातल के महान आश्रय वाला था। मृगेन्द्र के पाशों से विसत—पक्षिगण एवं जन्तुओंसे निषेवित शैलार्थ और सुन्दर गन्ध से आढ्य—सब लोकों का महान् द्रुम-अव्यक्त एवं अनन्त सलिल वाला—व्यक्त अहङ्कार से फेनयुक्त-महान् भूतों की तरङ्गों के ओघ वाला—ग्रह तथा नक्षत्रों के बुलबुलों से समन्वित—विमान गरुत व्याप्त और तोयदों के आडम्बर से समाकुल था।२६-३१। वह रूप जन्तुओं वाला—जनों से समाकीर्ण—शैल शंखों के कुलों से संयुक्त-त्रैगुण्य के विषयों का आवर्त्त—समस्त लोकों का तिमिङ्गिल वीर रूपी वृक्ष लता और गुल्मों वाल-भुजङ्गों के उत्कृष्ट शैवाल वाला—द्वादश सूर्यों के महाद्वीपों वाला-एकादश रुद्रों के पत्तनों से युक्त—आठ वसुरूपी पर्वतों से युक्त—त्रैलोक्य रूपी महा सागरों वाला-संध्या संख्या की ऊर्मियों का सलिल—सुपर्ण की वायु से सेवित—दैन्य और रक्षोगण रूपी ग्राहों वाला-यक्ष और उरगरूपी भुजोंसे समाकुल पितामह के समान महान् वीर्य वाला और सब स्त्रियों के स्वरूप वाले रत्नों से सुशोभित था।३२-३५।

श्रीकीर्तिकान्तिलक्ष्मीभिर्नदीभिरुपशोभितम् ।
कालयोगिमहापर्वप्रलयोत्पत्तिवेगिनम् ।३६
तन्तु योगमहापारं नारायणमहार्णवम् ।
देवाधिदेवं वरदं भक्तानां भक्तिवत्सलम् ।३७
अनुग्रहकरं देवं प्रशान्तिकरणं शुभम् ।

हर्यश्वरथसंयुक्ते सुपर्णध्वजसेविते ।३८
ग्रहचन्द्रार्करचिते मन्दराक्षवरावृते ।
अनन्तरश्मिभिर्युक्ते विस्तीर्णे मेरुगह्वरे ।३९
तारकाचित्रकुसुमे ग्रहनक्षत्रबन्धुरे ।
भयेष्वभयदं व्योम्नि देवा दैत्यपराजिताः ।४०
ददृशुस्तेऽस्थितं देवं दिव्ये लोकमये रथे ।
ते कृताञ्जलयः सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः ।४१
जयशब्दं पुरस्कृत्य शरण्यं शरणङ्गताः ।
स तेषां ताङ्गिरं श्रुत्वा विष्णुर्देवेश्वरस्स्वयम् ।४२

उसी दिव्य स्वरूप का वर्णन करते हुए बतलाते हैं कि वह दिव्य रूप श्रीकान्ति और लक्ष्मी से तथा नदियों से उपशोभित था—कालयोगी और महापर्व एवं प्रलय तथा उत्पत्ति के वेग वाला था। तन्तुयोग का महापार—नारायण रूपी महार्णव से युक्त—देवों का भी अधिदेव—वर देने वाला जो अपने भक्तों को प्रदान करते थे—भक्तों पर प्यार करने वाला वह स्वरूप था ।३६-३७। वह अनुग्रह करने वाला—देव-प्रशान्ति करने वाला शुभ था। हर्यश्च रथ में समन्वित-ध्वज से सेवित—ग्रह चन्द्र और सूर्य से विरचित—मन्दराक्ष वर से आवृत—अनन्त रश्मियों से युक्त—विस्तीर्ण मेरु गह्वर से युक्त—तारे रूप विचित्र कुसुमों से परिपूर्ण—ग्रह और नक्षत्रों से बन्धुर (सुडौल)—भय के अवसरों पर अभय देने वाले उस स्वरूप को व्योम में दैत्यों से पराजित देवों ने देखा था। उन देवों ने परम दिव्य लोकमय रथमें स्थित देव का दर्शन प्राप्त किया था। उस समय में इन्द्र को अपना अग्रणी बना करके उन समस्त देवों ने अपनी अंजलियों को बद्ध कर लिया था। जयकार के शब्द को पहिले समुच्चारित करके शरण्य प्रभु की वे सब शरणागति में प्राप्त हो गए थे। उन देवों के भी देवेश्वर विष्णु भगवान् ने देवगण की शरणागति मे प्राप्त होने के लिए कथित वाणी का श्रवण किया था। ।३८-४२।

मनश्चक्रे विनाशाय दानवानां महामृधे ।
आकाशे तु स्थितो विष्णुरुत्तमं वपुरास्थित: ।४३
उवाच देवता: सर्वा: सप्रतिज्ञमिदं वच: ।
शान्ति व्रजत भद्रं वो मा भैष्ट मरुताङ्गणा: ।४४
जिता मे दानवा: सर्वे त्रैलोक्यं परिगृह्यताम् ।
ते तस्य सत्यसन्धस्य विष्णोर्वाक्येन तोषिता: ।४५
देवा: प्रीतिं समाजग्मु: प्राश्यामृतमनुत्तमम् ।
ततस्तम: संहृतं तद्विनेशुश्च बलाहका: ।४६
प्रववुश्च शिवा वाता: प्रशान्ताश्च दिशो दश ।
शुद्धप्रभाणि ज्योतींषि सोमञ्चक्रु: प्रदक्षिणम् ।४७
न विग्रहं ग्रहाश्चक्रु: प्रशान्ताश्चापि सिंधव: ।
विरजस्का अभवन्मार्गा नाकवर्गादयस्त्रय: ।४८
याथार्थमूहु: सरितो नापिचुक्षुभिरेोऽर्णवा: ।
आसंश्छुभानीन्द्रियाणि नराणामन्तरात्मसु ।४९
महर्षयो वीतशोका वेदानुच्चैरधीयत ।
यज्ञेषु च हवि: पाकं शिवमाप च पावक: ।५०
प्रवृत्तधर्मा: संवृत्ता लोका मुदितमानसा: ।
विष्णोर्दत्तप्रतिज्ञस्य श्रुत्वारिनिधने गिरम् ।५१

देवों की परित्राण के लिए कही हुई वाणी को सुनते ही विष्णुदेव ने उस महान युद्ध में दानवों के विनाश करने के लिए मन में स्थिरता करली थी । उस समय में भगवान् विष्णु उत्तम वपुमें समास्थित होकर आकाश में ही स्थित थे । उन्होंने समस्त देवों से प्रतिज्ञा के सहित यह वचन कहा था कि अब आप सब लोग शान्ति धारणकरें अर्थात् एकदम प्रशान्त हो जावें हे मरुतों के गणो ! अब आप डरो मत—आपका कल्याण होगा । मैंने सभी दानवों को जीत ही लिया है—ऐसा समझलो और सब इस त्रैलोक्य को जो तुमसे उन्होंने छीनकर अपना अधिकार

कर लिया है पुन: वापिस ग्रहण कर लो। इस प्रकार के वचन जब उन समस्त देवगण ने सत्य प्रतिज्ञा वाले विष्णु भगवान् के सुने थे तो उनके वाक्य से सबको बहुत ही अधिक सन्तोष हो गया था।४३-४५। उस समय में उस अत्युत्तम अमृत का प्राशन करके देवगण परम प्रीति को प्राप्त हो गये थे। इसके बाद वह सम्पूर्ण अन्धकार नष्ट हो गया था और अभी बलाहक विनाश को प्राप्त हो गये थे। सर्वत्र परम मङ्गल कारी वायु वहन करने लगी थी और दशों दिशायें एक दम प्रशान्त हो गयी थी। शुद्ध प्रभा वाली ज्योतियाँ अर्थात् नक्षत्रादि सोम की प्रदक्षिणायें करने लगी थीं।४६-४७। उस समय में ग्रह गण परस्पर में कोई भी विग्रह नहीं करते थे और सभी सिन्धु परम प्रशान्त हो गए थे। स्वर्ग वर्गादि तीनों ही रज से रहित मार्गों वाले हो गये थे। सम्पूर्ण सरितायें ठीक मार्ग से यथार्थ रूप में वहन कर रही थीं और आर्णवों में भी किसी भी प्रकार का क्षोभ नहीं हो रहा था। सभी मनुष्यों की अन्तरात्माओं में परम शान्ति थी और इन्द्रियाँ परम शुभ-वृत्ति वाली हो गई थी।४८।४६। सब महर्षिगण शोक से रहित होकर वेदों का उच्च स्वर से अध्ययन कर रहे थे। यज्ञों में जो भी हवि प्रक्षिप्त किया जाता था पावक उसका अति शिव पाक करने लगा था।५०। सभी लोक परम प्रमुदित मनों वाले होकर अपने-२ धर्मों में प्रवृत हो गए थे जिस समय में सत्य प्रतिज्ञा वाले भगवान बिष्णु की समस्त शत्रुओं के विनाश कर देने की वाणी का सबने श्रवण कर लिया था, सभी को परमानन्द प्राप्त हो गया था।५१।

———

६६—दैत्य सैन्य विस्तार वर्णन

ततोऽभयं विष्णुवचः श्रुत्वा दैत्याश्च दानवाः ।
उद्योगंविपुलं चक्रुर्युद्धाय विजयाय च ।१
मयस्तु काञ्चनमयं त्रिनल्वायतमक्षयम् ।
चतुश्चक्रं सुविपुलं सुकल्पितमहायुगम् ।२
किंकिणीजालनिर्घोषं द्वीपिचर्मपरिष्कृतम् ।
रुचिरं रत्नजालैश्च हेमजालैश्च शोभितम् ।३
ईहामृगगणाकीर्णं पक्षिपङ्क्तिविराजितम् ।
दिव्यास्त्रतूणीरधरं पयोधरनिनादितम् ।४
स्वक्षं रथवरोदारं सूपस्थं गगनोपमम् ।
गदापरिघसंपूर्णं मूर्तिमन्तमिवार्णवम् ।५
हेमकेयूरवलयं स्वर्णमण्डलकूवरम् ।
सपताकध्वजोपेतं सादित्यमिव मन्दरम् ।६
गजेन्द्राभोगवपुषं क्वचित् केसरिवर्चसम् ।
युक्तमृक्षसहस्रेण समृद्धाम्बुदनादितम् ।७
दीप्ताकाशगं दिव्यं रथं पररथारुजम् ।
अध्यतिष्ठद्रणाकाङ्क्षी मेरुं दीप्तमिवांशुमान् ।८

श्री मत्स्य भगवान ने कहा—इसके अनन्तर उस अभय से पूर्ण भगवान् विष्णु के बचन का श्रवण करके दैत्यों और दानवोंने विजय की प्राप्ति करने के लिए विपुल उद्योग वाला युद्ध किया था ।१। विभिन्न दानवों के द्वारा किये जाने वाले युद्ध का वर्णन किया जाता है—मय दानव ने जिस रथ में विराजमान होकर समर किया था वह काञ्चन-मय था—त्रिनल्व आयत और अक्षय था । उस रथमें चार चक्र थे-अतीव विपुल था और सुन्दर कल्पना किया हुआ महायुग वाला था ।२। मय का रथ किङ्किड़ी जालों के निर्घोष से युक्त-हाथियों के चर्म से परिष्कृत

रत्नों के जालों से अत्यन्त मनोरम—हेम रचित जालों से शोभित—ईहा मृग गणों से समाकीर्ण—पक्षियों की पंक्ति से शोभा सम्पन्न-दिव्य अस्त्र और तूणीर को धरने वाला तथा पयोधरों के समान ध्वनि से पूर्ण था ।३-४। सुन्दर अक्षों वाला श्रेष्ठ रथों में भी अतीव उदार—सुपस्थ—गगन के सदृश-गदा और परिघ से परिपूर्ण मूर्तिमान एक अर्णव के ही समान वह यम का पथ था ।५। वह हेम के केयूर और बलय से युक्त-स्वर्ण मण्डल कूबर वाला-पताओं के सहित ध्वजा वाला और आदित्य से मन्दराचल के समान दिखलाई देता था ।६। गजेन्द्र के आभोग वपु वाला—किसी स्थल पर केशरी के वर्चस से युक्त—सहस्रों ऋक्षों से युक्त-समृद्ध अम्बुद के समान गर्जन वाला—दीप्त-आकाशमें गमन करने वाला—पर रथारुज वह अतीव दिव्य रथा था । जिस तरहसे अंशुमान् अंशुमान दीप्त मेरु पर अधिरोहण किया करता है कि ठीक उसी भाँति वह रण की आकांक्षा रखने वाला मय दानव उस अपने पूर्वोक्त प्रकार के रथ पर अधिष्ठित हुआ था ।७-८।

तारमुत्क्रोशविस्तारं पूर्णं हेममयं रथम् ।
शैलाकारमसम्बाधं नीलाञ्जनचयोपमम् ।९

कार्ष्णायासमयं दिव्यं लोहेषाबद्धकूबरम् ।
तिमिरोद्गारिकिरणं गर्जन्तमिव तोयदम् ।१०

लोहजालेन महता सगवाक्षेण दंशितम् ।
आयसैः परिघैः पूर्णं क्षेपणायैश्च मुद्गरैः ।११
प्रासैः पाशैश्च विततैर्नरसंयुक्तकण्टकैः ।
शोभितं त्रासयानैश्च तोमरैश्च परश्वधैः ।१२
उद्यन्तं द्विषतां हेतोर्द्वितीयमिव मन्दरम् ।
युक्तं खरसहस्रेण सोऽध्यारोहद्रथोत्तमम् ।१३
विरोचनस्तु संक्रुद्धो गदापाणिरवस्थितः ।
प्रमुखे तस्य सैन्यस्य दीप्तग्रह इवाचलः ।१४

तार का रथ उत्क्रोश के विस्तार वाला था और वह सम्पूर्ण रथ हेम से परिपूर्ण था वह रथ शैल के समान आकार वाला—बाधाओं से रहित—नील अञ्जन के निश्चय की उपमा वाला—काले लोह के पूर्ण दिव्य-लोहेषा से बद्ध कूबर वाला—तिमिर के उद्गरण करने वाली किरणों से संयुत—गर्जना करने वाले तोयद के सदृश-गवाक्ष से युक्त महान् हेम जाल दंशित—आयस परिघों से तथा क्षेपणीय और मुद्गरों से पूर्ण—प्रासों पाशों और वितत नर संयुक्त कंटकों से शोभित-त्रास यानों, तोमरों और परश्वधों से शोभा सम्पन्न—सद्वष पुरुषों के कारण ही उदीयमान दूसरे मन्दर के ही समान वह रथ था। सहस्र खरों से संयुक्त वह उत्तम रथ था जिस पर उस दानव ने अध्यारोहण किया था ।९-१३। विरोचन तो भली भाँति क्रुद्ध होता हुआ अपने हाथ में गदा उठाकर उसकी सेना के सामने दीप्त ग्रहों वाले तचल के समान अव-स्थित होगया था ।१४।

युक्तं रथसहस्रेण हयग्रीवस्तु दानवः ।
स्यन्दनं वाहयामास सपत्नानीकमर्दनः ।१५

व्यायतं किष्कुसाहस्रं धनुर्विस्फारयन्महत् ।
वाराहः प्रमुखे तस्थौ सप्ररोह इवाचलः ।१६

खरस्तु विक्षरन्दर्पान्नेत्राभ्यां रोषजं जलम् ।
स्फुरद्दन्तोष्ठनयनं संग्रामं सोऽभ्यकाङ्क्षत ।१७

त्वष्टा त्वष्टगजं घोरं यानमास्थाय दानवः ।
व्यूहितुं दानवव्यूहं परिचक्राम वीर्यवान् ।१८

विप्रचित्तिवपुश्चैव श्वेतकुण्डलभूषणः ।
श्वेतः श्वेतप्रतीकाशो युद्धस्याभिमुखे स्थितः ।१९

अरिष्ठोबलिपुत्रश्च वरिष्ठाद्रिशिलायुधः ।
युद्धायाभिमुखस्तस्थौ धराधरविकम्पनः ।२०

किशोरस्त्वभिसंघर्षात् किशोर इति चोदितः ।

सबला दानवाश्चैव सन्नह्यन्ते यथाक्रमम् ।२१

शत्रुओं की सेना का मर्दन करने वाले हयग्रीव नाम वाले दानव ने एक सहस्र रथों से युक्त अपने स्यन्दन (रथ) को वाहित किया था ।१५। एक सहस्र किष्कुओं से समन्वित—व्यायत महान् धनुष को विस्फारित करता हुआ वाराह संमुख में प्ररोह से संयुक्त एक अचलकी भाँति समवस्थित हो गया था ।१६। खर नामधारी दानव घमन्ड से अपने नेत्रों के द्वारा रोष से समुत्पन्न जल को विक्षरित कर रहा था और वह भी जिसके दाँत—ओष्ठ और नेत्र फड़क रहे थे संग्राम करने का आकांक्षा कर रहा था ।१७। त्वष्टा नामवाला दानव आठ हाथियों वाले परम घोर यान में समास्थित होकर वीर्य वाला वह दानवों के व्यूह की भली भाँति व्यूहित करने के लिए चारों ओर घूम रहा था ।१८। श्वेत वर्ण के कुण्डलों से विभूषित विप्रचित वपु वाला श्वेत प्रतीकाश श्वेत युद्ध करने के लिए अभिमुख में समवस्थित होगया था ।१९ बड़े बड़े पर्वतोंको भी कम्पितकर देने वाला–वरिष्ठ पर्वत की शिखाओं के आयुधों से समन्वित होकर अरिष्ठ और बलि का पुत्र संग्राम करने के लिए सामने स्थित हो गया था ।२०। अभिसंघर्ष से किशोर और किशोर इसी नाम से प्रेरित होने वाला था । इस प्रकार से अपने-अपने बलों के सहित दानव गण यथा क्रम युद्ध के लिए सन्नद्ध हो रहे थे ।२१।

अभवद्दैत्यसैन्यस्य मध्ये रविरिबोदितः ।
लम्बस्तु नवमेघाभः प्रलम्बावरभूषणः ।२२
दैत्यव्यूहगतो भाति सनीहार इवांशुमान् ।
स्वर्भानुरास्ययोधी तु दशनौष्ठेक्षणायुधः ।२३
हसंस्तिष्ठति दैत्यानां प्रमुखे स महाग्रहः ।
अन्ये हयगतास्तत्र गजस्कन्धगताः परे ।२४
सिंहव्याघ्रगतश्चान्ये वराहर्क्षेषु चापरे ।

केचित् खरोष्ट्र्यातार: केचिच्छ्वापदवाहना: ।२५
पतिनस्त्वपरे दैत्या भीषणा विकृताननाः ।
एकपादार्द्धपादाश्च ननृतुर्युद्धकाङ्क्षिण: ।२६
आस्फोटयन्तो बसव: क्ष्वेडन्तश्च तथापरे ।
हृष्टशार्दूलनिर्घोषं नेदुर्दानवपुङ्गवा: ।२७
ते गदापरिघैरुग्रा: शिलामुसलपाणय: ।
बाहुभि: परिघाकारैस्तर्जयन्तिस्म देवता: ।२८

दैत्यों की सेना के मध्य में प्रलम्ब अम्बर और भूषणों से संयुत-नूतन मेघ की आभा के तुल्य आभा वाला लम्ब नाम वाला दैत्यसूर्यके समान उदित हो गया था ।२२। दैत्यों के व्यूह में प्राप्त होने वाला-आस्ययोधी–दाँत ओष्ठ, नेत्र और आयुधों वाला स्वर्भानुनी हारसे युक्त अशुमान् के समान शोभित हो रहा था ।२३। वह महान् ग्रह दैत्यों के समक्ष में हँसता हुआ स्थित था । वहाँ पर अन्य हयोंपर स्थित थे और दूसरे गजों के स्कन्धों पर समवस्थित थे ।२४। कुल सिंहों तथा व्याघ्रों पर सवार थे और दूसरे वराह एवं ऋक्षों पर अधिरूढ़ थे । कुछ लोग खरों तथा उष्ट्रोंके द्वारा गमम करने वाले और कुछ श्वपादों के वाहनों वाले थे ।२५। अन्य सेनापति दैत्य परम भीषण और विकृत मुखों वाले थे । कुछ एक पैर वाले कोई आधे पैरों वाले थे जो युद्ध करने की इच्छा से युक्त होकर नृत्य कर रहे थे ।२६। बहुत से आस्फोटन कर रह थे—दूसरे क्ष्वेड़न करने वाले थें । प्रसन्न शार्दूल के समान गर्जन की ध्वनि करने वाले दानव श्रेष्ठ निर्घोष कर रहे थे ।२७। वे सब शिलाएँ और मूसल हाथोंमें लिए हुए अत्यन्त उग्रगदा और परिघों के द्वारा तथा परिघों के आकार वाले बाहुओं के द्वारा देवगणों की तर्जनाएँ (फटकारें) दे रहे थे ।२८।

पाशै: प्रासैश्च परिघैस्तोमरांकुशपट्टिशै: ।
चिक्रीडुस्ते शातघ्नीभि: शतधारैश्च मुद्गरै: ।२९

गण्डशैलैश्च शैलैश्च परिघैश्चोत्तमायसैः ।
शक्रैश्च दैत्यप्रवराश्चक्रुरानन्दितं बलम् ।३०
एतद्दानवसैन्यं तत्सर्वं युद्धमदोत्कटम् ।
देवानभिमुखे तस्थौ मेघानीकमिवोद्धतम् ।३१
तदद्भुतं दैत्यसहस्रगाढं वाय्वग्निशैलाम्बुदतोयकल्पम् ।
बल रणौघाभ्युदयेऽभ्युदीर्णं युयुत्सयोन्मत्तमिवावभासे ।३२

वे दानव गणों पाशों—प्राशों परिघों—तोमर—अंकुश और पट्टिशों—शतध्नी—शतधार और मुद्गरों से क्रीड़ा कर रहे थे ।२९। वे दैत्यों में प्रवर मण्डशैलों—शैलों—उत्तम आयस वाले परिघों और चक्रों के द्वारा अपने बल को आनन्द से युक्त बना रहे थे ।३०। युद्ध करने के मद मे अत्यन्त उत्कट यह सम्पूर्ण दानवों की सेना उद्धत मेघों की अनीक के समान देवों के अभिमुख में स्थित थी ।३१। वह अति अद्भुत—सहस्रों दैत्यों से अत्यन्त गहन—वायु अग्नि, शैल और अम्बुद तोय के तुल्य दानवों का बल (सेना) रथों के समूह के अभ्युदय में अभ्युदीर्ण युद्ध करने की इच्छा से उन्मत्त के समान अवभासित हो रहा था ।३२।

६७—सुरसैन्य विस्तार वर्णन

श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्य विस्तरो रविनन्दन ! ।
सुराणामपि सैन्यस्य विस्तरं वैष्णवं शृणु ।१
आदित्या वसवोरुद्रा अश्विनौ च महाबलौ ।
सबलाः सानुगाश्चैव सन्नह्यन्त यथाक्रमम् ।२
पुरुहूतस्तु पुरतो लोकपालाः सहस्रदृक् ।
ग्रामणीः सर्वदेवानामारुह्योहसुरद्विषम् ।३

मध्ये चास्य रथः सर्वपक्षिप्रवररंहसः ।
सुचारुचक्रचरणो हेमवज्रपरिष्कृतः ।४
देवगन्धर्वयक्षौघैरनुयातः सहस्रशः ।
दीप्तिमद्भिः सदस्यैश्च ब्रह्मर्षिभिरभिष्टुतः ।५
वज्रविस्फूर्जितोद्भुतैर्विद्यु दिन्द्रायुधादितैः ।
युक्तो बलाहकगणैः पर्वतैरिव कामगैः ।६
यमारूढ़ः स भगवान् पर्येति सकलं जगत् ।
हविर्धानेषु गायन्ति विप्रा मखमुखे स्थिताः ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे रविनन्दन ! तुमने दैत्यों की सेना के विस्तार का वर्णन श्रवण गत कर लिया है । अब सुरगणों की सेना का भी वैष्णव विस्तार श्रवण करलो । द्वादश आदित्य—आठ वसुगण एकादश रुद्र—महान् बल सम्पन्न अश्विनीकुमार ये सब बलों और अनुगामियों के सहित क्रम के अनुसार ही सन्नद्ध हो गये थे ।१-२। समक्ष में सहस्र नेत्रों वाले इन्द्रदेव-समस्त लोकपाल-सब देवों की ग्रामणी सुरों के शत्रु पर समारोहण करने वाले हो गये थे ।३। मध्य में समस्त पक्षियों में श्रेष्ठ (गरुड़)के वेग वाले इनका सुचारु (सुन्दर चक्र) चरणों वाला हेम और वज्र से परिष्कृत रथ था ।४। उस रथ के पीछे सहस्रों देव-गन्धर्व और यक्षों समुदाय अनुगमन करने वाले थे तथा वे दीप्तिमान सदस्यों के द्वारा और ब्रह्मर्षियों के द्वारा अभिष्टुत हो रहे थे ।५। वज्र के तुल्य विस्फूर्जित एवं अद्भुत—विद्यु त और इन्द्रायुधों से समुदित स्वेच्छया गमन करने वाले पर्वतों के समान बलाहकों के गणों से युक्त थे ।६। जिस रथ पर वह भगवान् समारूढ़ थे वह रथ समस्त जगत में परिगमन करता था और यज्ञशालाओं में समवस्थित विप्रगण हविर्धानों में गायन किया करते थे ।७।

स्वर्गे शक्रानुयातेषु देवतूर्यनिनादिषु ।
सुन्दर्यः परिनृत्यन्ति शतशोऽप्सरसाङ्गणे ।८

तीन वृत्तियाँ होती हैं। हम जो वनाश्रम निवासी हैं उनकी यही वृत्ति परम श्रेष्ठ है।३१-३४।

अब्भक्षा वायुभक्षाश्च दन्तोलूखलिनस्तथा।
अश्मकुट्टा दश तथा पञ्चातपसहाश्च ते।३५
एते तपसि तिष्ठन्ति व्रतैरपि सुदुष्करैः।
ब्रह्मचर्यं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्ति पराङ्गतिम्।३६
ब्रह्मचर्याद् ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते।
एवमाहुः परे लोके ब्रह्मचर्यविदोजनाः।३७
ब्रह्मचर्ये स्थितं धैर्यं ब्रह्मचर्ये स्थितं तपः।
ये स्थिता ब्रह्मचर्येषु ब्रह्मणा दिवि संस्थिता।३८
नास्ति योगं बिना सिद्धिर्न वा सिद्धि बिना यशः।
नास्ति लोके यशोः मूलं ब्रह्मचर्यात् परन्तपः।३९
यो निगृह्येन्द्रियग्रामं भूतग्रामं च पञ्चकम्।
ब्रह्मचर्यं समाधत्ते किमतः परमं तपः।४०
अयोगे केशधरणमसङ्कल्पव्रतक्रिया।
अब्रह्मचर्ये चर्या च त्रयं स्याद् दम्भसंज्ञकम्।४१
क्व दाराः क्व च संयोगः क्व च भावविपर्ययः।
नन्वियं ब्रह्मणा सृष्टा मनसा मानसी प्रजा।४२

जल के भक्षण करने वाले—वायु के भक्षण करने वाले तथा दन्तोलूखली—दश चश्म कुट्ट और जो पाँच आतपों के सहन करने वाले हैं ये तप में आस्थित रहा करते हैं और जो परम दुष्कर व्रतों के द्वारा ब्रह्मचर्य का पूर्ण परिपालन करके परागति की प्रार्थना किया करते हैं।३५-३६। परलोक में भी ब्रह्मचर्या के महान् महत्व के ज्ञाता लोग इसी प्रकार से कहा करते हैं कि ब्रह्मचर्या से ही ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व स्थित रहा करता है।३७। इस ब्रह्मचर्या में ही धैर्य की स्थिति रहा करती है और इस ब्रह्मचर्या से ही तप स्थित रहता है। जो ब्राह्मण अपने पूर्ण

ब्रह्मचर्य व्रत में टिके हुए हैं वे दिवलोक में संस्थिति रक्खा करते हैं। ।३८। योग के बिना कोई भी सिद्धि नहीं हुआ करती है और जब कोई सिद्धि नहीं होती है यश भी लोक में नही हुआ करता है तथा लोक में यश का मूल नहीं है और ब्रह्मचर्य से अधिक कोई भी तप नहीं होता है ।३९। जो कोई भी पुरुष अपनी इन्द्रियों के समूह को पाँचों भूत ग्रामों को निग्रहीत करके ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्ण पालन किया करता है फिर इससे अधिक अन्य क्या तप हो सकता है । यही सबसे परमश्रेष्ठ तम होता है ।४०। अयोग में केशों का धारण करना—बिना ही किसी सङ्कल्प के व्रतों की क्रिया का सम्पादन करना और अब्रह्मचर्य ने अपनी चर्या रखना ये तीनों कर्म दम्भ की संज्ञा वाले ही कहे गये हैं ।४१। कहाँ तो दारा का संयोग हुआथा और कहाँ भावों का विपर्यय ही हुआ था अर्थात् दारा-संयोग और भावों की विपरीतता ये तीनों ही बातों का बिल्कुल अभाव था तो भी ब्रह्मा के द्वारा मन से ही इस मानसी प्रजा का सृजन किया गया था ।४२।

यद्यस्ति तपसो वीर्यं युष्माकं विदितात्मनाम् ।
सृजध्वं मानसान् पुत्रान् प्राजापत्येन कर्मणा ।४३
मनसा निर्मिता योनिराधातव्या तपस्विभिः ।
न दारयोगो बीजं वा व्रतमुक्तं तपस्विनाम् ।४४
यदिदं लुप्तधर्मार्थं युष्माभिरिह निर्भयैः ।
व्याहृतं सद्भिरत्यर्थमसद्भिरिव मे मतम् ।४५
वपुर्दीप्तान्तरात्मानमेतत् कृत्वा मनोमयम् ।
दारयोगं विना स्रक्ष्ये पुत्रमात्मतनूरुहम् ।४६
एवमात्मानमात्मा मे द्वितीयं जनयिष्यति ।
वन्येनानेन विधिना दिधिक्षन्तमिव प्रजाः ।४७
और्वस्तु तपसाविष्टो निवेश्योरुं हुताशने ।
ममन्थैकेन दर्भेण सुतस्तं प्रभवारिम् ।४८
तस्योरुं सहसा भित्वा ज्वालामाली ह्यनिन्धनः ।४९

यदि आत्मा के ज्ञान को जानने वाले आप लोगों में कुछ भी तप का वीर्य विद्यमान हैं तो आप प्राजापत्य कर्म के द्वारा मानस पुत्रों का सृजन करिए ।४३। मनके द्वारा ही निर्मित की हुई योनि ही तपस्वियों को आधान करनी चाहिए । दारा के साथ योग करना तथा बीज का प्रयोग करना तपस्वियों का व्रत नहीं बताया गया है ।४४। यहाँ पर आप लोगों ने जो भी निर्भय होकर इस लुप्त धर्म और अर्थ से युक्त वचन को कह डाला है । यद्यपि आप लोक सत्पुरुष है जिन्होंने इसको यहाँ पर प्रतिपादन किया है तो भी वह मुझको असत्पुरुष के कथन के समान ही प्रतीत होता है मैं इस दीप्त अन्तरात्मा वाले वपु को मनोमय करके दारा के योग के बिना भी आत्म तनूरुह पुत्र का सृजन करूंगा । इसी प्रकार से यह मेरी आत्माको जन्म ग्रहण करायेगी और इसी बन्य विधि के द्वारा प्रजा की भाँति ही जलाने वाली हो जायेगी । उस और्व ने तप से समाविष्ट होकर अपने उरुको हुताशन में निवेशित कर लिया था और एक धर्म में उनकी दर्भारणि का मंथन किया था । ।४५-४८। उसके अरु का सहसा भेदन करके विना ही ईंधन वाला ज्वालामाली और इस जगत् को अन्त कर देने की आकांक्षा वाला अग्नि पुत्र समुत्पन्न हुआ था ।४९।

ऊर्वस्योरुं विनिभिद्यऔर्वा नामान्तकोऽनलः ।
दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीञ्जज्ञेपरमकोपनः ।५०
उत्पन्नमात्रश्चोवाच पितरं श्लक्ष्णया गिरा ।
क्षुधा मे बाधते तात ! जगद्भक्ष्ये त्यजस्वमाम् ।५१
त्रिदिवारोहिभिर्ज्वालजृम्भमाणो दिशो दश ।
निर्दयन् सर्वभूतानि ववृधे सोऽन्तकोऽनलः ।५२
एतस्मिन्नंतरे ब्रह्मा मुनिमूर्वं सभाजयन् ।
उवाच वार्यतां पुत्रो जगतश्च दयांकुरु ।५३

अस्यापत्यस्य ते विप्र ! करिष्ये स्थानमुत्तमम् ।
तथ्यमेतद्वचः पुत्र ! शृणु त्वं वदताम्वरः ।५४
धन्यऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मेऽद्य भगवांच्छिशोः ।
मतिमेतां ददातीह परमानुग्रहायवै ।५५
प्रभातकाले संप्राप्ते काङ्क्षितव्ये समागमे ।
भगवन् ! तर्पितः पुत्रः कैर्हव्यैः प्राप्स्यते सुखम् ।५६
कुत्र चास्य निवासः स्याद्भोजनं वा किमात्मकम्
विधास्यतीह भगवान् वीर्यतुल्यं महौजसः ।५७

उस उर्व की ऊरु का विनिर्भेदन करने और्वा अन्त कर देने वाला परम कोप से समन्वित तीनों ल करता हुआ समुत्पन्न हुआ था। उत्पन्न होने के ही विनम्र वाणी में अपने पिता से प्रार्थना की थी कि हे क्षुधा अत्यन्त अधिकता के साथ सता रही है। मैं इ करूँगा आप मुझे अपनी क्षुधा के निवारण करने के लिए छुद् दीजिए ।५०-५१। त्रिदिव में समारोहण करने वाली ज्वालाओं से दश. दिशाओं में जृम्भमाण होता हुआ समस्त भूतों को दया से रहित होकर दलित करता हुआ गया था। इसी बीच में वह अन्तक अनल वृद्धि को प्राप्त हो गया था ब्रह्मा ने ऊर्व मुनि का सभाजन करते हुए उससे कहा था कि हे पुत्र ! इसका वारण करो तथा इस जगत् पर दया करो। ५४-५४। हे विप्र ! मैं आपकी इस सन्तति को समुचित स्थान स्थिर कर दूँगा। हे पुत्र ! बोलने वालों मे परम श्रेष्ठ आप मेरे अतीव तथ्य वचन का श्रवण करो ।५४। ऊर्व ने कहा—मैं परम धन्य और अतीव अनुगृहीत हूँ कि आज भगवान आपने इस समय में इस शिशु को ऐसी बुद्धि मुझ पर परम अनुग्रह करने के लिए प्रदान की है। प्रभात काल के सम्प्राप्त होने पर आपका समागम आकांक्षणीय हैं। हे भगवन् ! यह बतलाइए कि किन हव्यो से तर्पित हुआ मेरा पुत्र सुख प्राप्त करेगा। इसका निवास स्थल कहाँ पर होगा और इसके भोजन

का स्वरूप होगा? भगवान् आप इस महान् ओज वाले के वीर्य के तुल्य ही इन बातों की व्यवस्था कर देंगे ।४५-५७।

बडवामुखेऽस्य वसतिः समुद्रे वै भविष्यति ।
मम योनिर्जलं विप्र ! तस्य पीतवतः सुखम् ।५८
यत्राहमास नियतं पिबन् वारिमयं हविः ।
तद्धविस्तव पुत्रस्य विसृजाम्यालयञ्च तत् ।५९
ततो युगान्ते भूतनामेष चाहञ्च पुत्रक !
सहितौ विचरिष्यावो निष्पुत्राणामृणापहः ।६०
एषोऽग्निरन्तकाले ते सलिलाशी मया कृत ।
दहनः सर्वभूतानां सदेवासुररक्षसाम् ।६१
एवमस्त्वितितं सोऽग्निः संवृतज्वालमण्डलः ।
प्रविवेशार्णवमुखं प्रक्षिप्य पितरिप्रभाम् ।६२
प्रतियातस्ततो ब्रह्मा ये च सर्वे महर्षयः ।
ऊर्वस्याग्नेः प्रभां ज्ञात्वा स्वां स्वाकृतिमुपाश्रिताः ।६३

श्री ब्रह्माजी ने कहा—समुद्र में वड़बा के मुख में इसका निवास स्थल होगा। हे प्रिय ! मेरी उत्पत्ति की योनि जल पीने वाले इसको सुखकर होगी और जहाँ पर है वहींपर नियत रूप से वारिमय हविका पान करेगा तथा वह हवि आपके पुत्र के निमित्त लय काल पर्यन्त विसर्जित कर देता हूँ ।५८-५९। इसके पश्चात् हे पुत्र ! भूतों के युग के अन्त में यह आपका पुत्र और मैं दोनों एक साथ से मिलकर निष्पुत्रों के ऋण का अपहरण करने वाले विचरण करेंगे। इस अग्नि को अन्त काल में मैंने सलिल का अशन करने वाला कर लिया है जो समस्तभूतों का तथा देव-असुर और राक्षसों का दमन करने वाला होगा। ऐसा ही होवे—यह कहकर वह अग्नि संवृत ज्वालाओं के मण्डल वाला अपने पिता ऊर्व में प्रभा को प्रक्षिप्त करके अर्णव के मुख में प्रवेश कर गया था। इसके अनन्तर ब्रह्माजी तथा सब महर्षिगण प्रतिमान कर गयेथे।

ऊर्व की अग्नि की प्रभा को जानकर सब अपनी गति का उपाश्रय कर गये थे ।६०-६३।

हिरण्यकशिपुर्दृष्ट्वा तदा तन्महदद्भुतम् ।
उच्चैः प्रणतसर्वाङ्गो वाक्यमेतदुवाच ह ।६४
भगवन्नद्भुतमिदं संवृत्तं लोकसाक्षिकम् ।
तपसा ते मुनिश्रेष्ठ ! परितुष्टः पितामहः ।६५
अहन्तु तव पुत्रस्य तव चैव महाव्रत ! ।
भृत्य इत्यवगन्तव्यः साध्यो यदिह कर्मणा ।६६
तन्मा पश्य समापन्नं तवाराधने रतम् ।
यदि सोदे मुनिश्रेष्ठ ! तवैव स्यात् पराजयः ।६७
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्यतेऽहं गुरुः स्थितः ।
नास्तिमे तपसानेन भयमद्येहसुव्रत ! ।६८
तामेव मायां गृह्णीष्व मम पुत्रेण निर्मिताम् ।
निरिन्धनामग्निमयीन्दुर्धर्ष पावकैरपि ।६९
एषा ते स्वस्य वंशस्य वशगारिविनिग्रहे ।
संरक्षत्यात्मपक्षञ्च विपक्षञ्च प्रधर्षति ।७०

उसी समय में उस महान् अद्भुत को हिरण्य कशिपु देखकर उच्च भाव से सब अङ्गों को प्रणत करने वा ा होकर यह वाक्य बोला था ।६४। हे मुनिश्रेष्ठ ! यह लोक का साक्षिक अद्भुत हो गया है। हे भगवन् ! आपकी तपश्चर्या से पितामह भी परितुष्ट हो गये हैं ।६५। हे महाव्रत ! मैं तो आपके पुत्र का और आपका भृत्य ही हूँ—ऐसा ही अवगमन कर लीजिए जो कि यहाँ पर कर्म के द्वारा साधना के योग्य है। इसलिए उस मुझको आपके ही समाराधन में समापन्न ही देखिये। हे मुनिश्रेष्ठ! यदि मैं आपका अनुगामी सेवक होकर भी दुःखित रहता हूँ तो यह आपका ही पराजय होगा। उर्व ने कहा—मैं परम धन्य हूँ और परम अनुगृहीत हूँ कि जिस तुझको मैं गुरु समवस्थित हो गया हूँ।

हे सुव्रत ! आज यहाँ पर मेरे इस तप से कोई भी भय नहीं है। मेरे पुत्र के द्वारा निर्मित उसी माया को ग्रहण करो जो बिना ईंधन वाली पावकों द्वारा भी दुर्धष और अग्निमयी है। यह तेरे अपने वंश में गमन करने वाले अरियों के विशेष निग्रह में अपने पक्ष की रक्षा करेगी और विपक्ष को प्रदर्षित करेगी ।६६-७०।

एवमस्त्विति तां गृह्य प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् ।
जगाम त्रिदिवं हृष्टः कृतार्थो दानवेश्वरः ।७१

एषा दुर्विषहा माया देवैरपि दुरासदा ।
और्वेण निर्मिता पूर्वं पावकेनोर्वसूनुना ।७२
तस्मिस्तु व्युत्थिते दैत्ये निर्वीर्येषा न संशयः ।
शापोह्यस्याः पुरा दत्तो सृष्टायेनैवतेजसा ।७३

यद्येषा प्रतिहन्तव्या कर्त्तव्यो भगवान् सुखी ।
दीयतां मे सखा शक्र ! तोययोनिर्निशाकरः ।७४
तेनाहं सह सङ्गम्य यादोभिश्च समावृतः ।
मायामेतां हनिष्यामि त्वत्प्रसादान्नसंशयः ।७५

ऐसाही होगा—ऐसा कहकर उसको ग्रहण किया था और फिर उस श्रेष्ठ मुनिको प्रणाम करके दानवेश्वर प्रसन्न एवं कृतार्थहोकर त्रिदिव को चला गया था ।७१। यह माया दुर्विषय है और देवगणों के द्वारा भी गुरासद है। इसको उर्व के पुत्र पावक और्व के द्वारा पूर्व में निर्माण किया गया था ।७२। उस दैत्व के व्यत्थित होने पर यह निर्वीर्य हो जाया करती है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। जिस-जिस तेज के द्वारा इसका सृजन किया गया था उसीके द्वारा पहिले इसको शाप भी दिया गया है। यदि यह माया प्रतिहनन के योग्य करनी है तो भगवान को सुख से सम्पन्न एवं प्रसन्न करना चाहिए। हे इन्द्रदेव ! अतएव तोयकी योनि निशाकर मेरा सखा दे दो ।७३-७४। उसके साथ मैं संगत होकर

और बादव गणों से समवृत होकर आपकी कृपा एवं प्रसाद से उस माया का मैं हनन कर दूंगा—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ।७५।

=×=

६९—देवासुर संग्राम वर्णन (२)

एवमस्त्विति संहृष्टः शक्रस्त्रिदशवर्धनः ।
सन्दिदेशाग्रतः सोमं युद्धाय शिशिरायुधम् ।१
गच्छ सोम ! सहायं त्वं कुरु पाशधरस्य वै ।
असुराणां विनाशाय जयार्थञ्चदिवौकसाम् ।२
त्वं मत्तः प्रतिवीर्यश्च ज्योतिषश्चेश्वरेश्वरः ।
त्वन्मयं सर्वलोकेषु रसं रसविदो विदुः ।३
क्षयवृद्धी तव व्यक्ते सागरस्येव मण्डले ।
परिवर्त्तस्यहोरात्रं कालं जगति योजयन् ।४
लोकच्छायामयः लक्ष्म तवाङ्कः शशसन्निभः ।
न विदः सोमदेवोपि ये च नक्षत्रयोनयः ।५
त्वमादित्यपथादूर्ध्वं ज्योतिषां चोपरि स्थितः ।
तमः प्रोत्सार्यं सहसा भासयस्यखिलं जगत् ।६
अधिकृत्कालयोगात्मा इष्टोयज्ञस्यसोऽव्ययः ।
औषधीशः क्रियायोनिरब्जयोनिरनुष्णभाः ।७

श्री मत्स्य भगवान ने कहा—ऐसा ही होवेगा—यह कहकर परम प्रहर्षित और देवों की वृद्धि करने वाले इन्द्र ने सोम के समक्ष में युद्ध करने के लिए शिशिर आयुद्ध के प्रयुक्त करने का सन्देश दे दिया था और सोम से उसने कहा था कि हे सोम ! तुम तुरन्त ही चले आओ और पाशधारी वरुण देव की युद्ध में सहायता करो यह इस प्रकार से तुम्हारा इस समयमें वरुणका सहायक होना असुरों के विनाश के लिए

तथा देवगणों की विजय प्राप्त करने के लिए ही होगा ।१-२। हे सोम! आप मत्त है और मुकाबले के प्रतिवीर्य विक्रम वाले हैं तथा आप समस्त ज्योतियों के ईश्वरों के भी ईश्वर हैं । रसों के वेत्ता लोग सब लोकों में आप से परिपूर्ण रस को भली भाँति कहा करते एवं जानते हैं ।३। मण्डल में सागर की ही भाँति आपकी क्षीणता तथा वृद्धि स्पष्ट है और जगत् में अहोरात्र के काल को योजित करते हुए आप परिवर्तित हुआ करते हैं । आपका यह शश के सदृश जो अङ्क के चिन्ह हैं यह लोकों की इच्छा से ही परिपूर्ण है और इसको नक्षत्रों की योनि वाले जो देवगण भी हैं वे भी हे सोम ! नहीं जानते हैं ।४-५। आप आदित्य के पथ से भी ऊपर सब ज्योतियों के उर्ध्वभाग में समवस्थित हैं । आप सहसा इस तम को प्रोत्साहित करके सम्पूर्ण जगत् को अपने सुन्दर प्रकाश से भासित कर दिया करते हैं ।६। आप अधिकृत कालयोग के स्वरूप वाले—यज्ञ के अभीष्ट और अविनाशी हैं । आप औषधियों के स्वामी—सब क्रियाओं की योनि अब्ज योनि और शीतल दीप्ति से समन्वित हैं ।७।

शीतांशरमृताधारश्चपल: श्वेतवाहन: ।
त्वं कान्ति: कान्तिवपुषात्वं सोम:सोमपायिनाम् ।८
सौम्यस्त्वं सर्वभूतानां तिमिरघ्नस्त्वमृक्षराट् ।
तद्गच्छ त्वं महासेन ! वरुणेन वरूथिना ।
शमयत्वासुरीं मायां यया दह्याम संयुगे ।९
यन्मा वदसि युद्धार्थे देवराज ! वरप्रद ! ।
एवं वर्षामि शिशिरन्दैत्यमायापकर्षणम् ।१०
एतान् मच्छीतनिर्दग्धान् पश्य स्वहितमवेष्टितान् ।
विमायान् विमदांश्चैव दैत्यसिंहान्महाहवे ।११
तेषां हिमकरोत्सृष्टा: सपाशा हिमवृष्टय: ।
वेष्टयन्तिस्म तान् घोरान्दैत्यान्मेघगणाइव ।१२

तौ पाशशीतांशुधरौ वरुणेन्दू महाबलौ ।
जघ्नतुर्हिमपातैश्च पाशपातैश्च दानवान् ।१३

द्वावम्बुनाथौ समरे तौ पाशहिमयोधिनौ ।
मृधे चेरतुरम्भोभिः क्षुब्धाविव महार्णवौ ।१४

हे सोम ! आप शीतल किरणों वाले—अमृत के आधार—चपल श्वेत वाहन हैं। आप इस अपने कान्तिपूर्ण शरीर के द्वारा स्वयं ही कान्ति हैं और सोम के पान करने वालों के लिए साक्षात् सोम स्वरूप वाले हैं। आप समस्त भूतों के लिए परम सौम्य हैं तथा सब ऋक्षों के राजा और तिमिरके नाश करने वाले हैं। इसलिए हे महासेन ! वरूथी वरुण के साथ सहायता करने के लिए आप शीघ्र ही चले जाइए तथा जिससे हम सब युद्ध में दग्ध हुए जा रहे हैं उस इस आसुरी माया का शमन कीजिए ।८-९। इन्द्रदेव के इस प्रकार से प्रार्थना करने पर सोम ने कहा—हे देवराज ! हे वर प्रदान करने वाले देव ! जो आप युद्ध करने के लिए मुझे कह रहे हैं। मैं अभी दैत्यों की माया के आकर्षण करने वाले शिशिर की वर्षा करता हूँ। आप इन सबको मेरे हिम से संवेष्टित और मेरे शीत से निर्दग्ध देखिए। इस महायुद्ध में इन सब दैत्य सिंहों को मद और माया से रहित हुए ही आप देखेंगे ।१०-११। उनको हिमकिरणों से समुत्सृष्ट पाशों के सहित हिम की वृष्टियों में घोर दैत्यों को मेघ गणों की ही भाँति वेष्टित कर दिया था ।१२। महान् बलवान पाश और शीतल किरणों को धारण करने वाले वरुण और चन्द्र दोनों ने उन दानवों का हिम के पातों तथा पाशों के पातोंके हनन कर दिया था ।१३। वे दोनों अम्बुके स्वामी—पाश और हिम से युद्ध करने वाले उस महान घोर रण में जलों से क्षुब्ध दो महार्णवों की भाँति ही विचरण कर रहे थे ।१४।

ताभ्यामाप्लावितं सैन्यं तद्दानमदृश्यत ।
जगत् संवर्तकाम्भोदैः प्रविष्टैरिवसंवृतम् ।१५

तावुद्यताम्बुनाथौ तु शशांकवरुणावुभौ ।
शमयामासतुर्मायां देवौ दैत्येन्द्रनिर्मिताम् ।१६
शीतांशुजालनिर्दग्धाः पाशैश्च स्पन्दिता रणे ।
न शेकुश्चलितुं दैत्या विशिरस्का इवाद्रयः ।१७
शीतांशुनिहतास्ते ते दैत्यास्तोयहिमार्दिताः ।
हिमाप्लावितसर्वाङ्गा निरूष्माण इवाग्नयः ।१८
तेषान्तु दिवि दैत्यानां विपरीतप्रभाणि वै ।
विमानानि विचित्राणि प्रपतन्त्युत्पतन्तिच ।१९
तान् पाशहस्तग्रथितांश्छादितांश्छीतरश्मिभिः ।
मयोददर्शमायावी दानवान्दिविदानवः ।२०

उन दिनों में आप्लावित दानवों की सेना उस समय में दिखलाई नहीं दे रही थी और यह सम्पूर्ण जगत् प्रविष्ट हुए सम्वर्त्तक अम्भोदों के द्वारा संवृत की तरह ही हो गया था ।१५। उन समुद्यत हुए शशांक और वरुण दोनों अम्बुनाथों ने देवों ने दैत्यों के द्वारा निर्माण की हुई उस माया का एकदम शमन कर दिया था । शीतांशुओं के जाल से निर्दग्ध हुए तथा पाशों से रणस्थल में स्पन्दित हुए सब दैत्यगण बिना शिर वाले पर्वतों के समान ही चलने में असमर्थ हो गए थे ।१६-१७। शीत किरणों से निहत हुए तथा जल और हिम से अर्दित तथा हिम से प्लावित समस्त अङ्गों वाले सब दैत्यगण बिना ऊष्मा (ताप) वाली अग्नियों के ही तुल्य हो गये थे ।१८। दिवलोक में उन दैत्यों के विपरीत प्रभावाले विचित्र विमान ऊपर उड़ते थे और नीचे भूमि पर गिर जाया करते थे । उस समय में दिवलोक में मायावी दानव मय ने उन सब दानवों को पाशहस्त ग्रथित और शीत रश्मियों से समाच्छादित देखा था ।१९-२०।

स शिलाजालवितता खड्गचर्माट्टहासिनीम् ।
पादपोत्कटकूटाग्रां कन्दराकीर्णकाननाम् ।२१

सिंहव्याघ्रगणाकीर्णां नदद्भिर्गजयूथपैः ।
ईहामृगगणाकीर्णां पवनाघूर्णितद्रुमाम् ।२२
निर्मितां स्वेन यत्नेन कूजितां दिवि कामगाम् ।
प्रथितां पार्वतीं मायामसृजत्समन्ततः ।२३
सासिशब्दैः शिलावर्षैः सम्पतद्भिश्च पादपैः ।
जघान देवसङ्घांश्च दानवांश्चाप्यजीवयत् ।२४
नैशाकरी वारुणी च मायेऽन्तर्दधतुस्ततः ।
असिभिश्चायसगणैः किरन् देवगणान् रणे ।२५
साश्मयन्त्रायुधघना द्रुमपर्वतसङ्कटा ।
अभवत् घोरसञ्चार्या पृथिवी पर्वतैरिव ।२६
अश्मना प्रहताः केचित् शिलाभिः शकलीकृताः ।
नानिरुद्धो द्रुमगणैर्देवोऽदृश्यत कश्चनः ।२७
तदपध्वस्तधनुषं भग्नप्रहरणविलम् ।
निष्प्रयत्नं सुरानीकं वर्जयित्वा गदाधरम् ।२८

उस समय में उस मय दानव ने शिला के जालों से वितत-खंग चर्मों के अट्टहास वाली—पादपों के उत्कट कूटों के अग्रभाग वाली—कन्दराओं से समाकीर्ण, कानों से युक्त—सिंह एवं व्याघ्रों के गुणों से संकुल-चिघाड़ते हुए गजों के यूथों से समन्वित-ईहामृग गणों से आकीर्ण पवन से आघूर्णित द्रुमों वाली-दिवलोक में स्वेच्छया गमन करने वाली कूजित और अपने ही यत्न से निर्माण की हुई परम प्रथित पार्वती माया को चारों ओर सृजित कर दिया था। उसने असि के शब्दों से और सम्पात करने वाले पादपों से देवों के संघों का हनन कर दिया था तथा दानवों को जीवित कर दिया था। उस पार्वती माया में नैशाकरी और वारुणी दोनों मायाएँ अन्तर्हित हो गई थीं और देवगणों को असि तथा आयस गणों से रण में तितर-बितर कर दिया था। ।२१-२५। अश्म यन्त्र और आयुधों से धन—द्रुम और पर्वतों के संकट

वाली वह माया पर्वतों से युक्त पृथिवी के समान अति घोर संचरण के योग्य हो गई थी ।२६। कुछ पाषाणों से प्रहत हुएथे और कुछ शिलाओं से खण्ड-२ कर दिये गये थे और द्रुमगणों से अनिरुद्ध कोई भी देवता दिखाई नहीं दे रहा था । भगवान गदाधर को वर्जित करके संपूर्ण सुरों की सेना अपध्वस्त धनुषों वाली भग्न प्रहरणों से आविल (मलिन) और प्रयत्न रहित बन गई थी ।२७।

स हि युद्धगत: श्रीमानीशानोऽश्मभिरकम्पत ।
सहिष्णुत्वाज्जगत्स्वामी न चुक्रोधगदाधर: ।२९
कालज्ञ: कालमेघाभ: समीक्षन् कालमाहवे ।
देवासुरविमर्दन्तु द्रष्टुकामस्तदा हरि: ।३०
ततो भगवता दृष्टौ रणे पावकमारुतौ ।
चोदितौ विष्णुवाक्येन तौ मायामपकर्षताम् ।३१
ताभ्यामुद्भ्रान्तवेगाभ्यां प्रवृद्धाभ्यां महाहवे ।
दग्धा सा पार्वती माया भस्मीभूता ननाश ह ।३२
सोऽनिलोऽनलसंयुक्त: सोऽनलश्चानिलाकुल: ।
दैत्यसेनान्ददहतुर्युगान्तेष्विवमूर्च्छितौ ।३३
वायु: प्रधावितस्तत्र पश्चादग्निस्तु मारुतम् ।
चेरतुर्दानवानीके क्रीडन्तावनिलानलौ ।३४

उस समय में युद्ध में गमन करने वाले श्रीमान् ईशान पाषाणों से कम्पित हो गए थे किन्तु जगत् के स्वामी भगवान गदाधर ने सहिष्णुता के गुण होने के कारण से क्रोध नहीं किया था । काल के ज्ञाता कालमेघ के तुल्य आभा वाले हरि ने उस समय में उस युद्ध में कालको देखते हुए वह देवासुरों के विमर्दको देखनेकी कामना वाले हो गये थे । इसके उपरान्त भगवान् ने उस रण में पावक और मारुत को देखा था और वे दोनों विष्णु के वाक्यसे प्रेरित होकर उस माया का अपकर्षण

करने वाले हुए थे। उस महायुद्ध में उद्भ्रान्त वेगों वाले और प्रवृद्ध उन दोनों के द्वारा वह पार्वती माया दग्ध तथा भस्मीभूत होकर नष्ट होकर नष्ट हो गई थी।२९-३२। वह अनिल (वायु) अनल (पावक)से संयुक्त और वह अग्नि वायु से समाकुल होकर इन दोनों ने युग के अन्त मे मूछित होने के समान दैत्यों की सेना का दहन कर दिया था।३३। वहाँ पर वायु प्रधावित हुआ था और पीछे से अग्नि वायु के अनुसार ही धावमान हुआ था। इस तरह से अनिल और अनल दोनों दानवों की सेना में क्रीड़ा करते हुए चरण करते थे।३४।

भस्मावयवभूतेषु प्रपतत्सूत्पतत्सु च।
दानवानां विमानेषु निपतत्सु समन्ततः।३५
वातस्कन्धापविद्धेषु कृतकर्म्मणि पावके।
मया वधे निवृत्ते तु स्तूयमाने गदाधरे।३६
निष्प्रयत्नेषु दैत्येषु त्रैलोक्ये मुक्तबन्धने।
संप्रहृष्टेषु देवेषु साधु साध्विति सर्वशः।३७
जये दशशताक्षस्य दैत्यानाञ्च पराजये।
दिक्षु सर्वासु प्रवृत्ते धर्म्मविस्तरे।३८
अपावृते चन्द्रमसि स्वस्थानस्ते दिवाकरे।
प्रकृतिस्थेषु लोकेषु त्रिषु चारित्रबन्धुषु।३९
यजमानेषु भूतेषु प्रशान्तेषु च पाप्मसु।
अभिन्नबन्धने मृत्यौ हूयमाने हुताशने।४०
यज्ञशोभिषु देवेषु स्वर्गार्थं दर्शयत्सु च।
लोकपालेषु सर्वेषु दिक्षु संयानवर्तिषु।४१
भावे तपसि सिद्धानामभावे पापकर्म्मणाम्।
देवपक्षे प्रमुदिते दैत्यपक्षे विषीदति।४२

चारों ओर से दानवों के विमानों के नीचे गिर जाने पर उनके ऊपर उड़कर भूमि पर गिरने तथा भस्मीभूत अवयवों के होने पर एवं

वात स्कन्ध से अपविद्ध हो जाने पर पावक के द्वारा किए हुए कर्म में मय का वध हो गया था और भगवान् गदाधर का स्तवन किया गया था ।३५-३६। जिस समय में मय दानव का वध हो गया था तो सभी दैत्य निष्प्रयत्न हो गए थे तथा त्रैलोक्य बन्धन से मुक्त हो गया था । सब देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए थे और सभी ओर 'साधु-साधु अर्थात् अच्छा हुआ कि ध्वनियाँ होने लगी थी ।३७। इन्द्रदेव की जय होने पर और दैत्यों का पराजय हो जाने पर सब दिशाएँ विशुद्ध हो गई थीं एवं धर्म का विस्तार प्रवृत्त हो गया था ।३८। चन्द्रदेव अपावृत्त हो गये थे तथा दिवाकर अपने स्थान पर स्थित हो गये थे एवं चरित्र के बन्धु तीनों लोक अपनी स्वाभाविक अवस्था में स्थित हो गये थे ।३९। यजमानों में और भूतों में पाप प्रशान्त हो गये थे तथा अभिन्न बन्धन वाला मृत्यु अग्नि में हूयमान हो गया था ।४०। सब देवगण यज्ञों में शोभा प्राप्त करने लगे तथा स्वर्ग के अर्थ का प्रदर्शन करते थे । सभी लोकपाल अपनी-अपनी दिशाओं में यानों से वर्तमान हो गये थे ।४१। उस समय में सिद्धों का तपश्चर्या में भाव स्थित हो गया था और जो पाप पूर्ण कर्म करने वाले थे उनकी अभाव में स्थिति थी । देवों का पक्ष परम प्रमुदित हो गया और दैत्यों का पक्ष एकदम विषाद से ग्रस्त था ।४२।

त्रिपादविग्रहे धर्मे अधर्मे पादविग्रहे ।
अपावृत्ते महाद्वारे वर्त्तमाने च सत्पथे ।४३
लोके प्रवृत्ते धर्मेषु सुधर्मेष्वाश्रमेषु च ।
प्रजारक्षणयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु ।४४
प्रशान्तकल्मषे लोके शान्ते तमसि दानवे ।
अग्निमारुतयोस्तत्र वृत्ते संग्रामकर्म्मणि ।४५
तन्मया विपुला लोकास्ताभ्यां तज्जयकृतक्रिया ।
पूर्वदेवभयं श्रुत्वा मारुताग्निकृतं महत् ।४६

कालनेमीति विख्यातो दानवः प्रत्यदृश्यत ।
भास्कराकारमुकुटः शिञ्जिताभरणांगदः ।४७
बाहुभिस्तुलयन् व्योम क्षिपन् पद्भ्यां महीधरान् ।
ईरयन्मुखनिश्वासैर्वृष्टियुक्तान् बलाहकान् ।४८

उस समय में तीन पादों वाला धर्म का निग्रह था और अधर्म केवल एक ही पादसे युक्त था । महाद्वार के अपावृत्त होने पर सब लोग सत्पथ में वर्तमान हो गये थे।४३। लोक अपने-अपने धर्मों और आश्रमों में प्रवृत्त थे तथा सब नृपति गण अपनी प्रजा की रक्षा कार्यमें युक्त एवं भ्राजमान हो गये थे ।४४। सम्पूर्ण लोक प्रशान्त कल्मषों वाले थे एवं दानवीय तम भी एक दम शान्त हो गया था । वहाँ पर अग्नि और मारुत का संग्राम जब हुआ था तभी यह सब हो गया था । बहुत से लोक तन्मय हो गये थे और उन दोनों मे उनके विजय की करने वाली क्रिया भी हुई थी । मारुत और अग्नि के द्वारा किये हुए महान् पूर्व देवों का भय श्रवण करके परम विख्यात कालनेमि नाम वाला दानव वहाँ पर दिखलाई दिया था जिसका भास्कर के आकार के सदृश मुकुट था और वह शिञ्जित आभरणों एवं अङ्गदों वाला था । वह कालनेमि अपनी बाहुओं से व्योम तोलन करने लगा और पैरों से बड़े-बड़े महीधरों को भी क्षिप्त करता था । वह वृष्टि से युक्त बलाहकों को मुख के निश्वासों के द्वारा प्रेरित करता था ।४५-४८।

तिर्यगायतरक्ताक्षं मन्दरोदग्रवर्चसम् ।
दिधक्षन्तमिवायान्तं सर्वान् देवगणान् मृधे ।४९
तर्जयन्तं सुरगणांश्छादयन्तं दिशोदश ।
संवर्तकाले तृषितं हृष्टं मृत्युमिवोत्थितम् ।५०
सुतलेनोच्छ्रयवता विपुलांगुलिपर्वणा ।
लम्बाभरणपूर्णेन किञ्चिच्चलितकर्म्मणा ।५१
उच्छ्रितेमाग्रहस्तेन दक्षिणेन वपुष्मता ।

दानवान् देवनिहतानुत्तिष्ठध्वमिति ब्रुवन् ।५२
तं कालनेमिं समरे द्विषतां कालचेष्टितम् ।
वीक्षन्तेस्म सुराः सर्वे भयवित्रस्तलोचनाः ।५३
तं वीक्षन्तिस्म भूतानि क्रमन्तं कालनेमिनम् ।
त्रिविक्रमाधिकमतं नारायणमिवापरम् ।५४
सोऽत्युच्छ्रयपुरः पादमारुता घूर्णिताम्बरः ।
प्रक्रामन्नसुरो युद्धे त्रासयामास देवताः ।५५
समयेनासुरेन्द्रेण परिष्वक्तस्ततो रणे ।
कालनेमिर्बभौ दैत्यः स विष्णुरिव मन्दरः ।५६
अथ विव्यथिरे देवाः सर्वे शुक्रपुरोगमाः ।
कालनेमिं समायान्तं दृष्ट्वा कालमिवापरम् ।५७

जिस समय में वह कालनेमि वहाँ रणस्थल में समागत हुआ था। उस समय वह तिर्यक—आयत और रक्त नेत्रों वाला था—उसका स्वरूप मन्दर गिरि के तुल्य उदग्र वर्चस से युक्त था—युद्ध में सब देवों को संतृप्त करता हुआ समायात हुआ था।४९। समस्त सुरों को डाँटता फटकारता हुआ दशों दिशाओंमें समाच्छादन करता हुआ और सम्वर्त्त काल में तृषित समुत्थित मृत्यु की भाँति दिखलाई दिया था। उच्छ्रय से युक्त–सुन्दर तल वाले—विपुल अंगुलियों के पर्वों से पूर्ण लम्बे आभरणों से संयुक्त कुछ चलित कर्मों वाले–उच्छ्रित—वपुष्मान दाहिने हाथ से देवों के द्वारा मारे हुए दानवों से उठकर खड़े हो जाओ ऐसा कह रहा था।५०-५२। उस समर क्षेत्र में द्वेष करने वाले शत्रुओं का काल चेष्टित कालनेमि को भय से विशेष भीत लोचनों वाले समस्त सुरगण देख रहे थे।५३। चारों ओर क्रमण करते हुए उस कालनेमि को त्रिविक्रम (वामन) से भी अधिक माने हुए दूसरे नारायण के भी समान स्वभूता (प्राणी) देखते थे।५४। अत्यन्त उच्छ्रयपुर वाले—पैरों की मारुत घूर्णित अम्बर से सम्पन्न उस असुर ने

प्रक्रमण करते हुए युद्ध स्थल में देवगणों को डरा दिया था ।५५। इसके अनन्तर रण में समय वाले असुरेन्द्र से परिष्वक्त होकर वह कालनेमि विष्णु मन्दर के समान शोभित हुआ था ।५६। इसके अनन्तर समस्त देवगण जिनमें इन्द्र देव सबके अग्रगामी थे दूसरे काल के ही समान आते हुए उस कालनेमि को देखकर विशेष रूप से व्यथित हुए थे ।५७।

७०–कालनेमि वृत्तान्त वर्णन

दानवानामनीकेषु कालनेमिर्महासुरः ।
विवर्द्धितमहातेजास्तपान्ते जलदो यथा ।१
तं त्रैलोक्यान्तरगतं दृष्ट्वा ते दानवेश्वराः ।
उत्तस्थुरपरिश्रान्ताः पीत्वामृतमनुत्तमम् ।२
ते वीतभयसन्त्रासा मयतारपुरोगमाः ।
तारकामयसंग्रामे सततं जितकाशिनः ।३
रेजुरायोधनगता दानवाः युद्धकाङ्क्षिणः ।
मन्त्रमभ्यसतान्तेषां व्यूहञ्च परिधावताम् ।४
प्रेक्षताञ्चाभवत् प्रीतिर्दानवं कालनेमिनम् ।
ये तु तत्र मयस्यासन् मुख्या युद्धपुरःसराः ।५
ते तु सर्वे भयन्त्यक्त्वा हृष्टा योद्धुमुपस्थिताः ।
मयस्तारो वराहश्च हयग्रीवश्च वीर्यवान् ।६
विप्रचित्तिसुतः श्वेतः खरलम्बावुभावपि ।
अरिष्टोबलिपुत्रश्च किशोराख्यस्तथैव च ।७
स्वर्भानुश्चामरप्रख्यो वक्त्रयोधी महासुरः ।
एतेऽस्त्रवेदिनः सर्वे सर्वे तपसि सुस्थिताः ।८

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा–दानवों की सेनाओं में महासुर कालनेमि विशेष वर्धित हुए महान् तेज वाला तप के अन्त में जलद के तुल्य ही था ।१। त्रैलोक्य के अन्तर्गत उसको देखकर ही दानवेश्वर अत्युत्तम अमृत का पान करके अपरिश्रान्त होते हुए उठकर खड़े हो गये थे ।२। तारकामय संग्राम में निरन्तर जित काशी के सब दानव जिनमें मय और तार पुरोगामी थे भय और सन्त्रास को व्यतीत कर देने वाले थे ।३। मन्त्रों का अभ्यास करने वाले और व्यूह का परिधावन करने वाले उनमें युद्ध की इच्छा रखने वाले दानव युद्ध स्थल में पहुँच कर अधिक शोभा एवं दीप्ति को प्राप्त हुए थे ।४। जो लोग वहाँ पर मय दानव के परम मुख्य युद्ध पुरःसर थे कालनेमि दानव को देखने वाले उनकी अत्यधिक प्रीति हो गयी थी ।५। वे सभी भय का त्याग करके परम हर्षित होते हुए युद्ध करने के लिए वहाँ पर उपस्थित हुए थे । उनमें मय, तार, वराह, वीर्यवान, हयग्रीव, विप्रचितिकः पुत्रश्वेत दोनों खर जौर लम्ब–वलिका पुत्र अरिष्ट और किशोर नामधारी—स्वर्भानु अमर प्रख्य, महासुर वक्त्रयोधी ये सभी अस्त्रों के ज्ञाता और सभी तपश्चर्या में भी सुस्थित रहने वाले थे ।६-८।

दानवाः कृतिनो जग्मुः कालनेमिं तमुद्धतम् ।
ते गदाभिर्भुशुण्डीभिश्चक्रै रथ परश्वधैः ।९
कालकल्पैश्च मुसलैः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः ।
अश्मभिश्चाद्रिसदृशैर्गण्डशैलैश्च दारुणैः ।१०
पट्टिशैर्भिन्दिपालैश्च परिघैश्चोत्तमायसैः ।
घातनीभिः सुगुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च ।११
युगैर्यन्त्रैश्च निर्मुक्तैर्मार्गणैरुग्रताडितैः ।
दोर्भिश्चायतदीप्तैश्च प्रासैःपाशैश्च मूर्च्छनैः ।१२
भुजङ्गवक्त्रैर्लेलिहानैर्विसर्पद्भिश्च सायकैः ।
वज्रैः प्रहरणीयैश्च दीप्यमानैश्च तोमरैः ।१३

विकोशैरसिभिस्तीक्ष्णैः शूलैश्च शितनिर्मलैः ।
दैत्याः संदीप्तमनसः प्रगृहीतशरासनाः ।१४

ये समस्त परम कृती दानव उस अतीव उद्धत कालनेमि के समीप में पहुँचे थे । ये सभी दैत्यगण बहुत से हथियारों से समन्वित थे जिनमें गदा, भुशुण्डी, चक्र, परश्वध, काल कल्प मुसल, क्षेपणीय, मुदगर, अद्रि, सदृश, अश्म (पाषाण), दारुण भण्ड शैल, पट्टिश, भिन्दिपाल, उत्तमायस परिघ, घातिनी और अत्यन्त गुरु (भारी एवं बहुत विशाल) शतघ्नी (तोप), युग यन्त्र-उग्र ताडित निर्मुक्त मार्गण (शर)—आयत और दीप्त भुजायें, प्रास, मूर्च्छन पाश, भुजङ्गों के तुल्य मुखों वाले लेलिहान (फुस्कारें भरने वाले) और विशेष रूप से सर्पण करने वाले सायक—वज्र, प्रहरणीय, दीव्यमान तोमर, बिना कोश (म्यान) वाले खड्ग-शीत निर्मल तोमर आदि अनेक आयुध थे । इन सभी प्रकार के अनेक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर सभी दानव संदीप्त मन वाले थे और शरासनों को ग्रहण किये हुए वहाँ पर युद्ध स्थल में समुपस्थित हो गये ।९-१४।

ततः पुरस्कृत्य तदा कालनेमिं महाहवे ।
सा दीप्तशस्तप्रवरा दैत्यानां रुरुचे चमूः ।१५
द्यौर्निमीलितसर्वाङ्गा घना नीलाम्बुदागमे ।
देवतानामपि चमूर्मुमुदे शक्रपालिता ।१६
उपेता सितकृष्णाभ्यां ताराभ्यां चन्द्रसूर्ययोः ।
वायुवेगवती सौम्या तारागणपताकिनी ।१७
तोयदाविद्धवसना ग्रहनक्षत्रहासिनी ।
यमेन्द्रवरुणैर्गुप्ता धनदेन च धीमता ।१८
सम्प्रदीप्ताग्निनयना नारायणपरायणा ।
सा समुद्रौघसदृशी दिव्या देवमहाचमूः ।१९
रराजास्त्रवती भीमा यक्षगन्धर्वशालिनी ।

तयोश्चम्वोस्तदानीन्तु बभूव स समागमः ।२०
द्यावापृथिव्योः संयोगो यथा स्याद्युगविपर्यये ।
तद्युद्धमभवद् घोरं देवदानवसंकुलम् ।२१

उस समय में उस महान रण स्थल में ये सब कालनेमि को अपना पुरोगामी बनाकर उपस्थित हो गये थे और वह दैत्यों की विशाल सेना परम दीप्त-प्रशस्त एवं अतीत श्रेष्ठ होकर दीप्तिमती हो गई थी। ।१५। इसी भाँति महेन्द्र के द्वारा सुरक्षित देवों की भी सेना दिवलोक में निमीलित समस्त अङ्गों वालीं नीलाम्बुदागममें ध्वनी परम प्रहृष्ट हो रही थी ।१६। चन्द्र और सूर्य के श्वेत एवं कृष्ण ताराओं से समुपेत वह देवों की सेना थी जो वायु के सदृश वेग से युक्त परम सौम्य और तारागणों की पताकाओं वाली ।१७। तोयदों से आविद्ध बसनों वाली, ग्रहों तथा नक्षत्रों के हास से संयुत थी । वह देवोंकी विशाल सेना यम इन्द्र, वरुण और परम धीमान् धनद कुबेर के द्वारा सुरक्षित थी ।१८। अत्यन्त सम्प्रदीप्त अग्नि के नयनों वाली—नारायण प्रभु में परायण एवं समुद्रों के ओघ के समान वह देवों की अतीव महान एवं विशाल सेना दिव्य हो रही थी ।१९। यक्षों और गन्धर्वों की शोभा से सुसम्पन्न भीम स्वरूप वाली तथा नाना भाँति के अस्त्र शस्त्रों से युक्त होती हुई दीप्तिमान हो गई थी । उसी समय में उन दोनों दैत्यों तथा देवों की सेनाओं का वहाँ पर समागम हो गया था ।२०। जिस प्रकार से युग का विपर्यय उपस्थित होने पर द्यावा पृथ्वी का संयोग हो जाया करता है उसी भाँति वह देवों और दानवों का परम संकुल घोर युद्ध हो गया था ।२१।

क्षमापराक्रमपरं दर्पस्य विनयस्य च ।
निश्चक्रमुर्बलाभ्यान्तु भीमास्तत्र सुरासुराः ।२२
पूर्वापराभ्यां संरब्धाः सागराभ्यामिवाम्बुदाः ।
ताभ्यां बलाभ्यां संहृष्टश्चेरुस्ते देवदानवाः ।२३

वनाभ्यां पार्वतीयाभ्यां पुष्पिताभ्यांयथागजा: ।
समाजघ्नुस्ततोभेरीशङ्खान्दध्मुरनेकश: ।२४
स शब्दोद्यां भुवं खञ्च दिशश्च समपूरयत् ।
ज्याघाततलनिर्घोषो धनुषां कूजितानि च ।२५
दुन्दुभीनाञ्च निनदो दैत्यमन्तर्दधु: स्वनम् ।
तेऽन्योन्यमभिसम्पेतु: पातयन्त: परस्परम् ।२६
बभञ्जुर्बाहुभिर्बाहून् द्वन्द्वमन्ये युयुत्सव: ।
देवास्तु चाशनिं घोरंपरिघांश्चोत्तमायसान् ।२७
निस्त्रिंशान् ससृजु: संख्ये गदागुर्वीश्च दानवा: ।
गदानिपातैर्भग्नाङ्गा बाणैश्च शकलीकृता: ।२८

वह युद्ध दर्प तथा विनय का क्षमा एवं पराक्रम में परायण था। वहाँ पर उन दोनों ही सेनाओं से अतीव भीम (भयावह) स्वरूपों वाले सुर और असुर निकल पड़े थे अर्थात् युद्ध करने के लिए मैदान में आ गये थे। पूर्व और अपर सागरों से सरब्ध अम्बुदों के समान उन दोनों ही दलों से बाहिर निकल कर देखे गयेथे देव तथा दानब वहाँ रणस्थल में विचरण कर रहे थे।२२-२३। पुष्पों से समन्वित पर्वतीय वनों से जिस तरह गज निकल आया करते हैं उसी तरह से उन देव-दानवों ने सेनाओं के समुदाय से बाहिर निकल कर अनेक भेरी और शंखों की ध्वनि भूमण्डल-दिवलोक और सब दिशाओं में पूरित हो गयी थी। धनुषों की प्रत्यञ्चाओं के घात से समुत्थित निर्घोष–धनुषों के कूजित दुन्दुभियों की ध्वनि यह सब दैत्य ध्वनि से अन्तर्हित हो गयी थी। वे परस्पर में अस्त्रों का सम्पातन करते हुए एक दूसरों को नीचे गिराने लगे थे। बाहुओं से बाहुओं का भञ्जन करने लगे थे और दूसरे योद्धा द्वन्द्वयुद्ध करने की इच्छा वाले भी थे। देवगण परम घोर अशनि और उत्तमायस परिघों का प्रयोग उस युद्ध में कर रहे थे। दानव गण युद्ध में निस्त्रिंशों तथा अत्यन्त भारी एवं विशाल गदाओं को शत्रुओं पर

छोड़ रहे थे । गदाओं के प्रहारों से सैनिक भग्न अङ्गों वाले तथा बाणों के द्वारा खण्ड-खण्ड अङ्गों वाले हो गये थे ।२४-२८।

परितुभृंशं केचित् पुनः केचित् जघ्निरे ।
ततो रथैः स तुरंगैर्विमानैश्चाशुगामिभिः ।२९
समीयुस्तेसुसंरुधा रोषादन्योन्यमाहवे ।
संवर्तमानाः समरे सन्दष्टौष्ठपुटाननाः ।३०
रथारथैर्निरुध्यन्ते पादाताश्च पदातिभिः ।
तेषां रथानान्तुमुलः स शब्दः शब्दवाहिनाम् ।३१
नभोनभश्चहि यथानभस्यैर्जलदस्वनैः ।
बभञ्जुस्तु रथान् केचित्केचित् सम्पातितारथैः ।३२
सम्बाधमन्ये सम्प्राप्य न शोकुश्चलितुं रथान् ।
अन्योन्यमन्ये समरे दोर्भ्यामुत्क्षिप्य दंशिताः ।३३
संह्लादमानाभरणा जघ्नुस्तत्रापि चर्मिणः ।
अस्त्रैरन्ये विनिर्भिन्ना वेमू रक्तं हतायुधि ।३४
क्षरज्जलानां सदृशाःजलदानां समागमे ।
तैरस्त्रशस्त्रग्रथितं क्षिप्तोत्क्षिप्तगदाविलम् ।३५

परस्पर में इस तरह से से शस्त्रास्त्रों के प्रहारो से कुछ तो नीचे गिर गये थे और कुछ उठकर पुनः हनन किया करते थे । इसके उपरान्त रथों तुरंगों और शीघ्रगामी विमानो के द्वारा वे समक्ष में समागत हुए थे ।२९। उस महायुद्ध में वे रोषावेश में परस्पर में अत्यन्त संरुध होकर समागत हुएथे । समरांगण में वर्तमान होकर अपने मुखों के ओष्ठो को क्रोध से काट रहे थे ।३०। रथो पर सवार रथ वालों से और पैदल सैनिक वीर पदातियो के साथ युद्ध कर रहे थे । शब्दवाही उनके रथ का शब्द अत्यन्त तुमुल हो रहा था ।३१। जिस प्रकार से नभस्य जलदो की ध्वनि होती है वैसे ही नभ-नभ से टकरा रहा था । कुछ लोगों ने रथ का भंजन किया था और कुछ लोग सम्पातित रथों

के द्वारा सम्बाध कर रहे थे। अन्य लोग ऐसी सम्बाधा प्राप्त करके रथों के आगे चलने में भी असमर्थ हो गये थे। दूसरे लोग उस समर में परस्पर में हाथों से ऊपर को क्षिप्त करके दंशित हुए थे।३२-३३ वहाँ पर भी चर्मधारी गण संह्लादमान आभरण वाले होकर हननकर रहे थे। अन्य लोग अस्त्रों से निर्भिन्न होकर युद्ध में आहत हुए रक्त का वमन करते थे। जलदों के समागम काल में क्षरण करते हुए जलों से सदृश हो गए थे। उन सबके द्वारा वहाँ युद्ध शस्त्रों और अस्त्रों से ग्रथित तथा क्षिप्त एवं उत्क्षिप्त गदाओं से आविल था।३४-३५।

देवदानवसंक्षुब्धं संकुलं युद्धमाबभौ ।
तद्दानवमहामेघं देवायुधविराजितम् ।३६
अन्योन्यबाणवर्षेणयुद्धदुर्दिनमाबभौ ।
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः कालनेमिः स दानवः ।३७
व्यवर्धत समुद्रौघैः पूर्यमाण इवाम्बुदः ।
तस्य विद्युच्चलापीडैः प्रदीप्ताशीनवर्षिणः ।३८
गात्रेनागगिरिप्रख्या विनिपेतुर्बलाहकाः ।
क्रोधान्निश्वसतस्तस्य भ्रूभेदस्वेदवर्षिणः ।३९
साग्निस्फुलिङ्गप्रतता मुखान्निष्पेतुरर्चिषः ।
तिर्यगूर्ध्वञ्च गगने ववृधुस्तस्य बाहवः ।४०
पर्वतादिव निष्क्रान्ताः पञ्चास्य इव पन्नगाः ।
सोऽस्त्रजालैर्बहुविधैर्धनुर्भिः परिघैरपि ।४१
दिव्यमाकाशमावव्रे पर्वतैरुच्छ्रितैरिव ।
सोऽनिलोद्धूतवसनस्तस्थौ संग्रामलालसः ।४२

वह देवों और दानवों से परम संक्षोभ वाला एवं संकुल युद्ध हुआ था। वहाँ युद्ध दानवरूपी महान मेघोंवाला और देवोंके अनेक आयुधों से शोभित तथा परस्पर में एक दूसरों पर बाणों की वर्षासे एक दुर्दिन के समान ही शोभा दे रहा था। इसी बीच में परम क्रुद्ध होकर वह

कालनेमि दानव समुद्रों के ओघों से मूर्च्छमाण एक अम्बुद के तुल्य बढ़ रहा था। विद्युत के चलायमान आपीड़ों के द्वारा प्रदीप्त अशनि की वर्षा करने उसके अङ्गों से नागगिरि नाम वाले बलाहक निपतित हुए थे। भौंहों के भेद से समुत्पन्न स्वेद की वर्षा करने वाले—क्रोध से उष्ण और लम्बी श्वास लेनेवाले उसके मुखसे अग्नि के कणोंसे प्रतत अर्चियाँ निकलने लग गई थीं। गगन में ऊपर और तिरछी उसकी बाहुएँ बढ़ गई थीं जो कि पर्वत से मानो निकले हुए पाँचमुखों वाले पन्नगों के ही समान थीं। वह कालनेमि दानव अनेक प्रकार के अस्त्रों के जालों से—धनुषों से और परिघों के भी द्वारा उत्पन्न ऊँचे पर्वतो की भाँति दिव्य आकाश से बातें कर रहा था। वह संग्राम करने की लालसा वाला जिसके वस्त्र वायु से उद्धूत हो रहे थे वहाँ रणस्थल में स्थित हो गया था।३६-४२।

सन्ध्यातपग्रस्तशिलः साक्षान्मेरुरिवाचलः।
ऊरुवेगप्रमथितैः शैलश्रृङ्गाग्रपादपैः।४३

अपातयद् देवगणान् वज्रेणेव महागिरीन्।
बहुभिः शास्त्रनिस्त्रिंशैश्छिन्नभिन्नशिरोरुहाः।४४

न शेकुश्चलितुं देवाः कालनेमिहता युधि।
मुष्टिभिर्निहताः केचित् केचित्तु विदलीकृताः।४५

यक्षगन्धर्वपतयः पेतुः सह महोरगैः।
तेन वित्रासिता देवाः समरे कालनेमिना।४६
न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि यत्नं कर्तुं विचेतसः।
तेन शक्रः सहस्राक्षः सपन्दितः शरबन्धनैः।४७
ऐरावतगतः संख्ये चलितुं न शशाक ह।
निर्जलाम्भोदसदृशो निर्जलार्णवसप्रभः।४८
निर्व्यापारः कृत्स्नेन विपाशो वरुणोमृधे।
रणोवैश्रवणस्तेन परिघैः कामरूपिणा।४९

सन्ध्याकालीन आतप ने जिसकी शिलाओं को ग्रसित कर लिया है ऐसा साक्षात् मेरु पर्वत के तुल्य वह ऊरुओं के वेग से प्रमथित हुए पर्वत की चोटियों के अग्रभाग में स्थित पादपों वे वज्र के द्वारा महान् पर्वतोंके ही तुल्य देवगणों का पालन कर रहा था। बहुतसे शस्त्र और निस्त्रिशों से छिन्न-भिन्न शिरोरुहों वाले युद्ध में कालनेमि के द्वारा निहत हुए देवगण चलने में भी असमर्थ हो गये थे। कुछ तो मुष्टियोंके प्रहारोंसे निहत किए गये थे और कुछ देवगण विदलीकृत कर दिये गये थे।४३-४५। यक्ष और गन्धर्व यतिगण महोरगों के साथ ही नीचे निपतित हो गये थे। उस कालनेमि के द्वारा समर भूमि में समस्त देव गण विशेष रूप से त्रासित कर दिये गये थे।४६। वे सब देवता ऐसे विगत चेतना वाले हो गये थे कि वे यत्न करते हुए भी अर्थात् यत्न करने को पूर्ण चेष्टा करने पर भी कुछ भी यत्न नहीं कर सके थे। उसने सहस्र नेत्रों वाले इन्द्र को भी शरोंके बन्धनों से स्पन्दित करदिया था।४७। वह यद्यपि अपने ऐरावत हाथी पर स्थित था तो भी वहाँ से हिल नहीं सकता था। वह बिना जलवाले अम्भोद (मेघ) के सदृश तथा निर्जन अर्णव के तुल्य प्रभा वाला हो गया था।४८। युद्ध में बिना पाश वाले वरुण को उसने बिना व्यापार वाला बना दिया था। काम रूपी परिघों के द्वारा उसने वैश्रवण को भी विरत कर दिया था।४९।

वित्तदोऽपि कृत: संख्ये निर्जित: कालनेमिना।
यम: सर्वहरस्तेन मृत्युप्रहरणे रणे।५०
याम्यामवस्थां सन्त्यज्य भीत: स्वन्दिशमाविशत्।
स लोकपालानुत्सार्य कृत्वा तेषाञ्च कर्म्मतत्।५१
दिक्षु सर्वासु देहं स्वं चतुर्धा विदधे तदा।
स नक्षत्रपथङ्गत्वा दिव्यं स्वर्भानुदर्शनम्।५२
जहार लक्ष्मीं सामस्य तं चास्य विषयं महत्।

चालयामास दीप्तांशं स्वर्गद्वारात् स भास्करम् ।५३
सायनञ्चास्य विषयं जहार दिनकर्म्म च ।
सोऽग्नि देवमुखं दृष्ट्वा चकारात्ममुखाश्रयम् ।५४
वायुञ्च तरसा जित्वा चकारात्मवशानुगम् ।
स समुद्रान् समानीय सर्वाश्च सरितो बलात् ।५५
चकारात्ममुखे वीर्याद् देहभूताश्च सिन्धव: ।
अप: स्ववशगा:कृत्वादिविजा याश्च भूमिजा: ।५६

उस महा दानव कालनेमि ने युद्ध में वित्तद (कुबेर) को भी निर्जित कर दिया था । मृत्यु के प्रहरणों वाले उस रण में उसने सर्वदा यमको भी विजित कर दिया था । और अपनी याम्य अवस्था का परित्याग करके वह भयभीत होकर अपनी दिशा में प्रवेश कर गया था । उसने सब लोकपालों को हटाकर और उनका जो कर्म था उसे स्वयंही करने लगा था । उस समय में सब दिशाओं में अपने ही देह को उसके चार रूपों में बनाकर स्थित कर दिया था । नक्षत्रों के मार्ग में पहुँच कर वह दिव्य स्वर्भानु का दर्शन करता था ।५०-५२। उसने सोम की लक्ष्मी और इसके महान विषय का हरण कर लिया था । उसने दीप्त अंशु वाले भास्कर को स्वर्ग के द्वारसे चलित कर दिया था इसके सायन विषय को तथा दिन के कर्म का भी समाहृत कर दिया था । उस कालनेमि ने देवमुख अग्नि को देखकर उसे अपने मुख के आश्रय वाला बना लिया था ।५३-५४। उसने वायुदेव को भी बड़े वेग से जीतकर अपने वश में रहने वाला अनुग बना लिया था । उस कालनेमि दानव ने बलपूर्वक समस्त समुद्रों और सरिताओं को भी लाकर अपनेही मुख में कर लिया था । उसके वीर्य से सब सिन्धु उसके देहभूत बन गये थे । जो जल दिवलोक में समुत्पन्न थे और जो भूमिज थे । उन-उन सबको अपने ही वश में रहने वाले कर लिया था ।५५-५६।

स स्वयम्भुवि वा भाति महाभूतपतिर्यथा ।
सर्वलोकमयो दैत्यः सर्वभूतभयावहः ।५७
स लोकपालैकवपुश्चचन्द्रादित्यग्रहात्मवान् ।
स्थापयामास जगतीं सुगुप्तां धरणीधरैः ।५८
पावकानिलसम्पातो रराज युधि दानवः ।
पारमेष्ठ्ये स्थितः स्थानेलोकानां प्रभवोपमे ।
तं तुष्टुवुर्दैत्यगणा देवा इव पितामहम् ।५९

वह स्वयं ही भूमण्डल में भूतों के पति के समान शोभित हो रहा था । वह दैत्य सब लोकों से परिपूर्ण और समस्त प्राणियोंको भय देने वाला था । लोकपालों के एक ही वपु वाला स्वयं था और चन्द्र तथा आदित्य ग्रहों के भी स्वरूप वाला था । उसने धरणी धरों के द्वारा सम्पूर्ण जगती को सुगुप्त करके स्थापित किया था । युद्ध में वह दानव पावक और अनिल के सम्पात वाला दीप्तिमान हो रहा था । पितामह को देवों की भाँति ही सब दैत्यगण उसका संस्तवन् किया करते थे ।५७ ।५८-५९।

७१—कालनेमि और विष्णु का युद्ध

पञ्च तन्नाभ्यवर्तन्त विपरीतेन कर्म्मणा ।
वेदो धर्म्मः क्षमा सत्यं श्रीश्च नारायणाश्रया ।१
स तेषामनुपस्थानात् सक्रोधो दावेश्वरः ।
वैष्णवं पदमन्विच्छन्ययौ नारायणान्तिकम् ।२
स ददर्श सुपर्णस्थं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
दानवानां विनाशाय भ्रामयन्तं गदां शुभाम् ।३
सजलाम्भोदसदृशं विद्युत्सदृशवाससम् ।

स्वारूढं स्वर्णपक्षाढ्यं शिखिनंकश्यपं खगम् ।४
दृष्ट्वा दैत्यविनाशाय रणे स्वस्थमवस्थिम् ।
दानवो विष्णुमक्षोभ्यं बभाषे लुब्धमानस: ।५
अयं स रिपुरस्माकं पूर्वेषां प्राणनाशन: ।
अर्णवावासिनश्चैव मधोर्वै कैटभस्य च ।६
अयं स विग्रहोऽस्माकमशाम्य: किल कथ्यते ।
अनेन संयुगेष्वद्य दानवा बहवो हता: ।७

श्री मत्स्य भगवान ने कहा—उस समय में विपरीत कर्मों के होने के कारण से वे:, धर्म, क्षमा, सत्य और नारायण प्रभुके समाश्रय करने वाली श्री—ये पाँच नहीं रहे थे । इन पाँचों के उपस्थित न रहने से वह दानवेश्वर बड़े क्रोध से युक्त हो गया था और फिर भगवान विष्णु को प्राप्त करने की इच्छा करता हुआ नारायण प्रभु के समीप में प्राप्त हो गया था । उसने वहाँ पर सुपर्ण पर समवस्थित—दानवों के विनाश करने के लिए अपनी परम शुभ गदा घुमाते हुए शंख-चक्र और गदा के धारण करने वाले प्रभु को देखा था ।१-३। वहाँ पर नारायण का स्वरूप जल सहित मेघ के समान था—विद्युत तुल्य वसन धारण करने वाला उनका रूप था तथा वे कश्यप के पुत्र-स्वर्ण पक्षों से समन्वित शिखी खग पर समारूढ थे ।४। इस तरह के स्वरूप की शोभा से सम-स्थित एवं परम स्वरूप और रण में दैत्यों के विनाश करने के लिए उद्यत विष्णु भगवान को देखकर लुब्ध मन वाला वह दानव क्षोभ न करने के योग्य विष्णु भगवान से बोला ।५। यह ही हम लोगों का सच्चा शत्रु है जो हमारे पूर्वजों के प्राणों का नाश करने वाला है तथा अर्णव में आवास करने वाले मधु तथा कैटभ का प्राण लेने वाला में । यही हमारा वह विग्रहहै जो शमन न करने के योग्य कहा जाया करता है । आज इसने ही रणक्षेत्र में बहुत से दानवों का हनन किया है । ।६-७।

अयं स निर्घृणोलोके स्त्रीबालानिरपत्रप: ।
येन दानवनारीणां सीमन्नोद्धरणं कृतम् ।८
अयं सविष्णुर्देवानांवैकुण्ठश्चदिवौकसाम् ।
अनन्तोभोगिनामप्सुस्वपन्नाद्य: स्वयम्भुव: ।९
अयं स नाथो देवानामस्माकं व्यथितात्मनाम् ।
अस्य क्रोधं समासाद्य हिरण्यकशिपुर्हत: ।१०
अस्य च्छायामुपाश्रित्य देवा मखमुखे श्रिता: ।
आज्यं महर्षिभिर्दत्तमश्नुवन्ति त्रिधा हुतम् ।११
अय स निधने हेतु: सर्वेषाममरद्विषाम् ।
यस्य चक्रे प्रविष्टानि कुलान्यस्माकमाहवे ।१२
अयं स किल युद्धेषु सुरार्थे त्यक्तजीवित: ।
सवितुस्तेजसा तुल्यं चक्रं क्षिपति शत्रुषु ।१३
अयं सकालोदैत्यानांकालभूत:समास्थित: ।
अतिक्रान्तस्यकालस्यफलंप्राप्स्यति केशव: ।१४

यह वह हैं जो अत्यन्त ही निर्घृण और स्त्री तथा बालकों में भी निर्लज्ज है जिसने दानवों को नारियों के मन्सों का उद्धरण किया था ।८। यह ही वह विष्णु है जो दिवलोक में रहने वाले देवों का वैकुण्ठ है—योगियों का अनन्त और जल में शयन करने वाला आद्य स्वयम्भुव है। यह ही व्यथित आत्मा वाले हमारे देवों का नाथ है। इसी के क्रोध की प्राप्ति कर हिरण्यकशिपु मारा गया था ।९-१०। इसी की छत्र छाया का उपाश्रय प्राप्त करके देवगण मखों के मुख में श्रित हुआ हुआ करते हैं—और तीन प्रकार से हुत महर्षियों के द्वारा समर्पित आज्य का अशन किया करते हैं ।११। समस्त देवों के दुश्मनों के निधन होने में एक ही हेतु है। जिसके चक्र में युद्ध क्षेत्र में हमारे कुल सब प्रविष्ट हो गये हैं अर्थात् सुदर्शन चक्र के द्वारा कुलों के कुल मारे गए होकर समूल नष्ट हो गए हैं। यही वह है जो सुरों के लिए युद्धों में

अपना जीवित भी त्याग देने वाला हो जाया करता है और जो सूर्य के तेज के तुल्य अपने सुदर्शन चक्र को शत्रुओं पर प्रक्षिप्त किया करता है। यह दैत्यो का वह साक्षात् काल हैं जो कि कालभूत होकर समास्थित रहा करता है। यह केशव अतिक्रान्त कलि का फल प्राप्त करेगा ।१२-१४।

दिष्ट्ये दानीं समक्षं मे विष्णुरेष समागतः ।
अद्य मद्बाहुनिष्पिष्टो मामेव प्रणमिष्यति ।१५
यास्याम्यपचितिं दिष्टया पूर्वेषामद्य संयुगे ।
इमं नारायणं हत्वा दानवानां भयावहम् ।१६
क्षिप्रमेव हनिष्यामि रणेऽमरगणांस्ततः ।
जात्यन्तरगतो ह्येष बाधते दानवान् मृधे ।१७
एषोऽनन्तः पुरा भूत्वा पद्मनाभ इति श्रुतः ।
जघानैकार्णवे घोरे तावुभौ मधुकैटभौ ।१८
द्विधाभूतं वपुः कृत्वा सिंहस्यार्द्धं नरस्य च ।
पितरं मे जघानैका हिरण्यकशिपुं पुरा ।१९
शुभं गर्भमधत्तैनमदितिर्देवतारणिः ।
त्रीन् लोकानुज्जारैको क्रममाणस्त्रिभिः क्रमैः ।२०
भूयस्त्विदानीं संग्रामे संप्राप्ते तारकामये ।
मया सह समागम्य स देवो विनशिष्यति ।२१

बड़े हर्ष की बात है कि इस समय में यह विष्णु मेरे समक्ष में समागत हो गया है। आज यह मेरी बाहुओंसे निष्पिष्ट होकर मुझको प्रणाम करेगा। बड़ी ही प्रसन्नता की बात है कि आज युद्ध क्षेत्र में मैं अपने पूर्व पुरुषों की अपिचित को प्राप्त करूँगा अर्थात् उनके साथ किए व्यवहार का बदला ले लूँगा। आज दानवों को भय देने वाले नारायण का मैं हनन करके ही बदला ले लूँगा ।१५-१६। यह जाति में अन्तरग अर्थात् अन्य जाति वाला विष्णु युद्ध में दानवों को बाधायें

दिया करता है। आज में बहुत ही शीघ्र रण में इसके पश्चात् सब देवगणों का भी वध कर डालूँगा। यह पहिले अनन्त होकर पद्मनाभ —इस नाम से सुना गया है। इसने ही परम घोर एकार्णव में उन दोनों मधु कैटभ का हनन किया था। पहिले इसने दो प्रकार का शरीर धारण किया था जो आधा तो सिंह का था और आधा नर का था। इसी ने मेरे पिता हिरण्यकशिपु का हनन किया था।१७-१९। अदिति ने परम शुभ गर्भ धारण किया था और देवतारणि इसी एक ने तीन पैड़ों के क्रम से क्रममाण होते हुए तीनों लोकों का उद्धरण कर डाला था। पुनः इस समय में इस तारकामय संग्राम के सम्प्राप्त होने पर मेरे साथ समागम करके वह विनष्ट हो जायगा २०-२१।

एवमुक्त्वा बहुविधं क्षिपन्नारायणं रणे।
वाग्भिरप्रतिरूपाभिर्युद्धमेवाभ्यरोचयत् ।२२

क्षिप्यमाणो सुरेन्द्रेण न चुकोप गदाधरः।
क्षमाबलेन महता सस्मितं चेदमब्रवीत् ।२३

अल्पं दर्पबलं दैत्य ! स्थिरमक्रोधजं बलम्।
हतस्त्वं दर्पजैर्दोषैर्हित्वा गद्भाषसे क्षमम् ।२४
अधीरस्त्वं मम मतो धिगेतत्तव वाग्बलम्।
न यत्र पुरुषाः सन्ति तत्र गर्जन्ति योषितः ।२५

अहं त्वां दैत्य ! पश्यामि पूर्वेषां मार्गगामिनम्।
प्रजापतिकृतं सेतुं भित्वा कः स्वस्तिमाम् व्रजेत् ।२६
अद्य त्वां नाशयिष्यामि देवव्यापारघातकम्।
स्वेषु स्वेषुचस्थानेषु स्थापयिष्यामि देवताः ।२७
एवं ब्रुवति वाक्यं तु मृधे श्रीवत्सधारिणि।
जहासदानवः क्रोधाद्धस्तांश्चक्रे सहायुधान् ।२८

इस प्रकार से अनेक रीतियों से कहकर तथा नारायण पर रण

में आक्षेपों की बौछार करके अप्रतिरूप वाणियों के द्वारा उसने युद्ध करने को ही पसन्द किया था ।२२। इस तरह उस असुरेन्द्र के द्वारा आक्षिप्त होते हुए भी गदाधारी प्रभु ने कोई क्रोध नहीं किया था और महान क्षमा के बल का सहारा लेते हुए मुस्कराकर यह वचन कहा था ।२३। दर्प का बल अल्प होता है, हे दैत्य ! जो बिना किसी क्रोध से उत्पन्न होने वाला बल होता है वह स्थिर बल हुआ करता है। तू क्षमा का त्याग करके जो कुछ भी इस समय में बोल रहा है, इन दर्प (घमण्ड) से उत्पन्न हुए दोषों से ही हत हो गया है ।२४। मेरी मति में तो बहुत अधीर है । तेरे इन वचनों के बल को धिक्कार है जहाँ पर कोई बलशाली पुरुष नहीं रहा करते हैं वहाँ पर स्त्रियाँ भी इसी तरह से गर्जना किया करती है ।२५। हे दैत्यराज ! मैं तो तुझको अपने पूर्वज पुनखाओं के ही मार्ग का अनुगमन करने वाला देख रहा हूँ । प्रजापति के द्वारा किए सेतु का भेदन करके कौन पुरुष कल्याण वाला हो सकता है? अर्थात् वह कभी कल्याणकारी हो ही नहीं सकता है ।२६। मैं आज ही देवों के व्यापारों के घात करने वाले तुझको नष्ट कर डालूँगा और उन देवताओं को उनके अपने-२ स्थानों पर स्थापित कर दूँगा ।२७। उस महान युद्ध क्षेत्र में श्रीवत्स के चिन्ह को धारण करने वाले प्रभु के द्वारा इस प्रकार से बोलने पर वह दानव कालनेमि बहुत हँसा था और उसने बहुत ही क्रोध के अपने हाथों को आयुधों से युक्त कर लिया था ।२८।

स बाहुशतमुद्यम्य सर्वास्त्रग्रहणं रणे ।
क्रोधाद्द्विगुणरक्ताक्षो विष्णुवक्षस्यताडयत् ।२९
दानवाश्चापि समरे मयतारपुरोगमाः ।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा विष्णुमभ्यद्रवन् रणे ।३०
स ताड्यमानोऽतिबलैर्दैत्यैः सर्वोद्यतायुधैः ।
न चचाल ततो युद्धे कम्पमान इवाचलः ।३१

संसक्तश्च सुपर्णेन कालनेमिर्महासुरः ।
सर्वप्राणेन महतीं गदामुद्यम्याबाहुभिः ।३२
घोरां ज्वलन्तीं मुमुचे संरब्धो गरुणोपरि ।
कर्मणातेनदैतस्य विष्णुर्विस्मयमाविशत् ।३३
यदा तेन सुपर्णस्य पातिता मूर्द्धिन सा गदा ।
सुपर्णंभ्यथितं दृष्ट्वा कृतञ्च वपुरात्मनः ।३४
क्रोधसंरक्तनयनो वैकुण्ठश्चक्रमाददे ।
व्यवर्द्धत स वेगेन सुपर्णेन समं विभुः ।३५

उस दानव ने उस रण स्थल में सभी प्रकार के अस्त्रों को ग्रहण करने वाले सैंकड़ों बाहुओं को उठाकर क्रोध से द्विगुणित लाल नेत्रों वाले ने भगवान् विष्णु पर उनके वक्षःस्थल पर प्रताड़ित किया था।२९ अन्य दानव भी जिनमें मय और तार पुरोगामी थे सबने निस्त्रिंश और अन्य आयुधों को समुद्यत करके भगवान् विष्णु पर रण में आक्रमणकर दिया था ।३०। सब प्रकार के समुद्यत आयुधों वाले—अत्यन्त बलशाली दैत्यों के द्वारा इस भाँति ताड्यमान होते हुए भी भगवान् विष्णु उस युद्ध में बिना कम्प वाले एक पर्वत की तरह स्थित रहते हुए वहाँ पर बिल्कुल भी चलित नहीं हुए थे ।३१। विष्णु प्रभु सुपर्ण पर ही संसक्त थे कि महासुर उस कालनेमि ने अपना पूर्ण जोर लगाकर प्राणपण से महान् विशाल गदा को बाहुओं से उठाकर जो कि अत्यन्त घोर और जाज्वल्यमान थी बहुत ही संरब्ध होते हुए गरुड़ के ऊपर उसे छोड़ दिया था । दैत्यके उस कर्मसे भगवान् विष्णु को भी बड़ा विस्मय हो गया था ।३२-३३। जिस समय में उस दानव ने सुपर्ण के मस्तक पर उस महती गदा को पातित किया था । सुपर्ण को देखकर उन्होंने अपना वपु व्यथित कर दिया था फिर महान् क्रोधसे संरक्त नयनोंवाला होकर भगवान् वैकुण्ठनाथ ने अपना चक्र ग्रहण किया था और सुपर्ण के साथ ही वह विभु आगे को बढ़ गए थे ।३४-३५।

भुजाश्चास्य व्यवर्द्धन्त व्याप्नुवन्तो दिशो दश ।
प्रदिशश्चैव खं गां वै पूरयामास केशवः ।३६
ववृधे च पुन र्लोकान् क्रान्तुकाम इवौजसा ।
तर्जनायासुरेन्द्राणां वर्द्धमानं नभस्तले ।३७
ऋषयश्चैव गन्धर्वास्तुष्टवुर्मधुसूदनम् ।
सर्वान् किरीटेन लिहन् साभ्रमम्बरमम्बरैः ।३८
पद्भ्यामाक्रम्य वसुधां दिशः प्रच्छाद्य बाहुभिः ।
सूर्यकरतुल्याभं सहस्रारमरिक्षयम् ।३९
दीप्ताग्निसदृशं घोरं दर्शनेन सुदर्शनम् ।
सुवर्णरेणु पर्यन्तं वज्रनाभं भयापहम् ।४०
मेदोऽस्थिमज्जारुधिरैः सिक्तन्दानवसम्भवः ।
अद्वितीयप्रहरणं क्षुरपर्यन्तमण्डलम् ।४१
स्रग्दाममाला विततं कामगं कामरूपिणम् ।
स्वयंस्वयम्भुवा सृष्टं भयदं सर्वविद्विषाम् ।४२

इनकी भुजायें दशों दिशाओं में व्यापक होती हुई बढ़ गयी थीं और भगवान् केशव ने उनको सब प्रदिशाओं में—भूमि तथा आकाश में पूरित कर दिया था ।३६। फिर महान ओज से समस्त लोकों का क्रमण करने की इच्छा वाले प्रभु और भी वर्धित हो गये थे तथा नभ-स्तल में भी उन असुरेन्द्रों से तर्जन के लिए वे बर्द्धमान हो गये थे । अम्बरों के द्वारा अभ्र रहित अम्बर की भाँति किरीट के द्वारा सबका स्पर्श करते हुए वे उस समय में हो गए थे तथा वहाँ पर मधुसूदन प्रभु का संस्तवन ऋषिगण और गन्धर्व लोग करने लगे थे ।३७-३८। प्रभुने अपने चरणों से सम्पूर्ण वसुधा को समाक्रान्त करके बाहुओं से सभी दिशाओं को प्रच्छादित कर दिया था तथा उनने फिर सूर्य की किरणों के तुल्य आभा वाले—सहस्र अरों से समन्वित और अरियों के क्षय को करने वाले उस चक्र को प्रयुक्त किया था ।३९। वह चक्र दीप्त अग्नि के

समान महान घोर था तथा देखनेसे वह बहुत सुन्दर दर्शनवाला अर्थात् सुदर्शन नामधारी था। सुवर्ण रेणुपर्यन्त—वज्रनाभ–भयों का अपहरण करने वाला—दानवों के शरीरों से समुत्पन्न मेदा, अस्थि, मज्जा तथा रुधिर से सिक्त–क्षुर पर्यन्त मण्डल वाला—एक परम अद्वितीय प्रहरण (अस्त्र)–स्रगदाम (मालाएँ) से विनत–स्वेच्छया गमन करने वाला–कामरूपी—समस्त शत्रुओं को भय देने वाला और स्वयंभू प्रभु के द्वारा वह सृजित किए जाने वाला था।४०-४२।

महर्षिरोषैराविष्टं नित्यमाहवदर्पितम्।
क्षपणाद्यस्य मुह्यन्ति लोकाः सास्थाणुजङ्गमाः।४३
क्रव्यादानि च भूतानि तृप्तिं यान्ति महामृधे।
दतप्रतिमकर्मोग्रं समानं सूर्यवर्चसा।४४
चक्रमुद्यम्य समरे क्रोधदीप्तो गदाधरः।
समुष्णन् दानवं तेजः समरे स्वेन तेजसा।४५
चिच्छेद बहूश्चक्रेण श्रीधरः कालनेमिनः।
तच्च वक्त्रशतं घोरं साग्निपूर्णाट्टहासि वै।४६
तस्य दैत्यस्य चक्रेण प्रममाथ बलाद्धरिः।
स छिन्नबाहुर्विशिरा न प्राकम्पतदानवः।४७
कबन्धोऽवस्थितः संख्ये विशाख इव पादपः।
सम्वितत्यमहापक्षौवायोः कृत्वासमञ्जसम्।४८
उरसा पातयामास गरुडःकालनेमिनम्।
स तस्य देहो विमुखो विबाहुश्च परिभ्रमन्।४९

वह ऊपर बतलाये गुणगणों वाला सुदर्शन चक्र महर्षियों के रोषों से समाविष्ट था और नित्य ही युद्ध में दर्प से समायुक्त रहने वाला था। जिसके क्षेपण करने से सभी स्थावर एवं जङ्गम लोक मूर्छित हो जाया करते हैं। महान युद्ध में क्रव्याद आदि जो भूत हैं वे उस चक्र के द्वारा प्रवाहित हुए शत्रुओं के रक्त के पान से परम तृप्ति को प्राप्त

हुआ करते हैं ऐसे उस अनुपम कर्म के करने से उग्र और सूर्य के वर्चस के तुल्य उस अपने सुदर्शन चक्र को उठाकर समर में क्रोध से दीप्त गदाधर ने छोड़कर अपने तेज के द्वारा युद्धस्थल में दानवों के तेज का छेदन कर दिया था और श्रीधर प्रभु ने उस अपने चक्र से कालनेमिकी बाहुओं को भी काट डाला था। उस दानव के अग्नि से परिपूर्ण अट्ट-हास वाले सौ परम घोर मूखों का श्री हरि ने उसी चक्र के द्वारा बल पूर्वक प्रमथन कर दिया था। किन्तु वह दानव बाहुओं और शिर के कट जाने पर भी वहाँ पर प्रकम्पित नहीं हुआ था। उसका वह कबन्ध (धड़) युद्ध स्थल में बिना शाखा वाले पादप के समान अवस्थित था। गरुड़ ने अपने पंखों को फैलाकर तथा वायु के समान वेग को करके अपने उर-स्थल के द्वारा उस कालनेमि के धड़ को नीचे गिरा दिया था और उसका वह बिना मुख तथा बाहुओं वाला देह इधर-उधर परिभ्रमण कर रहा था।४३-४६।

निपपात दिवन्त्यक्त्वा क्षोभयन् धरणीतलम्।
तस्मिन्निपतिते दैत्येदेवाः सर्षिगणास्तदा।५०
साधु साध्विति वैकुण्ठं समेताः प्रत्यपूजयन्।
अपसर्पन्तु दैत्याश्च युद्धे दृष्टपराक्रमाः।५१
ते सर्वे बाहुभिर्व्याप्ता न शेकुश्चलितं रणे।
कांश्चित् केशेषु जग्राह कांश्चित् कण्ठेष्वपीडयन्।५२
चकर्ष कस्यचिद्वक्त्रं मध्येगृह्णादथापरम्।
ते गदाचक्रनिदग्धा गतसत्वा गतासवः।५३
गगनाद्भ्रष्टसर्वाङ्गा निपेतुर्धरणीतले।
तेषु दैत्येषु सर्वेषु हतेषु पुरुषोत्तमः।५४
तस्थौ शक्रप्रियं कृत्वा कृतकर्मा गदाधरः।
तस्मिन् विमर्दे निर्वृत्ते संग्रामे तारकामये।५५
तं देशमाजगामाशु ब्रह्मलोकपितामहः।
सर्वैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्द्धं गन्धर्वाप्सरसाङ्गणैः।५६

वह धरणी तल को क्षोभित करता हुआ दिवलोक को त्याग कर के भूमि पर गिर गया था। उस समय में उस महा दानेश्वर के निपतित हो जाने पर समस्त देवगण और ऋषि वृन्द 'साधु-साधु' अर्थात् बहुत ही अच्छा हुआ यह कहते हुए सब एकत्रित होकर भगवान वैकुण्ठ नाथ की पूजा करने लगे थे। युद्ध में दैत्यगण पराक्रम देख लेने वाले अपसर्पण कर जावे। किन्तु बाहुओं से व्याप्त वे सब रणस्थल में चल नहीं सकते थे। उनमें से कुछ को तो केश पकड़ कर ग्रहण किया था और कुछ को कण्ठों में ताड़ित किया था।५०-५२। किसी के मुख को पकड़कर कंपित किया था और दूसरे को मध्य भाग में ग्रहण किया था। वे सब गदा और चक्र के प्रहारों से निर्दग्ध—गत प्राण और हीन तत्वों वाले हो गये थे।५३। गगन से उद्भ्रष्ट अङ्गों वाले धरणी तल में सब निपतित हो गये थे। उन सब दैत्यों के निहत हो जाने पर पुरुषोत्तम प्रभु गदाधारी महेन्द्र का कर्म सम्पादन करके तथा इन्द्र का प्रियकर्म करके उस बिमर्द तारकामय संग्राम के निवृत होने पर वहाँ पर ही समवस्थित हो गये थे। उसी स्थल पर लोकों के पितामह ब्रह्माजी समस्त ब्रह्मर्षिगण और गन्धर्व एवं अप्सरागणों के साथ शीघ्र ही आकर उपस्थित हो गये थे।५४-५६।

देवदेवो हरिं देवं पूजयन् वाक्यमब्रवीत्।
कृतं देव महत्कर्म सुराणां शल्यमुद्धृतम्।५७
वधेनानेन दैत्यानां वयं च परितोषिताः।
योऽयं त्वया हतो विष्णो ! कालनेमी महासुरः।५८
त्वमेकोऽस्य मृधे हन्ता नान्यः कश्चन विद्यते।
एषदेवान्परिभवन्लोकांश्चससुरासुरान्।५९
ऋषीणां कदनं कृत्वा मामपि प्रतिगर्जति।
तदनेन तवाग्र्येण परितुष्टोऽस्मि कर्मणा।६०

यदयं कालकल्पस्तु कालनेमिर्निपातितः ।
तदा गच्छस्व भद्रन्ते गच्छाम दिवमुत्तमम् ।६१
ब्रह्मर्षयस्त्वां तत्रस्थाः प्रतीक्षन्ते सदोगताः ।
कञ्चाहं तव दास्यामि वरं वरवताम्वर ! ।६२
सुरेष्वथ च दैत्येषु वराणां वरदो भवान् ।
निर्यातयैतत्त्रैलोक्ये स्फीतं निहतकण्टकम् ।६३

वेदों के देव श्री हरिदेव का अभ्यर्चन करते हुए यह वाक्य कहा था कि हे देव ! आपने बहुत बड़ा कर्म सम्पादित किया है और सुर गणों के शल्य को आपने उद्धृत कर डाला है । दैत्यों के इस बध से आपने हम सबको परितोषित कर दिया है जो कि हे विष्णो ! आपने इस महासुर कालनेमि को निहत कर डाला है ।५७-५८। इस युद्ध में आपही एक इसके हनन करने वाले थे अन्य कोई भी आपके अतिरिक्त नहीं है । इससे सब वेदों को परिभूत कर दियाहै और सुरों एवं असुरों के सहित लोकों का भी परिभव किया है । यह ऐसा दुष्ट था कि यह ऋषियों का कवन करके मुझको भी अपनी गर्जना दिखाता था । आप के अत्युत्तम इस कर्म से मैं बहुत ही परितुष्ट हुआ हूँ ।५९-६०। जो यह काल के सदृश कालनेमि आपके द्वारा निपतित हुआ है यह बहुत ही अच्छा हो गया । अब आप पधारिए आप का परम मङ्गल होवे— अब हमभी उत्तम दिवलोक को चलते हैं । वहाँ पर सदोगत समुपस्थित ब्रह्मर्षि गण आपकी प्रतिक्षा कर रहे हैं । हे वरदान देने वालों में परम श्रेष्ठ ! मैं आपको कौन-सा वरदान दूँगा । आप सुरों में और दैत्यों में वरदानों को प्रदान करने वाले वरद हैं । इस परम विस्तृत त्रैलोक्य को निहत कण्टक वाला निर्यात कर डालिए ।६१-६३।

अस्मिन्नेव मृधे विष्णो ! शक्रास सुमहात्मने ।
एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणा हरिरव्ययः ।६४

देवांश्छक्रमुखान् सर्वानुवाच शुभया गिरा ।
शृण्वन्तु त्रिदशाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः ।६५
श्रवणावहितैः श्रोत्रैः पुरस्कृत्य पुरन्दरम् ।
अस्माभिः समरे सर्वे कालनेमिमुखा हताः ।६६
दानवा विक्रमोपेताः शक्रादपि महत्तराः ।
अस्मिन्महति संग्रामे दैतेयौ द्वौ विनिःसृतौ ।६७
विरोचनश्च दैत्येन्द्रः स्वर्भानुश्च महाग्रहः ।
स्वां दिशं भजतां शक्रो दिशं वरुण एव च ।६८
याम्यां यमः पालयितामुत्तराञ्च धनाधिपः ।
ऋक्षैः सह यथायोगं गच्छतां चैव चन्द्रमाः ।६९
अब्दं ऋतुमुखे सूर्यो भजतामयनैः सह ।
आज्यभागाः प्रवर्त्तन्तां सदस्यैरभिपूजिताः ।७०

हे विष्णो ! इसी युद्ध में आपने महान आत्मा वाले इन्द्र के लिए यह सब कर दिया है । इस प्रकार से भगवान ब्रह्माजी के द्वारा भाव-नाशी श्री हरि से कहा गया था । तब श्री हरि ने इन्द्र जिनमें प्रधान थे उन समस्त देवों से परम शुभ वाणी में कहा था—विष्णु भगवान ने कहा था—अब सब देवगण श्रवण करलो जितने यहाँ पर इस समय में समागत हुए हैं ।६४-६५। श्रवण में परम समाहित श्रोत्रों से पुरन्दर को आगे करके हमने समर में कालनेमि प्रमुख सब दानव निहत कर दिए थे । ये समस्त दानव विक्रम से उपेत थे तथा इन्द्र से भी महत्तर थे । इस महान संग्राममें दो दैतेय विनिःसृत हुए थे।६६-६७। एक तो दैत्येन्द्र विरोचन था दूसरा महान ग्रह स्वर्भानु था । अब इन्द्र अपनी दिशा को सेवन करे और वरुण अपनी दिशा को चले जावें ।६८। याम्य दिशा में यम चले जावें । धनाधि उत्तर दिशा में यम चले जावें । ऋक्षों के सहित यथा योग चन्द्रमा भी चले जावें । ऋतुमुख में अब्दों के सहित

सूर्य शब्द का सेवन करे। सदस्योंके द्वारा अभिपूजित आज्यभाग प्रवृत्त हो जावें।६९-७०।

हूयन्तामग्नयो विप्रैर्वेददृष्टेन कर्मणा।
देवाश्चाप्यग्निहोमेन स्वाध्यायेन महर्षयः।७१
श्राद्धेन पितरश्चैव तृप्ति यान्तु यथासुखम्।
वायुश्चरतु मार्गस्थस्त्रिधा दीप्यतु पावकः।७२
त्रींस्तु वर्णाश्च लोकांस्त्रींस्तर्पयंश्चात्मजैर्गुणैः।
कृतवः सम्प्रवर्तन्तां दीक्षणीयैर्द्विजातिभिः।७३
दक्षिणाश्चोपपाद्यन्तां याज्ञिकेभ्यः पृथक् पृथक्।
यान्तु सूर्यो रसान् सोमो वायुः प्राणांश्च प्राणिषु।७४
तर्पयन्तः प्रवर्तन्तां सर्वएव स्वकर्मभिः।
यथावदानुपूर्व्येण महेन्द्रमलयोद्भवाः।७५
त्रैलोक्यमातरः सर्वाः समुद्रं यान्तु सिंधवाः।
दैत्येभ्यस्त्यज्यतां भीश्च शान्ति व्रजत देवताः।७६
स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि ब्रह्मलोकं सनातनम्।
स्वगृहे स्वर्गलोके वा संग्रामे वा विशेषतः।७७

वेदों के द्वारा दृष्ट कर्म से विप्रों के द्वारा अग्नियों में हवन किया जावे। अग्नि के होम म देवगण-स्वाध्याय से महर्षि गण और श्राद्ध से पितृगण सुखपूर्वक तृप्तिको प्राप्तकरें। वायु अपने मार्गमें स्थित होकर सञ्चरण करें और पावक तीन प्रकार दीप्त होवे दक्षिणीय द्विजातियों के द्वारा ऋतुगण तीन वर्णोंको और तीन लोकोंको अपने गुणों से तृप्ति करते हुए सम्प्रवृत्त होवें।७१-७३। याज्ञिकों के लिए पृथक-२ दक्षिणायें उत्पन्न होवें। सूर्य गौ को सोम रसों को और वायु प्राणियों में प्राणों को प्रदान करें। सभी अपने-अपने कर्मों के द्वारा तृप्त करते हुए प्रवृत्त होवें। यथावत् आनुपूर्वी से महेन्द्र और मलय में उद्भव पाने वाले स्वकर्मोंसे तृप्ति देते हुए प्रवर्त्तित हो जावें। त्रैलोक्य

की माताएं समस्त सिन्धु समुद्र में गमन करें। सब देवता लोग अब दैत्यों के द्वारा होने वाले भयका त्याग कर देवें। और सबका कल्याण होवे। अब मैं सनातन ब्रह्मलोक को गमन करूँगा। अथवा घर में---स्वर्ग लोक में तथा विशेष रूप से संग्राम में गमन करूँगा।७४-७७।

विश्रम्भो वो न मन्तव्यो नित्यं क्षुद्रा हि दानवाः।
छिद्रेषु प्रहरन्त्येते न तेषां संस्थितिः ध्रुवा।७८
सौम्यानामृजुभावानां भवतामार्जवन्धनम्।
एवमुक्त्वा सुरगणान् विष्णुः सत्यपराक्रमः।७९
जगाम ब्रह्मणा सार्द्धं स्वर्लोकन्तु महायशाः।
एतदाश्चर्यमुक्तं संग्रामे तारकामये।
दानवानाञ्च विष्णोश्च यन्मान्त्वं परिपृष्टवान्।८०

आपको विश्रम्भ नहीं मानना चाहिए। ये दानव नित्य ही क्षुद्र हैं। छिद्रों में ही प्रहार किया करते हैं और उनकी संस्थिति निश्चित नहीं है।७८। आप लोग परम सौम्य तथा सरल भावों वाले हैं। आपका आर्जव (सरलता) ही धन है। इस प्रकार से सत्य पराक्रम वाले भगवान विष्णु ने सुर-गणों से कहकर फिर महान यश वाले वे ब्रह्माजी के साथ ही स्वर्गलोक को चले गये थे। उस तारकामय संग्राम में यह एक आश्चर्य हो गया था जिसको दानवों का और भगवान् विष्णु का ही कहना चाहिए और यही आपने मुझसे पूछा था।७९-८०।

७२–भव माहात्म्य वर्णन

श्रुतः पद्मोद्भवस्तात विस्तरेण त्वयेरितः ।
समासाद्भवमाहात्म्यं भैरवस्य विधीयताम् ।१
तस्यापि देवदेवस्य शृणुध्वं कर्म चोत्तमम् ।
आसीद्दैत्योऽन्धको नाम भिन्नाञ्जनचयोपमः ।२
तपसा महता युक्तोह्यवध्यस्त्रिदिवौकसाम् ।
स कदाचिन् महादेवं पार्वत्या सहितं प्रभुम् ।३
क्रीडमानं तदा दृष्ट्वा हर्तुं देवीं प्रचक्रमे ।
तस्य युद्धं तदा घोरमभवत् सह शम्भुना ।४
आवन्त्ये विषये घोरे महाकालवनं प्रति ।
तस्मिन्युद्धे तदा रुद्रश्चान्धकेनातिपीडितः ।५
सुषुवे बाणमत्युग्रं नाम्ना पाशुपतं हि तत् ।
रुद्राबाणविनिर्भेदाद्रुधिरादन्धस्य तु ।६
अन्धकाश्च समुत्पन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः ।
तेषां विदीर्यमाणानां रुधिरादपरे पुनः ।७

ऋषिगण ने कहा—हे भगवन ! आपके द्वारा वर्णित विस्तार-पूर्वक पद्मोभव का श्रवण कर लिया है । अब आप संक्षेप में भैरव का भव माहात्म्य वर्णित कीजिए ।१। महर्षि सूतजी ने कहा—देवों के देव उसके भी उत्तम कर्म का आप श्रवण करो । एक अन्धक नाम वाला भिन्नाञ्जन चय वाला दैत्य था ।२। वह दैत्येन्द्र महान तप से युक्त था और देवों का वध न करने के योग्य था । उसने किसी समय में पार्वती के सहित प्रभु महादेव को क्रीड़ा करते हुए देख लिया था और उसी समय में दैत्य ने देवी पार्वती के हरण करने का उपक्रम किया था । उसी समय में उस दैत्य का शम्भु के साथ परम घोर युद्ध हुआ था ।३-४। आनन्त्य घोर विषय में महाकाल वन के प्रति उस समय में

उस महायुद्ध मे अन्धक के द्वारा रुद्रदेव को अत्यन्त उत्पीड़ित किया था ।५। पाशुपत नाम वाले अत्यन्त उग्र बाण को प्रसूत किया था। रुद्रदेव के बाण के द्वारा विशेष निर्भेद को प्राप्त होने वाले अन्धक के रुधिर मे सैंकड़ों और सहस्रों अन्धक समुत्पन्न हो गए थे। जब उनका विदारण किया गया तो फिर विदीर्यमाण उनके रुधिर से दूसरे और फिर अन्धक पैदा होगए थे ।६-७।

बभूवुरन्धका घोरा यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ।
एवं मायाविनं दृष्ट्वा तत्रच देवस्तदान्धकम् ।८
पानार्थमन्धकास्रस्य सोऽसृजन्मातरस्तदा ।
माहेश्वरी तथा ब्राह्मी कौमारी मालिनीतथा ।९
सौपर्णी ह्यथ वायव्या शाक्री वै न ऋती तथा ।
सौरी सौम्या शिव दूती चामुण्डा चाथ वारुणी ।१०
बाराही नारसिंहीच वैष्णवीच चलच्छिखा ।
शतानन्दाभगानन्दा पिच्छिलाभगमालिनी ।११
बलया चातिबला रक्ता सुरभी मुखमण्डिका ।
मातृनन्दा सुनन्दाच विडाली शकुनी तथा ।१२
रेवतीच्च महारक्ता तथैव पिलपिच्छिका ।
जयाच विजया चैव जयन्ती चापराजिता ।१३
काली चैव महाकाली दूती चैव तथैव च ।
सुभग दुर्भगा चैव कराली नन्दिनी तथा ।१४

उस समय में परम घोर अन्धक उत्पन्न हो गए थे जिनसे यह समस्त जगत् एकदम व्याप्त हो गया था। उस समय में इस प्रकार से मायावी उस अन्धक को देव ने देखकर उस अन्धकास्र के पान के लिए उस समय में उन्होंने माताओं का सृजन किया था। अब उन माताओं के नाम बतलाये जाते हैं—माहेश्वरी, ब्राह्मी, कौमारी, मालिनी, सौपर्णी, वायव्या, शाक्री, नैऋती, सौरी, सौम्या, शिवा, दूती, चामुण्डा

ब्राह्मणी ।८-१०। वाराही, नारसिंही, वैष्णवी, चलच्छिखा, शतानन्दा, भगानन्दा, पिच्छला, भगमालिनी, बला, अतिबला, रक्ता, सुरभी, मुखमण्डिका, मातृनन्दा, सुनन्दा, बिडाली, शकुनी, रेवती, महारक्ता, पिलपिच्छिका, जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता, काली, महाकाली दूती, सुभगा, दुर्भगा, कराली, नन्दिनी ।११-१४।

अदितिश्च दितिश्चैव मारीवै मृत्युरेव च ।
कर्णमोटी तथा ग्राम्या उलूकीच घटोदरी ।१५
कपाली वज्रहस्ता च पिशाची राक्षसी तथा ।
भुशुण्डी शाङ्करी चण्डा लाङ्गली कुटभी तथा ।१६
खेटा सुलोचना धूम्रा एकवीरा करालिनी ।
विशालदंष्ट्रिणी श्यामा त्रिजटीकुक्कुटीतथा ।१७
वैनायकी च वैताली उन्मत्तोदुम्बरी तथा ।
सिद्धिश्च लेलिहाना च केकरी गर्दभीतथा ।१८
भृकुटी बहुपुत्रीच प्रेतयाना विडम्बिनी ।
क्रौञ्ची शैलमुखी चैव विनता सुरमा दनुः ।१९
उषा रम्भा मेनकाच सलिला चित्ररूपिणी ।
स्वाहास्वधा वषट्कारा धृतिज्येष्ठाकपर्दिनी ।२०
माया विचित्ररूपा च कामरूपा च सङ्गमा ।
मुखेयिला मङ्गला च महानासा महामुखी ।२१

अदिति, दिति, मारी, मृत्यु, कर्णमोटी, ग्राम्या, उलूकी, घटोदरी, कपाली, वज्रहस्ता, पिशाची, राक्षसी, भुशुण्डी, शाङ्करी, चण्डा, लाङ्गली, कुटभी, खेरा सुलोचना, धूम्रा, एकवीरा, करालिनी विशाल दंष्ट्रिणी श्यामा, त्रिजटी, कुक्कुटी, वैनायकी, वैताली, उन्मत्ता, उदुम्बरी, सिद्धि, लेलिहाना, केकरी, गर्दभी, भृकुटी, बहुपुत्री, प्रेतयाना विडम्बिनी, क्रौञ्ची, शैलमुखी, विनता, सुरमा, दनु, ऊषा, रम्भा,

मेनका, सलिला, चित्ररूपिणी, स्वाहा, स्वधा, वषट्कारा, धृति, ज्येष्ठा कपर्दिनी, माया, विचित्र, रूपा, कामरूपा, सङ्गना, मुखेबिला मंगला, महानाशा, महामुखी ।१५-२१।

कुमारी रोचनाभीमा सदाहा सा मदोद्धता ।
अलम्बाक्षी कालपर्णी कुम्भकर्णी महासुरी ।२२
केशिनी शङ्खिनीलम्बा पिङ्गलालोहितामुखी ।
घण्टारवाथदंष्ट्रा रोचना काकजङ्घिका ।२३
गोकर्णिकाच मुखिका महाग्रीवा महामुखी।
उल्कामुखी धूमशिखा कम्पिनी परिकम्पिनी ।२४
मोहना कम्पनाक्ष्वेला निर्भया बाहुशालिनी ।
सर्पकर्णी तथैकाक्षी विशोकानन्दिनी तथा ।२५
ज्योत्स्नामुखीच रभसा निकुम्भा रक्तकम्पना ।
अविकारा महाचित्रा चन्द्रसेना मनोरमा ।२६
अदर्शना हरत्पापा मातङ्गी अम्गमेखला ।
अचाला बञ्चना काली प्रमोदा लाङ्गलावती ।२७
चिंता चित्तजला कोणा शान्तिकाघविनाशिनी ।
लम्बस्तनी लम्बसटा विसटा वासचूर्णिनी ।२८

कुमारी, रोचना, भीमा, सदाहा, मदोद्धता, अलम्बाक्षी, कालपर्णी कुम्भपर्णी, महासुरी, केशिनी, शंखिनी, लम्बा, पिंगला, लोहितामुखी, घन्टारवा, दंष्ट्राला, रोचना, काकजंघिका, गोकर्णिका, मुखिका, महाग्रीवा, महामुखी, धूमशिखा, कम्पिनी, परिकम्पिनी, मोहना, कम्पना क्ष्वेला, निर्भया। बाहुशालिनी, सर्पकर्णी, एकाक्षी, विशोका, ज्योत्स्नामुखी, रभसा, निकुम्भा, रक्त कम्पना, अविकारा, महाचित्रा, चन्द्रसेना, मनोरमा, अदर्शना, हरत्पापा, मातङ्गी, लम्ब मेखला, अचाला, बञ्चना, काली, प्रमोदा, लांगलावती, चिन्ता चित्त, जला,

कोणा, शान्तिका, अघ विनाशिनी, लम्बस्तनी, लम्बसटा, बिसटा-वास चूर्णिनी ।२२-२८।

स्खलन्ती दीर्घकेशीच सुचिरा सुन्दरी शुभा ।
अयोमुगी कटुमखी क्रोधनी च तथाशनी ।२६
कुटुम्बिका मुक्तिका च चन्द्रिका बलमोहिनी ।
सामान्या हासिनी लम्बा कोविदारी समासवी ।३०
कंकुकर्णी महानादा महादेवी महोदरी ।
हुङ्कारी रुद्रसुसटा रुद्रेशी भूतडामरी ।३१
पिण्डजिह्वा चलज्ज्वाला शिवाज्वालामुखी तथा ।
एताश्चान्याश्च देवेश: सोऽसृजन्मामरस्तदा ।३२
अन्धकानां महाघोरा: पपुस्तद्रुधिरं तदा ।
ततोऽन्धकासृज: सर्वा: परां तृप्तिमुपागता: ।३३
तासु तृप्तासु संभूता भूय एवान्धकप्रजा: ।
अर्दितस्तैमहादेव: शूलमुद्गरपाणिभि: ।३४
तत: स शङ्करो देवस्त्वन्धकैर्व्याकुलीकुत: ।
जगाम शरणं देवं वासुदेवं वासुदेवंमजं विभुम् ।३५

स्खलन्ती, दीर्घकेशी, सुचिरा, सुन्दरी, शुभा, अयोमुखी, कटुमुखी, क्रोधनी, अशनी, कुटुम्बिका, मुक्तिका, बलमोहिनी, सामान्या, हासिनी, लम्बा, कोविदारी, समासवी, कंकुकर्णी, महानादा, महादेवी, महोदरी हुँकारी, रुद्र, सुसटा, रुद्रेशी, भूतडामारी, पिण्डजिह्वा, चलज्ज्वाला, शिवा, ज्वालामुखी इन इतना तथा अन्य माताओं का देवेश्वर ने उस समय में सृजन किया था ।२६-३२। उस समय में इन महा घोराओं ने रुधिर का पान किया था । इसके अनन्तर अन्धकों के रुधिर से सभी मातायें के रुधिर से सभी माताएं परम तृप्तिको प्राप्त हुई थीं । उनके तृप्त होने पर भी पुन: अन्धकों की प्रजा उत्पन्न हुई थीं । शूल और मुदगर हाथों में धारण करने वाले उनके द्वारा महादेव बहुत ही अर्दित

हुए थे। इसके उपरान्त वह देव शंकर अन्धकों के द्वारा व्याकुल कर दिए गये थे और फिर वे अज—प्रभु वासुदेव भगवान की शरणागति में प्राप्त हुए थे।३३-३५।

ततस्तु भगवान् विष्णुः सृष्टवान् शुष्करेवतीम्।
या पपौ सकलन्तेषामन्धकानामसृक् क्षणात्।
यथा यथा च रुधिरं पिबन्त्यन्धकसम्भवम्।३६
तथा तथाऽधिकं देवी संशुष्यति जनाधिप!।
पीयमाने तथातेषामन्धकानां तथासृजि।
अन्धकास्तु क्षयन्नीताः सर्वे ते त्रिपुरारिणा।३७
मूलान्धकन्तु विक्रम्य तदा शर्वस्त्रिलोकधृक्।
चकार वेगाच्छूलाग्रे सचतुष्टावशङ्करम्।३८
अन्धकस्तु महावीर्यस्तस्य तुष्टोऽभवद्भवः।
सामीप्यं प्रददौ नित्यं गणेशत्वं तथैव च।३९
यतो मातृगणाः सर्वे शङ्करं वाक्यमब्रुवन्।
भगवन्! भक्षयिष्यामः सदेवासुरमानुषान्।४०
त्वत्प्रसादाज्जगत् सर्वं तदनुज्ञातुमर्हसि।
भवतीभिः प्रजाः सर्वा रक्षणीया न संशयः।४१
तस्माद्घोरादभिप्रायान्मनः शीघ्रं निवर्त्यताम्।
इत्येवं शंकरेणोक्तमनादृत्य वचस्तदा।४२

इसके अनन्तर भगवान् विष्णु ने शुष्क रेवती की सृष्टि की थी जिसने क्षण भर में ही उन अन्धकों के रक्त को पी लिया था। हे जनाधिप! जैसे-२ वे उस अन्धक के रुधिर का पान करती थीं वैसे-२ ही देवी अधिक शुष्क हो जाया करती थी। उस प्रकार से अन्धकों के रक्त का पाव कर लेने पर वे सब अन्धक त्रिपुरारि के द्वारा क्षय को प्राप्त कर दिए गए थे।३६-३७। उस समय में मूलान्धक था उस पर त्रिलोकी के धारण करने वाले भगवान् शिव ने विक्रम करके वेग के

साथ उसको अपने त्रिशूल के अग्रभाग पर कर दिया था। उस अन्धक ने फिर भगवान् शंकर का स्तवन किया था। वह अन्धक महान् वीर्य वाला था और उससे भगवान् भव परम तुष्ट हो गये थे। फिर तो शंकर ने उसको अपनी समीपता में रहने का पद तथा गणेशत्व पद का प्रदान किया था।३८-३९। इसके अनन्तर सब मातृगणों ने भगवान् शंकर से यह वाक्य कहा था—हे भगवन्! हम अब सब देव-असुर और मानवों का भक्षण करेंगी क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् आपके ही प्रसाद से समुत्पन्न हुआ है और स्थित है सो अब आप हमको आज्ञा प्रदान करने के योग्य होते हैं। भगवान् शङ्कर ने उनसे कहा था। शंकर बोले—आप सबको इन प्रजाओं की रक्षा करनी चाहिए। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इसलिए इन घोर जो प्रजाओं के भक्षण कर जाने के अभिप्राय हैं उनसे शीघ्र ही अपने मन को हटालो। इस प्रकार से कहे हुए इन भगवान् शंकर के वचनों का उन मातृगणों ने उस समय में अनादर कर दिया था।४०-४२।

भक्षयामासुरत्युग्रास्त्रैलोक्यं सचराचरम्।
त्रैलोक्ये भक्ष्यमाणे तु तदा मातृगणेन वै।४३
नृसिंहमूर्त्तिं देवेश प्रदध्यौ भगवाञ्छिवः।
अनादिनिधनं देवं सर्वलोकभवोद्भवम्।४४
दैत्येन्द्रवक्षोरुधिरचर्चिताग्रमहानखम्।
विद्युज्जिह्वं महादंष्ट्रं स्फुरत्केसरकण्टकम्।
कल्पान्तामरुतक्षुब्धं सप्तपर्णसमस्वनम्।४५
वज्रतीक्ष्णनखं घोरमाकर्णव्यादिताननम्।
मेरुशैलप्रतीकाशमुदयार्कसमेक्षणम्।४६
हिमाद्रिशिखराकारं चारुदंष्ट्रोज्ज्वलाननम्।
नखनिःसृतरोषाग्निज्वालाकेसरमालिनम्।४७
वज्राङ्गदं सुमुकुटं हारकेयूरभूषणम्।

श्रोणोसूत्रेणामहता काञ्चनेन विराजितम् ।४८
नीलोत्पलदलश्यामं वासोयुगविभूषणम् ।
तेजसाक्रान्तसकलब्रह्माण्डागारसंकुलम् ।४९

अत्युग्र स्वरूप वाली उन माताओं ने इस चराचर सम्पूर्ण जगत् तथा त्रैलोक्य का भ्रमण करना आरम्भ कर दिया था । उस समय में मातृगण के द्वारा इस त्रिलोकी के भक्ष्यमाण होने पर भगवान शिव ने देवेश श्री नृसिंह मूर्त्ति का ध्यान किया था जिनका स्वरूप आदि और अन्त से रहित है और जो इस सम्पूर्ण लोक के उत्पत्ति को करने वाले हैं । दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल के रुधिर से चर्चित महान् नखों वाले—विद्युत के तुल्य जीभ से युक्त—महान् दाढ़ों वाले—स्फुरित हुए केसरों के कण्टकों से संकुल-कल्प के अन्तमें क्षोभ से पूर्ण मारुत से समन्वित तथा सप्तपर्ण वृक्षोंके तुल्य ध्वनि वाले थे । वज्रके समान तीक्ष्ण नखों वाले—घोर-कानों तक व्याहित मुख वाले—मेरु पर्वत के सदृश—उदय कालीन सूर्य के समान नेत्रों वाले—हिमालयकी शिखर के समान आकार से संयुत—सुन्दर दाढ़ों समुज्ज्वल मुख वाले—नखों से निकली हुई रोषाग्नि की ज्वालाओं की माला वाले—वज्र के अङ्गों के धारण कर्त्ता-मुकुट से युक्त—हार और केयरों के आभरण से भूषित-तेज से समाक्रान्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के आगार से सकुल उनका स्वरूप था । ।४३-४९।

पवनं भ्राम्यमाणानां हुतहव्यवहार्चिषाम् ।
आवर्तसदृशाकारैः संयुक्तं देहलोमजैः ।५०
सर्वपुष्पविचित्राञ्च धारयन्तं महास्रजम् ।
स ध्यातमात्रो भगवान् प्रददौ तस्य दर्शनम् ।५१
यादृशेनैवरूपेण ध्यायते रुद्रेण धीमता ।
तादृशेनैव रूपेण दुर्निरीक्ष्येण दैवतैः ।५२

प्रणिपत्य तु देवेशं तदा तुष्टाव शङ्कर: ।
नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ ! नरसिंहवपुर्धर ! ।५३
दैत्यनाथासृजापूर्ण ! नखशक्तिविराजित ।
ततः सकलसंलग्नहेमपिङ्गलविग्रह ! ।५४
नतोऽस्मिपद्मनाभ ! त्वां सुशक्र ! जगद्गुरो ।
कल्पान्ताम्भोदनिर्घोष ! सूर्यकोटिसमप्रभ ।५५
सहस्रयमसंक्रोध ! सहस्रेन्द्रपराक्रम ! ।
सहस्रधनदस्फीत ! सहस्रवरुणात्मक ! ।५६

हुत की हुई हव्य को वहन करने वाले अग्नि की भ्राम्यमाण अर्चियों के पवन, आवर्त्त के सदृश आकारों वाले के लोमजों से संयुक्त सभी तरह के पुष्पों से अद्भुत महामाला को धारण करने वाले श्री नृसिंह का स्वरूप था। जैसे ही शिव ने उनका उपर्युक्त स्वरूप से समन्वित वपु का ध्यान किया था वैसे ही तुरन्त उन्होंने शिवको अपना दर्शन दिया था। जिस प्रकार के स्वरूप का धीमान रुद्रदेव के द्वारा ध्यान किया गया था उसी प्रकार देवों के द्वारा भी दुर्निरीक्षणीय स्वरूप से वह वहाँ उपस्थित हुए थे। भगवान शकर ने उनको प्रणिपात करके फिर स्तुति की थी। भगवान् शंकर ने कहा—हे जगत् के स्वामिन् आप तो नर और सिंह दोनों के स्वरूप को धारण करने वाले हैं। ऐसे आपको नमस्कार है। हे दैत्यनाथों के रक्त से आपूर्ण—हे नखों की शक्ति से विराजमान ! हे शम्पूर्ण संलग्न हेम के सदृश पिङ्गल विग्रह वाले ! हे पद्मनाभ ! मैं आपको प्रणत होता हूँ। हे सुरों के शक्र ! हे जगत के गुरो ! हे कल्पान्त में अम्भोदके समान निर्घोष वाले ! आप तो करोड़ों सूर्यों के समान प्रभा वाले हैं। आपका क्रोध सहस्रों यमों के समान है। आप सहस्रों इन्द्रों के समान पराक्रम वाले हैं। आप सहस्रों धनदों के तुल्य स्फीत है और आप सहस्रों वरुणों के स्वरूप वाले हैं।५०-५६।

सहस्रकालरचित ! सहस्रनियतेन्द्रिय ।
सहस्रभूमिसद्धर्य ! सहस्रानन्त ! मूर्तिमन् ।५७
सहस्रचन्द्रप्रतिम ! सहस्रग्रहविक्रम ! ।
सहस्ररुद्रतेजस्क ! सहस्रब्रह्मसंस्तुत ! ।५८
सहस्रबाहुवर्गीय ! सहस्रास्य निरीक्षण ! ।
सहस्रयन्त्रमथन ! सहस्रबंधमोचन ! ।५९
अन्धकस्य विनाशय याः सृष्टाःमातरो मनः ।
अनादृत्य तु मद्वाक्यम्भक्षयन्त्यद्य ताः प्रजाः ।६०
कृत्वा ताश्च न शक्तोऽहं संहर्तुमपराजित ।
स्वयङ्कृत्वा कथन्तासांविनाशमभिकारये ।६१
एवमुक्तः स रुद्रेण नरसिंहवपुर्धरः ।
ससर्ज देवो जिह्वायास्तदा वाणीश्वरीं हरिः ।६२
हृदयाच्च तथा माया गुह्याच्च भवमालिनी ।
अस्थिभ्यश्च तथा काली सृष्टा पूर्वं महात्मना ।६३

हे सहस्र कालों मे रचित ! हे सहस्र नियत इन्द्रियों वाले ! हे सहस्र भूमि सद्धर्य ! हे सहस्रानन्त ! हे मूर्तिमान ! हे सहस्र चन्द्रों की प्रतिमा वाले ! आप तो सहस्रों ग्रहों के विक्रम वालेहैं और सहस्र चन्द्रों के तेजसे संयुत हैं। आप सहस्रों ब्राह्मणों के द्वारा संस्तुत हैं। हे सहस्र बाहु वर्गीय! हे सहस्राक्ष के समान नेत्रों वाले ! हे सहस्र बध मोचन ! मैंने अन्धक दैत्य के विनाश के लिए जिन मातृगण का सृजन किया था वे ही आज मेरे वचन का अनादर करके उन प्रजाओं का भक्षण कर रही हैं। हे अपराजित ! उस मातृगण को सृजन करके अब उसके संहार करने में मैं अशक्त हो रहा हूँ क्योंकि स्वयं ही मैंने जिसको बनाया था उसका विनाश में ही स्वयं कैसे करूँ। इस प्रकार से रुद्र देव के द्वारा उन नृसिंह वपु के धारी प्रभु से जब कहा गया था उन हरिदेव ने जिह्वा की वाणीश्वरी की रचना की थी। हृदय से माया

—गुह्य से भवमालिनी और अस्थियोसे कोली का पहिले उस महात्मा ने सृजन किया था ।५७-६३।

यया तद्रुधिरम्पीतमन्धकानां महात्मनाम् ।
याचास्मिन् कथिता लोके नामतः शुष्करेवती ।६४

द्वात्रिंशन्मातरःसृष्टा गात्रेभ्यश्चक्रिणा ततः ।
तासां नामानि वक्ष्यामि तानि मे गदतः शृणु ।६५

सर्वास्तासु महाभागा घण्टाकर्णी तथैव च ।
त्रैलोक्यमोहिनी पुण्या सर्वसत्ववशंकरीं ।६६

तथा च चक्रहृदया पञ्चमी व्योमचारिणी ।
शङ्खिनी लेखिनी चैव कालसंकर्षणी तथा ।६७

इत्येताः पृष्ठगा राजन् ! वागीशानुचराः स्मृताः ।
संकर्षणीतथाश्वत्थां बीजभावापराजिताः ।६८

कल्याणी मधुदंष्ट्री च कमलोत्पलस्तिका ।
इति देव्यष्टकं राजन् ! मायानुचरमुच्यते ।६९

जिसने महात्मा अन्धकों का रुधिर पान किया था और जो नाम से लोक में शुष्क रेवती कही गई थी । इसके पश्चात् चक्रधारी प्रभु ने अपने ही गात्रों से बत्तीस माताओं का सृजन किया था । उन सबके नामों को बतलाने वाले मुझसे अब तुम सुनलो ।६४-६५। उनमें सभी महान भागों वाली थीं । घण्टा कर्णी, त्रैलोक्य मोहिनी, पुण्या सर्वसत्व शंकरी,चक हृदया-पाँचवीं व्योमचारिणी-शंखिनी-लेखिनी काल संकर्षिणी ये सब हे राजन ! उस वागीशा के पीछे गमन करने वाली अनुचारिणी थीं—ऐसा कहा गया है । संकर्षणी—अश्वत्था—बीजभावा-अपराजिता—कल्याणी—मधुदंष्ट्री और कमला तथा उत्पल हस्तिका हे राजन ! देवियों का जो अष्टक था वह मायानुचर कहा जाता है ।

अजिता सूक्ष्महृदया वृद्धा वेशाश्मदंशना ।
नृसिंहभैरवा बिल्वा गरुत्महृदया जया ।७०
भवमालिन्यानुचरा इत्यष्टौ नृपमातरः ।
आकर्णनी सम्भटा च तथैवोत्तरमालिका ।७१
ज्वालामुखी भीषणिकाकामधेनुश्चबालिका ।
तथापद्मकरा राजन् ! रेवत्यनुचराःस्मृताः ।७२
अष्टौ महाबलाः सर्वा देवगात्रसमुद्भवाः ।
त्रैलोक्यसृष्टिसंहारसमर्थाः सर्वदेवताः ।७३
ताः सृष्टमात्रादेवेन क्रुद्धामातृगणस्य तु ।
प्रधाविता महाराज ! क्रोधविस्फारितेक्षणाः ।७४
अविषह्यतमन्तास दृष्टितेजः सुदारुणम् ।
तमेव शरणं प्राप्ता नृसिंहो वाक्यमब्रवीत् ।७५
यथा मनुष्याः पशवः पालयन्तिचिरात् सुतान् ।
जयन्ति ते तथैवाशु यथा वै देवतान् सुतान् ।७६
भवत्स्तु तथालोकान्पालयन्तु मयेरिताः ।
मनुजैश्च तथा देवैर्यंजध्वं त्रिपुरान्तकम् ।७७

अजिता, सूक्ष्महृदया, वृद्धा, वेशाश्म दंशना, नृसिंह भैरवा, बिल्वा गरुत्महृदया, जया और भवमालिनी ये आठ अनुचर नृप मातायें थीं। आकर्णनी, सम्भटा, उत्तर मलिका, ज्वालामुखी, भीषणिका, कामधेनु, बालिका, राजन ! पद्मकरा ये रेवती की अनुचारिणी थी—ऐसा कहा गया है। ये आठ महाबल वाली और सभी देव से गात्रों से समुत्पन्न होने वाली थी। ये सब देवता त्रैलोक्य की सृष्टि एवं संहार करने में समर्थ थीं। वे देव के द्वारा सृष्ट मात्र होते ही हे महाराज ! अति क्रुद्ध होकर क्रोध से विस्फारित नेत्रों वाली मातृगण के पीछे प्रधावित हुई थीं। उनकी दृष्टि का तेज अविषह्यतम और परम सुदारुण था। उन सबने उन्हीं की शरणागति प्राप्त की थी। तब श्री नृसिंह प्रभु ने यह वाक्य कहा था—जिस प्रकार से मनुष्य और पशु चिरकाल तक

सुतों का पालन किया करते हैं उसी भाँति देवगण के समान शीघ्र ही जय को प्राप्त होते हैं आप लोग मेरे द्वारा प्रेरित होकर लोकों का पालन करे तथा मनुष्य और देवगण सब त्रिपुरान्तक का अभ्यर्चन किया करे ।७०-७७।

न च बाधा प्रकर्तव्या ये भक्तास्त्रिपुरान्तके ।
येच मां संस्मरन्तीह तेच रक्ष्याः सदा नराः ।७८
बलिकर्म करिष्यन्ति युष्माकं ये सदा नराः ।
सर्वकामप्रदास्तेषां भविष्यध्वन्तथैवच ।७९
उच्छासनादिकं ये च कथयन्ति मयेरितम् ।
तेच रक्ष्याः सदालोका रक्षितव्यं मदासनम् ।८०
रौद्रीं चैव परां मूर्ति महादेवः प्रदास्यति ।
युष्मन्मुख्या महादेव्यस्तदुक्तं परिरक्षयः ।८१
मया मातृगणः सृष्टो योऽयं विगतसाध्वसः ।
एष नित्यं विशालाक्ष्यो मयैव सह रंस्यते ।८२
मया सार्द्धं तथा पूजां नरेभ्यश्चैव लप्स्यथ ।
पृथक् सुपूजिता लोकैः सर्वान् कामान् प्रदास्यथ ।८३
शुष्का संपूजयिष्यन्ति ये च पुत्रार्थिनो जनाः ।
तेषां पुत्रप्रदा देवी भविष्यन्ति न संशयः ।८४

भगवान त्रिपुरान्तक के जो भी भक्तगण हों उनको कोई भी बाधा नहीं करनी चाहिए । जो मनुष्य यहाँ पर मेरा स्मरण किया करते हैं उनकी भी सदा रक्षा करनी चाहिए । जो नर आपका सर्वदा बलिकर्म किया करतेहैं अर्थात् आपको बलि समर्पित करतेहैं उनकी समस्त कामनाओंके प्रदान करने वाले आपलोग उसी भाँति बन जाइये । मेरे द्वारा प्रेरित जो उच्छासनादिक का कथन करते हैं उन लोकों की सदा रक्षा करनी चाहिए और मेरे आसन की भी सुरक्षा करने की कृपा करें ।

महादेव परा रौद्री मूर्त्ति का प्रदान करेंगे । आपमें जो मुख्य महादेवियाँ हैं वे सब उपर्युक्त सबकी रक्षा करें । मेरे द्वारा इस मातृगण का सृजन किया गया है जो यह इस समय में विगत भय वाला है यह नित्य ही विशाल नेत्रों वाली मेरे ही साथ में रमण करेंगी । मेरे ही यह नरों से पूजा प्राप्त करेंगी । यदि इन्हें पृथक भी समर्चन किया जावेगा और लोग ऐसा करेंगे तो ये सभी मनोकामनाओं की प्राप्ति करा देंगी । जो पुत्रों को प्राप्त करने की इच्छा वाले हैं उन जनों को यह देवी पुत्र प्रदा अवश्य ही हो जायेंगी इसमें तनिक भी संशय का कोई अवसर ही नहीं रहता है ।७८-८४।

एवमुक्त्वा तु भगवान् सह मातृगणेन तु ।
ज्वालामाल्लाकुलवपुस्तत्रैवान्तरधीयत ।८५
तत्र तीर्थं समुत्पन्नं कृतशौचेति यज्जगुः ।
तत्रापि पूर्वजो देवो जगदार्तिहारो हरः ।८६
रौद्रस्य मातृवर्गस्य दत्वा रुद्रस्तु पार्थिव ।
रौद्रां दिव्यां तनुं तत्रमातृमध्ये व्यवस्थितः ।८७
सप्त ता मातरो देव्यः सार्द्धं नारीनरः शिवः ।
निवेश्य रौद्रं तत् स्थानं तत्रैवान्तरधीयत ।८८
स मातृवर्गस्य हरस्य मूर्त्तिर्यदा यदा याति च तत्समीपे ।
देवेश्वरस्यापि नृसिह मूर्तेः पूजां विधत्ते त्रिपुरान्धकारिः।८९

इस प्रकार से कहकर वह भगवान मातृगण के साथ ही ज्वालाओं की मालाओं से समाकुल वपु वाले वहाँ पर अन्तर्हित हो गये थे ।८५। वहाँ पर एक तीर्थ की उत्पत्ति हो गई थी जिसको कृतशौचा—इस नाम से गान किया जाता था । वहाँ पर भी पूर्वज देव इस जगत् की आर्त्ति का (पीड़ा का) हरण करने वाले हर भी थे ।८६। हे पार्थिव ! भगवान् रुद्रदेव रौद्र मातृवर्ग को रौद्र एवं दिव्य तब प्रदान करके वहाँ पर मातृ मध्यमें व्यवस्थित होगये थे । वे सात तो मातायें देवियाँ हैं और सार्द्ध

नारी नर शिव हैं। उस रौद्र स्थान को निवेषित करके वहीं पर अन्त-र्धान हो गये थे। वह जब-जब भी वह मातृ वर्ग की हर की मूर्ति उस के समीप में जाती है तब त्रिपुरान्धकारी शिव देवेश्वर नृसिंह मूर्त्ति की भी पूजा किया करते हैं।८७-८९।

— × —

७३-वाराणसी माहात्म्य

श्रुतोऽन्धकवधः सूत ! यथावत्तवदुदीरितः।
वाराणस्यास्तु माहात्म्यं श्रोतुमिच्छाम साम्प्रतम्।१
भगवान् पिङ्गलः केन गणत्वं समुपागतः।
अन्नदत्त्वञ्च सम्प्राप्तो वाराणस्यां महाद्युतिः।२
क्षेत्रपालः कथं जातः प्रियत्वञ्च कथङ्गतः।
एतदिच्छाम कथितं श्रोतुं ब्रह्मसुत ! त्वया।३
शृणुध्वं वै यथा लेभे गणेशत्वं स पिंगलः।
अन्नदत्वं च लोकानां स्थानं वाराणसी त्विह।४
पूर्णभद्रसुतः श्रीमानासीद्यज्ञः प्रतापवान्।
हरिकेश इति ख्यातो ब्रह्मण्यो धार्मिकश्च ह।५
तस्य जन्मप्रभृत्येव शर्वे भक्तिरनुत्तमा।
तदासीत्तन्नमस्करस्तन्निष्ठस्तत्परायणः।६
आसीनश्च शयानश्च गच्छंस्तिष्ठन्ननुव्रजन्।
भुञ्जानोऽथ पिबन्वापि रुद्रमेवान्वचिन्तयत्।७

ऋषि वृन्द ने कहा—हे सूतजी ! आपके द्वारा वर्णित ठीक-२ रीति से हमने अन्धक का वध श्रवण कर लिया अब इस समय मे वारा णसी पुरी का माहात्म्य श्रवण करने की हम सब अभिलाषा रखते हैं। ।१। भगवान पिङ्गल किस के द्वारा अथवा किस कारण से गणत्व को प्राप्त हुए थे। यह महा द्युति से सुसम्पन्न वाराणसी में अन्नदत्व को

भी सम्प्राप्त हो गये हैं ? ।२। यह अन्नपाल कैसे हुए और प्रियत्व की प्राप्ति भी किस तरह से हुई थी ? हे ब्रह्माजी के पुत्र ! यह सब आपके द्वारा वर्णित हम सब श्रवण करना चाहते हैं। महा महर्षि श्री सूतजीने कहा—उस पिंगल ने जिस रीति से गणेशत्व की प्राप्ति की थी उसे आप लोग सुनिए। लोकों को अन्न देने वाले और यहाँ पर यह वाराणसी का स्थान जैसे प्राप्त हुआ वह भी सुनिए ।३-४। पूर्णभद्र का पुत्र प्रताप वाला श्रीमान् यक्ष था। वह हरिकेश—इस नाम से विख्यात था और परम धार्मिक तथा ब्रह्मण्य था ।५। उसकी जन्म के आरम्भ से ही लेकर भगवान् शिव में अतीव उत्तम भक्ति थी। उस समय में शिव को ही नमस्कार करने वाला—उन्हीं में पूर्ण निष्ठा रखते हुए यह सर्वदा उन्हीं में परायण रहा करता था ।६। यह बैठा हुआ—शयन करता हुआ गमन करते हुए—स्थित रहते हुए—अनुव्रजन करते हुए—भोजन करने की दशा में तथा पान करते हुए भी रुद्र का ही सदा अनुचिन्तन किया करता था ।७।

तमेवं युक्तमनसम्पूर्णभद्रः पिताब्रवीत् ।
न त्वां पुत्रमहं मन्ये दुर्जातो यस्त्वमन्यथा ।८
न हि यक्ष कुलीनानामेतद्वृत्तं भवत्युत ।
गुह्यका बत यूयं वै स्वभावात् क्रूरचेतसः ।९
क्रव्यादाश्चैव किं भक्षा हिंसा शीलाश्च पुत्रक ।
नेवं कार्षीनंते वृत्तिरेवं दृष्टा महात्मना ।१०
स्वयम्भुवा यथादिष्टा त्यक्तव्यां यदि नो भवेत् ।
आश्रमान्तरजं कर्म न कुर्यु र्गृहिणस्तु तत् ।११
हित्वा मनुष्यभाव च कर्मभिर्विविधैश्चर ।
यत्वमेवं विमार्गस्थो मनुष्याज्जात एवच ।१२
यथावद्विविधस्तेषां कर्म तज्जातिसंश्रयम् ।
मयापि विहितं पश्य कर्मैतन्नात्र संशयः ।१३

इस प्रकार से युक्त मन वाले उससे उसके पिता पूर्ण ने कहा था—मैं पुत्र तुझो दुर्जात नहीं मानता हूं जो कि तू अन्यथा रहा करता है। ।८। यक्ष कुलों में समुत्पन्नों का यह चरित नहीं हुआ करता है। खेद है आप लोग गुह्यक हैं जो स्वभाव से क्रूर चित्त वाले हुआ करते हैं।९ हे पुत्रक! क्रव्याद लोग क्या भक्षण करने वाले हैं और हिंसा करने के स्वभाव वाले होते हैं। ऐसा मत करो। महान् आत्मा वाले के द्वारा तुम्हारी इस प्रकार की वृत्ति नहीं देखी गयी हैं।१०। स्वयम्भू ने जो समादिष्ट की है यदि आपमें हो, तो उसे त्याग देना चाहिए। जो गृही होते हैं वे दूसरे आश्रम उत्पन्न होने वाले कर्म को नहीं किया करते हैं और न उन्हें करना ही चाहिए।११। मनुष्यों के भाव को छोड़कर विविध भाँति के कर्मों के द्वारा चरण करो। जो तू इस प्रकार से विमार्ग में स्थित है तो तू मनुष्य से ही समुत्पन्न हुआ है। यथावत् उनके अनेक कर्म है जो उनकी जाति का संश्रय रखने वाला है। मैंने भी कर्म किया है उसे देखो। इसमें कुछ भी संशय नहीं होनी।१२-१३

एवमुक्त्वा स तं पुत्रं पूर्णभद्रः प्रतापवान्।
उवाचनिष्क्रमन् विप्र गच्छपुत्र ! यथेच्छसि।१४
ततः स निर्गतस्त्यक्त्वा गृहसम्बन्धिनस्तथा।
वाराणसी समासाद्य तपस्तेपे सुदुश्चरम्।१५
स्थाणुभूतो ह्यनिमिषः शुष्ककाष्ठोपलोपमः।
सन्निम्येन्द्रियग्राममवातिष्ठत निश्चलः।१६
अथ तस्यैवमनिशन्तत्परस्य तदा शिषः।
सहस्रमेकं वर्षाणं दिव्यमप्यध्यवर्तत।१७
वल्मीकेन समाक्रान्तो भक्ष्यमाणः पिपीलिकैः।
वज्रसूचीमुखैस्तीक्ष्णैर्विध्यमानस्तथैव च।१८
निर्मांसरुधिरत्वक् च कुन्दशङ्खेन्दुसप्रभः।
अस्थिशेषोऽभवच्छर्वं देवं वै चिन्तयन्नपि।१९

एतस्मिन्नन्तरे देवी विज्ञापयत शंकरम् ।
उद्यानं पुनरेवेह दृष्टुमिच्छामि सर्वदा ।२०
क्षेत्रस्य देव माहात्म्यं श्रोतुं कौतुहलं हि मे ।
यतश्च प्रियमेतत्ते तथास्य फलमुत्तमम् ।२१

श्री सूत महर्षि ने कहा—वह प्रताप वाले पूर्णभद्र ने उस अपने पुत्र से इस प्रकार से कहकर फिर हे पुत्र ! तू यहाँ से निष्क्रमण करते हुए बहुत शीघ्र जहाँ भी चाहता है, चला जा ।१४। इसके उपरान्त वह वहाँसे निर्गत होकर अपने गृह और समस्त सम्बन्धियों का परित्यागकर चला गया था । फिर वाराणसी पुरी में प्राप्त होकर उसने परमदुश्चर तप किया था ।१५। वहाँ पर पलकें पूर्णतया खोले हुए एक स्थाणु (वृक्ष का ठूंठ) के रूप वाला—सूखा हुआ काष्ठ तथा पाषाण के सदृश होकर अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों के समुदाय को भली भाँति नियन्त्रित करके एक दम निश्चल होकर अवस्थित होगया था।१६। इसके अनन्तर उसको निरन्तर इस प्रकार से तप में तत्पर हुए को उस समय में एक सहस्र दिव्यवर्ष व्यतीत हो गये थे।१७। उसका शरीर सर्पों का बाँबियों से समाक्रान्त हो गया था—पिपीलिकायें (चीटियाँ) उस शरीर को खा रही थी तथा तीक्ष्ण वज्रसूची मुख कीटों से वह उसका वपुपूर्ण या बिंधा सा हो गया था ।१८। यद्यपि उसका शरीर बिना माँस-रुधिर और त्वचा वाला ही था किन्तु फिर भी कुन्द-इन्दु और शंख के समान प्रभा से पूर्ण था । देवेश्वर का ही चिन्तन करते हुए वह पूरा शरीर केवल अस्थियों का ही एक ढाँचा शेष रह गया था । इसी बीचमें देवी ने श्री शङ्कर भगवान् को विज्ञापित किया था ।१६। देवी ने कहा—मैं सर्वदा उस उद्यान को यहाँ पर देखने की अभिलाषा करती हूँ ।२०। हे देव ! इस उत्तम क्षेत्र के माहात्म्य को श्रवण करने के लिए मेरे हृदय में अत्यधिक कौतूहल हो रहा है । क्योंकि यह आपका प्रिय है तथा इसका उत्तम फल है ।२१।

इति विज्ञापितो देवः शर्वाण्या परमेश्वरः ।
शर्वःपृष्टोयथातथ्यमाख्यातुमुपचक्रमे ।२२
निर्जगाम च देवेशः पार्वत्या सह शङ्करः ।
उद्यानं दर्शयामास देव्या देवः पिनाकधृक् ।२३
प्रोत्फुल्लनानाविधगुल्मशोभितं लताप्रतानावनतं मनोहरम् ।
विरूढ़पुष्पैः परितः प्रियंगुभिः सुपुष्पितैः कण्टकितैश्च केतकैः।२४
तमालगुल्मैर्निचितं सुगन्धिभिः सकर्णिकारैर्बकुलैश्च सर्वशः ।
अशोकपुन्नागवरैः सुपुष्पितैर्द्विरेफमालाकुलैः पुष्पसञ्चयैः ।२५
क्वचित्प्रफुल्लाम्बुजरेणुरूषितैर्विहंगमैश्चारुकलप्रणादिभिः ।
निनादित सारसमण्डनादिभिः प्रमत्तदात्यूहरुतैश्च वल्गुभिः ।२६
क्वचिच्च चक्राह्वरवोपनादितं क्वचिच्च कादम्बकदम्बकैर्युतम्
क्वचिच्च कारण्डवनादनादितं-
क्वचिच्च मत्तालिकुलाकुलीकृतम् ।२७
मदाकुलाभिस्त्वमरांगनाभिर्निषेवितञ्चारु सुगन्धिपुष्पम् ।
क्वचित्तु सुपुष्पैः सहकारवृक्षैर्लतोपगूढैस्तिलकद्रुमैश्च ।२८

शर्वाणी के द्वारा परमेश्वर देव को यह विज्ञापित किया गया था और याथातथ्य को जब शिव प्रभु से पूछा गया तो वह पूछे हुए होकर इसे कहने के लिए उपक्रम करने लगे थे ।२२। देवेश्वर भगवान् शङ्कर पार्वती देवी के साथ ही निकलकर चले गये थे । फिर पिनाकधारी देव ने वह उद्यान देवी को दिखलाया था ।२३। देवों के देव बोले—यह उद्यान विकसित नाना भाँति के गुल्मों से शोभा वाला था । लताओं के प्रताओं के प्रतानोंसे अवनत एवं मनोहर था । दोनों ओर विरूढ पुष्पों वाले प्रियंगुओं से—सुन्दर पुष्पों समन्वित काकित केतकों से–सुगन्ध युक्त तमाल के गुल्मों से निर्मित और सब ओर कणिकारों के सहित वकुलों से वह समन्वित था । द्विरेफों (भौंरों) की मालाओं से समाकुल पुष्पों के सञ्चय वाले सुपुष्पित अशोक पुन्नाग वरों से संयुत था ।२४-

२५। इस उद्यान में कहीं चरु प्रफुल्ल कमलों के रेणु से रूपित तथा एवं कल (मधुर) प्रणाद करने वाले विहंगमों से यह निनादित हो रहा था तथा किसी जगह पर सारस मण्डन आदि से एवं परम वल्गु प्रमत्त दात्यूहों के शब्दों से शब्दायमान था ।२६। किसी स्थल पर चक्रवाकों की ध्वनियों से निनादित और कहीं पर कदम्बों के समूहोंसे यह उद्यान संयुत था । किसी स्थान में कारण्डवों की कल ध्वनियों से निनादित था और कहीं पर प्रमत्त अलियों के कुलों से आकुलीकृत हो रहा था । महान् कुलों वाली भ्रमरों की अंगनाओं के द्वारा सेवित तथा सुन्दर एवं सुगन्धित पुष्पों से परिपूर्ण यह उद्यान था । कहीं पर सुन्दर पुष्पों वाले सहकार के वृक्षों से तथा लताओं से उपगूढ़ तिलक के द्रुमों से समन्वित था ।२८।

प्रगीतविद्याधरसिद्धचारण प्रवृत्तनृत्याप्सरसांगणाकुलम् ।
प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवितं प्रमत्तहारीतकुलोपनादितम् ।२९
मृगेन्द्रनादाकुलसत्वमानसैः क्वचित् क्वचित्द्वन्द्वकदम्बकैर्मृगैः ।
प्रफुल्लनानाविधचारुपंकजैः सरस्तटाकैरुपशोभितं क्वचित् ।३०
निविडनिचुलनीलं नीलकण्ठाभिराम-
मदमुदितविहंगव्रातनादाभिरामम् ।
कुसुमिततरुशाखालीनमत्तद्विरेफं-
नवकिशलयशोभाशोभितप्रान्तशाखम् ।३१
क्वचिच्च दन्तिक्षतचारुवीरुधं क्वचिल्लतालिंगितचारुवृक्षकम् ।
क्वचिद्विलासालसगामिबर्हिणं निषेवितं किंपुरुषव्रजैःक्वचित् ।३२
पारावतध्वनिविकूजितचारुशृंगैरभ्रंकषैः सितमनोहरचारुरूपैः।
आकीर्णपुष्पनिकुरम्बविमुक्तहासैर्विभ्राजितं
त्रिदशदेवकुलैरनेकैः ।३३
फुल्लोत्पलागुरुसहस्रवितानयुक्तै
स्तोयाशयैस्तमनुशोभितदेवमार्गम् ।

मार्गान्तरागलितपुष्पविचित्रभक्ति-
सम्बद्धगुल्मविटपैर्विहंगैरुपेतम् ।३४
तुङ्गाग्रैर्नीलपुष्पस्तबकभरनतप्रान्तशाखैरशोकै-
र्मत्तालिव्रातगीतश्रुतिसुखजननैर्भासितान्तर्मनोज्ञैः ।
रात्रौ चन्द्रस्य भासा कुसुमिततिलकैरेकतां सम्प्रयातं
च्छायासुप्तप्रबुद्धस्थितहरिणकुलालुप्तदर्भाङ्कुराग्रम् ।३५

वह उद्यान विद्याधर सिद्ध और चारणों के गीतों से परिपूर्ण—नृत्य करने में प्रवृत्यहुई अप्सराओं के गणों से समाकुल था । परमप्रहर्ष वाले अनेक भाँतिके पक्षियों के द्वारा यह उद्यान सेवित था । वह उद्यान प्रमत्त हारीत नाम वाले पक्षियों के समूह से उपनादित था ।२९। किसी स्थल पर मृगेन्द्रों की गर्जनों से सत्वों के मानसों को समाकुलित करने वाला था । कोई भाग इसका मृगों के जोड़ों के समुदायों से युक्त था । कहीं पर खिले हुए अनेक तरह के चार कमलों से युक्त सरोवर और तड़ागों के द्वारा यह उद्यान शोभा वाला था ।३०। यह उद्यान घने निचुलों से नील वर्ण वाला—नील कुण्डों से अभिराम-मद से परम प्रसन्न पक्षियों के समूहों के नादये परम मनोहर था । पुष्पों वाले वृक्षों की शाखाओं पर जिस उद्यान में भौंरे प्रमत्त हुए लीन हो रहे थे और और नूतन पत्रों की शोभा से शोभित प्रान्त शाखाओं वाला वह उद्यान था । कहीं पर मजों के द्वारा किये गये क्षतों से सुन्दर वीरुधों वाला था और कहीं पर लताओं के द्वारा सुन्दर वृक्षों का आलिङ्गन किया जा रहा था । किसी स्थल पर विलास में अलस गमन करने वाले बर्हि वाला था तथा कहीं किम्पुरुषगण उस उद्यान का सेवन कर रहे थे ।
।३१-३२। पारावतों की ध्वनि से विशेष रूप से कूजित सुन्दर शिखरों से जो कि आकाश को छूने वाले बहुत ही ऊँचे थे और श्वेत एवं मनोहर चारु रूप से युक्त थे वह उद्यान विभ्राजित हो रहा था और समाकीर्ण पुष्पों के निकुरम्ब से विमुक्त हास्य वाले अनेक देवों के कूलों के

द्वारा वह सेवित था।३३। खिले हुए बड़े-बड़े सहस्रों उत्पलों के वितानों से युक्त तोयाशयों से शोभा वाले देवमार्ग वाला वह उद्यान बहुत ही सुन्दर हो रहा था। मार्ग के बीच में गलित हुए पुष्पोंसे विचित्र भक्ति से सम्बद्ध झाड़ियों तथा विटपों से समायुक्त था बहुत ही ऊँचे जिनके अग्रभाग हैं ऐसे नीले पुष्पों के स्तवकों के भार से मे अवनत शाखाओं वाले अशोक के वृक्षों से समायुक्त था तथा अत्यन्त प्रमत्त भ्रमरों के समुदायों के गुञ्जित गीतों से कानों को सुख समुत्पन्न करने वाले और अन्दर मनोज्ञता को भासित करने वाले तिलकों के कुसुमों के द्वारा तथा रात्रि में चन्द्र की दीप्ति से एकता को प्राप्त हुआ और छाया में प्रसुप्त होकर फिर जगे हुए संस्थित हिरनों के कुलों से आलुप्त दर्भों के अंकुरों वाला वह उद्यान था अर्थात् वहाँ पर लेटे हुए हिरणों के समूह से डाभों के अंकुर दबे हुए हो गये थे।३४-३५।

हंसानां पक्षपातप्रचलितकमलस्वच्छविस्तीर्णतोयम्
मायूरैः पक्षचन्द्रैः क्वचिदपि पतित रञ्जितक्ष्माप्रदेशम्
तोयानां तीरजातप्रविकचकदलीवाटनृत्यन्मयूरम्।
देशे देशे विकीर्णप्रमुदितविलसन्मत्तहारीतवृक्षम्।३६
सारङ्गैः क्वचिदपि सेवितप्रदेशं सच्छन्नं कुसुमचयः क्वचिद्विचित्रैः।
हृष्टाभिः क्वचिदपि किन्नरांगनाभिः।
क्षीबाभिः समधुरगीतवृक्षखण्डम्।३७
संसृष्टै क्वचिदुपलिप्तकीर्णपुष्पैरावासैः परिवृतपादपं मुनीनाम्।
आमूलात् फलनिचितैर्विशालैरुत्तुंगैः पनसमहीरुहैरुपेतम्।३८
फुल्लातिमुक्तकलतागृहसिद्धलीलंसिद्धांगनाकनकनूपुरनादरम्यम्।
रम्यप्रियंगु तरुमञ्जरिसक्तभृंगं भृंगावलीषु।
स्खलिताम्बुकदम्बपुष्पम्।३९
पुष्पोत्करानिलविघूर्णितपादपाग्रमग्रेसरोभुविनिपातितवंशगुल्मम्
गुल्मान्तरप्रभृतिलीनमृगासमूहंसंमुच्यतान्तनुभृतामपवर्गदातृन्।४०
चन्द्रांशुजालधवलैस्तिलकैर्मनोज्ञैः

सिन्दूरकुङ्कुमकुसुम्भनिभैरशोकैः ।
चामीकराभनिचयैरथ कर्णिकारैः
फुल्लारविन्दरचितं सुविशालशाखैः ।४१
क्वचिद्रजतपर्णाभैः क्वचिद्विद्रुमसन्निभैः ।
क्वचित्काञ्चनसङ्काशैः पुष्पैराचितभूतलम् ।४२

अभी तक निरन्तर उसी उद्यान की शोभा का ही वर्णन किया जा रहा है वह उद्यान हंसों के पंखों के प्रपातसे विचलित होने वाले कमलों के द्वारा परम स्वच्छ एवं विस्तीर्ण जल वाला था । जलाशयोंके तटपर समुत्पन्न एवं प्रविकच कदलियों के वाटमें नृत्य करनेवाले मयूरोंसे युक्त वह उद्यान था । किसी स्थल पर गिरे हुए मयूरोंके पक्ष चन्द्रों के द्वारा रञ्जित क्षमा प्रदेश वाला था तथा देश-देश में बिकीर्ण, प्रमुदित, बिल सत् मस्त हारीतों से संयुत वृक्षों वाला उद्यान था ।३६। कहीं पर सारङ्गोंसे सेवित प्रदेशवाला और किसी स्थलपर विचित्र कुसुमोंसे चयों से संचछन्न–किसी स्थान पर परम क्षीत एवं प्रहर्षित किन्नरों की अङ्गनाओं के द्वारा सुमधुर गीतों वाले वृक्षों के खण्डों से समन्वित वह उद्यान था ।३७। कहीं पर ससृष्ट तथा उपलिप्त प्रकीर्ण पुष्पों से युक्त मुनियों के निवास स्थानोंसे परिवृत पादपों से समन्वित वह उद्यानथा । कहीं पर अत्यन्त विशाल एवं उत्तुङ्ग और मूल से ही लेकर फलों से निचित पनस (कटहल) के वृक्षोंसे उपेत वह उद्यान था ।३८। विकसित और अतिमुक्त लताओं के गृहों में सिद्धोंकी लीला वाला था तथा सिद्धों की अङ्गनाओं के सुवर्ण रचित नूपुरों के नाद से परम सुन्दर वह उद्यान था । परम रम्य प्रियंगुके वृक्षोंकी मञ्जरियों के संसक्त भ्रमरों से समन्वित तथा भृङ्गों की कतारोंमें स्खलित होनेवाले जल कदम्बों के पुष्पों से संयुत वह उद्यान था ।३६। कुसुमों के उत्करों से मिश्रित वायु से विघूर्णित वृक्षों के अग्रभाग वाला तथा भूमण्डल में निपातित बांसों की

झाड़ियों से युक्त था। गुल्मों के बीच में लीन होने वाले मृगों के समुदाय वाला—सम्मोह को प्राप्त देहधारियों को अपवर्गको देने वालाथा। चन्द्रमा की किरणों के समान धवल मनोज्ञ तिलकों से तथा सिन्दूर कुंकुम और कुसुम्भ के तुल्य अशोकों से—चामीकर (सुवर्ण) की आभा के समान कर्णिकारों से और परम विशाल शाखाओं के द्वारा फुल्ल अरविन्दों से रचित उद्यान था। कहीं पर तो रजत पर्णों की आभावाले कहीं पर द्रुमों के सङ्कुल कहीं पर सुवर्ण के समान पुष्पों से समाचित भूतल वाला उद्यान था।४० ४२।

पुन्नागेषु द्विजगणविरुतं रक्तशोकस्तवकभरनमितम्।
रम्योपान्तं श्रमहरपवनं फुल्याब्जेषु भ्रमरविलसितम्।४३
सकलभुवनभर्ता लोकनाथस्तदानीन्तु-
हिमशिखिरपुत्र्याः सार्द्धमिष्टैर्गणेशैः।
विविधतरुविशालं मत्तहृष्टान्यपुष्ट
मुपवनतरुरम्यं दर्शयामास देव्याः।४४
उद्यानं दर्शितं देव ! शोभया परया यतम्।
क्षेत्रस्य तु गुणान् सर्वान्पुनर्वक्तुमिहार्हसि।४५

अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यमविमुक्तस्य तत्तथा।
श्रुत्वापि हि न मे तृप्तिरतो भूयो वदस्व मे।४६
इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम।
सर्वेषामेव भूतानां हेतुं मोक्षस्य सर्वदा।४७
अस्मिन् सिद्धाः सदा देवि ! मदीयं व्रतमास्थिताः।
नानालिङ्गधरा नित्यं मम लोकाभिकाङ्क्षिणः।४८
अभ्यसन्ति परं योगं मुक्तात्मनो जितेन्द्रियाः।
नानावृक्षसमाकीर्णे नानाविहंगकूजिते।४९

वह दिव्य उद्यान ऐसा मनोरम था जिसमें पुन्नागों में द्विजगणों (पक्षियों) का कूजन हो रहा था और जो रक्त अशोकों के स्तवकों के

भार से नमित था जिसके उपान्त परम रम्य थे-शारीरिक श्रमको हरण करने वाला वायु जिसमें बहन कर रहा था तथा विकसित कमलों में जिस उद्यानमें भ्रमरोंका विलास हो रहा था।४३। उस समय में समस्त भुवनों के भरण करने वाले-लोकों के नाथने अपने हृष्ट गणेशों के साथ में तुहिन शिखर हिमालय अद्रिराजकी पुत्री देवीपार्वतीको अनेक प्रकार के वृक्षों से युक्त अत्यन्त विशाल—मत्त एवं हृष्ट अन्यों के द्वारा पुष्प और उपवन के तरुओं से रम्य उस उद्यान को दिखा दिया था।४४। देवी ने कहा—हे देव ! परा शोभा से युक्त इस उद्यान को तो आपने दिखला दिया है। अब इस समस्त क्षेत्र के गुणों को यहाँ पर आप कहने के योग्य हैं। अविमुक्त इस क्षेत्र के माहात्म्य को श्रवण कर के भी मुझे पूर्ण तृप्ति नहीं हुई है। इसलिए इसे ही आप पुन: मुझे श्रवण कराइए।४५-४६। देवों के देवने कहा—यह अत्यन्त ही गुह्यतम क्षेत्र है जो सदा मेरा वाराणसी है। यह सर्वदा सभी प्राणियों के मोक्ष का हेतु होता है।४७। हे देवि ! इस क्षेत्र में सदा सिद्धगण मेरे ही व्रत में समास्थित रहते हैं। ये लोग विभिन्न प्रकार के चिन्हों के धारण करने वाले और नित्यही मेरे लोक के प्राप्त करने की अभिकांक्षा वाले थे।४८। मुक्त आत्मा वाले जितेन्द्रिय लोग अनेक वृक्षों से समाकीर्ण और नाना प्रकार के विहगों से कूजित इस स्थलमें परयोग का अभ्यास किया करते हैं।४९।

कमलोत्पलपुष्पाढ्यै: सरोभि: समलङ्कृते।
अप्सरोगणगन्धर्वे सदा संसेविते शुभे।५०
रोचते मे सदा वासो येन कार्येण तच्छृणु।
मम्मना मम भक्तश्च मयि सर्वार्पितक्रिय:।५१
यथा मोक्षमिहाप्नोति ह्यन्यत्र न तथा क्वचित्।
एतन्मम परं दिव्यं गुह्याद्गुह्यतरं महत्।५२
ब्रह्मादयस्तु जानन्ति येऽपि सिद्धा मुमुक्षव:।
अत: प्रियतमं क्षेत्र तस्माच्चेह रतिर्मम।५३

विमुक्तं न मया यस्मान्मोक्ष्यते वा कदाचन ।
महत् क्षेत्रमिदं तस्मादवियुक्तमिदंस्मृतम् ।५४

नैमिषेऽथ कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे ।
स्नानात्संसेविताद्वापि न मोक्षः प्राप्यते यतः ।५५

इह संप्राप्यते येन तत एतद्विशिष्यते ।
प्रयागे च भवेन्मोक्ष इह वा मत्परिग्रहात् ।५६

कमल-उत्पल पुष्पों से आढ्य सरोवरो से समलंकृत-अप्सराओं से गण और गन्धर्वोंके द्वारा सदा से सेवित शुभ स्थल यह है । जिस कार्य के कारण मुझे सदा इसका निवास पसन्द है उसेभी सुनलो । मेरे में ही मनको निवेशित करने वाला मुझमें ही सर्वस्व समर्पित कर देने वाला तथा सब किए हुए कर्मों को भी मेरी ही सेवा में अर्पित करने वाला मेरा भक्त जिस प्रकार से यहाँ मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है वैसा अन्य किसी भी स्थान में नहीं कर सकता है । यह ही मेरा परम दिव्य-महत् और गुह्य से गुह्यतम क्षेत्र है ।५०-५२। ब्रह्मादिक देवगण और जो भी मुमुक्ष सिद्ध लोग हैं वे इसे भली भाँति जानते हैं । इसीलिए मेरा सबसे अधिक प्रिय क्षेत्र है और इसी कारण से मेरी यहाँ पर अत्यधिक रति है । इसी से मैंने इसको कभी नहीं छोड़ा है और न भविष्य में भी मेरे द्वारा इसका त्याग किया जायगा इसी से उसका यह महत् क्षेत्र है और यह उसका अवियुक्त क्षेत्र कहा गया है ।५३-५२। नैमिष—कुरुक्षेत्र गङ्गाद्वार और पुष्कर में स्नान करने से तथा सेवित करने से भी मोक्ष प्राप्त नहीं किया जाता है । वही परम दुर्लभ मोक्ष यहाँ पर सम्प्राप्त कर लिया जाया करता है । इसी से यह सबसे विशिष्ट होता है । या तो प्रयाग में इस मोक्ष की प्राप्ति होती है अथवा यहाँ पर मेरे परिग्रह करने से मुक्ति हो जाती है ।५५-५६।

प्रयागादपि तीर्थाग्र्यादिदमेव महत् स्मृतम् ।
जैगीषव्यः परां सिद्धिं योगतः स महातपाः ।५७

अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद्भक्त्या च मम भावनात् ।
जैगीषव्यो महाश्रेष्ठो योगिनां स्थानमिष्यते ।५८
ध्यायतस्तत्र मां नित्यं योगाग्निर्दीप्यते भृशम् ।
कैवल्यं परमं याति देवानामपिदुर्लभम् ।५९
अव्यक्तलिंगैर्मुनिभिः सर्वसिद्धान्तवेदिभिः ।
इह संप्राप्यते मोक्षो दुर्लभो देवदानवैः ।६०
तेभ्यतश्चाहं प्रयच्छामि भोगैश्वर्यमनुत्तमम ।
आत्मनश्चैव सायुज्यमीप्सितं स्थानमेव च ।६१
कुबेरस्तु महायक्षस्तथा शर्वापितक्रियः ।
क्षेत्रसम्वसनादेव गणेशत्वमवाप ह ।६२
सम्वर्तो भविता यश्च सोऽपि भक्त्या ममैव तु ।
इहैवाराधय मां देवि ! सिद्धिं यास्यत्यनुत्तमाम् ।६३

समस्त तीर्थों में प्रथम प्रयाग से भी यह ही महान तीर्थ कहा गया है । वह महान् तपस्वी जैगीषव्य योग से परम सिद्धि को इस क्षेत्र के ही माहात्म्य से—भक्ति से और मेरी भावना से महान् श्रेष्ठ जैगषव्य योगियों के स्थान को प्राप्त करता है ।५७-५८। वहाँ पर नित्य ही मेरा ध्यान करने वाले की योगाग्नि अत्यन्त दीप्त हो जाया करती है और फिर वह देवोंको भी दुर्लभ परम कैवल्य पद को प्राप्त करता है । अव्यक्त लिगों वाले—सम्पूर्ण सिद्धान्तों को जानने वाले मुनियोंके द्वारा यहाँ पर ही मोक्ष की प्राप्ति की जाया करती है जो देवों और दानवों के द्वारा भी अतीव दुर्लभ ।५९-६०। उन मेरे परम भक्तों को मैं अत्युत्तम भोग एवं ऐश्वर्य प्रदान किया करताहूँ तथा उनको अपना सायुज्य पद एवं अभीप्सित स्थान का प्रदान किया करता हूँ । महान यक्ष कुबेर तथा शिव के लिए ही अपनी समस्त क्रियाओं को अर्पित कर देने वाला इसी क्षेत्र में सम्वास करने ही से गणेशत्व के पद को प्राप्त हो गया था ।६१-६२। और जो सम्वर्त्त होगा वह भी मेरी ही शक्ति से है देवि !

यहाँ पर ही मेरी समाराधना करके अत्युत्तम सिद्धि को प्राप्त करेगा।
।६३।

पराशरसुतो योगी ऋषिर्व्यासो महातपाः।
धर्मकर्त्ता भविष्यश्च वेदसंस्थाप्रवर्तकः ।६४
रंस्यते सोऽपि पद्माक्षि ! क्षेत्रेऽस्मिन् मुनिपुङ्गवः।
ब्रह्मा देवर्षिभिः सार्द्धं विष्णुर्वायुर्दिवाकरः ।६५
देवराजस्तथा शक्रो येऽपि चान्ये दिवौकसः।
उपासन्ते महात्मानः सर्वे मामेवसुव्रत ।६६
अन्येऽपि योगिनः सिद्धाश्छन्नरूपा महाव्रताः।
अनन्यमनसो भूत्वा मामिहोपासते सदा ।६७
अलर्कश्च पुरीमेताम् मत्प्रसादादवाप्स्यति।
स चैनां पूर्ववत्कृत्वा चातुर्वर्ण्याश्रमाकुलाम् ।६८
स्फीतां जनसमाकीर्णां भक्त्याच सुचिरंनृपः।
मयि सर्वार्पितप्राणो मामेव प्रतिपत्स्यते ।६९
ततः प्रभृति चार्वङ्गि ! येऽपि क्षेत्रनिवासिनः।
गृहिणो लिङ्गिनो वापि मद्भक्ता मत्परायणाः ।७०
मत्प्रसादाद्भजिष्यन्ति मोक्षं परमदुर्लभम्।
विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः ।७१
इक्षक्षत्रेमृतः सोऽपिसंसारं न पुनर्विशेत्।
ये पुनर्निर्ममा धीराः सत्वस्था विजितेन्द्रियाः ।७२

पराशर मुनि का पुत्र—महान तपस्वी और योगी ऋषि व्यासदेव धर्मों का करने वाला–आगे भविष्य में होने वाला वेदों की संस्था का प्रवर्त्तक होगा ।६४। हे पद्माक्षि ! वह मुनियों में परम श्रेष्ठ भी इसी क्षेत्र में रमण करेगा। ब्रह्मा-देवर्षियों के साथ बिष्णु, वायु, दिवाकर, देवों का राजा इन्द्र और अन्य जो देवगण हैं वे सभी महान् आत्माओं

वाले हे सुव्रते ! मेरी ही उपासना किया करते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी योगीजन-सिद्धगण और छिपे हुए महान व्रतोवाले लोग अनन्य मन वाले होकर यहाँ पर सर्वदा मेरी ही उपासना किया करते हैं। अलर्क इस पुरी को मेरे ही प्रसाद से प्राप्त करेगा और वह इस पुरी को पूर्व की ही भाँति करके जो चारों वर्णों से समाकुल-स्फीत और जनों से समाकीर्ण है, वह नृप बहुत समय पर्यन्त अपनी भक्तिकी उत्कट भावना के द्वारा प्राप्त करेगा और फिर सर्वापित प्राण वाला होकर अन्त में मुझको ही प्राप्त कर लेगा। हे चार्वङ्गि ! तभी से लेकर जो भी इस क्षेत्र के निवास करने वाले गृही एवं लिंगोंके धारण करने वाले मुझमें ही परायण करने वाले मेरे भक्त परम दुर्लभ मोक्ष का सेवन करेंगे और वह मेरे ही प्रसाद से होगा। विषयों में समासक्त चित्त वाला भी धर्म में रति के त्याग करने वाला मनुष्य इस परम पुण्यमय क्षेत्र में मृत्युगत होकर फिर संसार में प्रवेश प्राप्त नहीं किया करता है और जो निर्मम एवं धीर तथा सत्वस्थ इन्द्रियों को नियन्त्रित रखने वाले हैं उनकी तो बात ही क्या है।६५-७२।

व्रतिनश्च निरारम्भाः सर्वे ते मयि भाविताः।
देहभङ्गं समासाद्य धीमन्तः सङ्गवर्जिताः।
गता एव परं मोक्षं प्रसादान्मम सुव्रते।७३
जन्मान्तरसहस्रेषु युञ्जन् योगमवाप्नुयात्।
तमिहैव परं मोक्षं मरणादधिगच्छति।७४
एतत्सङ्क्षेपतो ! क्षेत्रस्यास्य महत्फलम्।
अविमुक्तस्य कथितं मया ते गुह्यमुत्तमम्।७५
अतः परतरं नास्ति सिद्धिगुह्य महेश्वरि !।
एतद्बुध्यन्ति योगज्ञा ये च योगेश्वरा भुवि।७६
एतदेव परं स्थानमेतदेव परं शिवम्।
एतदेव परम्ब्रह्म एतदेव परम्पदम्।७७

व्रतों के धारण करने वाले—आरम्भोंसे रहित जो जन हैं वे सभी मुझमें भावित होते हैं और सर्व संग से रहित वे श्रीमान् देहों के भंग को प्राप्त करके सुव्रते ! मेरे ही प्रसाद से परम मोक्ष को प्राप्त हो ही गये हैं ।७३। सहस्रों जन्मोंमें योग का अभ्यास करके जिसकी प्राप्तिकी जाती है उसी परम मोक्ष को यहाँ पर मरण करने से ही मनुष्य प्राप्त कर लेता है ।७४। हे देवि ! यह अति संक्षेप से इस अविमुक्त क्षेत्रका महान् फल जो परम उत्तम और अत्यन्त गुह्यतम है मैंने आपको बतला दिया है । हे महेश्वरि ! इससे परतर कुछ भी सिद्धि गुह्य नहीं है। इसको योग के ज्ञाता और भूमण्डल में स्थित योगेश्वर गण ही जो होते हैं वे ही जानते हैं । यह ही सर्वोपरि परम स्थान है—यह ही परमशिव है—यह ही परम ब्रह्म है और यह ही सर्वोत्कृष्ट परम पद है ।७५-७७

वाराणासी तु भुवनत्रयसारभूता रम्या—
सदा यम पुरी गिरिराजपुत्रि !।
अत्रागता विविधदुष्कृतकारिणोऽपि—
पापक्षयाद्विरजस: प्रतिभान्ति मर्त्या: ।७८
एतत्स्मृतं प्रियतमं मम देवि !
नित्यं क्षेत्रं विचित्रतरुगल्मलतासुपुष्पम् ।
अस्मिन्मृतास्तनुभृत: पदमाप्नुवन्ति—
मूर्खागमेन रहितापि न संशयोऽत्र ।७९
एतस्मिन्नन्तरे देवो देवी प्राह गिरीन्द्रजाम् ।
दातु प्रसादाद्यक्षाय वरं भक्ताय भामिनि ।८०
भक्तो मम वरारोहे ! तपसा हतकिल्विष: ।
अहो वरमसौ लब्धमस्मत्तो भुवनेश्वरि ! ।८१
एवमुक्त्वा ततो देव: सह देव्या जगत्पति: ।
जगाम यक्षा यत्रास्ते कृशोधमनिसन्तत: ।८२

ततस्तं गुह्यकं देवी दृष्टिपातैर्निरीक्षती ।
श्वेतवर्णादिचर्माणं स्नायुबद्धास्थिपञ्जरम् ।८३

देवी प्राह तदा देव दर्शयन्ती च गुह्यकम् ।
सत्य नाम भवानुग्रो देवैरुक्तस्तु शंकर ! ।८४

यह वाराणसी पुरी हे गिरिराज पुत्रि! तीनों भुवनों की सानभूता सदा अतीव रम्य मेरी पुरी है । यहाँ पर आते हुए अनेक प्रकार के को करने वाले भी मनुष्य पापों के क्षय हो जाने से परम शुद्ध होकर दीप्तिमान हो जाया करते हैं । हे देवि ! यह मेरा प्रियतम क्षेत्र है और नित्य है । यहाँ पर विचित्र तरु और लता तथा गुल्मों से पुष्प हुआ करते हैं यहाँ मृत्यु को प्राप्त होनेवाले देहधारी लोग अत्यन्त मूर्ख एवं आगमों रहित होते हुए भी परम पद को प्राप्त किया करते हैं इस में किञ्चितमात्र भी संशय नहीं है ।७८-७६। महामहर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसी अन्तर में वह देव गिरीन्द्रजा देवी से भक्त यक्ष के लिए प्रसन्नता से वरदान प्रदान करने के लिए बोले थे—हे भामिनी ! हे वारारोहे ! यह मेरा भक्त है और तपश्चर्या के द्वारा इसने अपने सब पापों को हत कर दिया है । हे भुवनेश्वरि ! इसने हमसे वर प्राप्तकर लिया है । इस प्रकार से कहकर जगत् के पति देव अपनी देवी के साथ वहाँ पर गये थे जहाँ पर अत्यन्त कृश केवल धमनियाँ ही शेष रहने वाला यक्ष तप में निमग्न था । इसके अनन्तर उस देवी ने अपनी दृष्टि के पातों से उस गुह्यकका निरीक्षण किया था । वह एकदम श्वेत वर्ण वाला—चर्म्म से रहित और स्यनायुओं से बद्ध अस्थियों के पंजर वाला था । उस समय में देवी ने उस गुह्यक को दिखलाते हुए ही देव से कहा था कि हे शङ्कर जैसा कि देवों ने कहा था आप सचमुच ही बहुत उग्र रूप एवं स्वभाव वाले हैं ।८०-८४।

ईदृशे चास्य तपसि न प्रयच्छसि यद्वरम् ।
अत्र क्षेत्रे महादेव ! पुण्ये सम्यगुपासिते ।८५

कथमेवं परिक्लेशं प्राप्तो यक्षकुमारकः ।
शीघ्रमस्य वरं यच्च प्रसादात् परमेश्वर ! ।८६
एवं त्वामयौ देव ! वदन्ति परमर्षयः ।
रुष्टाद्वाचाथ तुष्टाद्वा सिद्धिस्तूभयतोभवेत् ।८७
भोगप्राप्तिस्तथा राज्यमन्ते मोक्षः सदाशिवात् ।
एवमुक्तस्ततो देवः सह देव्या जगत्पतिः ।८८
जगाम यक्षो यत्रास्ते कृशोधर्मं निसन्ततः ।
तं दृष्ट्वा प्रणतं भक्त्या हरिकेशं वृषध्वजः ।८९
दिव्यञ्चेक्षुरदात्तस्मै येनापश्यत् स शंकरम् ।
अथ यक्षस्तदा देशाच्छनैरुन्मील्य चक्षुषी ।
अपश्यत् सगणं देवं वृषध्वजमुपस्थितम् ।९०

हे महादेव ! इस क्षेत्र में पुण्य की उपासना करने वाले इसके इस प्रकार के तप में भी आप कोई अभी तक इसको वरदान नहीं दे रहे हैं यही तो आपके स्वभावकी उग्रता है । हे परमेश्वर! यह यक्षका कुमार क्यों ऐसे महान् तपस्या के क्लेश को प्राप्त हो गया है ? आप प्रसन्न होकर अति शीघ्र ही इसको वरदान कीजिए ।८५-८६। हे देव ! मुनि आदि परमर्षिगण तो इसी प्रकारसे कहा करतेहैं कि रुष्ट से अथवातुष्ट से दोनों ही प्रकार से सिद्धि हुआ करती है । सदाशिव प्रभु से पहिले भोगों की प्राप्ति और राज्य प्राप्त हुआ करता है और अन्त में मोक्षके पाने का लाभ होता है । इस प्रकार से जब देवी के द्वारा देव से कहा गया था तो तुरन्त ही जगत् के स्वामी वह देव देवी के ही साथ में वहाँ पर पहुँच गये थे जिस स्थल परम दुर्बल और शेष धमनियों वाला वह यक्ष तप में लीन होकर समुस्थित था । भक्ति से हरिकेश को प्रणाम करते हुए उसको देखकर भगवान वृषध्वज ने दिव्य चक्षु प्रदान करदी थी जिससे उसने शंकर को देख लिया था । इसके उपरान्त उसी समय में वह यक्ष अपने चक्षुओंको उनमीलित करके स्थान से धीरे से उठाथा

और उसने गणों के सहित वहाँ पर समुपस्थित वृषध्वज देव को देखा था।८७-९०।

वरं ददामि ते पूर्वं त्रैलोक्ये दर्शनं तथा ।९१
सावर्ण्यं च शरीरस्य पश्य मां विगतज्वरः ।
ततः स लब्ध्वा तु वरं शरीरेणाक्षतेन च ।९२
पादयोः प्रणतस्तणोकृत्वा शिरसिसाञ्जलिम् ।
उवाचाथ तदा तेन वरदोऽस्मीति चोदितः ।९३
भगवन् ! भक्तिमव्यग्रां त्वय्यनन्यां विधत्स्व मे ।
अन्नदत्वं च ते लोकानां गाणपत्यं तथाऽक्षयम् ।९४
अविमुक्तं च ते स्थानं पश्येयं सर्वदा यथा ।
एतदिच्छामि देवेशं त्वत्तो वरमनुत्तमम् ।९५
जरा मरणसन्त्यक्ता सर्वरोगविवर्जितः ।
भविष्यसि गणाध्यक्षो धनदः सर्वपूजितः ।९६
अजेयश्चापि सर्वेषां योगैश्वर्यं समाश्रितः ।
अन्नदश्चापि लोकेभ्यः क्षेत्रपालोभविष्यसि ।९७
महाबलो महासत्वो ब्रह्मण्यो मम च प्रियः ।
त्र्यक्षश्च दण्डपणिश्च महायोगी तथैव च ।९८
उद्भ्रमःसम्भ्रमश्चैव गणौतु परिचारकौ ।
तवाज्ञाञ्च करिष्येते लोकस्योद्भ्रमसंभ्रमौ ।९९
एवं स भगवांस्तत्र यक्षं कृत्वा गणेश्वरम् ।
जगाम वामदेवेशः सह तेनामरेश्वरः ।१००

देवों के भी देव ने कहा—मैं पहिले तुझे वरदान देता हूँ तथा त्रैलोक्य में दर्शन देता हूँ। फिर विगत ज्वर वाला होकर शरीर की सवर्णता और मुझको देखना।९१। श्री सूतजी ने कहा—इसके उपरान्त उसने वरदान को पाकर अक्षत शरीर से शिव के चरणों में प्रणत होते हुए शिव पर दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधकर वहाँ पर स्थित

हो गया था फिर उसने उस समय में कहा था कि हे भगवन् ! मैं वर प्राप्त होने वाला हो गया हूँ। अब तो आप अपनेमें अव्यग्र और अनन्य भक्ति मेरी कर देवे तथा लोकों को अन्न का देने वाला एवं अक्षय गाणपत्य पद प्रदान कीजिए ।९२-९४। मुझे ऐसा ही बना दीजिए कि मैं सर्वदा आपके अविमुक्त स्थान का दर्शन करता रहूँ। हे देवेश्वर ! आप से मैं यही उत्तम बरदान चाहता हूँ ।९५। देवों के देव ने कहा—जरा (वृद्धता) और मौत इन दोनों से सम्त्यक्त होता हुआ तू सब रोगों से वर्जित रहेगा तथा सबके द्वारा पूजित गणों का अध्यक्ष धनद हो जायगा। योगके ऐश्वर्य का समाश्रय करके सबका तू अजेय होगा और लोकों के लिए अन्न का प्रदान करने वाला क्षेत्रपाल होगा। इसके अतिरिक्त तू महान् बल वाला-महान् सत्वसे युक्त-ब्राह्मण्य त्र्यक्ष (तीन नेत्रों वाला) दण्डपाणि-महायोगी और मेरा प्रिय हो जायगा ।९६-९८। उद्भ्रम और सम्भ्रम ये दो गण तुम्हारे परिचारक होंगे। लोक के उद्-भ्रम और सम्भ्रम तेरी आज्ञा को करेंगे। सूतजी ने कहा—इस तरह भगवान उस यक्ष को गणेश्वर बनाकर अमरेश्वर वामदेव उसीके साथ चले गये थे। ।९९-१००।

वाराणसी क्षेत्र माहात्म्य

इमांपुण्योद्भवां स्निग्धांकथां पापप्रणाशिनीम् ।
शृण्वन्तु ऋषय: सर्वसुविशुद्धास्तपोधना: ।१
गणेश्वरपति दिव्यं रुद्रतुल्यपराक्रमम् ।
सनत्कुमारो भगवानपृच्छन्नन्दिकेश्वरम् २
ब्रूहि गुह्यं यथा तत्वं यत्र नित्यं भवस्थित: ।
माहात्म्यं सर्वभूतानां परमात्ममहेश्वर: ।३
घोररूपं समास्थाय दुष्करं देवदानवै: ।
आभूतसंप्लवं यावत् स्थाणुभूतो महेश्वर: ।४

पुरा देवेन यत्प्रोक्तं पुराणं पुण्यसंयुतम् ।
तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य महेश्वरम् ।५
ततो देवेन तुष्टेन उमायाः प्रियकाम्यया ।
कथितं भुविविख्यातं यत्र नित्यं स्वयंस्थितः ।६
रुद्रस्यार्धासनगता मेरुशृङ्गे यशस्विनी ।
महादेवं ततो देवी प्रणता परिपृच्छति ।७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा—सुविशुद्ध—तप के धन वाले सब ऋषिगण आप लोग इस पुण्य से उत्पन्न हुई–पापों के नाश करने वाली अत्यन्त स्निग्ध कथा का श्रवण करिए ।१। भगवान सनत्कुमार ने गणेश्वरों के स्वामी-दिव्य और रुद्र के तुल्य पराक्रम से सम्पन्न नन्दिकेश्वर में पूछा था ।२। हे भगवन्! परम गुह्य तत्व जहाँ पर भगवान नित्य ही स्थित रहा करते हैं—समस्त भूतोंका माहात्म्य और परमात्मा महेश्वर देव–दानवोंके साथ अतिदुष्कर और परम घोररूप में समास्थित होकर स्थाणु भूत महेश्वर सब भूतों का संप्लव होता है तब रहा करते हैं। ।३-४। नन्दिकेश्वर ने कहा—पहिले समय में जो परम उत्तम पुराण पुण्य से संयुत देव ने कहा था वही सब में अब भगवान महेश्वर को नमस्कार करके कहूँगा।५। इसके अनन्तर परम सन्तुष्ट हुए देव ने उमा के प्रिय की कामना से भूमण्डल में विख्यात को कहा था जहाँ कि वह स्वयं संस्थित थे ।६। रुद्र के अर्द्धासन पर स्थित—मेरु शृङ्ग में संस्थित यशस्विनी देवी महादेव के सामने प्रणत हुई पूछती हैं ।७।

भगवन् ! देव देवेश ! चन्द्रार्द्ध कृतशेखर ।
धर्मं प्रब्रूहि मर्त्यानां भुवि चैवोर्द्ध्वरेतसाम् ।८
जप्तं दत्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतञ्च तत् ।
ध्यानाध्ययनसम्पन्नं कथं भवति चाक्षयम् ।९
जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम् ।
कथं तत्क्षयमायाति तन्ममाचक्ष्व शंकरम् ! ।१०

यस्मिन् व्यवस्थितो भक्त्या तुष्यसे परमेश्वरः ! ।
व्रतानि नियमाश्चैव आचारो धर्मएवच ।११
सर्वसिद्धिकरं यत्रः ह्यक्षय्यगतिदायकम् ।
वक्तुमर्हसि तत्सर्वं परं कौतूहलं हि मे ।१२
शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि गुह्यानां गुह्यमुत्तमम् ।
सर्वक्षेत्रेष्वपि ख्यातमविमुक्तं प्रिये मम ।१३
अष्टषष्टिः पुरा प्रोक्तास्थानानांस्थानमुत्तमम् ।
यत्रसाक्षात्स्वयंरुद्रः कृत्तिवासाः स्वयंस्थितः ।१४

हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! हे आधे चन्द्र को शिर में धारण करने वाले ! आप कृपया भूमण्डल में मनुष्यों का और ऊर्ध्व रेताओं का धर्म बतलाओ ।८। जाप-दान-हवन-इष्ट-तप और किया हुआ ध्यान-अध्ययन आदि यह सभी किस प्रकार से अक्षय होता है जो कभी भी क्षीण ही न होवे ? हे शंकर देव ! सहस्रों अन्य जन्मो में पूर्व से ही सञ्चित किया हुआ जो पाप है वह किस प्रकार से क्षय को प्राप्त हुआ करता है यह सभी आप मुझको बतलाइए ।९-१०। जिसमें विशेषरूप से अवस्थित होकर भक्ति से आप सन्तुष्ट हुआ करते हैं, हे परमेश्वर ! उन व्रतों को—नियमों को—आचार को औम धर्मको आप बतलाने के योग्य हैं जिसमें अक्षय गति के देने वाला और जो सम्पूर्ण सिद्धियों के करने वाले हों—यह सभी आष मुझे परम अनुग्रह करके बतलाइए । मेरे हृदय में इसके श्रवण करने का बड़ा भारी कौहतूल हो रहा है ।११-१२। भगवान् महेश्वर ने कहा—हे देवि ! आप सुनिए । मैं गोपनीय से भी अधिक गोपनीय और उत्तम जो भी है उसे अब तुमको बतला दूँगा । हे प्रिये ! समस्त क्षेत्रों में विख्यात अविमुक्त क्षेत्र मेरा अत्यन्त प्रिय होता है ।१३। पहिले अड़सठ स्थानों में अत्युत्तम स्थान बतलाये हैं जहाँ पर कृत्तिका वसन धारण करने वाले साक्षात् स्वयंरुद्र स्थित रहा करते हैं ।१४।

यत्र सन्निहितो नित्यमविमुक्ते निरन्तरम् ।

तत्क्षेत्रं न मयामुक्तं ततोऽविमुक्तं स्मृतम् ।१५
अविमुक्तेतुरा सिद्धिगविमुक्ते परा गतिः ।
जप्तं दत्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।१६
ध्यानमध्ययनं दानं सर्वं भवति चाक्षयम् ।
जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं पूर्वसञ्चितम् ।१७
अविमुक्तप्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम् ।
अविमुक्ताग्निना दग्धमग्नौ तूलमिवाहितम् ।१८
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसंकराः ।
कृमिम्लेच्छाश्च ये चान्ये संकीर्णाः पापयोनयः ।१९
कीटाः पिपीलिाश्चैव येचान्ये मृगपक्षिणः ।
कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते शृणु प्रिये ! ।२०
चन्द्रार्द्ध मौलिनः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजाः ।
शिवे ममपुरे देवि ! जायन्ते तत्र मानवाः ।२१

जिस अविमुक्त में निरन्तर नित्य ही मैं सन्निहित रहा करता हूँ और मेरे द्वारा वह क्षेत्र कभी भी मुक्त नहीं किया जाता है इसीलिए वह अविमुक्त-इस नाम से कहा गया है ।१५। उस अविमुक्त स्थान में सर्वोत्तम परा सिद्ध होती है और उस अविमुक्त में परागति हुआ करती है । जाप, दान, हुत, चेष्टा, तप्त, तपस्या किया हुआ धर्म का कार्य—ध्यान, अध्ययन, दानादि यह सभी वहाँ पर अक्षय होता है । सहस्रोंपूर्व में हुए जन्मों में जो भी कुछ पाप कर्म सञ्चित हो गया है वह भी सब अविमुक्त नामक मेरे परम प्रिय स्थान में प्रवेश करने वाले पुरुषके सभी कुछ तुरन्त ही क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं । वह सब अग्नि में आहित तूल की ही भाँति अविमुक्त स्थल की अग्नि से दग्ध हो जाया करता है ।१६-१८। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र और वर्णसंकर, कृमि, म्लेच्छ और जो अन्य सङ्कीर्ण पाप योनि वाले हैं तथा कीट-पिपीलिका (चींटियाँ) और जोर जो अन्य मृग एवं पक्षिगण हैं हे प्रिये ! वे सब

काल से अविमुक्त क्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त होते हैं उनके विषय में श्रवण करलो। हे देवि ! वे सभी चन्द्रार्धं मौलि वाले—वृषध्वज और ललाट में नेत्र वाले होकर मेरे शिवपुरमें मानव होकर जन्म ग्रहण किया करते हैं।१६-२१।

अकामो वा सकामो वा ह्यपि तिर्यग्गतोऽपि वा।
अविमक्ते त्यजन् मम लोके महीयते।२२
अविमुक्तं यदागच्छेत् कदाचित्कालपर्ययात्।
अश्मना चरणौ बद्ध्वा तत्रैव निधनं व्रजेत्।२३
अविमुक्तं गतोदेवि ! न निर्गच्छेत्ततः पुनः।
सोऽपि मत्पदमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।२४
वस्त्रप्रदं रुद्रकोटिं सिद्धेश्वरमहालयम्।
गोकर्णं रुद्रकर्णश्च सुवर्णाक्षं तथैव च।२५
अमरञ्च महाकालं तथा कायावरोहणम्।
एतानि हि पवित्राणि सान्निध्यात् सन्ध्ययोर्द्वयोः।२६
कालिञ्जरवनञ्चैव शंकुकर्णं स्थलेश्वरम्।
एतानि च पवित्राणि सान्निध्याद्धि ममप्रिये।
अविमुक्ते वरारोहे ! त्रिसन्ध्यं नात्र संशयः।२७
हरिश्चचन्द्रः परंगुह्यं गुह्यमाम्रातकेश्वरम्।
जलेश्वर परं गुह्यं गुह्यं श्रीपर्वतं तथा।२८

बिना कामना वाला हो अथवा सकाम हो अथवा तिर्यग् योनि में रहने वाला हो कोई भी कैसा ही हो अविमुक्त क्षेत्र में प्राणों का त्याग करता हुआ फिर मेरेही लोकमें जाकर प्रतिष्ठित हुआ करताहै। किसी भी समय में काल के पर्यय से अब भी उस अविमुक्त में चला जावे तो पाषाण से अपने चरणोंको बाँधकर वहीं पर निधन को प्राप्त हो जाना चाहिए अर्थात् वहाँ पहुँच कर फिर उस क्षेत्र को किसी तरह से मृत्यु तक नहीं छोड़ना चाहिए।२२-२३। जो कोई भी किसी भी तरह से

यदि मेरे परम प्रिय अविमुक्त क्षेत्र में एक बार प्राप्त हो जावे तो फिर उससे कभी भी निकल कर नहीं जाना चाहिए। वह पुरुष भी मेरे पद को प्राप्त हो जाया करता है—इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है।२४। वस्त्रप्रद, रुद्र कोटि, सिद्धेश्वर महालय, गोकर्ण, रुद्रकर्ण, सुपर्णाक्ष, अमर महाकाल वायावरोहण ये स्थल भी दोनों सन्ध्याओं के सान्निध्य होने से परम पवित्र स्थल हैं।२५। कालिञ्जर वन, शंककर्ण-स्थलेश्वर ये स्थल भी पवित्र हैं। हे प्रिये! मेरे सान्निध्य होने के कारण से ही ये पवित्र होते हैं। हे वरारोहे! अविमुक्त में त्रिसन्ध्य है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।२६-२७। हरिश्चन्द्र परम गुह्य है और आम्रातकेश्वर भी गोपनीय है। जलेश्वर गुह्य है तथा श्रीपर्वत भी उसी भाँति गुह्य स्थल होता है।२८।

महालयं तथा गुह्यं कृमिचण्डेश्वरं शुभम्।
गुह्यातिगुह्यं केदारं महाभैरवमेव च।२९
अष्टावेतानि स्थानानि सान्निध्याद्धि ममप्रिये!।
अविमुक्ते वरारोहे! त्रिसन्ध्यं नात्रसंशयः।३०
यानि स्थानानि श्रूयन्तेत्रिषुलोकेषु सुव्रते!।
अविमुक्तस्य पादेषु नित्यंसन्निहितानिवै।३१
अथोत्तरां कथां दिव्यामविमुक्तस्य शोभने।
स्कन्दोवक्ष्यति मापात्म्य मृषीणां भावितात्मनाम्।३२

महालय उसी भाँति गुह्य और कृमि चण्डेश्वर परम शुभ है। गुह्य से भी अधिक गुह्य केदार तथा महाभैरव है।२९। ये आठ स्थान हे प्रिये! मेरे ही सान्निध्य से हे वरारोहे! अविमुक्त में त्रिसन्ध्य है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।३०। हे सुव्रते! तीनों लोकों में जो भी स्थान सुने जाते हैं वे सभी अविमुक्त क्षेत्र के पादों में नित्य ही सन्निहित रहा करते हैं। इसके अनन्तर दिव्य उत्तर कथा जोकि अवि-

मुक्त की है उसे हे शोभने ! उसको जिसमें भावितात्मा ऋषियों का माहात्म्य है अब स्कन्द बतलायेगा ।३१-३२।

७५—नर्मदा माहात्म्य

माहात्म्यमविमुक्तस्य यथावत् कथितन्त्वया ।
इदानीं नर्मदायास्तु महात्म्यबदसत्तम ! ।१
यत्रौंकारस्य माहात्म्यं कपिलासङ्गमस्य ।
अमरेशस्य चैवाहुर्माहात्म्यं पापनाशनम् ।२
कथं प्रलयकाले तु न नष्टा नर्मदा पुरा ।
मार्कण्डेयश्च भगवान्न विनष्टस्तदा किल ।
त्वयोक्त तदिदं सर्वं पुनर्विस्तरतो वद ।३
एतदेव पुरा पृष्टः पाण्डवेन महात्मना ।
नर्मदायास्तु माहात्म्यं मार्कण्डेयो महामुनिः ।४
उग्रेण तपसा युक्तो वनस्था वनवासिना ।
दृष्टपूर्वा महागाथां धर्मपुत्रेण धीमता ।५
श्रुता मे विविधा धर्मास्त्वत्प्रसादद्विजोत्तम ! ।
भूयश्च श्रोतुमिच्छामि तन्मे कथय सुव्रत ! ।६
कथमेषा महापुण्या नदी सर्वत्र विश्रुता ।
नर्मदा नाम विख्याता तन्मे ब्रूहि महामुने ! ।

ऋषिगण ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! आपने अवमुक्त क्षेत्र का महात्म्य यथा रीति से कह दिया है । अब नर्मदा का माहात्म्य वर्णन करने की कृपा कीजिए ।१। जिसमें औंकार का माहात्म्य—कपिला संगम का माहात्म्य तथा पापोंके नाश करने वाले अमरेश का माहात्म्य कहा जाता है ।२। पहिले प्रलय काल में जब सभी विनष्ट हो जाया करते हैं । यह नर्मदा कैसे नष्ट नहीं हुई थी और उस समय में भगवान मार्कण्डेय भी विनष्ट नहीं हुए थे—यह सभी आपने पूर्व में वर्णित किया था

अब पुनः इस सबका विस्तार पूर्वक वर्णन करने की आप कृपा कीजिए ।३। श्री सूतजी ने कहा—यह ही प्रश्न इसी तरह से महात्मा ने महामुनि मार्कण्डेय से पूछा था जिसमें नर्मदा का माहात्म्य भी था । मार्कण्डेय महामुनि परम उग्र तप से युक्त थे उनसे वन में ही निवास करने वाले धीमान धर्म पुत्र ने पहिले इस महा गाथा को पूछा था ।४-५। युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजों में परम उत्तम ! आपके ही प्रसाद से मैंने अनेक प्रकार के धर्मों का श्रवण किया था । हे सुव्रत ! अब मैं पुनः उनको ही सुनना चाहता हूँ सो आप मेरे सामने उन्हें कहिए ।६। यह महान् पुण्यों वाली नदी सर्वत्र कैसे प्रसिद्ध हुई है । तथा इसका नर्मदा—यह नाम भी किस प्रकार से हे महामुने! विख्यात हुआ है—इसे ही आप सर्व प्रथम मुझे बतलाइए ।७।

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी ।
तारयेत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ।८
नर्मदायास्तु माहात्म्यं पुराणे यन्मया श्रुतम् ।
तदेतद्धि महाराज ! तत्सर्वं कथयामि ते ।९
पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती ।
ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ।१०
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम् ।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम् ।११
कलिङ्गदेशे पश्चार्द्धे पर्वतेऽमरकण्टके ।
पुण्ये च त्रिषु लोकेषु रमणीया मनोरमा ।१२
सदेवासुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः ।
तपस्तप्त्वा महाराज ! सिद्धिञ्च परमाङ्गताः ।१३
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नियमस्थो जितेन्द्रियाः ।
उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम् ।१४

मार्कण्डेय जी ने कहा—यह नर्मदा समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ है

और सम्पूर्ण पापों का विनाशकर देने वालीहै। यह सभी स्थावर तथा चर प्राणियों का तारणकर दिया करती है। नर्मदा नदी का माहात्म्य जो कि मैंने पुराणों में श्रवण किया है, हे महाराज ! इसका सम्पूर्ण माहात्म्य अब मैं आपसे कहता हूँ।८-६। गङ्गा कनखल में—सरस्वती कुरुक्षेत्र में–पुण्यमयी हैं किन्तु नर्मदा ग्राम तथा अरण्य में सर्वत्र परम पुण्यमयी होती हैं।१०। सरस्वती का जल तीन दिन में—यमुना का जल एक सप्ताह में और गंगा भागीरथी का जल तुरन्त पान करते ही मनुष्य को पवित्र कर उसके पापों का नाश कर देता है किन्तु नर्मदाके जलके तो दर्शन मात्र से ही पापों का विनाश हो जाया करता है।११। कलिंग देश में पीछे के अर्द्ध भाग में अमर-कण्टक पर्वत में जो कि परम पुण्यमय है तथा तीनों लोकोंमें यह नर्मदा अतीव मनोरम और रमणीय है।१२। हे महाराज ! देव, गन्धर्व, असुर और तप के ही धन वाले ऋषिगण यहाँ पर तपश्चर्या करके परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। उसमें स्नान करके हे राजन् ! नियमों में संस्थित तथा इन्द्रियों को जीतने वाला एक रात्रि में ही निवास करके अपने सौ कुलों का उद्धार कर दिया करता है।१३-१४।

जलेश्वरे नरः स्नात्वा पिण्डं दत्त्वा यथाविधि।
पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाभूतसंप्लवम्।१५
पर्वतस्य समन्तात्तु रुद्रिकोटिः प्रतिष्ठिता।
स्नात्वा यः कुरुते तत्र गन्धमाल्यानुलेपनैः।१६
प्रीतस्तस्य भवेच्छर्वो रुद्रकोटिर्न संशयः।
पश्चिमे पर्वतस्यान्ते स्वयं देवो महेश्वरः।१७
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
पितृकार्यञ्च कुर्वीत विधिवन्नियतेन्द्रियः।१८
तिलोदकेन तत्रैव तर्पयेत् पितृदेवताः।
आसप्तमं कुलं तस्य स्वर्गे मोदेत पाण्डव !।१९

षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।
अप्सरोगणसंकीर्णे सिद्धाचारण सेविते ।२०
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यालंकारभूषित: ।
तत: स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विपुले कुले ।२१

जलेश्वर में मनुष्य स्नान करके विधि-पूर्वक पिण्डदान करके पितृ-गण भूतों के संप्लव पर्यन्त संतृप्त रहा करते हैं ।१५। पर्वत के चारों ओर रुद्र कोटि प्रतिष्ठित है । वहाँ पर स्नान करके जो कोई गन्ध माल्यों और अनुलेपनों से अभ्यर्चन किया करता है उससे रुद्र कोटिशवें परम प्रसन्न होते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । पर्वत के अन्त में पश्चिम में स्वयं महेश्वर समवस्थित रहा करते हैं ।१६-१७। वहाँ पर स्नान करके और परम शुचि होकर ब्रह्मचर्य से रहने वाले जितेन्द्रिय पुरुष को इन्द्रियों को नियत रखते हुए—विधि पूर्वक पितृ कार्य करना चाहिए ।१८। वहीं पर तिलोदक के द्वारा पितृ देवताओं का तर्पण करना चाहिए । हे पाण्डव ! उसके सात कुल तक स्वर्ग में आनन्द पूर्ण निवास किया करते हैं ।१९। अप्सराओं के गणों से सेवित एवं संकीर्ण तथा सिद्धों एवं चारणों से निषेवित स्वर्ग लोक में वह साठ हजार वर्ष पर्यन्त प्रतिष्ठित रहा करता है ।२०। दिव्य गन्धों से अनुलिप्त एवम् दिव्य आभरणों से विभूषित वह स्वर्गीय सुख भोग करके जब वहाँ से परिभ्रष्ट होता है तो इस भूमण्डल में किसी बड़े श्री सम्पन्न कुल में जन्म ग्रहण किया करता है ।२१।

धनवान् दानशीलश्च धार्मिकश्चैव जायते ।
पुन: स्मरति तत्तीर्थं गमनं तत्र रोचते ।२२
कुलानि तारयेत् सप्त रुद्रलोकं स गच्छति ।
योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा ।२३
विस्तरेण तु राजेन्द्र ! योजनद्वयमायता ।
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टकोट्यस्तथैव च ।२४

सर्वं तस्य समन्तात्तु तिष्ठतेऽमरकण्टके ।
ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो चितेन्द्रियः ।२५
सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रतः ।
ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितेक्रोधः परित्यजेत् ।२६
तस्य पुण्यफलं राजन् ! शृणुष्वावहितो मम ।
शतवर्षसहस्राणां स्वर्गे मोदेत पाण्डव ! ।२७
अप्सरोंगणसंकीर्णे सिद्धचारणसेविते ।
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यपुष्पोपशोभितः ।२८
क्रीडते देवलोकस्थो दैवतैः सह मोदते ।
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो राजा भवति वीर्यवान् ।२९

वह इस पृथ्वी तल में समुत्पन्न होकर बहुत बड़ा धनी-दान करने के स्वभाव वाला और धार्मिक हुआ करता है। वह फिर उसी तीर्थ का स्मरण करता है और वहाँ पर गमन करना तो उसे अच्छा लगता है। वह अपने सात कुलों को तार दिया करता है और वह रुद्र लोकमें चला जाता है। यह उत्तम सरित् डेढ़ सौ योजनों के विस्तार वाली सुनी जाती है।२२-२३। हे राजेन्द्र ! यह दो योजन विस्तार से आयत है। साठ सहस्र तीर्थ तथा साठ करोड़ तीर्थ उसके चारों ओर अमर कण्टकमें स्थित है। जो कोई ब्रह्मचर्य पालन करने वाला—परम शुचि क्रोध को जीतने वाला और इन्द्रियों को वशमें रखने वाला होकर सभी प्रकार की हिंसासे निवृत्त—समस्त प्राणियों के हित में रति रखने वाला भगवान शर्व में ही समाचरण करते हुए अपने प्राणों का परित्याग किया करता है हे राजन्! उसके होने वाले पुण्यों के फल को तुम परम सावधान होकर श्रवण करो। हे पाण्डव वह पुरुष सौ सहस्र वर्ष तक स्वर्ग में आनन्दित जीवन यापन करता है।२४-२७। अप्सराओं के गणों से समाकुल सिद्ध और चारणों के द्वारा सेवित स्वर्ग में दिव्य गन्ध से अनुलिप्त एवं दिव्य पुष्पों से उपशोभित होता हुआ देव लोक में स्थित

होकर देवगणों के साथ क्रीड़ा और आनन्द किया करता है फिर उस स्वर्ग से जब परिभ्रष्ट होता है तो परम बल-वीर्य वाला राजा होता है ।२८-२६।

गृहन्तु लभते स वै नानारत्नविभूषितम् ।
स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैदूर्यभूषितैः ।३०
आलेख्यसहितं दिव्यं दासीदाससमन्वितम् ।
मत्तमातङ्गमन्दैश्च हयानां ह्रेषितेन च ।३१
क्षुभ्यते तस्य तद्द्वारं इन्द्रस्य भवनं यथा ।
राजाराजेश्वरः श्रीमान् सर्वस्त्रीजनवल्लभः ।३२
तस्मिन् गृहे वसित्वा तु क्रीडाभोगसमन्विते ।
जीवेद्वर्षशतं साग्रं सर्वरोगविवर्जितः ।३३
एवं भोगो भवेत्तस्य यो मृतोऽमरकण्टके ।
अग्नौ विषजले वापि तथा चैव ह्यनाशके ।३४
अनिवर्तिकागतिस्तस्य पवनस्याम्बरे यथा ।
पतनं कुरुते यस्तु अमरेशे नराधिप ! ।३५

उसका यहाँ पर गृह भी अनेक रत्नों से समलंकृत—हीरा और वैदुर्य मणियों से परिपूर्ण, दिव्य स्तम्भोंसे समन्वित-आलेख्यों से चित्रित दास और दासियों से संयुत था । प्रमत्त हाथियों के चिंघाड़ों से तथा अश्वों की हिनहिनाटों से उसके गृह का द्वार इन्द्र के भवन की भाँति क्षुब्ध रहा करता था । उस घरमें श्री सम्पन्न सब स्त्रीजनों का वल्लभ वह राज राजेश्वर निवास किया करता है जो पूर्ण क्रीड़ा और भोगों से युक्त था । वहाँ पर सभी प्रकार के रोगों से रहित होकर वह डेढ़ सौ वर्ष तक जीवित रहता है । जो कोई पुरुष उस अमर कण्टक में मृत्यु को प्राप्त होताहै उसे इसी प्रकार के भोगों के उपभोग करने का अवसर प्राप्त होता है जो अग्नि में विषजल में तथा अनाशक में हे नराधिप ! अमरेश में पतन किया करता है उसकी अम्बर में पवन की भाँति अनिवर्तिका गति हुआ करती है ।३०-३५।

कन्यानां त्रिसहस्राणि एकैकस्यापि चापरे।
तिष्ठन्ति भुवने तस्य प्रेषणं प्रार्थयन्ति च।३६
दिव्यभोगैः सुसम्पन्नः क्रीडते कालमक्षयम्।
पर्वतस्य समन्तात्तु रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिताः।३७
स्नानं यः कुरुते तत्र गन्धमाल्यानुलेपनैः।
प्रीतः सोऽस्य भवेत् सर्वो रुद्रकोटिर्निसंशयः।३८
पश्चिमे पर्वतस्यान्ते ह्ययं देवो महेश्वरः।
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।३९
पितृकार्यञ्च कुर्वीत विधिवन्नियतेन्द्रियः।
तिलोदकेन विधिवत्तर्पयेत् पितृदेवताः।४०
आसप्तमं कुलन्तस्य स्वर्गे मोदेत पाण्डव !।
षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते।४१
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यलंकारभूषितः।
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विपुले कुले।४२

तीन सहस्र कन्यायें और एक-एक की दूसरे उसके भुवन में स्थित रहती हैं एवं प्रेषण को प्रार्थनायें किया करती हैं। इस प्रकार से परम दिव्य भोगों से सुम्पन्न होकर वह अक्षय काल पर्यन्त क्रीड़ा करता है। उस पर्वत के चारों ओर रुद्र कोटि प्रतिष्ठित हैं। जो पुरुष वहाँ पर स्नान किया करता है और दिव्य गन्धों के अनुलेपनों से संयुत होता है उस पर वह सम्पूर्ण रुद्र कोटि परम प्रसन्न होता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है।३६-३८। इस पर्वत के पश्चिमीय अन्त भाग में यह महेश्वर देव स्वयं विराजमान हैं। वहाँ पर स्नान करके और शुचि होकर ब्रह्मचारी एवं इन्द्रिय जीत रहकर जो नियत इन्द्रियों वाला अपने पितृ गण के अभ्यर्चन—तर्पण आदि का विधि के साथ कार्य किया करता है और तिलों के सहित उदक से विधि पूर्वक पितृ देवताओं का तर्पण करता है हे पाण्डव ! उसके सात कुलों तक के सब लोग स्वर्ग का

आनन्द निवास प्राप्त करते हैं और साठ हजार वर्ष तक कुल सहित वह स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित पद पर समारूढ़ रहता है फिर स्वर्गों, सुखोपभोग की अवधि समाप्त होने पर वहाँ से परिभ्रष्ट होकर दिव्य-गन्ध से समनुलिप्त तथा परम दिव्य आभूषणों से परिष्कृत होकर यहाँ किसी बहुत बड़े कुल में समुत्पन्न हुआ करता है ।३९-४२।

धनवान् दानशीलश्च धार्मिकश्चैव जायते ।
पुनः स्मरति तीर्थानि गमनं तत्र रोचते ।४३
तारयेत्तु कुलान् सप्त रुद्रलोकं स गच्छति ।
योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा ।४४
विस्तरेण तु राजेन्द्र योजनद्वयमायता ।
षष्ठितीर्थसहस्राणि षष्ठिकोट्य स्तथैव च ।४५
पर्वतस्य समन्तात्तु तिष्ठत्यमरकण्टके ।
ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।४६
सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रतः ।
एवं शर्वसमाचारो यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ।४७
तस्य पुण्यफलं राजन् ! शृणुष्वावहितो मम ।
शतं वर्षसहस्राणां स्वर्गे मोदेत पाण्डव ! ।४८
पृथिव्यामासमुद्रायामीदृशो नैव जायते ।
यादृशोऽयं नृपश्रेष्ठ ! पर्वतेऽमरकण्टके ।४९

वह यहाँ पर प्रसन्न होकर बहुत बड़ा धनी-दाता धार्मिक होता है और फिर भी वह उसी तीर्थका स्मरण किया करताहै तथा वहीं पर गमन करने की उसकी रुचि रहती है। वह अपने सात कुलों को तार दिया करता है और अन्त में रुद्रलोक को चला जाता है। यह उत्तम सरिता सौ और पचास योजनों के विस्तार वाली सुनी जाती ।४४। हे राजेन्द्र यह दो योजनके विस्तृत आयत वालीहै। अमर कण्टकमें उसके चारों ओर बहुत तीर्थ हैं जिनकी संख्या साठ हजार तथा साठ करोड़

बताई जाती है। वहाँ पर ब्रह्मचारी, शुचि, जितक्रोध, जितेन्द्रिय—सब प्रकार की हिंसा से निवृत्त—सब भूतों के हित में रत और शिव में समाचरण करने वाला जो अपने प्राणों का त्याग करता है, हे राजन् उसका जो परम महान् पुण्य-फल हुआ करता है उसे अवहित होकर सुन लो। हे पाण्डव ! वह पुरुष एक सौ सहस्र वर्ष पर्यन्त स्वर्ग में आनन्द प्राप्त किया करता है, समुद्र पर्यन्त पृथ्वी में उस प्रकार का कोई भी उत्पन्न नहीं होता है, हे नृप श्रेष्ठ ! जैसा यह अमरकण्टक पर्वत में हुआ करता।४५-४६।

तावत्तीर्थं तु विज्ञेयं पर्वतस्य तु पश्चिमे।
ह्रदो छलेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।५०
तत्र पिण्डप्रदानेन गन्ध्योपासनकर्मणा।
पितरौ दशवर्षाणि तर्पितास्तु भवन्ति वै।५१
दक्षिणे नर्मदाकूले कपिलेति महानदी।
सव्लार्जुनसंच्छन्ना नातिदूरे व्यवस्थिता।५२
सापि पुण्या महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता।
तत्र कोटिशतं साग्रं तीर्थानां तु युधिष्ठिर।५३
पुराणे श्रूयतेराजन् ! सर्वकोटिगुणं भवेत्।
तस्यास्तीरे तु ये वृक्षाः पतिताः कालपर्ययात्।५४
नर्मदातोयसंस्पृष्टास्तेऽपि यान्ति पराङ्गतिम्।
द्वितीया तु महाभागा विशल्यकरणी शुभा।५५
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा विशल्यो भवति क्षणात्।
तत्रदेवगणाः सर्वे सकिन्नरमहोरगाः।५६
यक्षरक्षसगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः।
सर्वे समागतास्तत्र पर्वतेऽमरकण्टके।५७

उस पर्वत के पश्चिम भागमें उस तीर्थ को जान लेना चाहिए जिस का जलेश्वर ह्रद है और यह तीनों लोकों में बहुत ही विख्यात है।५०

वहाँ पर पिण्डों का प्रदान करने से तथा सन्ध्योपसना के कर्म से पितृ-गण दशवर्षों तक परम तृप्त रहा करते हैं। नर्मदा नदी के दक्षिण तट पर कपिला नाम वाली एक महानदी है। वह सम्पूर्ण अर्जुन के वृक्षोंसे संच्छन्न रहने वाली है और और वह उससे अधिक दूर में व्यवस्थित नहीं है अर्थात् बहुत ही समीप में ही है।५१-५२। यह नदी भी अति पुण्यमयी और महाभागा है तथा लोकों में बहुत प्रसिद्ध भी है। हे युधिष्ठिर ! वहाँ पर डेढ़ सौ करोड़ तीर्थ हैं।५३। हे राजन् ! पुराणमें यह श्रवण किया जाता है कि वह सब कोटि गुण वाली होती हैं। उस के तट पर जो वृक्ष काल के विपर्यय से पतित हो गये हैं और नर्मदा नदी के जल से जिनका संस्पर्श हो गया है वे जड़ भी परमोत्तम गति को प्राप्त किया करते हैं। दूसरी एक नदी परमशुभ महाभागा विशल्य करणी है। उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके क्षणमात्र में ही विगत-शल्य वाला हो जाया करता है। वहाँ पर उस अमरकण्टक पर्वत में समस्त देवगण, किन्नर, महोरग, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व और तप के ही धन वाले ऋषि वृन्द समागत होते हैं।५४-५७।

तैश्च सर्वैः समागम्य मुनिभिश्च तपोधनैः।
नर्मदामाश्रिता पुण्या विशल्यानाम नामयः।५८

उत्पादिता महाभागा सर्वपापप्रणाशिनी।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।५९

उपोष्य रजनीमेकां कुलानान्तारयेच्छतम्।
कपिला च विशल्या च श्रूयते राजसत्तम !।६०
ईश्वररेण पुरा प्रोक्ते लोकानां हितकाम्यया।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत्।६१

अनाशकन्तु यः कुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिप !।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकंसगच्छति।६२

नर्मदायास्तु राजेन्द्र ! पुराणे यन्मया श्रुतम् ।
यत्र तत्र नरः स्नात्वा चाश्वमेधफलं लभेत् ।६३

इन सबने जो तपोधन मुनिगण थे, वहाँ पर एकत्रित होकर नर्मदा नदी का समाश्रय प्राप्त किया था तथा विशल्या नाम वाली पुण्यमयी नदी को समुत्पादित किया था। जो महान् भाग वाली और सभी प्रकार के पापों का विनाश करने वाली थी। हे राजन् ! उसमें मनुष्य स्नान करके जितेन्द्रिय तथा ब्रह्मचारी रहकर एक रात्रि में वहाँ पर निवास करता है तो वह अपने सौ कुलों का उद्धार कर दिया करता है। हे राजाओं में परम श्रेष्ठ ! कपिला और विशल्या इनके विषयमें सुना जाता है कि प्राचीन काल में ईश्वर ने लोकों के हित की कामना से ही इनको कहा था। हे राजन् ! वध स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञ के पुण्य फल को प्राप्त किया करता है ।५८-६३।

ये वसन्त्युत्तरे कूले रुद्रलोके वसन्ति ते ।
सरस्वत्याञ्च गङ्गायां नर्मदायां युधिष्ठिर ! ।६४
समं स्नानं च दानञ्च यथा मे शङ्करोऽब्रवीत् ।
परित्यजति यः प्राणान् पर्वतेऽमरकण्टके ।६५
वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते ।
नर्मदाया जलं पुण्यं केनोर्मिभिरलङ्कृतम् ।६६
पवित्रं शिरसा वन्द्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
नर्मदा सर्वतः पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी ।६७
अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
एव रम्या च पुण्या नर्मदा पाण्डुनन्दन ! ।६८
त्रयाणामपि लोकानां पुण्या ह्येषा महानदी ।
वटेश्वरे महापुण्ये गङ्गाद्वारे तपोवने ।६९
एतेषु सर्वस्थानेषु द्विजः स्युः संशितव्रताः ।
श्रुतं दशगुणं पुण्यं नर्मदोदधिसङ्गमे ।७०

जो लोग इसके उत्तर दिशा वाले तट पर निवास किया करते हैं वे अन्त में जाकर रुद्रलोक में वास पाते है। युधिष्ठिर ! सरस्वती में-गङ्गा में और नर्मदा में स्नान और दान सम होताहै जैसा कि भगवान् शङ्कर ने मुझे बतलाया था। जो अमरकण्टक पर्वत में अपने प्राणों का परि त्याग किया करता है वह डेढ़ सौ करोड़ वर्ष पर्यन्त रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है। नर्मदा महानदी का जल परम पुण्यमय है और केनकी ऊर्मियों से समलंकृत है। यह परम पवित्र है तथा शिरसे वन्दना करने के योग्य है इसके जल का स्पर्श करके ही मनुष्य सब पापों से छुटकारा पा जाया करता है। नर्मदा सब प्रकार पुण्या है और ब्रह्म-हत्या के महापातक का हरण करने वाली है। एक अहोरात्र वहाँ पर स्थित रहकर उपवास करने से ब्रह्म हत्या से छुटकारा हो जाया करता है। हे पाण्डु नन्दन ! इस प्रकारसे यह नर्मदा रम्य और पुण्य शालिनी महानदी है।६४-६८। यह तीनों लोकों में परम पुण्य शालिनी महानदी है जो वटेश्वर में—महापुण्य-मय गंगा द्वार में और तपोवन में इन स्थानों में द्विजगण संशित व्रतों वाले होते हैं उनके उस पुण्य से दश गुना अधिक पुण्य नर्मदा और उदधि के संगम में सुना गया है।६९-७६

७६—नर्मदा से सम्बन्धित अन्य तीर्थों का माहात्म्य

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! हुंकुशेखरमुत्तमम् ।
दर्शनात्तस्य देवस्य मुच्यते सर्वपातकैः ।१
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! नर्मदेश्वरमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! स्वर्गलोकेमहीयते ।२
अश्वतीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत् ।
सुभगो दर्शनीयश्च भोगवान् जायते नरः ।३

पितामहं ततो गच्छेत् ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या पितृपिण्डन्तु दापयेत् ।४
तिलर्भदिमिश्रन्तु ह्युदकं तत्र दापयेत् ।
तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम् ।५
सावित्रीतीर्थमासाद्य यस्तु स्नानं समाचरेत् ।
विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोके महीयते ।६
मनोहरं ततो गच्छेत् तीर्थं परमशोभनम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! पितृलोके महीयते ।७

महामुनि मार्कण्डेय जी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर उत्तम अंकुशेश्वर पर जाना चाहिए । वहाँ पर उन देव के दर्शन से ही मनुष्य सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाया करता है ।१। इसके उपरान्त फिर हे राजेन्द्र ! उत्तम नर्मदेश्वर तीर्थ में गमन करे । हे राजन्! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोक में एक परम प्रतिष्ठित पद पर समारूढ़ हुआ करता है ।२। फिर अश्वतीर्थ को गमन करना चाहिए और वहाँ पर पहुँच कर स्नान करे । इसका ऐसा फल होता है कि वह मनुष्य परम सुभग दर्शनीय और भोगों के करने वाला हुआ करता है । इसके पीछे पितामह नाम वाले तीर्थ पर जावे जिसको पहिले ब्रह्माजी ने निर्मित किया था । वहाँ पर मनुष्य को स्नान करके भक्तिभाव से पितृगणों को पिण्डदान करना चाहिए ।३-४। तिलों और डाभों से मिश्रित जल भी तर्पण के लिए पितृगणों को देवे । उस तीर्थ का ऐसा अद्भुत प्रभाव है कि वहाँ पर किया सभी अक्षय हो जाया करता है । ।५। सावित्री तीर्थ पर पहुँच कर जो भी व्यक्ति उसमें स्नान किया करता है वह अपने समस्त पापों को विधूनित करके अन्त में ब्रह्म लोक में प्रतिष्ठित होता है । फिर मनोहर नामक तीर्थ पर गमन करे जो कि एक परम शोभन तीर्थ है । हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करने वाला मानव रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है ।६-७।

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! मानसं तीर्थमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! रुद्रलोकमहीयते ।८
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! कुब्जतीर्थमनुत्तमम् ।
विख्यातं त्रिषु लोकेषु सर्वपापप्रणाशनम् ।९
यान्यान्कामयते कामान् पशुपुत्रधनानि च ।
यान्यान्कामयते कामान् पशुपुत्रधनानि च ।
प्राप्नुयात्तानि सर्वाणि तत्र स्नात्वा नराधिप ।१०
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! त्रिदशज्योतिविश्रुतम् ।
यत्र ता ऋषिकन्यास्तु तपोऽतप्यन्त सुव्रताः ।११
भर्ता भवतु सर्वासामीश्वरः प्रभुरव्ययः ।
प्रीतस्तासां महादेवो दण्डरूपधरो हरः ।१२
विकृतानवीभत्सुर्व्रती तीर्थमुपागतः ।
तत्र कन्यां महाराज ! वरयन् परमेश्वरः ।१३
कन्या ऋषेर्वरयतः कन्यादानं प्रदीयताम् ।
तीर्थं तत्र महाराज ! ऋषिकन्येति विश्रुतम् ।१४

इसके अनन्तर हे राजेन्द्र ! उत्तम मानस तीर्थ पर गमन करना चाहिए। हे राजन्! वहाँ पर स्नान करके मनुष्य रुद्रलोक में प्रतिष्ठित हो जाता है फिर हे राजेन्द्र ! सर्वोत्तम कुब्जतीर्थ में गमन करे जो सभी लोकों में अत्यधिक विख्यात है और सब प्रकार के पापों का विनाश करने वाला है। उस तीर्थ पर जो-जो भी कामनाओं के प्राप्त करने की इच्छा करता है जैसे पुत्र—पशु और धन आदि उन सभी की प्राप्ति हे नराधिप वहाँ पर स्नान करके प्राप्त कर लेता है। इसके पश्चात् हे राजेन्द्र त्रिदश ज्योति विश्रुत नाम वाले तीर्थ पर जाना चाहिए जहाँ पर वे ऋषि कन्यायें सुन्दर व्रतों वाली होकर तपश्चर्या करती थीं।८-११। उन कन्याओं का यही मनोरथ था कि हम सबका भर्त्ता अविनाशी प्रभु ईश्वर होवें। उनकी तपस्या से दण्डरूप के धारण करने वाले हर महादेव परम प्रसन्न हो गये थे। वह देवेश्वर विकृत

मुख वाले बीभत्सु व्रती उस तीर्थ पर समागत हुए थे। वहाँ पर हे महाराज ! परमेश्वर ने उन कन्याओं का वरण किया था। कन्या का वरण करने को ऋषियों ने कन्यादान दी। हे महाराज ! ऋषि कन्या इस नाम वाला एक प्रसिद्ध तीर्थ था।१२-१४।

तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! सर्वपापैः प्रमुच्यते।
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! स्वर्णबिन्दुत्विति स्मृतम्।१५
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! दुर्गति न च पश्यति।
अप्सरेशं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्।१६
क्रीडते नागलोकस्थो ह्यप्सरैः सह मोदेते।
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! नरकं तीर्थमुत्तमम्।१७
तत्र स्नात्वार्चयेद्देवं नरकं न च पश्यति।
भारभूतिं ततो गच्छेदुपवासपरो जनः।१८
एतत्तीर्थं समासाद्य चावतारं तु शाम्भवम्।
अर्चयित्वा विरूपाक्षं रुद्रलोके महीयते।१९
अस्मिस्तीर्थे नरः स्नात्वा भारभूतौ महात्मनः।
यत्र तत्र मृतस्यापि ध्रुवं गाणेश्वरी गतिः।२०
कार्तिकस्य तु मासस्य ह्यर्चयित्वा महेश्वरम्।
अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः।२१

हे राजन् ! उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके सभी पापों से प्रमुक्त हो जाता है। हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् स्वर्ण विन्दु इस नाम से विश्रुत तीर्थ में जाना चाहिए।१५। हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य दुर्गति को कभी भी नहीं देखता है। इसके अनन्तर अप्सरेश नामक तीर्थ पर गमन करे और वहाँ पर स्नान कर समाचरण करना चाहिए।१६। इस तीर्थ के स्नान का यह फल होता है कि वह नागलोक में समस्थित होकर अप्सराओं के साथ आनन्दानुभव किया करता है। हे राजेन्द्र ! फिर वहाँ से नरक नामक उत्तम तीर्थ पर गमन

करे। उस तीर्थ में स्नान करके देव का अभ्यर्चन करे तो वह मनुष्य कभी भी नरक को नहीं देखता है। इसके अनन्तर भारभूति नाम वाले तीर्थ पर जावे और उपवास में परायण होवे ।१७-१८। फिर इसके उपरान्त ऋचावतार शाम्भव तीर्थ का समासादन करे तथा वहाँ पर भगवान् विष्णु का अर्चन करनेसे वह मनुष्य रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है ।१९। इस तीर्थ में जिसका नाम भारभूति है स्नान करके जहाँ-तहाँ मृत हुए महात्माकी भी निश्चय ही गाणेश्वरी (गणेश सम्बन्धिनी)गति हुआ करती हैं। कार्त्तिक मास में महेश्वर का समर्चन करके अश्वमेध यज्ञ के पुण्य से दशगुना फल प्राप्त हुआ करता है—ऐसा महामनीषी लोग कहा करते हैं ।२०-२१।

दीपकानां शतं तत्र घृतपूर्णन्तु दापयेत् ।
विमानैः सूर्य्यसंकाशैर्व्रजते यत्र शंकरः ।२२
वृषभं यः प्रयच्छेत्तु शङ्खकुन्देन्दुसप्रभम् ।
वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति ।२३
धेनुमेकान्तु यो दद्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ! ।
पायसं मधुसंयुक्तं भक्ष्याणि विविधानि च ।२४
यथाशक्त्याच राजेन्द्र ! ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।
तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वंकोटिगुणं भवेत् ।२५
नर्म्मदाया जलं पीत्वा ह्यर्चयित्वा वृषध्वजम् ।
दुर्गतिञ्च न पश्यति तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ! ।२६
हंसयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति ।
यावच्चंद्रश्च सूर्यश्च हिमवांश्च महोदधिः ।२७
गंगायाः सरितो यावत्तावत् स्वर्गे महीयते ।
अनाशकन्तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ।२८
गर्भवासे तु राजेन्द्र ! न पुनर्जायते पुमान् ।
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! आषाढीतीर्थमुत्तमम् ।२९

तत्र स्नात्वा नरो राजन्निन्द्रस्यार्द्धासनं लभेत् ।
स्त्रियास्तीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम् ।३०

वहाँ पर एक सौ दीपकों को घृत से पूर्ण करके प्रज्वलित करे और उनका दान करे । वह पुरुष जहाँ भगवान शङ्कर होते हैं सूर्य के सदृश विमानों के द्वारा गमन किया करता है ।२२। जो आदमी, शंखकुन्द और इन्दु के समान प्रभा से सम्पन्न वहाँ पर वृषभ का दान किया करता है वह वृष से समन्वित यान के द्वारा रुद्रलोक में गमन किया करता है ।२३। हे नराधिप ! उस तीर्थ में जो कोई एक धेनु को दान किया करता है—मधु से संयुक्त पायस और अनेक प्रकार के भक्ष्यों को यथा शक्ति हे राजेन्द्र ! ब्राह्मणों के लिए भोजन कराता है उस तीर्थ के प्रभाव से वह सभी करोड़ गुना फल वाला होता है ।२४-२५। हे नराधिप ! नर्मदा के जल का पान करके और वृषध्वज का अभ्यर्चन करके उस तीर्थ में जाने वाला मनुष्य कभी भी अपनी दुर्गति को नहीं देखता है । वह मनुष्य हंससे युक्त यानके द्वारा सीधा रुद्रलोकको चला जाता है । जब तक चन्द्र—सूर्य—हिमवान—महोदधि और गंगा आदि सरितायें संसार में स्थित हैं तब तक वह स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है । हे राजेन्द्र ! गर्भ के वास को फिर कभी भी प्राप्त नहीं किया करता है । इसके अनन्तर हे राजेन्द्र ! आम आषाढ़ी तीर्थ में गमन करना चाहिए । हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य इन्द्र के आधे आसन पर अपनी संस्थिति प्राप्त किया करता है । इसके पीछे स्त्री के तीर्थ में गमन करे जो सब प्रकार के पापों का नाश करने वाला है ।२६-३०।

तत्रापि स्नानात्तस्य ध्रुवं गाणेश्वरी गतिः ।
ऐरण्डीनर्म्मदयोश्च सङ्गमं लोकविश्रुतम् ।३१
तच्च तीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
उपवासपरो भूत्वा नित्यव्रतपरायणः ।३२

तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ! नर्म्मदोदधिसङ्गमम् ।३३
जामदग्न्यमिति ख्यातं सिद्धो यत्र जनार्दनः ।
यत्रेष्ट्वा बहुभिर्यज्ञैरिन्द्रो देवाधिपोऽभवत् ।३४
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! नर्म्मदोदधिसंगमे ।
त्रिगुणं चाश्वमेधस्य फलंप्राप्नोतिमानवः ।३५

वहाँ पर भी केवल स्नान भर कर लेने वाले की निश्चय ही गाणेश्वरी गति हुआ करती है । ऐरण्डी और नर्मदा इन दोनों सरिताओं का संगम लोक में परम प्रसिद्ध है । वह तीर्थ महान् पुण्य वाला है और समस्त पापों के नाश करने वाला भी है । वहाँ पर उपवास में परायण होकर तथा नित्य ही व्रतोंमें तत्पर होकर वहाँ स्नान करके हे राजेन्द्र! मनुष्य ब्रह्महत्या से भी मुक्त हो जाया करता है । इसके उपरान्त हे मनुष्य ब्रह्महत्या से भी मुक्त हो जाया करता है । इसके उपरान्त हे राजेन्द्र ! नर्मदा और उदधि का उदधि का जहाँ सङ्गम होता है वहाँ जाना चाहिए वहाँ जाने वाला मानव अश्वमेध यज्ञ के पुण्य से तिगुना पुण्य-फल प्राप्त किया करता है ।३१-३५।

पश्चिमस्योदधे सन्धौ स्वर्गद्वारविघट्टनम् ।
तत्र देवाः सगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः ।३६
आराधयन्ति देवेशं त्रिसन्ध्यं विमलेश्वरम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ! रुद्रलोके महीयते ।३७
विमलेशपरं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ।
तत्रोपवासं कृत्वा ये पश्यन्ति विमलेश्वरम् ।३८
सप्तजन्मकृत पापं हित्वा यान्त्यमरालयम् ।
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! कौशिकीतीर्थमुत्तमम् ।३९
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नुपवासरायणः ।
उपोष्य रजनीमेकां नियतो नियताशनः ।४०

एतत्तीर्थप्रभावेण मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
सर्वतीर्थाभिषेकन्तु यः पश्येत् सागरेश्वरम् ।४१
योजनाभ्यन्तरे तिष्ठन्नावर्त्ते संस्थितः शिवः ।
तं दृष्ट्वा सर्वतीर्थानि दृष्टान्येव न संशयः ।४२

पश्चिमोदधि की सन्धि में स्वर्ग द्वार विघटन है। वहाँ पर देवगण गन्धर्व-ऋषिवृन्द-सिद्ध और चारण ये सब तीनों सन्ध्याओं में विमलेश्वर देवेश की समाराधना किया करते हैं। हे राजन् ! वहाँ पर मनुष्य स्नान करके रुद्रलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है। यह विमलेश परम प्रमुख तीर्थ है जो हुआ है और न होगा। वहाँ पर उपवास करके जो भगवान विमलेश्वरका दर्शन किया करतेहैं वे सब अपने पहिले जन्मों में से सात जन्मों के किये हुए पापों से मुक्त होकर सीधे अन्त समय में अमरालय को चले जाया करते हैं। इसके पीछे हे राजेन्द्र ! उत्तम कौशिकी तीर्थ में गमन करे।३६-३९। हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके उपवासों में परायण होवे और एक रात्रि में वहाँ निवास करके नियत अशन वाला तथा नियत जो रहता है वह इस तीर्थ के प्रभाव से ब्रह्म हत्या से मुक्त हो जाया करता है। जो मनुष्य सर्व तीर्थों के अभिषेक सागरेश्वर का दर्शन किया करता है। योजन के अभ्यन्तर में आवर्त्त में प्रभु शिव स्थित रहते हुए वहाँ पर समवस्थित रहते हैं। उसका केवल एक ही तीर्थ का दर्शन करके उस दर्शक ने सभी तीर्थों को देखा हुआ ही समझ लेना चाहिए अर्थात् उसने अन्य सभी का दर्शन कर लिया है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।४०-४१।

सर्वपापविनिर्मुक्तो यत्र रुद्रः स गच्छति ।
नर्म्मदासंगमं यावद्यावच्चामरकण्टकम् ।४३
अत्रान्तरे महाराज ! तीर्थकोट्यो दशस्मृताः ।
तीर्थात्तीर्थान्तरं यत्र ऋषिकोटिनिषेवितम् ।४४

साग्निहोत्रैर्विद्वद्‌भिः सर्वैर्ध्यानपरायणैः ।
सेवितानेन राजेन्द्र ! त्वीप्सितार्थप्रदायिका ।४५
यस्त्विदं वै पठेन्नित्यं शृणुयाद्वापि भावतः ।
तस्य तीर्थानि सर्वाणि ह्यभिषिञ्चन्ति पाण्डव ।४६
नर्म्मदा च सदा प्रीता भवेद्वै नात्र संशयः ।
प्रीतस्तस्य भवेद्रुद्रो मार्कण्डेयो महामुनिः ।४७
वन्ध्या चैव लभेत् पुत्रान् दुर्भगा सुभगा भवेत् ।
कन्या लभेत् भर्तारं यश्च वाञ्छेत् तु यत् फलम् ।४८
तदेव लभते सर्वं नात्र कार्या विचारणा ।
ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो विजयी भवेत् ।४९
वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रः प्राप्नोति सद्‌गतिम् ।
मूर्खस्तु लभते विद्यां त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ।
नरकञ्च न पश्येत्तु वियोगञ्च न गच्छति ।५०

वह पुरुष सभी पापों से छुटकारा पाकर वहाँ पर ही चला जाता है जहाँ पर साक्षात् भगवान् रुद्र विराजमान रहा करते हैं और वहाँपर वह तब तक रहता है जब तक नर्मदाका संगम और अमरकण्टक संसार में स्थित हैं ।४३। इसी बीच में हे महाराज ! दश तीर्थ कोटियाँ बताई गई हैं । तीर्थसे दूसरे तीर्थमें जहाँ पर ऋषि कोटि निषेवित हैं । अग्नि होत्र करने वाले—ध्यान में परायण समस्त विद्वानों के द्वारा सेवित हुए इससे हे राजेन्द्र ! यह अभीष्ट अर्थ को प्रदान करने वाली हुआ करती है ।४४-४५। हे पाण्डव ! जो तीर्थों के माहात्म्य का नित्यही पाठ किया करता है तथा इसका भक्तिभाव से श्रवण किया करता है उसका सभी तीर्थं समवेत अभिषेक किया करते हैं ।४६। यह नर्मदा सरिता सर्वदा उस पर परम प्रसन्न होती है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । उस पर रुद्र देव भी प्रसन्न होतेहैं तथा महामुनि मार्कण्डेय भी प्रसन्न हुआ करते हैं । इसके पठन एवं श्रवण से वन्ध्या स्त्री पुत्रों का लाभ लिया करती

और जो दुर्भगा होती है वह सुभगा होजाया करती है जो कन्या होती है मनोभीष्ट स्वामी की प्राप्ति करलेती है और जो भी कोई जैसा भी कुछ फल चाहता है वह उसी समय में तुरन्त ही सब कुछ पा जाया करता है—इस विषय में कुछ भी विचारणा करने की आवश्यक ही नहीं है। जो ब्राह्मण होता है इसको वेद के ज्ञान का लाभ होता है और जो क्षत्रिय है वह सदा युद्ध में विजय प्राप्त करने वाला होता है। वैश्य अपने व्यवसाय में लाभान्वित होता है तथा शूद्र की सद्गति हो जाया करती है। जो महामूढ होता है। जो नर इसका तीनों सन्ध्याओं में पाठ किया करता है वह कभी भी नरक का दर्शन नहीं किया करता है और न कभी किसी से उसका वियोग ही हुआ करता है।४७-५०।

७७-भृगु वंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

इत्याकर्ण्य स राजेन्द्र ओङ्कारस्याभिवर्णनम् ।
ततः पप्रच्छ देवेशं मत्स्यरूपं जलार्णवे ।१
ऋषीणां नामगोत्राणि वंशावतरणं तथा ।
प्रवराणां तथा साम्यमसाम्यं विस्तरादपि ।२
महादेवेन ऋषयः शप्ताः स्वायम्भुवान्तरे ।
तेषां वैवस्वते प्राप्ते सम्भवं मम कीर्त्तय ।३
दाक्षायणीमथ तथा प्रजाः कीर्तय मे प्रभो ।
ऋषीणां च तथा वंशं भृगुवंशविवर्धनम् ।४
मन्वन्तरेऽस्मिन् संप्राप्ते पूर्ववैवस्वते तथा ।
चरित्रं कथ्यते राजन् ! ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।५
महादेवस्य शापेन त्यक्त्वा देहं स्वयं तथा ।
ऋषयश्च समुद्भूताश्च्युते शुक्रे महात्मनः ।६

देवानां मातरो दृष्ट्वा देवपत्न्यस्तथैव च ।
स्कन्नशुक्रं महाराज ! ब्रह्मण: परमेष्ठिन: ।७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इस प्रकार से इस ओंकार के अभिवर्णन का श्रवण करके फिर इसके उपरान्त उस मत्स्य के स्वरूप वाले देवेश्वर से उस जलार्णव में पूछा गया था । श्री मनु ने कहा—हे भगवन् ! अब ऋषियों के शुभ नाम तथा गोत्र—वंशों का अवतरण एवं प्रवरों की समता असमता आप कृपा करके विस्तार के साथ वर्णन करियेगा ।१-२। स्वायम्भुव मन्वन्तर में महादेव के द्वारा ऋषियों को शाप दे दिया गया था । वैवस्वत प्राप्त होने पर उनका भी सम्भव आप मुझे कीर्त्तित करके श्रवण कराइये ।३। हे प्रभो ! आप मेरे सामने दाक्षायणी दक्ष प्रजापति से समुत्पन्न जो प्रजा हुई थी उसका भी वर्णन करिये तथा ऋषियों के वंश एवं भृगु के वंश की विशेष वृद्धि भी बतलाइए ।४। श्री मत्स्य भगवान ने कहा—हे राजन् ! पहिले इस वैवस्वत मन्वन्तर के सम्प्राप्त होने पर परमेष्ठी ब्रह्माजी का जो चरित्र है वह कहा जाता है । महादेव जी के शाप से स्वयं ही देह का त्याग करके महात्मा के शुक्र से च्युत हो जानेपर ऋषिगण समुत्पन्न हुए थे । देवों की मातायें देखकर उसी भाँति देव पत्नियाँ भी समुत्पन्न हुई थीं हे महाराज ! परमेष्ठी ब्रह्माजी का शुक्र (वीर्य) स्कन्न हो गया था ।५-७।

तज्जुहाव ततो ब्रह्मा ततो जाता हुताशनात् ।
ततो जातो महातेजा भृगुश्च तपसां निधि: ।८
अङ्गरेष्वङ्गिरा जातो ह्यर्चिभ्योऽत्रिस्तथैव ।
मरीचिभ्यो मरीचिस्तु ततो जातो महातपा: ।९
केशैस्तु कपिशो जात: पुलस्त्यश्च महातपा: ।
केशै: प्रलम्बै: पुलहस्ततो जातो महातपा: ।१०
वसुमध्यात् समुत्पन्नो वसिष्ठस्तु तपोधन: ।

भृगुःपुलोम्नस्तुसुतां दिव्यां भार्यामविन्दत ।११
यस्यामस्य सुता जाता देवा द्वादशयाज्ञिकः ।
भुवनो भौवनश्चैव सुजन्यः सुजनस्तथा ।१२
शुचि क्रतुश्च मूर्धा च त्याज्यश्च वसुदश्च ह ।
प्रभवश्चाव्ययश्चैव दक्षोऽथ द्वादशस्तथा ।१३
इत्येते भृगवो नाम देवा द्वादश कीर्तिताः ।
पौलोम्यामजनयन् विप्रान् देवानां तु कनीयसः ।१४

इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने हवन किया था फिर हुताशन से उत्पत्ति हुई थी। इसके उपरान्त महान् तेज वाले तपों की निधि भृगुदेव समुत्पन्न हुए थे।८। अङ्गारों से अङ्गिरा उत्पन्न हुए और हुताशन की अर्चियों से अत्रि ऋषि की उत्पत्ति हुईथी और इसके अनन्तर मरीचियों से महान् तपस्वी महर्षि मरीचि उत्पन्न हुए थे।९। केशों से कपिश और महान् तपस्वी पुलस्त्य उत्पन्न हुए। प्रलम्ब केशोंसे फिर महान तपस्वी पुलह समुत्पन्न हुए।१०। वसु के मध्य में तप के ही धन वाले वशिष्ठ ऋषि प्रसूत हुए थे। भृगु महर्षि ने पुलोमा की पुत्री अपनी दिव्य भार्या बनाई थी।११। इसी भार्या में उस महर्षि के द्वादश याज्ञिक सुत उत्पन्न हुए थे। उन बारह सुतों के नाम ये हैं—भुवन-भौवन-सुजन्य-सुजन-शुचि-क्रतु-मूर्द्धा-त्याज्य-वसुद-प्रभव-अव्यय और दक्ष ये द्वादश हैं। ये सब भृगु वंश वाले बारह देव कीर्त्तित हुए थे जो पौलोमी में देवों के छोटे भाई विप्रों को जन्म ग्रहण कराया था।१२-१४।

च्यवनन्तु महाभागमाप्नुवानं तथैव च ।
आनुप्नुवानात्मजश्चौर्वो जमदग्निस्तदात्मजः ।१५
और्वो गोत्रकरस्तेषां भार्गवाणां महात्मनाम् ।
तत्र गोत्रकरास्त्वन्ये भृगोर्वै दीप्ततेजसः ।१६
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च ।
और्वश्च जमदग्निश्च वात्स्यो दण्डिर्नडायनः ।१७

वैगायनो वीतिहव्य: पैलश्चैवात्र शौनक: ।
शौनकायन जीवन्तिरावेद: कार्पणिस्तथा ।१८
वैहीनरिविरूपाक्षो रौहित्यायनिरेव च ।
वैश्वानरिस्तथा नीलो लुब्धा सावर्णिकश्च स: ।१६
विष्णु:पौरोऽपि बालाकिरैलिकोऽनन्तभागिन: ।
भृतभार्गेयमार्कण्डजविनो वीतिनस्तथा ।२०
मण्डमाण्डव्यमांडूकफेनपास्तनितस्तथा ।
स्थलपिण्डशिखावर्ण: शार्कराक्षिस्तथैव च ।२१

महाभाग, च्यवन तथा आप्नुवान उत्पन्न हुए । आप्नुवान का आत्मज और्व हुआ और उसका पुत्र जमदग्नि हुआ था । उन महान आत्मा वालों भार्गवों के गोत्रके करने वाला और्व हुआ था । तथा अन्य भी दीप्त तेज वाले भृगु के गोत्रकर हुए थे ।१५-१६। अब उन सबके नामों का उल्लेख किया जाता है--भृगु, च्यवन, आप्नुवान, और्व, जम, दग्नि, वात्स्य, दण्डि, नडायन, वैगायन, वीति हव्य, शौनकायन, जीवन्ति, आवेद कार्पणि, वैहीनहि, विरूपाक्ष, रौहित्यायनि, वैश्वानरि नील, लुब्ध, सावर्णिक, विष्णु, पौर, बालाकि, ऐलिक, अनन्त भागिन भृत, भार्गेय, मार्कण्ड, जविन, वीतिन, मण्ड, माण्डव्य, माण्डूक फेनप, स्तनित, स्थल पिण्ड, शिखावर्ण और शार्कराक्षि ।१७-२१।

जालधि: सौधिक: क्षुभ्य: कुत्सन्यो मौद्गलायन: ।
कर्मायनो देवपति: पाण्डुरोचि: सगालव: ।२२
साङ्कृत्यश्चातकि: सार्पियज्ञपिण्डायनस्तथा ।
गार्ग्यायनो गायनश्च ऋषिर्गार्हायनस्तथा २३
गोष्ठायनो वात्स्यायनो वैशम्पायन एव च ।
वैकर्णिनि: शंकरवो याज्ञेयिभ्राष्ट्रकायनि: २४
लालाटिर्नाकुलिश्चैव लौक्षिण्योपरिमण्डलौ ।

आलुकि: सौचकि: कौत्सस्तथान्य: पैंगलायनि: ।२५
सात्यायनिर्मालायनि: कौटिलि: कौंचहस्तिक: ।
सौहसोक्ति: सकौबाक्षि: कौसिश्चान्द्रमसिस्तथा ।२६
नैकजिह्वो जिह्वकश्च व्यधाद्यो लोहवैरिण: ।
शारद्वतिकनतिष्योलोलाक्षिश्चलकुण्डल: ।२७
वागायनिश्चानुमति: पूर्णिमागतिकोऽसकृत् ।
सामान्येन यथा तेषां पञ्च ते प्रवरामता: ।२८

जालधि सौधिक, क्षुभ्य, कुत्सव्य, मौद्गलायन, कर्मायन, स्वपति, पाण्डुरोचि, सगालव, सांकृत्य, चातकि, सापि, यज्ञपिण्डायन, गार्ग्यायन गायन, ऋषि, गार्हायन, गोष्ठायन, वात्सायन, वैशम्पायन, वैकर्णिनि, शाकुरव, यार्ज्ञेयि, भ्राष्ट कायनि, लालाटि, नाकुलि, लौक्षिण्य, परिमण्डल, आलुकि, सौचकि, कौत्स, पैंगलायनि, सात्यायनि, भालायनि, कौटिलि, कौच हस्तिक, सौमसोक्ति, सकौबाक्षि, कौसि, चान्द्रमसि, नैकजिह्व, जिह्वक, व्यधाश, लोहवैरिण, शारद्वतिकन,तिष्य, लोलाक्षि चल कुण्डल, वागायनि, अनुमति, पूर्णिमा गतिक ये सब सामान्य रूप से थे। उनमें पाँच सबमें प्रवर माने गये हैं ।२२-२८।

भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च ।
और्वश्च जमदग्निश्च पञ्चैते प्रवरा मता: ।२९
अत: परं प्रवक्ष्यामि शृणु त्वन्यान् भृगूद्वहात् ।
जमदग्निर्विदश्चैव पौलस्त्यो वैजभृत्तथा ।३०
ऋषिर्विहश्चोभयजातश्च कायनि: शाटकायन: ।
और्वेया मारुताश्चैवसर्वेषां प्रवरा: शुभा ।३१
भृगुश्च च्यवश्चैव आप्नुवानस्तथैव च ।
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।३२
भृगुदासो मार्गपथा ग्राम्यायनिकटायनी ।
आपस्तम्बिस्तथा बिल्विर्नैकशि: कपिरेव च ।३३

आर्ष्टिषेणो गार्दभिश्च कार्दमायनिरेव च ।
आश्वायनिस्तथारूपिर्ये चार्षेया: प्रकीर्तिता: ।३४
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च ।
आर्ष्टियेणस्तथारूपि: प्रवरा पञ्च कीर्तिता: ।३५

उन पाँचों प्रवरों के नाम यह हैं—भृगु, च्यवन, आप्नुवान, और्व और जमदग्नि ये ही पाँच प्रवर माने गए हैं ।२६। इसके आगे मैं अन्य भृगुद्वहों को बतलाता हूँ । उनका श्रवण तुम करलो-जमदग्नि बिद-पौलस्त्य बैजभृत हृषि उभय जात कायनि शाकटायन औवर्वेय और मारुति सबमें प्रवर एवं शुभ थे ।३०-३१। भृगु-च्यवन और आप्नुवान ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कीत्तित किए गये हैं।३२। भृगुदास, मार्ग दास, मार्गपथ, ग्राम्यायनि, कटायनि, आपस्तम्बि, बिल्वि, नैकशि, कपि आर्ष्टियेण, रूपि ये सब आर्षेय परिकीत्तित हुए हैं । इनमें भृगु, च्यवन, आप्नुवान, आर्ष्टिषेण और रूपि ये पाँच प्रवर माने गए हैं ।३३-३५।

परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।
यास्को वा वीतिहव्यो वा मथितस्तु तथादम: ।३६
जैवन्त्यायनिमौञ्जश्च पिलिश्च चलिस्तथा ।
भागिलो भागवित्तिश्च कौशापिस्त्वथ काश्यपि: ।३७
बालिपि: श्रमगार्गेपि: सौरस्तिथिस्तथैव च ।
गार्गीयस्त्यथा जाबालिस्तथा पौष्णायनो ह्यृषि: ।३८
ग्रामदश्च तथैतेषामार्षेया: प्रवरा मता: ।
भृगुश्च वीतिहव्यश्च तथा: रैवसवैवसौ ।३९
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।
शालायनि: , शाकटाक्षो मैत्रेय: खाण्डवस्तथा ।४०
द्रौणायनो रौक्मायना पिशली चापि कायनि: ।
हंसजिह्वस्तथैतेषाममार्षेया: प्रवरा मता: ।४१

ये परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कीत्तित हुए हैं । यास्क, वीति

हृव्य, भथित, दम, जैवान्त्यायनि, मौञ्ज, पिलि, चलि, भागिल, भागविति, कौशापि, काश्यपि बालिपि, श्रमगार्गेपि, सौर, तिथि, गार्गीय, जाबालि, पौष्णायन, ऋषि और ग्रामद ये सब आर्षेय एवं प्रवर माने गये हैं। भृगु, वीतिहृव्य, रैवस ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कहे गए हैं। शालायनि, शाकटाक्ष, मैत्रेय, खाण्डव, द्रोणायन, रौक्यमायन, पिशली, कायनि, हंसजिह्वक ये सब आर्षेय प्रवर माने गये है ।३६-४१।

भृगुश्चैवाथ बध्र्यश्वो दिवोदासस्तथैव च ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।४२
एकायनो यज्ञपतिर्मत्स्यगन्धस्तथैव च ।
प्रत्यूहश्च तथा सौरिश्चौक्षिर्वै कार्दमायनिः ।४३
तथा गृत्समदो राजन् ! सनकश्च महान् ऋषिः ।
प्रवरास्तु तथोक्तानामार्षेयाः परिकीर्तिताः ।४४
भृगुर्गृत्समदश्चैव आर्षावेतौ प्रकीर्त्तितौ ।
परस्परमवैवाह्यौ ऋषी वै प्रकीर्तितौ ।४५
एते तवोक्ता भृगुवंशजाता महानुभावा नृप गोत्रकाराः ।
एषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं विजहाति जन्तुः।४६

भृगु, बध्र्यश्व, दिवोदास ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण परिकीर्त्तित किये गये हैं। एकायन, यज्ञपति, मत्स्यगन्ध, प्रत्यूह, सौरि औक्षि, कार्दमायानि—हे राजन् ! गृत्समद और महान् ऋषि सनक ये कहे हुए ऋषियों में प्रवर तथा आर्षेय कहे गए हैं। भृगु, गृत्समद ये दोनों आर्ष कीर्त्तित किए गये है। ये दोनों परस्पर में ऋषि अवैवाह्य कीर्त्तित हुए हैं। ये भृगु के वंश में उत्पन्न महानुभाव गोत्र करने वाले हैं। हे नृप ! इन नामों के कीर्त्तन से जन्तु समग्र पापों को त्याग दिया करता है ।४२-४६।

७८-आंगिरस-वंशज ऋषियोंके नाम गोत्रवंश प्रवरवर्णन

मरीचितनया राजन् ! सुरूपा नाम विश्रुता ।
भार्या चाङ्गिरसो देवास्तस्य: पुत्रा दश स्मृता: ।१
आत्मायुर्दमनो दक्ष:सद:प्राणस्तथैव च ।
हविष्मांश्च गविष्ठश्च ऋत: सत्यश्च ते दश ।२
एते चाङ्गिरसो नाम देवा वै सोमपायिन: ।
सुरूपा जनयामास ऋषीन् सर्वेश्वरानिमान् ।३
बृहस्पतिङ्गौतमञ्च संवर्त्त मृषिमुत्तमम् ।
उतथ्य वामदेवं च अजस्यमृषिजन्तथा ।४
इत्येते ऋषय: सर्वे गोत्रकारा:प्रकीर्तिता: ।
तेषां गोत्रसमुत्पन्नान् गोत्रकारान् निबोध मे ।५
उतथ्यो गौतमश्चैव तौलेयोऽभिजितस्तथा ।
सार्धनेमि:सलौगाक्षि: क्षीर कौष्टिकिरेवच ।६
राहुकर्णि: सौपुरिश्च कराति: सामलोमकि: ।
पौषजितिर्भार्गवतो ह्यृषिश्चैरीडवस्तथा ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् मरीचि की पुत्री सुरूपा—इस नाम से प्रसिद्ध भार्य्या थी । आंगिरस देव उस के दश पुत्र बताये हैं ।१। आत्मायु, दमन, दक्ष, सद: प्राण, हविष्मान्, गविष्ठ ऋत, सत्य ये दश उनके नाम से । ये सब आंगिरस नाम वाले सोमपायी देव थे । इन सर्वेश्वर सब ऋषियों को सुरूपा ने ही जन्म दिया ।२-३। बृहस्पति गौतम, सम्वर्त्त, उत्तम ऋषि, उतथ्य, वामदेव, अजस्य, ऋषिज—ये सब ऋषिगण गोत्रकार कहे गये हैं । अब उनके गोत्र में समुत्पन्न जो गोत्रकार हैं उनको भी मुझसे जान लेना चाहिए । उतथ्य, गौतम, तौलेय, अभिजित, सार्धनेमि, सलौगाक्षि, क्षीर, कौष्टिक, राहुकर्णि, सौपुरि, कैराति, सामलोमकि, पौषजिति, भार्गवत, ऋषि, ऐरीडव ।४-७।

करोटकः सजीवी च उपबिन्दुसुरैषिणौ ।
वाह्निनीपतिवैशाली क्रोष्टा चैवारुणायनिः ।८
सोमोत्रायनिकासोरुकौशल्याः पार्थिवास्तथा ।
रौहिण्यायनिरेवाग्नी मूलपः पाण्डुरेव च ।६
क्षपाविश्वकरोऽरिश्च पारिकारारिरेव च ।
आर्षेयाः प्रवराश्चैव तेषां च प्रवरान् शृणु ।१०
अङ्गिराः सुवचोतथ्य उशिजश्च महानृपिः ।
परस्परमवैवाह्याऋषयः परिकीर्तिताः ।११
आत्रेयायनिसौवेष्ठ्यौ अग्निवेश्यः शिलास्थलिः ।
बालिशायनिश्चैकेपी वाराह्निर्बाष्कलिस्तथा ।१२
सौटिश्चत्रिणकर्णिश्चप्रावहिश्चाश्वलायनिः ।
वाराह्निर्बर्हिसादी च शिखीग्रीविस्तथैव च ।१३
कारकिश्च महाकापिस्तथा चोडुपतिः प्रभुः ।
कौचकिर्धूमिनश्चैव पुष्पान्वेषिस्तथैव च ।१४

कारोटक, सजीवी, उपबिन्दु, सुरैषिण, वाह्निनीपति, वैशाली, क्रोष्टा, आरुणायनि, सोमोत्रायनि, कासोरु, कासोरु, कौशल्य, पार्थिव, रौहिण्यायनि, अग्नि, मूलप, पाण्डु, क्षपाविश्वकर, अरि, पारिकारारि, आर्षेय और प्रवर थे, अब आगे उनके प्रवरोंका श्रवण करो । अङ्गिरा सुवचोतथ्य, उशिज, महानृपि, ये सब परस्पर मे अवैवाह्य ऋषिगण कीर्त्तित किए गये हैं । आत्रेयायनि, सौवेष्ठय, अग्निवेश्य, शिलास्थलि, बालिशायनि, एकेपि, वाराह्नि बर्हिसादी, शिखाग्रीवि, कारकि, महाकापि उडुपति प्रभु, कौचकि, धूमनि, पुष्पान्वेषी ।६-१२।

सोमतन्विर्ब्रह्मतन्विः सालडिर्बालडिस्तथा ।
देवरारिर्देवस्थानिर्हारिकार्णिः सरिद्भविः ।१५
प्रावेपिः साद्यसुग्रीविस्तथा गोमेदगन्धिकः ।

मत्स्याच्छाद्यो मूलहरः फलहारस्तथैव च ।१६
गाङ्गोदधिः कौरुपतिः कौरुक्षेत्रिस्तथैव च ।
नायकिर्जैत्यद्रौणिश्च जैह्वलायनिरेव च ।१७
आपस्तम्बिमौञ्जवृष्टिमार्ष्टिपिङ्गलिरेव च ।
पैलश्चैव महातेजाः शालंकायनिरेव च ।१८
द्व्याख्येयो मारुतश्चैषां त्र्यार्षेयः प्रवरो नृप ! ।
अङ्गिराः प्रथमस्तेषां द्वितीयश्च बृहस्पतिः ।१९
तृतीयश्च भरद्वाजः प्रवराः परिकीर्तिताः ।
परस्परमवैवाह्या इत्येते परिकीर्तिताः ।२०
काण्वायनाः कोपचयास्तथा वात्स्यतरायणाः ।
भ्राष्ट्रकृद्राष्ट्रपिण्डो च लैन्द्राणिः मायकायनिः ।२१

सोमतन्वि, ब्रह्मतन्वि, सालडि, बालडि, देवरारिदेव स्थानि,हारि, कणि मरिद्भवि, प्रावेपि, साद्य सुग्रीवि, गोनेद गन्धिक, मत्स्याच्छाद्य, मूलहर, फलाहार, गंगोदधि, कोरुपति, कौरुक्षेत्रि, नामकि, जैत्यद्रौणि, जैह्वलायनि, आपस्तम्बि, मौञ्ज वृष्टि, मार्ष्टपिंगलि, पैल, महातेजा, शालङ्कायनि, द्व्याख्येय, मारुत, त्र्यार्षेय, प्रवर—हे नृप! उनमें अंगिरा प्रथम था और द्वितीय बृहस्पति था। तीसरा भरद्वाज ये सब प्रवर कीर्त्तित किए गए हैं। ये परस्पर में अवैवाह्य कहे गये हैं। काण्वायन, कोपचय, वात्स्य तरायण, भ्राष्ट्रकृत, राष्ट्रपिण्डी, लैन्द्राणि, मायकायनि ।१५-२१।

क्रोष्टाक्षी बहुवीती च तालकृन्मधुरावहः ।
लावकृद्गालविद्गाथी मार्कटिः पौलकायनिः ।२२
स्कन्दसश्च तथा चक्री गार्ग्यः श्यामायनिस्तथा ।
बालाकिः साहरिश्चैव पञ्चार्षेयाः प्रकीर्तिताः ।२३
अंगिरा महातेजा देवाचार्यो बृहस्पतिः ।
भरद्वाजस्तथा गर्गः सैन्यश्च भगवानृषिः ।२४

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
कपीतरः स्वस्तितरो दाक्षिः शक्तिः पतञ्जलिः ।२५
भूयसिर्जलसन्धिश्च बिन्दुमादिः कुसीदकिः ।
ऊर्वस्तु राजकेशी च वौषडिः शंसपिस्तथा ।२६
शालिश्च कलशीकण्टः ऋषिः कारीरयस्तथा ।
काट्यो धान्यायनिश्चैव भावास्यायनिरेव च ।२७
भरद्वाजिः सौबुधिश्च लब्ध्वी देवमतीस्तथा ।
त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैव प्रवरो भूमिपोत्तम ।२८

क्रोष्टाक्षी, बहुवीती, तालकृत, मधुरावह, लावकृत्, गालविद, गाथी, मार्कंटि, पौलकायनि, स्कन्दस, चक्री, गार्ग्य, श्यामायनि, गालाकि साहरि, ये पाँच आर्षेय प्रकीत्तित हुए हैं । अङ्गिरा, महातेजा, देवाचार्य बृहस्पति, भारद्वाज, गर्ग, सैन्य, भगवान ऋषि ये परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कहे गये हैं । कपीतर, स्वस्तितर, दाक्षि, शक्ति, पतञ्जलि, भूयसि, जलसन्धि, बिन्दु, मादि, कुसीदकि, ऊर्व, राजकेशी, वौषडि, शंसपि, शालि, कलशीकण्ट, ऋषि, कारीरय, काट्य, धान्यायनि भावास्यायनि, भारद्वजि, सौबुधि, लब्धी, देवमती—हे भूमिपोत्तम ! ये त्र्यार्षेय, अभिमत प्रवर वाले थे ।२२-२८।

अंगिरा दमवाह्यश्च तथा चैवाप्युरुक्षयः ।
परस्परायणपर्शी च लौक्षिगार्ग्यहरिस्तथा ।२९
गालविश्चैव त्र्यार्षेयः सर्वेषां प्रवरो मतः ।
अंगिरा संकृतिश्चैव गौरवीतिस्तथैव च ।३०
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
बृहदुक्थो वामदेवस्तथा त्रिः प्रवरा मताः ।३१
अंगिरा बृहदुक्थश्च वामदेवस्तथैव च ।
कुत्साकुत्सैरवैवाह्या एवमाहुः पुरातनाः ।३२

रथीतराणां प्रवरा त्र्यार्षेया: परिकीर्तिता: ।
अंगिराश्च विरूपश्च तथैव च रथीतर: ।३३
रथीतरह्यवैवाह्या नित्यमेव रथीतरैः ।
विष्णुवृद्धि: शिवमतिर्जत्तण: कत्तृणस्तथा ।३४
पुत्रवश्च महातेजास्तथा वैरपरायण: ।
त्र्यार्षेयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरो नृप ! ।३५

अङ्गिरा, दमवाह्य, उरुक्षय, परस्परायणवपर्णी लौधि, गार्ग्य, हरिगालवि, त्र्यार्षेय—सबका प्रवर माना गया है । अङ्गिरा, संस्कृति, गौरवीति ये सब परस्पर में अवैवाह्य ऋषिगण कीर्त्तित किए गये हैं । बृहदुक्थ, वामदेव ये त्रिप्रवर माने गये हैं । अङ्गिरा, बृहदुक्थ, वामदेव, कुत्सांकुत्सै ये अवैवाह्य थे-ऐसा पुरातन मनीषीगण कहते हैं । रथीतरों में प्रवर ये त्र्यार्षेय परिकीर्त्तित हुए हैं । अङ्गिरा, विरूप और उसी भाँति से रथीतरों से नित्य ही विवाह न करने के योग्य थे । विष्णुवृद्धि, शिवमति, कत्तृण पुत्रव, महातेजा, वैरपारायण हे नृप ! इन सबका त्र्यार्षेय प्रवर अभिमत था ।२९-३५।

अंगिरा मत्स्यदग्धश्च मुद्गलश्च महातपा: ।
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।३६
हंसजिह्वो देवजिह्वो ह्यग्निजिह्वो विराडप: ।
अपाग्नेयस्त्वयुश्च परण्यस्ताविमौद्गला: ।३७
त्र्यार्षेयाभिमतास्तेषां सर्वेषां प्रवरा: शुभा: ।
अंगिराश्चैव ताण्डिश्च मौद्गल्यश्च महातपा: ।३८
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।
अपाण्डुश्च गुरुश्चैव तृतीय: शाकटायन: ।३९
तत: प्रागाथमा नारी मार्कण्डो मरण: शिव: ।
कटुमर्कटपश्चैव तथा नाडायनोह्यृषि: ।४०
श्यामयनस्तथैवैषां त्र्यार्षेया: प्रवरा: शुभा: ।

अङ्गिराश्चाजमीणश्च कटयश्चैव महातपा: ।४१
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।
तित्तिरि: कपिभूश्चैव गार्ग्यश्चैव महानृषि ।४२

अङ्गिरा, मत्स्यदग्ध, मुद्गल, महातपा ये ऋषिगण आपस में अवैवाह्य कहे गए हैं। हंसजिह्व, देवजिह्व, अग्निजिह्व, विराडप में अपाग्नेय, अश्वयु, परण्य स्तबिमद्गल ये उनके त्र्यर्षेय सबके परमशुभ प्रवर अभिमत हुए हैं। अङ्गिरा, ताण्डि, मौद्गल्य, महातपा ये सब ऋषिगण आपस में विवाह न करने के योग्य थे—ऐसे कहे गये हैं। अपाण्डु,गुरु, तृतीय शाकटायन इसके उपरान्त प्रागाथमा नारी, मार्कण्ड मरण, शिय, कटुमर्कटप, नाडायन, ऋषि श्यामायन उसी प्रकार से त्र्यार्षेय इनके शुभ प्रवर थे। अङ्गिरा, आजमीण कटय महातपा ये सब परस्पर में ऋषिगण अवैवाह्य कहे हैं। तित्तिर, कपिभू, गार्ग्य और महान् ऋषि ।३६-४२।

त्र्यार्षेयो हि मतस्ते सर्वेषां प्रवर: शुभ: ।
अङ्गिरास्तित्तिरिश्चैव कविभूश्च महानृषि: ।४३
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।
अथ ऋक्षभरद्वाजौ ऋषिवान् मानवस्तथा ।४४
ऋषिर्मित्रवरश्चैव पञ्चार्षेया: प्रकीर्तिता: ।
अङ्गिरा: सभरद्वाजस्तथैव च बृहस्पति: ।४५
ऋषिर्मित्रवरश्चैव ऋषिवान् मानवस्तथा ।
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।४६
भारद्वाजो हुत: शौङ्ग: शैशिरेयस्तथैव च ।
इत्येते कथिता: सर्वे द्वयामुष्यायणगोत्रजा: ।४७
पञ्चार्षेयास्तथा ह्येषां प्रवरा: परिकीर्तिता: ।
अंगिराश्च भरद्वाजस्तथैव च बृहस्पति: ।
मौद्गल्य: शैशिरश्चैव प्रवरा: परिकीर्तिता: ।४८

एते तवोक्ताङ्गिरसस्तु वंशे महानुभावा ऋषिगोत्रकाराः ।
येषान्तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ।४६

उन सबका त्र्यर्षेय शुभ प्रवर माना गया है । अङ्गिरा, सित्तिरि, कविभू, महानृषि, ये सब परस्पर में अवैवाह्य रिषिगण कीर्त्तित किये गये हैं । इसके उपरान्त रक्ष, भरद्वाज, रिषिवान्, मानव रिषि और मैत्रवर ये पाँच आर्षेय कीर्त्तित किए गए हैं । अङ्गिरा, भरद्वाज बृहरिषि, मित्रवर, रिषिवान् मानव ये सब परस्पर में अवैवाह्य रिषिगण कहे गए हैं । भारद्वाज, हुत, शौंगि, शैशिरेय सब द्व्यामुष्यायण गोत्रमें समुत्पन्न कहे गए थे । ।४३-४७। इन सबके पाँच आर्षेय प्रवर परिकीर्त्तित हुए हैं उनमें अङ्गिरा, भरद्वाज, बृहस्पति, मौद्गल्य, शैशिर ये प्रवर कहे गये है ।४८। ये सब आंगिरस के वंश में महानुभाव गोत्रकार रिषिगण आपको बतला दिए गए हैं । जिनके केवल नाम मात्र के ही कीर्त्तित करने से पुरुष अपने समग्र पाप का त्याग दिया करता है ।४६।

७६-अत्रिवंशज ऋषियों के नाम गोत्र वंश वर्णन

अत्रिवंशसमुत्पन्नान् गोत्रकारान्निबोध मे ।
कर्दमायनशाखेयास्तथा पारायणाश्च ये ।१
उद्दालकिः शौणकर्णिरथौ शौक्रतवश्च ये ।
गौराग्रीवा गौरजिनस्तथा चैत्रायणाश्च ये ।२
अर्द्धपण्या वामरथ्या गोपनास्तनिबिन्दवः ।
कर्णजिह्वो हरप्रीतिर्नैद्राणिः शाकलायनिः ।३
तैलपश्च सवैलेय अत्रिर्गोणीपतिस्तथा ।
जलदो भगपादश्च सौपुष्पिश्च महातपाः ।४

छन्दोगेयस्तथैतेषां त्र्यार्षेया: प्रवरा मता: ।
श्यावशश्च तथात्रिश्च आर्चनानश एव च ।५
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।
दाक्षिर्बल: पर्णविश्च ऊर्णनाभि: शिलार्दनि: ।६
बीजवापी शिरीषश्च मौञ्जकेशो गविष्ठिर: ।
भलन्दनस्तथैतेषां त्र्यार्षेया: प्रवरा मता: ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—अत्रि के वंश में उत्पन्न होने वाले गोत्रकारोंका ज्ञान मुझसे प्राप्त करलो जो कर्दमायन शाखेय तथा पारायण थे। उद्दालकि, शोण, कर्णिरथ और जो शौक्तव थे। जो गौरग्रीव, गौरजिन तथा चैत्रायण थे। अर्द्धपण्य, वामरथ्य, गोपन, तनिबिन्दु, कणजिह्व, हरप्रीति, नैद्राणि, शाकलायनि, तैल, सवैलेय, अत्रिगोणीपतिजलद, भगपाद, सौधुष्पि, महातपा और छन्दोगेय, इनके त्र्यार्षेय प्रवर माने गए हैं। श्यावाश्च, त्रिश्च और अर्चनानश ये आपस में अवैवाह्य रिषिगण कहे गए हैं। दक्षि, बलि, पर्णवि, ऊर्णनाभि शिलार्दनि, बीजवापी शिरीष, मौञ्जकेश, गविष्ठर और भलन्दन ये इनके प्रवर और त्र्यार्षेय माने गए हैं।१-७।

अत्रिर्गविष्ठरश्चैव तथा पूर्वातिथि: स्मृत: ।
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।८
आत्रेयपुत्रिकापुत्रानत ऊर्द्ध्वं निबोध मे ।
काल्येयाश्च सवालेया वासरथ्यास्तथैव च ।९
धात्रेयाश्चैव मैत्रेयास्त्र्यार्षेया: परिकीर्तिता: ।
अत्रिश्च वामरथ्यश्च पौत्रिश्चैवमहानृषि: ।
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।१०
इत्यत्रिवंशप्रभवास्तुवाह्या महानुभावा नृपगोत्रकारा: ।
येषां तु नाम्ना परिकीर्त्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ।११

अत्रि, गविष्ठिरा पूर्वातिथि ये रिषिगण परस्पर में अवैवाह्य परि कीर्त्तित किये गये हैं ।८। अब आत्रेय पुत्रिका के पुत्रों को भी मुझसे समझलो । कालेय, सचालेय, वासरथ्य आत्रेय, मैत्रेय, श्यार्णेय कीर्त्तित किए गए हैं । अत्रि, वामरथ्य, पौत्रि, महान् रिषि से सब रिषिगण आपस में विवाह न करने के ही योग्य थे । ये सब अत्रि के वंश में उत्पन्न होने वाले नृपगोत्रकार महानुभाव हैं जो तुम्हारे सामने वर्णित कर दिए गए हैं । जिनके शुभ नामों के कीर्त्तन मात्र से ही पुरुष समग्र पाप का त्याग कर दिया करता है ।८-११।

८०—कुशिक वंशज ऋषियोंके नाम गोत्रवंश प्रवर वर्णन

अत्रेरेवापरं वंशन्तव वक्ष्यामि पार्थिव ।
अत्रेः सोमः सुतः श्रीमांस्तस्य वंशोद्भवा नृप ।१
विश्वामित्रस्तु तपसा ब्राह्मण्यं समवाप्तवान् ।
तस्य वंशमहं वक्ष्ये तन्मे निगदतः शृणु ।२
विश्वामित्रो देवरातस्तथा वैकृतिगालवः ।
वतण्डश्च सलङ्कश्च ह्यभयश्चायतायनः ।३
श्यामायना याज्ञवल्क्या जाबालाः सैन्धवायनाः ।
वाभ्रव्याश्च करीषाश्च संश्रुत्याः अथ संश्रुताः ।४
उलूपा औपगह्याः पयोदजनपादपाः ।
खरवाचो हलयमाः साधिता वास्तुकौशिकाः ।५
श्यार्णेयाः प्रवरास्तेषां सर्वेषां परिकीर्त्तिताः ।
विश्वामित्रो देवरात उद्दालश्च महायशाः ।६
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्त्तिताः ।
देवश्रवाः सुजातेयाः सौसुकाः कारुकायनाः ।७

तथा वैदेहराता ये कुशिकाश्च नराधिप ।
त्र्यार्षेयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरः शुभः ।८

श्री मत्स्य भगवान ने कहा—हे पार्थिव ! अब मैं अत्रि के दूसरे वंश का वर्णन करूँगा । हे नृप ! अत्रिका सुत श्रीमान् सोम उसका वंशोद्भव था विश्वामित्र ने तपश्चर्या के द्वारा ब्राह्मणत्व की प्राप्तिकर ली । मैं अब उनके वंश का भी वर्णन करूँगा । बतलाने वाले मुझसे उसका आप लोग श्रवण कर लेवें । विश्वामित्र, देवरात, वैकृतिगालव, वतण्ड-सलङ्क-अभय-आयतायन-श्यामायन-याज्ञवल्क्य-जाबाल-सैन्धवान-बाभ्रव्य-करीष-संश्रुत्य-संश्रुत-उलूप-औपगहय-पयोद जन पादप—खरबाच-हलयम-साधित—वास्तु कौशिक—उन सबके त्र्यार्षेय प्रवर कीर्त्तित किए गए हैं । विश्वामित्र—देवराज—महाराज—महा—यशा उद्दालक ये परस्पर में विवाह न करने के योग्य ही हैं—ऐसे ही रिषि गण कहे गए हैं । देवाश्रवा—सुसातेय—सौसुक—कारुकायन—तथा वैदेहरात—हे नराधिप ! जो कुशिक है इन सबका शुभ प्रवर त्र्यार्षेय अभिमत है ।१-८।

देवश्रवा देवरातो विश्वामित्रस्तथैव च ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।९
धनञ्जयः कपर्देयः परिकूटश्च पार्थिव ।
पाणिनिश्चैव त्र्यार्षेयाः सर्वं एते प्रकीर्तिताः ।१०
विश्वामित्रस्तथाद्यश्च माधुच्छन्दस एव च ।
त्र्यार्षेयाः प्रवरा ह्येते ऋषयः परिकीर्त्तिताः ।११
विश्वामित्रो मधुच्छन्दास्तथा चैवाघमर्षणः ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्त्तिताः ।१२
कमलायाजिनश्चैव अश्मरथ्यस्तथैव च ।
वञ्चुलिश्चापि त्र्यार्षेयः सर्वेषां प्रवरो मतः ।१३
विश्वामित्रश्चाश्मरथो वञ्जुलिश्च महातपाः ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।१४

देवश्रवा, देवरात तथा विश्वामित्र ये रिषिगण परस्पर विवाह न न करने के योग्य कहे गये है।९। हे पार्थिव ! धनञ्जय, कपर्देय, परिकूट और पाणिनि ये सब त्र्यार्षेय कीर्तित किए गए हैं।१०। विश्वामित्र तथा आद्य और माधुच्छन्दस त्र्यार्षेय प्रवर रिषिवर्ग बताये गए है।११। विश्वामित्र, मधुच्छन्द, अघमर्षण ये आपस में अवैवाह्य रिषिगण कीर्तित हुए हैं।१२। कमलायजनि, अश्मरथ्य, वञ्जुलि सबका त्र्यार्षेय प्रवर माना गया है।१३। विश्वामित्र, अश्वरथ, महातपा वञ्जुलि ये परस्पर में अवैवाह्य रिषिगण परिकीर्त्तित हुए हैं।१४।

विश्वामित्रो लोहितश्च अष्टकः पूरणस्तथा ।
विश्वामित्रः पूरणश्च तयोर्द्वौ प्रवरौ स्मृतौ ।१५
परस्परमवैवाह्याः पूरणाश्च परस्परम् ।
लोहिता अष्टकाश्चैषा त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः ।१६
विश्वामित्रो लोहितश्च अष्टकश्च महातपाः ।
अष्टमका लोहितैर्नित्यमवैवाह्याः परस्परम् ।१७
उदरेणुः कथकश्च ऋषिश्चोदावहिस्तथा ।
शाटयायनिः करीराशी शालङ्कायनिलावकी ।१८
मौञ्जायनिश्चभवान्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः ।
खिलिखिलिस्तथा विद्योविश्वामित्रस्तथैवच ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिता ।१९
तेनोक्ता एताः कुशिका नरेन्द्र ! महानुभा:सततंद्विजेन्द्राः ।
येषान्तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ।२०

विश्वामित्र और लोहित---अष्टक-पूरण-विश्वामित्र और पूरण इन दोनों के दो प्रवर कहे गए हैं। पूरण आपस में अवैवाह्य है। लोहित और अष्टक इनके त्र्यार्षेय बताए गए हैं।१५-१६। विश्वामित्र, लोहित, महातपा अष्टक लोहितों के साथ आपस में अवैवाह्य है।१७

उदरेणु क्रथक, रिषि उदावहि, शाट्यायनि, करीराशी, शाशङ्काय, निलावकि, मोञ्जायनि, भगवान् ये ऋयार्षेय कीर्त्तित हुए हैं। खिलि, खिलि, विद्य तथा विश्वामित्र ये परस्पर में रिषिगण अनैवाह्य कहे गए हैं।१८-१९। हे नरेन्द्र ! आपको द्विजेन्द्र महानुभाव सतत कुशिक सब बतला दिए गए हैं जिनके परम शुभ नामों के संकीर्त्तन मात्र से ही पुरुष अपने समस्त पापों को त्याग कर विशुद्ध हो जाया करता है। ।२०।

=×=

८१-कश्यप वंशजों के नाम गोत्र वंश प्रवर वर्णन

मरीचे: कश्यप: पुत्र: कश्यपस्य तथा कुले ।
गोत्रकारान् ऋषीन् वक्ष्ये तेषां नामानि मे शृणु ।१
आश्रायणि ऋषिगणो मेषकोरिटकायना: ।
उदग्रजा माठराश्च भोजा विनयलक्षणा: ।२
शालाहलेया: कौरिष्टा: कन्यकाश्चासुरायणा: ।
मन्दाकिन्यां वै मृगया: श्रुतया भोजयापना: ।३
देवयाना गोमयानह्यधश्छाया भयाश्च ये ।
कात्यायना: शाक्रयाणा: वर्हियोगगदायना: ।४
भवनन्दि महाचक्रि दाक्षपायन एव च ।
योध्रयाना: कातिवयो हस्तिदानास्तथैव च ।५
वात्स्यायनानि कृतजा ह्याश्वलायनिनस्तथा ।
प्रागायणा: पौलमौलिराश्ववातायनस्तथा ।६
कौवेरकाश्च श्याकारा अग्निशर्मायणश्च ये ।
मेषपा: कैंकरसपास्तथा चैव ते बभ्रव: ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—महामहर्षि मरीचि का कश्यप पुत्र हुआ था तथा कश्यप के कुल में जो गोत्रकार रिषिगण हुए थे उनकी

नामावली अब आप मुझसे श्रवण करलो ।१। आश्रागणि रिपिगण, मेघ कीरिटकायव, उदग्रजामाठर, ओ, विनय लक्षण, शालाहुलेय, कौरिष्ट कन्यक, आसुरायण, मन्दाकिनी में मृगय, श्रुतय, भोजयापन,देवयान, गोमयान, अधश्छाय, भया कात्यायन, शाक्रयाण, बर्हियोग, गदायन, भव- कुतज, आश्वलायनि, प्राजायण, पौलमौलि, आश्व वातायन, कौबेरक, श्याकार, अग्निशर्मायण, मेषप, कैंकरसप तथा बभ्रव ।२-७।

प्राचेयो ज्ञानसंज्ञेया आग्न: प्रासेव्य एव च ।
श्यामोदरा वैवशपास्तथा चैकोद्वलायना: ।८
काष्ठाहारिणमारीचा आजिहायनहास्तिका: ।
वैकर्णेया: काश्यपेया: सासिसाहारितायना: ।६
मान्तग्निश्च भृगवस्त्र्यार्षेया: परिकीर्तिता: ।
वत्सर: कश्यपश्चैव निध्रवश्चमहातपा: ।१०
परस्परमवैवाह्या ऋषय: परिकीर्तिता: ।
अत: परं प्रवक्ष्यामि द्व्यामुष्यायणगोत्रजान् ।११
अनसूयो नाकुरय: स्नातपो राजवर्तप: ।
शैशिरोदवह्निश्चैव सैरन्ध्रीरोपसेवकि: ।१२
यामुनि: काद्रुपिङ्गाक्षि: सजातम्बिस्तथैव च ।
दिवावष्टाश्व इत्येते भक्त्याज्ञेयाश्चपा: ।१३
त्र्यार्षेयाश्च तथैवैषां सर्वेषांप्रवरा: शुभा: ।
वत्सर: काश्यपश्चैव वसिष्ठश्चमहातप: ।१४

प्रचेय, ज्ञान संज्ञेय, अग्नि, प्रासेव्य, श्यामोदर, वैवशप, उद्वलायन काष्ठाहारिण, मारीच, आजियन, हास्तिक, वैकर्णेय, काश्यपेय, सासि-साहोरितायक, मान्तांग्नि भृगुगण ये सब त्र्यार्षेय परिकीत्तित हुए हैं। अब यहाँ से आगे हम द्व्यामुष्यायण गोत्रजों के विषय में वर्णन करेंगे। अनसूय, नाकुरम, स्नातप्य, राज वर्त्तप,शैशिरोदवह्नि,सैरन्ध्रीरोपसेवकि,

यामुनि, कादृपिमांक्षि, पजानिम्ब, दिवावष्टाश्व ये इतने भक्तिभाव से काश्यपों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इनके सबके त्र्यार्षेय शुभ प्रवर है। वत्सर, काश्यप, वसिष्ठ महातपा। ८-१४।

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।
संयातिश्च नमश्चोभौ पिप्पल्योऽथ जलन्धरः।१५
भुजातपुरः पूर्वश्च कर्दमो गर्द भीमुखः।
हिरण्यबाहुकैरातावुभौ काश्यपगोभिलौ।१६
कुलहो वृषकण्डश्च मृगकेतुस्तथोत्तरः।
निदाघमसृणौ भत्स्यौ महान्तः केवलाश्च ये।१७
शाण्डिल्यो दानवश्चैव तथा व देवजातयः।
पैप्पलादिस्स प्रवरा ऋषयः परिकीर्तिताः।१८
त्र्यार्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः।
असितो देवलश्चैव कश्यपश्च महातपाः।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।१९
ऋषिप्रधानस्य च कश्यपस्य दाक्षायणीभ्यःसकलंप्रसूतम्।२०

ये समस्त ऋषिगण परस्पर में अवैवाह्य बतलाये गये हैं। संयाति नभ ये दोनों, पिप्पल्य, जलन्धर, भुजातपूर, पूर्व, कर्दम, गर्दभी मुख, हिरण्य बाहुक, काश्यप, गोभिल, कुलह,वृषकण्ड, मृगकेतु, उत्तर,निदाघ मसृण, भत्स्य, महान्त, केवल, शांडिल्य, दानव, देवजाति, पैप्पल दिस-रावे सब ऋषिवृन्द प्रवर कहे गए हैं इन सबके शुभ प्रवर त्र्यार्षेय अभिमत हुए हैं। असित, देवल और महातपा कश्यप ये ऋषिगण परस्परमें अवैवाह्य है—ऐसा कीर्तित किया गया है। समस्त ऋषियों में परम प्रधान कश्यप के दाक्षायणीयों से यह सम्पूर्ण प्रसूत हुआहै। यह सम्पूर्ण जगत् सिंह के तुल्य मनु का पुण्य रूप है। अब मैं इसके उपरान्त आप को क्या बतलाऊँ ? ।१५-२०।

८२-वशिष्ठ वंशज ऋषियोंके नाम गोत्रवंश प्रवर वर्णन

वसिष्ठ वंशजान् विप्रान् निबोध वदतो मम ।
एकार्षेयस्तु प्रवरो वासिष्ठानां प्रकीर्तित: ।१
वसिष्ठा एव वासिष्ठा अविवाह्या वसिष्ठजै: ।
व्याघ्रपादा औपगवावैक्लवा: शाद्वलायना: ।२
कपिष्ठला औपलोमा अलब्धाश्चषठा: कठा: ।
गोपयाना बोधपाश्चदाकव्याह्यथवाह्यका: ।३
वालिशया: पालिशयास्ततोवाग्ग्रन्थयश्चये ।
आपस्थूणा:शीतवृत्तास्तथा व्राह्मपुरेयका: ।४
लोमायना: स्वस्तिकरा: शाण्डलिगौंडिनिस्तथा ।
वाडोहलिश्च सुमनाश्चोपावृद्धिस्तथैव च ।।५
चौलिर्बौलिर्ब्रह्मवल: पौलि: श्रवस एव च ।
पौडवो याज्ञवल्क्यश्च एकार्षेया महर्षय ।६
वसिष्ठ एषां प्रवर अवैवाह्या: परस्परम् ।
शैलाल्यो महाकर्णा: कौरव्य: क्रोधिनस्तथा ।७

श्री मत्स्य भगवान ने कहा—वसिष्ठ वंश में समुत्पन्न विप्रों को बतलाते हुए मुझसे श्रवण करो । वसिष्ठों का एकार्षेय प्रवर प्रकीर्त्तित किया गया है ।१। वसिष्ठ ही वसिष्ठ हैं जो वसिष्ठ से समुत्पन्न होने वालों के साथ अविवाह्य हैं । व्याघ्रपाद, औपगव, वैक्लव शाद्वलायन कपिष्ठल औपलोम अलब्ध, षठ,कठ, गोपयान, बोधप, दाकव्य, वाह्यक वालिशय, पालिशय, वाग्ग्रन्थय, आपस्थूण, शीतवृत्त, वाह्य पुरेयक, लोभायन, स्वस्तिकर, शाण्डिलि, गौडिनि, वाडोहलि, सुमना,उपावृद्धि चौलि, बौलि, ब्रह्मबल, पौलि, श्रवस, पौड्व, याज्ञवल्क्य ये सब एकार्षेय महर्षिगण हैं । इनका वसिष्ठ प्रवर है और परस्पर में अवैवाह्य महाकर्ण, कौरव्य क्रोधिन ।२-७।

कपिञ्जलावालखिल्याभागवित्तायनाश्चये ।
कौलायनः कालशिखः कोरकृष्ण सुरायणाः ।८
शाकाहार्याः शाकधियः काण्वा उपणपाश्च ये ।
शाकायना उह्राकाश्च अथ माषशरावयः ।९
दाकायनावालवयौबाकयो गोरथास्तथा ।
लम्बायनाः श्यामवयो ये च कोडोदरायणाः ।१०
प्रलम्बायनाश्च ऋषयः औपमन्यव एव च ।
साङ्ख्यायनाश्चऋषयस्तथावै वैदशेरकाः ।११
पालङ्कायन उद्गाहा ऋषयश्च बलेक्षवः ।
मातेया ब्रह्मबलिनः पर्णागारिस्तथैव च ।१२
आर्षेयोऽभिमतश्चैषां सर्वेषांप्रवरस्तथा ।
भिगीवसुवशिष्ठश्चे इन्द्र प्रमदिरेव च ।१३
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
औपस्थलास्वस्थलयो पालोहाला हलाश्च ये ।१४

कपिञ्जल, बालखिल्य, भागवित्तायन, कोलायन, कालशिख, कोर कृष्ण, सुरायण, शाकाहार्य, शाकाधी, काण्व, उपलप, शाकायन, उह्राक माषशरावय, दाकायन, बालवय, बाकय, गोरथ, लम्बायन, श्यामवय, कोडोदरायण, प्रलम्बायन ऋषिगण, औपमन्यव, साङ्ख्यायन ऋषिवर्ग, वैदशेरक, पलङ्कायन, उद्गाह ऋषिगण, बलेक्षय, मातेय, ब्रह्मबलिन, पर्णागारि, इन सबके प्रवर आर्षेय अभिमत है । भिगीवसु वशिष्ठ और इन्द्र प्रमदि ये ऋषिगण आपस में विवाह विधि नहीं करने के योग्य होते हैं—ऐसा ही कहा गया है । औपस्थल स्वस्थल ये—पालोहाल-हल ।८-१४।

माध्यन्दिनो माक्षतपः पैप्पलादिर्विचक्षुषः ।
त्रैश्रृङ्गायन सैवल्काःकुण्डिनश्च नरोत्तम ! ।१५
आर्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराःशुभाः ।

वसिष्ठमित्रावरुणौ कुण्डिनश्च महातपाः ।१६
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
शिवकर्णो वयश्चैव पादपश्च तथैव च ।१७
त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैषां सर्वेषां प्रवरस्तथा ।
जातूकर्णो वसिष्ठश्च तथैवात्रिश्च पार्थिव ! ।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।१८
वसिष्ठवंशेऽभिहिता मयैते ऋषिप्रधानाः सततं द्विजेन्द्राः ।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ।१९

माध्यन्दिन, माक्षतप पैप्पलादि, विचक्षुष, शंशृङ्गायन, सैबल्क, कुण्डिन हे नरोत्तम ! इन सबके परम शुभ प्रवर त्र्यार्षेय अभिमत हैं । वसिष्ठ, मित्रावरुण, महातपा, कुण्डिन ये ऋषि वृन्द परस्पर में अवैवाह्य हैं—ऐसा कीर्त्तित किया गया है । शिवकर्ण, वय, पादप, इन सब का त्र्यार्षेय प्रवर अभिमत है । हे पार्थिव ! जातूकर्ण्य वसिष्ठ तथा अत्रि ये ऋषि वृन्द आपस में विवाह न करने के योग्य ही कहे गये हैं ।१५-१८। मैंने आपको वसिष्ठ के वंश में ऋषियों में प्रधान और निरन्तर द्विजेन्द्र आपको कह दिये गये हैं जिनके परम शुभ नामों के परिकीर्त्तन से पुरुष अपने सम्पूर्ण पापों का त्याग कर दिया करता है ।१९।

८३—ऋषियों के आख्यान में निमि का वर्णन

वसिष्ठस्तु महातेजा निमेः पूर्वपुरोहितः ।
बभूव पार्थिवश्रेष्ठ यज्ञास्तस्य समन्ततः ।१
श्रान्तात्म पार्थिवश्रेष्ठ ! विशश्राम तदा गुरुः ।
तं गत्वा पार्थिवश्रेष्ठो निमिर्वचनमब्रवीत् ।२
भगवन्यष्टुमिच्छामि तन्मां याजय माचिरम् ।

तमुवाच महातेजा वसिष्ठः पार्थिवोत्तमम् ।३
किञ्चित्काल प्रतीक्षस्व तव यज्ञैः सुसत्तमैः ।
श्रान्तोऽस्मि राजन् ! विश्रम्य याजयिष्यामि ते नृप ।४
एवमुक्तः प्रत्युवाच वसिष्ठं नृपसत्तम ! ।
पारलौकिककार्ये तु कः प्रतीक्षितुमुत्सहेत् ।५
न च मे सौहृदं ब्रह्मन् ! कृतान्तेन बलीयसा ।
धर्मकार्ये त्वरा कार्या चलं यस्माद्धि जीवितम् ।६
धर्मपथ्यौदनो जन्तुर्मृतोऽपि सुखमश्नुते ।
श्वः कार्य्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णेचापराह्णिकम् ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—महर्षि वसिष्ठ महान् तेजस्वी थे और निमि के पूर्व पुरोहित थे । हे पार्थिव श्रेष्ठ उसके चारों ओर यज्ञ थे उस समय में श्रान्त आत्मा गुरु ने विश्राम किया था । उसके समीप में आकर निमिने यह वचन कहा था । हे भगवन् ! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ—मुझे शीघ्र यजन कराइए । महान् तेज वाले वसिष्ठजी ने उस श्रेष्ठ राजा से कहा था—कुछ समय तक प्रतीक्षा करो । आपके परम श्रेष्ठ यज्ञों से हे राजन् ! मैं थक-सा गया हूँ कुछ समय तक विश्राम करके ही यजन कराऊँगा ।१-४। इस प्रकार से जब कहा गया था उसने हे नृपश्रेष्ठ ! वसिष्ठजी से कहा था कि पारलौकिक कार्य में कौन मनुष्य होगा जो प्रतिक्षा करने का उत्साह करेगा । हे ब्रह्मन्! उस महानूबली यमराज से मेरी कोई मित्रता नहीं है । कार्य में तो शीघ्रता करनी चाहिए क्योंकि यह मानव का जीवन तो चल और अस्थिर हुआ करता है ।५-६। धर्म रूपी पथ्य ओदन वाला यह जन्तु मृत होकर भी सुख का आनन्दोपभोग किया करता है । जो कार्य अर्थात् धर्म सम्बन्धी कर्म कल करने का विचार हो उसे आज ही करना चाहिए और जो दोपहर के बाद करने का हो उसको दोपहर के पूर्व ही कर डाले—इसी प्रकार धार्मिक कृत्य को ही जितनी शीघ्रता हो सके उतनी

शीघ्रता मे सम्पादित करने का सर्वदा विचार रखना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है ।७।

न हि प्रतीक्षते मृत्यु: कृतञ्चास्य न वा कृतम् ।
क्षेत्रापणगृहासक्तमन्यत्र गतमानसम् ।८
वृकश्चोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति ।
नैकान्तेन प्रिय: कश्चिद्द्वेष्यश्चास्यन विद्यते ।९
आयुष्ये कर्मणि जीर्णे प्रसह्य हरते जनम् ।
प्राणवायोश्चलत्वञ्च त्वया विदितमेव च ।१०
यदत्र जीव्यते ब्रह्मन् ! क्षणमात्रन्तद्‌भुतम् ।
शरीरं शाश्वतं मन्ये विद्याभ्यासे धनार्जने ।११
अशाश्वतं धर्मकार्ये ऋणवानस्मि संकटे ।
सोऽहं संभृत सम्भारोभवन्मुलमुपागत: ।१२
नचेद्याजयसे मा त्वं अन्यं यास्यामि याजकम् ।
एवमुक्तस्तदा तेन निमिना ब्राह्मणोत्तम: ।१३
शशाप तं निमिं क्रोधाद्विदेहस्त्वं भविष्यसि ।
श्रान्तं मां त्वं समुत्सृज्य यस्मादन्यं द्विजोत्तमम् ।१४

मृत्यु इसने कुछ किया है या अभी तक धर्म का कार्य नहीं किया है—इसकी बिलकुल भी प्रतीक्षा नहीं किया करतीहै । वह तो एक वृक के ही समान चुप चाप समय पर आकर क्षेत्र-गृह-आपण आदि में समासक्त और दूसरे-दूसरे विषयों में मन लगाने वाले मनुष्य को लेकर चल दिया करता है । इसका न तो कोई प्यारा है और न किसी से इसका द्वेष ही है । यह तो कर्म में समासक्त जनको आयुष्य के क्षीण हो जाने पर बलात् पकड़ कर हरणकर लिया करता है । यह प्राण वायु चल है और इसकी चंचलता को आप भली भाँति से जानते ही हैं । हे ब्रह्मन्! जो यहाँ पर जीवित रहा करता है उसका एक क्षणमात्र जीवित रहना भी एक अद्भुत आश्चर्य ही है। मैं तो विद्याभ्यास और धन के अर्जुन

में इस शरीर को शाश्वत मानता हूँ। धर्म कार्य में मैं इसको अशाश्वत मानता हूँ। इस सङ्कट में ऋणवान् हूँ। वह मैं सम्भृत सम्भार वाला आपकी शरण में आया हूँ। यदि आप मुझे याजन नहीं करायेंगे तो मैं किसी अन्य याजक के समीप में चला जाऊँगा। इस प्रकार से उस समय में उस निमि के द्वारा वह श्रेष्ठ ब्राह्मण जब कहा गया था तो उसने महान् क्रोध से उस निमि को शाप दे दिया था कि तू विदेह हो जायेगा क्योंकि परम श्रान्त मुझको त्याग करके किसी अन्य द्विजोत्तम के समीप जाना चाहता है।८-१४।

धर्मज्ञस्तु नरेन्द्र ! त्वं याजकं कर्तुमिच्छसि।
निमिस्तं प्रत्युवाचाथ धर्मकार्यरतस्य मे।१५
विघ्नङ्करोषि नान्येन याजनंच तथेच्छसि।
शापं ददासि यास्मात्वं विदेहोऽथभविष्यसि।१६
एवमुक्ते तु तौ जातौ विदेहौऽद्विजपार्थिवौ।
देहहीनौ तयोर्जीवौ ब्रह्माणमुपजग्मतु:।१७
तावागतौ समीक्ष्याथ ब्रह्मावचनमब्रवीत्।
अद्यप्रभृति ते स्थानं निमिजीव ददाम्यहम्।१८
नेत्रपक्ष्मसु सर्वेषां त्वं वसिष्यसि पार्थिव।
त्वत् सम्बन्धात्तथा तेषां निमेष: सम्भविष्यति।१९
चालयिष्यन्ति तु तदा नेत्रपक्ष्माणि मानवा:।
एवमुक्ते मनुष्याणां नेत्रपक्ष्मसु सर्वश:।२०
जगाम निमिजीवस्तु वरदानात् स्वयम्भुव:।
वसिष्ठजीवं भगवान् ब्रह्मा वचनमब्रवीत्।२१

हे नरेन्द्र ! धर्म के ज्ञाता आप हैं और आप याजक करना चाहते हैं। इसके अनन्तर निमि ने उनको इसका उत्तर दिया था कि आप धर्म में रति रखने वाले मेरे कार्य में विघ्न करते हैं और अन्य के द्वारा कराए जाने वाले याजन को नहीं चाहते हैं। इसीलिए आप शाप दे रहे हैं कि

तू विदेह हो जायगा तो तू भी विदेह हो जायगा। इस प्रकार से कहने पर वे दोनों ही द्विज और पार्थिव विदेह हो गये थे। उन दोनों के देह से हीन जीवात्मा ब्रह्मा के समीप में पहुँचे थे। उन दोनों को समानता हुए देखकर ब्रह्माजी ने कहा—आज से लेकर हे निमि के जीव ! तुमको मैं स्थान देता हूँ। हे पार्थिव। तुम सब के नेत्रों के पक्ष्म में निवास करोगे।१५-१६। मनुष्य उस समय में नेत्रोंके पक्ष्मों का चालन करेंगे। इस तरह से कहने पर सब ओर मनुष्योंके नेत्रों के पक्ष्मों पर वह निमि का जीव स्वयम्भू प्रभू के वरदान से चला गया था। फिर ब्रह्माजी ने वसिष्ठ महर्षि के जीव से यह वचन कहा था—।२०-२१।

मित्रावरुणयो: पुत्रो वसिष्ठ ! त्वं भविष्यसि।
वसिष्ठेति च ते नाम तत्रापि च भविष्यति ।२२
जन्मद्वयमतीतञ्च तत्रापि त्वं स्मरिष्यसि।
एतस्मिन्नेव काले तु मित्रश्च वरुणस्तथा ।२३
बदर्याश्रममासाद्य तपस्तेपतुरव्ययम् ।
तपस्यतोस्तयोरेवं कदाचिन्माधवे ऋतौ ।२४
पुष्पितद्रुमसंस्थाने शुभे द्वयति मारुते ।
उर्वशी तु वरारोहा कुर्वती कुसुमोच्चयम् ।२५
सुसूक्ष्मरक्तवसना तयोर्दृष्टिपथङ्गता ।
तां दृष्ट्वा सुमुखीं सुभ्रू नीलनीरजलोचनाम् ।२६
उभौ चक्षुभतुर्धैर्यात्तद्रूपपरिमोहितौ ।
तपस्यतोस्तौ वीर्यमस्खलच्च मृगासने ।२७
स्कन्नरेतस्ततो दृष्ट्वा शापभीतौ परस्परम् ।
चक्रतु: कलशे शुक्रं तोयपूर्णं मनोरमे ।२८

हे वसिष्ठ। तू मित्रावरुणों का पुत्र होगा। वहाँ पर भी 'वसिष्ठ'—यह तेरा नाम होगा।२। वहाँ पर भी तुझे बीते हुए दो जन्मों का स्मरण होगा। इसी समय में मित्र और वरुण बदर्याश्रम को

प्राप्त करके अव्यय तपस्या का संतपन करने लगे थे । उन दोनों के इस प्रकार से तपश्चर्या करने पर किसी समय माधव ऋतु में परम शुभ और वहन करने वाली वायु से युक्त पुष्पित द्रुमों के संस्थान में फूलों के स्तवकों उछालती हुई वरारोह वाली उर्वशी जो कि अत्यन्त बारीक और रक्तवर्ण के वस्त्र धारणकर रही थी तप करने वाले उन दोनों की दृष्टि में आ गई थी अर्थात् दोनों ने उर्वशी को देख लिया था । उस नीले कमलों के सदृश लोचनों वाली सुन्दर मुख से सम्पन्न सुभ्रू को देखकर उसके रूप लावण्य पर मोहित हुए वे दोनों ही धैर्यहीन होकर क्षोभ वाले हो गये थे । तपस्या करते हुए उन दोनों का वीर्य मृगासन पर स्खलित हो गया था । इसके उपरान्त जब उन्होंने अपने स्कन्न हुए वीर्य को देखा तो वे दोनों शाप से भयभीत हो गये थे और उन्होंने वहाँ पर स्थित जल से भरे हुए मनोहर कलश में उस वीर्य को डाल दिया था ।२३-२८।

तस्मादृषिवरौ जातौ तेजसाप्रतिमौ भुवि ।
वसिष्ठश्चाप्यगस्त्यश्च मित्रावरुणयोर्द्वयोः ।२९
वसिष्ठस्तूपयेमेऽथ भागिनीं नारदस्य तु ।
अरुन्धतीं वरारोहां तस्यां शक्तिमजीजनत् ।३०
शक्तेः पराशरः पुत्रस्तस्य वंशं निबोध मे ।
यस्य द्वैपायनः पुत्रः स्वयं विष्णुरजायत ।३१
प्रकाशो जनितो येन लोके भारतचन्द्रमाः ।
पराशरस्य तस्य त्वं शृणु वंशमनुत्तमम् ।३२
काण्डशपो वाहनपो जैह्मपो भौमतापनः ।
गोपालिरेषां पञ्चम एते गौराः पराशराः ।३३
प्रपोहयावाह्य मया ख्याता याः कौतुजातयः ।
हर्यश्विः पञ्चमो ह्येषां नीलज्ञेयाः पराशराः ।३४

काष्णायिना कपिसुखाः काकेयस्थाजपातयः ।
पुष्करः पञ्चमश्चैषां कृष्णाज्ञेयाः पराशराः ।३५

उसी वीर्य से भूमण्डल में तेज से समन्वित उन दोनों मित्रावरणों के दो ऋषियों में परम श्रेष्ठ समुत्पन्न हुए थे। उनमें एक का नाम वसिष्ठ था और दूसरे का नाम अगस्त्य था ।२६। वसिष्ठ ने नारद की भगिनी के साथ विवाह किया था जिस वरारोहा का नाम अरुन्धती था। उस अरुन्धती में उसने शक्ति को समुत्पन्न किया था। शक्ति का पुत्र पराशर हुआ था। अब उसका जो भी वंश हुआ उसे मुझमें समझ लो। जिस पराशर का स्वयं विष्णु द्वैपायन पुत्र उत्पन्न हुआ था।३०-३१। वह ऐसा था जिसने लोक में भारत चन्द्र प्रकाश को प्रसूत किया था। उस पराशर मुनि का जो उत्तम वंश था उसे तुम श्रवण करलो। काण्डषेप-वाहनप-जैह्मप-भौम तापन और इनमें पाँचवा गोपालि था। था। ये गौर पाराशर थे ।३३। प्रप-ह्यवाह्य-मय और ख्यात में जो कौतुक जातियाँ हैं तथा पञ्चम हर्यश्वि में नीलाज्ञेय पराशर हैं ।३४। कार्ष्णायन-कपिमुख-काकेयस्थ—जपाति और इनमें पाँचवाँ पुष्कर ये सब कृष्णाज्ञेय पराशर हैं ।३५।

आविष्टायन वालेयास्वायष्टाश्चोपयाश्च ये ।
इषोमहस्ताश्चैते वै पञ्चश्वेताः पराशराः ।३६
पाटिको वादरिश्चैवस्तम्बा वै क्रोधनायनाः ।
क्षौमिरेषां पञ्चमस्तु एते श्यामाः पराशराः ।३७
खल्यायनाः वार्ष्णायिनास्तैलेयाः खलु यूथपाः ।
तन्तिरेषां पञ्चमस्तु एते धूम्राः पराशराः ।३८
उक्तास्त्वैते नृप ! वंशमुख्याः पराशराः सूर्यसमप्रभावाः ।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन पापं समग्रं पुरुषो जहाति ।३९

आविष्टायन-वालेय—स्वायष्ट—इषीक हस्त ये पाँच श्वेत पराशर थे ।३६। पाटिक—बादरि—स्तम्ब कोधानायन और इनका पाँचवाँ क्षौमि ये श्याम पराशर हुए थे ।: खल्यायन—वार्ष्णायन—तैलेय—यूथप

और इनमें पञ्चम तन्ति ये सब धूम्र पराशर हैं। हे नृप ! ये सूर्य के समान प्रभाव वाले वंश में प्रमुख पराशर सब आपके समक्ष में वर्णित कर दिए गए हैं जिनके शुभ नामों के ही कीर्त्तन करने से मनुष्य अपने समस्त पापों से छुटकारा पाकर परम विशुद्ध हो जाया करता है।३७-३९।

=×=

८४—रिषियों के नाग गोत्र वंश प्रवर वर्णन

अतः परमगस्त्यस्य वक्ष्ये वंशोद्भवान्द्विजान् ।
अगस्त्यश्चकरम्भश्चकौशल्यः करटस्तथा ।१
सुनेधसोभुवस्तथा गान्धारकायणाः ।
पौलस्त्याः पौलहाश्चैव क्रतुवंशभवास्तथा ।२
आर्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः ।
अगस्त्यश्च महेन्द्रश्च ऋषिश्चैव मयोभुवः ।३
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः ।
पौर्णमासाः पारणाश्च आर्षेयाः परिकीर्तिताः ।४
अगस्त्यः पौर्णमासश्च पाणश्च महातपाः ।
परस्परमवैवाह्याः पौर्णमासस्तु पारणः ।५
एवमुक्तो ऋषीणान्तु वंश उत्तमपौरुषः ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि किम्भवानद्य कथ्यताम् ।६
पुलहस्य पुलस्त्यस्य क्रतोश्चैव हात्मनः ।
अगस्त्यस्य तथा चैव कथं वंशस्तदुच्यताम् ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इससे आगे मैं अगस्त्य मुनि के वंश में समुत्पन्न द्विजों का वर्णन करता हूं—अगस्त्य—करम्भ—कौशल्य—करट—सुमेधस—मयोभुव—गान्धारकायण—पौलस्त्य—पौलह-ऋतुवंश भव-

इन सबके शुभ प्रवर आर्षेय अभिमत है। अगस्त्य–महेन्द्र और मयोभुव ऋषि ये समस्त ऋषिगण परस्परमें अवैवाह्य हैं ऐसा परिकीत्तित किया गया है। पौर्णमास और पारण आर्षेय कीत्तित किये गये हैं। अगस्त्य-पौर्णमास तथा महान् तपस्वी पारण–ये आपसमें विवाह करने के योग्य नहीं थे और पौर्ण मास पारणों के साथ वैवाह्य नहीं था। इस प्रकार से ऋषियों का उत्तम पौरुष वाला वंश मैंने कह दिया है। इससे आगे आज क्या कहूँ ? आप ही यह मुझे बतलाइए। महर्षि मनु ने कहा—पुलह—पुलस्त्य क्रतु जो महान् आत्मा वाला था तथा अगस्त्य का वंश कैसे हुआ—यही अब बतलाइए।१-७।

क्रतुः खल्वनपत्योऽभूद्राजन्वैवस्वतेऽन्तरे ।
इध्मवाहं स पुत्रत्वे जग्राह ऋषिसत्तमः ।८
अगस्त्यपुत्रं धर्मज्ञं आगस्त्याः क्रतवस्ततः ।
पुलहस्य तथा पुत्रास्त्रयश्च पृथिवीपते ।९
तेषान्तु जन्म वक्ष्यामि उत्तरत्र यथाविधि ।
पुलहस्तु प्रजांदृष्ट्वानातिमनाः स्वकाम् ।१०
अगस्त्यगंदृढास्यन्तुपुत्रत्वेवृतवांस्ततः ।
पौलाहाश्च तथा राजन् ! आगस्त्यः परिकीर्तिताः ।११
पुलस्त्यान्वयसम्भूतान् दृष्ट्वा रक्षः समुद्भवान् ।
अगस्त्यस्य सुतान्धीमान् पुत्रत्वे वृतवांस्ततः ।१२
पौलस्त्याश्च तथा राजन्नागस्त्याः परिकीर्तिताः ।
सगोत्रत्वादिमे सर्वे परस्परमनन्वयाः ।१३
एते तवोक्ताः प्रवरा द्विजानां महानुभाव नृपवंशकाराः ।
एषान्तु नाम्नापरिकीर्तितेन पापंसमग्रं पुरुषोजहाति ।१४

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! वैवस्वत मन्वन्तर में क्रतु बिना सन्तान वाला हुआ था। उस श्रेष्ठ ऋषि ने इध्मवाह को पुत्रत्व के रूप में ग्रहण किया था।८। वह धर्म का ज्ञाता अगस्त्य का

पुत्र था । इसके पश्चात् क्रतुगण्य आगस्त्य कहे गये गए थे । हे पृथिवी-पते ! पुलह के तीन पुत्र थे । अब मैं उत्तर में यथाविधि उनके जन्म के विषय में वर्णन करूँगा । पुलह ने अपनी प्रजा को देखा था तो वह—अत्यन्त प्रीति युक्त मन वाला नहीं था । इसके उपरान्त उसने दृढ़ास्य अगस्त्य से समुत्पन्न को पुत्रत्व के रूप में वरण कर लिया था । हे राजन् ! उसी प्रकार से पौलह आगस्त्य परिकीर्त्तित हुए थे । पुलस्त्य के अन्वय में समुद्गततों को राक्षसों से समुद्भव वाले देखकर श्रीमान् ने अगस्त्य के सुत को ही पुत्रत्व में वृत कर लिया ।९-१२। तथा हे राजन् ! वे पौलस्त्य कीर्त्तित हुए । सगोत्र होने से ये सब परस्पर में अन्वय वाले नहीं थे । ये सब नृपों से वंशकर महानुभाव द्विजों में प्रवर थे ? इनका वर्णन आपको सुना दिया है । इनके नामों के कीर्त्तित से से मनुष्य अपने सम्पूर्ण पापों को त्याग देता है ।१३-१४।

८५—मनुमत्स्य संवाद धर्म वंश वर्णन

अस्मिन्वैवस्वते प्राप्ते शृणु धर्मस्य पार्थिव ! ।
दाक्षायणीभ्यः सकलं वंशं दैवतमुत्तमम् ।१
पर्वतादिमहादुर्गशरीराणि नराधिप ! ।
अरुन्धत्याः प्रसूतानि धर्माद्वैवस्वतेऽन्तरे ।२
अष्टौ च वसवः पुत्राः सोमपाश्च विभोस्तथा ।
धरोध्रुवश्चसामश्च आपश्चैवाविलानलौ ।३
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिता ।
धरस्य पुत्रो द्रविणः कालः पुत्रोध्रुवस्य तु ।४
कालस्यावयवानान्तु शरीराणि नराधिप ! ।
मूर्तिमन्ति च कालाद्धि संप्रसूतान्यशेषतः ।५

सोमस्य भगवान् वर्चा: श्रीमांश्चापस्य कीर्त्यते ।
अनेकजन्मजननः कुमारस्त्वनलस्य तु ।६
पुरोजवाश्चानिलस्य प्रत्यूषस्य तु देवलः ।
विश्वकर्मा प्रभासस्य त्रिदशानां स वर्द्धकिः ।७

श्री मत्स्य भगवान ने कहा—हे पार्थिव ! इस वैवस्वत अन्तर के प्राप्त होने पर दाक्षायणियों से सम्पूर्ण उत्तम असिम दैवतवंश का श्रवण कीजिएगा ।१। हे नराधिप ! इस वैवस्वत अन्तर में धर्म से अरुन्धती से पर्वत आदि महा दुर्ग शरीर प्रसूत हुए थे ।२। आठ वसुगण पुत्र—विभु के सोमप–धर-ध्रुव-सोम-आप-अनिल-अनल-प्रत्यूष प्रभास ये सब अष्ट वसुगण कीर्तित किये गये हैं । धर का पुत्र द्रविण हुआ और काल ध्रुव का पुत्र हुआ था । हे नराधिप ! काल के अवयवों के शरीर मूर्तिमान सम्पूर्ण काल से ही सम्प्रसूत हुए थे ।३-५। सोम का पुत्र भगवान् वर्चा था और चल का पुत्र श्रीमान् हुआ था—ऐसा कहा जाता है । अनल का पुत्र अनेक जन्म जनन कुमार था । अनिल का आत्मज पुराजवा तथा प्रत्यूष का पुत्र देवल प्रसूत हुआ था । प्रभास का पुत्र विश्वकर्मा था तथा त्रिदशों का वह वर्द्धकि था ।६-७।

समीहितकराः प्रोक्ता नागवीथ्यादयो नव ।
लम्बः पुत्रः स्मृतो घोषो भानोः पुत्राश्चभानवः ।८
ग्रहर्क्षाणाञ्च सर्वेषामन्येषां चामितौजसाम् ।
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तः सर्वे पुत्राः प्रकीर्तिताः ।९

सङ्कल्पायाश्च सङ्कल्पस्तथापुत्रः प्रकीर्तितः ।
मसूर्ताश्चमुलूर्तायाः साध्या. साध्याहुताः स्मृताः ।१०
मनोर्मनुश्च प्राणश्च नरोपानौ च वीर्यवान् ।
चित्तहार्योऽयनश्चैव हंसो नारायणस्तथा ।११
विभुश्चापिप्रभुश्चैव साध्या द्वादश कीर्तिताः ।
विश्वायाश्च तथा पुत्रा विश्वेदेवाः प्रकीर्तिता ।१२

क्रतुर्दक्षोवसुः सत्यः कालकामोमुनिस्तथा ।
कुरजो मनुजो बीजो रोचमानश्च ते दश ।१३
एतावदुक्तस्तव धर्मवंशः संक्षेपतः पार्थिववंशमुख्य ! ।
व्यासेनवक्तुं न हि शक्यमस्ति राजन्विनावर्षशतैरनेकैः।१४

सभी हितकरों वाले नागवीथी आदि भी बताये गये हैं। लम्ब का पुत्र घोष कहा गया है और भानु के पुत्र भानुगण हैं।८। अन्य अपित अपित ओज वाले ग्रह और नक्षत्रों के सबके मरुत्वतों में मरुत्वन्त सब पुत्र प्रकीर्तित हुए हैं।६। सङ्कल्पा का पुत्र सङ्कल्प कहा गयाहै। मुहूर्त्ता के पुत्र मुहूर्त्त और साध्य साध्या के सुत उत्पन्न हुए थे ऐसा कहा गया है। मनु से मनु और प्राण–नर–उषान–वीर्यवान्—हार्य—अयन—हंस –नारायण—विभु और प्रभु ये द्वादश साध्य कहे गये हैं। विश्वा के जो पुत्र थे वे। क्रतु—दक्ष—वसु—सत्य—कालकाम—मुनि—कुरज –मनुज—बीज—रोचमान—ये दश थे। हे पार्थिवों के वंश संक्षेप से से आपके समक्ष में वतला दिया है। हे राजन्! यह अनेकों वर्षों के बिना भगवान् व्यासदेव के द्वारा भी बतलाया नहीं जा सकता है।१०-१४।

८६–पतिव्रतामाहात्म्य में सावित्री उपाख्यान

ततः स राजा देवेशं पप्रच्छामितविक्रमः ।
पतिव्रतानां माहात्म्यसबन्धांकथामपि ।१
पतिव्रतानां का श्रेष्ठा कया मृत्युः पराजितः ।
नामसंकीर्तनं कस्याः कीर्तनीय सदा नरैः ।
सर्वपापक्षयकरमिदानीं कथयस्व मे ।२
वैलोम्यं धर्मराजोऽपि नैवाचरत्योषिताम् ।

पतिव्रतानां धर्मज्ञ ! पूज्यास्तस्यापि ताः सदा ।३
अत्र ते वर्णयिष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ।
यथा विमोक्षितो भर्त्ता मृत्युपाशाद्गतः स्त्रिया ।४
मद्रे स शाकलो राजा बभूवाश्वपतिः पुरा ।
अपुत्रस्तप्यमानोऽसौ पुत्रार्थी सर्वकामताम् ।५
आराधयति सावित्रींलाक्षितोऽसौद्विजोत्तमैः ।
सिद्धार्थकैर्हूयमानांसावित्रींप्रत्यहंद्विजैः ।६
शतसंख्यैश्चतुर्थ्यान्तु दशमासागते दिने ।
काले तु दर्शयामास स्वान्तनुं मनुजेश्वरम् ।७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—इसके उपरान्त में अपरिमित बल-विक्रम वाले उस राजा ने देवेश से पूछा कि पतिव्रता नारी का क्या कैसा माहात्म्य है और इससे सम्बन्धित यदि कोई उपाख्यान हो तो उसके लिए भी पूछ लिया था । मनुदेवने कहा था—हे भगवान् ! पतिव्रता नारियों में कौन सी नारी श्रेष्ठ है और किसने अपने पतिव्रत बल के द्वारा मृत्युको भी पराजित कर दिया था । मनुष्यों को किसके परम शुभ नाम का कीर्त्तन सदा करना चाहिए ? हे भगवन् ! यह समस्त पापों के क्षय को करने वाला है । अब इसी को आप बतलाइए ।१-२। श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—धर्मराज भी योषित के त्रैलोक्य का आचरण नहीं किया करता है । हे पतिव्रताओं के धर्म के ज्ञाता ! उसकी भी सदा वे पूज्या ही हुई है ।३। यहाँ पर मैं आपको एक पापों के प्रणाश कर देने वाली कथा का वर्णन करता हूँ कि जिस प्रकार से एक परम श्रेष्ठ पतिव्रता नारी के द्वारा अपना स्वामी मृत्यु के भी पाश से विमुक्त कर लिया गया था ।४। पुरातन काल में मद्र देशों में एक शाकल राजा अश्वपति हुआ था । वह पुत्रहीन था तथा पुत्र की प्राप्ति की अभिलाषा रखने वाले उसने सर्व कामदा देवी को प्रसन्न करने के लिए तपश्चर्या की थी ।५। द्विजोत्तमों के द्वारा लक्षित होते हुए उसने

सावित्री देवी की समाराधना की थी। सिद्धार्थक द्विजों के द्वारा प्रतिदिन वह सावित्री देवी हूयमान हुई थी।६। वे द्विज शत संख्या वाले थे और जब दश मास व्यतीत हो गए तो चतुर्थी के दिन में समय आने पर उस मनुजेश्वर को सावित्री ने प्रत्यक्ष होकर अपना साक्षात् दर्शन दिया था।७।

राजन् ! भक्तोऽसि मे नित्यं दास्यामि त्वां सुतां सदा।
तां दत्तां मत्प्रसादेन पुत्रीं प्राप्स्यसि शोभनाम्।८
एतावदुक्त्वा सा राज्ञः प्रणतस्यैव पार्थिव !।
जगामादर्शनं देवी यथा वै नृप ! चञ्चला।९
मालती नाम तस्यासीद्राज्ञः पत्नी पतिव्रता।
सुषुवे तनयां काले सावित्रीमिव रूपतः।१०
सावित्र्याहुतया दत्ता तद्रूपसदृशी तथा।
सावित्री च भवत्येषा जगाद नृपतिर्द्विजान्।११
कालेन यौवनं प्राप्तां ददौ सत्यवते पिता।
नारदस्तु ततः प्राह राजानं दीप्ततेजसम्।१२
संवत्सरेण क्षीणायुर्भविष्यति नृपात्मजः।
सकृत्कन्याः प्रदीयन्ते चिन्तयित्वा नराधिपः।१३
तथापि प्रददौ कन्यां द्युमत्सेनात्मजे शुभे।
सावित्र्यपि च भर्तारमासाद्य नृपमन्दिरे।१४

सावित्री ने कहा—हे राजन् ! आप मेरे नित्य ही परम भक्ति करने वाले हैं। मैं भी अति प्रसन्न होकर तुमको एकसुता दूँगी। मेरे प्रसाद से दी हुई परम शोभन उस पुत्री को आप प्राप्त कर लेंगे।८। हे पार्थिव ! बस केवल इतना ही कहकर वह देवी प्रणाम करते हुए राजा के सामने से अदर्शन को प्राप्त हो गई थी जैसे विद्युत छिप जाया करती है।९। उस राजा की एक मालती नाम वाली पतिव्रता पत्नी थी उसने समय के सम्प्राप्त होने पर रूप लावण्य से साक्षात् सावित्री

देवी के सदृश तनया को प्रसूत किया था ।१०। समाहूत हुई सावित्री ने उसके ही रूप के समान उसे प्रदान किया था । राजा ने द्विजों से कहा था कि यह नाम से सावित्री ही होवे ।११। समय आने पर वह यौवन को प्राप्त हुई थी और उसके पिता ने सत्यवान नाम वाले वर को उस का दान कर दिया था । इसके उपरान्त देवर्षि नारदजी ने दीप्त तेज वाले राजा से कहा था कि यह नृप का आत्मज एक ही वर्ष में क्षीण आयु वाला हो जायगा । नराधिप! भली भाँति विचार करके ही कन्या को एक ही बार प्रदान किया जाया करता है ।१२-१३। तो भी उस राजा ने द्युमत्सेन के पुत्रको जो जो शुभ था अपनी कन्या सावित्री का दान कर दिया था । उस सावित्री ने भी नृपके मन्दिर में अपने स्वामी को प्राप्त कर लिया था ।१४।

नारदस्य तु वाक्येन दूयमानेन चेतसा ।
शुश्रूषां परमां चक्रे भर्तृश्वशरयोर्वने ।१५
राज्याद् भ्रष्टः सभार्यस्तु नष्टचक्षुर्नराधिपः ।
न तुतोष समासाद्य राजपुत्रीं तथा स्नुषाम् ।१६
चतुर्थेऽहनि मतव्य तथा सत्यवता द्विजाः ! ।
श्वशुरेणाभ्यनुज्ञाता तदा राजसुतापि सा ।१७
चक्रे त्रिराशं धर्मज्ञा प्राप्ते तस्मिंस्तदा दिने ।
चारुपुष्पफलाहारः सत्यवांस्तु ययौ वनम् ।१८
श्वशुरेणाभ्यनुज्ञाता याचनाभङ्गभीरुणा ।
सावित्र्यपि जगामार्ता सह भर्त्रा महद्वनम् ।१९
चेतसा दूयमानेन गूहमाना महद्भयम् ।
वने पप्रच्छ भर्तारं द्रुमांश्चासदृशास्तथा ।२०
आश्वासयामास स राजपुत्रीं क्लान्तांवनेपद्मविशाल नेत्राम्।
सन्दर्शनेना द्रुमद्विजानान्तथा मृगाणां विपिने नृवीरः ।२१

श्री नारदजी के वाक्य से दूयमान हृदय से उस सावित्री वन में

अपने स्वामी और श्वशुर की अत्यधिक शुश्रूषा करती थी ।१५। राज्य से भ्रष्ट-चक्षुओं के नष्ट हो जाने वाले भार्या से संयुत नराधिप उस राजपुत्री स्नुषा को प्राप्त करके सन्तुष्ट नहीं हुए थे ।१६। हे द्विजगण ! सत्यवान को आज से चौथे दिन में मरना है । उस समय में उस राजा सुता को श्वशुर ने अभ्यनुज्ञात किया था अर्थात् आज्ञा थी । उस समय में उस दिन के आने पर धर्म की ज्ञाता ने त्रिरात्र (व्रत) किया था । चरु पुष्प और फलों के आहार करने वाले सत्यवान् वन में चले गये थे । याचना के भङ्ग से भयभीत श्वशुर के द्वारा आज्ञा प्राप्त करने वाली वह सावित्री भी अपने स्वामीके साथ ही उस महान् वन को चले गयी थी । बहुत ही दुःखित चित्त से उस महान् भय को अन्दर ही छिपाती हुई उसने वन में भर्त्ता से और असदृश द्रुमों से पूछा था । वन में उसने परम क्लान्त-पद्म के समान विशाल नेत्रों वाली उस राजपुत्री को नृवीर ने विपिन में मृगों तथा द्रुमों और द्विजों (पक्षियों) के सन्दर्शन के द्वारा समाश्वासन दिया था ।१७-२१।

८७—सावित्री उपाख्यान (१)

वनेऽस्मिन् शाद्वलाकीर्णे सहकारं मनोहरम् ।
नेत्रघ्राणसुखं पश्य वसन्तं रतिवर्धनम् ।१
वनेऽप्यशोकं दृष्ट्वैनं रागवन्तं सुपुष्पितम् ।
वसन्तो हसतीवायं ममेवायतलोचने ! ।२
दक्षिणे दक्षिणेनैतां पश्य रम्यां वनस्थलीम् ।
पुष्पितैः किंशुकैर्युक्तां ज्वलितानलसप्रभैः ।३
सुगन्धिकुसुमामोदो वनराजिविनिर्गतः ।
करोति वायुर्दाक्षिण्यमावयोः क्लमनाशनम् ।४

पश्चिमेन विशालाक्षि ! कर्णिकारैः सुपुष्पितैः ।
काञ्चनेन विभात्येषां वनराजी मनोरमा ।५
अतिमुक्तलताजालरुद्धमार्गा वनस्थली ।
रम्या सा चारुसर्वाङ्गी कुसुमोत्करभूषणा ।६
मधुमत्तालिझंकारव्याजेन वरवर्णिनी ।
चापाकृष्टिं करोतीव कामः पार्श्वे जिघांसया ।७

सत्यवान् ने कहा—इस बन में जो शाद्वल से एकदम समाकीर्ण है मनोहर सहकार को तथा नेत्रों एवं घ्राण को सुखकर—रति के वर्धन करने वाले बसन्त को देखो ।१। हे आयत लोचनों वाली ! यह बसन्त इस वन में राग से समुत्पन्न और सुन्दर पुष्पों से समन्वित अशोक को देखकर मानों मेरा उपहास कर रहा है ।२। दक्षिण में दाहिनी ओर जलती हुई अग्नि की प्रभा के सदृश प्रभा वाले पुष्पित किंशुकों (ढाकके वृक्षों) से युक्त-परम रम्य इस बनस्थली को देखो ।३। बन की पंक्ति से निकला हुआ सुगन्धित कुसुमों के आमोद (गन्ध) से युक्त यह वायु हम दोनों के श्रम के नाश करने वाले दाक्षिण्य को कर रहा है ।४। हे विशालाक्षि ! पश्चिम दिशा में यह परम मनोहर बनों की राजि सुन्दर पुष्पों वाले कर्णिकारों से काञ्चन के वर्ण के तुल्य शोभित हो रही है।५ अति मुक्त लताओं के जाल से अवरुद्ध मार्गों वाली यह बनस्थली चारु (सुन्दर) सम्पूर्ण अङ्गों वाली तथा कुसुमों के उत्करों के भूषणों वाली वह रम्य ललना के तुल्य शोभा दे रही है।६। यह वर-वर्णिनी के समान ही है और पार्श्व में कामदेव मारने की इच्छा से चाप का आकर्षण मानों कर रहा है ।७।

फलास्वादलसद्वक्त्रपुंस्कोकिलविनादिता ।
विभाति चारुतिलका त्वमिवैषा वनस्थली ।८
कोकिलश्चूतशिखरे मञ्जरीरेणुपिञ्जरः ।
गदितैर्व्यक्ततां याति कुलीनश्चेष्टितैरिव ।९

पुष्परेणुविलिप्ताङ्गीं प्रियामनु सरिद्वने ।
कुसुमं कुसुमं याति कूजन् कामी शिलीमुखः ।१०

मञ्जरी सहकारस्य कान्तावच्चाग्रपीडिताम् ।
स्वदते बहुपुष्पेऽपि पुंस्कोकिलयुवा वने ।११

काकः प्रसूता वृक्षाग्रे स्वामेकाग्रेण चञ्चुना ।
काकीं सम्भावयत्येष पक्षाच्छादितपुत्रिकाम् ।१२

शुभाङ्गनिम्नमासाद्य दयितासहितो युवा ।
नाहारमपि चादत्ते कामाक्रान्तः कपिञ्जलः ।१३

कलविंकस्तु रमयन् प्रियोत्सङ्गे समास्थितः ।
मुहुर्मुहुर्विशालाक्षि ! उत्कण्ठयति कामिनः ।१४

फलों आस्वाद से शोभित मुख वाली कोयलों की ध्वनियो से विशेष नाद वाली—चाक तिलक से संयुत वनस्थली तुम्हारी ही तरह शोभित हो रही है ।८। आम्र वृक्ष की शाखाओं के शिखर पर मंजरी के पराग से पिञ्जर वर्ण वाली कोकिल अपनी मधुर ध्वनि से ही अपने चेष्टितों से कुलीन की भाँति ही प्रकटता को प्राप्त हुआ करता है ।६। इस सरिता से समन्वित वन में वह महाकामी भौंरा पुष्पों के पराग से विशेष रूप से लिप्त अङ्गों वाली अपनी प्रिया के पीछे-पीछे गुञ्जार करता हुआ फूल से फूल पर जाया करता है । वन में युवा कोकिल बहुत प्रकार के पुष्पों से समन्वित होने पर भी कान्ता की भाँति अनुपीड़ित सहकार की मञ्जरी का आस्वाद लिया करता है ।१०-११। यह कौआ वृक्ष के अग्रभाग में प्रसूता और पक्षों से आच्छादित पुत्रिका वाली अपनी प्रिया काकी (कौआ की पत्नी) को एकाग्र चौंच से प्यार करता है ।१२। काम से समाक्रान्त हुआ-दयिता के साथ रहने वाला युवा कपिञ्जल शुभांग निम्न को प्राप्त कर आहार भी ग्रहण नहीं कर रहा है ।१३। हे विशालाक्षि ! अपनी प्रिया के उत्संग में संस्थित हुआ

रमण करने वाला कलविङ्क बारम्बार कामी पुरुष को उत्कण्ठित कर रहा है ।१४।

वृक्षशाखां समारुढः शुकोऽयं सह भार्यया ।
करेण लम्बयन् शाखां करोति सफलं शिरः ।१५
वनेऽत्र पिशितास्वादतृप्तो निद्रामुपागतः ।
शेते सिंहयुवा कान्ता चरणान्तरगामिनी ।१६
व्याघ्रयोर्मिथुनं पश्य शैलाकन्दरसंस्थितम् ।
ययोर्नेत्रप्रभालोके गुहाभिन्नेव लक्ष्यते ।१७
अयं द्वीपी प्रियां लेढि जिह्वाग्रेण पुनः पुनः ।
प्रीतिमायाति च तया लिह्यमानः स्वकान्तया ।१८

उत्सङ्गकृतमूर्धानं निद्रापहृतचेतसम् ।
जन्तूद्धरणतः कान्तं सुखयत्येव वानरी ।१९
भूमौ निपतितां रामां मार्जारो दर्शितोदरीम् ।
नखदन्तैर्दशत्येष न च पीडयते तथा ।२०
शशकः शशको चोभे संसुप्ते पीडिते इमे ।
सलीनगात्रचरणे कर्णैर्व्यक्तिमुपागते ।२१

वृक्ष की शाखा पर अपनी प्रिय भार्या के साथ समारूढ़ यह शुक अपने कर से शाखाको लम्बित करता हुआ शिर को सफल करता है। ।१५। इस वन में मांस के स्वाद से तृप्त हुआ सिंह के चरणों के मध्य में लेटी हुई है ।१६। पर्वत की कन्दरा में संस्थित दो व्याघ्रों के जोड़े को देखो जिन दोनों के नेत्रों की प्रभाके प्रकाशन से गुहा भिन्न-सी हुई लक्षित हुआ करती है ।१७। यह हाथी अपनी जिह्वा के अग्रभाग से पुनः पुनः अपनी प्रिया को चाट रहा है । और अपनी कान्ता के द्वारा जिस समय में वह स्वयं लिह्यमान होता है तो उसकी परम प्रसन्नता हुआ करती है। यह वानरी गोद में मस्यक को रखने वाले तथा निद्रासे

अपहृत चेतना वाल अपने कान्त को जन्तुओं के उद्धरण के द्वारा सुखित ही किया करती है।१८-१९। यह मार्जार भूमि में पड़ी हुई और अपने उदर दिखाने वाली अपनी रम्य पत्नी का नाखून और दशनों से दंशन करता है किन्तु उसको किसी प्रकार की पीड़ा नहीं पहुँचाता है।२०। ये शशक और शशकी दोनों पीड़ित होकर सो गये हैं। इनके गात्र और चरण संपृक्त हैं और कानों के द्वारा ही प्रकटता को प्राप्त होते हैं।२१।

स्नात्वा सरसि पद्माढ्ये नागस्तु मदनप्रियः।
सम्भावयति तन्वङ्गीं मृणालकवलैः प्रियाम्।२२
कान्तप्रोथसमुत्थानैः कान्तमार्गानुगामिनी।
करोति कवलं मुस्तैर्वराही पोतकानुगा।२३
दृढाङ्गसन्धिर्महिषः कर्दमाक्ततनु वने।
अनुव्रजति धावन्ती प्रियबद्धचतुष्करः।२४
पश्य चार्वङ्गि ! सारङ्गं त्वं कटाक्षविभावनैः।
सभार्यमांहिपश्यन्तं कौतूहलसमन्वितम्।२५
पश्य पश्चिमपादेन रोही कण्डूयते मुखम्।
स्नेहार्द्रभावात्कर्षन्तं भर्त्तारं शृ गकोटिना।२६
द्रागिमाञ्चमीरी पश्य सितवालामगच्छतीम्।
अन्वास्ते चमरः कामी माञ्चपश्यतिगर्वितः।२७
अतिपे गवयं पश्य प्रकुष्टं भार्यया सह।
रोमन्थनं प्रकुर्वाणं काकंककुदि वारयन्।२८

पद्मों से आढ्य सरोवर में मदन प्रिया नाग अपनी तन्वङ्गी प्रिया को मृणाल के कवलों के द्वारा प्रणय का प्रदर्शन कर रहा है।२२। अपने बच्चों के पीछे अनुगमन करने वाली वाराही अपने कान्तके प्रोथ समुत्थानों से कान्त के ही मार्ग का अनुसरण करने वाली होती हुई मुस्तों से कवल किया करती है।२३। वन में दृढ़ अङ्गों की सन्धि वाला

कीच में अक्त शरीर वाला और प्रियावश चतुष्कर महिष धावन करती हुई महिषी के पीछे दौड लगा रहा है ।२४। हे चारु अङ्गों वाली ! तुम इस सारंग को देखो जो अपने कटाक्षों के विभावनों से भार्या के सहित एवं कौतूहल से युक्त मुझको देख रहा है ।२५। स्नेह के आर्द्र भाव से अपने सींग की नोंक से स्वामी का कर्षण करती हुई रोही अपने पीछे के पैर से मुख को खुजला रही है—इसे भी देखलो ।२६। बहुत ही शीघ्र इस सित बालों वाली और गमन न करती हुई चमरी को देखिए । यह कामी चमर इसके पीछे है तथा अत्यन्त गर्वित होता हुआ मुझको दिखता है ।२७। रोमन्थन करता हुआ ककुद पर कौए का निवारण करने वाले अपनी भार्या के साथ आतप में प्रकृष्ट इस गवय को देखलो ।२८।

पश्येमं भार्यया सार्द्धं न्यस्ताग्रचरणरणद्वयम् ।
विपुले बदरीस्कन्धे बदराशनकाम्यया ।२९
हंसं सभार्यं सरसि विचरन्तं सुनिर्मलम् ।
सुमुक्तस्येन्दुविम्बस्य पश्य वै श्रियमुद्वहन् ।३०
सभार्यश्चक्रवाकोऽयं कमलाकरमध्यगः ।
करोति पद्मिनीं कान्तां सुपुष्पामिव सुन्दरी ।३१
मया फलोच्चयः सुभ्रु ! त्वया पुष्पोच्चयःकृतः ।
इन्धनं न कृतं सुभ्रु ! तत्करिष्यामि सांप्रतम् ।३२
त्वमस्य सरसस्तीरे द्रुमच्छायां समाश्रिता ।
क्षणमात्रं प्रतीक्षस्व विश्रमस्व च भामिनि ।३३
एवमेतत्करिष्यामि मम दृष्टिपथस्त्वया ।
दूर कान्त ! न कर्तव्यो बिभेमि गहने वने ।३४
ततः स काष्ठानि चकार तस्मिन्वने तदा राजसुतासमक्षम् ।
तस्या ह्यदूरे सरसस्तदानीं मेने च सातंमृतमेवराजन् ।३५

भार्या के साथ में रहने वाले—दोनों चरणों को आगे न्यस्त

करने वाले बेरों के खाने की कामना से विपुल बदरी स्कन्ध में दोनों चरणों को आगे रखकर स्थित इसको देखो ।२९। समुक्त इन्दु के बिम्ब की श्री को उद्वहन करते हुए भार्या के सहित सरोवर में सुनिर्मल विचरण करते हुए हंस को देख लो ।३०। भार्या के सहित रहने वाला यह चक्रवाक पक्षी जो कि इस कमलाकर (तालाब) के मध्य में गमन कर रहा है । वह अपनी सुन्दरी कान्ता को सुन्दर पुष्पों वाली पद्मिनी के समान कर रहा है ।३१। हे सुभ्रु ! मैंने तो फलों का उच्चय किया है और तुमने पुष्पों का उच्चय किया है किन्तु हे सुभ्रु ! हममें से किसी ने भी ईंधन एकत्रित नहीं किया है सो अब मैं उसे करूँगा ।३२। हे भामिनि ! तुम इस सरोवर के तट पर स्थित वृक्ष की छाया में समाश्रित होकर रहो और एक क्षण के लिए मेरे आने की प्रतीक्षा करना ।३३। सावित्री ने कहा—मैं जैसा भी आप कहते हैं वही करूँगी । आप मेरी दृष्टि के ही मार्ग में रहेंगे अर्थात् इतनी दूरी पर ही रहिए कि मैं आपको देखती रहूँ । हे कान्त । आपको अधिक दूर नहीं जाना चाहिए । मैं गहन वन में डरती हूँ ।३४। श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—इसके पश्चात् उसने उस वनमें काष्ठों को एकत्रित किया था और उस समय में राजसुता के सामने ही किया था । हे राजन् । उस सर के समीप में ही उस समय में उस सावित्री ने उसे मृत ही मान लिया था ।३५।

==

८८—सावित्री उपाख्यान (२)

यस्य पाटयतः काष्ठं जज्ञ शिरसि वेदना ।
स वेदनार्तः सङ्क्रम्य भार्यां वचनमब्रवीत् ।१
आयासेन ममानेन जाता शिरसि वेदना ।

तमश्च प्रविशमीव न च जानामि किञ्चन ।२
त्वदुत्संगे शिर: कृत्वा स्वप्तुमिच्छामि सांप्रतम् ।
राजपुत्रीमेवमुक्त्वा तदा सुष्वाप पार्थिव: ।३
तदुत्संगे शिर: कृत्वा निद्रयाविललोचन: ।
पतिव्रता महाभागा तत: सा राजकन्यका ।४
ददर्श धर्मराजं तु स्वयं तं देशमागतम् ।
नीलोत्पलदलश्यामं पीताम्बरधरं प्रभुम् ।५
विद्युल्लतानिबद्धांगं सतोयमिव तोयदम् ।
किरीटेनार्कवर्णेन कुण्डलैश्च विराजितम् ।६
हारभारार्पितोरस्कं तथांगदविभूषितम् ।
तथानुगम्यमानं च कालेन सह मृत्युना ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—काष्ठ का पाटन करते हुए उसके शिर में बड़ी वेदना समुत्पन्न हो गई थी। उस समय में उस वेदना से समुत्पीड़ित होकर अपनी भार्या सावित्री के समीप में आकर उससे यह वचन बोला—बिना आयास वाले इस काष्ठ-सञ्चय के कार्य करने से मेरे शिर में वेदना समुत्पन्न हो गई है। मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि किसी अन्धकार में मैं प्रवेश कर रहा हूँ—मैं कुछ भी नहीं जान पा रहा हूँ कि क्या कारण है। अब तो मैं तुम्हारी गोद में अपना शिर रखकर सोना चाहता हूँ। वह पार्थिव उस राजपुत्री सावित्री से इस प्रकार से कह कर सो गया था।१-३। उसके उत्संग में अपना मस्तक रखकर वह निद्रा से आविल (मलिन) लोचनों वाला हो गया था। इस के अनन्तर उस महाभागा राज कन्या पतिव्रता ने स्वयं ही उस स्थल पर समागत हुए धर्मराज को देखा था जो नील कमल के दलके समान श्याम वर्ण वाला—पीताम्बर धारी—विद्युल्लता से निबद्ध अङ्ग वाले जल से युक्त मेघ के सदृश था तथा सूर्य के समान वर्ण वाले किरीट और कुण्डलों से शोभित था। वह धर्मराज उरास्थल में हारों के भार

से भूषित था तथा भुजाओं में अङ्कुर धारण किए हुए था और उसके पीछे काल मृत्यु स्वयं चला आ रहा था ।४-७।

स तु संप्राप्य तं देशं देहात्सत्यवतस्तदा ।
अंगुष्ठमात्रं पुरुष पाशबद्धं वशंगतम् ।८
आकृष्य दक्षिणामाशां प्रययौ सत्वरं तदा ।
सावित्र्यपि वरारोहा दृष्ट्वा तं गतजीवितम् ।९
अनुवव्राज गच्छन्तन्धर्मराजमतन्द्रिता ।
कृताञ्जलिरुवाचाथ हृदयेन प्रवेपता ।१०
इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् ।
गुरुशुश्रूषया चैव ब्रह्मलोकं समश्नुते ।११
सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आहृताः ।
अनाहृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ।१२
यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत् ।
तेषां च नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते रतः ।१३
तेषामनुपरोधेन पारतन्त्र्यं यदाऽऽचरेत् ।
तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः ।
त्रिष्वप्येतेषु कृत्यं हि पुरुषस्य समस्यते ।१४

वह धर्मराज उस स्थल पर आकर सत्यवान् के शरीर से उस समय में अंगुष्ठ मात्र जो लिङ्ग शरीरधारी पुरुष था उसको पाशबद्ध करके अपने वश में कर खींचकर शीघ्रता से दक्षिणा दिशा की ओर उसी समय चल दिया था। वह वरारोहा सावित्री भी उस अपने स्वामी को जीवित रहित देखकर अतन्द्रित होती हुई उसी के पीछे अर्थात् गमन करने वाले धर्मराज के पीछे-पीछे चल दी थी। इसके उपरान्त वह हाथ जोड़कर काँपते हुए हृदय से बोली—।८-१०। यह जीवात्मा माता की भक्ति से उस लोक को—पिता की भक्ति से मध्यम को और गुरु की शुश्रूषा से ब्रह्मलोक को प्राप्त किया करता है। उस

पुरुष ने सभी धर्मों का समादर कर लिया है जिसने इन तीनों ऊपर बताये हुए धर्मों को पूर्ण कर लिया है। जिसने इन तीनों का आदर नहीं किया है उसकी समस्त अन्य क्रियायें बिल्कुल ही फलहीन हुआ करती हैं। जब तक ये तीनों हो जीवित हैं तब तक अन्य किसी का समाचरण नहीं करना चाहिए। जो प्रिय के हित में रत है उसे उनकी नित्य ही शुश्रूषा करनी चाहिए। उनके अनुपरोधसे जब भी पारतन्त्र्य का आचरण करे—वह सब उनको मन वचन और कर्म के द्वारा निवेदन कर देना चाहिए। पुरुष का इन तीनों में भी पूर्ण कृत्य स्थित रहा करता है।११-१४।

कृतेन कामेन निवर्त्तयाशु धर्मो न तेभ्योऽपि हि उच्यते च।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि।१५
गुरुपूजारतिर्भक्त त्वञ्च साध्वी पतिव्रता।
विनिवर्तस्व धर्मज्ञे ! ग्लानिर्भवति तेऽधुना।१६
पतिर्हि दैवतं स्त्रीणां पतिरेव परायणम्।
अनुगम्यः स्त्रिया साध्व्या पतिः प्राणधनेश्वरः।१७
मितन्ददति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य च दातारं भर्त्तारं का न पूजयेत्।१८
नीयते यत्र भर्त्ता मे स्वयं वा यत्र गच्छति।
मयापि तत्र गन्तव्यं यथाशक्ति सुरोत्तम !।१९
पतिमादाय गच्छन्तमनुगन्तुमहं यदा।
त्वां देव ! न हि शक्ष्यामि तदा त्यक्ष्यामि जीवितम्।२०
मनस्विनी तु या काचित् वैधव्याक्षरदूषिता।
मुहूर्त्तमपि जीवेत मण्डनार्हा ह्यमण्डिता।२१

कृत काम से अब तुम अति शीघ्र निवृत्त हो जाओ उनके लिए भी धर्म नहींहै—यह कहा जाताहै। मेरा उपरोध और तुम्हारा क्लम(श्रम) होगा। अब इसी कारण से मैं बोलता हूँ।१५। आप तो गुरुवर्ग की पूजा में रति वाली—भक्त—साध्वी और परम पतिव्रता है। हे धर्मज्ञे

यहाँ से आप वापिस लौट जाइए। अब आपको बहुत ग्लानि हो रही है।१६। सावित्री ने कहा—स्त्रियों का परम देवता पति ही होता है और पति ही परायण होता है। अतएव साध्वी स्त्री के द्वारा प्राण धनेश्वर पति का सर्वदा अनुगमन करना चाहिए।१७। स्त्री को उसका पिता परिमित ही दिया करता है—भाई और सुत भी स्त्री को परिमित ही दिया करते हैं। अपरिमित का दाता अपने स्वामी का पूजन कौन सी स्त्री नहीं करेगी ?।१८। हे सुरोत्तम। जहाँ पर मेरे स्वामी को ले जाया जा रहा है अथवा स्वयं आप जहाँ पर जा रहे हैं, मुझको भी यथा शक्ति वहीं पर जाना चाहिए।१९। जब मैं मेरे पति को लेकर गमन करने वाले आपका हे देव ! अनुगमन नहीं कर सकूंगी तो मैं अपने भी जीवन का त्याग कर दूंगी।२०।जो कोई भी मण्डन के योग्य मनस्विनी स्त्री जब वैधव्य के अक्षरों से दूषित होकर अमण्डित हो जाती हैं तो क्या वह एक मुहूर्त भर भी जीवित रहेगी ?।२१।

पतिव्रते ! महाभागे ! परितुष्टोऽस्मि ते शुभे !।
विना सत्यवतः प्राणैर्वरं वरय माचिरम्।२२
विनष्टचक्षुषोराज्यञ्चक्षुषा सह कारय।
च्युतराष्ट्रस्य धर्मज्ञ ! श्वशुरस्य महात्मनः।२३
दूरे पथे गच्छ निवर्त भद्रे ! भविष्यतीदं सकलं त्वयोक्तम्।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्तथाधुना तेन तव ब्रवीमि।२४

यमराज ने कहा—हे पतिव्रते ! हे महान् भाग वाली। हे शुभे ! मैं तुम से बहुत ही सन्तुष्ट हो गया हूँ। अब तुम सत्यावान् के प्राणों के बिना अन्य कोई भी वरदान मुझसे माँगलो और अधिक विलम्ब मत करो।२२। सावित्री ने कहा—हे धर्मज्ञ ! विनष्ट नेत्रों वाले मेरे महान् आत्मा वाले श्वशुर की जिनका कि राज्य च्युत हो गया है अब आप उनको आँख के सहित पुनः राज्य प्राप्त करा दीजिए।२३। यमराज ने कहा—हे भद्रे ! दूर मार्ग में तुम चली जाओ और वापिस

लौट जाओ । जो आपने कहा है वह सभी कुछ हो जायगा । अब मेरी ओर से रोक होगी और तुमको परिश्रम होगा इसीलिए मैं तुमसे यह कह रहा हूँ ।२४।

==

८९—साविश्री उपाख्यान (३)

कुतः क्लमः कुतो दुःखं सद्भिः सह समागमे ।
सतान्तस्मान्न मे ग्लानिम्त्वत्समीपे सुरोत्तम ! ।१
साधूनां वाप्यसाधूनां सन्त एव सदागतिः ।
नैवासतां नैव सतामसन्तो नैवमात्मनः ।२
विषाग्निसर्पशस्त्रेभ्यो न तथा जायते भयम् ।
अकारणं जगद्वैरिखलेभ्यो जायतेयथा ।३
सन्तः प्राणानपि त्यक्त्वा परार्थं कुर्वते यथा ।
तथाऽसन्तोऽपि सन्त्यज्य परपीडासु तत्पराः ।४
त्यजत्यसूनयं लोकस्तृणावद्यस्य कारणात् ।
परोपघातशक्तस्तं परलोकन्तथा सतः ।५
निकायेषु निकायेषु तथा ब्रह्मा जगद्गुरुः ।
असतामुपघाताय राजानं ज्ञातवान् वयम् ।६
नरान् परीक्षयेद्राजा साधून् सम्मानयेत्सदा ।
निग्रहञ्चासतां कुर्यात्सलोके लोकजित्तमः ।७

साविश्री ने कहा—सत्पुरुषों के साथ समागम होने पर दुःख कहाँ है और क्लम भी कहाँ है । हे सुरोत्तम ! आपके समीप में जो कि सत्पुरुष हैं मुझे तो बिल्कुल भी ग्लानि नहीं होती ।२५। साधु पुरुष हों अथवा असाधु जन हों इन सबकी सन्त ही सदा गति हुआ करते हैं अर्थात् सबका उद्धार सन्त ही किया करते हैं । जो असन्त हैं वे न तो

सत्पुरुषों का—न असत्पुरुषों का और अपने आपका ही उद्धार किया करते हैं असन्तोंमें उद्धार करने की कोईभी क्षमता ही नहीं हुआ करती हैं ।२। विष—अग्नि—सर्प और शस्त्र से उतना भय नहीं होता है जैसा बिना ही कारण के इस जगत् के बैरी खलों से भय उत्पन्न हो जाया करता है । सन्त पुरुष तो अपने प्राणों का भी परित्याग करके सदा दूसरों के अर्थ को किया करते हैं उसी भाँति असन्त पुरुष भी प्राणी तक का परित्याग कर दूसरोंको पीड़ा देने में परायण रहा करते हैं ।३-४। यह लोक जिसके कारण से प्राणीं को तिनके के समान त्याग देता है । उसी प्रकार से सत्पुरुष जो परार्थों के उपघात में समर्थ होते हैं वे परलोक को भी त्याग दिया करते हैं।५। उसी प्रकार से इस जगत् के गुरु श्री ब्रह्माजी ने निकाय—निकायों में असत्पुरुषों के उपघात के लिए स्वयं ही राजा को ज्ञात किया है।६। राजा का कर्त्तव्य है कि वह नरों की परीक्षा करे और सदा साधु पुरुषों का सम्मान करना चाहिए । जो राजा असत्पुरुषों का निग्रह किया करता है और उसको ऐसा करना भी चाहिए क्योंकि उसका यह कर्त्तव्य भी है वह इस लोक में लोकों का परम श्रेष्ठ जेता होता है ।७।

निग्रहेणासतां राजा सताञ्च परिपालनम् ।
एतावदेव कर्तव्यं राज्ञा स्वर्गमभीप्सुना ।८
राजकृत्यं हि लोकेषु नास्त्यन्यज्जगतीपते ।
असतां निग्रहादेव सताञ्च परिपालनात् ।९
राजभिश्चाप्यशास्तानामसतां शासिता भवान् ।
तेन त्वमधिको देवो देवेभ्यः प्रतिभासि मे ।१०
जगत्तु धार्यते सद्भिः सतामग्र्यस्तथाभवान् ।
तेन त्वामनुयान्त्या मे क्लमादेव ! न विद्यते ।११
तुष्टोऽस्मि ते विशालाक्षि ! वचनैर्धर्मसंगतैः ।
विना सत्यवतः प्राणाद् वरं वरय मा चिरम् ।१२

सहोदराणां भ्रातृणां कामयामि शतं विभो ! ।
अनपत्यः पिता प्रीतिं पुत्रलाभात् प्रयातु मे ।१३

तामुवाच यमो गच्छ यथागतमनिन्दिते ।
और्ध्वदेहिककार्येषु यत्नं भर्तुः समाचर ।१४

असतों का निग्रह और सत्पुरुषों का परिपालन करने वह वस्तुतः राजा कहलाने के योग्य होता है जो स्वर्ग की प्राप्ति करने का इच्छुक है उस राजा का यही इतना कर्त्तव्य होता है। हे जगतीपते। लोकों में राजा का यही कृत्य होता है इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। असतोंका निग्रह और सतोंके परिपालन का कर्त्तव्यही तो राजाओं का कार्य हुआ करता है। राजाओं के द्वारा भी जो शान्ति नहीं होता है उन असतों के सबके शासन करने वाले फिर आप होते हैं। इसी कारण से मुझे तो समस्त देवों से भी अधिक देव आप ही प्रतीत हो रहे हैं।८-१०। यह जगत् तो सत्पुरुषों के द्वारा ही धारण किया जाता है और उन सत्पुरुषों में आप सब प्रधान हैं। इसी कारण से आपके पीछे अनुगमन करने वाली मुझको हे देव ! कोई भी क्लम नहीं होता है। यमराज ने कहा—हे विशालाक्षि। तुम्हारे इन धर्मसंगत वचनों से मैं तुमसे परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो गया हूँ। सत्यवान् के प्राणों को छोड़कर अन्य जो भी आप चाहें वह वरदान मुझसे माँगलो। विलम्ब मत करो।११-१२। सावित्री ने कहा—हे विभो। मैं अपने सौ सहोदरों के प्राप्त करने की कामना रखती हूँ। मेरे पिता सन्तान हीन हैं सो वे पुत्रों के लाभ से प्रसन्न हो जावें। फिर यमराज ने उस सावित्री से कहा—हे अनिन्दिते। अब तुम जिस मार्ग से आई हो वापस चली जाओ और अपने स्वामी के और्ध्व देहिक कार्यों के करने में यत्न करो।१३-१४।

नानुगन्तुमयं शक्यस्त्वया लोकान्तरं गतः ।
पतिव्रतासि तेन त्वं मुहूर्तं मम यास्यसि ।१५

गुरुशुश्रूषणाद्भद्रे ! तथा सत्यवतो महत् ।
पुण्यं समर्जितं येन न याम्येनमहं स्वयम् ।१६
एतावदेव कर्तव्यं पुरुषेण विजानता ।
मातुः पितुश्च शुश्रूषा गुरोश्च वरवर्णिनि ! ।१७
तोषितं त्रयमेतच्च सदा सत्यवता वने ।
पूजितं विजितः स्वर्गस्त्वयानेन चिरं शुभे ! ।१८
तपसा ब्रह्मचर्येण अग्निशुश्रूषया शुभे ! ।
पुरुषाः स्वर्गमायान्ति गुरुशुश्रूषया तथा ।१९
आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः ।
नार्तेनात्यवमन्तव्या ब्राह्मणा न विशेषतः ।२०
आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः ।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता वै मूर्तिरात्मनः ।२१

दूसरे लोक में गये हुए इसका अनुगमन तुम नहीं कर सकते हो । तुम पतिव्रता हो इसी कारण मुहूर्त्त मात्र में मेरे साथ चल सकोगी । हे भद्रे ! गुरुओं की सेवा से इस सत्यवान् ने महान् पुण्य का अर्जन किया है और इसी कारण से मैं स्वयं ही इसको ले जा रहा हूँ ।१५-१६। हे वरवर्णिनि! विशेष ज्ञान वाले पुरुषका इतना ही कर्त्तव्य करता है कि वह माता-पिता और गुरु की शुश्रूषा करता रहे ।१७। इस सत्य वान् ने सदा वन में इन तीनों को परम सन्तुष्ट किया है और समर्चित किया है । इसने स्वर्ग को जीत लिया है और तुमने भी ऐसा ही चिर-काल तक हे शुभे ! किया है ।१८। हे शुभे ! तपश्चर्या से—ब्रह्मचर्य—अग्नि शुश्रूषा से तथा गुरु वर्ग की सेवा से पुरुष स्वर्ग में आया करते हैं ।१९। आचार्य-पिता माता-पूर्वज माता और विशेष रूप से ब्राह्मण इनका आर्त्त दशा में भी पुरुष को कभी अपमान नहीं करना चाहिए । ।२०। आचार्य साक्षात् ब्रह्मा की मूर्त्ति है—पिता प्रजापति की मूर्त्ति

है—माता पृथिवी की मूर्ति है और भाई तो अपनी आत्मा की ही मूर्ति होता है ।२१।

जन्मना पितरौ क्लेशं स हेते सम्भवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ।२२
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य तु सर्वदा ।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ।२३
तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमन्तप उच्यते ।
न च तैरननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ।२४
त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः ।
त एव च त्रयोवेदास्तथैवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ।२५
पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माता दक्षिणतः स्मृतः ।
गुरुराहवनीयश्च साग्नित्रेता गरीयसी ।२६
त्रिषु प्रमाद्यते तेषु त्रीन् लोकान् जयते गृही ।
दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते ।२७
कृतेन कामेन निवर्त भद्रे । भविष्यतीदं सकलं त्वयोक्तम् ।
ममोपरोधस्तव च क्लमःस्यात् तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि।२८

मनुष्यों के समुत्पन्न होने में उनके माता-पिता जन्म से ही पूर्ण क्लेश को सहा करते हैं उस क्लेश की निष्कृति मनुष्य सौ वर्षों में भी नहीं कर सकता है ।२२। अतएव मनुष्य का यह परम कर्त्तव्य होता है कि उनका नित्य ही उसे प्रिय करना चाहिए तथा जो आचार्य हो उस का भी सर्वदा प्रिय करे । इन तीनों के तुष्ट होने पर ही मनुष्य का सभी प्रकार का ताप समाप्त हो जाया करता है । वे तीनों ही उसके तीन लो हैं—ये तीनों उसके तीन आश्रम हैं—वे तीनों ही तीन वेद हैं तथा ये ही तीन मनुष्य की तीन अग्नियाँ हैं । पिता गार्हपत्य अग्नि—माता दक्षिणाग्नि और गुरु आह्वनीय अग्नि है । ये ही सबसे बड़ी तीन अग्नियों वाला वह माना जाता है । इन तीनों के कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिए । जो इस कर्त्तव्य का पालन करता है वह गृही तीनों

को जीत लिया करता है और अपने शरीर की कान्ति से वह दीप्यमान होता हुआ देव के ही समान दिवलोक में आनन्द अनुभव किया करता है ।२३-२७। यमराज ने कहा—हे भद्रे ! कृत काम से निवृत हो जाओ जो तुमने कहा है वह सम्पूर्ण हो जायगा । मेरी ओर से उपरोध होगा और तुमको क्लम होगा । इसी से तुमसे यह मैं बोलता हूं ।२८।

९०—सावित्री उपाख्यान (४)

धर्मार्जने सुरश्रेष्ठ । कुतो ग्लानिः क्लमस्तथा ।
त्वत्पादमूलसेवा च परमं धर्मकारणम् ।१
धर्मार्जनन्तथा कार्यं पुरुषेणाविजानता ।
तल्लाभः सर्वलाभेभ्यो सदा देव विशिष्यते ।२
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गो जन्मनः धनम् ।
धर्महीनस्य कामार्थौ बन्ध्यासुतसमौ प्रभो ।३
धर्मादर्थस्तथा कामो धर्माल्लोकद्वयं तथा ।
धर्म एकोऽनुयात्येनं यत्र क्वचन गामिनम् ।४
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ।
एको हि जायते जन्तुरेक एव विपद्यते ।५
धर्मस्तमनुयात्येको न सुहृन्न च बान्धवाः ।
क्रियासौभाग्यलावण्यं सर्वं धर्मेण लभ्यते ।६
ब्रह्मेन्द्रोपशर्वेन्दुयनार्काग्न्यनिलाम्भसाम् ।
वस्वश्विधनदाद्यानां ये लोकाः सर्वकामदाः ।७
धर्मेण तानवाप्नोति पुरुषः पुरुषान्तक ।
मनोहराणि द्वीपानि वर्षाणि सुखानि च ।८

हे सुरश्रेष्ठ ! धर्म के अर्जन करने में ग्लानि और क्लम क्यों

होगा ? आपके चरणों की मूल सेवा ही परम धर्म का कारण है ।१। विशेष ज्ञान रखने वाले पुरुष का उसी भाँति से धर्म का अर्जन करना चाहिए । हे देव ! जबकि उस धर्म का लाभ सभी प्रकार के लाभों से विशिष्ट हुआ करता है ।२। धर्म, अर्थ और काम यही त्रिवर्ग मनुष्य जन्म का परम फल होता है । हे प्रभो ! जो धर्म से हीन पुरुष है उसके काम और अर्थ वन्ध्या के सुतों के ही समान हुआ करते हैं ।१३। धर्मसे अर्थ तथा काम और धर्मसे दोनों लोक होते हैं । जहाँ परभी यह गमन करता है उसके पीछे एक धर्म ही अनुगमन किया करता है ।४। अन्य सभी कुछ शरीर के ही साथ में नाश को प्राप्त हो जाया करता है । यह जन्तु एक ही अकेला समुत्पन्न हुआ करता है और एक ही अकेला मृत्यु को प्राप्त होता है ।५। जब यह मृत्युगत होता है तो उस समयमें केवल एक मात्र धर्म ही उसका अनुगमन किया करता है । उस समयमें न तो कोई मित्र साथ में जाया करताहै और न बान्धव ही उसके साथ जाते हैं । क्रिया, सौभाग्य और रूप लावण्य ये सभी कुछ धर्म के द्वारा ही प्राप्त किया जाया करते हैं ।६। ब्रह्मा, इन्द्र—उपेन्द्र—शर्व—इन्दु—यम—अर्क—अग्नि—अनिल—जल—वसु—अश्विनी कुमार और धनद आदि के जो समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाले लोक हैं इनकी प्राप्ति मनुष्य धर्मके ही द्वारा किया करता है । हे पुरुषों के अन्त करने वाले ! धर्म से ही मनोहर द्वीप और सुन्दर सुख देने वाले धनों को यह पुरुष प्राप्त करता है ।७-८।

प्रयान्ति धर्मेण नरास्तथैव नरगण्डिकाः ।
नन्दनादीनि मुख्यानि देवोद्यानानि यानि च ।९
तानि पुण्येन लभ्यन्ते नाकपृष्ठन्तथा नरैः ।
विमानानि विचित्राणि तथैवाप्सरसः शुभाः ।१०
तैजसानि शरीराणि सदा पुण्यवतांफलम् ।
राज्यनृपतिपूजा च कामसिद्धिस्तथेप्सिता ।११

संस्काराणि च मुख्यानि फलं पुण्यस्य दृश्यते ।
रुक्मवैदूर्यदण्डानि चण्डांशुसदृशानि च ।१२
चामराणि सुराध्यक्ष ! भवन्ति शुभकर्मणाम् ।
पूर्णेन्दुमण्डलाभेन रत्नांशुकविकाशिना ।१३
धार्यतां याति छत्रेण नरः पुण्येन कर्मणा ।
जलशङ्खस्वरौघेण सूतमागधनिःस्वनैः ।१४

मनुष्य धर्म के द्वारा ही नरगण्डिका को प्राप्त किया करते हैं और नन्दन और मुख्य देवों के जो उद्यान हैं उनमें चले जाया करते हैं। पुण्य के द्वारा ही इन सबकी प्राप्ति होतीहै तथा मनुष्यों के द्वारा नाक-पृष्ठ को भी प्राप्त किया जाता है। विचित्र विमान तथा परम शुभ अप्सराएँ और तैजस शरीर आदि सब सदा पुण्य वालों का ही फल हैं। राज्य-नृपतियोंके द्वारा पूजा-ईप्सित काम सिद्धि एवं मुख्य संस्कार यह सभी पुण्य का ही फल दिखाई देता है। हे सुराध्यक्ष, सावर्ण एवं वैदूर्य के दण्ड जो सूर्य के ही समान हैं और चामर इन सबकी प्राप्ति होना शुभ कर्मों का ही फल होता है। पूर्ण चन्द्र की आभा वाले और रत्नांशुक विकाशी छत्र के धारण करने का अवसर मनुष्य पुण्य कर्म के द्वारा ही प्राप्त किया करता है। जयकार बतलाने वाले शंखों के स्वर-समूह से तथा सूतों और मागधों की ध्वनियों से समन्वित भी मनुष्य पुण्य कर्म से ही होना है।९-१४।

वरासनं सभृङ्गारं फलं पुण्यस्य कर्मणाः ।
वरान्नपानं पीतञ्च भृत्यमाल्यानुलेपनम् ।१५
रत्नवस्त्राणि मुख्यानि फलं पुण्यस्य कर्मणः ।
रूपौदार्यगुणोपेताः स्त्रियश्चातिमनोहरा ।१६
वासः प्रासादपृष्ठेषु भवन्ति शुभकर्मिणः ।
सुवर्णकिङ्कणीमिश्रचामरापीडधारिणः ।१७
वहन्ति तुरंगा देव नरं पुण्येन कर्मणा ।

तस्य द्वाराणि यजनन्तपोदानन्दम: क्षमा ।१८

ब्रह्मचर्यं तथा सत्यन्तीर्थानुभरणं शुभम् ।

स्वाध्यायसेवासाधूनां सहवास: सुरार्चनम् ।१९

गुरूणां चैव शुश्रूषा ब्राह्मणानां च पूजनम् ।

इन्द्रियाणां जयश्चैव ब्रह्मचर्यममत्सरम् ।२०

तस्माद्धर्म: सदा कार्यो नित्यमेव विजानता ।

नहि प्रतीक्षते मृत्यु: कृतमस्य च वा कृतम् ।२१

भृङ्ग के सहित बरासन भी पुण्य कर्म का फल होता है । श्रेष्ठ अन्न—पान—पीत—भृत्य—माल्य और अनुलेपद रत्न और वस्त्र इस प्रकार की मुख्य वस्तुएँ प्राप्त होना भी परम पुण्य कर्म का फल होता है । रूप लावण्य एवं अनेक सद्गुणों से सम्पन्न अतीव मनोहर स्त्रियाँ—बड़े महलों में निवास शुभ कर्म वालों को ही प्राप्त होता है । हे देव ! सुवर्ण की किंकणी से मिश्रित चामर एवं आपीड़ के धारण करने वाले तुरग मनुष्य को पुण्य कर्म से वहन किया करते हैं । उस पुरुष के द्वारा–यजन–तप–दान–क्षमा–ब्रह्मचर्य सत्य–शुभ तीर्थानुभरण—स्वाध्याय–साधुसेवा—सहवास—सुरों का अर्चन—गुरुवर्ग की शुश्रूषा—ब्राह्मणों का अभ्यर्चन—इन्द्रियों के ऊपर विजय—मत्सरता का अभाव इन सबकी प्राप्ति पुण्य कर्म के द्वारा हुआ करती है ।१५-२० इस कारण से ज्ञानवान पुरुषों को नित्य ही धर्म का समाचरण करना चाहिए क्योंकि मृत्यु इसके कृत तथा अकृत की कुछ भी प्रतीक्षा नहीं किया करता है ।२१।

बाल एवाचरेद्धर्ममनित्यं देव ! जीवितम् ।

कोहि जानाति कस्याद्य मृत्युरेवागमिष्यति ।२२

पश्यतोऽप्यस्य लोकस्य मरणं पुरत: स्थितम् ।

अमरस्येव चरितमत्याश्चर्यं सुरोत्तम ! ।२३

युवत्वापेक्षया बालोवृद्धत्वापेक्षया युवा ।

मृत्योरुत्सङ्गमारूढः स्थविरः किमपेक्षते ।२४
तत्रापि विण्ड (न्द) तस्त्राणं मृत्युना तस्यका गतिः ।
न भयं मरणञ्चैव प्राणिनामभयं क्वचित् ।
तत्रापि निर्भयाः सन्तः पुरुषाः सुकृतकारिणः ।२५
तुष्टोऽस्मितेविशालाक्षि ! वचनैर्धर्मसङ्गतैः ।
विना सत्यवतः प्राणान् वरंवरयमाचिरम् ।२६
वरयामि त्वया दत्तं पुत्राणां शतमौरसम् ।
अनपत्यस्य लोकेषु गतिः किल न विद्यते ।२७
कृतेन कामेन निवर्त भद्रे । भविष्यतीदं सकलं यथोक्तम् ।
ममोपरोधस्तव च क्लमःस्यात्तथाऽधुना तेन तव ब्रवीमि।२८

हे देव । बालक को ही नित्य धर्म का आचरण करना चाहिए क्योंकि यह जीवित अनित्य है । कौन जानता है कि किसकी मृत्युआज ही आ जायगी । इस लोक के देखते ही हुए मौत के सामने स्थित रहा करती है । हे सुरोत्तम । देव के समान इसका चरित होता है—यही महान आश्चर्य की बात है । युवावस्थामें स्थित की अपेक्षा बालक और वृद्धता की अपेक्षा युवा इस मृत्यु की गोद में समारूढ़ हो रहा है । जो एकदम स्थविर है वह फिर किस व्यवस्था की अपेक्षा किया करता है । ।२२-२४। उस दशा में भी मृत्यु के द्वारा त्राण की प्राप्ति करने वाले उसकी क्या गति होगी । मरण भय नहीं है । प्राणियों को अभय कहा है । जो सुकृत के करने वाले हैं वे वहाँ पर भी सदा सन्त पुरुष निर्भय होते हैं ।२५। यमराज ने कहा—हे विशालाक्षि । तुम्हारे धर्म से संगत वचनोंसे संगत वचनोंसे अत्यन्त ही परितुष्ट हो गया हूँ किन्तु सत्यवान् के प्राणोंको छोड़कर शीघ्रही मुझसे कोई सा वरदान माँगले । सावित्री ने कहा—हे भगवान् । आपसे द्वारा दिये हुए सौ औरस पुत्रों का वरदान मैं चाहती हूँ क्योंकि जो सन्तान से हीन है उसकी लोकों में कोई भी गति नहीं है । यमराज ने कहा—हे भद्रे ? अब तेरा काम पूर्ण हो गया

है तुम वापिस लौट जाओ। जो भी तुमने कहा है वह सभी हो जायगा साथ चलने के मेरा उपरोध (रुकावट) है और तुमको व्यर्थ श्रम होता है। इसी से मैं तुमसे यह बोल रहा हूँ।२६-२८।

९१–सावित्री उपाख्यान (५)

धर्मममर्मविधानाज्ञ। सर्वधर्मप्रवर्त्तक।
त्वमेव जगतो नाथः प्रजासंयमनोतमः।१
कर्मणामनुरूपेण यस्माद्यमयसे प्रजाः।
तस्माद्वै प्रोच्यसे देव। यम इत्येव नामतः।२
धर्मेणेमाः प्रजाः सर्वा यस्माद्रञ्जयसे प्रभो।
तस्मात्ते धर्मराजेति नाम सद्भिर्निगद्यते।३
सुकृतं दुष्कृतं चोभे पुरोधाय यदा जनाः।
त्वत्सकाशमृता यान्ति तस्मात्त्वं मृत्युरुच्यसे।४
कालं कलार्द्धं कलयन् सर्वेषां त्वं हि तिष्ठसि।
तस्मात् कालेति ते नाम प्रोच्यते तत्वदर्शिभिः।५
सर्वेषामेव भूतानां यस्मादन्तकरो महान्।
तस्मात्त्वमन्तकः प्रोक्तः सर्वदेवैर्महाद्युते।६
विवस्वतस्त्वं तनयः प्रथमं परिकीर्तितः।
तस्माद्वैवस्वतो नाम्ना सर्वलोकेषु कथ्यसे।७

सावित्री ने कहा—हे सब धर्मों के प्रवर्त्तक। आप तो धर्म के मर्म का जो विधान है उसके ज्ञाता हैं और आप ही इन जगतों के नाथ हैं तथा प्रजाओं का संयमन करने वाले यम हैं।१। कर्मों के अनुरूप जिस कारण से आप प्रजाओं का यमन किया करते हैं हे देव। इसी कारण से 'यम'—इस नाम से आपको पुकारा जाया करता है। हे

प्रभो ! क्योंकि धर्मके द्वारा इन समस्त प्रजाओं का आप रञ्जन किया करते हैं इसी से सत्पुरुषों के द्वारा आप 'धर्मराज'—इस नाम से पुकारे जाया करते हैं।२-३। जब मनुष्य सुकृत और दुष्कृत इन दोनों को आगे रखकर मृत्युगत होकर आपके समीपमें जाया करते हैं इसी कारण से आपको 'मृत्यु'—इस नाम से कहा जाता करता है। काल को कलार्द्ध कलन करते हुए सबके मध्य में आप स्थित रहा करते हैं इसी कारण से तत्वदर्शियों के द्वारा 'काल'—यह नाम आपका कहा जाता है। क्योंकि सभी प्राणियों के आप महान् अन्त कर देने वाले हैं इसी कारण से महाद्युते ! समस्त देवों के द्वारा आपको अन्तक कहा गया है। आप विवस्वान के पुत्र प्रथम कहे गये हैं इसीलिए समस्त लोकों में 'वैवस्वत' —इस नाम से आपको कहा जाता है।४-७।

आयुष्ये कर्मणि क्षीणे गृह्णासि प्रसभञ्जनम् ।
तदा त्वं कथ्यसे लोके सर्वप्राणिहरेति वै ।८
तव प्रसादाद्देवेश ! संकरो न प्रजायते ।
सतां सदा गतिर्देव ! त्वमेव परिकीर्तितः ।९
जगतोऽस्य जगन्नाथ ! मर्यादापरिपालकः ।
पाहि मां त्रिदशश्रेष्ठ ! दुःखितांशरणागताम् ।
पितरौ च तथैवास्य राजपुत्रस्य दुःखितौ ।१०
स्तवेन भक्त्या धर्मज्ञ ! मया तुष्टेन सत्यवान् ।
तव भर्ता विमुक्तोऽयं लब्धकामा व्रजाबले ! ।११
राज्यं कृत्वा त्वया सार्द्धं वत्सराणीतिपञ्चकम् ।
नाकपृष्ठमथारुह्य त्रिदशैः सह रंस्यते ।१२
त्वयि पुत्रशतञ्चापिसत्यवान् जनयिष्यति ।
ते चापिसर्वे राजानःक्षत्रियास्त्रिदशोपमाः ।१३
मुख्यास्त्वन्नाम पुत्राख्या भविष्यन्ति हि शाश्वताः ।
पितुश्च ते पुत्रशतं भविता तव मातरि ।१४

आयुष्य में कर्म के क्षीण होने पर आप मनुष्य को बलपूर्वक ग्रहण किया करते हैं उस समय में लोक में आप 'सर्व प्राणिहर' इस नाम से कहे जाते हैं। हे देवेश! आपके प्रसाद से सङ्कर नहीं होताहै। हे देव! सत्पुरुषों की सदा आप ही गति कीर्त्तित किये गये हैं। हे जगन्नाथ! आप इस जगत् के मर्यादा के परिपालक हैं। हे देवो में परमश्रेष्ठ! शरणागति में समागत दुःखिता मेरी रक्षा करो। इस राजपुत्र के माता पिता इसी भाँति परम दुःखित हो रहे हैं।७-१०। यमराज ने कहा—हे धर्मज्ञे! तेरे इस स्तव से और भक्तिभाव से तुष्ट हुए मेरे द्वारा तेरा स्वामी सत्यवान् छोड़ दिया गया है। हे अबले! अबलब्ध काम वाली तुम यहाँ से चली जाओ। यह अब तेरे साथ राज्य का सुख कर पिचांसी वर्ष तक जीवित रहकर फिर अन्तमें स्वर्ग पर समारोहण कर देवों के साथ रमण करेगा। वह सत्यवान् तुझमें सौ पुत्र समुत्पन्न करेगा। वे भी सब देवताओंके समान क्षत्रिय राजा लोग होंगे। तुम्हारे नाम से पुत्रों की आख्या वाले प्रमुख एवं शाश्वत होंगे और तुम्हारी माता में तुम्हारे पिता से भी एक सौ पुत्र उत्पन्न होंगे।११-१४।

मालव्यां मालवानामशाश्वताःपुत्रपौत्रिणः।
भ्रातरस्ते भविष्यन्ति क्षत्रियास्त्रिदशोपमाः।१५
स्तोत्रेणानेन धर्मज्ञे! कल्पमुत्थाय यस्तु माम्।
कीर्तयिष्यति तस्यापि दीर्घमायुर्भविष्यति।१६
एतावदुक्त्वा भगवान् यमस्तु प्रमुच्य तं राजसुतं महात्मा।
अदर्शनं तत्र यमो जगाम कालेन सार्द्धं सह मृत्युना च।१७

मालवो के नाम वाले मालवी में शाश्वत पुत्र एवं पौत्र होंगे। वे वेदों के समान उपमा वाले क्षत्रिय तेरे भाई होंगे। हे धर्मज्ञों! जो पुरुष प्रातःकालमें उठकर इस स्तोत्रके द्वारा मेरा कीर्त्तन करेगा उसकी भी दीर्घ आयु हो जायगी।१५-१६। मत्स्य भगवान् ने कहा—इतना

कहकर महात्मा भगवान् यमराज उस राजपुत्र को छोड़कर वहीं पर काल और मृत्यु के साथ ही अदर्शन को प्राप्त हो गये थे ।१७।

==

९२-सावित्री उपाख्यान (६)

सावित्री तु ततः साध्वी जगामवरवर्णिनी ।
यथा यथा गतेनैव यत्रासीत्सत्यवान् मृतः ।१
सा समासाद्य भर्तारं तस्योत्सङ्गगतं शिरः ।
कृत्वा विवेश तन्वङ्गी लम्बमाने दिवाकरे ।२
सत्यवानपि निर्मुक्तो धर्मराजाच्छनैः शनैः ।
उन्मीलयत नेत्राभ्यां प्रास्फुरच्च नराधिप ! ।३
ततः प्रत्यागतप्राणः प्रियां वचनमब्रवीत् ।
क्वासौ प्रयातः पुरुषो यो मामप्यपकर्षति ।४
न जानामि वरारोहे ! कश्चासौपुरुषःशुभे ।
वनेऽस्मिन् चारुसर्वाङ्ग ! सुप्तस्य च दिनंगतम् ।५
उपवासपरिश्रान्ता दुःखिता भवती मया ।
अस्मद्दुर्हृदयेनाद्य पितरौ दुःखितौ तथा ।
द्रष्टुमिच्छाम्यहं सुभ्रु ! गमने त्वरिता भव ।६

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—इसके अनन्तर वर वर्णिनी साध्वी जैसे-२ मार्ग से गयी थी और जहाँ पर मृत सत्यवान् था वैसे ही वह चली आयी थी । उसने अपने स्वामी को प्राप्त करके जिसका शिर उसके गोद में था इस तरह से उसके शिर को रखकर दिवाकर के लम्बमान होने पर उस तन्वङ्गी ने उस स्थल पर प्रवेश किया था ।१। ।२। सत्यवान् का जीवात्मा धर्मराज से धीरे-धीरे निर्मुक्त होकर हे नराधिप ! उसने नेत्रोंका उन्मीलन कियाथा और वह प्रस्फुरित हुआ ।

इसके पश्चात् प्रत्यागत प्राण वामा वह होकर अपनी प्रियासे यह वचन बोला—वह पुरुष कहाँ चला गया जो मुझको भी आकर्षित कर रहा है। हे वरारोहे ! हे शुभे ! मैं नहीं जानता हूँ यह कौन पुरुष था। हे चारु-सर्वाङ्ग ! आज इस वन के सोते हुए मुझको पूरा दिन व्यतीत हो गया है। मैंने उपवाससे परिश्रान्त आपको भी दुःखित किया है। हमारे बुरे हृदय से आज हमारे माता-पिता भी बहुत दुःखित हुए हैं। हे सुभ्रु ! मैं माता-पिता के दर्शन करना चाहता हूँ अब गमन करने में शीघ्रता वाली हो जाओ ।३-६।

आदित्येऽस्तमनुप्राप्ते यदि ते रुचितं प्रभो ! ।
आश्रमन्तु यास्याव: श्वशुरौ हीनचक्षुषौ ।७
यथा वृत्तञ्च तत्रैव श्रृणु वक्ष्ये यथाश्रमे ।
एतावदुक्त्वा भर्तारं सह भर्त्रा तदा ययौ ।८
आससादाश्रमं चैव सह भर्त्रा नृपात्मजा ।
एतस्मिन्नेव काले तु लब्धचक्षुर्महीपति: ।९
द्युमत्सेन: सभार्यस्तु पर्यतप्यत भार्गव ! ।
प्रियपुत्रमपश्यन्वै स्नुषाञ्चैवाथ कर्शिताम् ।१०
आश्वास्यमानस्तु तथा स तु राजा तपोधनै: ।
ददर्श पुत्रमायान्तं स्नुषया सह कानने ।११
सावित्री तु वरारोहा सह सत्यवता तदा ।
ववन्दे तत्र राजानं सभार्यं क्षत्रपुङ्गवम् ।१२
परिष्वक्तस्तदा पित्रा सत्यवान् राजनन्दन: ।
अभिवाद्य तत: सर्वान् वने तस्मिंस्तपोधनान् ।१३
उवास तत्र तां रात्रिमृषिभि: सर्वधर्मवित् ।
सावित्र्यपि जगादाथ यथावृत्तमनिन्दिता ।१४

सावित्री देवी ने कहा—हे प्रभो ! भगवान् सूर्य के अस्तता को प्राप्त होने पर यदि आपको पसन्द हो तो आश्रम में चलेंगे सास श्वशुर

तो दोनों हीन नेत्रों वाले हैं। जिस प्रकार से जो कुछ हुआ है वह सब आश्रम में ही बतलाऊँगी उसका श्रवण करना। इस तरह से अपने भर्त्तासे इतना मात्र कहकर स्वामीके साथही उसी समय में वह सावित्री चली गयी थी।७-८। वह नृपात्मजा भर्त्ता के आश्रम में प्राप्त हो गई थी। इसी समय में नेत्रों को प्राप्त करने वाला वह महीपति द्युमत्सेन भार्या के सहित हे भार्गव! परितृप्त हुआ था क्योंकि उसने अपने प्रिय पुत्र को और अपनी परम कृश पुत्र वधू को देखा था। उसने राजा वहाँ पर तपस्वियों के द्वारा समाश्वस्त होता हुआ स्नुषा के साथ वनमें आये हुए पुत्र को देखा था। उस वर आरोह वाली सावित्री ने उस समय में सत्यवान के साथ वहाँ आकर क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ भार्या के सहित राजा की वन्दना की थी। तब वह राजनन्दन सत्यवान् अपने पिता के द्वारा भली भाँति आलिङ्गन किया गया था। इसके अनन्तर उसने वन में उन समस्त तपोधनों का अभिवादन किया था। वह सब धर्म का वेत्ता उस रात्रि में उन ऋषियों के साथ वहीं पर रहा था और इसके उपरान्त सावित्री ने भी जो परम आनन्दित थी जो कुछभी घटित हुआ था वह सारा हाल कहकर सुना दिया था।९-१४।

व्रतं समापयामास तस्यामेव यथानिशि।
ततस्तुर्येस्त्रियामान्ते ससैन्यस्तस्य भूपतेः।१५
अजगाम जनः सर्वो राज्यार्थाय निमन्त्रणे।
विज्ञापयामास तदा तत्र प्रकृतिशासनम्।१६
विचक्षुषस्ते नृपते येन राज्यं पुरा हृतम्।
अमात्यैः स हृतो राजा भवांस्तस्मिन् पुरे नृपः।१७
एतच्छ्रुत्वा ययौ राजा बलेनचतुरङ्गिणा।
लेभे च सकलं राज्यं धर्मराजान् महात्मनः।१८
भ्रातृणां तु शतं लेभे सावित्र्यपि वराङ्गना।
एवम्पतिव्रता साध्वी पितृपक्षं नृपात्मजा।१९

उज्जहार वरारोहा भर्तृ पक्षं तथैव च ।
मोक्षयामास भर्तारं मृत्युपाशगतं तदा ।२०
तस्मात्साध्व्यः स्त्रियः पूज्याः सततं देववन्नरैः ।
तासां राजन् ! प्रसादेन धार्यते वै जगत्त्रयम् ।२१
तासान्तु वाक्यं भवतीह मिथ्या न जातु लोकेषु चराचरेषु ।
तस्मात्सदा ताःपरिपूजनीयाःकामान्समग्रानभिकामयानैः।२२

उसी रात्रि में जो महाव्रत ग्रहण किया था उसको समाप्त किया था । इसके अनन्तर सभी जन उस राजा की स्त्रियों के समीप में सेना के सहित तुर्य वाद्यों से समन्वित राज्यार्थ के लिए निमन्त्रणमें वहाँ पर समागत हुए और उस समयमें उन्होंने प्रकृति शासनको विज्ञापितकिया था । हे नृपते ! नेत्रहीन आपका जिसने पहिले राज्य अपहृत किया था उस राजा को आपके ही अमात्यों ने मारा है और अब आप ही उस पुर के राजा हैं । यह श्रवण करके वह राजा द्युमत्सेन चतुरंगी बल के साथ वहाँ पर चला गया था और महात्मा धर्मराज से अपने सम्पूर्ण राज्य को पुनः प्राप्त कर लिया था । वरांगना सावित्री ने भी सौ भाइयों की प्राप्ति करली थी । इस प्रकार से उस परमसाध्वी पतिव्रता ने जो नृप की आत्मजा थी अपने पिताके पक्ष का भी उद्धार कर दिया था तथा उस वरारोहा ने भाइयों के पक्ष का भी उद्धार कर दिया था । उस समय में पतिव्रत के महान् प्रबलतम बल से अपने भर्त्ता को मृत्युके परम घोर पाशसे मुक्त करा दिया था । इसी कारण से मनुष्यों की पूजा करनी चाहिए । हे राजन् ! उनके ही प्रसादसे ये तीनों भुवन धारण किए जाते हैं ।१५-२१। इन चराचर लोकों में कभी भी उन सती साध्वी महिलाओं के वचन मिथ्या नहीं हुआ करते हैं इसी कारण से सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त करने वाले मनुष्यों के द्वारा सर्वदा उन नारियों की अभ्यर्चना अवश्य ही की जानी चाहिए ।२२।

———

९६–अभिषिक्त राजा का कृत्य वर्णन

राज्ञोऽभिषिक्तमात्रस्य किनुकृत्यतमं भवेत् ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व सम्यग्वेत्ति यतो भवान् ।१
अभिषेकार्द्रं शिरसा राज्ञा राज्यावलोकिना ।
सहायवरणं कार्यं तत्र राज्यं प्रतिष्ठितम् ।२
यदप्यल्पतरं कर्म तदप्येकेन दुश्चरम् ।
पुरुषेणासहायेन किमु राज्यं महोदयम् ।३
तस्मात्सहायान् वरयेत् कुलीनान्नृपतिः स्वयम् ।
शूरान् कुलीनजातीयान् बलयुक्तान् श्रियान्वितान् ।४
सत्त्वरूपगुणापेतान् सज्जनान् क्षमयान्वितान् ।
क्लेशक्षमान् महोत्साहान् मर्मज्ञांश्च प्रियंवदान् ।५
हितोपदेशकान्राज्ञः स्वामिभक्तान्यशोऽर्थिनः ।
एवं विधान्साहायां च शुभकर्मसु योजयेत् ।६
गुणहीना अपि तथा विज्ञाय नृपतिः स्वयम् ।
कर्मस्वेव नियुञ्जीत यथायोग्येषु भागशः ।७

महर्षि मनु ने कहा—जिस राजा का राज्यासन पर अभिषेक कर दिया जावे उस अभिषिक्त नृपतिका क्या कर्त्तव्य है क्योंकि केवल उस का अभिषेक भर ही हुआ है । यह सभी कुछ मुझे बतलाइये क्योंकि आप तो सभी कुछ को भली भाँति जानते हैं ।१। श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—अभिषेक के द्वारा भींगे हुए मस्तक वाले और राज्य के कार्यों के देखने वाले राजा को चाहिए कि वह उस प्रतिष्ठित राज्य में वहाँ पर अपनी सहायता करने वालों का वरण करे ।२। चाहे बहुत ही छोटा-सा भी कोई कार्य हो किन्तु वह भी एक के द्वारा पूर्ण कर लेना महान् कठिन हुआ करता है जिस पुरुष का कोईभी सहायक न हो । साधारण से साधारण कार्यों के विषय में भी ऐसा ही देखा जाता है किन्तु राज्य

शासन तो महान् उदय वाला एक परम विशाल कार्य है ।३। अतएव नृपति को स्वयं ही कुलीन सहायकों का वरण करना चाहिए । वे सहायक ऐसे होने चाहिए जो शूरवीर हों—अच्छे कुल और उत्तम जाति में समुत्पन्न होने वाले हों—बल से सम्पन्न एवं श्री से समन्वित होवें ।४ राजा को अपने सहायकों के वरण करने में देखना चाहिए कि वे रूप और सत्व गुण से युक्त हों—सज्जन हों—सज्जन हों, क्षमा से संयुक्त हों क्लेशों के सहन करने में समर्थ हों, महान् उत्साह वाले हों, धर्म के ज्ञाता हों, प्रिय वचन बोलने वाले हों । राजा को सदा हित का उपदेश करने वाले, स्वामी के परम भक्त और यश के चाहने वाले हों । इस तरह के भली भाँति खूब देखभाल कर सहायकों का वरण राजा को करना चाहिए और फिर उनको शुभ कर्मोंमें योजित करना चाहिए जो गुणों से हीन हों इनको भी राजा स्वयं जानकर यथा योग्य कर्मोंमे भाग करके नियुक्त करना चाहिए ।५-७।

कुलीनः शीलसम्पन्नो धनुर्वेदविशारदः ।
हस्तिशिक्षाश्वशिक्षासु कुशलः श्लक्ष्णभाषिता ।८

निमित्ते शकुने ज्ञाने वेत्ताचैव चिकित्सिते ।
कृतज्ञः कर्मणं शूरस्तथा क्लेशसहो ऋजुः ।९

व्यूहतत्वविधानज्ञः फल्गुसारविशेषवित् ।
राज्ञा सेनापतिः कार्यो ब्राह्मणः क्षत्रियोऽथवा ।१०

प्रांशुः सुरूपो दक्षश्च प्रियवादी न चोद्धतः ।
चित्तग्राहश्च सर्वेषां प्रतीहारो विधीयते ।११

यथोक्तवादी दूतः स्याद्देशभाषाविशारदः ।
शक्तः क्लेशसहो वाग्मी देशकालविभागवित् ।१२
विज्ञातदेशकालश्च दूतः स स्यान्महीक्षितः ।
वक्ता न यस्य यः काले स दूतो नृपतेर्भवेत् ।१३

प्रांशवो व्यायता: शूरा: दृढभक्ता निराकुला: ।
राज्ञा तु रक्षिण: कार्या: सदा क्लेशसहा हिता: ।१४

सेनापति राजा का एक परम सहायक अङ्ग होता है। वह कैसा होना चाहिए यह बतलाया गया है। राजा का सेनापति–शील स्वभाव से युक्त–धनुर्विद्या का महान् विद्वान–हाथियों और अश्वों की शिक्षा में परम प्रवीण कोमल और मधुर भाषण करने वाला–शकुन के निमित्तों का जानने वाला––चिकित्सा के विषय का ज्ञाता–कृतज्ञ––कर्मों में शूर क्लेशों का सहिष्णु–सरल–गूढ़ तत्त्वों के विधान का ज्ञाता–निरर्थक एवं सार के तत्त्वों का जानकर ऐसे अनेक गुणोंसे विशिष्ट सेना का स्वामी राजा को बनाना चाहिए क्योंकि सेना ही राज्य एवं प्रजा की रक्षा करने वाली होती है और सेनापति उसका प्रधान होता है। वह सेनापति जाति का ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय होना चाहिए। वह प्रांशु––सुन्दर रूप वाला और प्रियवादी होना चाहिए। उद्धत स्वभाव वाला उसको नहीं रहना चाहिए। राजा का दूत सभी के चित्तको ग्रहण करने वाला और प्रतीहार बनाना चाहिए। दूत को जैसा भी कहा जावे वही कहने वाला तथा देश भाषा का विद्वान् होना चाहिए। जो राजा का दूत हो उसको शक्तिशाली–क्लेशों का सहन करने वाला–वाग्मी–देश और काल के विभाग का ज्ञान रखने वाला तथा देश एवं काल का विज्ञाता होना आवश्यक है। जो जिसके काल में वक्ता नहीं है वही दूत राजा का होता है।८-१३। राजा को अपनी रक्षा करने वाले ऐसे ही व्यक्तियों को करना चाहिए जो प्रांशु व्यायत–शूर दृढ भक्त निराकुल––सदा क्लेशों के सहन करने के स्वभाव वाले तथा हितैषी हों।१४।

अनाहार्यो नृशंसश्च दृढभक्तिश्च पार्थिवे ।
ताम्बूलधारी भवति नारी वाप्यथ तद्गुणा ।१५

षाड्गुण्यविधितत्त्वज्ञो देशभाषाविशारद: ।
सन्धिविग्रहक: कार्यो राज्ञा नयविशारद: ।१६

कृताकृतज्ञो भृत्यानां ज्ञेयः स्याद्देशरक्षिता ।
आयव्ययज्ञो लोकज्ञो देशोत्पत्तिविशारदः ।१७
सुरूपस्तरुणः प्रांशुर्दृढभक्तिः कुलोचितः ।
शूरः क्लेशसहश्चैव खड्गधारी प्रकीर्तितः ।१८
शूरश्च बलयुक्तश्च गजाश्वरथकोविदः ।
धनुर्धारी भवेद्राज्ञः सर्वक्लेशसहः शुचिः ।१९
निमित्तशकुनज्ञानी हयशिक्षाविशारदः ।
हयायुर्वेदतत्त्वज्ञो भुवोभागविचक्षणः ।२०
बलाबलज्ञो रथिनः स्थिरदृष्टिः प्रियम्वदः ।
शूरश्च कृतविद्यश्च सारथिः परकीर्तितः ।२१

राजा का ताम्बूलधारी अनाहार्य्य—अनृशंस और राजा में दृढ़ भक्ति वाला होना चाहिए अथवा उन्हीं गुणों वाली पुरुष न होकर ताम्बूलधारिणी नारी भी हो सकती है ।१५। राजा के द्वारा षाड्गुण्य विधि के तत्व का ज्ञाता—देश भाषा का विद्वान् और नीति शास्त्र का पण्डित, सन्धि एवं विग्रह करने वाला नियुक्त होना चाहिए । देश का रक्षिता भृत्यों के कृत और अकृत के जानने योग्य होवे । जो आय और व्यय का ज्ञाता होता है वह लोक का वेत्ता तथा देश की उत्पत्ति का मनीषी मनुष्य होना चाहिए । राजा का खगधारी सुन्दर रूप वाला—तरुण-प्रांशु-दृढ़ भक्ति वाला—समुचित कुल में समुत्पन्न-शूरवीर-क्लेशो के सहन करने वाला नियुक्त होना चाहिए । राजा का धनुषधारी ऐसा ही बनाना चाहिए जो शूर-बल से सम्पन्न-गज, अश्व और रथ के विषय में पूर्ण ज्ञान रखने वाला शुचि और सभी तरह के क्लेशों को सहन करने वाला हो । राजा को अपना सारथि बहुत ही सोचकर निम्न गुणों वाला नियुक्त करना चाहिए जो निमित्त और शकुनों के ज्ञान वाला हो—अश्वों की शिक्षा का विशारद—अश्वों के आयुर्वेद के तत्वों का ज्ञाता—भूभाग का पण्डित बलाबल का जानने वाला जोकि

रथी के विषय में भलीभाँति विज्ञता रखता हो। स्थिर दृष्टि वाला—प्रिय बोलने वाला—शूर-कृतविद्य हो।१६-२१।

अनाहार्यः रुचिर्दक्षश्चिकित्सतविदाम्वरः।
सूपशास्त्रविशेषज्ञः सूदाध्यक्षः प्रशस्यते।२२
सूदशास्त्रविधानज्ञाः परभेद्या कुलोद्गताः।
सर्वे महानसे धार्याः कृत्तकेशनखा नराः।२३
समः शत्रौ च मित्रे च धर्मशास्त्रविशारदः।
विप्रमुख्यः कुलीनश्च धर्माधिकरणो भवेत्।२४
कार्यास्तथाविधास्तत्र द्विजमुख्याः सभासदः।
सर्वदेशाक्षराभिज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः।२५
लेखकः कथितोराज्ञः सर्वाधिकरणेषु वै।
शीर्षोपेतान् सुसम्पूर्णान् समश्रेणिगतान् समान्।२६
आन्तरान्वै लिखेद्यस्तु लेखकः स वरः स्मृतः।
उपायवाक्यकुशलः सर्वशास्त्रविशारदः।२७
बह्वर्थवक्ता चाल्पेन लेखकः स्यान्नृपोत्तम!।
पुरुषान्तरतत्वज्ञाः प्राज्ञश्चाप्यलोलुपाः।२८

नृपति का सूपाध्यक्ष वही प्रशस्त होता है जो आहार्य न हो-रुचि-दक्ष-चिकित्सा के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ सूपशास्त्र की विशेषताओं का ज्ञाता होता है।२२। सूद शास्त्र के विधान के ज्ञाता—परों को भेदन के योग्य अच्छे कुल से उद्गत ऐसे ही मनुष्य सब महानस् में (रसोई में) रखने चाहिए जिनके केश और नाखून कटे हुए हों।२३। नृप का धर्माधिकारी पुरुष विप्रों में प्रमुख-कुलीन-धर्मशास्त्र का महान् विद्वान् और शत्रु तथा मित्र में समान रहने वाला होना चाहिए। वहाँ पर राजा की सभा में ऐसे ही सदस्य होने चाहिए जो सभासद द्विजों में मुख्य हों—समस्त देशों की भाषाओं के अभिज्ञ हों तथा सम्पूर्ण शास्त्रों के विशारद होवें। राजा के यहाँ वह लेखक परम श्रेष्ठ भी कहा गया है

जो शीर्षकों से समन्वित सुसम्पूर्ण---सम और समान श्रेणी में गत अक्षरों को लिखा करता है। हे नृपोत्तम ! जो बहुत ही थोड़े में बहुत बड़े अधिक अर्थ का कहने वाला हो--उपाय वाक्यों में कुशल हो और समस्त शास्त्रों का महापण्डित हो ऐसा ही लेखक होना चाहिए। जो दानदाता हों वे भी राजा के द्वारा ऐसे पुरुषों को नियुक्त किया जाना चाहिए जो दूसरे पुरुषों के अन्तर को पहिचानने वाले हों अर्थात् अन्यों के हृदय के तत्वों के ज्ञाता हों--प्रांशु एवं अलोलुप भी होवें।२४-२५।

धर्माधिकारिण: कार्या: जना दानकरा नरा: ।
एवम्विधास्तथा कार्या राज्ञा दौवारिका जना: ।२६
लोहवस्त्राजिनादीनां रत्नानाञ्च विधानवित् ।
विज्ञातफल्गुसाराणामनाहार्य: शुचि: सदा ।३०
निपुणश्चाप्रमत्तश्च धनाध्यक्ष: प्रकीर्तित: ।
आयद्वारेषु सर्वेषु धनाध्यक्षसमा नरा: ।३१
व्यवहारेषु च तथा कर्त्तव्या: पृथिवीक्षिता ।
परम्परागतो य: स्यादष्टाङ्गे सुचिकित्सिते ।३२
अनाहार्य: स वैद्य: स्यात् धर्मात्मा च कुलोद्गत: ।
प्राणाचार्य: स विज्ञेया वचनात्तस्य भूभुजा ।३३
राजन् ! राज्ञा सदा कार्यं पृथक् जनै: ।
हस्तिशिक्षाविधानज्ञो वनजातिविशारद: ।३४
क्लेशक्षमस्तथा राज्ञो गजाध्यक्ष: प्रशस्यते ।
तैरेव गुणैर्युक्त: स्वासनश्च विशेषत: ।३५

उपर्युक्त गुणों से विशिष्ट नर ही दान करने वाले धर्माधिकारी नियुक्त करने चाहिए। राजा के द्वारा इसी प्रकार के दौवारिकों की नियुक्ति करनी चाहिए जो लोहे-वस्त्र-अजिन आदि--रत्नों की विधि को भली भाँति जानते हों--क्या वस्तु फल्गु और क्या सार वाली है--

इसके ज्ञाता अनाहार्य-सदा शुचि-निपुण और अप्रमत्त मनुष्य ही राजा के धन (कोश) का अध्यक्ष होना चाहिए । समस्त आयके द्वारों में धनाध्यक्ष के तुल्य ही नर नियुक्त होने चाहिए ।२६।३१। व्यवहारों में भी राजा को उसी प्रकार के मनुष्यों की नियुक्ति करनी चाहिए । जो अष्टांगों में भली भाँति चिकित्सा का ज्ञान रखता हो—परम्परा से समागत हो—धर्मात्मा अच्छे कुलमें समुत्पन्न हो और अनाहार्य हो वही पुरुष राजघर में वैद्य होने का अधिकारी होता है । राजा के द्वारा वरण से उसका वह प्राणाचार्य जानना चाहिये । हे राजन् ! राजा के द्वारा सदा जनों से पृथक यथा कार्य वन जातिका पण्डित और हाथियों की शिक्षा के विधान का ज्ञाता एवं क्लेशों के सहन करने में समर्थ ऐसा राजा का गजाध्यक्ष परम प्रशस्त माना जाता है और इन्हीं गुणों से समन्वित आने आसन वाला भी विशेष रूप के प्रशस्त होता है । ।३२-३५।

गजारोही नरेन्द्रस्य सर्वकर्मसु शस्यते ।
हयशिक्षाविधानज्ञश्चिकित्सितविशारदः ।३६
अश्वाध्यक्षो महीभर्त्तुः स्वासनश्च प्रशस्यते ।
अनाहार्यश्च शूरश्च तथा प्राज्ञः कुलोद्गतः ।३७
दुर्गाध्यक्षः स्मृतो राज उद्युक्तः सर्वकर्मसु ।
वास्तुविद्याविधानज्ञो लघुहस्तो जितश्रमः ।३८
दीर्घदर्शी च शूरश्च स्थपतिः परिकीर्तितः ।
यन्त्रमुक्ते पाणिमुक्ते विमुक्ते मुक्तधारिते ।३९
अस्त्राचार्यो निरुद्वेगः कुशलश्च विशिष्यते ।
वृद्धः कुलोद्गतः सूक्तः पितृपैतामहः शुचिः ।४०
राज्ञामन्तः पुराध्यक्षो विनीतश्च तथेष्यते ।
एवं सप्ताधिकारेषु पुरुषाः सप्त ते पुरे ।४१

परीक्ष्य चापिकुर्या: स्यू राजा सर्वेषु कर्मसु ।
स्थापनाजातितत्वज्ञ: सततं प्रतिजाग्रता ।४२

राजा का गज पर समारोहण करने वाला सभी प्रकार के कर्मों में प्रशंसनीय होता है । अश्वों की शिक्षा के विधान को जानने वाला अध्यक्ष और स्थासन प्रशस्त माना जाता है । अनाहार्य और शूर तथा प्राज्ञ एवं अच्छे कुल में उत्पन्न राजा का दुर्ग का अध्यक्ष कहा गया है जो सभी प्रकार के कर्मों में उद्युक्त रहा करता है । वास्तु कला की विद्या में महा पण्डित, हलके हाथ वाला, श्रम को जीत लेने वाला, दीर्घदर्शी और शूरस्थपति कीर्त्तित किया गया है । यन्त्र मुक्त में, पाणि मुक्त में, विमुक्त में और मुक्त धारित में अस्त्राचार्य उद्वेग से रहित एवं कुशल विशिष्ट हुआ करता है । पिता-पितामह से चले जाने वाला पवित्र-वृद्ध तथा कुलीन मुक्त एवं विनीत राजाओं का अन्त:पुर का अध्यक्ष अभीष्ट हुआ करता है । इस प्रकार से इन सात अधिकार के पदों पर पुर में सात पुरुष राजा के द्वारा भली भाँति परीक्षा करके अधिकार के योग्य नियुक्त करना चाहिये जो कि सभी कर्मों में उपयुक्त होवें और सभी कर्मों में निरन्तर प्रतिजाग्रत और जातिके तत्वके ज्ञाता को इनका स्थापन करना चाहिए ।३६-४२।

राज्ञ: स्यादायुधागारे दक्ष: कर्मसु चोद्यत: ।
कर्माण्यपरिमेयानि राज्ञो नृपकुलोद्वह ! ।४३
उत्तमाधममध्यानि बुद्ध्वा कर्माणि पार्थिव: ।
उत्तमाधममध्येषु पुरुषेषु नियोजयेत् ।४४
नरकर्मविपर्यासाद्राजा नाशमवाप्नुयात् ।
नियोगं पौरुषं भक्ति श्रुतं शौर्यं कुलं नयम् ।४५
ज्ञात्वा वृत्तिर्विधातव्या पुरुषाणां महीक्षिता ।
पुरुषान्तविज्ञानतत्वसारनिबन्धनात् ।४६
बहुभिर्मन्त्रयेत्कामं राजा मन्त्रं पृथक् पृथक् ।

मन्त्रिणामपि नो कुर्यान्मन्त्रिमन्त्रप्रकाशनम् ।४७
क्वचिन्न कस्य विश्वासो भवतीह सदा नृणाम् ।
निश्चयस्तु सदा मन्त्रे कार्यं एकेन सूरिणा ।४८
भवेद्वा निश्चयावाप्तिः परबुद्ध्युपजीवनात् ।
एकस्यैव कार्यंभर्तुर्भूयः कार्यो विनिश्चयः ।४९

नृपति के आयुधों के आगार में ऐसा ही व्यक्ति नियुक्त किया जाना चाहिये जो दक्ष हो और सभी कर्मों में उद्यत रहता हो। हे नृप कुलोद्वह ! राजा के यहाँ उसके अपरिमेय कर्म हुआ करते हैं। पार्थिव का कर्त्तव्य है कि कर्मोंकी उत्तम-मध्यम और अधम श्रेणियोंको समझ कर ही उत्तम-मध्यम-अधम पुरुषों में से तदनुसार ही पुरुषों को नियोजित करे। यदि उत्तम कर्म में मध्यम और मध्यम कर्म में उत्तम पुरुष की विपर्यास मे नियुक्ति की जावेगी तो इस विपरीतता से नृप का नाश हो जायगा राजा को नियोग, पौरुष, भक्ति, श्रुत, शौर्य, कुल और नय इन सबको भली भाँति समझ बूझकर ही पुरुषोंकी वृत्तिका विधान करना चाहिए और दूसरे पुरुषों के विज्ञान एवं तत्वसार के विवर्धन से ही नियुक्ति करने की नितान्त आवश्यकता होती है ।४३-४६। राजा को चाहिये कि वह पृथक-पृथक बहुत से लोगों से स्वेच्छया मन्त्रणा करे और अपने मन्त्रियों से भी अपने मन्त्र का प्रकाशन कभी नहीं करना चाहिये ।४७। इस संसार में राजाओं का कहीं पर भी किसी का विश्वास नहीं हुआ करता है और सदा किसी भी एक सूरि से अपने विचारणीय मन्त्र में निश्चय कर लेना चाहिये। अथवा राजा को अपने निश्चय की प्राप्ति पर बुद्धि के उपजीवन से किसी भी एक से ही हो जावे तो भी पुनः उसका विशेह अवश्य ही अन्यों के द्वारा भी करना चाहिये ।४८-४९।

ब्राह्मणान् पर्युपासीत त्रयीशास्त्रसुनिश्चितान् ।
नासच्छास्त्रवतो मूढास्ते हि लोकस्य कण्टकाः ।५०

वृद्धान् हि नित्यं सेवेत विप्रान् वेदविदः शुचीन् ।
तेभ्यः शिक्षेत विनयं विनीतात्मा च नित्यशः ।५१
समग्रां वशगां कुर्य्यात् पृथिवीं नात्र संशयः ।
वहवो विनयाद्भ्रष्टा राजानः सपरिच्छदाः ।५२
वनस्थाश्चैव राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे ।
त्रैविद्येभ्यस्त्रीविद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ।५३
आन्वीक्षिकीं त्वात्मविद्याम्वार्त्तारम्भांश्च लोकतः ।
इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम् ।५४
जितेन्द्रियोहि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ।
यजेत राजा वहुभिः क्रतुभिश्च सदक्षिणैः ।५५
धर्मार्थं चैव विप्रेभ्यो दद्याद्भोगान्धनानि च ।
साम्वत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद्वलिम् ।५६

राजा का परम कर्तव्य है कि वह ऐसे ही ब्राह्मणों की उपासना करे जो वेदत्रयी-समस्त शास्त्रोंमें सुनिश्चय वाले हों तथा असत् शास्त्रों वाले एवं मूढ़ न हों । मूढ़ तो सर्वदा लोक के लिए कण्टक ही हुआ करते हैं ।५०। विनीत आत्मा वाले नृप को नित्य ही वृद्ध-वेदों के वेत्ता और परम शुचि विप्रों का सेवन करना चाहिए और उनसे ही नित्य विनय की शिक्षा का ग्रहण भी करना चाहिए।५१। इस तरह से विनय की शिक्षा सर्वदा ग्रहण करने वाला राजा सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने वश-गामिनी कर लिया करता है—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है । बहुत से नृपवृन्द सपरिच्छद होते हुए भी केवल-अविनय के कारण ही अपने राज शासन कर्म से भ्रष्ट हो जाया करते हैं ।५२। वन में स्थित रहने वाले भी केवल विनय होने के कारण से ही राज्यों को प्राप्त कर चुके हैं । जो लोग त्रयी विद्या के महामनीषी हैं उनसे त्रयी विद्या को—लोक से वार्त्तारम्भों को—और इन्द्रियों के-विजय में योग को अहर्निश

सीखने में समान्वित होना चाहिए ।५३-५४। जो राजा इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखकर जितेन्द्रिय होता है वह अपनी प्रजा को वश में रख सकता है । राजा का परम कर्त्तव्य है कि वह दक्षिण से संयुक्त बहुत से क्रतुओं के द्वारा यजन किया करे । धर्म और अर्थ के लिये विप्रोंको भोग एवं धनों का दान देना चाहिए । प्रति सम्वत्सरों तथा मासों के हिसाब से उसे राष्ट्रों से बलि का आहरण करना चाहिए ।५५-५६।

स्यात् स्वाध्यायपरोलाके बर्तेत पितृबन्धुवत् ।
आवृत्तानां गुरुकुलात् द्विजानां पूजको भवेत् ।५७
नृपाणामक्षयो ह्येष विधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते ।
ततस्तेनानघा मित्रा हरन्ति न विनश्यति ।५८
तस्माद्राज्ञा विधातव्यो ब्राह्मो वै ह्यक्षयो विधिः ।
समोत्तमाधमे राजा ह्याहूय पालयेत्प्रजाः ।५९
न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं व्रतमनुस्मरन् ।
संग्रामेस्वनिवर्तित्वं प्रजानां परिपालनम् ।६०
शुश्रूषा ब्राह्मणानाञ्च राज्ञां निश्रेयसम्परम् ।
कृपणानाथवृद्धानां विधवानाञ्च पालनम् ।६१
योगक्षेमञ्च वृत्तिञ्च तथैव परिकल्पयेत् ।
वर्णाश्रमव्यवस्थानं तथा कार्यं विशेषतः ।६२
स्वधर्मं प्रच्युयान् राजा स्वधर्मे स्थपयेत्तथा ।
आश्रमेषु तथा कार्यमन्नं तैलञ्च भोजनम् ।६३

नृप को लोक में सर्वदा स्वध्याय परायण होना चाहिए और प्रजाजनों में सबके साथ तदनुकूल पिता एवं बन्धु के तुल्य ही व्यवहार करे । जो द्विज गुरुकुलों से अपनी अवधि पूर्ण कर वापिस आवें उनकी पूजा राजा को करनी चाहिए ।५७। राजाओं के लिए यह विधि अक्षय एवं ब्राह्म कही जाती है । इससे वह अनघ मित्रोंका हरण किया करते हैं तथा कभी विनाश को प्राप्त नहीं होता है । अतएव राजा को इस ब्राह्म

अक्षय विधि को करना चाहिए। राजा का कर्तव्य है कि वह सम—उत्तम और अधमों के द्वारा समाह्वान कर प्रजाजनों का पालन किया करे।५८-५९। नृप को कभी भी अपने क्षत्रियों के व्रत एवं धर्म का स्मरण करते हुए संग्राम से मुँह नहीं मोड़ना चाहिए। संग्रामों से अनिवृत होना भी प्रजा का पूर्ण परिपालन ही होता है। ब्राह्मणों की सुश्रूषा राजाओं के कल्याण करने वाली परम श्रेय ही होती है। राजा का कर्त्तव्य है कि जो कृपण—अनाथ—वृद्ध एवं विधवा हों उनका भली भाँति पालन करे और उनका योग क्षेम तथा वृत्ति की परिकल्पना कर देवे। विशेष रूप से वर्णों एवं आश्रमों की व्यवस्था का कार्य सम्पन्न करना राजा का नितान्त आवश्यक कार्य है। जो मनुष्य अपने धर्म को त्याग करके कर्त्तव्य से च्युत हो गये हैं उनको पुनः अपने उचित धर्म के मार्ग पर राजा को स्थापित करना चाहिए। जो आश्रम वासी हैं उनके आश्रमोंमें अन्न—तेल और भोजन आदि की व्यवस्था नृप को ही कर देनी चाहिए।६०-६३।

स्वयमेवानयेद्राजा स क्रमान्नावमावयेत्।
तापसे सर्वकार्याणि राज्यमात्मात्मनमेवच।६४
निवेदयेत्प्रयत्नेन देववच्चिरमर्चयेत्।६५
द्वे प्रज्ञे वेदितव्ये च ऋज्वी वक्रा च मानवैः।६६
गूहत्कर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः।
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नाति विश्वसेत्।६७
विवासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति।
विश्वासयेच्चाप्यपरतस्तत्त्वभूतेन हेतुना।६८
बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमे।
वृकवच्चापि लुम्पेत शशवच्च विनिक्षिपेत।६९
दृढप्रहारी च भवेत् तथा शूकरवन्नृपः।
चित्राकारच शिखिवद्दृढभक्तस्तथा श्ववत्।७०

आश्रमों में जो आवश्यक वस्तुएँ हों उनकी व्यवस्था राजा को स्वयं ही आनयन करनी चाहिए। जो सत्कार करने के योग्य पुरुष हैं उनका कभी भूलकर भी राजा को अपमान नहीं करना चाहिए। राजा को अपने समस्त कार्य्य—राज्य और अपने आपको भी तपस्वियों के लिए समर्पित कर देना चाहिए और प्रयत्न पूर्वक निवेदन करके देवों की भाँति ही चिरकाल पर्यन्त उनकी अभ्यर्चना करे। मनुष्यों के द्वारा दो प्रकार की बुद्धियों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए जो कि ऋज्वी और वक्रा नाम वाली कही जाया करती हैं। जो वक्रा बुद्धि है उसका ज्ञान प्राप्त करके उसे कभी भी सेवन नहीं करना चाहिए। जब भी वह आकर वक्रा बुद्धि उपस्थित हो तो उसका प्रतिबाध कर देना चाहिए। ऐसे ढङ्ग से रहना चाहिए कि कोई भी दूसरा इसके छिद्र को न जान सके और दूसरे के छिद्र को स्वयं समझ ले।६४-६६। अपने गुप्त अङ्गों की भाँति ही अपने कर्म को गोपनीय रखना चाहिए तथा अपने आपके छिद्र की रक्षा करे। जो पुरुष विश्वास करने के योग्य नहीं है उस पर कभी विश्वास न करे किन्तु जो विश्वास का पात्र हो उस पर भी अत्य-धिक पूर्ण विश्वास नहीं करना चाहिए। विश्वास के घात से जो भय समुत्पन्न होता है वह मूलों का भी छेदन कर दिया करता है। तत्वमूल हेतु से दूसरे को भी विश्वास दिला देना चाहिए।६७-६८। बगुला की भाँति अर्थों का चिन्तन करे और सिंह के समान पराक्रम से यत्न करे। वृक (भेड़िया) के तुल्य लुप्त होकर छिप जावे तथा शश के सदृश विनिक्षेप करने वाला होवे। नृप को एक शूकर के समान दृढ़ प्रहार करने वाला होना चाहिए। शिखि के तुल्य चित्रकार तथा कुत्ते के तुल्य दृढ़ भक्ति वाला होना चाहिए।६९-७०।

तथा च मधुराभाषी भवेत्कोकिलवन्नृपः।
काकशङ्की भवेन्नित्यमज्ञातवसतिं वसेत्।७१
नापरीक्षितपूर्वञ्च भोजनं शयनं व्रजेत्।

वस्त्रं पुष्पमलङ्कारं यच्चान्यन्मनुजोत्तम ! ।७२
न गाहेज्जनसम्बाधं न चाज्ञातजलाशयम् ।
अपरीक्षितपूर्वञ्च पुरुषैराप्तकारिभिः ।७३
नारोहेत्कुञ्जरं व्यालं नादान्तं तुरगं तथा ।
नाविज्ञातां स्त्रियं गच्छेन्नैव देवोत्सवे वसेत् ।७४
नरेन्द्रलक्ष्म्या धर्मज्ञ त्राता यत्तो भवेन्नृपः ।
सद्भृत्याश्च तथा पुष्टा ततं प्रतिमानिताः ।७५
राज्ञा सहायाः कर्तव्याः पृथिवीं जेतुमिच्छता ।
यथार्हञ्चाप्यसुभृतो राजा कर्मसु योजयेत् ।७६
धर्मिष्ठान् धर्मकार्येषु शूरान् संग्रामकर्मसु ।
निपुणानर्थकृत्येषु सर्वत्रैव तथा शुचीन् ।७७

नृप को कोकिल के समान मधुर आभाषण करने वाला होना चाहिए । जो वसति अज्ञात है उसी में निवास करना चाहिए । राजाको कौए के तुल्य शंकायुक्त रहना चाहिए । बिना परीक्षा किए हुए कभी भी राजा को भोजन एवं शयन नहीं करना चाहिए । हे मनुजोत्तम ! इसी भाँति से पहिले परीक्षा करके ही वस्त्र-पुष्प-अलंकार तथा अन्य वस्तु को उपयोग में लाना चाहिए ।७१-७२। किसी भी जन सम्बाध का गाहन न करे और जो जलाशय अज्ञात है उसमें भी उतर का अवगाहन राजा को नहीं करना चाहिए । इन सबकी परीक्षा भी आप्तकारी पुरुषों के द्वारा ही पहिले करा लेनी चाहिए। राजा का कर्त्तव्य है कि जिसका पहिले अच्छी तरह से ज्ञान किया गया हो ऐसे गज—व्याल तथा अदान्त अश्व पर समारोहण नहीं करे । जिस स्त्री के विषय में पूर्णज्ञान प्राप्त न कर लिया जावे उसका गमन नृप को नहीं करना चाहिए और देवोत्सव में कभी भी निवास न करे । हे धर्मज्ञ ! क्योंकि नृप नरेन्द्र लक्ष्मी का ज्ञाता होता है उसको अपने सत् भृत्यों को सर्वदा परिपुष्ट और प्रतिमानित रखना चाहिए । जो राजा इस समर भूमिके ऊपर जय

प्राप्त करने की इच्छा रखता है उसको चाहिए कि अपने सहायता करने वाले लोगों को बनावें। राजा को उचित योग्यता रखने वाले प्राण-धारियों को ही कर्मों में योजित करना चाहिए।७३-७६। जो पुरुष परम धर्मिष्ठ हों उनको धर्म के कार्यों में और जो अतीव शूरवीर हों उन्हें संग्राम के कार्यों में एवं जो परम निपुण हों उन्हें अर्थ सम्बन्धी कृत्यों में और जो पवित्र हों उनको ही सभी कर्मों में योजित करना चाहिए।७७।

स्त्रीषु षण्ढं नियुञ्जीत तीक्ष्णं दारुणकर्मसु।
धर्मे चार्थे च कामे च नृपे च रविनन्दन !।७८
राजा यथार्हं कुर्याच्च उपधाभिः परीक्षणम्।
समतीतोपदान् भृत्यान् कुर्याच्छस्तवनेचरान्।७९
तत्पादान्वेषणो यत्तांस्तदध्यक्षांस्तु कारयेत्।
सर्वंमादीनि कर्माणि नृपैः कार्याणि पार्थिव।८०
सर्वथा नेष्यते राज्ञस्तीक्ष्णोपकरणक्रमः।
कर्माणि पापसाध्यानि यानि राज्ञो नराधिप !।८१
सन्तस्तानि न कुर्वन्ति तस्मात्तानि त्यजेन्नृपः।
नेष्यतेपृथिवीशानातीक्ष्णोपकरणाक्रिया।८२
यस्मिन् कर्मणि यस्य स्याद्विशेषेण च कौशलम्।
तस्मिन् कर्मणि तं राजा परीक्ष्य विनिवेशयेत्।८३
पितृपैतामहान् भृत्यान सर्वकर्मसु योजयेत्।
विनादायादकृत्येषुपरीक्षा स्वकृतान्तरान्।८४

स्त्रियों से सम्बन्धित सभी कार्यों में नपुंसक पुरुष की नियुक्ति करे तथा जो अत्यन्त दारुण कर्म हों उनमें तीक्ष्ण प्रकृति वाले पुरुष को रखे। हे रविनन्दन ! धर्म—अर्थ—काम और नय में राजा को उप-धाओं के द्वारा भली भाँति परीक्षण करके ही जो जिस कार्य के करने की क्षमता रखता हो उसी की उसमें नियुक्ति करनी चाहिए। समतीतो-

पद चरों को शस्तवकन में भृत्य बनावे ।७८-७६। उनके पादान्वेषण करने वाले उनके अध्यक्षों को भी नियोजित करे । इसी प्रकार के सभी कर्मों नृप के द्वारा पूर्ण करना चाहिए । हे पार्थिव ! राजा का सर्वथा तीक्ष्ण उपकरण का क्रम अभीष्ट नहीं हुआ करता है । हे नराधिप ! राजा के जो कुछ ऐसे कर्म्म होते है जो कि पापों द्वारा साध्य हुआ करते हैं सन्त पुरुष उनको कभी नहीं किया करते हैं । अतएव राजा का कर्त्तव्य है कि उनको त्याग देवे । राजाओं को तीक्ष्ण उपकरणों की क्रिया कभी भी अभीष्ट नहीं हुआ करती है । जिस कर्म्म में जिस पुरुष की विशेष रूप से कुशलता हो उस कर्म्म में राजा को उसकी परीक्षा करके ही उस पुरुष का विनिवेश करना उचित होता है । जो ऐसे भृत्य हैं कि उनके और अपने पिता—पितामह के समय से ही चले आने वाले हैं उनको सभी प्रकार के कर्मों में नियुक्त कर देना चाहिए । स्वकृतान्तरों को दायाद कृत्यों में परीक्षा के बिना भी नियुक्त कर देवें ।८०-८४।

नियुञ्जीत महाभाग ! तस्य ते हितकारिण: ।
परराजगृहात्प्राप्तान् जनसंग्रहकाम्यया ।८५

दुष्टान् वाप्यथवादुष्टान् आश्रयीत प्रयत्नत: ।
दुष्टं विज्ञाय विश्वासं न कुर्यात्तत्रभूमिप: ।८६

वृत्तिं तस्यापि वर्तेत जनसंग्रहकाम्यया ।
राजा देशान्तरप्राप्तं पुरुषं पूजयेद् भृशम् ।८७

मामयं देशसम्प्राप्तो बहुमानेन चिन्तयेत् ।
कामं भृत्यार्जनं राजा नैव कुर्यान्नराधिप ।८८

न च वा संविभक्तांस्तान् कुर्यात्कथञ्चन ।
शत्रवोऽग्निर्विषं सर्पो निस्त्रिंश इति चिन्तयेत् ।८९

भृत्या मनुजशार्दूल ! रुषिताश्च तथैकत: ।
तेषां चारेण चारित्रं राजा विज्ञाय नित्यश: ।९०

हे महाभाग ! जन-संग्रह की कामना से दूसरे राज गृह से प्राप्त हुए उसके उन हितकारियों को नियुक्त करना चाहिए। दुष्ट हों अथवा अदुष्ट हों प्रयत्न से उनको आश्रय देवे। राजा को दुष्ट को जानकर उसका विश्वास नहीं करना चाहिए। जन—संग्रह की कामना से उसकी वृत्ति कर देनी चाहिए। राजा को अन्य देशों से प्राप्त हुए पुरुष की अत्यधिक पूजा करनी चाहिए ।८५-८६-८७। यह मेरे देश में प्राप्त हुआ है अतएव उसके विषय में बहुमान चिन्तन करना चाहिए ! हे नराधिप ! राजा को इच्छापूर्वक भृत्यार्जन नहीं करना चाहिए ।८८। उन भृत्यों को किसी भी प्रकार से संविभक्त नहीं करे। शत्रुओं को अग्नि—विष—सर्प और निस्त्रिंश ऐसा ही चिन्तन करना चाहिए ।८९। हे मनुज शार्दूल ! जो भृत्य दूषित हो जावें उनके विषय में एक ओर से राजा को चारों के द्वारा नित्य ही चरित्र का विशेष ज्ञान करते रहना चाहिये ।९०।

गुणिनां पूजनं कुर्यात् निर्गुणानाञ्च शासनम् ।
कथिताः सततं राजन् ! राजानश्चारचक्षुषः ।९१
स्वके देशे परे देशे ज्ञानशीलान् विचक्षणाम् ।
अनाहार्यान् क्लेशसहान्नियुञ्जीत तथा चरान् ।९२
जनस्याविदितान् सौम्यान् तथा ज्ञातान् परस्परम् ।
वणिजो मन्त्रकुशलान् सांवत्सरचिकित्सकान् ।९३
तथा प्रव्राजिताकारांश्चारान् राजा नियोजयेत् ।
नैकस्य राजा श्रद्दध्यात् चारस्यापि सुभाषितम् ।९४
द्वयोः सम्बन्धमाज्ञाय श्रद्दध्यान्नृपतिस्सदा ।
परस्परस्याविदितौ यदि स्याताञ्च तावुभौ ।९५
तस्माद्राजा प्रयत्नेन गूढांश्चारान्नियोजयेत् ।
रागापरागौ भृत्यानां जनस्य च गुणागुणम् ।९६
सर्वं राज्ञां चरायत्तन्तेषु यत्नपरोभवेत् ।

कर्मणा केन मे लोके जनः सर्वोऽनुरज्यते ।६७
विरज्यते केन तथा विज्ञेयं तन्महीक्षिता ।
विरागजनकं लोके वर्जनीयं विशेषतः ।६८
तथा च रागप्रभवा हि लक्ष्म्यो राज्ञां मताभास्करवंशचन्द्र ।
तस्मात्प्रयत्नेन नरेन्द्रमुख्यैः कार्योऽनुरागो भुवि मानवेषु ।६६

राजा का कर्तव्य है कि जो गुणीजन हों उनका सत्कार एवं पूजन करे तथा जो गुणहीन हों उन पर शासन करे । हे राजन् ! राजा लोग निरन्तर चारों के चक्षुओं वाले ही कहे जाया करते हैं ।६१। अपने राष्ट्र तथा देश में तथा दूसरे देश में ज्ञान के शील वाले—विलक्षण-अनाहार्य और क्लेश सहचरों की नियुक्ति करनी चाहिए ।६२। राजा का कर्त्तव्य है कि ऐसे गुप्तचरों को नियुक्त करे जिनको साधारणतया मनुष्य नहीं जानते हों—सौम्य—परस्पर में ज्ञात—वणिज मन्त्र में कुशल—साम्वत्सर चिकित्सक—प्रव्राजित (साधु-संन्यासियों) के आकार अर्थात् वेष—भूषा वाले हों । राजा को किसी भी एक गुप्तचर के कथन पर भी श्रद्धा कभी नहीं कर लेनी चाहिए ।६३-६४। जब दो चार उसी एक विषय का समान रूप से प्रतिपादन करें तभी राजा को विश्वास करना चाहिए किन्तु दोनों के सम्बन्ध को पहिले समझ कर ऐसा करे । यदि वे दोनों भी परस्परमें अविदित हों तो उनके सम्बन्ध को जान लेना बहुत-ही आवश्यक है । इसी कारण से राजा को अत्यन्त गूढ़ चारों की नियुक्ति करना उचित है । भृत्यों के राग और अपराग तथा जनोंके गुण और अवगुण को जान लेना सब कुछ गुप्तचरों के ही (राजाओं का) अधीन होता है अतएव राजाओं को उनके विषय में यत्न परायण होना ही चाहिए । राजा का परम कर्त्तव्य यही है कि वह यह सर्वदा जानता-समझता रहे कि मेरे किस कर्म्म से लोकमें सब लोग में अनुरञ्जित होते हैं और कौन-सा मेरा कर्म्म है जिससे लोगों को बुरा मालूम होता है जो लोगों में विराग समुत्पन्न करने वाला कार्य है । उसको पूर्ण रूप से वर्जित

कर देना चाहिए। हे भास्कर वंश के चन्द्र! राजाओं की लक्ष्मी राम से समुत्पन्न होने वाली हैं—ऐसा ही माना गया है। इस कारण से राजप्रमुखों को चाहिए कि प्रयत्न पूर्वक भूमण्डल में मानवों में राजाओं को भली भाँति अनुराग करना चाहिए।६५-६६।

—×—

६४—राजकृत्य वर्णन (१)

यथा न वर्तितव्यं स्यान्मनो राज्ञोऽनुजीविना।
तथा ते कथयिष्यामि निबोध गदता मम।१
राजा यत्तु वदेद्वाक्यं श्रोतव्यं तत्प्रयत्नतः।
आक्षिप्य वचनं तस्य न वक्तव्यं तथा वचः।२
अनुकूलं प्रियं तस्य वक्तव्यं जनसंसदि।
रहोगतस्य वक्तव्यमप्रियं यद्धितं भवेत्।३
परार्थमस्य वक्तव्यं समे चेतसि पार्थिव।
स्वार्थः सुहृद्भिर्वक्तव्यो न स्वयं तु कथञ्चन।४
कार्य्यातिपातः सर्वेषु रक्षितव्यः प्रयत्नतः।
नच हिंस्य धनं किञ्चित् नियुक्तेन च कर्मणि।५
नोपेक्ष्यस्तस्य मानश्च तथा राज्ञः प्रियो भवेत्।
राजश्चैव तथा कार्य्यं वेषभाषितचेष्टितम्।६
राजलीला न कर्तव्या तद्विष्टञ्च वर्जयेत्।
राज्ञः समोऽधिको वा न कार्य्योवेषी विजानता।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा राजा के अनुजीवी के द्वारा मन जिस प्रकार से नहीं बरतना चाहिए वही मैं आपको बतलाऊँगा। अब आप मुझसे इसको समझ लो। जिसको कि मैं कह रहा हूँ।१। राजा जो कुछ भी बचन कहे उसे प्रयत्न पूर्वक श्रवण कर लेना चाहिए। उसके

वचन पर आक्षेप करके फिर कुछ भी अपना वचन नहीं कहना चाहिए। ।२। जन संसद में उस नृप का प्रिय और अनुकूल ही वचन बोलना चाहिए। यदि कोई उसके हित को बतलाने वाला भी वचन कहता हो तो उसे चाहे वह अप्रिय भी हो उसी समय में उससे कहना चाहिए जब एकान्त में स्थित हो ।३। हे पार्थिव ! इसका परमार्थ चित्त के सम होने पर ही बोलना चाहिए - यदि अपना कोई स्वार्थ हो तो उसे स्वयं कभी भी न कहकर मित्रों के द्वारा ही कहलाना चाहिए ।४। सबमें कार्यातिपात प्रयत्न पूर्वक रक्षित रखना चाहिए। कर्म में नियुक्त होने पर कुछ भी धन नहीं मारना चाहिए ।५। उसके मान की कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। इसी प्रकार से मनुष्य राजा का प्रिय हो जाया करता है। राजा के तुल्य वेष—भाषित और चेष्टित जैसा भी हो वैसा ही स्वयं नहीं करना चाहिए ।६। राजा की लीला नहीं करे और उसका जो भी कुछ विद्विष्ट हो वह भी वर्जित कर देना चाहिए। राजा के ही समान अथवा उससे भी अधिक वेष अच्छी तरह से जानते हुए कभी नहीं करना चाहिए ।७।

द्यूतादिषु तथैवान्यत् कौशलं प्रदर्शयेत् ।
प्रदर्श्यकौशलं चास्य राजानन्तु विशेषयेत् ।८
अन्त:पुरजनाध्यक्षे वैरिदूतैर्निराकृत: ।
संसर्गं न व्रजेद्राजन् विना पार्थिवशासनात् ।९
निस्नेसताञ्चावमानं प्रयत्नेन तु गोपयेत् ।
यच्च गुह्यं भवेद्राज्ञो न तल्लोके प्रकाशयेत् ।१०
नृपेण श्रावितं यत्स्याद्वाच्यावाच्यं नृपोत्तम ! ।
नतत्संश्रावयेल्लोके तथा राज्ञोऽप्रियो भवेत् ।११
आज्ञाप्यमाने वान्यस्मिन् समुत्थाय त्वरान्वित: ।
किमहङ्करवाणीति वाच्योराजाविजानता ।१२
कार्यावस्थां च विज्ञाय कार्यमेव यथा भवेत् ।

सततं क्रियमाणेस्मिन् लाघवन्तु व्रजेद् ध्रुवम् ।१३
राज्ञः प्रियाणि वाक्यानि चात्यर्थं पुनः पुनः ।
महासुशीलस्तुभवेत् न चापि भृकुटीमुखः ।१४

उसी भाँति द्यूत (खेल) आदि में अन्य कौशल का प्रदर्शन करे और इसका कौशल प्रदर्शित करके राजा की विशेषता का प्रदर्शन करना चाहिए। हे राजन् ! राजा के शासन के बिना अन्त:पुर के जनाध्यक्षोंके साथ—शत्रु के दूतों के साथ और जो राजा के द्वारा निराकृत हो उनके साथ संसर्ग नहीं करना चाहिए ।८-९। स्नेह के अभाव को और अवमान को प्रयत्न के साथ गोपन करके रखना चाहिए और जो राजा का कोई भी गोपनीय विषय हो उसका भी कभी प्रकाशन नहीं करे। हे नृपोत्तम ! वाच्य तथा अवाच्य नृप के द्वारा जो भी श्रावित हो उसे लोक में कभी भी श्रावित न करे। ऐसा करने से राजा का वह अप्रिय हो जाया करता है। किसी भी दूसरे को आज्ञा देने पर भी शीघ्रता से स्वयं उठ कर राजा से यह कहना चाहिये कि क्या मैं इस कार्य्य का सम्पादन करलूँ—यही एक ज्ञाता पुरुष का कर्त्तव्य है ।१०-१२। कार्य की अवस्था को विशेष रूप से जानकर जैसा भी कार्य्य होवे उसको निरन्तर करते हुए भी लाघव निश्चय रूप से करे ।१३। राजा के प्रिय वाक्यों को अत्यधिक और बारम्बार नहीं कहे। राजा के समक्ष में महान् सुशील ही रहना चाहिए तथा कभी भृकुटियों को चढ़ाकर न रक्खे ।१४।

नातिवक्ता न निर्वक्ता न च मात्सरिकस्तथा ।
आत्मसम्भावितश्चैव न भवेत्तु कथञ्चन ।१५
दुष्कृतानि नरेन्द्रस्य न तु सङ्कीर्तयेत् क्वचित् ।
वस्त्रमस्त्रमलङ्कारं राज्ञा दत्तं तु धारयेत् ।१६
औदार्य्येण नु तद्देयमन्यस्मै भूतिमिच्छता ।
तत्रैवात्मासनं कार्यं दिवास्वप्नं न कारयेत् ।१७
नानार्ष्टिे तथाद्वारे प्रविशेत्तु कथञ्चन ।

न च पश्येत्तु राजानमयोग्यासु च भूमिषु ।१८
राज्ञस्तु दक्षिणे पार्श्वे वामे चोपविशेत्तदा ।
पुरस्ताच्च तथा पश्चादासनस्तु विगर्हितम् ।१९
जृम्भां निष्ठीवनङ्कासं कोपं पर्यस्तिकाश्रयम् ।
भृकुटि वान्तनूद्गारन्तत्समीपे विवर्जयेत् ।२०
स्वयं तत्र न कुर्वीत स्वगुणाख्यापनं बुधः ।
स्वगुणाख्यापने युक्त परमेव प्रयोजयेत् ।२१

राजा के सामने न तो अत्यधिक बोलने वाला ही रहे और न बिल्कुल न बोलने वाला मौन होकर ही रहे । मत्सरता से युक्त भी होकर न रहे तथा किसी भी प्रकार से आत्म सम्भावित भी नहीं रहना चाहिए ।१५। जो कुछ भी राजा के द्वारा किये हुए दुष्कृत हैं उनका कभी भी कहीं पर संकीर्तन नहीं करना चाहिए । जो भी कभी दैवात् राजा के द्वारा प्राप्त वस्त्र—अस्त्र और अलङ्कार हों तो उनको धारण करके रहना चाहिए ।१६। भूति के चाहने वाले को उदारता से उनको कभी दूसरे को नहीं दे डाले और वहीं पर अपना आसन रखना चाहिए तथा दिन में स्वप्न नहीं करे ।१७। जो द्वार या मार्ग अनिर्दिष्ट हो उसमें किसी भी प्रकार से प्रवेश नहीं करना चाहिए । अयोग्य भूमि में समवस्थित राजा को कभी नहीं देखना चाहिए । सर्वदा राजा के दक्षिण तथा वाम भाग में ही उपविष्ट होना चाहिए । राजा के आगे अथवा पीछे अपना आसन रखना गर्हित होता है ।१८-१९। राजा के समीप में जब भी कभी उपस्थित होवे तो मनुष्य को चाहिए कि जँभाई—थूक का थूकना-खाँसना-पर्यस्तिका (मसन्द) आदि का सहारा लेकर बैठना—भृकुटि चढ़ाना—वान्ति करना—डकार लेना इन सबका वर्जन कर देवे । बुध पुरुष को राजा के समक्ष में स्वयं अपने गुणों और ख्यापन अपने मुख से नहीं करना चाहिए प्रत्युत अपने गुणों के प्रख्यापन करने के लिये दूसरों को ही प्रयोजित करना चाहिए ।२०-२१।

हृदयं निर्मलं कृत्वा परां भक्तिमुपाश्रितैः ।
अनुजीविगणैर्भाव्यं नित्यं राजामतन्द्रितैः ।२२
शाठ्यं लौल्यं च पैशुन्यं नास्तिक्य क्षुद्रता तथा ।
चापल्यञ्च परित्याज्यं नित्यं राज्ञोऽनुजीविभिः ।२३
श्रुविद्यासुशीलैश्च संयोज्यात्मानमात्मना ।
राजसेवान्जतः कुर्याद् भूतयेभूतिवर्द्धनीम् ।२४
नमस्कार्याः सदा चास्य पुत्रवल्लभमन्त्रिणः ।
सचिवैश्चास्यविश्वासो न तु कार्यः कथञ्चन ।२५
अपृष्टश्चास्य न ब्रूयात् कामं ब्रूयात्तथा यदि ।
हितं तथ्यञ्च वचनं हितैः सह सुनिश्चितम् ।२६
चित्तञ्चैवास्य विज्ञेयं नित्यमेवानुजीविना ।
भर्त्तुराराधनं कुर्यांच्चित्तज्ञो मानवः सुखम् ।२७
रागापरागौ चैवास्य विज्ञेयौ भूतिमिच्छता ।
त्यजेद्विरक्तो नृपती रक्तवृत्तिन्तु कारयेत् ।२८
विरक्तः कारयेन्नाशं विपक्षाभ्युदय तथा ।
आशावर्द्धनकं कृत्वा फलनाशं करोति च ।२९
अकोपोऽपि सकोपाभः प्रसन्नोऽपि च निष्फलः ।
वाक्यं च समदं वक्ति वृत्तिच्छेदं करोति वै ।३०

जो राजाओं के अनुजीवीगण हों उनको अपना हृदय निर्मल करके परा भक्ति का उपाश्रय करते हुए नित्य ही अतन्द्रिय रहना चाहिए । राजा के अनुजीवियों को शठता–लौल्य–पैशुन्य–नास्तिकता–क्षुद्रता–चापल्य–इन दोनों का सर्वदा परित्याग कर देना चाहिए ।२२-२३। श्रुति-विद्या और सुशीलता के गुणों वाले पुरुषों को आत्मा के द्वारा अपनी आत्मा का संयोजित करके अन्ततः वैभव की प्राप्ति के लिए भूति के वर्धन करने वाले राजा की सेवा करनी चाहिए । राजा के पुत्र-वल्लभ व मन्त्रियों को सदा नमस्कार करना उचित है । सचिवों के द्वारा इसका किसी प्रकारसे

भी विश्वास नहीं करना चाहिए ।२४-२५। बिना कुछ पूछे हुए इससे भाषण न करे । यदि इच्छा पूर्वक बोले तो हितों के सहित अति सुनिश्चित हित और तथ्य वचन बोलना चाहिये ।२६। जो राजा के अनुजीवी हों उनको नित्य ही इसके चित्त की वृत्ति को जानते रहना चाहिये । चित्त की वृत्ति का ज्ञान रखने वाले मानव को सुख पूर्वक स्वामी का समाराधन करना चाहिए । विभूति के प्राप्त करने की इच्छा पुरुष को इस राजा के राग एवं अपराग को अच्छी तरह से जान लेना अत्यन्त आवश्यक है । इनको जानकर फिर त्याग करे । विरक्त नहीं रहे । नृरत्ति रक्त वृत्ति करावे । विरक्त नाश कराता है और विपक्ष का अभ्युदय कराता है । आशा की वृद्धि करके फल का नाश किया करता है । बिना काम वाला भी क्रोध से युक्त के समान होता है । प्रसन्न होता हुआ भी निष्फल है तथा मद से युक्त वाक्य बोलता है और वृत्ति छेदन कर देता है ।२७-३०।

प्रदेशवाक्यमुदितो न सम्भावयतेऽन्यथा ।
आराधनासु सर्वासु सुप्तवच्च विचेष्टते ।३१
कथासु दोषं क्षिपति वाक्यभंगं करोति च ।
लक्ष्यते विमुखश्चैव गुणसङ्कीर्तनेऽपि च ।३२
दृष्टिं क्षिपति चान्यत्र क्रियमाणे च कर्मणि ।
विरक्तलक्षणं चैतत् शृणु रक्तस्य लक्षणम् ।३३
दृष्ट्वा प्रसन्नो भवति वाक्यं गृह्णाति चादरात् ।
कुशलादिपरिप्रश्नं संप्रयच्छति चासनाम् ।३४
विविक्तदर्शने चास्य रहस्येनं न शङ्कते ।
जायते हृष्टवदनः श्रुत्वा तस्य तु तत्कथाम् ।३५
अप्रियाण्यपि वाक्यानि तदुक्तान्यभिनन्दते ।
उपायनञ्च गृह्णाति स्तोकमप्यादरात्तथा ।३६

कथान्तरेषु स्मरति प्रहृष्टवदनस्तथा।
अतिरक्तस्य कर्तव्या सेवा रविकुलोद्वह ! ।३७
मित्रं न चापत्सु तथा च भृत्या भजन्ति ये निर्गुणमप्रमेयम्।
निभुं विशेषेण च ते व्रजन्ति सुरेन्द्रधामामरवृन्दजुष्टम् ।३८

उदित हुआ प्रदेश वाक्य भी अन्यथा सम्भावित नहीं होता है और सब आराधनाओं में सुप्त की भाँति विचेष्टित किया करता है। कथाओं में दोषों का क्षेप किया करता है और वाक्य का भङ्ग करता है। गुणों के संकीर्त्तन करने पर भी विमुख के समान दिखलाई देता है। कर्मों के करने पर भी अन्यत्र दृष्टि डालता है—ये ही एक विरक्त पुरुषके लक्षण हुआ करते हैं। अब जो अनुरक्त होता है उसके लक्षणों का भी श्रवण करलो। देखकर परम प्रसन्न अनुरक्त हुआ करता है और जो भी वाक्य कहा जाता है उसे बड़े ही आदर से ग्रहण करता है। कुशल-क्षेम के प्रश्न आदि करता है और उपविष्ट होने के लिये आसन दिया करता है विविक्त दर्शन में और इसके एकान्त में इसकी शंका नहीं करता है। उसकी उस कथा को श्रवण करके प्रसन्न मुख हो जाया करता है ।३१-३५। उसके द्वारा कहे हुए अप्रिय वाक्यों को भी अभिनन्दित किया करता है तथा थोड़े से भी उपायन को बड़े आदर से ग्रहण करता है। अन्य कथाओं में प्रहृष्ट मुख वाला होकर स्मरण करता है। हे रवि-कुलोद्वह ! इस प्रकार के अनुरक्त की सेवा करनी चाहिए। आपत्ति के समयों में मित्र का उस प्रकार से नहीं जिस तरह भृत्यगण हैं वे अप्रमेय और निर्गुण की सेवा करते हैं। वे भृत्य देववृन्दों के द्वारा सेवित सुरेन्द्र के धाम को तथा विशेष रूप से विभु को प्राप्त किया करते हैं ।३६-३८।

—×—

९६—राजकृत्य वर्णन (२)

राजा सहायसंयुक्तः प्रभूतयवसेन्धनम् ।
रम्यमानतसामन्तं मध्यमन्देशमावसेत् ।१
वैश्यशूद्रजनप्रायमनाहार्यं तथापरैः ।
किञ्चिद्ब्राह्मणसंयुक्तं बहुकर्मकरन्तथा ।२
अदैवमातृकं रम्यमनुरक्तजनान्वितम् ।
करैरापीडितञ्चापि बहुपुष्पफलं तथा ।३
अगम्यं परचक्राणां तद्वासगहमापदि ।
समदुःखसुखं राज्ञः सततं प्रियमास्थितम् ।४
सरीसृपविहीनञ्च व्याघ्रतस्करवर्जितम् ।
एवंविधं यथालाभं राजा विषयमावसेत् ।५
तत्र दुर्गं नृपः कुर्यात् षण्णामेकतमं बुधः ।
धनुर्दुर्गं महीदुर्गं नरदुर्गं तथैव च ।६
वार्क्षं चैवाम्बुदुर्गं च गिरिदुर्गं च पार्थिव ! ।
सर्वेषामेव दुर्गाणां गिरिदुर्गं प्रशस्यते ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—राजा को अपने सहायकों से समन्वित होकर प्रभूत यवस और इन्धन वाले—रम्य एवं आनत सामन्तों वाले मध्यम देश में निवास करना चाहिए ।१। वह स्थल ऐसा होना चाहिए जिसमें राजा का निवास हो वैश्य और शूद्रजन बहुतायतसे रहते हों एवं दूसरों के द्वारा जो आहार्य न हो सके । राजा का निवास स्थल कुछ ब्राह्मणों से भी युक्त तथा बहुत कर्मों के करने वाला होवे ।२। अदैव मातृक—रम्य—अनुरञ्जित जनों से युक्त—करों से अपीड़ित तथा बहुत पुष्प एवं फलों वाला—पर (शत्रु) के चक्रों को अगम्य ऐसा आपत्ति काल में वास गृह होना चाहिए । सुख और दुःख में सम—निरन्तर राजा का प्रिय—सरीसृपों से विहीन—व्याघ्र और तस्करों से

रहित इस प्रकार के यथा लाभ देश में राजा को आना निवास करना चाहिए ।३-५। बुध राजा को वहाँ पर छै: प्रकार के दुर्गों में से एक तरह के दुर्ग की रचना करनी चाहिए । छै: प्रकार के दुर्गों के नाम ये हैं—धनुर्दुर्ग नर दुर्ग—वार्क्ष दुर्ग—अम्बुदुर्ग—और हे पार्थिव ! छठवाँ गिरि दुर्ग है । इन समस्त दुर्गों में गिरि दुर्ग सबसे प्रशस्त माना जाता है ।६-७।

दुर्गंच परिखोपेतं वप्राट्टालकसंयुतम् ।
शतघ्नीयन्त्रमुख्यैश्च शतशश्च समावृतम् ।८

गोपुरं सकपाटञ्च तत्र स्यात्सुमनोहरम् ।
सपताकङ्गजारूढो येन राजा विशेत्पुरम् ।९

चतस्रश्च तथातत्र कार्यास्त्वायतवीथयः ।
एकस्मिस्तत्र वीथ्यग्रे देववश्य भवेद्दृढम् ।१०

वीथ्यग्र च द्वितीये च राजवेश्म विधीयते ।
धर्माधिकरणं कार्यं वीथ्यग्रे च तृतीयके ।११
चतुर्थ वथ वीथ्यग्रे गोपुरञ्च विधीयते ।
आयतञ्चतुरस्रं वा वृत्तं वा कारयेत् पुरम् ।१२
मुक्तिहीनं त्रिकोणञ्च यवमध्यं तथैव च ।
आयतञ्चतुरस्रं वा वृत्तं वा कारयेत्पुरम् ।१३
अर्द्धचन्द्र प्रशसन्ति नदीतीरेषु तद्वसन् ।
अन्यत्तत्र न कर्तव्यं प्रयत्नेन विजानता ।१४

राजा का दुर्ग वप्र और अट्टालक से संयुक्त तथा परिखा (खाई) से उपेत—शतघ्नी (तोप) यन्त्रों में जो प्रमुख यन्त्र हैं उन सैकड़ों यन्त्रों से समावृत दुर्ग होना चाहिए । वहाँ पर सुमनोहर कपाटों से युक्त गोपुर होवे जिसमें पताकाऐं फहरा रही हों । वह ऐसा होना चाहिये जिसके द्वारा गज पर समारूढ होकर राजा पुर में प्रवेश करे ।८-९। उसमें चार लम्बी चौड़ी वीथियाँ निर्मित की हुई होवें और वहाँ पर एक वीथी

के अग्रभाग में परम सुदृढ़ देव का आलय होना चाहिए। दूसरे वीथी के अग्रभाग में राजा के रहने का वेश्म गृह निर्मित किया जाना चाहिए। तीसरी वीथी के अग्रभाग में धर्म का अधिकरण करना चाहिये और चतुर्थ वीथी के अगभाग में गोपुर विरचित करे। इस प्रकार से उस पुर को चौकोर—आयत और वृत्त कराना चाहिए। मुक्तिहीन—त्रिकोण—यवमध्य अथवा चौकोर और आयत वृत्त पुर की रचना करावे। नदी के तीर पर निवास करते हुए अर्द्ध चन्द्र की प्रशंसा किया करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रयत्नपूर्वक विशेष ज्ञाता को नहीं करना चाहिए। ।८-१०।

राज्ञा कोशगृहं कार्यं दक्षिणे राजवेश्मनः।
तस्यापि दक्षिणे भागे गजस्थानं विधीयते ।१५
गजानां प्राङ्मुखी शाला कर्तव्यावाप्यु दङ्मुखी।
आग्नेये च तथा भागे आयुधागारमिष्यते ।१६
महानसश्च धर्मज्ञ ! कर्मशालास्तथापराः।
गृहंपुरोधसः कार्यं वामतो राजवेश्मनः ।१७
मन्त्रिवेदविदाञ्चैव चिकित्साकर्त्तु रेवच।
तत्रैव च तथा भागे कोष्ठागारं विधीयते ।१८
गवां स्थानं तथैवात्र तुरगाणां तथैवच।
गत्तराभिमुखा श्रेणी तुरगाणां विधीयते ।१९
दक्षिणाभिमुखा वाथ परिशिष्टास्तु गर्हिताः।
तुरगास्ते तथा धार्याः प्रदीपैः सार्वरात्रिकैः ।२०
कुक्कुटान् वानराश्चैव मर्कटाश्च विशेषतः।
धारयेदश्वशालासु सवत्सां धेनुमेवच ।२१

राजा के निवास गृह के दक्षिण भाग में राजा को अपना कोषगृह बनाना चाहिए। उसके भी दक्षिण भाग में गजों के रहने का स्थान निर्मित करावे ।१५। गजशाला का मुख पूर्व अथवा उत्तर दिशा की

ओर करवाना चाहिए। आग्नेय भाग में आयुधों का आगार बनाना अभीष्ट होता है। हे धर्म्मज्ञ ! (रसोई घर (दूसरी कर्म शालाऐं और पुरोहित का ग्रह ये सब राजा के वेश्म के वाम भाग में निर्मित करावे। वहीं पर उसी भाग में मन्त्री—देववेत्ता और चिकित्सा करने वाले का गृह तथा कोष्ठागार भी निर्मित कराने चाहिये।१६-१८। यहाँ पर गौओं का स्थान—तुरंगों का स्थान करावे। तु गों की जो श्रेणी है वह उत्तर की ओर मुख वाली होनी चाहिए। अथवा दक्षिणाभिमुख हो। परिशिष्ट सभी गर्हित रही गयी है। वे तुरंग सम्पूर्ण रात्रि में जलने वाले प्रदीपों के साथ रखने चाहिये। उन अश्वशालाओं में कुक्कुटों—वानरों—मर्कटों को विशेष रूप से वत्स के सहित धेनु को भी रखना चाहिए।१९-२१।

अजाश्च धार्या यत्नेन तुरगाणां हितैषिणा।
गोगजाश्वादिशालासु तत्पुरीषस्य निर्गमः।२२
अस्तंगते न कर्तव्यो देवदेवे दिवाकरे।
तत्र तत्र यथास्थानं राजा विज्ञाय सारथीन्।२३
दद्यादावसथस्थानं सर्वेषामनुपूर्वशः।
योधानां शिल्पिनाञ्चैव सर्वेषामविशेषतः।
दद्यादावसथान् दुर्गे कालमन्त्रविदां शुभान्।
गोवैद्यानश्ववैद्यांश्च गजवद्यांस्तथैवच।२५
आहरेत भृशं राजा दुर्गे हि प्रबला रुजः।
कुशीलवानां विप्राणां दुर्गे स्थानं विधीयते।२६
न बहू नामतो दुर्गे विन कार्यं तथा भवेत्।
दुर्गे तेन कर्तव्या नानाप्रहरणान्विताः।२७
सहस्रघातिनी राजस्तेषु रक्षा विधीयते।
दुर्गे द्वाराणि गुप्तानि कार्याण्यपि च भभुजा।२८

अश्वों के हित चाहने वाले को यत्नपूर्वक अजाओं को भी वहाँ

पर रखना आवश्यक होता है। गौ-गज और अश्व आदि की शालाओं में उनके पुरीष (मल) का निर्गम (निकालना) देवों के देव भगवान् दिवाकर के अस्त हो जाने पर नहीं करना चाहिए। वहाँ-वहाँ पर स्थानों के अनुसार राजा विशेष रूप से समझ कर सारथियों की नियुक्ति करे तथा उन सबसे आनुपूर्वश: आवसथ (रहने का) स्थान भी देवे। योधाओं को परम शुभ आवसथ दुर्ग में देवे। राजा को चाहिए कि वह गौओं के वैद्य—अश्वों के वैद्य और गजों की चिकित्सा करने वाले लोगों को अच्छी तरह से अधिक संख्या में लाकर रक्खे क्योंकि दुर्ग में बीमारियाँ भी बहुत प्रबल हुआ करती हैं। कुशीलव विप्रों का दुर्ग में स्थान किया जाता है।२२-२६। दुर्ग में कार्य के बिना फालतू बहुतों को उस प्रकार से स्थान नहीं देवे। हे राजन् ! दुर्ग में अनेक प्रकार के प्रहरणों (शस्त्रों) से समन्वित सहस्र घातियों को नियुक्त करना चाहिए क्योंकि उनके द्वारा रक्षा की जाया करती है। राजा के द्वारा अपने दुर्ग में गुप्त द्वार भी निर्मित करा कर रखने चाहिए।२७-२८।

सञ्चयश्चात्र सर्वेषामायुधानां प्रशस्यते।
धनुषां क्षेपणीयानान्तोमराणां च पार्थिव: ।२६
शराणामथ खड्गाना कवचानां तथैव च।
लगुडानां गुडानाश्च हुडानां परिघै: सह ।३०
अश्मनाञ्च प्रभूतानां मुद्गराणां तथैव च।
त्रिशूलानां पट्टिशानां कुठाराणाञ्च पार्थिव ।३१
प्रासानाञ्च सशूलानां शक्तीनाञ्च नरोत्तम:।
परश्वधानां चक्राणां वर्मणाञ्चर्मभि: सह ।३२
कुद्दालक्षुरवेत्राणां पीठकानान्तथैव च।
तुषाणांचैव दात्राणामङ्गाराणाञ्च सचय: ।।३३

सर्वेषां शिल्पिभाण्डानां संचयश्चात्र चेष्यते ।
वादित्रणाञ्च सर्वेषामौषधीनान्तथैव च ।३४
यवसानां प्रभूतानामिन्धनस्य च सञ्चयः ।
गुडस्य सर्वतैलानां गोरसानान्तथैव च ।३५

यहाँ पर दुर्ग में सभी आयुधों का संग्रह रखना परम प्रशस्त होता है। पार्थिव को धनुषों का—क्षेपणीयों का और तोमरों का सञ्चय रखना आवश्यक है। शरों का—कवचों का-खड्गों का—लडों— हुड़ और परिघों का भी संग्रह करे। बहुत तादाद में पाषाणों का—मुद्गरों का—त्रिशूलों का—पट्टिशों का और हे पार्थिव कुठारों का भी संग्रह करना चाहिए।२९-३१। नरोत्तम को प्रास—सशूल—शक्ति—परश्वध—चक्र—चर्म के सहित वर्मों का भी वहाँ सर्ग में संग्रह होना उचित होता है। कुद्दाल—क्षुर—नेत्र—पीठक—तुष—दात्र और अंगारों का भी सञ्चय करे। सभी प्रकार के शिल्पियों के भाण्डों का सञ्चय भी दुर्ग में अभीष्ट होता है। सब तरह के वादित्र और सभी औषधियाँ तथा प्रभूत यवस और ईंधन का संचय वहाँ रक्खे। गुड़, सभी तरह के तैल और गोरसों का संग्रह दुर्ग में करना आवश्यक है। ।३२-३५।

वसानामथ मज्जानां स्नायुनामस्थिभिः सह ।
गोचर्मपटहानांच धान्यानान्तथैव च ।३६
तथैवाभ्रपटानांच यवगोधूमयोरपि ।
रत्नानां सर्ववस्त्रात्राणां लोहानायप्यशेषतः ।३७
कलापमुद्गमाषाणां चणकानान्तिलैः सह ।
तथा च सर्वशः स्यानां पांशुगोमययोरपि ।३८
शणसर्जंरसं भूर्जं जतुलाक्षा च टङ्कणम् ।
राजा संचिनुयाद्दुर्गे यच्चान्यदपि किंचन ।३९
कुम्भांश्चाशीविषैः कार्या व्यालसिंहादयस्तथा ।

मृगाश्च पक्षिगश्चैव रक्ष्यास्ते च परस्परम् ।४०
स्थानानि च विरुद्धानां सुगुप्तानि पृथक् पृथक् ।
कर्तव्यानि महाभाग ! यत्नेन पृथिवीक्षिता ।४१
उक्तानि चाप्यनुक्तानि राजद्रव्याण्यशेषतः ।
सुगुप्तानि पुरे कुर्याज्जनानां हितकाम्यया ।४२

राजा का परम कर्त्तव्य है कि वह वसा—मज्ज—अस्थियों के साथ, स्नायु—गोचर्म—पटह—सभी प्रकार के धान्य—अभ्रपट—यव—गोधूम (गेहूँ)—रत्न—सभी वस्त्र—सम्पूर्ण प्रकार के लौह—कलाप—मुद्ग—माष—(उर्द)—तिल—चना—सभी तरह के शस्य—पांसु-गोमय-शण—सर्जरस—भूर्ज-जतु-लाक्षा-टङ्कण—(सुहागा) और अन्य भी जो कुछ हो उन सबका सञ्चय दुर्ग में राजा को करना ही चाहिए। आशी-विषों के द्वारा कुम्भों को पूर्ण करे तथा व्याल—सिंह आदि मृग और पक्षिगण इन सबकी परस्पर में रक्षा करनी चाहिये ।४०। आपस में जो भी जीव विरोध रखने वाले हैं उनका अलग २ स्थान निर्मित करावे और अच्छी तरह उन्हें सुप्त रक्खे। हे महाभाग ! राजा को यत्न के साथ यह सभी कुछ करना चाहिए। जो बता दिये गये हैं और जो नहीं भी कहे गये हैं उन सम्पूर्ण राजद्रव्यों को पुर में सुगुप्त जनता के हित की कामना से रखना चाहिए ।४१-४२।

जीवकर्षभकाकोलमामलक्याटरूपकान् ।
शालपर्णी पृष्टिपर्णी मुद्गपर्णी तथैव च ।४३
माषमर्णी च मदद्वे सारिवेद्वे बलात्रयम् ।
वारा श्वसन्ती वृष्या च वृहती कण्टकारिका ।४४
शृङ्गी शृङ्गाटकी द्रोणी वर्हाभूदभरेणुका ।
मधुपर्णी विदार्येद्वे महाक्षीरा महातपाः ।४५
धान्वना मतुदेवाह्वा कटुकैरण्यकं विषः ।
पर्णी शताह्वा मृद्वीका फल्गु खर्जूरयष्टिका: ।४६

शुक्रातिशुक्रकाश्मर्यं छत्रातिच्छत्रवीरणाः ।
इक्षु रिक्षु विकाराश्च फाणिताद्याश्च सत्तम ।४७
सिंहो च सहदेवा च विश्वेदेवाश्वरोधकम् ।
मधुकं पुष्पहंसाख्या शतपुष्पा मधूलिका ।४८
शतावरीमधूकेच पिप्पलन्तालमेव च ।
आत्मगुप्ता कट्फलाख्यादार्विका राजशीर्षकी ।४६

एक राजा का परम कर्त्तव्य होता है कि सभी प्रकार की वन—स्पतियों का सञ्चत अपने पुर में न करे । उनमें कुछ नामों का उल्लेख यहाँ पर किया जाता है--जीव कर्षभ—काकोल—›मलकी—आटरूषक--शालपर्णी-पृष्ठ पर्णी--मुद्गपर्णी--माषपर्णी--मदद्व—सारिवा दोनों प्रकार की—तीनों बलाऐं—वारा--श्वसन्ती—वृष्या४वहुती--कष्ट कारिका--शृङ्गी--शृगारकी--द्रोणी—वर्षाभदर्भरेणुका--मधुपणी—दोनों विदारी--महाक्षीरा-महातपा—धन्वय—सहदेवी नाम धारिणी--कटुक--ऐरण्डक--विषपर्णी--शतानाम वाली—मृद्वीका—फल्गु—सर्जारयष्टिका--शुक्रातिशुक्रका-अश्मरी—छत्रातिछत्रका—वीरणा—इक्षु विकार—फाणिता आदि—सिंह—सहदेवी—विश्वेदेवा—अश्वरोधक—मधुक—पुष्पहंसानाम वाली—शत--पुष्पा—मधूलिका—शतावरी—मधूक—पिप्पल—ताल—-आत्मगुप्ता-कट्फला—दार्विका—राजशीर्षकी ।४३-४६।

राजसर्षपधान्याकमृष्यप्रोक्ता तथोत्कटा ।
कालशाकं पद्मबीजं गोवल्लो मधुवल्लिका ।५०
शीतपाकी कुवेराक्षी काकजिह्वोरुपुष्टिका ।
पर्वतत्रयुषौ चोभौ गुञ्जातकपुनर्नवे ।५१
कसेरु कारुकाश्मीरी बल्या शालकाकेसरम् ।
तुषधान्यानि सर्वाणि शमीधान्यानि चैव हि ।५२
क्षीरं क्षौद्रन्तथा तक्रं तैलं मज्जा वसा घृतम् ।
नोपश्चारिष्टकाक्षोड्वातायसामबाणकम् ।५३

एवमादीनि चान्यानि विज्ञेयो मधुरोगण: ।
राजा सञ्चिनुयात्सर्वं पुरे निरशेषत: ।५४
दाडिमाम्रातकौ चैव तिन्तिड़ीकाम्लवेतसम् ।
भव्यककंन्धुलकुचकरमर्द्दकरुषकम् ।५५
बीजपूरककण्डरे मालतीराजबन्धुकम् ।
कोलकद्वयपर्णानि द्वयोराम्नातयोरपि ।५६

राज सर्षप—धान्याक—मृष्यप्रोक्त—उत्कटा—काल शाक—पद्म बीज—गोवल्ली—मधुवल्लिका—शीतपाकी—कुबेराक्षी—काक जिह्वा—उत्पुष्पिका—पर्वत—वयुष—गुञ्जातक—तुनर्नवा दोनों—कसेरु—काश्मीरी—बल्या—शालूक—केसर—सब तुष धान्य—क्षीर क्षौद्र—तक्र—तैल—बसा—मज्जा—घृत—नाप—अरिष्टक—क्षोड वाताय—सामबाणक—इस प्रकार के धान्य मधुरोगण—इस सभी का पूर्ण रूप से सञ्चय राजा को करना आवश्यक है ।५०-५४। दाड़िम—आम्रातक—तिन्तिड़ीक—आम्लवेतस—भव्य कर्कन्धु—लकुच—करमर्द्द— करुषक—बीजपूरक—कण्डुर—मालती—राज—बन्धुक—दोनों कोलक पर्ण—दोनों आम्नात ।५५-५६।

पारावत नागरकं प्राचीनोलकमेव च ।
कपित्थामलकं चुक्रफलन्दन्तशठस्य च ।५७
आम्रवं नवनीतञ्च सौवीरकरुपोदके ।
सुरासवञ्च मद्यानि मण्डतक्रदधीनि च ।५८
शुक्लानि चैव सर्वाणि ज्ञेयमम्लगणं द्विज ।
एवमादीनि चान्यानि राजा सञ्चिनुयात्पुरे ।५९
सैन्धोद्भिदपाठेयपाक्यसामुद्रलोमकम् ।
कुप्यसौवचलविड़ बालकेय यवाह्वकम् ।६०
औवं क्षारं कालभस्म विज्ञेयो लवणो गण: ।
एवमादीनि चान्यानि राजा सञ्चिनुयात्पुरे ।६१

पिप्पली पिप्लीमूलचव्यचित्रकनागरम् ।
कुबेरकं मरिचकं शिग्रुं भल्लातसर्षपाः ।६२
कुष्ठाजमोदाकिणिहोहिङ्गुमूलकधान्यकम् ।
कारवीकुञ्जिका याज्या सुमुखा कालमालिका ।६३

परावत—नागरक—प्राचीनोलक—कपित्थ—आमलक—चुक्रफल—दन्तशठ—जामबव—नवनीत—सौवीरक—रुषोदक—सुरा—आसव—मद्य—मण्ड—तक्र—दधि—सब शुक्ल पदार्थ हे द्विज ! और अम्लगण इस प्रकार के सभी पदार्थों का सञ्चय राजा को अपने पुर में करना चाहिए । सैन्धोद्भिद—पाठेय—पाक्य—सामुद्र—लोमक—कुप्य—सौवर्चल—विड़—बालकेय—यवाह्वक—और्व—क्षार—कालभस्म लवण गण—इस भाँति के पदार्थों का पुत्र में संग्रह राजा को आवश्यक है । पिप्पली—पिप्पली मूल—चव्य—चित्रक—नागर—कुबेरक—मरिच—शिग्रु—भल्लातक—सर्षप—कुष्ठ—अजमोद—आकिणि—हिङ्गु—मूलक—धान्यक—कारवी—कुञ्जिका—याज्या—सुमखा—काल मालिका—।५७-६३।

फणिज्जकोथलशुनं भूस्तृणां सुरसन्तथा ।
कायस्था च वयस्था च हरितालं मनःशिला ।६४
अमृता च रुदन्ती च रोहिषं कुङ्कुमन्तथा ।
जया एरण्डकारण्डीरं सल्लकीहञ्जिका तथा ।६५
सर्वपित्तानि मूत्राणि प्रायोहरितकानि च ।
फलानि चैव हि तथा सूक्ष्मैला हिङ्गुपट्टिका ।६६
एवमादीनि चान्यानि गणः कटुकसंज्ञितः ।
राजा सञ्चिनुयाद्दुर्गे प्रयत्नेन नृपोत्तम ! ।६७
मुस्तञ्चन्दनह्रीवेरकृतमालकदारवः ।
दरिद्रानलदोशीरनक्तमालकदम्बकम् ।६८
दूर्वा पटोलकटुका दीर्घत्वक् पत्रकं वचा ।
किराततिक्तभूतुम्बी विषा चातिविषा तथा ।६९

तालीसपत्रतगरं सप्तपर्णविकङ्कताः ।
काकोदुम्बरिका दिव्या तथा चैव सुरोद्भवा ।७०

फणिज्ज, कोथ, लशुन, भूस्तृण, सुरस, कायस्थ, वयस्थ, हरिताल, मैनशिल, अमृता, रुदन्ती रोहिष, कुंकुम, जया एरण्ड, काण्डीर, सल्लकी, हञ्जिका, पित्ता, मूत्र, प्रायोहरितक, फल, सूक्ष्म एला, हिंगुपट्टिका इस प्रकार के सब धान्य और कटुक संज्ञा वाला गण । हे नृपोत्तम ! राजा को अपने दुर्ग में सबका सञ्चय करना चाहिए । मुस्त, चन्दन, ह्रीवेर, कृतमालक, दारु, दरिद्र, अनलद, उशीर, नक्तमाल, कदम्बक, दूर्वा, पटोल, कटुका, दीर्घत्वक्, पत्रक, वचा, किरात, त्तिक्त, भूतुम्बो, विषा, अतिविषा, तालीस पत्र तगर सप्तपर्ण, विकङ्कता, काक, उदुम्बरिका, दिव्या, सुरोद्भवा ।६४-७०।

षड्ग्रन्था रोहिणी मासी पर्पटश्चाथ दन्तिका ।
रसाञ्जन भृङ्गराज पतङ्गो परिपेलवम् ।७१
दुःस्पर्शा गुरुणी कामा श्यासाकं गन्धनाकुली ।
रूपपर्णी व्याघ्रनखा मञ्जिष्ठा चतुरङ्गुला ।७१
रम्भा चैवांकुरास्फीता तालास्फीता हरणुका ।
वेत्राग्र वेतसस्तुम्बी विषाणी लोध्रपुष्पिणी ।७२
मालतीकरकृष्णाख्यावृश्चिका जीविता तथा ।
पर्णिका च गुडूची च सगणस्तिक्तसज्ञकः ।७४
एवमादीनि चान्यानि राजा सञ्चिनुयात्पुरे ।
अभयामलके चोभे तथैव च विभीतकम् ।७५
प्रियङ्गु धातकीपुष्पं मोचाख्या चार्जुनासनाः ।
अनन्तास्त्रीतुवरिका स्योनाङ्कट्फलन्तथा ।७६
भूर्जपत्रं शिलापत्रं पाटलापत्रलोमकम् ।
समङ्गात्रिवृतामूलकार्पासगैरिकाञ्जनम् ।७०

षड्ग्रन्था, रोहिणी, मांसी, पर्पट, दन्तिका, रसाञ्जन, भृङ्गराज,

पतंगी, परिपेलव, दु:स्पर्शा, गुहणी, कामा, श्यासाक, गन्धनाकुली, रूपपर्णी, व्याघ्रनख, मंजिष्ठा, चतुरंगुला, रम्भा, अंकुरास्फोता, ताला स्फोता, हरणुका, वेत्राग्र, वेतस, तुम्बी, विषाणी, लोध्रपुष्पिणी, मालती, करकृष्णा, वृश्चिका, जीविता, पणिका, गुडूची, सगण, तिक्त संज्ञावाला, इस तरह के सभी पदार्थों का सञ्चय राजा को अपने पुरमें करना चाहिए। अभया, आमलक, बिभीतक, प्रियंगु, धातकी, पुष्पमोच, अर्जुनासन, अनन्ता, स्त्री, तुवरिका स्योन, लट्फल, भूर्जपत्र, शिलापत्र, पत्र, लोमक, समंगा, त्रिवृतामूल, कार्पास, गेरिक, अञ्जन ।७१-७७।

विद्रुमं स मधूच्छिष्टं कुम्भिकाकुमुदोत्पलम् ।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थकिंशुका: शिंशुरा शमी ।७८
प्रियालपीलुकासारिशिरीषा: पद्मकन्तथा ।
विल्वोऽग्निमन्थ: प्लक्षञ्च श्यामकश्च वको धनम् ।७९
राजादनं करीरश्च धान्यकं प्रियकस्तथा ।
कङ्कोलाशोकवदरा: कदम्बखदिरद्वयम् ।८०
एषां पत्राणि साराणि मूलानि कुसुमानिच ।
एवमादीनी चान्या निकषायाख्यामोमतोरस: ।८१
प्रयत्नेन नृपश्रेष्ठ ! राजा सञ्चिनुयात्पुरे ।
कीटाश्च मारणे योग्या व्यङ्गताया तथैवच ।८२
वातधूमाश्च मार्गाणां दूषणानि तथैव च ।
धार्याणि पार्थिवैर्दुर्गे तानि वक्ष्यामि पार्थिव ।८३
विषाणां धारणं कार्यं प्रयत्नेन महीभुजा ।
विचित्राश्चाङ्गदा धार्या विषस्य शमनास्तथा ।८४

विद्रुम—मधूच्छिष्ठ—कुम्भिका—कुमुदोत्पल—न्यग्रोध—उदुम्बर—अश्वत्थ—किंशुक—शिंशुप—शमी—प्रियाल—पीलुक—सारि—शिरीष—पद्मक—बिल्व—अग्निमन्थ—प्लक्ष—श्यामक-वक—घन—राजादन—

करीर—धान्यक—प्रियक-कंकोल—अशोक—बदर—कदम्ब—खदिर—इनके पत्र—सार—मूल और कुसुम इस प्रकार के तथा अन्य आदि कषाय नाम वाला रस माना गया है। हे नृपों में परमश्रेष्ठ ! राजा को चाहिए इन सबका प्रयत्नपूर्वक अपने पुर में सञ्चय करे। व्यंगता में मारण में योग्य कीट—मार्गों के वातधूम तथा दूषण राजाओं को दुर्ग में रखने चाहिए हे पार्थिव ! उनको मैं बताऊँगा। महीभुज को प्रयत्न पूर्वक विषों को मारण करना चाहिए। विचित्र अंगद तथा विष के शमन करने वाले भी रखने चाहिए।७८-८४।

रक्षोभूतपिशाचघ्ना: पापघ्ना: पुष्टिवर्धना:।
कलाविदश्च पुरुषा: पुरे धार्या: प्रयत्नतः।८५
भीतान् प्रमत्तान् कुपितांस्तथैव च विमानितान्
कुभृत्यान् पापशीलांश्च न राजा वासयेत्पुरे।८६
यन्त्रायुधाट्टालचयोपन्नं समग्रधान्यौषधिसम्प्रयुक्तम्।
वणिग्जनैश्च वृतमावसेत दुर्गं सुगुप्तं नृपति: सदैव।८७

राजा के द्वारा अपने पुर में राक्षस, भूत और पिशाचों के हनन करने वाले—पापों का विनाश करने वाले—पुष्टि के बढ़ाने वाले कलाओं के वेत्ता पुरुष प्रयत्न पूर्वक रखने चाहिए।८५। भीत—प्रमत्त—कुपित—विमानित—पापशील और कुभृत्यों को अपने पुर में कभी नहीं बसाना चाहिए।८६। अनेक आयुध—अट्टालिकाओं के समूह से उत्पन्न तथा सम्पूर्ण धान्य एवं औषधियों से संयुक्त—वणिग्जनों के द्वारा समाकीर्ण और भलीभाँति रक्षित दुर्ग में ही राजा को सदैव निवास करना चाहिए।८७।

९६—राजधर्म वर्णन (१)

रक्षोघ्नानि निषघ्नानि यानि धार्याणि भूभुजा ।
अगदानि समाचक्ष्व तानि धर्मभृताम्बर ! ।१
बिल्वाटकी यवक्षारं पाटलावाह्लिकोषणा: ।
श्रीपर्णी शल्लकीयुक्तोनिक्वाथ: प्रोक्षणंपरम् ।२
सविषं प्रोक्षितं तेन सद्यो भवति निर्विषम् ।
यवसैन्धवपानीयवस्त्रशय्यासनोदकम् ।३
कवचाभरणं छत्रं बालव्यजनवेश्मनाम् ।
शेलु: पाटलातिविषा शिग्रुमूर्वा पूनर्नवा ।४
समङ्गावृषमूलञ्च कपित्थवृषशोणितम् ।
महादन्तशठन्तद्वम् प्रोक्षणं विषनाशनम् ।५
लाक्षाप्रियंगु मञ्जिष्ठा सममेला हरेणुका ।
यष्ट्याह्वा मधुरा चैव बभ्रु पित्तेनकल्पिता: ।६
निखनेद्गोविषाणस्थं सप्तरात्रं महीतले ।
तत: कृत्वा मणि हेम्ना बद्धं हस्तेन धारयेत् ।७

महर्षि मनु ने कहा—हे धर्मधारियों में परमश्रेष्ठ ! राक्षसों के हनन करने और विषों का नाश करने वाले भी राजा का धारण करने अर्थात् रखने चाहिए उन अगदों को आप बतलाइये ।१। श्रीमत्स्य भगवान् ने कहा—विल्वाटकी, यवक्षार, पाटला, वाह्लिक कोषणा, श्रीपर्णी और शल्लकी इनका क्वाथ सर्वश्रेष्ठ प्रोक्षण होता है । यदि कोई भी विषयुक्त हो तो उससे प्रोक्षित होकर वह तुरन्त ही निर्विष हो जाया करता है । यव, सैन्धव, पानी, वस्त्र, शय्या, आसन, उदक, कवचाभरण, बाल व्यंजन, वेश्म, इनके विष का नाश शेलु, पाटल, अतिविषा, शिग्रु, मूर्वा, पुनर्नवा, समङ्गा, वृषमूल, कपित्थ, वृषशोणित, और महादन्तशठ इन सबके उसी भाँति प्रोक्षण करने से हो जाया करता है ।२-४।

।५। लाक्षा, प्रियंगु, मंजिष्ठा, ये सब समान भाग और एला (इलायची), हरेणुका, यष्टि नामवाली, मधुरा बभ्रुपित से कल्पित कर रखे। इसके अनन्तर मणि को हेम से बद्ध करके हाथ में धारण करना चाहिये।६-७।

संसृष्टं सविषन्तेन सद्यो भवति निर्विषम्।
मनोह्वया समीपत्रं तुम्बिका श्वेतसर्षपाः।८
कपित्थकुष्ठमञ्जिष्ठाः पित्तेन श्लक्ष्णकल्पिताः।
शुनो गोः कपिलाश्च सौम्याक्षिप्तरोगदः।९
विषजित् परमं कार्यं मणिरत्नञ्च पूर्ववत्।
मूषिका जतुका चापि हस्ते बद्धा विषापहा।१०
हरेणमांसी मञ्जिष्ठा रजनी मधुकामधु।
अक्षत्वक् सुरस लाक्षा श्वपित्तं पूर्ववद्भुवि।११
वादित्राणि पताकाश्च पिष्टैरेतैः प्रलेपिताः।
श्रुत्वा दृष्ट्वा समाघ्राय सद्योभवति निर्विषः।१२
त्र्युषण पञ्चलवणं मञ्जिष्ठा रजनीद्वयम्।
सूक्ष्मैलात्रिवृतात्रं विडङ्गनीन्द्रवारुणी।१३
मधुकं वेतसं क्षौद्रं विषाणे च निधापयेत्।
तस्मादुष्णाम्बुना मावं प्रागुक्तं योजयेत्ततः।१४
शुक्लं सर्जरसोपेतसर्षपा एलवालुकैः।१५
सुवोगा तस्करसुरो कुसुमैरर्जुनस्य तु।
धूपो वासगृहे हन्ति विषं स्थावरजङ्गमम्।१६

इससे संसृष्ट सविष तुरन्त ही निर्विष हो जाया करता है। मनोह्वया, शमीपत्र, तुम्बिका, श्वेत सर्षप, कपित्थ कुष्ठ, मञ्जिष्टा पित्त के द्वारा श्लक्ष्ण कल्पित किये हुए हे सौम्य ! कुत्ता, गौ और कपिल, के लिये अक्षिप्त यह दूसरा अगद होता है।८-९। पूर्व की भाँति मणिरत्न परम विषजित् करना चाहिए। मषिका और जतुका भी

हाथ में बाँधने पर विष के अपहरण करने वाली होती है।१०। हरेण मांसी, मजिष्ठा, रजनी, हल्दी, मधुका, मधु, अक्षत्वक् सुरस, लाक्षा (लाख)—इनको पूर्व की ही भाँति श्वान् का पित्त लेकर पेषण करे और इनमे वादियों और पताकाओं पर प्रलेप करे तो श्रवण करके—देख करके और सूँघ करके तुरन्त ही विष से रहित हो जाया करता है। ।११-१२। त्रुषण—पाँचों लवण—मजीठ—दोनों प्रकार की हल्दी-छोटी इलायची-त्रिवृतापत्र-बिडङ्ग, इन्द्र वारुणी, मधुक, वेतस और क्षौद्र, इन सबको विषाण में निधापित करो केवल उष्ण जल से पहिले बताये हुए को योजित करना चाहिए। शुक्लसर्ग रस से युक्त—सर्षप--और एलाबासुकों से समन्वितप्सुवोगा--तस्कर--सर तथा अर्जुन वृक्ष के पुष्प इनके द्वारा निर्मित धूप निवास गृह में देवे तो स्थावर और जङ्गम दोनों के विष का हनन हो जाया करता है।१३-१६।

न तत्र कीटा न विषन्ददुंरा न सरीसृपाः।
न कृत्या कर्मणाञ्चापि धूपोऽय यत्र दह्यते।१७
कल्पितैश्चन्दनक्षीरपलाशद्रुमवल्कलैः।
मूर्वैलावालुसरसानाकुलीतण्डुलीयकैः।१८
क्वाथः सर्वादिकार्येषु काकमोचीयुतो हितः।
रोचनापत्रनेपालीकुङ्कुमैस्तिलकान् वहन्।१९
विषैर्न बाध्यते स्याच्च नरनारीनृपप्रियः।
चूर्णैर्हरिद्रामञ्जिष्ठाकिणिहीकणनिम्बजैः।२०
दिग्धं निर्विषतामेति गात्रं सर्नैतिषादितम्।
शिरीषस्य फलं पत्रं पुष्पंत्वङ्मलमेव च।२१
गोमूत्रधृष्टो ह्यगदः सर्वकर्मकरः स्मृतः।
एकवीर ! महौषध्यः श्रृणु चातः परं नृपः !।२२

जिस स्थान में इस धूप को जलाया जाता है वहाँ पर कोई भी कीट नहीं रहते हैं। न कोई विष का प्रभाव ही रहता है और दर्दुर

तथा सरीसृप भी नहीं रहा करते हैं। वहाँ पर कृत्या के भी कर्म्मों की स्थिति नहीं होती है।१७। चन्दन, क्षीर, पलाश, द्रुम वल्कल, मूर्द, एला, बालु, सरसा, नाकुली और तण्डुलीय इससे कल्पित क्वाथ जो कि काकमोची से युक्त हो तो वह सब उक्त कार्यों में हितप्रद होता है। रोचना पत्र नेपाली और कुंकुम से युक्त तिलों को हवन करने वाला नर-नारी, नृप प्रिय कभी भी विषों से बाधित नहीं हुआ करता है। हरिद्रा, मजीठ, किण ही कण और निम्बज इससे दिग्ध गात्र जो सब विषों से अर्दित हो शीघ्र ही निर्विषता को प्राप्त हो जाता है। शिरीष वृक्ष के फल पत्र, पुष्प, त्वचा और मूल इन पाँचों अंगों को गोमूत्र के साथ पीसकर डाले तो यह सब काम करने वाला अगद हो जाता है-ऐसा कहा गया है। हे एक वीर ! हे नृप ! इससे भी परम महौषधियों के विषय में मुझसे आप श्रवण कीजिए।१८-२२।

वन्ध्या कर्कोटकी राजन् ! विष्णुक्रान्ता तथोत्कटा।
शतमूली सितानन्दा बला मोचा पटोलिका।२३
सोमपिण्डा निशा चैव तथा दग्धरुहा च या।
स्थले कमलिनी या च विशाली शंखमूलिनी।।२४
चाण्डाली हस्तिमगधा गोऽजापण करम्भिका।
रक्ता चैव महारक्ता तथा बर्हिशिखा च या।२५
कोशातकी नक्तमाभं प्रियालञ्च सुलोचनी।
वारुणी वसुगन्धा च तथा वै गन्धनाकुली।२६
ईश्वरी शिवगन्धा च श्यामला वंशनालिका।
जातुकाली महाश्वेता श्वेता च मधुयष्टिका।२७
वज्रकः पारिभद्रश्च तथा वै सिन्धुवारकाः।
जीवानन्दा वसुच्छिद्रा नतनागरकण्टका।२८

हे राजन् ! वन्ध्या, कर्कोटकी, विष्णुकान्य, उत्कटा, शतमूली, सितानन्दा, बला, मोचा, पटोलिका, सोमापिण्डा, निशा, दग्धरुहा, स्थल

कमलिनी, विशाली, शंख मूलिका, चण्डाली, हस्ति मगधा, गोऽजापर्णा, करम्भिका, रक्ता, महारक्ता, बर्हिशिखा, कोशातकी, नक्तमाल, प्रियाल, सुलोचनी, वारुणी, वसुगन्धा, गन्धनाकुली, ईश्वरी, शिवगन्धा, श्यमला, वंशनालिका, जतुकाली, महाश्वेता, श्वेता, मधुयष्टिका, वज्रक, पारिभद्र, सिन्धुवारक, जीवानन्दा, वसुच्छिद्रा, नत नागर कण्टका ।२३-२८।

नालश्च जाली जातीच तथाच वटपत्रिका ।
कार्तस्वरं महानीला कुन्दुरुर्हंसपादिका ।२६
मण्डूकपर्णी वाराही द्वे तथा तण्डुलीयके ।
सर्पाक्षी लवली ब्राह्मी विश्वरूपा सुखाकरा ।३०
रुजापहा वृद्धिकरी तथाचैव तु शल्यदा ।
पत्रिका रोहिणी चैव रक्तमाला महौषधी ।३१
तथामलकमन्दाकं श्यामचित्रफला च या ।
काकोली क्षीरकाकोली पीलुपर्णी तथैव च ।३२
केशिनी वृश्चिकालीच महानागा शतावरी ।
गरुडीच तथा वेगा जले कुमुदिनीतथा ।३३
स्थले चोत्पलिनी या च महाभूमिलता च या ।
उन्मादिनीसोमराजी सर्वरत्नानि पार्थिव ।३४
विशेषान्मरकतादीनि कीटपक्षं विशेषत: ।
जीवजाताश्च मणय: सर्वे धार्या: प्रयत्नत: ।३५

नाल, जाली, जाती, वट पत्रिका, कार्त्त स्वर, महानीला, कन्दुरु, हंसमादिका, मण्डूक पर्णी, वृद्धिकरी, शल्यदा, पत्रिका, रोहिणी, रक्त-माला, महौषधी, आमलक, मन्दाक, श्याम चित्रफला, काकोली, क्षीर, काकोली, पीलुपर्णी, केशिनी, वृश्चिकाली, वाराही दोनों—तण्डुलीयक, सर्पाक्षी, लवली, ब्राह्मी, विश्वरूपा, सुखाकरा, सुरजापद, महानाभा, शतावरी, गरुडी, वेगा, जल में कुमुदिनी, स्थल में उत्पलिनी, महाभूमि-

लता, उन्मादिनी, सोमराजी, हे पार्थिव ! समस्त रत्न, विशेष रूप से मरकत आदि—विशेष रूप से कीटपक्ष, जीवजात और सब मणियाँ यत्नपूर्वक धारण करनी चाहिए ।२९-३५।

रक्षोघ्नाश्च विषघ्नाश्च कृत्यावैतालनाशनाः ।
विशेषान्नरनागाश्च गोखरोष्ट्रसमुद्भवाः ।३६
सर्पतित्तिरगोमायुवस्त्र (क)मण्डकजाश्च ये ।
सिंहव्याघ्रर्क्षमार्जारद्वीपिवानरसंभवाः ।
कपिञ्जला गजा वाजिमहिषैणभवाश्च ये ।३७
इत्युक्तमेतैः सकलैरुपेतन्द्रव्यैश्च सर्वैः स्वपुरं सुरक्षितम् ।
राजा वसेत्तत्र गृहं सुशुभ्र गुणान्वितं लक्षणसंयुक्तम् ।३८

राक्षसों के हनन वाले—विष के नाशक कृत्या और बैताल के नाश करने वाले—विशेष रूप से नर और नाग—गोखर उष्ट्रों समुद्भव वाले—सर्प, त्तित्तिर, गोमायु, वस्त्र और मण्डकज—सिंह, व्याघ्र, ऋक्ष, मार्जार, द्वीपी और वानरों से समुत्पन्न—कपिञ्जल, गज, बाजि, महिष और एण से प्रसूत इस प्रकार से इन सबसे समुपेत तथा सब द्रव्यों के द्वारा सुरक्षित अपने पुर में राजा को निवास करना चाहिए जो कि राजा का गृह सुशुभ्र-गुणों से समन्वित और सभी सुन्दर लक्षणों से सम्प्रयुक्त होना चाहिए ।३६-३८।

—×—

९७—राजधर्म वर्णन (२)

राजरक्षारहस्यानि यानि दुर्गे निधापयेत् ।
कारयेद्वा महीभर्ता ब्रूहि तत्त्वानि तानि च ।१
शिरीषोदुम्बरशमीबीजपूरं घृतप्लुतम् ।
क्षुद्योगः कथितो राजन् ! मासार्द्धं तु पुरातनैः ।२

कशेरुफलमूलानि इक्षुमूलं तथा बिसम् ।
दूर्वाक्षीरघृतमण्डः सिद्धोऽयं मासिकः परः ।३
नरं शस्त्रहतं प्राप्तो न तस्य मरणं भवेत् ।
कल्माषवेणुना तत्र जनयेत्तु विभावसुम् ।४
गृहे त्रिरपसव्यन्तु क्रियते यत्र पार्थिव ! ।
नान्योऽग्निर्ज्वलते तत्र नात्र कार्याविचारणा ।५
कार्पासस्था भुभङ्गस्य तेन निर्मोचनं भवेत् ।
सर्पनिर्वासिने धूपः प्रशस्तः सततं गृहे ।६
सामुद्रसैन्धवयवा विद्युद्दग्धा च मृत्तिका ।
तयानुलिप्तं यद्वेश्म नाग्निना दह्यते नृप ! ।७

महर्षि मनु ने कहा—मही के भरण करने वाला अपने दुर्ग में जिन राज्य की रक्षा के रहस्यों को निधापित करे अथवा करावे आप कृपा करके उन तत्वों को बतलाइये ।१। श्रीमत्स्य भगवान ने कहा—हे राजन् ! शिरीष, उदुम्बर, शमी बीजपूर को घृत से प्लुक करे इसका पुरातन लोगों के द्वारा क्ष्युद्योग कहा गया है जो मास के अर्द्ध तक होता है ।२। कशेरु के फल और मूल, ईख का मूल, विस, दूर्वा, क्षीर घृत, से मण्ड सिद्ध होता है जो पर एवं मासिक होता है ।३। शस्त्र से हत हुए नर को प्राप्त हो जावे तो उसका मरण नहीं होता है। जहाँ पर कल्माष वेणु से विभावसु का जन्म करना चाहिए। हे पार्थिव ! जहाँ पर गृह में तीन बार अपसव्य किया जाता है। वहाँ पर अन्य कोई भी अग्नि नहीं जलती है–इस विषय में कोई विचरणा करने की आवश्यकता नहीं है। कार्पास में स्थित हो तो उससे भुजङ्ग का निर्मोचन हो जाता है। यह धूप निरन्तर सर्पों के निर्वासन करने के कर्म्म में परम प्रशस्त होता है ।३-६। सामुद्र सैन्धव, यव, विद्युत से दग्ध मृत्तिका, इससे जो गृह अनुलिप्त किया जावे तो हे नृप ! वह वेश्म अग्नि से कभी भी दग्ध नहीं किया जाता है ।७।

दिवा च दुर्गे रक्ष्योऽग्निर्वाति वाते विशेषतः ।
विषाच्च रक्ष्योनृपतिस्तत्र युक्ति निबोध मे ।८
क्रीडानिमित्तं नृपतिर्धारयेन्मृगपक्षिणः ।
अन्नं वै प्राक् परीक्षेत वह्नौ चान्यतरेषु च ।९
वस्त्रं पुष्पमलङ्कारं भोजनाच्छादनं तथा ।
नापरीक्षितपूर्वन्तु स्पृशेदपि महामतिः ।१०
स्याच्चासौ वक्त्रसन्तप्तः सोद्वेगञ्च निरीक्षते ।
विषदोऽथ विषं दत्तं यच्च तत्र परीक्षते ।११
स्रस्तोत्तरीयो विमनाः स्तम्भकुड्यादिभिस्तथा ।
प्रच्छादयति चात्मानं लज्जते त्वरके तथा ।१२
भुवं विलिखति ग्रीवां तथा चालयते नृप ! ।
कण्डूयति च मूर्द्धानं परिलोड्याननन्तथा ।१३
क्रियासु त्वरितो राजन् ! विपरीतास्वपि ध्रुवम् ।
एवमादिनी चिह्नानि विषदस्य परीक्षयेत् ।१४

दिन के समय में दुर्ग में अग्नि की रक्षा करनी चाहिए । विशेष रूप से उस समय में रक्षा करनी आवश्यक है जब वायु वहन किया करता है । खास तौर से नृपति की सुरक्षा अवश्य ही करनी चाहिए । इसमें जो युक्ति अमल में लाई जावे उसको भी तुम मुझसे समझ लो । ।८। क्रीड़ा के निमित्त राजा को मृगों और पक्षियों को धारण करना चाहिए । सर्व प्रथम अग्नि में अन्न की परीक्षा लेनी अत्यावश्यक है । अन्य तर पदार्थों में भी वस्त्र, पुष्प, अलङ्कार, भोजन तथा आच्छादन इन सबका महान मति वाले राजा को पहिले भली भाँति परीक्षा किये बिना कभी भी स्पर्श नहीं करना चाहिए ।९-१०। यह वक्त्र सन्तप्त होने और उद्वेग के सहित विपत्तियों को देखता है । वहाँ पर दिये हुये विष की जो परीक्षा करता है अपने उत्तरीय वस्त्र को छोड़ देने वाला—उदास स्तम्भ कुड्य आदि से आपने आपको ढक लिया करता है अर्थात्

छिपा लिया करता है और उसी प्रकार से लज्जा करता है एवं शीघ्रता किया करता है।११-१२। हे नृप ! भूमि पर लिखता है—गरदन को घुमाया करता है—मस्तक को खुजलाता है और अपनी आत्मा का परि-लोड़न किया करता है तथा हे राजन् ! इन विपरीत क्रियाओं में भी निश्चय ही शीघ्रता वाला होता है। इसी तरह के जो चिन्ह होते हैं उन विषद के लक्षणों की परीक्षा करनी चाहिए।१३-१४।

समीपैर्विक्षिपेद्वह्नौ तदन्नं त्वरयान्वितैः।
इन्द्रायुधसवर्णन्तु रूक्षं स्फोटसमन्वितम्।१५
एकावर्तन्तु दुर्गन्धि भृशञ्चटचटायते।
तद्धूमसेवनाज्जन्तोः शिरोरोगश्च जायते।१६
सविषेऽन्ने विलीयन्ते न च पार्थिव ! मक्षिकाः।
निलीनाश्च विपद्यन्ते संस्पृष्टे सविषे तथा।१७
विरज्यति चकोरस्य दृष्टिः पार्थिवसत्तम !।
विकृतिञ्च स्वरो याति कोकिलस्य तथा नृप !।१८
गतिस्खलति हंसस्य भृङ्गराजश्च कूजति।
क्रौञ्चो मदमथाभ्येति कृकवाकुर्विरौति च।१९
विक्रोशतिशुकोराजन् ! सारिका वमतेततः।
चामीकरोऽन्यतोयातिमृत्युं कारण्डवस्तथा।२०
मेहते वानरो राजन् ! ग्लायते जीवजीवकः।
हृष्टरोमा भवेद्बभ्रुः पृषतश्चैव रोदिति।२१

समीप में स्थित लोगों का त्वरा से समन्वित होते हुए ही उस अन्न को अग्नि में प्रक्षिप्त कर देना चाहिए। इन्द्रायुध के वर्ण के समान रूक्ष, स्फोट से संयुक्त, एकावर्त्त, दुर्गन्ध से युक्त होकर अत्यन्त चट-चट ध्वनि किया करती है। उसके धूम के सेवन से जन्तु के शिर में वेदना और रोग समुत्पन्न हो जाया करता है।१५-१६। हे पार्थिव ! विष से युक्त अन्न में मक्खियाँ विलीन नहीं हुआ करती है तथा सविष अन्न

के संस्पर्श होने पर वे मक्षिकाएँ उसी में विलीन हो जाया करती हैं।।१७। हे पार्थिव श्रेष्ठ ! चकोर पक्षी की दृष्टि विगत अर्थात् हीनता को प्राप्त हो जाया करती है। हंस की गति जो कि अति प्रशंसनीय होती है स्खलित हो जाया करती है—भृङ्गराज कूजन करता है। क्रौंच मद को प्राप्त हो जाता है और कृकवाकु विरुत करने लगता है। हे राजन् ! शुक्र विक्रोशन करता है—सारिका वमन करती है। चामोकर अन्य ओर जाता है—कारण्डव मृत्यु को प्राप्त होता है—हे राजन् ! वानर मेहन करता है—जीव जीवक ग्लानि करता है—बभ्रु हृष्ट रोमों वाला होता है और पृषत रुदन करता है।१८-२१।

हर्षमायाति च शिखी विषसन्दर्शनान्नृप !।
अन्नञ्च सविषं राजश्चिरेण च विपद्यते।२२
तदा भवति निःश्राव्यं पक्षपर्युषितोपमम्।
व्यापन्नरसगन्धञ्च चन्द्रिकाभिस्तथा युतम्।२३
व्यञ्जनानन्तु शुष्कत्वं द्रवाणां बुद्बुदोद्भवः।
ससैन्धवानां द्रव्याणां जायतेफेनमालिता।२४
सस्यराजिश्च ताम्रा स्यात् नीला च पयसस्तथा।
कोकिलाभा च मद्यस्य तोयस्य च नृपोत्तम !।२५
धान्याम्लस्य तथा कृष्णा कपिला कोद्रवस्य च।
मधुश्यामा च तक्रस्य नीला पीता तथैव च।२६
घृतस्योदकसङ्काशा कपोताभा च सक्तुः।
हरिता माक्षिकस्यापि तैलस्य च तथारुणा।२७
फलानामप्यपक्वानां पाकः क्षिप्रं प्रजायते।
प्रकोपश्चैव पक्वानां माल्यानां म्लानता तथा।२८

हे नृप ! विष के संदर्शन से शिखी हर्ष को प्राप्त होता है। हे राजन् ! विष के सहित अन्न चिरकाल में विपन्न करता है। उस समय में निःश्राव्य—व्यापन्न रस और गन्ध से युक्त—चन्द्रिकाओं से समन्वित

और पक्ष पर्युषितोपम हो जाता है ।२२-२३। व्यञ्जनों में शुष्कता—द्रव पदार्थों में बुदों की उत्पत्ति और जो सैन्धव से युक्त पदार्थ है उनमें फेन मालिता उत्पन्न हो जाया करती है। जो सस्यों की राजि है ताम्र वर्ण वाली और पय की आभा नीली हो जाती है। मद्य एवं तोय की आभा कोकिला के तुल्य हो जाया करती है। हे नृपोत्तम ! धान्याम्ल की कृष्ण और को द्रव की कपिल-तक्र की मधुश्याम, नील, पीत, हो जाया करती है। घृत की उदक के समान तथा कपोत जैसी आभा हो जाती है। माक्षिक (शहद) की हरी एवं तैल की अरुण आभा होती है। जो फल अपक्व होते हैं उन पर प्रकोप होता है तथा माल्यों की म्लानता हो जाया करती है ।२४-२८।

मृदुता कठिनानां स्यात् मृदूनाञ्च विपर्ययः ।
सूक्ष्माणां रूपदलनं तथा चैवातिरङ्गता ।२९
श्याममण्डलता चैव वस्त्राणां वै तथैवच ।
लोहानाश्च मणीनाञ्च मलपङ्कोपदिग्धता ।३०
अनुलेपनगन्धानां माल्यानाञ्च नृपोत्तम ।
विगन्धता च विज्ञेया तथा राजन् ! जलस्य तु ।३१
दन्तकाष्ठत्वचः श्यामास्तनुसत्त्वथैव च ।
एवमादीनि चिह्नानि विज्ञेयानि नृपोत्तम ! ।३२
तस्माद्राजा सदा तिष्ठेत् मणिमन्त्रौषधीगणैः ।
उक्तैः सरक्षितो राजा प्रमादपरिवर्जकः ।३३
प्रजातरोमूलमिहावनीशस्तद्रक्षणाद्राष्ट्रमुपैति वृद्धिम् ।
तस्मात्प्रयत्नेन नृपस्य रक्षा सर्वेण कार्या रविवंशचन्द्र ! ।३४

जो कठिन एवं कठोर द्रव्य हैं उनमें कोमलता और जो स्वभाव से ही मृदु पदार्थ हैं उनमें विपर्यय हो जाया करता है। सूक्ष्म पदार्थों के रूप का दलन होता है तथा अतिरंगिता आ जाया करती है वस्त्रों में श्याम मण्डलता होती है। सर्व प्रकार के लोह और मणियों में मल के

पङ्क की उपदिग्धता हो जाती है। हे नृपोत्तम है। जो अनुलेपन करने के द्रव्य हैं जिनमें सुन्दर गन्ध होती है उसमें और माल्यों में तथा जल में विगन्धता उत्पन्न हो जाया करती है। दन्तकाष्ठ की त्वचा श्याम और तनु सत्व हो जाती है। हे नृपोत्तम ! इस प्रकार से इन चिन्हों को जान लेना चाहिये। इसी कारण से राजा को सर्वदा मणि—मन्त्र और औषधों के गणों से संयुत होकर ही निवास करना चाहिए अथवा स्थित रहना चाहिए इन उक्त पदार्थों से अच्छी तरह से संरक्षित एवं प्रमाद से परिवर्जित राजा को होना चाहिए।२६-३३। यहाँ पर अवनीश प्रजा के तरु का मूल होता है। उसका संरक्षण रहने से ही राष्ट्र वृद्धि को प्राप्त होता है। हे रविवंश चन्द्र ! इसी कारण से सब प्रकार के प्रयत्न से नृप की रक्षा करनी चाहिए।३४।

६८—राजधर्म वर्णन (३)

राजन् ! पुत्रस्य रक्षा च कर्तव्या पृथिवीक्षिता।
आचार्यश्चात्र कर्तव्यो नित्ययुक्तश्च रक्षिभिः।१
धर्मकामार्थशास्त्राणि धनुर्वेदञ्च शिक्षयेत्।
रथे च कुञ्जरे चैनं व्यायामङ्कारयेत्सदा।२
शिल्पानि शिक्षयेच्चैनं नाप्तो मिथ्या प्रियं वदेत्।
शरीररक्षाव्याजेन रक्षिणोऽस्य नियोजयेत्।३
न चास्य सङ्गो दातव्यः क्रुद्धलुब्धावमानितैः।
तथा च विनयेदेनं यथा च यौवनगोचरे।४
इन्द्रियैर्नापकृष्येतम सतां मार्गात्सुदुर्गमात्।
गुणाधानमशक्यस्तु यस्य कर्तुं स्वभावतः।५
बन्धनं तस्य कर्तव्यं गुप्तदेशे सुखान्वितम्।
अविनीतकुमारं हि कुलमाशु विशीर्यते।६

अधिकारेषु सर्वेषु विनीतं विनियोजयेत् ।
आदौ स्वल्पे ततः पश्चात्क्रमेणाथ महत्स्वपि ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! राजा को अपने पुत्र की रक्षा करनी चाहिये और रक्षा करने वालों के सहित नित्य युक्त यहाँ पर आचार्य को नियुक्त करना चाहिए ।१। उस पुत्र को धर्म—काम और अर्थ शास्त्रों की तथा धनुर्वेद की शिक्षा दिलवानी चाहिए रथ में तथा कुञ्जर में भी दीक्षित करावे और सदा इस अपने पुत्र से व्यायाम करवाना चाहिए ।२। इस पुत्र को अनेक शिल्पों की शिक्षा दिलवावे । ऐसा प्रयत्न करे कि वहाँ आप्त अर्थात् सत्य वक्ता होवे और कभी उसे मिथ्या बोलने का अवसर ही न होवे । राजा के पुत्र के शरीर की रक्षा के मिष से पक्षियों को नियोजित करना चाहिए ।३। क्रुद्ध-लुब्ध और अपमानित हुए व्यक्तियों के साथ इस पुत्र का सङ्ग कभी भी न होने देवे । जैसे ही यह यौवन में पदार्पण करे इसको विनीत बनाना चाहिए ।४। सज्जनों के सुदुर्गम मार्ग से इन्द्रियों के द्वारा अपकृष्ट नहीं होने देवे । स्वभाव से ही अशक्य गुणों का आधान करना चाहिए । किसी गुप्त देश में सुख से समन्वित उसका बन्धन करना चाहिए । जो राजकुमार अविनीत होता है उसका कुल शीघ्र ही विशीर्ण हुआ करता है । सभी अधिकार के कार्यों में विनीत का नियोजन करना चाहिए । आदि में छोटे पद पर इसके पश्चात् क्रम से बड़े पदों पर भी नियुक्तियाँ करे ।५-७।

मृगयां पानमक्षांश्च वर्जयेत् पृथिवीपतिः ।
एतान्ये सेवमानास्तु विनष्टाः पृथिवीक्षितः ।८
बहवो नरशार्दूल ! तेषां सङ्ख्या न विद्यते ।
दिवा स्वापं क्षितीशस्तु विशेषेणविवर्जयेत् ।९
वाक्पारुष्यं न कर्तव्यं दण्डपारुष्यमेव च ।
परोक्षनिन्दा च तथा वर्जनीया महीक्षिता ।१०
अर्थस्य दूषणं राजा द्विप्रकारं विवर्जयेत् ।

अर्थानां दूषणञ्चैकं तथार्थेषु च दूषणम् ।११
प्राकाराणां समुच्छेदो दुर्गादीनामसत्क्रिया ।
अर्थानां दूषणं प्रोक्तं विप्रकीर्णत्वमेव च ।१२
अदेशकाले यद्दानमपात्रे दानमेव च ।
अर्थेषु दूषणं प्रोक्तमसत्कर्मप्रवर्तनम् ।१३
कामः क्रोधोमदोमानो लोभो हर्षस्तथैव च ।
एते वर्ज्याः प्रयत्नेन सादरं पृथिवीक्षिता ।१४

जो पृथिवी का स्वामी हो उसको मृगया (शिकार)—मदिरा पान और अक्षक्रीड़ा (द्यूत) का परिवजन कर देना चाहिए । इनका जो सेवन किया करते हैं वे भूपतिगण विनष्ट हो जाया करते हैं । हे नरशार्दूल ! ऐसे बहुत-से राजा लोग हैं उनकी कोई भी संख्या नहीं है राजा का कर्त्तव्य है कि वह कभी भी वाणी की कठोरता न करे तथा दण्ड देने में भी अत्यन्त कठोर उसे नहीं होना चाहिए । नृपति को परोक्ष में किसी की भी निन्दा नहीं करनी चाहिए । अर्थ के दो प्रकार के दूषण का वर्जन राजा को करना आवश्यक है—एक अर्थों का दूषण तथा अर्थों में दूषण । प्राकारों का समुच्छेद और दुर्गादि की असत्क्रिया यही अर्थों का दूषण कहा गया है तथा विप्रकीर्णता भी अर्थों का दूषण होता है । अनुचित देश तथा अनुपयुक्त काल में जो दान दिया जाता है और दान का जो पात्र ही नहीं है उसको दान देना एवं असत्कर्म में प्रवर्त्तन करना अर्थों में दूषण बताया गया है । पृथिवी के स्वामी को प्रयत्न पूर्वक आदर के सहित काम—क्रोध—मद—मान—लोभ हर्ष इनका वर्जन अवश्य ही कर देना चाहिए ।८-१४।

एतेषां विजयं कृत्वा कार्यो भृत्यजयस्ततः ।
कृत्वा भृत्यजयं राजा पौरान् जानपदान् जयेत् ।१५
कृत्वा च विजयन्तेषां शत्रून् बाह्यांस्ततो जयेत् ।

बाह्याश्च विविधा ज्ञेयातुल्याभ्यन्तरकृत्रिमा: ।१६
गुरवस्ते यथापूर्वं तेषु यत्नपरो भवेत् ।
पितृपितामहौमित्रममित्रञ्च तथा रिपो: ।१७
कृत्रिमञ्च महाभाग ! मित्रं त्रिविधमुच्यते ।
तथापि च गुरु: पूर्वं भवेत्तत्रापि चादृत: ।१८
स्वाम्यमात्यो जनपदो दुर्गं दण्डस्तथैव च ।
कोशोमित्रञ्चधर्मज्ञ ! सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ।१९
सप्ताङ्गस्यापि राज्यस्य मूलं स्वामी प्रकीर्तित: ।
तन्मूलत्वात्तथाङ्गानां सतुरक्ष्य: प्रयत्नत: ।२०
षड़ङ्गरक्षा कर्तव्या तथा तेन प्रयत्नत: ।
अङ्गेभ्यो यस्तथैकस्तु द्रोहमाचरतेऽल्पधी: ।२१

इन सब पर अपना पूर्ण विजय करके ही राजा को फिर अपने भृत्यों पर भी जय प्राप्त करना चाहिए। जब भृत्यों पर विजय करली जावे तो फिर इसके उपरान्त पौरों एवं जानपदों पर विजय करना आवश्यक होता है ।१५। इन सब पर विजय को स्थापित करके इनके अनन्तर ही राजा को बाहिर रहने वाले शत्रुओं पर जय का लाभ लेना चाहिए। जो बाह्य शत्रु होते हैं वे अनेक प्रकार के हुआ करते हैं। वे तुल्य—अभ्यन्तर और कृत्रिम होते हैं ।१६। वे यथा पूर्ण बहुत बड़े हुआ करते। इसलिए उनमें यत्न परायण राजा को होना आवश्यक है। पिता पितामह के समय से चले आने वाला मित्र तथा रिपु का अमित्र (शत्रु) हे महाभाग ! कृत्रिम मित्र तीन प्रकार का कहा जाता है। तो भी पूर्व गुरु होता है उसमें भी आदृत होना चाहिए। हे धर्मज्ञ ! स्वामी—अमात्य—जनपद—दुर्ग—दण्ड—कोश और अमित्र इन सात अङ्गों वाला राज्य कहा जाया करता है। यद्यपि राज्य के ये उपर्युक्त सात अङ्ग होते हैं तो भी इन सातों में भी मूल स्वामी ही कीर्तित किया गया है। सभी अङ्गों का उसको मूल होने से उसकी प्रयत्न पूर्वक रक्षा

करनी चाहिए। अन्य छः अंगों की भी उसके द्वारा प्रयत्न के साथ सुरक्षा करनी चाहिए। इन अंगों में जो कोई एक द्रोह किसी भी अंग से करता है वह अल्प बुद्धि वाला ही होता है।१७-२१।

बन्धस्तस्य तु कर्त्तव्यः शीघ्रमेव महीक्षिता।
न राज्ञा मृदुना भाव्यं मृदुर्हि परिभूयते।२२
न भाव्यं दारुणनातितीक्ष्णादुद्विजते जनः।
काले मृदुर्यो भवति काले भवति दारुणः।२३
राजा लोकद्वयापेक्षी तस्य लोकद्वयं भवेत्।
भृत्यैः सह महीपालः परिहासं विवर्जयेत्।२४
भृत्याः परिभवन्तीह नृपं हर्षवशंङ्गतम्।
व्यसनानि च सर्वाणि भूपतिः परिवर्जयेत्।२५
लोकसंग्रहणार्थाय कृतकव्यसनो भवेत्।
शौण्डीरस्य नरेन्द्रस्य नित्यमुद्रिक्तचेतसः।२६
जना विरागमायान्ति सदादुःसेव्यभावतः।
स्मितपूर्वाभिभाषी स्यात् सर्वस्यैव महीपतिः।२७
वध्येष्वपि महाभाग! भ्रूकुटिं न समाचरेत्।
भाव्यंधर्मभृतांश्रेष्ठ! स्थूललक्ष्येण भूभुजा।२८

राजा का कर्त्तव्य है कि ऐसे द्रोह करने वाले व्यक्ति का बन्ध कर देवे और शीघ्र ही उसको बाँध कर बन्ध कर देना चाहिए। राजा को मृदु नहीं होना चाहिए जो राजा मृदु होता है वह परिभूत हो जाया करता है।२२। राजा अत्यन्त दारुण भी नहीं होना चाहिए क्योंकि अत्यन्त तीक्ष्ण राजा से प्रजाजन उद्विग्न हो जाया करते हैं। जो राजा उचित समय पर मृदु होता है तथा आवश्यकताके अनुसार उचित अवसर पर दारुण होता है वह दोनों लोकों की अपेक्षा वाला हुआ करता है और उसके दोनों ही लोक सफल हुआ करते हैं। राजा को अपने भृत्योंके साथ कभी भी परिहास नहीं करना चाहिए। जो राजा हर्ष के वशंगत हो

जाया करता है उसको भृत्य परिभूत कर दिया करते हैं। राजा को सभी प्रकार के व्यसनों को परिवर्जित कर देना चाहिए। लोक के संग्रह के लिए यदि कोई व्यसन करने वाला भी होवे तो उसे कृतक व्यसनी ही होना चाहिए। जो नरेन्द्र शौण्डीर होता है उससे नित्य ही उद्विग्न चित्त वाले मनुष्य विराग को प्राप्त हो जाते हैं और उनके हृदय में सदा दुःसेव्य भावना उत्पन्न हो जाया करती है। महीपति का कर्त्तव्य है कि सभी के साथ मुस्कराते हुए भाषण करने वाला होवे। जो लोग अपराधों के कारण बध के भी योग्य हों हे महाभाग! उन पर भी राजा को अपनी भौंहें तिरछी नहीं करनी चाहिए। हे धर्मधारियों में परम श्रेष्ठ! राजा को सर्वदा स्थूल लक्ष्य से युक्त ही होना चाहिए।२३-२८।

स्थूललक्ष्यस्य वशगा सर्वा भवति मेदिनी।
अदीर्घसूत्रश्च भवेत् सर्वकर्मसु पार्थिवः।२९
दीर्घसूत्रस्य नृपतेः कर्महानिर्ध्रुवम्भवेत्।
रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि।३०
अप्रिये चैव कर्तव्ये दीर्घसूत्रः प्रशस्यते।
राज्ञा संवृतमन्त्रेण सदा भाव्य नृपोत्तम!।३१
तस्यासंवृतमन्त्रस्य राज्ञः सर्वापदो ध्रुवम्।
कृतान्येव तु कार्याणि ज्ञायन्ते यस्य भूपतेः।३२
नारब्धानि महाभाग! तस्य स्याद्वसुधावशे।
मन्त्रमूलं सदाराज्यं तस्मान्मन्त्रः सुरक्षितः।३३
कर्तव्या पृथिवीपालैर्मन्त्रभेदभयात्सदा।
मन्त्रवित्साधितो मन्त्रः सम्पत्तीनां सुखावहः।३४
मन्त्रच्छलेन बहवो विनष्टाः पृथिवीक्षितः।
आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च।३५
नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः।
नयस्य कुशलैस्तस्य वशे सर्वा वसुन्धरा।३६

जिस नृप का मूल लक्ष्य होता है उसकी यह सम्पूर्ण भूमि वश-गामिनी हुआ करती है। पार्थिव को समस्त कर्मों में दीर्घसूत्री नहीं रहना चाहिए। जो नृपति दीर्घ सूत्री होता है उसके कर्मों की हानि निश्चित रूप से हो जाया करती है। राग में—हर्ष में—मान में—द्रोह में—पाप कर्म्म में और अप्रिय कर्त्तव्य में दीर्घसूत्र होना प्रशस्त माना गया है। हे नृपोत्तम ! राजा को अपना मन्त्र संवृत रखने वाला सर्वदा होना चाहिये। जो राजा अपने मन्त्र को असंवृत रखता है उसको सभी आपत्तियां निश्चित रूप से आ जाया करती है। जिस राजा के कार्य्य किये जाने पर ही लोगों को मालूम हुआ करते हैं और हे महाभाग ; आरम्भ किये हुये हुये या पूर्व में नहीं ज्ञात होते हैं उस राजा के वश में यह समग्र वसुधा हुआ करती है। राज्य का मूलतत्व मन्त्र ही सदा होता है इसलिए मन्त्र को पूर्ण रूप से सुरक्षित रखना चाहिए। मन्त्र के भेद से होने वाले भय से राजाओं को सदा उसे पूर्ण रक्षित रखना आवश्यक है। मन्त्र के ज्ञाता के द्वारा सुसाधित मन्त्र सभी सम्पत्तियों का और सुख का देने वाला हुआ करता है। मन्त्र के छल से बहुत से राजा लोग विनष्ट हो गये हैं। आकार—इङ्गित—गति—चेष्टा—भाषित—नेत्र तथा मुख की विकृति—इनके द्वारा अन्तर्गत मन का ज्ञान हो जाया करता है और जो नीति शास्त्र में कुशल होते हैं वे सभी कुछ मन का भाव जान लिया करते हैं और जो ऐसे कुशल हैं उनके वश में यह सम्पूर्ण वसुन्धरा रहा करती है।२९-३६।

भवतीह महीपाले सदा पार्थिनन्दन !।
नैकस्तु मन्त्रयेन्मन्त्रं राजा न बहुभिः सह।३७
नारोहेद्विषमां नावमपरीक्षितनाविकम्।
ये चास्य भूमिजयिनो भवेयुः परिपन्थिनः।३८
तानानयेद्वशे सर्वान् सामादिभिरुपक्रमैः।
यथा न स्यात् कृशीभावः प्रजानामनवेक्षया।३९

तथा राज्ञा प्रकर्त्तव्यं स्वराष्ट्रं परिरक्षता ।
महोद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ।४०
सोऽचिराद् भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः ।
भृतो वत्सो जातबलः कर्मयोग्यो यथा भवेत् ।४१
तथा राष्ट्रं महाभाग ! भृतं कर्मसहम्भवेत् ।
यो राष्ट्रमनुगृह्णाति राज्यं स परिरक्षति ।४२

हे पार्थिव नन्दन ! ऐसे परम—कुशल राजा के वश में यहाँ पर यह पृथ्वी वशीभूत रहा करती है । राजा को कभी एक अकेले ही मन्त्रणा नहीं करनी चाहिए और बहुतों के साथ भी अपने गुप्त मन्त्रों के विषय में मन्त्रणा नहीं करे । राजा को कभी भी विषम नौका पर समारोहण नहीं करना चाहिये जिसके नाविक के विषय में पहिले परीक्षण नहीं कर लिया हो । जो इसकी भूमि पर विजय प्राप्त करने वाले परिपन्थी हों उन सबको साम आदि उपक्रमों के द्वारा अपने वश में ले आना राजा का कर्त्तव्य होना चाहिए । जिससे प्रजाओं के अनवेक्षण से कृशीभाव न होने पावे । अपने राष्ट्र का परिरक्षण करने वाले नृपों को उसी भाँति करना चाहिए कि मोह से जो अनवेक्षण करके अपने राष्ट्र का अपनी ओर आकर्षण कर लेवे । जो ऐसा नहीं करता है वह नृप बान्धवों के सहित शीघ्र ही अपने राज्य से और जीवन से भी भ्रष्ट हो जाया करता है । अतएव ऐसा ही होवे जो भृत–वत्स—जातबल और कर्म के योग्य होवे । हे महाभाग ! राष्ट्र को उसी भाँति करे जो भृत और कर्म सह हो जावे । जो राष्ट्र पर अनुग्रह किया करता है वह राज्य का परिरक्षण करता है ।३७-४२।

सञ्जातमुपजीवेत्तु विन्दते स महत् फलम् ।
गृह्याद्धिरण्यधान्यञ्च महीं राजासु रक्षिताम् ।४३
महता तु प्रयत्नेन स्वराष्ट्राय च रक्षिता ।
नित्यं स्वेभ्यः परेभ्यश्च यथा माता यथा पिता ।४४

गोपितानि सदा कुर्यात् संयतानीन्द्रियाणि च ।
अजस्रमुपयोक्तव्यं फलन्तेभ्यस्तथैव च ।४५
सर्वं कर्मेदमायत्तं विधाने दैवमानुषे ।
तयोर्दैवमचिन्त्यञ्च पौरुषे विद्यते क्रिया ।४६
एवं महीं पालयतोऽस्य भर्तुर्लोकानुरागः परमो भवेत्तु ।
लोकानुरागप्रभवा च लक्ष्मीर्लक्ष्मीवयश्चापिपराचलक्ष्मी ।४७

जो संजात है उसको उपजीवित करे तो महान् फल वह प्राप्त किया करता है। वह राजा हिरण्य—धान्य और सुरक्षित मही का ग्रहण करता है। बड़े भारी प्रयत्न से अपने राष्ट्र की जो रक्षा करने वाला है वह नित्य ही अपने लोगों से और दूसरों से माता तथा पिता की भाँति ही समादर प्राप्त करता है। राजा का कर्त्तव्य है कि वह सदा इन्द्रियों को संयत एवं गोपित करे और निरन्तर उनसे उपयुक्त फल प्राप्त करना चाहिए।४३-४५। दैवमानुष विधान में सम्पूर्ण यह कर्म अधीन है उन दोनों में जो दैवी विधान है वह विशेष चिन्तन के योग्य नहीं है और पौरुष में ही क्रिया विधान रहा करती है।४६। इस प्रकार से इस मही के पालन करने वाले इस नृप का परम लोकानुराग हुआ करता है। जब लोक का अनुराग राजा में होता है तो उसी से समुत्पन्न होने वाली लक्ष्मी हुआ करती है और लक्ष्मीवान् की ही परालक्ष्मी होती है।४७।

—×—

९९—दैव और पुरुषार्थ में कौन बड़ा ?

दैवे पुरुषकारे च किं ज्यायस्तद्ब्रवीहि मे !
अत्र मे संशयो देव ! च्छेतुमर्हस्यशेषतः ।१
स्वमेव कर्म दैवाख्यं विद्धि देहान्तरार्जितम् ।
तस्मात्पौरुषमेवेह श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ।२

प्रतिकूलन्तथा दैवं पौरुषेण विहन्यते ।
मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यमुत्थानशालिनाम् ।३
येषां पूर्वकृतं कर्म सात्त्विकं मनुजोत्तम ! ।
पौरुषेण विना तेषां केषाञ्चिद्दृश्यते फलम् ।४
कर्मणा प्राप्यते लोके राजसस्य तथा फलम् ।
कृच्छ्रेण कर्मणा विद्धि तामसस्य तथा फलम् ।५
पौरुषेणाप्यते राजन् ! प्रार्थितव्यं फलं नरैः ।
दैवमेव विजानन्ति नराः पौरुषर्जिताः ।६
तस्मात्त्रिकालं संयुक्त दैवन्तु सफलंभवेत् ।
पौरुषं दैवसम्पत्या काले फलति पार्थिव ! ।७

महर्षि मनु ने कहा—हे देव । दैव और पुरुषकार में कौन बड़ा है ? यह मुझे बतलाइये । इसमें मुझे संशय हो रहा है सो इसका छेदन आप पूर्णतया कर दीजिये ।१। श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—दैव नाम वाला जो कर्म है वह भी अपना ही कर्म समझना चाहिये क्योंकि वह वही अपना किया हुआ कर्म है जो दूसरे (प्रथम) देह के द्वारा अर्जित किया गया है । इसीलिये मनीषी लोग इस संसार में पौरुष को ही श्रेष्ठ कहा करते हैं ।२। यदि दैव प्रतिकूल भी होता है तो उसका पौरुष के द्वारा हनन हो जाया करता है । ऐसा देखा जाता है कि जो मंगल आचार से युक्त और नित्य ही उत्थानशाली लोग होते हैं वे पौरुष से प्रतिकूल दैव को विनिष्ट कर देते हैं ।३। हे मनुओत्तम ! जिन पुरुषों का पूर्व जन्मों में किया हुआ सात्त्विक धर्म होता है ऐसे कुछ पुरुषों का अच्छा फल बिना ही पौरुष के किये देखने में आता है ।४। लोक में राजस कर्म का फल कर्म के द्वारा ही प्राप्त किया जाता है । तामस कर्म का फल कठिन कर्म्म के द्वारा समझ लो ।५। हे राजन् ! पौरुष के द्वारा मनुष्यों को प्रार्थित फल की प्राप्ति हो जाया करती है । जो मनुष्य पौरुष से वर्जित हुआ करते हैं वे तो केवल एक दैव को ही जाया

करते हैं।६। इसलिये त्रिकाल से संयुक्त दैव सफल हुआ करता है। हे पार्थिव ! पौरुष जो है वह दैव की सम्पति से समय पर फल दिया करता है।७।

दैवं पुरुषकारश्च कालश्च पुरुषोत्तम ! ।
त्रयमेतन्मनुष्यस्य पिण्डितं स्यात् फलावहम् ।८
कृष्टिवृष्टिसमायोगं दृश्यन्ते फलसिद्धयः ।
तास्तु काले प्रदृश्यन्ते नैवाकाले कथञ्चन ।९
तस्मात्सदैव कर्त्तव्यं सधर्मं पौरुषं नरैः ।
विपत्तावपि यस्येह परलोके ध्रुवं फलम् ।१०
नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान् न च दैवपरायणाः ।
तस्मात्सर्वंप्रयत्नेन आचरेद्धर्ममुत्तमम् ।११
त्यक्त्वाऽलसान् दैवपरान् मनुष्या—
नुत्थानयुक्तान्पुरुषान् हि लक्ष्मीः ।
अन्विष्य यत्नात् वृणुयान्नृपेन्द्र !
तस्मात्सदोत्थानवता हि भाव्यम् ।१२

हे पुरुषोत्तम ! दैव-पुरुषकार और काल—ये तीनों का तिगड्डा पिण्डित होकर ही मनुष्य को फल देने वाला हुआ करता है।८। कृष्टि और वृष्टि के समान ही योग फल सिद्धियों के दिखलाई दिया करते हैं। वे काल के उपस्थित होने पर ही अच्छी तरह से दिखलाई दिया करते हैं और असमय में किसी भी प्रकार से दिखलाई नहीं देते हैं। इससे मनुष्यों को सदैव धर्म के सहित पौरुष करना ही चाहिये। चाहे विपत्ति भी क्यों न हो, पुरुषकार करे जिसका इस लोक में और परलोक में निश्चित फल होता है। जो आलसी नर होते हैं वे और जो केवल दैव को ही मानने में परायण होते हैं वे लोग अर्थों की प्राप्ति नहीं किया करते हैं। इसलिये सभी प्रकार के प्रयत्नों से उत्तम धर्म का समाचरण करना चाहिए। हे नृपेन्द्र ! यह लक्ष्मी अलस दैव-परायण मनुष्यों को त्याग

करके उत्थान से युक्त पुरुषों को ही खोज करके यत्नपूर्वक वरण किया करती है। इसी कारण से मनुष्य को सदा उत्थान वाला ही होना चाहिए।९-१२।

१००—राजधर्म वर्णन में साम प्रयोग वर्णज

उपायांस्त्वं समाचक्ष्व सामपूर्वान् महाद्युते !।
लक्षणञ्च तथा तेषां प्रयोगञ्च सुरोत्तम !।१
सामभेदस्तथा दानदण्डञ्च मनुजेश्वर !।
उपेक्षा च तथा माया इन्द्रजालञ्च पार्थिव।२
प्रयोगा: कथिता: सप्त तन्मे निगदत: शृणु।
द्विविधं कथितं साम तथ्यञ्च तथ्यमेव च।३
तत्राप्यतथ्यं साधूनामाक्रोशायैव जायते।
यत्र साधु: प्रयत्नेन सामसाध्यो नरोत्तम।४
महाकुलीना ऋजवो धर्मंनित्या जितेन्द्रिया:।
सामसाध्या न चातथ्यन्तेषु सामप्रयोजयेत्।५
तथ्यं साम च कर्तव्यं कुलशीलादि वर्णनम्।
तथा तदुपचाराणां कृतानाञ्चैव वर्णनम्।६

महर्षि मनु ने कहा—हे महाद्युति वाले ! हे सुरोत्तम ! अब आप साम पूर्वक जो उपाय हों उनका वर्णन कीजिए। उन उपायों का लक्षण और प्रयोग भी बतलाने की कृपा कीजिये।१। श्रीमत्स्य भगवान् ने कहा—हे मनुजेश्वर ! हे पार्थिव ! साम, भेद, दान, दण्ड, उपेक्षा, माया और इन्द्रजाल—ये सात प्रयोग कहे गये हैं। मैं अब उनको कहता हूँ सो आप मुझसे उनका श्रवण करलो। यह साम दो प्रकार का कहा गया है। एक तथ्य साम होता है और दूसरा अतथ्य

साम हुआ करता है। २-३। इन दोनों में अतथ्य साम साधु पुरुषों के आक्रोश के लिये ही हुआ करता है। हे नरोत्तम! उनमें प्रयत्नपूर्वक साधु साम ही साध्य होना चाहिये।४। महान् कुलीन, हुआ करते हैं। उनमें कभी भी अतथ्य साम का प्रयोग नहीं करना चाहिये। तथ्य साम का ही प्रयोग करना चाहिये जिसमें कुल और शील आदि का वर्णन होता है तथा किये हुए उसके उपचारों का वर्णन किया जाता है। ।५-६।

अनयैव तथा युक्त्या कृतज्ञाख्यापन स्वकम्।
एवं साम्ना च कर्त्तव्या वशगा धर्मतत्परा: ।७
साम्ना यद्यपि रक्षांसि गृह्णन्तीति परा श्रुति:।
तथाप्येतदसाधूनां प्रयुक्तं नोपकारम्।८
अतिशङ्कितमित्येवं पुरुषं सामवादिनम्।
असाधवो विजानन्ति तस्मात्तत्तेषु वर्जयेत्।९
ये शुद्धावंशा ऋजव:प्रणीता धर्मेस्थिता: सत्यपराविनीता:
ते सामसाध्ता:पुरुषा:प्रदिष्टा मानोन्नता ये सततञ्च राजन्।१०

इसी युक्ति से अपनी कृतज्ञता का ख्यापन इस प्रकार से साम के द्वारा धर्म में परायण मनुष्य अपने वशवर्ती करने चाहिए।७। यद्यपि साम के द्वारा राक्षस भी ग्रहण किये जाते हैं—ऐसी पराश्रुति है तो भी असाधु पुरुषों में प्रयोग किया हुआ यह–कभी उपकार करने वाला नहीं होता है।८। जो असाधु पुरुष होते हैं वे सामवादी पुरुष को अतिशङ्कित है—ऐसा ही हमेशा जाना करते हैं। इसीलिए इस साम का प्रयोग उनमें वर्जित ही कर देना चाहिए। जो शुद्ध वंश वाले-सरल सीधे-प्रणीत-धर्म में स्थित-सत्य परायण और विनीत पुरुष हैं उन्हीं पुरुषों को साम के द्वारा साध्य कहा गया है। हे राजन्! जो निरन्तर ही मानोन्नत होते है वे ही साम से साध्य हुआ करते हैं।९-१०।

१०१–राजधर्म वर्णन में भेद प्रयोग वर्णन

परस्परन्तु ये दुष्टाः क्रुद्धा भीतावमानिताः ।
तेषां भेदं प्रयुञ्जीत भेदसाध्या हि ते मताः ।१
ये तु येनैव दोषेण परस्मान्नापि बिभ्यति ।
ते तु तद्दोषपातेन भेदनीया भृशन्ततः ।२
आत्मीयां दर्शयेदाशां परस्माद्दर्शयेद्भयम् ।
एवं हि भेदयेद्भिन्नान् यथावद्वशमनायेत् ।३
संहितानि विना भेदं शक्रेणापि सुदुःसहाः ।
भेदमेव प्रशंसन्ति तस्मान्नयविशारदः ।४
स्वमुखेनाश्रयेद्भेदम्भेदम्परमुखेन च ।
परीक्ष्य साधु मन्येत भेदं परमुखाच्छ्रुतम् ।५
सद्यः स्वकार्यमुद्दिश्य कुशलैर्येहि भेदिताः ।
भेदितास्ते विनिर्दिष्टा नैव राज्ञार्थवादिभिः ।६
अन्तःकोपो वहिःकोपो यत्र स्यातां महीक्षिताम् ।
अन्तःकोपो महांस्त्रत नाशकः पृथिवीक्षिताम् ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—जो दुष्ट पुरुष परस्पर क्रुद्ध—भीत और अवमानित हैं । उनका भेद प्रयुक्त करना चाहिये क्योंकि वे लोग भेद के द्वारा ही साध्य होते हैं—ऐसा माना गया है ।१। जो लोग जिस ही दोष से दूसरे से भी नहीं करते हैं ये उस दोष के पात से अत्यन्त ही भेदन करने के योग्य होते हैं ।२। अपनी आशा को दिख–लावे और दूसरे से भय का प्रदर्शन करना चाहिए । इसी प्रकार से मित्रों का भेदन करे और यथावत् उनको अपने वश में लाना चाहिये ।३। जो संहित हैं वे बिना भेद के इन्द्र के द्वारा भी सुदुःसह हुआ करते हैं । इसलिये ऐसे अवसर पर नय शास्त्र के पण्डित लोग भेद की ही प्रशंसा किया करते हैं । अपने मुख से भेद का आश्रय करे और पराये मुख से

भेद ग्रहण करे। अतएव भली भाँति भेद की जाँच करके ही पराये मुख से सुने हुए भेद को मानना चाहिए ।४-५। तुरन्त ही अपने कार्य का उद्देश्य करके कुशल पुरुषों के द्वारा जो भेदित होते है वे ही भेदित विनिर्दिष्ट होते हैं और राजा के द्वारा अर्थवादियों से भेदित नहीं हुआ करते हैं ।६। जहाँ पर राजाओं का अन्त:कोप और बहि-कोप हुआ करता है। इनमें जो अन्त:कोप होता है वह महान् हैं और नाश करने वाला होता है जो नृपों का विनाशक है ।७।

सामना न कोपोबाह्यस्तु कोप: प्रोक्तो महीभृव: ।
महिषीयुवराजभ्यां तथासेनापतेर्नृप ।८
अमात्यमन्त्रिणाञ्चैव राजपुत्रे तथैवच ।
अन्त:कोपो विनिर्दिष्टो दारुणं पृथिवीक्षिताम् ।९
बाह्यकोपे समुत्पन्ने सुमहत्यपि पार्थिव: ।
शुद्धान्तस्तु महाभाग ! शीघ्रमेव जयी भवेत् ।१०
अपि शक्रसमो राजा अन्त:कोपेन नश्यति ।
सोऽन्त: कोप: प्रयत्नेन तस्माद्रक्ष्योभहीभृता ।११
परत: कोपमुत्पाद्य भेदेन विजियीषणा ।
ज्ञातीनां भेदनं कार्यं परेषां विजिगीषुणा ।१२
रक्ष्यञ्चैव प्रयत्नेन ज्ञातिभेदस्तथात्मन: ।
ज्ञातय: परितप्यन्ते सततं परितापिता: ।१३
तथापि तेषां कर्तव्यं सुगम्भीरेण चेतसा ।
ग्रहणं दानमानाभ्यां भेदस्तेभ्यो भयङ्कर: ।१४
न ज्ञातिमनुगृह्णान्ति न ज्ञाति विश्वसन्ति च ।
ज्ञातिभिर्भेदनायास्तु रिवस्ते ने पार्थिव: ।१५
भिन्ना हि शक्या रिपव:प्रभूता:स्वल्पेनसैन्यैन निहन्मानो ।
सुसंहतानाहि तदस्तुभेद: कार्योरिपूणानयशास्त्रविद्भि: ।१६

राजा का कहा हुआ कोप जो कोप बाह्य होता है वह साम के

द्वारा शान्त नहीं होता है। हे नृप ! राजाओं का अन्तःकोप महिषी-युवराज-सेनापति-अमात्य—मन्त्री और राजपुत्र का महान् दारुण विनिर्दिष्ट किया गया है।८-९। सुमहान् बाह्य कोप के समुत्पन्न होने पर भी हे महाभाग ! अन्तःकरण में शुद्ध सत्ता बहुत ही शीघ्र जयशील हुआ करता है।१०। भले ही कोई राजा इन्द्र के समान ही क्यों न होवे वह भी अन्तःकोप से विनष्ट हो जाया करता है। इस कारण से राजा के द्वारा प्रयत्न पूर्वक अन्तःकोप की रक्षा करनी चाहिए।११। विजय प्राप्त करने की इच्छा वाले के द्वारा भेद से दूसरे से कोप का उत्पादन करावे दूसरों के 'विजिगीषु' की ज्ञातियों का भेदन करना चाहिए।१२। तथा अपना ज्ञाति भेद अत्यधिक प्रयत्न से रक्षित रखना चाहिए। परितापित की हुई ज्ञातियाँ निरन्तर परितप्त हुआ करती हैं।१३। तो भी सुगम्भीर चित्त के रखने वाले को उनका दान तथा मान से ग्रहण करना चाहिए। उनके साथ भेद करना तो महान् भयङ्कर हुआ करता है।१४। राजाओं के द्वारा शत्रुगण ज्ञातियों से भेदन करने के योग्य होते हैं अर्थात् शत्रुओं की ज्ञातियों में भेद कर देना चाहिए और ऐसा कर देवे कि वे अपनी ज्ञातियों पर अनुग्रह तथा विश्वास बिल्कुल ही नहीं करें।१५। भेद के द्वारा भिन्न किये हुए बहुत से शत्रु भी युद्ध में बहुत ही थोड़ी सेना के द्वारा मारे जा सकते हैं नये शास्त्र के ज्ञाताओं को जो सुसहृत हो उनका भेद कर देवे और रिपुओं का भेद अवश्य ही कर देना चाहिए।१६।

१०२—राजधर्म वर्णन में दान प्रयोग वर्णन

सर्वेषामप्युपायानां दानं श्रेष्ठतमं मतम्।
सुदत्तेनेह भवति दानेनोभयलोकजित्।१
न सोऽस्ति राजन् ! दानेन वशगो यो न जायते।
दानेन वशगा देवा भवन्ती हसदानृणाम्।२

दानमेवोपजीवन्ति प्रजा: सर्वा नृपोत्तम ! ।
विप्रो हि दानवान् लोके सर्वस्यैवोपजायते ।३
दानवानचिरेणैव तथा राजा परान् जयेत् ।
दानवानेव शक्नोति संहतान् भेदितुं परान् ।४
यद्यप्यलुब्धगम्भीरा: पुरुषा: सागरोपमा: ।
न गृह्णन्ति तथाप्येते जायन्ते पक्षपातिन: ।५
अन्यत्रापि कृतं दान करोत्यन्यान्यथा वशे ।
उपायेभ्य: प्रशंसन्ति दानं श्रेष्ठतमं जना: ।६
दानं श्रेष्ठतमं पुंसां दानं श्रेष्ठतमं परम् ।
दानवानेव लोकेषु पुत्रत्वे ध्रियते सदा ।७
न केवल दानपरा जयन्ति भूलोकमेकं पुरुषप्रवीरा: ।
जयन्ति ते राजसुरेन्द्रलोकं सुदुर्जयं यो विबुधाधिवासा ।८

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—ये जितने भी उपाय बतलाये गये हैं उन सब में दान का उपाय सबसे परम श्रेष्ठ उपाय माना गया है । यहाँ संसार में अच्छी तरह से दिए हुए दान से मनुष्य उभय लोकों का विजेता हो जाया करता है ।१। हे राजन् ! इस लोक में ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है जो दान के द्वारा वशवर्ती न हो जावे । यह दान तो एक ऐसा उत्तम साधन है कि इस दान से सदा मनुष्यों के वश में देवगण भी आ जाया करते हैं ।२। हे नृपोत्तम ! सम्पूर्ण प्रजा दान को ही समाश्रित कर के उपजीवित रहा करती हैं । इस लोक में विप्र तो सबका ही दानवान् उत्पन्न हुआ करता है ।३। दान देने वाला राजा बहुत ही शीघ्र शत्रुओं को जीत लिया करता हैं और जो दान वाला होता है वही संहत परों को भेद युक्त कर सकता है ।४। यद्यपि ऐसे भी पुरुष होते हैं जो अलुब्ध और गम्भीर सागर के समान हैं जो ग्रहण नहीं किया करते हैं तो भी पक्षपाती हो जाते हैं ।५। अन्यत्र भी किया हुआ दान किस तरह से अन्यों को वश में करा दिया करता है किन्तु मनुष्य उपायों से दिये हुए दान को

परम श्रेष्ठ तप कह कर इसकी प्रशंसा किया करते है। यह दान ही पुरुष का परम श्रेष्ठ साधन होता है और दान की परम श्रेष्ठता कही जाती है। जो दानवान् होता है वह ही लोक में सदा पुत्रत्व में धारण किया जाता है।६-७। जो दान परायण प्रवर पुरुष होते हैं वे केवल एक इस भूलाक को ही नहीं जीतते हैं वे तो सुदुर्जय राज सुरेन्द्रलोक को भी जीत लिया करते हैं जो देवगणों के निवास का स्थल होता है।८।

—×—

१०३—राजधर्म वर्णन में दण्डोपाय वर्णन

न शक्या वशे कर्त मुपायत्रितयेन तु।
दण्डेन तान् वशीकुर्यात् दण्डो हि वशकृन्नृणाम्।१
सम्यक् प्रणयनं तस्य तथा कार्यं महीक्षिता।
धर्मशास्त्रानुसारेण स सहायेन धीमता।२
तस्य सम्यक् प्रणयनं यथाकार्यं महीक्षिता।
वानप्रस्थांश्च धर्मज्ञान्निर्मतान्निष्परिग्रहान्।३
स्वदेशे परदेशे वा धर्मशास्त्रविशारदान्।
समीक्ष्य प्रणयेद्दण्डं सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम्।४
आश्रमी यदि वा वर्णी पूज्यो वाऽथ गुरुर्महान्।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मेण तिष्ठति।५
अदण्ड्यान् दण्डयेद्राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
इह राज्यात्परिभ्रष्टो नरकञ्च प्रपद्यते।६
तस्माद्राजा विनीतेन धर्मशास्त्रानुसारतः।
दण्डप्रणयनं कार्यं लोकानुग्रहकाम्यया।७

श्री मत्स्य भगवान ने कहा—जो मनुष्य साम—दाम और भेद—इन तीनों उपायों से भी वश में नहीं किये जा सकते हैं उनको दण्ड से

ही अपने वश में करना चाहिए क्योंकि गूढ़ दण्ड ऐसा साधन है जो मनुष्यों को वश में कर देने वाला होता है ।१। राजा के द्वारा इस दण्ड का प्रणयन भली भाँति किया जाना चाहिए और धीमान् किसी सहायक के साथ एवं धर्म शास्त्र के अनुसार ही दण्ड का प्रयोग करे ।२। राजा के द्वारा उस दण्ड का प्रणयन जिस प्रकार से करना उचित है वह बहुत अच्छा होना चाहिए । वानप्रस्थ—धर्म के ज्ञाता-ममता से रहित-निष्प-रिग्रह—अपने या पराये देश में धर्म शास्त्र के महा पण्डितों को भली भाँति परीक्षण करके दण्ड का प्रणयन करना चाहिए क्योंकि इस दण्ड में सभी कुछ प्रतिष्ठित होता है ।३-४। किसी आश्रम में संस्थित हो—वर्णी (ब्रह्मचारी) हो—पूज्य-महान् और गुरु हो तो ऐसा पुरुष राजा के द्वारा दण्ड देने के योग्य नहीं हुआ करता है क्योंकि वह तो अपने धर्म में संस्थित रहता है । निष्कर्ष यह है कि जो भी कोई अपने धर्म के मार्ग पर भली भाँति चल रहा है वह कभी भी दण्डनीय नहीं होता है ।५। जो राजा दण्ड देने के अयोग्य पुरुषों को दण्डित करता है और दण्ड देने के योग्य हों उनको दण्ड नहीं देता है वह राजा यहाँ पर राज्य से परि-भ्रष्ट होकर अन्त में नरक का गामी होता है ।६। इस कारण से विनीत भाव वाले राजा के द्वारा लोकों के ऊपर अनुग्रह करने की कामना से धर्म्म शास्त्र के अनुसार ही दण्ड का प्रणमन करना चाहिए ।७।

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति निर्भय: ।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति ।८
बालवृद्धातुरयतिद्विजस्त्रीविधवायत: ।
मात्स्यन्यायेन भक्ष्येरन् यदि दण्डं न पातयेत् ।९
देवदैत्योरगगणा: सर्वे भूतपतत्त्रिण: ।
उत्क्रामयेयुर्मर्यादां यदि दण्डं न पातयेत् ।१०
एष ब्रह्माभिक्षापेषु सर्वं प्रहरेणेषु च ।
सर्वविक्रमकोपेषु व्यसाये च तिष्ठति ।११

पूजयन्ते मण्डिनो देवैर्न पूज्यन्ते त्वमण्डिन: ।
न ब्राह्मण विधारतारं न पूषार्यमणावपि ।१२
यजन्ते मानवा: केचित् प्रशान्ता: सर्वकर्मसु ।
रुद्रमग्निञ्च शक्रञ्च सूर्याचन्द्रमसौ तथा ।१३
विष्णुं देवगणांश्चान्यान् दण्डिन: पूजयन्ति च ।
दण्ड: शास्ति प्रजा: सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।१४

जहाँ पर श्याम लोहिताक्ष दण्ड निर्भय होकर चरण किया करता है वहाँ पर प्रजा को कोई भी मोह नहीं होता है, यदि नेता अच्छी प्रकार से देखता है ।८। यदि दण्ड का पालन नहीं किया जाता है तो बालक—वृद्ध-आतुर-यति-द्विज-स्त्री विधवा इनको मत्स्य न्याय से ही दुष्ट लोग खा जाया करते हैं । यदि दण्ड का पालन नहीं किया जाता है तो देव, दैत्य, उरग गण, सब भूत और पतत्रि मर्यादा का उत्क्रमण कर देवें ।९-१०। यह ब्रह्माभिशापों में—समस्त प्रहरणों में—सब निक्रम कोपों में और व्यवसाय में स्थित रहा करता है ।११। दण्डी देवों के द्वारा पूजे जाया करते हैं और जो अदण्डी होते हैं वे नहीं पूजे जाते हैं । विधाता ब्रह्मा और पूषा अर्यमा की भी पूजा नहीं करते हैं । समस्त कर्मों में कुछ प्रशान्त मानव यजन किया करते हैं । रुद्र, अग्नि, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु, देवगण और अन्य दण्डिगण की पूजा करते हैं । दण्ड ही प्रजा का शासन किया करता है और दण्ड ही सब प्रजा का अभिरक्षण किया करता है ।१२-१४।

दण्ड: सुप्तेषु जागर्ति दण्ड धर्मं विदुर्बुधा: ।
राजदण्डभयादेव पाप: पापं न कुर्वते ।१५
यमदण्डभयादेके परस्परभयादपि ।
एवं सांसिद्धिक लोके सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम् ।१६
अन्धे तमसि मज्जेपुर्यदि दण्डं न पातयेत् ।
यस्माद्दण्डो यमयति अदण्ड्यान्दमयत्यपि ।

दमनाद्दण्डनाच्चैव तस्माद्दण्डं विदुर्बुधा ।१७
दण्डस्य भीतैस्त्रिदशैः समेतैर्भागोधृतः शूलधरस्य यज्ञे ।
दत्तं कुमारे ध्वजिनीपतित्वं वरं शिशूनाञ्च भयाद्बलस्य ।१८

सुप्त हुओं में दण्ड ही जागता है और बुध लोग दण्ड को ही धर्म्म जानते हैं। राजा के द्वारा प्राप्त होने वाले दण्ड के भय से ही पापी लोग पाप कर्म नहीं किया करते हैं।१५। कुछ लोग यमराज के द्वारा मिलने वाले दण्ठ के भय से और पारस्परिक दण्ड के भय से भी पाप कर्म नहीं करते हैं। इस प्रकार से इस सांसारिक लोक में सभी कुछ दण्ड में ही प्रतिष्ठित है।१६। यदि दण्ड का पातन नहीं किया जावे तो सब लोक अँधतम में मज्जन किया करें। क्योंकि दण्ड दमन किया करता है और जो अदण्डनीय है उनका भी दमन किया करता है। दमन करने से और दण्ड न करने से बुध लोग इसको दण्ड कहते हैं। दण्ड से भीत हुए समेत देवों ने यज्ञ में भगवान् शूलधर का भाग घृत किया था कुमार में सेना-पतित्व का पद दिया था और बल के भय से शिशुओं का वर दिया था।१७-१८।

१०४—राजधर्म वर्णन में देवसाम्यत्व वर्णन

दण्डप्रणयनार्थाय राजा सृष्टिः स्वयम्भुवा ।
देवभागानुपादाय सर्वभूतादिगुप्तये ।१
तेजसा यदमु कश्चिन्नैव शक्नोति वीक्षितुम् ।
ततो भवति लोकेषु राजा भास्करवत्प्रभुः ।२
यदास्य दर्शने लोकः प्रसादमुपगच्छति ।
नयनानन्दकारित्वात्तदा भवति चन्द्रमाः ।३
यथा यमः प्रियद्वेष्ये प्राप्ते कालेप्रयच्छति ।
तथा राज्ञा विधातव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम् ।४

वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एव प्रदृश्यते ।
तथा पापान्निगृह्णीयाद् व्रतमेतद्धि वारुणम् ।५
परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यति मानवः ।
तदा प्रकृतयो यस्मिन् स चन्द्रप्रतिमो नृपः ।६
प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्सर्वकर्मसु ।
दुष्टसामन्तहिंस्रेषु राजाग्नेयव्रते स्थितः ।७

श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—भगवान् स्वयम्भू ने दण्ड के प्रणयन के ही लिये राजा का सृजन किया था, और इस की सृष्टि देवों के भागों को ग्रहण करके समस्त भूतों की रक्षा की गयी थी ।१। राजा में बहुत तेज होता है और तेज कोई भी इसको देख नहीं सकता है । इसके अनन्तर ही लोकों में राजा भगवान् भास्कर के ही समान प्रभु हुआ करता है । जिस समय में इस राजा के दर्शन में लोक प्रसाद की प्राप्ति किया करता है उस समय में यह नयनों को आनन्दकारी होने से चन्द्रमा हो जाता है ।२-३। जिस प्रकार से यमराज प्रिय या द्वेष्य कोई कैसा भी हो काल आने पर वह दूत भेजकर बुला ही लेता है उसी भाँति राजा को भी प्रजा के साथ करना चाहिए इसे यमव्रत कहते हैं । वरुण के द्वारा जिस तरह पाशों से बद्ध होकर ही दिखलाई दिया करता है उसी भाँति पापों से निगृहीत करे—यही वारुण व्रत कहलाता है ।४-५। जिस तरह परिपूर्ण चन्द्रमा का दर्शन प्राप्त करके मानव परम हर्षित हुआ करता है उसी भाँति जिसमें प्रकृतियाँ है और नृप चन्द्रमा के समान ही होता है । राजा नित्य ही समस्त कर्मों में प्रताप से युक्त अत्यन्त तेजस्वी होता है । दुष्ट सामन्त और हिंसक जीवों में राजा आग्नेय व्रत में स्थित रहा करता है ।६-७।

यथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ।
इन्द्रस्यार्कस्य वातस्य यमस्य वरुणस्य च ।८
चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्चतेजोव्रतं नृपश्चरेत् ।

वार्षिकांश्चतुरो मासान् यथेन्द्रोऽप्यथवर्षति ।९
तथाभिवर्षेत्स्वंराज्यकाममिन्द्रव्रतस्मृतम् ।
अष्टौमासान्यथादित्यस्तोयंहरतिरश्मिभि: ।
तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यकर्मव्रतं हितत् ।१०
प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुत: ।
तथा चारै: प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ।११

जिस तरह से सब भूतों का विशेष मरण करने वाले का पार्थिव व्रत होता है । इन्द्र, सूर्य, वायु यम, वरुण, चन्द्र अग्नि और पृथिवी का तेजोव्रत नृप को चरण करना चाहिए । वर्षा के चार मासों में जिस तरह से इन्द्र देव वर्षा किया करते हैं उसी भाँति से राजा को अपने राज्य में प्रजा की कामनाओं की पूर्ति वर्षा भली भाँति करनी चाहिए—इसी को इन्द्रव्रत कहा जाता है । जिस तरह से आठ मास तक सूर्य्य अपनी किरणों के द्वारा जल का हरण किया करता है उसी तरह से राजा राष्ट्र से कर का आहरण करे—यही नित्य कर्मव्रत कहा गया है ।८-१०। मारुत समस्त भूतों में प्रवेश करके जिस तरह से सचरण किया करता है वैसे ही चारों के द्वारा राजा को प्रवेश करना चाहिए यही मारुत व्रत कहा जाता है ।११।

१०५—ग्रह यज्ञादि का विधान वर्णन

ग्रहयज्ञ: कथ कार्यो लक्षहोम: कथं नृपै: ।
कोटिहोमोऽपिवा देव ! सर्वपामप्रणाशन: ।१
क्रियते विधिना येम यद्दृष्टं शान्तिचिन्तकै: ।
तत्सर्वं विस्तारद्देव । कथायत्र जनार्दन ।२
इदानीं कथयिष्यामि प्रसङ्गादेव ते नृप ।

राज्ञा धर्मसक्तेन प्रजानाञ्च हितेप्सुना ।३
ग्रहयज्ञः सदा कार्यो लक्षहोमसमन्वितः ।
नदीनां सङ्गमे चैव सुराणामग्रतस्तथा ।४
सुसमे भूमिभागे च दैवज्ञाधिष्ठितो नृपः ।
गुरुणा चैव ऋत्विग्भिः सार्द्धं भूमिं परिक्षयेत् ।५

खनेत् कुण्डञ्च तत्रैव सुसमं हस्तमात्रकम् ।
द्विगुणं लक्षहोमे तु कोटिहोमे चतुर्गुणम् ।६
युग्मासु ऋत्विजः प्रोक्ता अष्टौ वै वेदपारगाः ।
कन्दमूलफलाहारा दधिक्षीराशिनोऽपि वा ।७

महर्षिवर मनु ने कहा—हे देव ! नृपों के द्वारा ग्रह यज्ञ और लक्ष होम किस प्रकार से करना चाहिए ? अथवा कोटि होम भी किस तरह से करे जो कि सभी तरह के प्रबल पापों का विनाश करने वाला होता है ।१। जिस विधि से यह किया जाता है और जो शान्ति चिन्तक लोगों ने देखा है हे जनार्दन देव ! उसका वर्णन आप विस्तार पूर्वक सब कीजिएगा ।२। मत्स्य भगवान् ने कहा—हे नृप ! अब मैं प्रसङ्ग से ही तुमको कहूँगा । प्रजाओं के हित के चाहने वाले और धर्म में प्रसक्त नृप के द्वारा एक लाख होम से संयुत ग्रह यज्ञ सदा ही करना चाहिए । यह यज्ञ नदियों के सङ्गम में तथा देवों के आगे ही करना चाहिए ।३-४। दैवज्ञों से अधिष्ठित नृप को समतल भूमि के भाग में गुरुदेव और ऋत्विजों के साथ भूमिका परिक्षय करना चाहिए । वहीं पर सुसम और एक हाथ लम्बा चौड़ा कुण्ड भी खोदना चाहिए । एक लक्ष के होम करने में यह कुण्ड दुगुना बनावे तथा कोटि होम करना हो तो चौगुना बड़ा बनवाना आवश्यक है ।५-६। दोनों में वेदों के पारगामी आठ ऋत्विज बताये गये हैं जो कि कन्द-मूल और फलों के आहार करने वाले अथवा दधि तथा क्षीर के अशन करने वाले होने चाहिए ।७।

वेद्यां निधापयेच्चैव रत्नानि विविधानि च ।

सिकतापरिवेषाश्च ततोऽग्निञ्च समिन्धियेत् ।८
गायत्र्या दशसाहस्रं मानस्तोकेन षड्गुणः ।
त्रिंशद्ग्रहादिमन्त्रैश्च चत्वारो विष्णुदैवतैः ।९
कूष्माण्डैर्जुहुयात्पञ्च कुसुमाद्यैस्तु षोडश ।
होतव्या मशसाहस्रं बदिरैर्जातवेदसि ।१०
श्रियोमन्त्रेण होतव्याः सहस्राणि चतुर्दशः ।
शेषाः पञ्चसहस्रास्तु होतव्यास्त्विन्द्रदैवतैः ।११
हुत्वा शतसहस्रन्तु पुण्तस्नानं सुमङ्गलैः ।
कुम्भैः षोडशसङ्ख्यैश्च सहिरण्यैः सुमङ्गलैः ।१२
स्नापयेद्यजमानन्तु ततः शान्तिर्भविष्यति ।
एवं कृते ते यत्किञ्चिद्ग्रहपीडासमुद्भवम् ।१३
तत्सर्वं नाशमायाति दत्वा वै दक्षिणां नृप ! ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रधाना दक्षिणा स्मृता ।१४

जो वेदी निर्मित कराई जावे उसमें अनेक प्रकार के रत्नों को निधापित करे और उस वेदी का सिकता से परिवेष बनवाना चाहिए। इसके अनन्तर उसमें अग्नि को समिन्धित करे ।८। गायत्री से दश सहस्र आहुतियाँ देवे। मानस्तोक से षड्गुण—ग्रह आदि के मन्त्रों से तीस—जिनके विष्णु देवता हैं उस मन्त्रों से चार—कूष्माण्डों से पाँच—कुसुम आदि से षोडस और बादेरों से दस सहस्र अग्नि में हवन करना चाहिए। ।९।१०। श्री मन्त्र से चौदह सहस्र आहुतियों द्वारा हवन करे। शेष जो पाँच सहस्र आहुतियाँ हैं वे इन्द्र दैवत मन्त्रों से हवन करनी चाहिए। ।११। सौ सहस्र आहुतियों का हवन करके फिर पुण्य स्नान करे जो सुमङ्गल—सहिरण्य सोलह संख्या वाले कुम्भों द्वारा किया जाना चाहिए ।१२। इस तरह से यजमान का स्नपन करावे। इसके अनन्तर शान्ति होगी। इस तरह से करने पर जो कुछ भी कष्ट ग्रहों की पीड़ा से समुत्पन्न होगा वह सब नाश को प्राप्त हो जाता है। हे नृप ! फिर दक्षिणा

देवे । सब प्रकार के प्रयत्नों से अच्छी दक्षिणा देनी चाहिए क्योंकि यज्ञ में दक्षिणा परम प्रधान कही गयी है ।१३-१४।

हस्त्यश्वरथयानानि भूमिवस्त्रयुगानि च ।
अनुडुद्गोशतं दद्यादृत्विजां चैव दक्षिणाम् ।१५
यथा विभवसारन्तु वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।
मासे पूर्णे समाप्तस्तु लक्षहोमो नराधिप ।१६
लक्षहोमस्य राजेन्द्र ! विधानं परिकीर्तितम् ।
इदानीं कोटिहोमस्य शृणुत्वं कथयाम्यहम् ।१७
गङ्गातटेऽथ यमुनासरस्वत्योर्नरेश्वर ! ।
नर्मदा देविकायास्तु तटे होमो विधीयते ।१८
तत्रापि रित्विजः कार्या रविनन्दन ! षोडश ।
सर्वंहोमेतु राजर्षे ! दद्याद्विप्रेऽथ वा धनम् ।१९
रित्विगाचार्यसहितो दीक्षां साम्वत्सरीं स्थितः ।
चैत्रे मासे तु सम्प्राप्ते कार्तिके वा विशेषतः ।२०
प्रारम्भः करणीयो वा वत्सरं वत्सरं नृप !
यजमानः पयोभक्षी फलाशी च तथानघ ! ।२१

ऋत्विजों को दक्षिणा में हाथी—अश्व, रथ, यान भूमि, वस्त्र-युग, अनड्वान्, सौ गौ आदि समर्पित करे।१५। जैसा भी अपना वैभव हो उसी के सार के अनुसार रितुजों को दक्षिणा देवे और धन अतुल होते हुए भी दक्षिणा में कृपणता करने का वित्त शाठ्य नहीं करना चाहिए । हे नराधिप ! एक मास पूर्ण हो जाने पर यह एक लक्ष आहुतियों का होम समाप्त हो जाया करता है । हे राजेन्द्र ! यह एक लक्ष के होम का पूर्ण विधान कीर्त्तितकर दिया गया है । अब मैं कोटि होम के विधान को कहता हूँ, उसका आप श्रवण करिए।१६-१६। हे नरेश्वर गङ्गा के तट पर—यमुना सरस्वती के तीर पर नर्मदा अथवा देविका नदी के तट पर यह होम करे । हे रविनन्दन ! उसमें भी सोलह रित्विज नियोजित करने चाहिए । हे राजर्षे ! सब प्रकार के होम में

विप्र को धन देवे। रित्विक् और आचार्य के सहित साम्वत्सरी दीक्षा में स्थित होता हुआ चैत्र मास के प्राप्त होने पर या विशेष रूप से कार्त्तिक मास के आने पर इसका प्रारम्भ करना चाहिए। अथवा वर्ष प्रति वर्ष करे। हे नृप! हे अनघ! यजमान को पय का अशन करने वाला तथा फलों का आहार करने वाला होना चाहिए।१८-२१।

यवादिव्रीहयो माषास्तिलाश्च सह सर्षपैः।
पालाशाः समिधः शस्ता वसोर्धारातथोपरि।२२

मासेऽथ प्रथमे दद्यात् रित्विग्भ्यः क्षीरंभोजनम्।
द्वितीये कृशरां दद्याद्धर्मकामार्थंसाधिनीम्।२३
तृतीये मासि सैयावो देयो वै रविनन्दन!।
चतुर्थे मोदका देया विप्राणां प्रीतिमावहन्।२४
पञ्चमे दधिभक्तन्तु षष्ठे वै सक्तुभोजनम्।
पूपाश्च सप्तमे देया ह्यष्टमे घृतपूपकाः।२५
षष्ठयोदनञ्च नवमे दशमे यवषष्टिका।
एकादशे समाषन्तु भोजनं रविनन्दन!।२६

द्वादशे त्वथ सम्प्राप्ते मासे रविकुलोद्वहः।
षड्रसैः सह भक्ष्यैश्च भोजनं सार्वकामिकम्।२७
देया द्विजानां राजेन्द्र! मासि मासि च दक्षिणाः।
अहतवासाः सम्वीतो दिनार्द्धं होमयेच्छुचिः।२८

यव आदि व्रीहि, माष, तिल, और सर्षप पलाश की समिधायें प्रशस्त होती हैं तथा ऊपर में वसोर्धारा हो। प्रथम मास से रित्विजों के लिए क्षीर का भोजन देना चाहिए। दूसरे मास में कृशरा देवे जो धर्म काम और अर्थ की साधन करने वाली होती है।२२-२३। तीसरे मास में संयाव देवे। हे रविनन्दन! चतुर्थ मास में विप्रों की प्रीतिका आवहन करते हुए मोदक देना चाहिए। पाँचवें मासमें दधि और भात

देवे और छठवें मास में सत्तू का भोजन देना चाहिए। सतावें मास में पूषा देनी चाहिए तथा आठवें महीना में घृत पूपक का भोजन देवे। ।२४-२५। नवम मास में पष्ठयोदन देवे और दशम मासमें यव पष्टिका का भोजन देना चाहिए। हे रविनन्दन ! एकादश मास में माष के सहित भोजन देवे। हे रवि कुलोद्वह ! द्वादश मास के सम्प्राप्त होने पर—षटरसों के सहित भक्ष्यों से युक्त सर्व काम करने वाला भोजन द्विजों को देना चाहिए। हे राजेन्द्र ! मास-मास में दक्षिणा भी द्विजों को अवश्य ही देनी चाहिए। अहतवासा और सम्वीत होकर परमशुचि होवे और दिनार्द्ध में होम करना चाहिए ।२६-२८।

तस्मात् सदोत्थितैर्भाव्यं यजमानैः सह द्विजैः ।
इन्द्राद्यादिसुराणाञ्च प्रीणनं सर्वकामिकम् ।२६
कृत्वा सुराणां राजेन्द्र ! पशुघातसमन्वितम् ।
सर्वदानानि देवानामग्निष्टोमञ्च कारयेत् ।३०

एवं कृत्वा विधानेन पूर्णाहुतिः शते शते ।
सहस्रे द्विगुणा देया यावच्छतसहस्रकम् ।३१
पुरोडाशस्ततः साध्यो देवतार्थं च रित्विजैः ।
युक्तो वसन् मानवैश्च पुनः प्राप्ताचंनान् द्विजान् ।३२
प्रीणयित्वा सुरान् सर्वान् पितृ नेव ततः क्रमात् ।
कृत्वा शास्त्रविधानेन पिण्डानाञ्च समर्पणम् ।३३
समाप्तौ तस्य होमस्यविप्राणामथ दक्षिणाम् ।
समाञ्चैव तुलां कृत्वा बद्ध्वा शिक्यद्वयपुनः ।३४

आत्मानं तोलयेत्तत्र पत्नीञ्चैव द्वितीयकाम् ।
सुवर्णेन तथात्मानं रजतेन तथा प्रियाम् ।३५

इसलिए द्विजों के ही साथ में यजमानों को सदा उठना चाहिए। इन्द्रादि देवों का प्रीणन सब कामनायें पूर्ण करने वाला होता है ।२६। हे राजेन्द्र ! इस प्रकार से सुरों के पशुघात से समन्वित प्रीणन का

सम्पादन करके समस्त प्रकार के दान देवे तथा देवों का अग्निष्टोम करावे इस रीति से सब सम्पादन करके एक-एक शत पर पूर्णाहुति करनी चाहिए। जब सहस्र आहुतियाँ हो जावें तो यावच्छत सहस्रक द्विगुणी आहुति देनी चाहिए। इसके अनन्तर देवता के लिए रित्विजों के द्वारा पुरोडाश साध्य करे तथा युक्त होता हुआ वास करे। पुनः मानवों के द्वारा द्विजों का अर्चन करना चाहिए।३०-३२। सब सुरों का प्रीणन (प्रसन्नता) करके पितृगण के लिए क्रम से क्रम से शास्त्र में वर्णित विधान के द्वारा पिण्डों का समर्पण करना चाहिए।३३। उस होम की समाप्ति होने पर विप्रों को दक्षिणा के देनेकी व्यवस्था करनी चाहिए। तुला को समान करके दोनों पलड़ोंको भली भाँति बाँध करके उसमें अपने आपको और दूसरी अपनी पत्नी का तोलन करे। सुवर्ण से अपने आपको तोले और चाँदी से अपनी प्रिया का तोलन करे।३४-३५।

तोलयित्वा ददेद्राजा वित्तशाठ्यविवर्जितः।
ददेच्छतमहस्रन्तु रूप्यस्य कनकस्य च।३६
सर्वस्वं ददेत्तत्र राजसूयफलं लभेत्।
एतत्कृत्वा विधानेन विप्रांस्तांश्च विसर्जयेत्।३७
प्रीयतां पुण्डरीकाक्षः सर्वयज्ञेश्वरो हरिः।
तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टं सर्वं प्रीणितं भवेत्।३८
एवं सर्वोपघाते तु देवमानुषकारिते।
एवं शान्तिस्तवाख्याता यां कृत्वा सुकृती भवेत्।३९
न शोचेज्जन्ममरणे कृताकृतविचारणे।
सर्वतीर्थेषु यत्स्नानं सर्वयज्ञेषु यत्फलम्।४०
तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा यज्ञत्रयं नृप!।४१

राजा को इस भाँति तोलन करके वित्त की शठता का परित्याग करते हुए दान देना चाहिए।३६। अथवा अपना सर्वस्व दान कर देवे

तो वहाँ पर राजसूय यज्ञ के पुण्य-फल की प्राप्ति का लाभ करें। इस रीति से विधान के साथ सब कुछ करके फिर उन सब विप्रों को विसर्जित कर देना चाहिए। उस समय में यह प्रार्थना करनी चाहिए भगवान् समस्त यज्ञों के ईश्वर श्रीहरि पुण्डरीकाक्ष प्रसन्न होवें। उन प्रभु के पूर्णतया सन्तुष्ट हो जानेपर यह सम्पूर्ण जगत् तुष्ट हो जाया करता है और उनके प्रीणित होने पर सब प्रीणित हो जाते हैं। इस प्रकार से देवमानुषों के द्वारा कारिता सर्वोपघात होने पर इस रीति से आप की शान्ति बताई गई है जिसको करके तुम सुकृती हो जाओगे। जन्म और मरण के विषय में कुछ चिन्ता नहीं करे तथा कृत एवं अकृत के विषय में भी शोच न करे। हे नृप ! समस्त तीर्थों में स्नान करने का जो पुण्य-फल होता है और सब यज्ञों में जो फल होता है वह सम्पूर्ण फल ये तीन यज्ञ करके ही मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है।३७-३८।।

१०६—यात्राकाल विधान वर्णन

इदानीं सर्वधर्मज्ञ ! सर्वशास्त्रविशारद ! ।
यात्राकालविधानं मे कथयस्व महीक्षिताम् ।१
यदा मन्येत नृपतिराक्रन्देन बलीयसा ।
पार्ष्णिग्राहाभिभूतोऽयं तदा यात्रां प्रयोजयेत् ।२
दुष्टायोधा भृता भृत्याः साम्प्रतञ्च बलं मम ।
मूलरक्षासमर्थोऽस्मि तदा यात्रां प्रयोजयेत् ।३
अशुद्धपार्ष्णिनृपतिर्नतु यात्रां प्रयोजयेत् ।
पार्ष्णिग्राहाधिकं सैन्यंमूले निक्षिप्यचव्रजेत् ।४
चैत्र्यां वा मार्गशीर्ष्यां वा यात्रां यायान्नराधिपः ।
चैत्र्यां पश्येच्च नैदाघं हन्ति पुष्टश्च शारदीम् ।५

एतदेव विपर्यस्तं मार्गशीर्ष्यां नराधिपः ।
शत्रोर्वा व्यसने यायात् कालएव सुदुर्लभः ।६

महर्षि मनु ने कहा—हे सर्व धर्मज्ञ ! आप तो सभी शास्त्रों के महान् मनीषी हैं, इस समय में राजाओं की यात्रा-काल का जो कुछ विधान हो उसे आप कृपा करके मुझे बतलाइए ।१। श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—जिस समय में नृपति बलीयान् आक्रन्द से युक्त मान लेवे उस समय में पार्ष्णिग्राह् से अभिभूत इसको तीर्थ यात्रा की प्रयोजना करनी चाहिए । दुष्ट योधा—भूत भृत्य है इस प्रकार से इस समय में मेरा बल विद्यमान है । मैं इस समय में मूल रक्षा में समर्थ हूँ । उसी समय में यात्रा को प्रयोजित करना चाहिए ।२-३। जो नृपति अशुद्ध पार्ष्णि वाला हो उसे यात्रा प्रयोजित नहीं करनी चाहिए । पार्ष्णिग्राह से अधिक सैन्य को मूल में निक्षिप्त करके गमन करे ।४। नराधिप को चैत्री अथवा मार्गशीर्षी पूर्णिमा में यात्राके लिए गमन करना चाहिए । चैत्री में निदाघ के दृश्य को देखे और शारदी पुष्टि का हनन करता है ।५। यह ही मार्गशीर्षी में विपर्यस्त होता है । नराधिप शत्रु के व्यसनमें गमन करे क्योंकि यह काल ही सुदुर्लभ होता है ।६।

दिव्यान्तरिक्षक्षितिजैरुत्पातैः पीडितः परम् ।
षडक्षपीडासन्तप्तं पीडितञ्च तथा गहैः ।७
ज्वलन्ती च तथैवोल्का दिशं याञ्च प्रपद्यते ।
भूकम्पोल्का दिश याति याञ्चकेतुः प्रसूयते ।८
निर्घातश्च पतेद्यत्र तां यायाद्वसुधाधिपः ।
स बलव्यसनोपेतं तथा दुर्भिक्षपीडितम् ।९
सम्भूतान्तरकोपञ्च क्षिप्रं प्रायादरिं नृपः ।
यूकायाक्षीकबहुलं बहुपङ्कन्तथा बिलम् ।१०
नास्तिकं भिन्नमर्यादं तथा मङ्गलवादिनम् ।
अपेतप्रकृतिञ्चैव निःसारञ्च तथा जयेत् ।११

विद्विष्टनायकं सैन्यं तथा भिन्नं परस्परम् ।
व्यसनाशक्तनृपतिं बलं राजाभियोजयेत् ।१२
सैनिकानां न शस्त्राणिस्फुरन्त्यङ्गानियत्रच ।
दुःस्वप्नानि च पश्यन्ति बलन्तदभियोजयेत् ।१३
उत्साहबलसम्पन्नः स्वानुरक्तबलस्तथा ।
तुष्टपुष्टबलो राजा परानभिमुखो व्रजेत् ।१४

दिव्यान्तरिक्ष और क्षिति से समुत्पन्न उत्पातों से परम पीड़ित-षडक्ष पीड़ा से सन्तप्त तथा ग्रहों से पीड़ित—जलती हुई उल्का जिस दिशा को जाती है—भूकम्पोल्का जिस दिशा को जाती है और केतुको प्रसूत किया करती है । जहांपर निर्घात गिरता है उसी दिशाको राजा को गममें करना चाहिए । उस नृप को बल-व्यसन से युक्त—दुर्भिक्ष से पीड़ित और जिसके अन्दर कोप समुत्पन्न हो गया हो ऐसे शत्रु पर शीघ्र ही चढ़ाई नृपको कर देनी चाहिए । जिसमें यूका और मक्षिकायें बहुत हों—अधिक पङ्कयुक्त—बिल-नास्तिक भिन्न मर्यादा वाला-मंगल वादी अपेत प्रकृति वाला और निस्सार को जीत लेना चाहिए ।८-११। जिस राजा की सेना ऐसी हो कि उसके नायक से विद्वेष हो और जो परस्पर में भिन्न हो—जिस राजा की आसक्ति व्यसनों में हो ऐसे बल-हीन नृप के साथ अभियोग करना चाहिए अर्थात् युद्ध करे । जिसके सैनिकों के पास शस्त्र न हों और जिसमें अंग स्फुरित होते हों—जो बुरे स्वप्न देखते हों ऐसों पर बल का अभियोजन करना चाहिए । उत्साह और बल से युक्त—जिसकी सेना पूर्ण अनुराग वाली हों—तुष्ट एवं पुष्ट बल राजा ही अपने शत्रुओं से युद्ध करने की अभिमुख होवे । ।१२-१४।

शरीरस्फुरणे धन्ये तथा दुःस्वप्ननाशने ।
निमित्ते शकुने धन्ये जाते शत्रुपुरं व्रजेत् ।१५
ऋक्षेषु षटसु शुद्धेषु ग्रहेष्वनुगुणेषु च ।

प्रश्नकाले शुभे जाते परान् यायान्नराधिपः ।१६
एवन्तु दैवसम्पन्नस्तथा पौरुषसंयुतः ।
देशकालोपपन्नां तु यात्रां कुर्यान्नराधिपः ।१७
स्थले नक्रस्तु नागस्य तस्यापि सजले वशे ।
उलूकस्य निशि ध्वांक्षः सचतस्यदिवावशे ।१८
एवं देशञ्च कालञ्च ज्ञात्वा यात्रां प्रयोजयेत् ।१९
पदातिनागबहुलां सेनां प्रावृषि योजयेत् ।
हेमन्ते शिशिरे चैव रथवाजिसमाकुलाम् ।
खरोष्ट्रबहुलां सेनां तथा ग्रीष्मे नराधिपः ।२०
चतुरङ्गबलोपेतां वसन्ते वा शरद्यथ ।
सेना पदातिबहुला यस्य स्यात्पृथिवीपतेः ।२१
अभियोज्यो भवेत्तेन वा शत्रुर्विषममाश्रितः ।
गम्ये वृक्षावृते देशे स्थितं शत्रुन्तथैव च ।२२

परम धन्य अर्थात् अनुकूल शरीर के स्फुरण होने पर दुःस्वप्नों के नाश होने पर और अच्छे निमित्त एवं शकुनी के होने पर ही राजा को अपने शत्रु के नगर में प्रवेश करना चाहिए । नक्षत्रों के शुद्ध होने पर तथा ग्रहों के बिल्कुल अपने अनुकूल हो जाने पर ही जब प्रश्नकाल परम शुभ होवे तभी राजा को शत्रुओं के ऊपर चढ़ाई करनी चाहिए । इस प्रकारसे दैव (भाग्य) से सुसम्पन्न होकर पौरुषसे भी पूर्ण समन्वित राजा को देश तथा कालसे उत्पन्न यात्रा करनी चाहिए । स्थलमें नाग और सजल देश में नक्र के वशमें होने पर तथा रात्रिमें उलूक एवं दिन में ध्वांक्ष (कौआ) के वशगत होने पर ही इस प्रकार से देश तथा काल का ज्ञान प्राप्त करके राजा को अपनी यात्रा करनी चाहिए ।१५-१९। वर्षा ऋतु में ऐसी सेना को तैयार करे जिसमें पदाति सैनिक अधिक हों । हेमन्त और शिशिर रितु में अधिक रथों एवं अश्वों की समाकुलता होनी चाहिए । नराधिप को ग्रीष्म रितु में खर

और उष्ट्रोंकी अधिकता वाली सेना सज्जित करनी चाहिए।२०। बसन्त एवं शरद ऋतु में चतुरंग बल से समुपेत सेना बनानी चाहिए। जिसमें पदाति-अश्व-रथ और गज सभी समुचित संख्या में स्थित होवें। जिस राजा की सेना अधिक पदाति (पैदल) वाली हो उस विषम का आश्रय लेने वाला शत्रु राजाके द्वारा अभियोजित होना चाहिए। गमन करने के योग्य—वृक्षों से समावृत देश में स्थित शत्रु का अभियोजन करे। ।२१-२२।

किञ्चित् पङ्कं तथा यायाद् बहुनागोनराधिपः।
तथाश्वबहुलो यायाच्छत्रुं समं पथिस्थितम् ।२३
तमाश्रन्तो बहुलास्तांस्तु राजा प्रपूजयेत्।
खरोष्ट्रबलो राजा शत्रुर्बन्धेन संस्थितः ।२४
बन्धनस्थोऽभिवाज्योऽरिस्तथा प्रावृषि भूभुजा।
हिमपातयुते देशेस्थितं ग्रीष्मेऽभियोजयेत् ।२५
यवसेन्धनसंयुक्तः कालः पार्थिव ! हैमनः।
शरद्वसन्तौधर्मज्ञ ! कालौधारणौस्मृतौ ।२६
विज्ञाय राजा हितदेशकालौ दैवं त्रिकालञ्च तथैव बुद्ध्वा।
यायात्परंकालविदांमतेन सञ्चिन्त्य सार्द्धं द्विजमंत्रविद्भिः ।२७

बहुत अधिक नागों वाले नराधिप को कुछ पङ्क में उसी प्रकार से गमन करना चाहिए जिस तरह से बहुत अश्वों वाला राजा मार्ग में स्थित समान शत्रु का अभियोजन कर लेवे ।२३। उसके जो बहुत से आश्रय ग्रहण करने वाले हों उनका राजा को पूजन करना चाहिए। खरों और उष्ट्रों की बहुलता वाला शत्रु राजा जब बन्ध में संस्थित हो तो उस बन्धन में संस्थित शत्रु को राजा के द्वारा वर्षा ऋतु में अभियोजन करे। हे पार्थिव! यवस और ईंधन से संयुक्त काल हेमन्त होता है। हे धर्मज्ञ ! शरद् और वसन्त ये दोनों ऋतुएँ साधारण काल कहे गये हैं। राजा का कर्त्तव्य है कि उसे हितकर देश और काल को समझ

मे जो दक्षिण भाग है उसमें जो स्फुरण होता है उसे परम प्रशस्त कहा गया है। उसी भाँति से वाम भाग में पृष्ठ और हृदय का प्रस्फुरण भी शस्त होता है।२। महर्षि मनु ने कहा—हे भगवान्! अंगों का स्पन्दन और उसके शुभ एवं अशुभ का विचेष्टित होता है उसको विस्तारपूर्वक मेरे समक्ष में वर्णित कीजिए। इस भूमण्डल में उसी प्रकार का मनुष्य हो जावे।३। श्री मत्य भगवान् ने कहा—हे रविनन्दन! मूर्धा में स्पन्दन हो तो पृथ्वी का लाभ होता है—ललाट में स्फुरण हो तो स्थान की विशेष वृद्धि होती है—भ्रूओं में हो तो प्रिय का सगम होता है। नेत्र के भाग में स्पन्दन हो तो भृत्य की प्राप्ति होती है और दृग के उपान्त में प्रस्फुरण हो तो धन का आगम हुआ करता है। हे राजन्! विचक्षण पुरुषों ने देखा है कि मध्य भाग में स्पन्दन हो तो उत्कण्ठ का उपगम हुआ करता है। दृग्बन्धनमें और संगर (युद्ध) में बहुत ही शीघ्र जय का लाभ हुआ करता है। अपांग देश में होने से स्त्री का उपभोग होता है और श्रवण के अन्त में विस्फुरण हो तो प्रिय की श्रुति होती है। नासिका में स्पन्दन होने से प्रीति होती है और सौख्य होता है। अधरोष्ठ में स्पन्दन से प्रजा की प्राप्ति होती है। कण्ठ में भोग का लाभ और अंस देशों में स्पन्दन से भोग की वृद्धि हुआ करती है।४-।७।

सुहृत्स्नेहश्च बाहुभ्यां हस्ते चैव धनागमः।
पृष्ठे पराजयः सद्यः जयो वक्षःस्थले भवेत्।८
कुक्षिभ्यां प्रीतिरुद्दिष्टा स्त्रियाः प्रजननं स्तने।
स्थानभ्रंशो नाभिदेशे अन्त्रे चैव धनागमः।९
जानुसन्धौ परैः सन्धिर्बलवद्भिर्भवेन्नृप!।
दिशेकदेशनाशोऽथ जङ्घायां रविनन्दन!।१०
उत्तमं स्थानमाप्नोति पद्भ्यां प्रस्फुरणान्नृप!।
सलाभञ्चाध्वगमनं भवेत्पादतले नृप!।११
लाञ्छनं पिटकञ्चैव ज्ञेयं स्फुरणवत्तथा।

विपर्ययेण विहिता सर्वस्त्रीणां फलागमः ।
दक्षिणेऽपि प्रशस्तेऽङ्गे प्रशस्तं स्याद्विशेषतः ।१२
अतोऽन्यथा सिद्धिप्रजल्पनात्तु फलस्य गस्तस्य च निन्दितस्य
अनिष्टचिह्नोपगमे द्विजानां कार्यं सुवर्णो तु तर्पणंस्यात् ।१३

बाहुओं के स्फुरण से सुहृत् का स्नेह और हाथ में होने से धन का समागम हुआ करता है । पृष्ठ में होने से तुरन्त ही पराजय होती है तथा वक्षःस्थल में स्पन्दन से जय हुआ करता है । कुक्षियों में होने से प्रीति उपदिष्ट की गई है और स्तन में स्पन्दन से स्त्री के प्रजनन हुआ करता है । नाभि देश में प्रस्फुरण होने से स्थान का भ्रंश हुआ करता है तथा अन्त्रमें होने से धन का आगमन होता है । जानुओं की सन्धिमें प्रस्फुरण होनेसे परोंमें सन्धि होती है जो कि बहुत बलवान हुआ करते हैं । हे नृप ! हे रविनन्दन ! दिशा के एक देश में होने से नाश होताहै तथा जलंघा में स्पन्दन होतो उत्तम स्थान का लाभ होता है और पैरों में होने से लाभ के सहित मार्ग का गमन होता है । हे नृप ! पादतलमें होने से लाञ्छन लगता है और स्फुरण की ही भाँति फिर सभी जान लेना विपर्यय से फलागम हुआ करता है । प्रशस्त अंग दक्षिण में भी विशेष रूप से प्रशस्त होता है इसलिए अन्यथा सिद्धि के प्रजल्पन से प्रशस्त और निन्दित फल का । अनिष्ट चिन्हों के उपगम होने पर द्विजों का सुवर्ण के द्वारा तर्पण करना चाहिए ।८-१३।

१०८—स्वप्न दर्शन वर्णन

स्वप्नाख्यानं कथं देव ! गमने प्रत्युपस्थिते ।
दृश्यन्ते विविधाकाराः कथन्तेषां फलं भवेत् ।१

इदानीं कथयिष्यामि निमित्तं स्वप्नदर्शने ।
नाभिं विनान्यगात्रेषु तृणवृक्षसमुद्भवः ।२
चूर्णनं मूर्द्धिन कांस्यानां मुण्डनं नग्नता तथा ।
मलिनाम्बरधारित्वमभ्यङ्गः पङ्कदिग्धता ।३
उच्चात् प्रपतनञ्चैव दोलारोहणमेव च ।
अर्जनं पक्वलोहानां हयानामपि मारणम् ।४
रक्तपुष्पद्रुमाणाञ्च मण्डलस्य तथैव च ।
वराहर्क्षखरोष्ट्राणां तथा चारोहणक्रिया ।५
भक्षणं पक्वमांसानां तैलस्य कृसरस्य च ।
नर्तनं हसनञ्चैव विवाहो गीतमेव ।६
तन्त्रीवाद्यविहीनानां वाद्यानामभिवादनम् ।
स्रोतोऽवगाहगमनं स्नानं गोमयवारिणा ।७

महा महर्षि मनु ने कहा—हे देव ! कहीं पर गमन के प्रत्युपस्थित होने पर स्वप्न का आख्यान किस प्रकार से हुआ करता है ? ये स्वप्न तो अनेक एवं विभिन्न प्रकार वाले दिखलाई दिया करते हैं फिर उन सबका फल किस प्रकार से हुआ करता है ।१। श्री मत्स्य देव ने कहा—इस समय में मैं स्वप्न के दर्शन में जो निमित्त होता है उसेही बतलाता हूँ। केवल एक नाभिको छोड़कर शरीर के अन्य किसी भी अंग में तृण और वृक्षों की समुत्पत्ति—मस्तक का चूर्ण हो जाना—कांस्यों का मुण्डन तथा नग्नता—मलिन वस्त्रों का धारण करना, अभ्यंग, पङ्क से दिग्धता ऊँचे से पतन होना दोला पर समारोहण करना, पक्व लोहोंका अर्जन हयों का मारण, रक्त पुष्प वाले द्रुमों के मण्डल का तथा वराह, रीछ, खर और उष्ट्रों के ऊपर आरोहण करना—पके हुए मांस का भक्षण करना तथा तैल और कृसर का खाना, हँसना, विवाह, गीत, तन्त्री के द्वारा बजने वाले वाद्यों से रहित अन्य वाद्यों का अभिवादन करना, स्रोत में अवगाहन गमन करना, गोमयवारि से स्नान करना आदि ये सब दुःस्वप्न होते हैं ।२-७।

पङ्कोदकेन च तथा महीतोयेन चाप्यथ ।
मातुः प्रवेशो जठरे चितारोहणमेव च ।८
शक्रध्वजाभिपतनं पतनं शशिसूर्ययोः ।
दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पातानाञ्च दर्शनम् ।९
देवद्विजातिभूपालगुरूणां क्रोध एव च ।
आलिङ्गनं कुमारीणां पुरुषाणाञ्च मैथुनम् ।१०
हानिश्चैव स्वगात्राणां विरेकवमनक्रिया ।
दक्षिणाशाभिगमनं व्याधिनाभिभवस्तथा ।११
फलापहानिश्च तथा पुष्पहानिस्तथैव च ।
गृहाणाञ्चैव पातश्च गृहसम्मार्जनस्तथा ।१२
क्रीडा पिशाचक्रव्यादवानरक्षनरैरपि ।
परादभिभवश्चैव तस्माच्च व्यसनोद्भवः ।१३
काषायवस्त्रधारित्वं तद्वत् स्त्रीक्रीडनन्तथा ।
स्नेहपानावगाहाश्च रक्तमाल्यानुलेपनम् ।१४

पङ्क के मिश्रित जल से स्नान, मही तोय से स्नान, माता के उदर मे प्रवेश करना, चितापर समारोहण, शक्र ध्वज का गिरना, चाँद और सूर्य का पतन, दिव्यन्तरिक्ष भौमों का और उत्पातों का दर्शन, देव, द्विजाति, राजा और गुरुका क्रोध, कुमारियों का आलिगन, पुरुष मैथुन अपने गात्रों की हानि, विरेचन और वमन, दक्षिण दिशाकी ओर गमन करना, व्याधि से अभिभव, फल की अप हानि, पुष्प हानि, गृहों का गिरना, गृह का समार्जन, पिशाच, राक्षस, वानर, ऋक्ष और नरों के साथ क्रीड़ा करना, दूसरे से अभिभव और उससे ही व्यसन की उत्पत्ति गेरुआ वस्त्रों का धारण करना, स्त्री के साथ क्रीड़न, स्नेह पान और अवगाहन तथा रक्त माल्य और अनुलेपन करना ये सब दुःस्वप्न होते हैं ।८-१४।

एवमादीनि चान्यानि दुःस्वप्नानि विनिर्दिशेत् ।
एषां सङ्कथनं धन्यं भूयः प्रस्वापनन्तथा ।१५
कल्कस्नानन्तिलैर्होमो ब्राह्मणानाञ्च पूजनम् ।
स्तुतिश्च वासुदेवस्य तथा तस्यैव पूजनम् ।१६
नागेन्द्रमोक्षश्रवणं ज्ञेयं दुःस्वप्नाशनम् ।
स्वप्नास्तु प्रथमे यामे सम्वत्सरविपाकिनः ।१७
षड्भिर्मासैर्द्वितीये तु त्रिभिर्मासैस्तृतीयके ।
चतुर्थं मासमात्रेण पच्यते नात्र संशयः ।१८
अरुणोदयवेलायां दशाहेन फलम्भवेत् ।
एकस्यां यदि वा रात्रौ शुभं वा यदिवाशुभम् ।१९
पश्चाद्दृष्टो यस्तत्रतस्य पाकं विनिर्दिशेत् ।
तस्माच्छोभनकेस्वप्ने पश्चात् स्वप्नो न पश्यति ।२०

इस प्रकार के तथा ऐसे ही अन्य दुःस्वप्न हुआ करते हैं—ऐसा ही विनिर्देश करना चाहिए। ऐसे दुःस्वप्नों का भली भाँति कथन तथा ऐसे स्वप्न देखकर फिर स्वप्न करना अच्छा होता है इसका फल फिर बुरा नहीं रहा सकता है। कल्क स्नान, तिलों से होम और ब्राह्मणोंका पूजन, भगवान् वासुदेवका स्तवन तथा उनकाही पूजन और गजेन्द्रमोक्ष की कथा का श्रवण करना—इनसे स्वप्नों से होने वाले कुफल का नाश हो जाया करता है। स्वप्न यदि प्रथम ही याम होवे तो उसका फल एक वर्ष तक विपाक की दशा में पहुँचता है। दूसरे प्रहर में स्वप्न हो तो उसका फल छै मास में होता है। तीसरे रात्रि के प्रहर में स्वप्न देखे तो तीन मासों में फल हुआ करता है और चौथे प्रहर में स्वप्न जो दिखाई देता है उसका फल एक मास में हुआ करता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है। यदि अरुणोदय के समय में स्वप्न हो तो दश दिन में फल होता है। एक ही रात्रिमें शुभ और अशुभ स्वप्न हों तो जो पीछे दिखाई देता है उसी का पाक निर्दिष्ट करना चाहिए। इसी कारण से

यदि कोई अच्छा स्वप्न हो और पीछे स्वप्न नहीं देखता है तो अच्छा है अतएव अच्छा है अतएव अच्छा स्वप्न देखकर फिर सोना ही नहीं चाहिए ।१५-२०।

शैलप्रासादनागाश्ववृषभारोहणं हितम् ।
द्रुमाणां श्वेतपुष्पाणां गमनं च तथा द्विज ।२१
द्रुमतृणोद्भवो नाभौ तथैव बहुबाहुता ।
तथैव शीर्षत्वं फलितोद्भव एव च ।२२
सुशुक्लमाल्यधारित्वं सुशुक्लाम्बरधारिता ।
चन्द्रार्कताराग्रहण परिमार्जनमेव च ।२३
शक्रध्वजालिङ्गनञ्च तदुच्छ्रायक्रिया तथा ।
भूम्यम्बुधीनां ग्रसनं शत्रूणाञ्च वधक्रिया ।२४
जयो विवादे द्यूते च संग्रामे च तथा द्विज ।
भक्षणञ्चार्द्र मांसानां मत्स्यानां पायसस्य च ।२५
दर्शनं रुधिरस्यापि स्नानं वा रुधिरेण च ।
सुरारुधिरमद्यानां पानं क्षीरस्य चाथवा ।२६
अन्त्रैर्वा वेष्टनं भूमौ निर्मलं गगनं तथा ।
मुखेन दोहनं शस्तं महिषीणां तथा गवाम् ।२७
सिंहानां हस्तिनीनाञ्च वडवानां तथैव च ।
प्रसादो देवविप्रेभ्यश्च गुरुभ्यश्च तथा शुभः ।२८

अब अच्छे स्वप्न के विषय में बतलाया जाता है—नागेन्द्र, शैल अश्व, प्रासाद और वृषभ का समारोहण हितकर हुआ करता है। हे श्वेत पुष्पों वाले द्रुमों का गमन में आरोहण भी शोभन होता है। नाभि में द्रुम और तृणों का उद्भव तथा बहुत सी बाहुओं की उत्पत्ति हो जाना—बहुत सारे मस्तकों का होना और फलितोद्भव, सुन्दर शुक्ल मालाओं का धारण करना शुक्ल वस्त्रोंका धारण चन्द्र, सूर्य और तारा का ग्रहण, परिमार्जन शक्र की ध्वजा का आलिङ्गन, उसके उच्छ्राय की क्रिया भूमि तथा अम्बुधियों का ग्रसन, शत्रुओं के वध करने का कर्म,

विवाह संग्राम और द्यूत में जीत, आर्द्र माँस का भक्षण, मत्स्यों का भक्षण पायस का खाना, रुधिर का दर्शन रुधिर से स्नान, सुरा, रुधिर मद्य का पान करना अथवा क्षीर का पान, आँतों के द्वारा वेष्टन जो भूमि में हो, निर्मल गगन, मुख के द्वारा भैंसों तथा गौओं का दोहन प्रशस्त होता है। सिंहनियों का हाथिनियों का और बड़वाओं का भी दोहन प्रशस्त है। देव तथा विप्रों की प्रसन्नता और गुरु वर्ग का प्रसाद भी शुभ होता है।२१-२८।

अम्भसा त्वभिषेकस्तु गवां शृङ्गाश्रितेन वा ।
चन्द्राद् भ्रष्टेन वा राजन् ! ज्ञेयो राज्यप्रदो हि सः ।२९
राज्याभिषेकश्च तथाच्छेदनं शिरसस्तथा ।
मरणं वह्निदाहश्च वह्निदाहो गृहादिषु ।३०
लब्धिश्च राज्यलिङ्गानां तन्त्रीवाद्याभिवादनम् ।
तथोदकानां तरणं तथा विषमलंघनम् ।३१
हस्तिनीवडवानाञ्च गवाञ्च प्रसवो गृहे ।
आरोहणमथाश्वानां रोदनञ्च तथाशुभम् ।३२
वरस्त्रीणां तथालाभस्तथालिङ्गनमेव च ।
निगडैर्बन्धनं तथा तथा विष्ठानुलेपनम् ।३३
जीवितां भूमिपालानां सुहृदामपि दर्शनम् ।
दर्शनं देवतानाञ्च विमलानां तथाम्भसाम् ।३४
शुभान्यथैतानि नरस्तु दृष्ट्वा प्राप्नोत्ययत्नाद्ध्रुवमर्थलाभम्।
स्वप्नानि वै धर्मभृतां वरिष्ठ!व्याधेर्विमोक्षञ्च तथाऽऽतुरोऽपि।३५

जल के द्वारा अभिषेक का होना अथवा गौओं शृङ्गों के आश्रितो जल के द्वारा अभिषिञ्चन होना, हे राजन् ! चन्द्र से भ्रष्ट के द्वारा अभिषिचन का होना तो राज्य को प्रदान करने वाला ही जानना चाहिए।२९। राज्याभिषेक का होना, शिर का छेदन होता जाना मरण अग्नि का दाह, गृह आदि में अग्निके द्वारा दाह का हो जाना, राज्यके

चिन्हों की प्राप्ति का हो जाना, तन्त्रों वाले वाद्यों का अभिवादन होना जलों में तैरना, विषम स्थान का लंघन करना, गृह में हथिनी, बड़वा तथा गौओं का प्रसव होना, अश्वों पर समारोहण करना शुभ होता है। अच्छी स्त्रियों का लाभ करना तथा वरस्त्रियों का समालिंगन करना, निगड़ोंके द्वारा बन्धन का होना, विष्ठासे अनुलेपन होना यह सब धन्य एवं शुभ होता है। जीवित भूमिपालों का तथा सुहृदों का दर्शन प्राप्त करना, दैव का दर्शन करना, विमल जलों का देखना ये सब परम शुभ स्वप्न हुआ करते हैं। मनुष्य इन ऐसे शुभ स्वप्नों को देखकर बिना ही यत्न के किये ध्रुव रूप से अर्थ का लाभ प्राप्त किया करता है। हे धर्म धारियों में वरिष्ठ! आतुर होकर भी व्याधियों का विमोक्ष होना शुभ स्वप्न होता है।२०-३५।

१०९-यात्राके समय मंगल अमंगल सूचक शकुन वर्णन

गमनं प्रति राज्ञान्तु संमुखदर्शने च किम् ।
प्रशस्ताश्चैव सम्भाष्य सर्वानेतांश्च कीर्तय ।१

औषधानि त्वयुक्तानिधान्यं कृष्णञ्चयद्भवेत् ।
कार्पासिचतृणां राजन् ! शुष्कं गोमयमेव च ।२
इन्धनञ्च तथाङ्गारं गुडं तैलं तथा शुभम् ।
अभ्यक्तं मलिनं मुण्डन्तथा नग्नञ्च मानवम् ।३
मुक्तकेशं रुजार्तञ्च काषायाम्बरधारिणम् ।
उन्मत्तकन्तथा सत्त्वं दीनञ्चाथ नपुंसकम् ।४
पयः पङ्कस्तथा चर्म केशबन्धनमेव च ।
तथैवोद्धृतसाराणि पिण्याकादीनि यानि च ।५
चण्डालश्वपचाश्चैव राजबन्धनबालकाः ।

वधकाः पापकर्माणो गर्भिणी स्त्री तथैव च ।६
तुषभस्मकपालास्थिभिन्नभाण्डानि यानि च ।
रक्तानि चैव भण्डानि मृतंशार्ङ्गिकमेवच ।७
एवामादीनि चान्यानि अशस्तान्यभिदर्शने ।
अशस्तो बाह्यशब्दश्च भिन्नभैरवजर्जरः ।८

महर्षि मनु ने कहा—हे भगवान् ! जिस समय में राजा लोग गमन किया करते हैं तो संमुख में दर्शन करने में क्या-क्या प्रशस्त हुआ करते हैं, यह बतलाकर इन सम्पूर्ण शकुनों का वर्णन कृपा करके करिये ।१। श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! अयुक्त औषध, कृष्ण धान्य, कपास, तृण, शुष्क गोमय, ईंधन, अंगार गुड़ तेल ये सब शकुन शुभ हुआ करते हैं । अभ्यंग कियाहुआ, मलिन, मुण्ड, नग्न मानव, केशों को खुले हुए रखने वाला, रोगसे आर्त्त, काषाय वस्त्रों के धारण करने वाला, उन्मत्त सत्व, दीन नपुंमक, लोहापक, चर्म, केशबन्धन, पिण्याक आदि सार वस्तुएं बन्धन पालक, वधक, पाप कर्म करने वाले, गर्भिणी स्त्री तुष, भस्म, कपाल, अस्थि, भिन्न भाण्ड, रक्त वर्ण के भाण्ड, मृत, शार्ङ्गिक इस प्रकार से इत्यादि अभिदर्शन में अशस्त होते हैं । बाह्य शब्द और भिन्न भैरव जर्जर शब्द भी अशस्त हुआ करता है ।२-८।

पुरतः शब्द एहीति शस्यते न तु पृष्ठतः ।
गच्छेति पश्चात् धर्मज्ञो ! पुरस्तात्तु विगर्हितः ।६
क्व यासि तिष्ठ मा गच्छ किन्ते तत्र गतस्य तु ।
अन्ये शब्दाश्च ये निष्ठास्ते विपत्तिकरापि ।१०
ध्वजादिषु तथास्थानं क्रव्यादानां विगर्हितम् ।
स्खलनं वाहनानाञ्च वस्त्रसङ्गस्तथैव च ।११
निर्गतस्य तु द्वारादौ शिरसश्चाभिघातिता ।
छत्रध्वजानां वस्त्राणां पतनञ्च तथा शुभम् ।१२
दृष्टे निमित्ते प्रथमेऽमङ्गल्यविनाशनम् ।

केशवं पूजयेद्विद्वान् स्तवेन मधुसूदनम् ।१३

द्वितीये तु ततो दृष्टे प्रतीपे प्रविशेद्गृहम् ।
अथेष्टानि प्रवक्ष्यामि मङ्गल्यानि तथाऽनघ ! ।१४

आगे की ओर से आओ—यह शब्द शस्त होता है पीछे की ओर से प्रशस्त नहीं होता है। हे धर्मज्ञ पीछे की ओर से 'गच्छ अर्थात् जाओ'–यह शब्द शस्त कहा गया है जो कि सामने गर्हित माना गया है। 'कहाँ जाते हो'–रुकसाओ'–'वहाँ पर जानेसे तुझको क्या प्रयोजन है'—ये इस तरह के तथा ऐसे ही अन्य शब्द जो होते हैं वे विपत्ति करने वाले भी हुआ करते हैं।९-१०। क्रव्यादों राक्षसों का ध्वज आदि में स्थान गर्हित हुआ करता है। वाहनों का स्खलन, वस्त्र संग, द्वार। आदि में निर्गमन करने वाले के शिरका अवघात तथा छत्र, ध्वज और वस्त्रों का पतन भी शुभ होता है। प्रथम में ही निमित्त के देखने पर अमंगल्य का विनाश होता है। विद्वान् पुरुषका कर्त्तव्य है कि भगवान् केशव का पूजन करे मधुसूदन प्रभु का स्तवन करना चाहिए।११-१३। अनघ! फिर द्वितीय प्रतीप के देखने पर गृहमें प्रवेश कर लेना चाहिए। इसके पश्चात् इष्ट मंगलों के विषय में मैं वर्णन करूँगा।१४।

श्वेताः सुमनसः श्रेष्ठाः पूर्णकुम्भास्तथैव च ।
जलजाः पक्षिणश्चैव मांसं मत्स्याश्चपार्थिव ! ।१५
गावस्तुरङ्गमानागाबद्ध एकः पशुस्त्वजः ।
त्रिदेशाः सुहृदो विप्रा ज्वलितश्च हुताशनः ।१६
गणिका च महाभाग ! दूर्वा चार्द्रञ्च गोमयम् ।
रुक्मरूप्यन्तथा ताम्र सर्वरत्नानि चाप्यथ ।१७
औषधानि च धर्मज्ञ । यवाः सिद्धार्थकास्तथा ।
नृवाह्यमानं यानञ्च भद्रपीठन्तथैव च ।१८
खङ्गं चक्रं पताका च मृदश्चायुधमेव च ।
राजलिङ्गानि सर्वाणि सर्वे रुदिवर्जिताः ।१९

घृतं दधि पयश्चैव फलानिविविधानि च ।
स्वस्तिक वर्द्धमानञ्च नन्द्यावर्तं सकौस्तुभम् ।२०
वादित्राणां सुख: शब्द: गम्भीर: सुमनोहर: ।
गान्धारषड्ज ऋषभा ये च शस्तास्तथा खरा: ।२१

हे पार्थिव ! श्वेत पुष्प परम श्रेष्ठ होते हैं तथा पूर्ण कुम्भ भी परम शुभ हुआ करते हैं । जलज, पक्षीगण, मांस, मत्स्य, गौयें, तुरंगम नाग, बद्ध एक पशु, अज, त्रिदश, सुहृद विप्र, जलती हुई अग्नि, गणिका, ताम्र और हे महाभाग ! सब प्रकार के रत्न, हे धर्मज्ञ ! दूर्वा, आर्द्र गोमय, सुवर्ण, रूप्यक, औषध, यव, सिद्धार्थक, मनुष्यों के द्वारा वाह्यमान यान, भद्रपीठ, खंड, चक्र, पताका, मृत्तिका, आयुध, सम्पूर्ण, राजा के चिह्न जो रुदित से रहित होवें । घृत, दधि, पय, विविध भाँति के फल, स्वास्तिक, वर्द्धमान, नन्द्या, वर्त्त, कौस्तुभ, वादित्रों का सुखकर शब्द जो गम्भीर एवं मनोहर हो; गन्धार, षड्ज, ऋषभ जो कि शस्त्र तथा खर हैं ।१५-२१।

वायु: सशर्करोरूक्ष: सर्वत्र समुपस्थित: ।
प्रतिलोमस्तथा नीचो विज्ञेयोभयकृद्द्विज ! ।२२
अनुकूलोमृदु: स्निग्ध: सुखस्पर्श: सुखावह: ।
रूक्षारूक्षस्वराभद्रा: क्रव्यादा: परिगच्छताम् ।२३
मेधा: शस्ताघना: स्निग्धागजबृंहितसन्निभा: ।
अनुलोमास्तडिच्छन्ना: शक्रचापन्तथैव च ।२४
अप्रशस्ते तथा ज्ञेये परिवेषप्रवर्षणे ।
अनुलोमा ग्रहा: शस्ता वाक्पतिस्तु विशेषत: ।२५
आस्तिक्यं श्रद्धानत्वं तथा पूज्याभिपूजनम् ।
शस्तान्येतानि धर्मज्ञ ! यश्च स्यान्मनस: प्रियम् ।२६
मनसस्तुष्टिरेवात्र परमं जयलक्षणम् ।

एकतः सर्वलिङ्गानि मनसस्तुष्टिरेकतः ।२७
मनोत्सुकत्वं मनसः प्रहर्षः शुभस्य लाभो विजयप्रवादः ।
मङ्गल्यलब्धिः श्रवणञ्च राजन् ! ज्ञेयानि नित्यं
विजयावहानि ।२८

धूलि के सहित रूक्ष वायु जो कि सभी जगह समुपस्थित है । हे द्विज ! जो प्रतिलोम और नीच है वह भय करने वाला ही समझना चाहिए । अनुकूल, कोमल, स्निग्ध, सुख देने वाले स्पर्श से युक्त—सुख का आवाहन करने वाल—रूक्ष, अरूक्ष स्वर अमद्र, परिगमन करने वालों के क्रव्याद, हाथियों के बृंहित के सदृश घने, स्निग्ध मेघ प्रशस्त होते हैं । अनुलोम विद्युत से छन्न-चक्रचाप तथा परिवेष में प्रवर्षण प्रशस्त जानने चाहिए । जो ग्रह अनुलोम होते हैं वे प्रशस्त हुआ करते हैं और वाक्पति विशेष रूप से प्रशस्त माने गये हैं । आस्तिकता-श्रद्धानता, पूज्यगण का अभिपूजन—हे धर्मज्ञ ! ये सब प्रशस्त हुआ करते हैं और वह भी परम प्रशस्त माना गया है जो अपने मन के लिए अतिशय प्रिय होता है । यहाँ पर अपने मन की जो तुष्टि हुआ करती है वह ही परम जय का लक्षण हुआ करता है । एक ओर तो ये सभी चिह्न होते हैं और एक ओर अपने मन की तुष्टि हुआ करती है । मन की उत्सुकता अर्थात् उत्साह और मनमें होने वाला प्रहर्ष यह ही शुभ लाभ और विजय का प्रवाद होता है मंगल्य की लब्धि और उसका श्रवण हे राजन् ! नित्य ही विजय के आवह करने वाले जानने चाहिए ।२२-२८।

११०—वराहावतार के विषय में अर्जुन का प्रश्न

प्रादुर्भावान् पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः ।
सतां कथयतां विप्र वाराह इति नः श्रुतम् ।१
न जाने तस्य चरितं न विधिं न च विस्तरम् ।

न कर्मगुणसंस्थानं न चाप्यन्तं मनीषिण: ।२
किमात्मको बराहोऽसौ किंमूर्त्तिः कास्य देवता ।
किं प्रमाणा: किं प्रभाव: कि वा तेन पुरा कृतम् ।३
एतन्मे शंस तत्वेन वाराहं श्रुतिविस्तरम् ।
यथार्हञ्च समेतानां द्विजातीनां विशेषत: ।४
एतत्ते कथयिष्यामि पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।
महावराहचरितं कृष्णस्याद्भुतकर्मण: ।५
यथा नारायणो राजन् ! वाराहं वपुरास्थित: ।
दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिमर्दन: ।६
छन्दोगोभिरुदाराभि: श्रुतिभि: समलङ्कृत: ।
मन: प्रसन्नतां कृत्वा निबोध विजयाधुना ।७

अर्जुन ने कहा—हे विप्र ! अपरिमित तेज से युक्त भगवान् विष्णु के पुराणों में प्रादुर्भावों को कहने वाले सत्पुरुषों में हमने एक वाराह का भी प्रादुर्भाव सुना है ।१। उस वाराह का चरित्र मैं नहीं जानता हूँ और न तो उसकी कोई विधि ही मुझे मालूम है और न कुछ विस्तार का ही ज्ञान है । उनके कर्म और गुणों का संस्थान क्या था—यह भी मैं नहीं जानता हूँ । उन अत्यन्त मनीषी प्रभु का तो अद्भुत ही कर्म—गुण संस्था होगा ।२। यह वराह किस स्वरूप वाला प्रादुर्भाव था ? इनकी कैसी मूर्त्ति थी और इनका देवता कौन था ? इनका प्रमाण कितना था और क्या प्रभाव था तथा पहिले इन्होंने क्या किया था ? ।३। श्रुति विस्तार इस वाराह को आप तात्विक रूप से मुझे सब बतलाइए ? विशेष रूप से ये एकत्रित हुए द्विजाति गण हैं इनके अनुसार जो भी योग्य हो श्रवण कराइए ।४। श्री शौनक जी ने कहा—अद्भुत कर्म वाले भगवान् श्रीकृष्णके इस महा वराह चरित्रको जो ब्रह्मसम्मित पुराण है मैं आपको कहूँगा ।५। हे राजन् ! जिस प्रकार से भगवान् शत्रुओं में मर्दन करने वाले नारायण ने वाराह के वपु में समास्थित

होकर अपनी दाढ़ से इस समुद्र मे स्थित भूमि को उठाकर इसका उद्धार किया था ।६। छन्द, वाणी, उदार श्रुतियो से सम्यक् प्रकार से अलंकृत होकर तथा मन को प्रसन्न करके अब उस विजय का ज्ञान करलो ।७।

इदं पुराण परमं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम् ।
नानाश्रुतिसमायुक्तं नास्तिकाय न कीर्त्तयेत् ।८
पुराणं वेदमखिलं साङ्ख्यं योगञ्च वेद यः ।
कार्त्स्न्येन विधिना प्रोक्तं सौख्यार्थं वै वदिष्यति ।९
विश्वेदेवास्तथा साध्या रुद्रादित्यास्तथाश्विनौ ।
प्रजानां पतयश्चैव सप्त चैव महर्षयः ।१०
मनः सङ्कल्पजाश्चैव पूर्वजा ऋषयस्तथा ।
वसवो मरुतश्चैव गन्धर्व्वा यक्षराक्षसाः ।११
दैत्याः पिशाचाः नागाश्च भूतानि विविधानि च ।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राः म्लेच्छाश्च ये भुवि ।१२
चतुष्पादानि सर्व्वाणि तिर्य्यग्योनिगतानि च ।
जंगमानिचसत्वानियच्चान्यज्जीवसंज्ञितम् ।१३
पूर्णे युगसहस्रे तु ब्राह्मेऽहनि तथागते ।
निर्व्वाणे सर्वभूतानां सर्वोत्पातसमुद्भवे ।१४

यह वराह पुराण परम पुण्यमय है और समस्त वेदों के सम्मत है। यह अनेक श्रुतियों से भी समायुक्त है। इसका कीर्तन किसी भी नास्तिक के समक्ष में नहीं करना चाहिए यह सम्पूर्ण पुराण वेद ही है जो सांख्य और योग को जानता है वह पूर्ण विधि से कथित इसको सौख्य सम्पादन करने के लिए कहेगा ।८-९। विश्वेदेवा, साध्य, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार और प्रजाओं के पतिगण सप्त महर्षि है। पूर्वज ऋषिगण थे वे सब मन के सङ्कल्प से ही समुत्पन्न हुए हैं। वसुगण, मरुद्गण, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य, पिशाच, नाग, विविध

भूत, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और जो भूमण्डलमें म्लेच्छ हैं--समस्त चतुष्पाद, तिर्यग्योनिगत सैकड़ों-जङ्गम सत्व और जो अन्य जीव संज्ञा से युक्त सब एक सहस्र युगोंके पूर्ण होने पर ब्रह्माजी के दिन के समागत हो जाने पर सर्वोत्पातों के समुद्भव वाले समस्त भूनों का निर्वाण हो गया था।१०-१४।

हिरण्यरेतास्त्रिशिखस्ततो भूत्वा वृषाकपिः ।
शिखाभिर्विधमँल्लोकानशोषयत वह्निना ।१५
दह्यमानास्ततस्तस्य तेजोराशिभिरुद्गतैः ।
विवर्णवर्णा दग्धांगा हतार्चिष्मद्भिराननैः ।१६
सांगोपनिषदो वेदा इतिहासपुरोगमाः ।
सर्वविद्याः क्रियाश्चैव सर्वधर्मपरायणाः ।१७
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा प्रभवं विश्वतोमुखम् ।
सर्वदेवगणाश्चैव त्रयस्त्रिंशत्तु कोटयः ।१८
तस्मिन्नहनि संप्राप्ते तं हंसं महदक्षरम् ।
प्रविशन्ति महात्मानं हरिं नारायणं प्रभुम् ।१९
तेषां भूयः प्रवृत्तानां निधनोत्पत्तिरुच्यते ।
यथा सूर्यस्य सततमुदयास्तमने इह ।२०
पूर्णे युगसहस्रान्ते सर्वे निःशेष उच्यते ।
यस्मिन् जीवकृतं सर्वं निःशेषं समतिष्ठत ।२१

इसके अनन्तर हिरण्यरेता त्रिशिख ने वृषा कृपि होकर शिखाओं से लोकोंको विशेष रूपसे धमन करते हुए वह्निके द्वारा सबका शोषण कर दिया था। इसके अनन्तर समुद्गत उसके तेज की राशियों से दह्यमान होते हुए अर्चिमान आननोंके विवर्ण वदन वाले, दग्ध अङ्गोंसे युक्त होकर हत होगये थे। साङ्गवेद तथा उपनिषद, इतिहासों को आगे कर के सम्पूर्ण विद्या-सर्व धर्म परायण क्रियायें और विश्व तो मुख प्रभव ब्रह्माजीको आगे करके तेतीस करोड़ समस्त देवगण उस दिनके सम्प्राप्त होने पर महदक्षर, महात्मा, हंस उन प्रभु नारायण हरि के धाम में

प्रवेश करते हैं । प्रवृत्त हुए उनके पुनः निधन से उत्पत्ति कही जाती है जिस तरह से यहाँ पर निरन्तर सूर्यका उदय और अस्तमन हुआ करते हैं। एक सहस्र युगों के पूर्ण हो जाने पर सबका निःशेष कहा जाता है जिसमें सब जीवकृत निःशेष समवस्थित हुआ ।१५-२१।

संहृत्य लोकनखिलान् सदेवासुरमानुषान् ।
कृत्वा सुसंस्थां भगवानास्तएकजगद्गुरुः ।२२
स स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः ।
अव्ययः शाश्वतो देवो यस्य सर्वमिदंजगत् ।२३
नष्टार्ककिरणो लोके चन्द्रग्रहविवर्जिते ।
त्यक्तधूमाग्निपवने क्षीणयज्ञवषट्क्रिये ।२४
अपक्षिगणसम्पाते सर्वप्राणिहरे पथि ।
अमर्यादाकुले रौद्रे सर्वतस्तमसावृते ।२५
अदृश्ये सर्वलोकेऽस्मिन्नभावे सर्वकर्मणाम् ।
प्रशान्ते सर्वसम्पाते नष्टे वैरपरिग्रहे ।२६
गते स्वभावसंस्थाने लोके नारायणात्मके ।
परमेष्ठी हृषीकेशः शयनायोपचक्रमे ।२७
पीतवासा लोहिताक्षः कृष्णो जीमूतसन्निभः ।
शिखासहस्रविकचजटाभारं समुद्वहन् ।२८
श्रीवत्सलक्षधरं रक्तचन्दनभूषितम् ।
वक्षो बिभ्रन्महाबाहुः स विष्णुरिव तोयदः ।२९

समस्त देव असुर और मानवों के सहित पूर्ण सम्पूर्ण लोकों का संहार करके जगत् में गुरु एक ही भगवान् असुसंस्था करके स्थित हुआ करते हैं । इस तरह वही कल्पों के अन्त से पुनः पुनः समस्त भूतों के स्रष्टा होते हैं वह अव्यय-शाश्वत देव है जिनका यह सम्पूर्ण जगत् हैं । सूर्य की किरण जिसमें नष्ट हो गई हैं और चन्द्र तथा ग्रहों से वर्जित हैं--धूप, अग्नि और पवन ने भी जिसका त्यागकर दिया है तथा अग्नि

रहित और यज्ञ एवं वषट् क्रिया से क्षीण, पक्षिगण के सम्पात से शून्य समस्त प्राणियोंके हरण करने वाले, अमर्यादासे आकुल, रौद्र, सब ओर से अन्धकार से समावृत मार्ग में सब लोकों के दृश्यमान होने पर, सब कर्मो के अभाव में सब सम्पात के प्रशान्त हो जाने पर इस नारायणात्मक लोकमें स्वभाव संस्थान के गत होने पर परमेष्ठी हृषीकेशने अपने शयन करने का उपक्रम किया था। पीत वस्त्रधारी लोहित नेत्रों वाले, मेघ के सदृश सहस्रों शिखाओं के विकच जटाओं के भार का समुद्वहन करने वाले श्रीकृष्ण विराजमान थे।२२-२८। श्रीवत्स के लक्षण को धारण करने वाले और रक्त चन्दन से विभूषित वक्षःस्थल को रखने वाले—महान् बाहुओं से युक्त वह तोयद के समान ही श्री विष्णु भगवान् थे।२९।

पुण्डरीकसहस्रेण स्रगस्य शुशुभे शुभा ।
पत्नी चास्य स्वयं लक्ष्मीर्देहमावृत्यतिष्ठति ।३०

ततः स्वपिति शान्तात्मा सर्वलोके शुभावहः ।
किमप्यमितयोगात्मा निद्रायोगमपागतः ।३१
ततो युगसहस्रे तु पूर्णे स पुरुषोत्तमः ।
स्वयमेव विभुर्भूत्वा बुध्यते विबुधाधिपः ।३२
ततश्चिन्तयति भूयः सृष्टिं लोकस्य लोककृत् ।
नरान् देवगणांश्चैव पारमेष्ठ्येन कर्मणा ।३३
ततः सञ्चिन्तयन् कार्यं देवेषु समितिञ्जयः ।
सम्भवं सर्वलोकस्य विदधाति सतांगतिः ।३४
कर्त्ता चैव विकर्ता च संहर्ता वै प्रजापतिः ।
नारायणः परं सत्यं नारायणः परं पदम् ।३५

इन विष्णु भगवान् की पत्नी स्वयं साक्षात् लक्ष्मी जो देह को आवृत करके स्थित रहती हैं एक सहस्र पुण्डरीकों की मालासे वह शुभा शोभित हो रही थीं।३०। इसके उपरान्त समस्त लोक में सुख का

आवाहन करने वाले प्रशान्त आत्मा से सम्पन्न शयन किया करते हैं। वह अमित योग के स्वरूपधारी किसी योग निद्रा को प्राप्त हो गये थे ।३१। अनन्तर एक सहस्र युगों के पूर्ण हो जाने पर वह विभु पुरुषोत्तम जो त्रिबुधों के स्वामी है स्वयमेव ही प्रबुध हो जाया करते हैं।३२। इसके पश्चात् लोकों से करने वाले ने फिर लोक की सृष्टि के विषयमें चिन्तन किया था। नरगण और देवगणों का पारमेष्ठय कर्म द्वारा चिंतन करते है। फिर समतिञ्जय प्रभु देवोंके विषयमें कार्य का चिंतन करते हुए सत्पुरुषों की गति प्रभु समस्त लोक को उत्पत्ति की क्रिया करते हैं। वह प्रजापति इस जगत् के कर्त्ता विकर्त्ता और संहार के कर्त्ता है। नारायण परसत्य है—नारायण परम पद है।३३-३५।

नारायणः परो यज्ञो नारायणः परा गतिः ।
स स्वयम्भूरिति ज्ञेयः स स्रष्टा भुवनाधिपः ।३६
स सर्वमिति विज्ञेयो ह्येष यज्ञः प्रजापतिः ।
यद्वेदितव्यस्त्रिदशैस्तदेष परिकीर्त्यते ।३७
यत्तु वेद्यं भगवतो देवा अपि न तद्विदुः ।
प्रजानां पतयः सर्वे ऋषयश्च सहामरैः ।३८
नास्यान्तमधिगच्छन्ति विचिन्वन्त इति श्रुतिः ।
यदस्य परमं रूपं न तत्पश्यन्ति देवताः ।३९
प्रादुर्भावे तु यद्रूपन्तदर्चन्ति दिवौकसः ।
दर्शितं यदि तेनैव तदवेक्ष्यन्ति देवताः ।४०
यन्न दर्शितवानेष कस्तदन्वेष्टुमार्हते ।
ग्राम्याणां सर्वभूतानामग्निमारुतयोर्गतिः ।४१
तेजसस्तपसश्चैव निधानममृतस्य च ।
चतुराश्रमधर्मेशश्चतुर्होत्रफलाशनः ।४२
चतुः सागरपर्यन्तश्चतुर्युगनिवर्तकः ।
तदेष संहृत्य जगत्कृत्वा गर्भस्थामात्मनः ।
मुमोचाण्डं महायोगी धृतं वर्षसहस्रकम् ।४३

सुरासुरद्विजभुजंगाप्सरोगणैद्रु मौषधिक्षितिधरयक्षगुह्यकैः ।
प्रजापतिः श्रुतिभिरसंकुलं तदा सर्वं
रसृजज्जगदिदमात्मना प्रभुः ।४४

नारायण पर यज्ञ हैं—नारायण परागति है वह स्वयम्भू—वह जानने के योग्य हैं—वह भुवन के स्वामी सृजन करने वाले हैं? वह सब कुछ हैं—ऐसा ही समझना चाहिए। वही यज्ञ और प्रजापति हैं जो देवों के द्वारा जानने के योग्य है और वह ऐसा ही कीर्तित किया जाता है। जो कुछ भी भगवान का वेद्य (जानने के योग्य हैं) उसे देव गण भी नहीं जानते हैं। न प्रजापति जानते हैं और अमरगणों के साथ ऋषि लोग ही जानते हैं।३६-३८। विशेष रूप से खोज करते हुए भी उस प्रभु के अन्त का ज्ञान कोई भी प्राप्त नहीं किया करते हैं—ऐसी श्रुति है। जो इसका पर रूप होता है उसे देवगण भी नहीं देख पाते हैं। जब इनके प्रादुर्भाव का कोई स्वरूप होता है उसीका देवगण अभ्यर्चन किया करते हैं यदि इन्हीं ने उसे दिखला दिया है तो देवता लोग उसे देख पाते हैं। जो कभी भी उन्होंने नहीं दिखलाया है उसकी खोज करने की कौन इच्छा करता है अर्थात् उसका अन्वेषण कोई भी नहीं कर पाता है। समस्त ग्राम्य प्राणियों की गति अग्नि और मारुत की होती है। तेज तप और अमृत का निधान—चारों आश्रमों के धर्म का ईश चार होत्रों का फलाशयन चार सागरों की सीमा तक रहने वाला चारों युगों का निवर्त्तक वह उसका संहार करके फिर अपने गर्भ में स्थित जगत् की रचना करता हुआ महायोगी एक सहस्र वर्ष तक धारण किये अण्ड को छोड़ देता था। सुर, असुर, द्विज, भुजग और अप्सराओं के गणों से युक्त-औषधियों-क्षितिधर-यक्ष और गुह्यकोंसे समन्वित-श्रुतियों से असंकुल इस जगत् को उस समय में वह प्रजापति प्रभु आत्मा से ही सृजन किया करता है।३९-४४।

==

१११-वराहावतार चरित्र वर्णन

जगदण्डमिदं पूर्वमासीद्दिव्यं हिरण्मयम् ।
प्रजापतेरियं मूर्त्तिरितीयं वैदिकी श्रुतिः ।१

ततु वर्षसहस्रान्ते बिभेदूर्ध्वमुखं विभुः ।
लोकसर्जनहेतोस्तु बिभेदाधोमुखं नृप ! ।२
भूयोऽष्टधा बिभेदाण्डं विष्णुर्वै लोकजन्मकृत् ।
चकार जगतश्चात्र विभागं सविभागकृत ।३
यच्छिद्रमूर्द्ध्वमाकाशं विवराकृतितां गतम् ।
विहितं विश्वयोगेन यदधस्तद्रसातलम् ।४
यदण्डमकरोत्पूर्वं देवो लोकचिकीर्षया ।
तत्र यत्सलिलस्स्कन्नः सोऽभवत्काञ्चनोगिरिः ।५

शैलैः सहस्रैर्महती मेदिनी विषमाभवत् ।
तैश्च पर्वतजालौघैर्बहुयोजनविस्तृतैः ।६
पीडिना गुरुभिर्देवी व्यथिता मेदिनी तदा ।
महामते भूरिबलं दिव्यं नारायणात्मकम् ।७

महर्षि शौनक जी ने कहा—यह जगत् का अण्ड पहिले परमदिव्य हिरण्य था। यह जगदण्ड साक्षात् प्रजापति की मूर्त्ति ही था—ऐसा श्रुति का वचन कहता है ।१। वह एक सहस्र वर्ष के अन्त में विभु ने ऊर्ध्व मुख को विभेदन किया था। हे नृप ! लोक के सर्जन के हेतु से अधोमुख का भेदन किया था। लोकों के जन्म के करने वाले भगवान विष्णु ने फिर उस अण्ड को आठ भागों में भेदन किया था। विभागके करने वाले प्रभु ने यहाँ पर जगत् का विभाग कियाथा। ऊर्ध्व आकाश मे जो छिद्र था वह विवर की आकृति को प्राप्त हो गया था। विश्व के योग से जो अधोभाग था उसे रसातल किया था। देव ने पहिले जो अण्ड किया था वह लोक की रचना करने की इच्छा से ही किया था।

वहाँ पर जो सलिल स्कन्न हुआ था वह सुवर्ण गिरि हो गया था। सहस्रों शैलों के होने से यह महती मेदिनी विषम हो गई थी जो कि बहुत से योजनों के विस्तार से युक्त पर्वतों के जालों के ओघों से युक्त थी। उस समय में इन बड़े भारी पर्वतों से यह पीडित एवं व्यथित मेदिनी देवी हो गयी थी हे महामने! यह अण्ड परम दिव्य बहुत अधिक बल वाला नारायण के स्वरूप से सम्पन्न था।२-७।

हिरण्यं समुत्सृज्य तेजो व जातरूपिणम् ।
अशक्ता वै धारयितुमधस्तात्प्राविशत्तदा ।८
पीड्यमाना भगवतस्तेजसा तस्य सा क्षितिः ।
पृथ्वीं विशन्तीं दृष्ट्वा तु तामधोमधुसूदनः ।९
उद्धारार्थं मनश्चक्रे तस्या वै हितकाम्यया ।१०
मत्तेज एषा बसुधा समासाद्य तपस्विनी ।
रसातलं प्रविशति पंके गौरिव दुर्बला ।११
त्रिविक्रमायामितविक्रमाय महावराहाय सुरोत्तमाय ।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु ते देववर ! प्रसीद।१२
तव देहाज्जगज्जातं पुष्करद्वीपमुत्थितम् ।
ब्रह्माणमिह लोकानां भूतानां शाश्वत विदुः ।१३
तव प्रसादाद्देवोऽयं दिवं भुङ्क्ते पुरन्दरः ।
तव क्रोधाद्धि बलवान् जनार्दनजितोबलिः ।१४

जातरूपी हिरण्मय तेज का समुत्सृजन करके उसे धारण करने के लिए अशक्त होकर उस समय में नीचे की ओर प्रवेश कर गया था। उस समय में भगवान् के तेज से वह क्षिति पीड्यमाना हो गई थी। भगवान् मधुसूदन ने अधोभाग में प्रवेश करती हुई उस पृथ्वी को देखा था और फिर उस पृथ्वी के हित की कामना से उसके उद्धार करने के लिए उन्होंने विचार किया था।७-१०। श्री भगवान ने कहा—यह तपस्विनी वसुधा मेरे तेज को प्राप्त करके दुर्बल गौ पङ्क में जिस तरह

विषण्ण होती है उसी भाँति यह मेदिनी रसातलमें प्रवेश करती है ।११
पृथिवी ने कहा—हे देवेश्वर ! त्रिविक्रम से आयामित विक्रम वाले सुरों में उत्तम—श्री शार्ङ्ग, चक्र, असि और गदाके धारण करने वाले महा-वराह के लिए नमस्कार है आप प्रसन्न होइये ।१२। आपके ही देह से यह सम्पूर्ण जगत् समुत्पन्न हुआ है और पुष्कर द्वीप उत्थित हुआ है। यहाँ पर ब्रह्मा को लोकों का और भूतों का शाश्वत जानना चाहिए। हे देव ! यह आपका ही प्रसाद है कि इन्द्र देव दिवलोक का उपभोग किया करते हैं। आपके ही क्रोध से भगवान जनार्दन के द्वारा यह महा बलवान् बलि जीत लिया गया है ।१३-१४।

धाता विधाता संहर्ता त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
मनुः कृतान्तोऽधिपतिर्ज्वलनः पवनोघनः ।१५
वर्णाश्चाश्रमधर्माश्च सागरास्तरवो जलम् ।
नद्यो धर्मश्च कामश्च यज्ञा यज्ञस्य च क्रियाः ।१६
विद्यावेद्यञ्च सत्वञ्च ह्रीः श्रीः कीर्तिधृतिः क्षमा ।
पुराणं वेदवेदाङ्गः सांख्ययोगौ भवाभवौ ।१७
जङ्गम स्थावरञ्चैव भविष्यञ्च भवञ्च यत् ।
भवन्तञ्च त्रिलोकेषु प्रभावोपहितन्तव ।१८
त्रिदशोदारफलदः स्वर्गस्त्रीचारुपल्लवः ।
सर्वलोकमनः कान्तः सर्वसत्वमनोहरः ।१९
विमानानेकविटपस्तोयदाम्बुमधुस्रवः ।
दिव्यलोकमहास्कन्धसत्यलोकप्रशाखवान् ।२०
सागराकरनिर्यासो रसातलजलाश्रयः ।
नागेन्द्रपादपोपेतो जन्तुपक्षिनिषेवितः ।२१

हे भगवन् ! आपके अन्दर धाता-विधाता और संहार करने वाला, इन तीनों कर्मों के करने की शक्ति विद्यमान है। मनु अधिपति कृतान्त अग्नि, पवन, घन, चारों वर्ण, चारों ब्रह्मचर्यादि आश्रमोंके धर्म, सागर

तरु, जल, नदियाँ, धर्म, काम, यज्ञ यज्ञ की क्रियायें—विद्या, वेद सत्व ह्री, श्री, कीर्त्ति, धृति, क्षमा, पुराण, वेद, वेदों के समस्त अङ्ग शास्त्र, सांख्य, योग, भव, अभव, स्थावर, जंगम, भविष्य, भवत् यह सभी कुछ तीनों लोकों में आपका ही प्रभाव है ।१५-१८। देवों के उदार फल के दाता—स्वर्गीय स्त्रियों के चारु पल्लव-सब लोकों के मन के कान्त-सब सत्वों के मनोहर—विमानों के अनेक विटप—मेघों के जल का मधु स्राव-दिव्यलोक के महा स्कन्ध-सत्यलोक के प्रशाखा वाले—सागर के आकार का निर्यास—रसातल के जल का आश्रय—नागेन्द्र पादपों से समुपेत—जन्तु और पक्षिगण से निषेवित आप ही हैं ! ।१६-२१।

शीलाचारार्थगन्धस्त्वं सर्वलोकमयोद्रुमः ।
द्वादशार्कमयद्वीपो रुद्रैकादशपत्तनः ।२२
वस्वष्टाचलसंयुक्तस्त्रैलोक्याम्भोमहोदधिः ।
सिद्धसाध्योर्मिकलिलः सुपर्णानिलसेवितः ।२३
दैत्यलोकमहाग्राहो रक्षोरगझषाकुलः ।
पितामहमहाधैर्यः स्वर्गस्त्रीरत्नभूषितः ।२४
धीश्रीह्रीकान्तिभिः नित्यं नदीभिरुपशोभितः ।
कालयोगमहापर्वप्रयागगतिवेगवान् ।२५
त्वं स्वयोगमहावीर्यो नारायणमहार्णवः ।
कालोभूत्वा प्रसन्नाभिरद्भिर्ह्लादयसे पुनः ।२६
त्वया सृष्टास्त्रयो लोकास्त्वयैव प्रतिसंहृताः ।
विशन्ति योगिनः सर्वे त्वामेव प्रतियोजिताः ।२७
युगे युगे युगान्ताग्निः कालमेघो युगे युगे ।
महाभारावताराय देव ! त्वं हि युगे युगे ।२८

आप ही शीलाचार के आर्यगन्ध हैं। सर्व लोक मय आप द्रुम हैं। द्वादश सूर्यों से परिपूर्ण द्वीप, एकादश रुद्रोंके पत्तन, अष्ट वसुओं के बल से संयुक्त, त्रिभुवनों के जलके महा समुद्र, सिद्ध और साध्योंकी ऊर्मियों

से कलिल, सुपर्णानिल से सेवित, दैत्यों के लोकों के महान् ग्राह, राक्षस और उरगोंके रोषसे समाकुल, पितामह के महान् धैर्य, स्वर्ग की स्त्रियों रूपी रत्नों से भूषित, श्री ह्री, और कान्ति इनसे तथा नित्य ही नदियों से उपशोभित, कालयोग महान् पर्व के प्रयाग की गति और वेग वाले आप अपने योग के महान वीर्य तथा नारायण महार्णव हैं। आप काल होकर परम प्रसन्न जलों से पुनः आह्लादित किया करते हैं। आपने ही इन तीनों लोकोंका सृजन कियाहै और आपने ही इनका प्रति संहार भी किया है। सब योगीजन प्रतियोजित होकर आपमें ही प्रवेश किया करते हैं। हे देव ! आप ही युग-युग में युगोंके अन्त करने वाली अग्नि हैं—युग-युग में आप ही काल मेघ हैं और इस महाभार के अवतारण करने के लिए आप ही युग-युग में हुआ करते हैं।२२-२८।

त्वं हि शुक्लः कृतयुगे त्रेतायां चम्पकप्रभः।
द्वापरे रक्तसंकाशः कृष्णः कलियुगे भवान् ।२९
त्रैवर्ण्यमभिधत्से त्वां प्राप्तेषु युगसन्धिषु।
त्रैवर्ण्यं सर्वधर्माणामुत्पादयसि वेदवित् ।३०
भासि वासिप्रतपि त्वञ्च पासि विचेष्टसे।
क्रुध्यसि क्षान्तिमायासि त्वं दीपयसि वर्षसि ।३१
त्वं हास्यसि न निर्यासि निर्वापयसि जाग्रसि।
निःशेषयसि भूतानि कालो भूत्वा युगक्षये ।३२
शेषमात्मानमालोक्य विशेषयसि त्वं पुनः।
युगान्ताग्नावलीढेषु सर्वभूतेषु किञ्चन ।३३
यातेषु शेषो भवसि तस्माच्छेषोऽसि कीर्तितः।
च्यवनोत्पत्तियुक्तेषु ब्रह्मेन्द्रवरुणादिषु ।३४
यस्मान्न च्यवसे स्थानात्तस्मात्संकीर्त्यसेऽच्युतः।
ब्रह्माणमिन्द्रञ्च यमं रुद्रं वरुणमेव च ।३५

हे देव ! कृतयुग में आप ही शुक्ल वर्ण वाले होते हैं—त्रेता में

सुवर्ण के समान प्रभा वाले भी आप ही हैं। द्वापरमें रक्त के सदृश और कलियुग में आप ही कृष्ण होते हैं।२९। आप जब युगों की सन्धियाँ होती हैं तो उस समय में विवर्णता धारण किया करते हैं। वेदोंके वेत्ता आप समस्त धर्मों के वैवर्ण्य का उत्पादन किया करते हैं। आपही दीप्त होते हैं, निवास करते हैं, प्रताप दिया करते हैं, पालन करते हैं, विशेष चेष्टा किया करते हैं, कोप भी आपही करते हैं, शान्ति को प्राप्त होते हैं, आपही दीपित होते हैं और वर्षा किया करते हैं। आपही स्वयंहास करते हैं, निर्यासित होते हैं, निर्वाप करते हैं, जाग्रत होते हैं, निःशेषित होते हैं, अर्थात् समस्त भूतोंको निःशेष किया करते हैं और युगोंके क्षय में आप ही काल का स्वरूप धारण किया करते हैं।३०-३२। आप ही अपने आपको शेष देखकर फिर उसे विशेषित किया करते हैं जब सब भूतों में युगान्त अवलीढ हो जाते हैं और कुछ भी शेष नहीं रहता है इसी लिए आपको शेष इस नामसे कीर्त्तित किया गया है। च्यवनोत्पत्ति से युक्त ब्रह्मा इन्द्र, वरुण आदिके होने पर क्योंकि स्थान से च्यवन नहीं होता है इसीलिए अच्युत नाम से कीर्त्तित हुए हैं। ब्रह्मा, इन्द्र, यम, रुद्र और ब्रह्मा वरुण इनका निग्रह करके हरण करते हैं।३३-३५।

निगृह्य हरसे यस्मात्तस्माद्धरिरिहोच्यसे।
सम्मानयसि भूतानि वपुषा यशसा श्रिया।३६
परेण वपुषा देव ! तस्माच्चासि सनातनः।
यस्माद्ब्रह्मादयो देवा मुनयश्चोग्रतेजसः।३७
न तेऽन्तं त्वधिगच्छति तेनानन्तस्त्वमुच्यसे।
न क्षीयसे न क्षरसे कल्पकोटिशतैरपि।३८
तस्मात्त्वमक्षरत्वाच्च विष्णुरित्येव कीर्त्यसे।
विष्टब्धं यत्त्वया सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्।३९
जगद्विष्टम्भना च्चैव विष्णुरेवेति कीर्त्यसे।
विष्टभ्य तिष्ठसे नित्यं त्रैलोक्यं सचराचरम्।४०

यक्षगन्धर्वनगरं सुमहद्भूतपन्नगम् ।
व्याप्तं त्वयैव विशता त्रैलोक्यं सचराचरम् ।४१
तस्माद्विष्णुरिति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।
नारा इत्युच्यते ह्यापो ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।४२
अयनन्तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ।
युगेप्रनष्टाङ्गां विष्णो ! विन्दसि तत्त्वतः ।४३

हे भगवन् ! ब्रह्मादि सबका निग्रह करके आप इनका हरण किया करते हैं इसी कारणसे आपको 'हरि'—इस नामसे कहा जाता है । आप समस्त भूतों का वपु से, यश से, श्री से सम्मान किया करतेहैं । हे देव! आप पर वपुसे सम्मान किया करते हैं इसी कारण से सनातन हैं । क्योंकि ब्रह्मादि देवगण और उग्र तेज वाले मुनि वृन्द सब आपके अन्त को प्राप्त नहीं करते हैं इसीलिए आप अनन्त इस नाम से कहे जाते हैं और सैंकड़ों करोड़ कल्पोंमें भी आप न तो क्षरित होते हैं और न क्षीण ही हुआ करते हैं । इसी अक्षर होने के हेतुसे आप अक्षर हैं और विष्णु इसी नाम से कीत्तित किये जाते हैं । आपने इस स्थावर, जंगम् जगत् सबको विष्टब्ध कर दिया है ।३६-३९। इस सम्पूर्ण जगत् के विष्टम्भनं होने से आपका नाम 'विष्णु'—यह कीर्त्तित किया जाता है क्योंकि इस त्रिलोकी को विष्टब्ध करके जिसमें सभी चर एवं अचर विद्यमान हैं नित्य स्थित रहा करते हैं ।४०-४१। इसीलिए स्वयं भगवान् स्वयम्भू ने विष्णु यह नाम कहा है । नारा, इससे जल कहे जाया करते हैं जिस को तत्वदर्शी ऋषियोंने कहा है । वे ही जल पहिले उनके अयन निवास स्थान हुए थे इसीलिए आपका नारायण यह नाम कहा गया है । हे विष्णो ! आप तो युग-युग में प्रनष्ट अङ्गों का तात्त्विक रूप से प्राप्त किया करते हैं ।४२-४३।

गोविन्देति ततो नाम्ना प्रोच्यसे भिस्तथा ।
हृषीकाणीन्द्रियाण्याहुस्तत्त्वज्ञानविशारदा ।४४

ईशिता च त्वमेतेषां हृषीकेशस्तथोच्यते ।
वसन्ति त्वयि भूतानि ब्रह्मादीनि युगक्षये ।४५
त्वं वा वससि भूतेषु वासुदेवस्तथोच्यसे ।
सङ्कर्षयसि भूतानि कल्पे कल्पे पुनः पुनः ।४६
ततः संकर्षणः प्रोक्तस्तत्वज्ञानविशारदैः ।
प्रतिव्यूहेन तिष्ठन्ति सदेवासुरराक्षसाः ।४७
प्रविद्युः सर्व धर्माणां प्रद्युम्नस्तेन चोच्यसे ।
निरोद्धा विद्यते यस्मान्न ते भूतेषु कश्चन ।४८
अनिरुद्धस्ततः प्रोक्तः पूर्वमेव महर्षिभिः ।
यत्त्वया धार्यते विश्वं त्वया संह्रियते जगत् ।४९

क्योंकि आप प्रनष्ट अङ्गों का लाभ करते हैं इसीलिए आपको 'गोविन्द'—इस नाम से पुकारा जाया करता है और ऋषिगण गोविन्द कहा करते है । हृषीक विषयेन्द्रियों को कहा जाता है जिनको कि तत्व ज्ञानके विशारद कहतेहैं । आप इनके ईशिता हैं इसी कारण से आपको हृषीकेश नाम से कहा जाया करता है । युग के क्षय में ब्रह्मा आदि समस्त भूत आप ही मे निवास किया करते हैं अथवा आप सब भूतों में निवास किया करते है इसीलिए आपको वासुदेव कहा जाया करता है । बारम्बार आप कल्प में भूतों का संकर्षण किया करते हैं अतएव तत्व-ज्ञान के विशारदों के द्वारा आपको संकर्षण कहा गया है । समस्त देव असुर और राक्षस प्रतिग्रह से स्थित रहते हैं और सब धर्मों के प्रविद्यु है अतएव आपको प्रद्युम्न, इस शुभ नाम से कहा जाया करता है । आपका भूतों में क्योंकि कोई भी निरोद्धा नहीं है इसीलिए पहिले ही महर्षियों ने आपका नाम अनिरुद्ध कहा गया है । हे भगवन् ! आपके द्वारा इस विश्व को धारण किया जाता है और आपके ही द्वारा इस जगत् का संहार किया जाता है ।४४-४९।

त्वं धारयसि भूतानि भवनं त्वं बिभर्षि च ।
यत्त्वया धार्यते किञ्चित्तेजस च बलेन च ।५०

मया हि धार्यते पश्चान्नाधृतं धारये त्वया ।
न हि तद्विद्यते भूत त्वया यन्नात्र धार्यते ।५१
त्वमेव कुरुषे देव ! नारायण युगे युगे ।
महाभारावतरणं जगतो हितकाम्यया ।५२
तवैव तेजसाक्रान्तां रसातलतलङ्गताम् ।
त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ ! त्वामेव शरणंगताम् ।५३
दानवैः पीड्यमानाहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः ।
त्वामेव शरणं नित्यमुपयामि सनातनम् ।५४
तावन्मेस्ति भयं देव ! यावन्न त्वां ककुद्मिनम् ।
शरणं यामि मनसा शतशोऽप्युपलक्षये ।५५
उपमानं न ते शक्ताः कर्त्तुं सेन्द्रा दिवौकसः ।
तत्वं त्वमेव यद्वेत्सि निरुत्तरमतः परम् ।५६

हे भगवन् ! आप समस्त भूतों को धारण किया करते हैं और आप भवन का भरण किया करते हैं और आपके द्वारा तेज और बलके द्वारा जो कुछ भी धारण किया जाता है इसके पीछे मेरे द्वारा धारण किया जाता है और जो आपके द्वारा अधृत हैं उसे मैं धारण करतीहूं । ऐसा कोई भी भूत विद्यमान नहीं है जो आपके द्वारा धारण न किया जाता हो । हे देव ! हे नारायण ! इस जगत् के हितकी कामना से युग युग में आप ही इस महान् भार का अवतरण किया करते हैं । हे सुर-श्रेष्ठ! आपके ही तेज से आक्रान्त, रसातल में गई हुई और आपकी ही शरणागति में गई हुई मेरा परित्राण कीजिए । मैं दुरात्मा दानवों तथा राक्षसोंके द्वारा पीड्यमाना मैं आपही नित्य एवं सनातन प्रभु की शरण में आती हूं । हे देव ! मुझे तब तक ही भय होता है जब तक ककुद्मी आपकी शरण में मन से नहीं जाती हूं । मैं सैकड़ों का उपलक्षित करती हूं किन्तु आपकी समानता इन्द्र आदि देवगण करने में समर्थ नहीं

होते हैं। इसके तत्व को आपही जानते हैं और इससे पर निस्तर है।५०-५६।

ततः प्रीतः स भगवान् पृथिव्यै शार्ङ्ग चक्रधृक्।
काममस्या यथाकाममभिपूरितवान् हरिः।५७
अब्रवीच्च महादेवि ! माधवीय स्तवोत्तमम्।
धारयिष्यति यो मर्त्यो नास्ति तस्य पराभवः।५८
लोकान्निष्कल्मषांश्चैव वैष्णवान् प्रतिपत्स्यते।
एतदाश्चर्यं सर्वं स्वं माधवीयं स्तवोत्तमम्।५९
अधीतवेदः पुरुषो मुनिः प्रीतमना भवेत्।६०
मा भैर्धरणि ! कल्याणि ! शान्ति व्रज ममाग्रतः।
एष त्वामुचितं स्थानं प्रापयामि मनीषितम्।६१
ततो महात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत्।
किन्तु रूपमहं कृत्वा उद्धरेयं धरामिमाम्।६२
जलक्रीड़ारुचिस्तस्माद्वाराहं वपुरास्थितः।
अदृश्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्म संस्थितम्।६३

महर्षि शौनक जी ने कहा—इसके पश्चात् भगवान् शार्ङ्ग और चक्र के धारण करने वाले उस पृथिवी देवी पर परम प्रसन्न हो गये थे और उन हरि भगवान ने इसकी कामना को यथोप्सित रूप से पूरित कर दिया था।५७। और भगवान ने उससे कहा था—हे महादेवि ! आपके द्वारा कहा गया जो यह माधवीय स्तव है वह अतीव उत्तम है। जो मनुष्य इस स्तव को धारण करेगा उसका कभी भी पराभव नहीं होता है।५८। यह आश्चर्यो का सवस्व माधवीय उत्तम स्तव है। इसके धारण करने वाला कल्मषों से रहित वैष्णव लोकों की प्राप्ति किया करता है।५९। वेदों के अध्ययन करने वाला पुरुष प्रीति से युक्त मन वाला मुनि हो जाता है।६०। श्री भगवान ने कहा—हे धरणि ! हे कल्याणि ! डरो मत। मेरे आगे शान्ति की धारण करो। मैं तुमको

मनीषित समुचित स्थान पर प्राप्त करा देता हूँ।६१। शौनकजी ने कहा इसके उपरान्त महान आत्मा वाले प्रभु ने मन से दिव्य रूप का चिन्तन किया था कि मैं क्या करूँ।६२। जल में क्रीडा करने की रुचि थी इसी कारण से वराहा के वपु में समस्थित हो गये थे। वह स्वरूप समस्त भूतों का अदृश्य एवं वाङ्मय संस्थित ब्रह्म था।६३।

शतयोजनविस्तीर्णमुच्छ्रितं द्विगुणं ततः ।
नीलजीमूतसंकाशं मेघस्तनितनिस्वनम् ।६४
गिरिसंहननं भीमं श्वेततीक्ष्णाग्रदंष्ट्रिणम् ।
विद्युदग्निप्रतीकाशमादित्यसमतेजसम् ।६५
पीनोन्नतकटीदेशं वृषलक्षणपूजितम् ।
रूपमास्थाय विपुलं वराहमजितोहरिः ।६६
पृथिव्युद्धरणायैव प्रविवेश रसातलम् ।
वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः ।६७
अग्निजिह्वो दर्भलोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः ।
अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ।६८
आज्यनासः स्रुवतुण्डः सामघोषस्वनोमहान् ।
सत्यधर्ममयः श्रीमान्कर्मविक्रमसत्क्रमः ।६९
प्रायश्चित्तनखो घोरः पशुजानुर्मुखाकृतिः ।
उद्गाथा होमलिङ्गोऽथ बीजौषधिमहाफलः ।७०

वह वाराह का स्वरूप सौ योजन के विस्तार युक्त, दुगुना इससे उच्छ्रित नीलमेघ के समान तथा मेघों के स्तनित से निस्वन था गिरि के तुल्य संहनन वाला, भीम, श्वेत एवं तीक्ष्ण आगे की दंष्ट्रा वाला, विद्युत् की अग्नि के तुल्य, सूर्य के सदृश तेजसे युक्त, कटि देश में पीनोन्नत एव वृष लक्षण से पूजित विपुल वराह के रूप में समास्थित श्री अजित हरि हो गये थे।६४-६६। वेदों के चरणों वाले, यूपों के दंष्ट्राओं से संयुक्त क्रतुओं के दाँतों से समन्वित चितीमुख वाराह प्रभु ने इस पृथिवी

के उद्धार करने के लिए रसातल में प्रवेश किया था ।६७। अग्नि की जिह्वा वाले—दर्भों के लोमों से संयुक्त—ब्रह्म के शीर्ष वाले—महान् तप से युक्त—अहोरात्र के नेत्रों को धारण करने वाले—वेदाङ्ग एवं श्रुति के भूषण से भूषित—आज्यकी नासिका वाले—स्रुवा के तुण्ड से युक्त—साम वेद के महान् घोष वाले—सत्य और धर्म से परिपूर्ण—कर्म और विक्रम के सत्कर्म वाले—श्रीमान्—प्रायश्चित के घोर नखों से युक्त—पशुजानु तथा मखकी आकृति वाले—उद्गाथा होम के लिंग से संयुक्त बीज और औषधि के महान् फल वाले वह वाराहा भगवान थे ।७०।

वाय्वन्तरात्मा यज्ञास्थिविकृतिः सोमशोणितः ।
वेदस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यविभागवान् ।७१
प्राग्वंशकायो द्युतिमान् नानादीक्षाभिरन्वितः ।
दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान् ।७२
उपाकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्तभूषणः ।
नानाच्छन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः ।७३
छायापत्नीसहायो वै मणिशृङ्ग इवोच्छ्रितः ।
रसातलतले मग्नां रसातलतलङ्गताम् ।७४
प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्राग्रेणोज्जहार ताम् ।
ततः स्वस्थानमानीय वराः पृथिवीधरः ।७५
मुमोच पूर्वं मनसा धारिताञ्च वसुन्धराम् ।
ततो जगाम निर्वाणं मेदिनी तस्य धारणात् ।७६
चकार च नमस्कारं तस्मै देवाय शम्भवे ।
एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना ।७७
उद्धृता पृथिवी देवी सागराम्बुगता पुरा ।
अथोद्धृत्य क्षितिं देवी जगतः स्थापनेच्छया ।
पृथिवीप्रविभागाय मनश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः ।७८

रसाङ्गतामवनिमचिन्तविक्रमः सुरोत्तमः प्रवरवराहरूपधृक् ।
वृषाकपिः प्रसभमथैकदंष्ट्रया समुद्धरद्धरणिमतुल्यपौरुषः ।७९

वायु के अन्तरात्मा वाले—यज्ञों की अस्थि विकृतियों से संतुत—सोम के शोणित से समन्वित—वेदों के स्कन्ध वाले—हवि की गन्ध से सम्पन्न—हव्य और कव्य के विभाग वाले प्राग्वंश की काया से युक्त—द्युतिमान्—अनेक दीक्षाओं से समन्वित—दक्षिणा हृदय—महासत्वमय महान् योगी—उपा कर्मोष्ठ रुचक—प्रवर्ग्यावर्त्त भूषण—नाना छन्दोगति पथ—गुह्योपनिषदासन—उच्छ्रित मणिश्रृङ्ग की भाँति छाया पत्नीसहाय प्रभुने रसातल के तलमें मग्न और रसातल के तलमें गई हुई उस भूमि का लोकों के हितके लिए दंष्ट्राके अग्रभाग से उद्धार किया था। इसके अनन्तर पृथिवीके धारण करने वाले वराह भगवान ने उसे अपने स्थान पर लाकर पहिले मन में धारित वसुन्धरा को छोड़ दिया था। फिर यह मेदिनी उसके धारण करने से निर्वाण को प्राप्त हो गई थी। उस पृथ्वी ने उस शम्भु देव को नमस्कार किया था। इस प्रकार से भूतोंके हित के चाहने वाले यज्ञ वराह भगवान् ने वराह होकर पहिले सागर के जल में गयी हुई पृथिवी देवी को उद्धृत किया था। इसके अनन्तर देव ने क्षिति को उद्धृत करके इस जगत् की स्थापना करने की इच्छा से अम्बुजेक्षण ने पृथिवी के अविभाग करने के लिए मन में विचार किया था।७१-७८। अचिन्तनीय विक्रम वाले सुरोंमें श्रेष्ठ प्रवर वराह के स्वरूप को धारण करते हुए भगवान्ने जो वृषा कपि अतुलित पौरुष से सम्पन्न थे रसातल में गई हुई धरिणी को बलपूर्वक एक दाढ़ से समुद्धृत किया था।७९।

रसाङ्गतामत्रनिमचिन्तविक्रमः सुरोत्तमः प्रवरवराहरूपधृक् ।
वृषाकपिः प्रसभमथैकदंष्ट्रया समुद्धरद्धरणिमतुल्यपौरुषः ।७६

वायु के अन्तरात्मा वाले—यज्ञों की अस्थि विकृतियों से संतुत—सोम के शोणित से समन्वित—वेदों के स्कन्ध वाले—हवि की गन्ध से सम्पन्न–हव्य और कव्य के विभाग वाले प्राग्वंश की काया से युक्त—द्युतिमान—अनेक दीक्षाओं से समन्वित—दक्षिणा हृदय—महासत्रमय महान् योगी—उपा कर्मोष्ठ रुचक–प्रवर्ग्यावर्त्त भूषण–नाना छन्दोगति पथ–गुह्योपनिषदासन–उच्छ्रित मणिशृङ्ग की भाँति छाया पत्नीसहाय प्रभुने रसातल के तलमें मग्न और रसातल के तलमें गई हुई उस भूमि का लोकों के हितके लिए दंष्ट्राके अग्रभाग से उद्धार किया था। इसके अनन्तर पृथिवीके धारण करने वाले वराह भगवान ने उसे अपने स्थान पर लाकर पहिले मन से धारित वसुन्धरा को छोड़ दिया था। फिर यह मेदिनी उसके धारण करने से निर्वाण को प्राप्त हो गई थी। उस पृथ्वी ने उस शम्भु देव को नमस्कार किया था। इस प्रकार से भूतोंके हित के चाहने वाले यज्ञ वराह भगवान् ने वराह होकर पहिले सागर के जल में गयी हुई पृथिवी देवी को उद्धृत किया था। इसके अनन्तर देव ने क्षिति को उद्धृत करके इस जगत् की स्थापना करने की इच्छा से अम्बुजेक्षण ने पृथिवी के अविभाग करने के लिए मन में विचार किया था।७१-७८। अचिन्तनीय विक्रम वाले सुरोंमें श्रेष्ठ प्रवर वराह के स्वरूप को धारण करते हुए भगवान्ने जो वृषा कपि अतुलित पौरुष से सम्पन्न थे रसातल में गई हुई धरिणी को बलपूर्वक एक दाढ़ से समुद्धृत किया था।७६।

११२–क्षीरोद मन्थन वर्णन (१)

नारायणस्य माहात्म्यं श्रुत्वा सूत ! यथाक्रमम् ।
न तृप्तिर्जायतेऽस्माकमतः पुनरिहोच्यताम् ।१
कथं देवा गताः पूर्वममरत्वं विचक्षणाः ।
तपसा कर्मणा वापि प्रसादात्कस्य तेजसा ।२
यत्र नारायणो देवो महादेवश्च शूलधृक् ।
तत्रामरत्वे सर्वेषां सहायौ तत्र तौ स्मृतौ ।३
पुरा देवासुरे युद्धे हताश्च शतशः सुरैः ।
पुनः सञ्जीविनीं विद्यां प्रयोज्य भृगुनन्दनः ।४
जीवापयति दैत्येन्द्रान् तथा सुप्तोत्थितानिव ।
तस्य तुष्टेन देवेन शङ्करेण महात्मना ।५
मृतसञ्जीविनी नाम विद्याया तु महाप्रभा ।
तां तु माहेश्वरीं विद्यां महेश्वरमुखोद्गताम् ।६
भार्गवे संस्थितां दृष्ट्वा मुमुहुः सर्वदानवाः ।
ततोऽमरत्वं दैत्यानां कृतं शुक्रेण धीमता ।७

ऋषिगण ने कहा—हे सूतजी ! भगवान् नारायण के यथाक्रम माहात्म्य का श्रवण करके हमारी तृप्ति नहीं होती है अतएव पुनः आप वर्णन कीजिए ।१। विचक्षण देव किस प्रकार से पहले अमरत्व को प्राप्त हुए थे । किसी तप के द्वारा अथवा कर्म से या किसी के प्रसाद से या तेज के द्वारा देवों को अमरता प्राप्त हुई थी ? श्री सूतजी ने कहा-जहाँ पर देव नारायण और शूल को धारण करने वाले महादेव विद्यमान थे वे दोनों उन सबके अमरत्व के प्रतिपादन करने में सहायक कहे गये हैं ।२-३। प्राचीन समय में देवासुर युद्ध में सुरों के द्वारा सैकड़ों दैत्येन्द्र निहत कर दिये गये थे । फिर भृगुनन्दन ने अपनी सञ्जीवनी विद्या का प्रयोग करके सोकर उठे हुओं की भाँति जीवित कर दिया

था । महात्मा देव शंकर ने परम सन्तुष्ट होकर महान् प्रभाव एवं प्रभा वाली सञ्जीवनी विद्या उसको प्रदान कर दी थी । महेश्वर के मुख से समुद्गत उस माहेश्वरी विद्या को भार्गव महर्षि में संस्थित देखकर समस्त दानव मोह को प्राप्त हो गये थे । इसके अनन्तर धीमान् शुक्रने दैत्यों का अमरत्व कर दिया ।६-७।

या नास्ति सर्वलोकानां देवानां सर्वरक्षसाम् ।
न नागानामृषीणाञ्च न च ब्रह्मेन्द्रविष्णुषु ।८
तां लब्ध्वा शंकराच्छुक्रः परां निर्वृत्तिमागतः ।
ततो दैवासुरो घोरः समरः सुमहानभूत् ।९
तत्र देवैर्हतान् दैत्यान् शुक्रो विद्याबलेन च ।
उत्थापयति दैत्येन्द्रान् लीलयैव विचक्षणः ।१०
एवम्विधेन शक्रस्तु बृहस्पतिरुदारधीः ।
हन्यमानास्ततो देवाः शतशोऽथ सहस्रशः ।११
विषण्णवदनाः सर्वे बभूवुर्विकलेन्द्रियाः ।
ततस्तेषु विषण्णेषु भगवान् कमलोद्भवः ।
मेरुपृष्ठे सुरेन्द्राणामिदमाह जगत्पतिः ।१२
देवाः शृणुत मद्वाक्यं तत्तथैव निरूप्यताम् ।
क्षिप्यतां दानवैः सार्द्धं सख्यमत्रवर्त्तताम् ।१३
क्रियताममृतोद्योगो मथ्यतां क्षीरवारिधिः ।
सहायं वरुणं कृत्वा चक्रपाणिर्विबोध्यताम् ।१४

जो विद्या समस्त लोकों के पास नहीं थी तथा देवों और राक्षसों के समीप में भी विद्यमान नहीं थी एवं नाग, ऋषिगण और ब्रह्मा, इन्द्र तथा विष्णुके पास भी नहीं रही उस महान् प्रभाव वाली इस विद्याको भगवान् शङ्कर से प्राप्त करके शुक्राचार्य परम निवृत्ति को प्राप्त हुए थे । इसके पश्चात् सुमहान देवासुर घोर समर हुआ था ।८-९। वहाँ पर देवों के द्वारा मारे हुए दैत्योंको शुक्राचार्य ने विद्या के बल के द्वारा

नीला ही से विचक्षण ने उठा दिया था। इस प्रकार से इन्द्र और उदार बुद्धि वाले बृहस्पति तथा हन्यमान सैकड़ों और सहस्रों देवगण सबके सब विषाद युक्त मुखों वाले विकलेन्द्रिय हो गये थे। इसके पश्चात् उनके विषण्ण होने पर भगवान् कमलोद्भव जगत् के स्वामी ने मेरु पर्वत के पृष्ठ भाग यह सुरेन्द्रों से कहा था।१०-१२। ब्रह्माजी ने कहा हे देवगणो ! मेरा यह वाक्य सुनो और उसे वैसे ही करो। दानवों के साथ यहाँ पर सख्य भाव कर डालो। अमृत की प्राप्ति का उद्योग करो तथा क्षीर-सागर का मन्थन करो। वरुण को सहायक बनाकर भगवान् चक्रपाणि को प्रबुद्ध करना चाहिए।१३-१४।

मन्थानं मन्दरं कृत्वा शेषनेत्रेण वेष्टितम्।
दानवेन्द्रोबलिस्वामीस्तोककालं निवेश्यताम् ।१५
प्रार्थ्यतां कूर्मरूपश्च पाताले विष्णुरव्ययः।
प्रार्थ्यतां मन्दरः शैलः मन्थकार्यप्रवर्त्यताम् ।१६
तच्छ्रुत्वा वचनं देवा जग्मुर्दानवमन्दिरम् ।
अलं विरोधे वयं भृत्यास्तव बलेऽधुना ।१७
क्रियताममृतोद्योगो क्रियतां शेषनेत्रकम्।
त्वया चोत्पादिते दैत्य ! अमृतेऽमृतमन्थने ।१८
भविष्यामोऽमराः सर्वे त्वत्प्रसादान्न संशयः।
एवमुक्तस्तदा देवैः परितुष्टः स दानवः ।१९
यथा वदत हे देवास्तथाकार्यं मयाऽधुना ।
शक्तोऽहमेक एवात्र मथितुं क्षीरवारिधिम् ।२०
आहरिष्येऽमृतं दिव्यममृतत्वाय वोऽधुना ।
सुदूरादाश्रयं प्राप्तान् प्रणतानपि वैरिणः ।२१
यो न पूजयते भक्त्या प्रेत्य चेह विनश्यति।
पालयिष्यामि वः सर्वानधुनास्नेहमास्थितः ।२२

मन्दराचल पर्वत को मन्थान बनाकर उसे शेषनाग के नेत्र से

(नेती से) वेष्टित करो। दानवों के इन्द्र स्वामी बलि को थोड़े समय तक निवेशित करो। पाताल में अविनाशी भगवान् विष्णु जो कूर्मरूप वाले हैं उनकी प्रार्थना करो। शैलराज मन्दराचल की भी प्रार्थना करो और फिर मन्थन का कार्य प्रवृत्त कर दो। इस वचन को देवों ने श्रवण किया था और फिर वे सब दानवों के मन्दिरमें गये थे। हे बले ! अब आप विरोध मत करो हम सब आपके भृत्य हैं। अब तो सब मिलकर अमृत की उपलब्धि का प्रयोग करो और मन्थन कार्य का नेत्र शेषनाग को बना डालो। हे दैत्य ! आपके द्वारा इस अमृत मन्थन में अमृत के समुत्पादित होने पर, सब अमर हो जायेंगे और यह आपके ही प्रसाद से सुसम्पन्न होगा—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। इस तरह से उन देवों के द्वारा कहे जाने वाला यह दानव बहुत परितुष्ट हो गया था। हे देवगण ! आप लोग जैसा भी कहते हैं हम भी सब वैसा ही मुझसे भी इस समय में करना ही है। यहाँ पर मैं अकेला ही इस क्षीर वारिधि को मन्थन करने में समर्थ हूँ और अब मैं आपको दिव्य अमृतत्व के लिए लाकर दे दूँगा। सुदूर से आश्रय को प्राप्त होने वाले वैरियों का जो भक्तिभाव से पूजन नहीं किया है वह वहाँ पर मरकर विनिष्ट हो जाया करता है। अब मैं स्नेह में समास्थित होकर आप सब लोगों का पालन करूँगा।१५-२२।

एवमुक्त्वा स दैत्येन्द्रो देवैः सह ययौ तदा।
मन्दरं प्रार्थयामास सहायत्ने धराधरम्।२३
सखा भवत्वमस्माकमधुनाऽमृतमन्थने।
सुरासुराणां सर्वेषां महत्कार्यमिदं जगत्।२४
तथेति मन्दरः प्राह यद्याधारो भवेन्मम।
यत्र स्थित्वा भ्रमिष्यामिमथिष्येवरुणालयम्।२५
कल्प्यतां नेत्रकार्ये यः शक्तः स्याद्वेष्टने मम।
ततस्तु निर्गतौ देवौ कर्मशेषौ महाबलौ।२६

विष्णोर्भागौ चतुर्थांशाद्धरण्या धारणे स्थितौ ।
ऊचतुर्गर्वसंयुक्तं वचनं शेषकच्छपौ ।२७
त्रैलोक्यधारणेनापि न ग्लानिर्मम जायते ।
किमु मन्दारकात् क्षुद्रात् घुटिकासन्निभादिह ।२८

उसी समय में वह दैत्यराज इस प्रकार से देवगण के साथ चला गया था। धराधर मन्दर की सहायता करने के लिए प्रार्थना की थी। उसने कहा था—हे पर्वतवर ! इस समय में आप हमारे इस अमृत के मन्थन में सखा हो जाइए ! इस जगत् में सब सुर और असुरों का यह एक बहुत बड़ा कार्य है। ऐसा ही हो जायगा—यदि मेरा कोई आधार हो जायगा जिस पर स्थित होकर मैं भ्रमण करूँगा और सागर का मन्थन करूँगा ।२३-२५। नेत्र बनने के कार्य में जो भी समर्थ हो और मेरा वेष्टन कर सके उसकी कल्पना करिये। इसके पश्चात् महा बल-वान् कूर्म और शेष निर्गत हो गये थे। भगवान् विष्णु के भाग धरणी के चतुर्थ अंश से धारण करने में स्थित हो गए थे। शेष और कच्छप गर्व से समन्वित वचन कहने लगे। इस त्रिलोकी के धारण करने में भी मुझको कोई ग्लानि नहीं होती है कि एक घुटिका के सदृश यहाँ पर इस क्षुद्र मन्दर स्थल से क्या ग्लानि अर्थात् थकान हो सकती है ।२६-२८।

ब्रह्माण्डवेष्टनेनापि ब्रह्माण्डमथनेन वा ।
न मे ग्लानिर्भवेद्देहे किमु मन्दरवर्तने ।२९
तत उत्पाट्यतं शैलं तत्क्षणात् क्षीरसागरे ।
चिक्षेप लील नागः कूर्मश्चाधः स्थितस्तदा ।३०
निराधारं यदा शैलं न शेकुर्देवदानवाः ।
मन्दरभ्रामणं कर्तुं क्षीरोदमथने तथा ।३१
नारायणनिवासन्ते जग्मुर्बलिसमन्विताः ।
यत्रास्ते देवदेवेशः स्वयमेव जनार्दनः ।३२

तत्रापश्यन्त तन्देवं सितपद्मप्रभं शुभम् ।
योगनिद्रामुनिरतं पीतवाससमच्युतम् ।३३
हारकेयूरनद्धाङ्गमहिपर्यंकसंस्थितम् ।
पादपद्मे न पद्मायाः स्पृशन्तं नाभिमण्डलम् ।३४
स्वपक्षव्यजनेनाथ वीज्यमानङ्गरुत्मता ।
स्तूयमानं समन्ताच्च सिद्धचारणकिन्नरैः ।३५

भगवान् शेष ने कहा—इस पूरे ब्रह्माण्ड के वेष्टन से भी तथा पूर्ण ब्रह्माण्ड के मन्थन से भी मुझे कोई ग्लानि नहीं होती है फिर इस मन्दर के वेष्टन से क्या मुझे हानि हो सकती है ।२६। इसके अनन्तर उसी क्षण में उस मन्दर शैल को उत्पादित करके क्षीर सागर में उस समय में लीला ही से डाल दिया था और कूर्म तथा नाग नीचे स्थित हो गये ।३०। जिस समय महादेव और दानव क्षीरोद के मन्थन में निराधार शैल को मन्थन करने में समर्थ न हो सके थे तो वे सब बलि के सहित नारायण प्रभु के निवास स्थल पर गये थे वहाँ पर देवों के सहित नारायण प्रभु के निवास स्थल पर गये थे, वहाँ पर देवों के भी देवेश्वर भगवान् जनार्दन स्वयं ही विराजमान थे ।३१-३२। वहाँ पर उन सबने श्वेत पद्म के समान प्रभा वाले—योग निद्रा में निरत—पीताम्बरधारी अच्युत देव का दर्शन किया था । वह प्रभु हार और केयूर से नद्ध अंग वाले और शेष के पर्यङ्क पर शयन करने वाले—पद्मा के पाद पद्म से नाभि मण्डल का स्पर्श करते हुए विराजमान थे । गरुड़ उस समय में अपने पक्षों से उनका व्यंजन कर रहे थे और सिद्धचारण तथा गन्धर्वों के द्वारा स्तवन किये जा रहे थे ।३३-३५।

आम्नायै र्मूर्त्तिमद्भिश्च स्तूयमानं समन्ततः ।
सव्यबाहूपधानं तन्तुष्टुवुर्देवदानवाः ।३६
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे प्रणताः सर्वतो दिशम् ।
नमो लोकत्रयाध्यक्ष ! तेजसामितभास्कर ! ।३७
नमो विष्णो ! नमो विष्णो ! नमस्ते कैटभार्दन ।

नमः सर्गं क्रियाकर्त्रे जगत्पालयते नमः ।३८
रुद्ररूपाय शर्व्वाय नमः संहारकारिणे ।
नमः शूलायुधाधृष्य नमो दानवघातिने ।३९
नमः क्रमत्रयाक्रान्त त्रैलोक्यायाभवाय च ।
नमः प्रचण्डदैत्येन्द्रकुलकाल महानल ! ।४०
नमो नाभिह्रदोद्भूतपद्मगर्भमहाचल ! ।
पद्मभूत ! महाभूत ! कर्त्रे हर्त्रे जगत्प्रिय ।४१
जनिता सर्वलोकेश । क्रियाकारणकारिणे ।
अमरारिविनाशाय महासमरशालिने ।४२

उन नारायण प्रभु के चारों ओर मूर्त्तिमान् आम्नाय स्थित होकर स्तुति कर रहेथे । मध्यबाहु उपधान वाले उन प्रभु नारायण का समस्त देवों और दानवों ने वहाँ पर स्तवन किया था ।३६। सभी दिशाओं में वे सब अपनी अञ्जलियाँ बाँधकर तथा प्रणतहोते उपस्थित हो गयेथे । देव दानवों ने कहा—हे तीनों लोकोंके स्वामिन । आपकी सेवामें हमारा नमस्कार समर्पित है । आप तो अपने तेज के द्वारा अमित भास्कर के समान हैं । हे विष्णो ! हे विष्णो ! हे कैटभ दैत्यके मर्दन करने वाले ! आपको हम सबका बारम्बार नमस्कार है । समस्त क्रियाओं के करने वाले और इस जगती तल के परिपालन करने वाले आपकी सेवा में हमारा नमस्कार है ।३७-३८। संहार के करने वाले रुद्र रूप धारी भगवान् शर्व के लिए हमारा नमस्कार है । हे शूल के अपने आयुध से नधर्षण करने योग्य । दानवों के घात करने वाले आपको नमस्कार है ।३९। हे क्रम के भय से आक्रान्त ! हे प्रचण्ड दैत्येन्द्रों के कुल के लिए काल । हे महानल । त्रैलोक्य स्वरूप और अभव आपकी सेवा में बारम्बार प्रणाम समर्पित है । आपतो अपनी नाभिरूपी ह्रदसे उत्पन्न पद्म के गर्भसे महान् अचल हैं । हे पद्मभूत ! हे महाभूत हे जगत् के परम प्रिय ! सबके कर्त्ता और हर्त्ता आपके लिए नमस्कार हैं ।४०-४१। हे

सर्व लोकों के ईश ! आप ही सबके जनन करने वाले हैं। देवों के शत्रुओं के विनाश करने वाले और महा समरशाला तथा क्रिया और कारण के करने वाले आपकी सेवा में हम सबका प्रणाम उपस्थित है ।४२।

लक्ष्मीमुखाब्जमधुप । नमः कीर्तिनिवासिने ।
अस्माकममरत्वाय ध्रियतां ध्रियतामयम् ।४३
मन्दरः सर्वशैलानामयुतायुतविस्तृतः ।
अनन्तबलबाहुभ्यामवष्टभ्यैकपाणिना ।४४
मथ्यताममृतं देव । स्वधास्वाहार्थकामिनाम् ।
ततः श्रुत्वा स भगवान् स्तोत्रपूर्व्वं वचस्तदा ।
विहाय योगनिद्रान्तामुवाच मधुसूदनः ।४५
स्वागतं विबुधाः । सर्वे किमागमनकारणम् ।
यस्मात्कार्य्यादिह प्राप्तास्तद् ब्रूत विगतज्वराः ।४६
नारायणेनैव मुक्ताः प्रोचुस्तत्रदिवौकसः ।
अमरत्वाय देवेश ! मथ्यमाने महोदधौ ।४७
यथाऽमृतत्वं देवेश ! तथा नः कुरु माधव ! ।
त्वया विना नच्छक्यमस्माभिः कैटभार्दन ! ।४८
प्राप्तुं तदमृतं नाथ ! ततोऽग्रे भव नो विभो ।
इत्युक्तश्च ततोविष्णुरप्रधृष्योऽरिमर्दनः ।४९

हे लक्ष्मी के मुखरूपी कमल के रसास्वादन करने वाले मधुप ! कीर्त्ति निवासी आपके लिए नमस्कार है । हम सबके अमरतत्व प्राप्तिके लिए आप इस समस्त शैलों में अयुतायुत विस्तार वाले मन्दराचल को अनन्त बल सम्पन्न बाहुओं से अवष्टब्ध करके एक हाथ से धारण करने की कृपा कीजिए और इसे धारण करिए ।४३-४४। हे देव ! स्वधा, स्वधाहा की कामना करने वालों के अमृत का मन्थन कीजिए । इसके उपरान्त नारायण भगवान् ने स्तवन पूर्वक इस वचन का श्रवण किया

था। उसी समय में मधु सूदन प्रभु ने उस अपनी परम प्रिय योग निद्रा का त्याग करके उनसे यह वचन बोले थे—श्री भगवान ने कहा—सब देवगणो ! आपका स्वागत है। हमको आप यह बतलाइए कि यहाँ पर इस समय में आप लोगों के यहाँ आने का क्या कारण है ? जिस कार्य को लेकर इसमें में आप लोग यहाँ प्राप्त हुए हैं उसको अब मेरे सामने बिल्कुल दुःख रहित होकर बतलाये ।५५-४६। भगवान् नारायण के द्वारा इस तरह से कहे हुए वहाँ पर देवगणने कहा--हे देवेश ! अमरता के लिए मथ्यमान महोदधिमें जिस प्रकार से हमारा अमृतत्व सम्पादित हो सके वैसा ही हे माधव! आप करिए। हे कैटभार्दन। आपके बिना हम लोगों के द्वारा यह नहीं किया जा सकता है ।४७-४८। हे नाथ। उस अमृत को प्राप्त करने के लिए हे विभो। आप हमारे सबके आगे हो जाइए। इस तरह से कहे गये अरियों के मर्दन करने वाले और अप्रधृष्य विष्णु उनके साथ चल दिए थे ।४९।

जगाम देवैः सहितो यत्रासौ मन्दराचलः ।
वेष्टितो भोगिभोगेन धृतश्चामरदानवैः ।५०
विषभीतास्ततोदेवा यतः पुच्छं ततः स्थिताः ।
मुखतो दैत्यसङ्घास्तु सैंहिकेयपुरः सराः ।५१
सहस्रवदनं चास्य शिरः सव्येन पाणिना ।
दक्षिणेन बलिर्देहं नागस्याकृष्टवांस्तथा ।५२
दधारामृतमन्थानं मन्दरं चारुकन्दरम् ।
नारायणः स भगवान् भुजयुग्मद्वयेन तु ।५३
ततो देवासुरैः सर्वैं र्जयशब्दपुरःसरम् ।
दिव्यं वर्षशतं साग्रं मथितः क्षीरसागरः ।५४
ततः श्रान्तास्तास्तु ते सर्वे देवा दैत्यपुरःसरा ।
श्रान्तेषु तेषु देवेन्द्रो मेघो भूत्वाम्बुशीकरान् ।५५

ववर्षामृतकल्पांस्तान् ववौ वायुश्च शीतलः ।
भग्नप्रायेषु देवेषु शान्तेषु कमलासनः ।५६

भगवान् विष्णु उन सब देवों के सहित वहाँ पर चले गये थे जहाँ पर यह मन्दराचल विद्यमान था । वह मन्दराचल भोगी शेष के भोग के द्वारा वेष्टितथा और अमरीं तथा दानवों के द्वारा धृत हो रहा था । ।५०। क्योंकि देवगण विष से भयभीत होकर शेष नाग की पूँछ की ओर स्थित हो रहे थे तथां संहिकेय जिनके आगे था ऐसे दैत्यों के संघ शेष के मुख की ओर समवस्थित थे । सहस्र मुखों वाले इसके शिर को बलि ने सव्य दक्षिण हाथसे आकर्षित किया था।५१-५२। उन भगवान् नारायण ने अपनी दोनों भुजाओं से सुन्दर कन्दराओ वाले मन्दराचल को क्षमृत का मन्थान धारण किया था।५३। इसके अनन्तर समस्तदेवों और असुरों ने जय शब्दके उच्चारण पूर्वक दिव्य डेढ़ सौ वर्ष तक उस क्षीर सागर का मन्थन किया था ।५४। इसके पश्चात् वे सब दैत्य पुरस्सर देवगण अत्यन्त श्रान्त हो गये थे । उन सबके थकित होने पर देवेन्द्र ने मेघ होकर उन अमृत के समान जल के सीकरों की वर्षा की थी । तथा शीतल वायु वहने लगा था । जब देवगण भग्न प्रायः होकर प्राप्त हो गये थे तो उस समय पर कमलासन प्रभु ने उनको प्रोत्साहित दिया था जिससे मन्थन कार्य बराबर चलता रहे ।५५-५६।

मथ्यतां मथ्यतां सिन्धुरित्युवाच पुनः पुनः ।
अवश्यमुद्योगवतां श्रीरपारा भवेत्सदा ।५७

ब्रह्मप्रोत्साहिता देवा ममन्थुः पुनरम्बुधिम् ।
भ्राम्यमाणे ततः शैले योजनायुतशेखरे ।५८

निपेतुर्हस्तियूथानि वराहशरभादयः ।
श्वापदायुतलक्षाणि तथा पुष्पफला द्रुमाः ।५९
ततः फलानां वीर्य्येण पुष्पौषधिरसेन च ।
क्षीरसङ्कर्षणाच्चापि दधिरूपमजायत ।६०

ततस्तु सर्वजीवेषु चूर्णितेषु सहस्रशः ।
तदम्बु मेदसोत्सर्गाद्वारुणी समपद्यत ।६१
वारुणीगन्धमाघ्राय मुमुदुर्देवदानवाः ।
तदास्वादेन बलिनो देवदैत्यादयोऽभवन् ।६२
ततोऽतिवेगाज्जगृहुर्नगेन्द्रं सर्वतोऽसुराः ।
मन्थानं मन्थयष्टिस्तु मेरुस्तत्राचलोऽभवत् ।६३

कमलासन प्रभु ने सिन्धु का मन्थन करो मन्थन करो--यह बार-२ कहा था। जो उद्योग में परायण हुआ करते हैं उनको सदा ही अपार श्री प्राप्त हुआ करती है। इस तरह से ब्रह्माजी के द्वारा प्रोत्साहित हुए देवोंने पुनः अम्बुधि का मन्थन किया था। फिर दश हजार योजन के शिखर वाले शैल के भ्राम्यमाण होने पर हस्तियों के यूथ, वराह, शरभ आदि सहस्रों एवं लाखों श्वापद, पुष्प तथा फलोवाले वृक्ष, फलो के वीर्य से तथा पुष्पों और औषधियों के रस से एवं क्षीर के सघर्षण से भी वह सागर दधिके रूप वाला होगया था।५७-६०। इसके पश्चात् सहस्रों समस्त जीवों के चूर्णित होने पर उस अम्बु मेद के सोत्सर्ग से वारुणी समुत्पन्न हुई थी।६१। उस वारुणी की गन्ध को सूँघकर सब देव और दानव बहुत ही अधिक प्रसन्न हुए थे। उसके आस्वाद से देव गण और दैत्य आदिक सब बली हो गये थे।६२। इसके उपरान्त असुरों ने सभी ओर वेग के साथ उस नागेन्द्र को ग्रहण किया था और वह मन्थान तथा मन्थयष्टि मेरु वहाँ पर अचल हो गया था।६३।

अभवच्चाग्रतोविष्णुर्भुजमन्दरबन्धनः ।
स वासुकिफणालग्नपाणिः कृष्णो व्यराजत ।६४
यथा नीलोत्पलैर्युक्तो ब्रह्मदण्डोऽतिविस्तरः ।
ध्वनिर्मेघसहस्रस्य जलधेरुत्थितस्तदा ।६५
भागे द्वितीये मघवानादित्यस्तु ततः परम् ।
ततो रुद्रा महोत्साहा वसवो गुह्यकादयः ।६६

पुरतो विप्रचित्तिश्च नमुचिर्वृत्रशम्बरौ ।
द्विमूर्द्धा वज्रदंष्ट्रश्च सैंहिकेयो बलिस्तथा ।६७
एते चान्ये च बहवो मुखभागमुपस्थिताः ।
ममन्थुरम्बुधिं दृप्ता बलतेजोविभूषिताः ।६८
बभूवात्र महाघोषो महामघरवोपमः ।
उदधेर्मथ्यमानस्य मन्दरेण सुरासुरैः ।६९
तत्र नानाजलचरा विनिर्धूता महाद्रिणा ।
विलयं समुपाजग्मुः शतशोऽथ सहस्रशः ।७०

आगे की ओर भुजमन्दर बन्धन वाले विष्णु थे और वह वासुकि के फणों में संलग्न हाथ वाले कृष्ण शोभा दे रहे थे ।६४। उस समय में जिस प्रकार से नीलोत्पलों से युक्त अति विस्तार वाला ब्रह्मदण्ड हो । उस समय में सहस्रों मेघों को ध्वनि उस सागरसे उठकर सुनाई दे रही थी ।६५। द्वितीय भाग में भगवान् और उसके आगे आदित्य थे । इसके पश्चात् रुद्रगण और महान् उत्साह वाले वसुगण तथा गुह्यक आदि थे। आगे की ओर विप्रचित्ति, नमुचि तथा वृत्र और शम्बर थे द्विमूर्धा,वज्र दंष्ट्र, सैंहिकेय तथा बलि थे ।६६-६७। ये सब तथा अन्य बहुत-से मुख भाग की ओर उपस्थित थे । उन सबने बल एवं तेज से विभूषित होते हुए दृप्त होकर अम्बुधि का मन्थन किया था ।६८।सुरों असुरों के द्वारा मन्दराचल से मथ्यमान सागर का महान् मेघ की ध्वनि के तुल्य महान् घोष हुआ था। उस महाद्रि से वहाँ पर अनेक जलचर विनिर्धूत हो गये थे और सैकड़ों तथा सहस्रों तो विलय को प्राप्त हो गये थे ।६९-७०।

वारुणानि च भूतानि विविधानि महेश्वरः ।
पातालतलवासीनि विलयं समुपानयत् ।७१
तस्मिंश्च भ्राम्यमाणेऽद्रौ संघृष्टाश्च परस्परम् ।
न्यपतन् पतंगोपेताः पर्वताग्रान्महाद्रुमाः ।७२

तेषां सङ्घर्षणाच्चाग्निरर्चिभिः प्रज्वलन् मुहुः ।
विद्युद्भिरिव नीलाभ्रमावृणोन्मन्दरं गिरिम् ।७३
ददाह कुञ्जरांश्चैव सिंहांश्चैव विनिःसृतान् ।
विगतासूनि सर्वाणि सत्वानि विविधानि च ।७४
तमग्निममरश्रेष्ठः प्रदहन्तमितस्ततः ।
वारिणा मेघजेनेन्द्रः शमयामास सर्वतः ।७५
ततो नानारसास्तत्र सुस्रुवुः सागराम्भसि ।
महाद्रुमाणां निर्यासा बहवश्चौषधीरसाः ।७६
तेषाममृतवीर्य्याणां रसानां पयसैव च ।
अमरत्वं सुरा जग्मुः काञ्चनच्छविसन्निभाः ।७७

महेश्वर भगवान् ने पाताल तल के निवास करने वाले विविध वारुण भूतों को विलय को प्राप्त कर दिया था । उस पर्वत के भ्राम्यमाण होने पर परस्पर में संघर्ष को प्राप्त हुए पर्वत के अग्रभाग से पक्षियों से संयुत महान् द्रुम नीचे गिर गये थे ।७१-७२। उनके संघर्ष होने से अग्नि अचियों के द्वारा बारम्बार जलती ने विद्युतों के द्वारा नाल अभ्र की भाँति उस मन्दराचल को समावृत कर लिया था । निकले हुए कुञ्जरों को तथा सिंहों को—विगत प्राणों वाले सब अनेक सत्वों को दग्ध कर दिया था । अमरों में श्रेष्ठ ने इधर-उधर जलती हुई उस अग्नि को इन्द्रदेव ने सभी ओर मेघ से समुत्पन्न जल के द्वारा शान्त कर दिया था ।७३-७५। इसके अनन्तर वहाँ पर सागर के जल में नाना प्रकार के रसों का स्राव होने लगा था । उसमें महान् वृक्षों के निर्यास थे और बहुत सी औषधियों के रस थे । उन अमृत वीर्य वाले रसों के पय से ही सुरगण काञ्चन छवि के सदृश होते हुए अमृतत्व को प्राप्त हो गये थे ।७६-७७।

अथ तस्य समुद्रस्य तज्जातमुदकं पयः ।
रसान्तरैर्विमिश्रिच्च ततः क्षीरादभूद्घृतम् ।७८

ततो ब्रह्माणमासीनं देवा वचनमब्रुवन् ।
श्रान्ताःस्म: सुभृशं ब्रह्मन्नोद्भवत्यमृतञ्च तत् ।७९
ऋते नारायणात्सर्वे दैत्या देवोत्तमास्तथा ।
चिरायितमिदञ्चापि सागरस्य तु मन्थनम् ।८०
ततो नारायणं देवं ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।
विधत्स्वैषां बलं विष्णो ! भवानेव परायणम् ।८१
बलं ददामि सर्वेषां कर्मैतद्ये समास्थिता: ।
क्षुभ्यतां क्रमश: सर्वैर्मन्दर: परिवर्त्यताम् ।८२

इसके अनन्तर उस समुद्र का जो जल था वह पय हो गया था और वह रसान्तरों से विमिश्रित हो गया था। इसके पश्चात् क्षीर से वह घृत हो गया था ।७८। इसके उपरान्त वहाँ पर समासीन ब्रह्माजी से देवगण ने यह वचन कहा था।—हे ब्रह्मन् ! हम लोग अत्यधिक श्रान्त हो गये हैं और वह अमृत उत्पन्न नहीं हो रहा है। भगवान् नारायणके बिना समस्त दैत्य और सब देवोत्तम गण ने इस सागर के मन्थन को करते हुए बहुत अधिक समय व्यतीत किया था।इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने देव नारायण से यह वचन कहा—हे विष्णो ! आप इनको बल का प्रदान करें। आप ही परायण हैं। भगवान् विष्णु ने कहा--जो इस कर्म के करने में समास्थित हैं उन सबको मैं बल का प्रदान करताहूँ। सबको क्रम से इसमें क्षोभ करना चाहिए और मन्दराचल को घुमाना चाहिए ।७९-८२।

=×=

११३-क्षीरोद मन्थन वर्णन

नारायणवच: श्रुत्वा बलिनस्ते महोदधिम् ।
तत्पय: संहिता भूत्वा चक्रिरे भृशमाकुलम् ।१

तत: शतसहस्रांशुसमान इव सागरात् ।
प्रसन्नाभ: समुत्पन्न: सोम: शीतांशुरुज्ज्वल: ।२
श्रीरनन्तरमुत्पन्ना घृतात्पाण्डुरवासिनी ।
सुरादेवीसमुत्पन्ना तुरंग: पाण्डुरस्तथा ।३
कौस्तुभश्च मणिर्दिव्यश्चोत्पन्नोऽमृतसम्भव: ।
मरीचिविकच: श्रीमान् नारायण उरोगत: ।४
पारिजातश्च विकचकुसुमस्तबकाञ्चित: ।
अनन्तरमपश्यंस्ते धूममम्बरसन्निभम् ।५
आपूरितदिशाम्भाग दु:सहं सर्वदेहिनाम् ।
तमाघ्राय सुरा: सर्वे मूर्च्छिता परिलङ्घिता: ।६
उपाविशन्नब्धितटे शिर: संगृह्य पाणिना ।
तत: क्रमेण दुर्वार: सोऽनल: प्रत्यदृश्यत ।७

महर्षि सूतजी ने कहा—भगवान् नारायण के वचन का श्रवण करके वे बलवान् सब संहित होकर उस महोदधि के पय को अत्यन्त ही अधिक उन्होंने आकुलकर दिया था । इसके पश्चात् उस सागर से एक शत सहस्रांशु के ही समान प्रसन्न आभा वाला उज्ज्वल शीतांशु सोम, समुत्पन्न हुआ था इसके अनन्तर घृत से पाण्डुर वासिनी श्री समुत्पन्न हुई थी फिर सुरा देवी समुत्पन्न हुई तथा पाण्डुर तुरंग उत्पन्न हुआ था ।१-३। फिर अमृत से सम्भव होने वाली परम दिव्य कौस्तुभ मणि समुत्पन्न हुई थी जो मरीचियों से विक एवं श्री सम्पन्न श्री और नारायण के उर:स्थल में प्राप्त हो गई थी ।४। पारिजात की समुत्पत्ति हुई थी जो विकसित कुसुमों के स्तवकों से अञ्चित था । इसके अनन्तर उन सबने अम्बर के सदृश धूम को देखा था ।५। सब दिशाओं के भागों को समापूरित सब देहधारियों को दु:सह ऐसे उस धूम को समाघ्रात करके सभी सुरगण मूर्च्छित और परिलंघित हो गये थे ।६। सबके सब उस समय में अपने हाथ से शिर पकड़ कर सागर के तट पर बैठ गये थे

और इसके उपरान्त वह अनल अत्यन्त ही क्रम से दुर्वार होकर दिखाई देने लगा था ।७।

ज्वालामालाकुलाकारः समन्ताद्भीषणोऽर्चिषा ।
तेनाग्निना परिक्षिप्ताः प्रायशस्तु सुरासुराः ।८
दग्धाश्चाप्यर्द्धदग्धाश्च बभ्रमुः सकला दिशः ।
प्रधाना देवदैत्याश्च भीषितास्तेन वह्निना ।९
अनन्तरं समुद्भूतास्तस्मात् डुण्डुभजातयः ।
कृष्णाः सर्पमहादंष्ट्रारक्ताश्च पवनाशनाः ।१०
श्वेतपीतास्तथाचान्ये तथा गोमसजातयः ।
मशकाभ्रमरादंशाः मक्षिकाः शलभास्तथा ।११
कर्णशल्याः कृकलासा अनेकाश्चैव बभ्रमुः ।
प्राणिनो दंष्ट्रिणो रौद्रास्तथा हि विषजातयः ।१२
शार्ङ्ग हालाहलामुस्तावत्सकं गुरुभस्मगाः ।
नीलपत्रादयश्चान्ये शतशो बहुभेदिनः ।
येषां गन्धेन दह्यन्ते गिरिशृङ्गाण्यपि द्रुतम् ।१३

ज्वालाओं की माला से समाकुल आकार वाला और अर्चि से सभी ओर महान् भीषण वाले उस अग्नि से प्रायः सभी सुर और असुर परिक्षिप्त हो गये थे । वे कुछ दग्ध और कुछ आधे दग्ध होकर सभी दिशाओं में भ्रमण करने लगे थे । प्रधान देव और दैत्य उस वह्नि के द्वारा भीषित होगये थे । इसके अनन्तर उससे दुन्दुभ जातियाँ समद्भूत हो गयी थीं । कृष्ण सर्प, महान् दाढ़ों वाले—रक्त, पवन का अशन करने वाले—श्वेत-रीत तथा अन्य गोमस जाति वाले—मशक, भ्रमरदंश मक्षिका, शलभ, कर्णशल्य, कृकलास ऐसे अनेक वहाँ पर भ्रमण कर रहे थे और वे ऐसे सभी प्राणी थे जो दाढ़ोंसे सम्पन्न—रौद्र और विषयुक्त जातियों वाले थे । शार्ङ्ग हालाहल मुस्त वत्सक, गुरुभस्मग और अन्य नील पत्र आदि सैंकड़ों बहुत से भेद से युक्त थे । जिनकी गन्ध ही ऐसी

प्रबल थी कि जिससे गिरियों के शिखर भी बहुत ही शीघ्र दग्ध हो जाते थे ।८-१३।

अनन्तरं नीलरसौघभृङ्गभिन्नाञ्जनाभं विषमं श्वसन्तम् ।
कायेन लोकान्तरपूरकेण केशैश्च वह्निप्रतिमैर्ज्वलद्भिः ।१४
सुवर्णमुक्ताफलभूषिताङ्गं किरीटिनं पीतदुकूलजुष्टम् ।
नीलोत्पलाभैः कुसुमैः कृतार्धं गर्जन्तमम्भोधरभीमवेगम् ।१५
अद्राक्षुरम्भोनिधिमध्यसंस्थं सविग्रहं देहि भयाश्रयन्तम् ।
विलोक्य तं भीषणमुग्रनेत्रं भूताश्च वित्रेसुरथापि सर्वे ।१६
केचिद्विलोक्यैव गता ह्यभावं निःसंज्ञतां चाप्यपरे प्रपन्नाः ।
वेमुर्मुखेभ्योऽपि च फेनमन्ये केचित्तथाप्ता विषमामवस्थाम् ।१७
श्वासेन तस्य निर्दग्धा ततो विष्णिवन्द्रदानवाः ।
दग्धाङ्गारनिभा जाता ये भूता दिव्यरूपिणः ।
ततस्तु सम्भ्रमाद्विष्णुस्तमुवाच सुरात्मकम् ।१८
को भवानन्तकप्रख्यः किमिच्छसि कुतोऽपि च ।
किं कृत्वा ते प्रियं जायेदेवमाचक्ष्व मेऽखिलम् ।१९
तच्च तस्य वचः श्रुत्वा विष्णोः कालाग्निसन्निभः ।
उवाच कालकूटस्तु भिन्नं दुन्दुभिनिस्वनः ।२०

इसके अनन्तर नील रस के ओघ से भिन्न भृंग एवं अञ्जन की आभा वाला, विषम श्वास लेता हुआ, लोकान्तर पूरक काया से युक्त जलती हुए अग्नि के तुल्य केशों से संयुक्त—सुवर्ण और मुक्ता फलों से विभूषित अङ्गों वाला, किरीट धारी, पीतवर्ण के वस्त्र से वेष्टित,नीलोत्पलके समान आभा वाला, पुष्पोके कृत अर्थ वाला, अम्भोधर के तुल्य भीम वेग वाला, गर्जन से समन्वित, विग्रहधारी देही भय का समाश्रय था समुद्र के मध्य में संस्थित सबने देखा था । ऐसे उस भीषण, उग्र नेत्रों से सम्पन्न को देखकर समस्त भूत वित्रस्त हो गये थे । कुछ तो उसे देखर के साथही अभावको प्राप्त हो गयेथे और कुछ दूसरे बेहोशी

को प्राप्त हो गये थे। अन्य लोग अपने मुखों से फेनों का वमन कर रहे थे और कुछ तो विषम दशा को ही प्राप्त हो गये थे। उसके श्वास से ही बहुत से निर्दग्ध होगये थे। उसके पश्चात् विष्णु, इन्द्र और दानव सबके सब दग्ध अङ्गार के तुल्य हो गये थे जो भूत परम भव्य दिव्य रूप वाले थे। इसके अनन्तर भगवान् विष्णु सुरात्मक उससे बड़े ही सम्भ्रम से बोले--श्री भगवान् ने कहा---आप एक अन्तक की प्रख्या वाले कौन हैं ? हम सबको आपका परमप्रिय क्या कर्म करना चाहिए। जिससे देव को प्रसन्न करें। यह समस्त आप हमको बतलाइए। वह कालाग्नि को सदृश भगवान विष्णु के इस वचन का श्रवण करके वह कालकूट विष जो मूर्त्तिमान् था भिन्न दुन्दुभि के समान ध्वनि वाला यह बोला ।१४-२०।

अहं हि कालकूटाख्यो विषोऽम्बुधिसमुद्भवः ।
यदा तीव्रतरामर्षैः परस्परवधैषिभिः ।२१
सुरासुरैर्विमथितो दुग्धाम्भोनिधिरद्भुतः ।
सम्भूतोऽहं तदा सर्वान् हन्तुं देवान् सदानवान् ।२२
सर्वानिह हनिष्यामि क्षणमात्रेण देहिनः ।
मा मां ग्रसत वै सर्वे यात वा गिरिशान्तिकम् ।२३
श्रुत्वैतद्वचनं तस्य ततो भीताः सुरासुराः ।
ब्रह्मविष्णू पुरस्कृत्य गतास्ते शङ्करान्तिकम् ।२४
निवेदितास्ततो द्वाःस्थैस्ते गणेशैः सुरासुराः ।
अनुज्ञाताः शिवेनाथविविशुर्गिरिशान्तिकम् ।२५
मन्दरस्य गुहांहैमीं मुक्तामालाविभूषिताम् ।
सुस्वच्छमणिसोपानांवैदूर्य्यस्तम्भमण्डिताम् ।२६
तत्र देवासुरैः सर्वैं जानुभिर्धरणीगतैः ।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा इदं स्तोत्रमुदाहृतम् ।२७

कालकूट ने कहा--मैं कालकूट नाम वाला अम्बुधिसे समुत्पन्न होने

वाला विष हूँ जिस समय में तीव्रतर अमर्ष वालों और परस्पर में वध करने की इच्छा से युक्त सुरों असुरों के द्वारा इस अद्भुत दुग्धाम्भोधि का विमथन किया गया तो मैं उसी समयमें इन समस्त दानवोंके सहित देवों का हनन करने के लिये ही समुत्पन्न हुआ हूँ। अब मैं क्षणभर में यहाँ पर सब देह धारियों को मार डालूँगा। सब लोग मुझको ग्रसित मत करो अथवा भगवान गिरीश के समीप में चले जाओ ।२१-२३।
उसके इस वचनको सुनकर सब सुर और असुर भयभीत होगये थे और ब्रह्मा तथा विष्णु को अपना नेता बनाकर वे सब भगवान् शङ्कर के समीप में जाकर प्राप्त हुए थे। वहा पर द्वार पर स्थित गणेशों के द्वारा उन सुरासुरों का आगमन निवेदित किया गयाथा। इस पर शिव के द्वारा वे आज्ञा को प्राप्त करके फिर भगवान शिवके समीप में पहुँच गये थे। वहाँ पर मन्दराचल की एक गुहा थी जो सुवर्ण मयीथी और मोतियों की मालाओं से विभूषित थी तथा उसमें अतीव निर्मल मणियों के सोपान बने हुए थे एवं वैदूर्य मणियों के स्तम्भों से वह गुहा मंडित थी। वहाँ पर सभी देव और असुर अपने घुटने भूमि पर टेककर बैठ गये थे। उन्होंने अपने आगे ब्रह्माजी को संस्थित करके इस स्तोत्र का कथन करना आरम्भ कर दिया था।२४-२७।

नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष ! सर्वतोऽनन्तचक्षुषे ।
नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय धन्विने ।२८

नमस्त्रिशूलहस्ताय दण्डहस्ताय धूर्जटे ।
नमस्त्रैलोक्यनाथाय भूतग्रामशरीरिणे ।२९
नमः सुरारिहन्त्रे च सोमाग्न्यर्काग्र्यचक्षुषे ।
ब्रह्मणे चैव रुद्राय नमस्ते विष्णुरूपिणे ।३०

ब्रह्मणे वेदरूपाय नमस्ते देवरूपिणे ।
साङ्ख्ययोगाय भूतानां नमस्ते शम्भवाय ते ।३१
मन्मथाङ्गविनाशाय नमः कालक्षयङ्कर ।

रंहसे देवदेवानां नमस्ते च सुरोत्तम ! ।३२
एकवीराय शर्वाय नमः पिङ्गकपर्दिने ।
उमाभर्त्रे नमस्तुभ्यं यज्ञत्रिपुरघातिने ।३३
शुद्धबोधप्रबुद्धाय मुक्तकैवल्यरूपिणे ।
लोकत्रयविधात्रे च वरुणेन्द्राग्निरूपिणे ।३४
ऋग्यजुः सामवेदाय पुरुषायेश्वराय च ।
अग्र्यचैव चोग्राय विप्राय श्रुतिचक्षुषे ।३५

देवों तथा दानवों ने कहा—हे विरूपाक्ष देव ! सभी ओर से अनन्त चक्षु वाले आपके लिए हमारा सबका नमस्कार है । पिनाक को हाथ रखने वाले—वज्रहस्त और धन्वी आपकी सेवा में नमस्कार समर्पित है ।२८। त्रिशूल हाथ में रखने वाले--दण्डधारी और धूर्जटि आप को प्रणाम है । त्रैलोक्य के नाथ और भूत ग्रामों के शरीर को धारण करने वाले आपकी सेवा में नमस्कार ।२९। सुरों के शत्रुओं का हनन करने वाले—सोम, अग्नि, अर्क के उत्तम नेत्रों वाले को प्रणाम है । ब्रह्मा, रुद्र और विष्णु के रूप वाले आपको हमारा नमस्कार है । वेद-रूप ब्रह्मा और देव रूपी आपके लिए नमस्कार है । भूतों के सांख्ययोग के लिए और शम्भु आपके लिए नमस्कार है । कामदेव के अङ्ग का विनाश करने वाले आपको हमारा प्रणाम है । हे काल के क्षय करने वाले ! हे सुर में उत्तम ! देवों के देव ! आपकी सेवा में नमस्कार है । ।३०-३२। एक वीर, शर्व और पिंग कपर्दी आपके लिए प्रणामहै । उमा देवी के भर्ता और यज्ञ त्रिपुरके घात करने वाले आपके लिए नमस्कार है ।३३। शुद्ध बोध प्रबोध मुक्त कैवल्य रूपी, तीनों लोकों के विधाता तथा वरुण, इन्द्र और अग्नि के रूप वाले आपकी सेवा में नमस्कार है । ।३४। ऋक् यजु, सामवेद पुरुष, ईश्वर, अग्र्य, उग्र, विप्र और श्रुति के चक्षु वाले आपके लिए हम सबका नमस्कार समर्पित है ।३५।

रजसे चैव तत्त्वाय नमस्ते स्तिमितात्मने ।

अनित्यनित्यभावाय नमो नित्यचरात्मने ।३६
व्यक्ताय चैवाव्यक्ताय व्यक्ताव्यक्ताय वै नमः ।
भक्तानामार्तिनाशाय नारायणप्रियाय च ।३७
उमाप्रियाय शर्वाय नन्दिवक्त्राञ्चिताय च ।
ऋतुमन्वतरकल्पाय पक्षमासदिनात्मने ।३८
नानारूपाय मुण्डाय वरूथपृथुदण्डिने ।
नमः कमलहस्ताय दिग्वामाय शिखण्डिने ।३९
धन्विने रथिने यतये ब्रह्मचारिणे ।
इत्येवमादिचरितैः स्तुतं तुभ्यं नमोनमः ।४०
एवं सुरासुरैः स्थाणुः स्तुतस्तोषमुपागतः ।
उवाच वाक्यंभीतानांस्मितान्वितशुभाक्षरम् ।४१

स्तिमित आत्मा वाले—रजगुण और सत्व के लिए नमस्कार है। अनित्य नित्यभाव और नित्य चरात्मा के लिये नमस्कार है। व्यक्त, अव्यक्त और व्यक्ताव्यक्त को प्रणाम है। भक्तों की आर्त्ति के नाश करने वाले और नारायण प्रभु के प्रिय, उमाके परम प्रिय, शर्व, नान्दि वक्त्राञ्जित ऋतु मन्वन्तर कल्प, पक्ष मास दिन स्वरूप वाले, नानारूप मुण्ड, वरुण पृथु दण्डी कमलहस्त, दिवा, शिखण्डी, धन्वी, रथी, यति, ब्रह्मचारी, इत्येवमादि चरितों से स्तुत आपके लिए बारम्बार नमस्कार है। इस प्रकार से सुर और असुरों के द्वारा स्तुति किये गये भगवान् स्थाणु परम तोष को प्राप्त हुए थे। भीतों के स्मित से समन्वित शुभ अक्षरों वाला वाक्य उन्होंने कहा था—।३६-४१।

किमर्थमगता ब्रूत त्रासग्लानमुखाम्बुजाः ! ।
किं वाऽभीष्ट ददाम्यद्य कामं प्रब्रूत मा चिरम् ।
इत्युक्तास्ते तु देवेशं प्रोचुस्त ससुरासुराः ।४२
अमृतार्थे महादेव ! मथ्यमाने महोदधौ ।
विषद्भूतं भुद्भूतंलोकसंक्षयकारकम् ।४३

स उवाचाथ सर्वेषां देवानां भयकारकः ।
सर्वान्वा भक्षयिष्यामि अथवा मां पिबस्तथा ।४४
तमशक्तावयं ग्रस्तुं सोऽस्मान् शक्तोबलोत्कटः ।
एवनिश्वासमात्रेण शतपर्वसमद्युतिः ।४५
विष्णुः कृष्णः कृतस्तेन यमश्च विषमात्मवान् ।
मूर्च्छिताः पतिताश्चान्येविप्रणाशङ्कताः परे ।४६
अर्थाऽनर्थक्रियायाति दुर्भगानां यथा विभो ! ।
दुर्बलानाञ्च सङ्कल्पो यथाभवति चापदि ।४७
विषमेतत्समुद्भूतं तस्माद्वामृतकांक्षया ।
अस्माद्भयान्मोचयत्वं गतिस्त्वञ्च परायणम् ।४८
भक्तानुकम्पी भावज्ञो भुवनादीश्वरो विभुः ।
यज्ञाग्रभुक् सर्वहविः सौम्यः सोमः स्मरान्तकृत् ।४९

भगवान् श्री शङ्कर ने कहा—त्रास से म्लान मुख कमल वालों ! आप लोग यहाँ किस प्रयोजन के लिए समागत हुए हैं? आज मैं आपका क्या अभीष्ट प्रदान करूँ ? आप स्वेच्छया शीघ्र बतलाइए और इसके बताने में बिलम्ब न करिए । इस तरह से जब महादेव के द्वारा उनसे कहा गया था तो वे सब सुर और असुर उनसे कहने लगे थे ।४२। सुर और असुरों ने कहा—हे महादेव ! हम लोग अमृत के लिए इस महोदधि का मन्थन कर रहे थे उस मथ्यमान सागर से अद्भुत और लोकों के सक्षय को करने वाला विष समुत्पन्न हुआ था । वह हम सब देवों का भय करने वाला बोला था कि मैं आप सबको भक्षण कर जाऊँगा अथवा मेरापान करो।४३-४४। उसकाग्रसन करनेके लिए हम सर्वअशक्त हैं प्रत्युत बल से उत्कट वही हमको ग्रसने में समर्थ है । यह केवल विश्वास मात्र से ही ग्रस्त कर सकताहै वह शतपर्व की द्युति के समान द्युति वाला है । उसने विष्णु को कृष्ण कर दिया था और आत्मवान् उसने यम को विष कर दिया था । कुछ लोग उसने मूच्छित कर दिए

थे, अन्य गिरा दिये थे, तथा दूसरों को प्रनष्टकर दिया था। हे विभो! जैसे भाग्य वालों का हुआ करता है वैसेही सब अर्थ अनर्थ क्रिया प्राप्त हुआ करते हैं जिस तरह से आपत्ति काल में दुर्बलों का संकल्प हुआ करता है। यह विष उससे सद्भूत हुआ है शायद यह अमृतकी अकांक्षा से ही हुआ है। अब आप इस भय से हमारा मोचन करिये। आप ही हमारी अब गति हैं और आप ही परायण हैं। आप अपने भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले, भावोंके ज्ञाता, भुवनादीश्वर, विभु है तथा यज्ञों में सबसे आगे भोग करने वाले, सर्व हवि, सोम, सौम्य और आप काम देव के अन्त कर देने वाले हैं।४५-४६।

त्वमेको नो गतिर्देव गीर्वाणगणशर्मकृत्।
रक्षास्मान् भक्षसंकल्पाद्विरूपाक्ष ! विषज्वरात् ।५०
तच्छ्रुत्वा भगवानाह भगनेत्रान्तकृद्भवः।
भक्षयिष्याम्यहं घोरं कालकूटं महाविषम् ।५१
तथान्यदपि यत्कृत्यं कृच्छ्र साध्यं सुरासुराः !।
तच्चापि साधयिष्यामि तिष्ठध्वं विगतज्वराः ।५२
इत्युक्त्वा हृष्टरोमाणो वाष्पगद्गदकण्ठितः।
आनन्दाश्रुपरीताक्षाः सनाथा इव मेनिरे।
सुरा ब्रह्मादयः सर्वे समाश्वस्ताः सुमानसाः ।५३
ततोऽव्रजद्द्रुतगतिनाककुद्मिनाहरोऽम्बरेपवनगतिजगत्पतिः।
प्रधावितैरसुरसुरेन्द्रनायकैः स्ववाहनैर्विगृहीतशुभ्रचामरैः।
पुरःसरैः स तु शुशुभे शुभाश्रयैः।
शिवो वशी शिखिकपिशोर्ध्वजूटकः ।५४
आसाद्य दुग्धसिन्धुं तं कालकूटं विषं यतः।
ततो देवो महदेवो विलोक्य विषमं विषम् ।५५
छायास्थानकमास्थाय सोऽपिबद्वामपाणिना।
पीयमानेविषे तस्मिंस्ततोदेवाः महासुराः ।५६

हे देव ! आप ही एक हमारी गति हैं और देवों के समुदाय के कल्याण करने वाले हैं । हे विरूपाक्ष ! भक्षण करने के संकल्प वाले इस महाविष के ज्वर से हमारी आप रक्षा कीजिए ।५०। यह श्रवण करके भग के नेत्रों के अन्त कर देने वाले भव प्रभु ने कहा—मैं इस घोर महाविष कालकूट का भक्षण कर जाऊँगा । हे सुरासरो ! इसके अतिरिक्त अन्य भी जो कृच्छ्रसाध्य कृत्य होगा उसको भी साध्य कर दूँगा । आप लोग सब विगत ज्वर होकर स्थित रहिए ।५१-५२। इतना कहकर वह शान्त हो गये । किन्तु देवगण प्रहृष्ट रोमों वाले, वाष्प से गद्गद कंठों वाले आनन्द के अश्रुओं से परीत नेत्रों वाले सबने अपने आपको सनाथ की तरह से मान लिया था । ब्रह्मा आदि समस्त देवगण सुमानस एवं समाश्वस्त हुए थे । इसके उपरान्त में पवन के समान गति जगत् के स्वामी हर आकाश में द्रुत गति वाले ककुदमी के द्वारा चले गये थे । ग्रहण किये हैं शुभ्र चामर जिन्होंने ऐसे वाहनोंसे समन्वित और प्रभावित असुर और सुरेन्द्रनायकों को आगे करके वह शिखी के समान कपिश और ऊर्ध्व जूट वाले वशी भगवान् शिव इन शुभ आश्रमों वालों के सहित परम सुन्दर शोभा को प्राप्त हुए थे ।५३-५७।

जगुश्च ननृतुश्चापि सिंहनादांश्च पुष्कलान् ।
चक्रुः शक्रमुखाद्याश्च हिरण्याक्षादयस्तथा ।५७

स्तुवन्तश्चैव देवेश प्रसन्नाश्चाभवंस्तदा ।
कण्ठदेशे ततः प्राप्ते विषेदेवमथाब्रुवन् ।५८

विरिञ्चप्रमुखा देवा बलिप्रमुखतोऽसुराः ।
शोभते देव ! कण्ठस्ते गात्रे कुन्दनिभप्रभे ।५९

भृङ्गमालोनिभंकण्ठऽप्यत्रैवास्तु विषं तव ।
इत्युक्तः शंकरोदेवस्तथा प्राह पुरान्तकृत् ।६०

पीते विषे देवगणान् विमुच्य गतो हरो मन्दरशैलमेव ।
तस्मिन् गते देवगणाः पुनस्तं ममन्थुरब्धिं विविधप्रकारैः।६१

उस समय में इन्द्र आदि जिनमें प्रमुख थे ऐसे समस्त देवगण तथा हिरण्याक्ष प्रभृति दानवगण सभी गान करने लगे थे एवं नृत्य कर रहेथे और पुष्कल सिंहके समान नाद करते थे। देवेश्वर का स्तवन करते हुए वे सब उस अवसर पर परम प्रसन्न हो गए थे। जब वह महा कालकूट विष उनके कण्ठ देश में प्राप्त होगया था तो वे सब इसके अनन्तर देव से कहने लगे थे। ब्रह्मा हैं प्रधान जिनमें ऐसे सब सुरगण और बलि जिनमें प्रमुख थे वे सब असुरगण महादेव जी से बोले–हे देव ! कुन्द के पुष्प के तुल्य परम स्वच्छ श्वेत प्रभा वाले आपके गात्र में आपका यह कण्ठ भाग शोभा युक्त हो रहा है। भौंरों की माला के तुल्य यह महा-विष आपके इस कण्ठ में ही यहीं पर स्थित रहे। इस तरह से उनके द्वारा कहे हुए देव त्रिपुरके विनाशक शंकर ने उनसे कहा था और विष के पान कर लेने पर भगवान् हर उन देवगणों को छोड़कर मन्दर शैल के ही समीपमें चले गए थे। उनके वहाँ पर पहुँच जानेपर उन देवगणों ने फिर अनेक प्रकारों से उस सागर का मन्थन करना शुरू कर दिया था।५५-६१।

——

११३–क्षीरोद मन्थन वर्णन (३)

मथ्यमाने पुनस्तस्मिन् जलधौ समदृश्यत।
धन्वन्तरिः स भगवान् आयुर्वेदप्रजापतिः।१
मदिरा चायताक्षी सा लोकचित्तप्रमाथिनी।
ततोऽमृतञ्च सुरभिः सर्वभूतभयापहा।२
जग्राह कमलां विष्णुः कौस्तुभञ्च महामणिम्।
गजेन्द्रञ्च सहस्राक्षो हयरत्नञ्च भास्करः।३
धन्वन्तरिञ्च जग्राह लोकारोग्यप्रवर्तकम्।
च्छत्रं जग्राह वरुणः कुण्डले च शचीपतिः।४

पारिजाततरुं वायुर्जग्राह मुदितस्तथा ।
धन्वन्तरिस्ततोदेवो वपुष्मानुदतिष्ठत ।५
श्वेतकमण्डलुं बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति ।
एतदत्यद्भुतं दृष्ट्वा दानवानां समुत्थितः ।६
अमृतार्थे महानांदो ममेदमिति जल्पताम् ।
ततो नारायणो मायामास्थितो मोहिनीं प्रभुः ।७

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—पुनः उस जलधि के मथ्यमान होने पर वह भगवान आयुर्वेद के प्रजापति श्री धन्वन्तरि दिखलाई दिए थे । समस्त लोकों के चित्तों को प्रमथन करने वाली और आयत नेत्रोंसे समन्वित वह मूर्त्तिमती मदिरा दिखलाई दी थी और इसके अनन्तर अमृत तथा सब लोकों को भय का अपहरण करने वाली सुरभि तथा कमला प्रकट हुई । भगवान् विष्णुने उस कमलाको और कौस्तुभ मणि ग्रहण कर लिया था । सहस्राक्ष ने गजेन्द्र को और भास्कर देव ने हय-रत्न को ग्रहण किया था एवं लोकों के आरोग्य के प्रवर्त्तक भगवान् धन्वन्तरि का भी ग्रहण किया था । छत्र को वरुण ने और शची के स्वामी ने कुण्डलों का ग्रहण किया कर लिया था । पारिजात नामवाले तरु को वायु देवने ग्रहण किया था और वह परम मुदित हुए थे । फिर देव वपुष्मान् धन्वन्तरि उत्थित हुए थे । उनके हाथ में एक श्वेत वर्ण का कमण्डलु था जिसमें अमृत स्थित था । इस परम अद्भुत दृश्य को देखकर दानवों का महान् नाद समुत्थित हो गया था । उस अमृत के लिए वह मेरा है—ऐसा ही सब कह रहे थे । इसके उपरान्त नारायण प्रभु मोहिनी माया में आस्थित हुए थे ।१-७।

स्त्रीरूपमतुलंकृत्वा दानवानभिसंसृतः ।
ततस्तदमृतं तस्यै ददुस्ते मूढचेतनाः ।
स्त्रियै दानवदैतेयाः सर्वे तद्गतमानसाः ।८
अथास्त्राणि च मुख्यानि महाप्रहरणानि च ।

प्रगृह्याभ्यद्रवन्देवान् सहिता दैत्यदानवाः ।९
ततस्तदमृतं देवो विष्णुरादाय वीर्यवान् ।
जहारदानवेन्द्रेभ्यो नरेण सहितः प्रभुः ।१०
ततो देवगणाः सर्वे पपुस्तदमृतं तदा ।
विष्णोः सकाशात् संप्राप्य संग्रामे तुमुले सति ।११
ततः पिबत्सु तत्कालंदेवेष्वमृतमीप्सितम् ।
राहुर्विबुधरूपेण दानवोऽप्यपिबत्तदा ।१२
तस्य कण्ठमनुप्राप्ते दानवस्यामृते तदा ।
आख्यातं चन्द्रसूर्याभ्यां सुराणां हितकाम्यया ।१३
ततो भगवता तस्य शिरश्छिन्नमलंकृतम् ।
चक्रायुधेन चक्रेण पिबतोऽमृतमोजसा ।१४

श्री नारायण प्रभु ने अनुपम स्त्री का स्वरूप धारण किया था और फिर वे उन दानवों के समुख में समागत हुए थे। इसके अनन्तर उन मूढ़ बुद्धि वाले दानवोंने वह अमृत का कलश उस मोहिनी को समर्पित कर दिया था।८। दानव और देवगण सभी उस स्त्री में समासक्त मन वाले हो गये थे क्योंकि उस मोहिनी का रूप लावण्य ही अद्भुत आकर्षण करने वाला था। इसके उपरान्त में सब दैत्य और दानव एकत्रित होकर अनेक अस्त्र तथा मुख्य महान प्रहरणों को ग्रहणकरके सबके सब देवगणों पर आक्रमणकारी हो गये थे। इसके पश्चात् वीर्यवान् विष्णु ने उस अमृत को लेकर नर के सहित प्रभुने दानवों से हरण कर लिया था। इसके उपरान्त उसी समय में उन देवगणों ने उस अमृत का पान कर डाला था। उस समय में तुमुल संग्राम उपस्थित हो गया था तो भी देवगण ने विष्णु से उस अमृत को प्राप्त कर लिया था।९-११। उस अमृत का देवों के द्वारा पान करने पर जोकि उनका परम अभीष्ट था, उन देवगणो में राहु दैत्य भी देवता का स्वरूप बनाकर बैठ गया था और उस समयमें उसने भी उस अमृतको पी लिया था। उस दानव

के कण्ठ देश में ही वह अमृत प्राप्त हुआ था उसी समय में चन्द्र सूर्योंने देवों के हित की कामना से इस तथ्यको बतला दिया था कि यह दानव कपट वेश में यहाँ पर अमृत पान कर रहा है । इसके पश्चात् भगवान् ने उसके अलंकृत शिर को सुदर्शन चक्र के द्वारा काट डाला था जिस समय में वह अमृत का पान ओज से ही कर रहा था ।१२-१४।

तच्छैलशृङ्गप्रतिमं दानवस्य शिरोमहत् ।
चक्रेणोत्कृत्तमपतच्चालयन् वसुधातलम् ।१५
ततो वैरविनिर्बन्धः कृतो राहुमुखेन वै ।
शाश्वतश्चन्द्रसूर्याभ्यां प्रसह्याद्यापि बाधते ।१६
विहायभगवांश्चापि स्त्रीरूपमतुलं हरिः ।
नानाप्रहरणैर्भीमैर्दानवान् समकम्पयत् ।१७
प्रासाः सुविपुलास्तीक्ष्णाः पतन्तश्च सहस्रशः ।
ते सुराश्चक्रनिर्भिन्ना वमन्तो रुधिरं बहु ।१८
असिशक्तिगदाभिन्ना निपेतुर्धरणीतले ।
भिन्नानिपट्टिशश्चापि शिरांसि युधि दारुणैः ।१९
तप्तकाञ्चनमाल्यानि निपेतुरनिशन्तदा ।
रुधिरेणावलिप्ताङ्गा निहताश्च महासुराः ।२०
अद्रिणामिव कूटानि धातुरक्तानि शेरते ।
ततो हलाहलाशब्दः सम्बभूव समन्ततः ।२१

उस दानव का वह शैल के शिखर के समान महान् शिर चक्र के द्वारा उत्कृत्त होकर वसुधातल को चालित करते हुए गिर गया था । ।१५। इसके पश्चात् राहुके मुखके द्वारा बैरी का विनिर्बन्ध किया गया था और वह चन्द्र एवं सूर्य के साथ शाश्वत है जो कि बल पूर्वक आज भी बाधा दिया करता ।१६। हरि भगवान् ने भी उस मोहिनी स्त्री के अतुल रूप का त्याग करके बड़े भयानक अनेक प्रहरणों के द्वारा दानव गणों को कम्पित कर दिया था।१७। प्रास, सुविपुल, तीक्ष्ण और सहस्रों

की संख्यामें गिर रहे थे। वे असुर गण भगवान्‌के चक्रके द्वारा निर्भिन्न होकर बहुत से रुधिर का वमन कर रहे थे।१८। असि, शक्ति और गदा से भिन्न होकर वे धारणी तल में निपतित हो गये थे। युद्ध स्थल में दारुण प्रहरणों के द्वारा भिन्न हुए शिर और पट्टिश भी भूमि पर गिर रहे थे।१९। उस समय में निरन्तर तप्त सुवर्ण का माल्य धरणी तल में गिर गई थीं। महासुर रुधिर से अवलिप्त अङ्ग वाले निहत हो गये थे जो कि पर्वतों के भाँति धातुओं में रक्त होकर भूमि पर सो रहे थे। इसके पश्चात् सभी ओर से हलहला शब्द सम्भूत हो गयाथा। ।२०-२१।

अन्योऽन्यं छिन्दतां शस्त्रैरादित्यो लोहितायति।
परिघैश्चायसैः पीतैः सन्निकर्षैश्च मुष्टिभिः।२२
निघ्नतां समरेऽन्योऽन्यं शब्दो दिवमिवास्पृशत्।
छिन्धिभिन्धि प्रधावेति पातयेभिसरेतिव।२३
विश्रूयन्ते महाघोराः शब्दास्तत्र समन्ततः।
एवं सुतुमुले युद्धे वर्त्तमाने महाभये।२४
नरनारायणौ देवौ समाजग्मतुराहवम्।
तत्र दिव्यं धनुर्दृष्ट्वा नरस्य भगवानपि।
चिन्तयामास वै चक्रं विष्णुर्दानवसत्तमान्।२५

ततोऽम्बराच्चिन्तितमात्रमागतं महाप्रभं चक्रममित्रनाशनम्।
विभावसोस्तुल्यमकुण्ठमण्डलं सुदर्शनं भीममसह्यमुत्तमम्।२६
तदागतं ज्वलितहुताशनप्रभं भयंकरं करिकरबाहुरच्युतः।
महाप्रभंदनुकुलदैत्यदारुणंतथोज्वलज्ज्वलनसमानविग्रहम्।२७
मुमोच वै तपनमुदप्रवेगवान् महाप्रभं रिपुनगरावदारणम्।
सम्वर्त्तकज्वलन समानवर्चसं पुनः पुनर्न्यपतत वेगवत्तदा।२८

इसके पश्चात् परस्पर में छेदन करने वालों के शास्त्रों से आदित्य के लोहित हो जाने आयत परिधों से पीत सन्निकर्षों से—मुष्टियों से

समर में अन्योऽन्य का निहनन करने वालोंका शब्द दिवलोक को मानो स्पर्श कर रहा था। काटो, भेदन करदो, दौड़ो, गिरादो,दौड़कर धावा कर घेरलो, इत्यादि शब्द जो कि महान् घोर थे वहाँ पर सभी ओर सुनाई दे रहे थे। इस तरह से महान् भय देने वाले तुमुल युद्ध के वर्तमान होने पर नर और नारायण दोनों देव उस समर स्थल में समागत हो गये थे। वहाँ पर भगवान् ने भी नर के दिव्य धनुष को देखकर भगवान् विष्णु ने दानव श्रेष्ठों के हनन करने के लिए चक्र का चिन्तन किया था। उसी समय में जैसे ही चक्र का चिन्तन किया था अम्बर तलसे वह सुदर्शन चक्र आ गयाथा जो महती प्रभा से युक्त और शत्रुओं के नाश करने वाला था। उस चक्र की दीप्ति सूर्य के तुल्य थी--उसका मण्डल कुण्ठा रहित था--वह सुन्दर दर्शन वाला-भीम-असह्य और उत्तम था।२२-२६। उस समागत हुए, जलती हुई अग्नि के समान प्रभा वाले भयंकर, महाप्रभा से युक्त, दनुकुल के दैत्यों का दारण करने वाले तथा जलती हुई अग्नि के समान विग्रह वाले उस चक्रको करिके करके सदृश बाहु वाले अच्युत प्रभु ने छोड़ दिया था। उस समय में अति प्रवेगवान् तपन महाप्रभा से युक्त, शत्रुओं के नगरों का अवदारण करने वाला, सम्वर्त्तक (प्रलय कालीन अग्नि) वह्नि के तुल्य वर्चस वाला और वेग युक्त वह चक्र बारम्बार गिरा करता था।२७-२८।

व्यदारयद्दितितनयान् सहस्रशः करेरितं पुरुषवरेण संयुगे ।
दहत् क्वचिज्ज्वलनइवानिलेरितं प्रसह्य तानसुरगणान्न्यकृन्तत।२६
प्रवेरितं वियति मुहुः क्षितौ तदा पपौ रणे रुधिरमयः पिशाचवत्।
अथासुरा गिरिभिरदीनमानसा मुहुर्मुहुः सुरगणमर्दयंस्तथा ।३०
महाचला विगलितमेघवर्चसः सहस्रशो गगनमहाप्रपातिनः ।
अथान्तराभरजनना: प्रपेदिरे सपादपा बहुविधमेघरूपिणः ।३१
महाद्रयः प्रविगलिताग्रसानवः परस्परं द्रुतमभिपत्य भास्वराः ।
ततो मही प्रचलितसाद्रिकानना महीध्रा पवनहताःसमन्ततः।३२

परस्परं भृशमभिगर्जितं मुहुः रणाजिरे भृशमभि सम्प्रवर्त्तते ।
नरस्ततो वरकरकाग्रभूषणैर्महेषुभिः पवनपथं समावृणोत् ।३३
विदारन् गिरिशिखराणि पत्रिभिर्महाभये सुरगणविग्रहे तदा ।
ततो महीं लवणजलञ्च सागरं महासुराःप्रविविशुरर्दिताःसुरैः।३४
वियद्गतं ज्वलितहुताशनप्रभं सुदर्शनं परिकुपितं निशम्य च ।
ततः सुरैर्विजयमवाप्य मन्दरः स्वमेव देशं गमितः सुपूजितः ।३५
निनदयन् स्वदिशमुपेत्य सर्वशस्ततोगताः सलिलधरा यथा गतम्।
ततोऽमृतं सुनिहितमेव चक्रिरे सुराः परां मुदमभिगम्य पुष्कलाम्।
ददुश्च तं निधिममृतस्य रक्षितुंकिरीटिने बलिभिरथमारैःसह।३६

उस संयुग में पुरुष श्रेष्ठ के हाथों से ईरित उस चक्र ने सहस्रों की संख्या में दिति के पुत्रों को विदीर्ण कर दिया था ।२९। स्थान पर अग्नि की भाँति जो कि वायु से सम्प्रेरित होता है बल पूर्वक उन असुर गणों को दग्ध करता हुआ काट रहा था । आकाश में प्रदेरित, पुनः क्षिति में उस समय में रुधिर मय पिशाच की भाँति रण स्थल में रक्त का वह चक्र पान कर रहा था । असुरगण अदीन मन वाले होकर पर्वतों से पुनः सुरगणों को अर्दित कर रहे थे ।२०। सहस्रों की संख्यामें स्थित महान् अचल विगलित मेघोंके वर्चस वाले गगन से महान् प्रपात करते हुए, पादपों के सहित बहुत प्रकार के मेघोंके स्वरूप वाले अन्तरा भरजनन वाले हो गये थे ।३१। आगे शिखरों के प्रविगलित हो जाने वाले महान् पर्वत परस्पर में शीघ्र ही अभिपतित होकर भास्वर हो रहे रहे थे । इसके अनन्तर मही जिसमें आद्र और कानन चलायमान हो रहे थे ऐसी हो गयीथी और सभी ओर महीधर पवन के द्वारा आहतहो रहे थे ।३२। उस रण के आँगन में आपस में अत्यन्त अधिक अभिगर्जित बारम्बार अधिकाधिक रूपमें सम्प्रवृत्त हो रहा था । इसके अनन्तर नर ने श्रेष्ठ कनक के अग्रभूषणों वाले महान् बाणों से उस पवन के मार्गको समावृत्त कर दिया था ।३३। उस समयमें महान् भयानक उस सुरगणों

के युद्ध में पत्रियों के द्वारा पर्वतों के शिखरों को विदीर्ण करते हुए सुरों के द्वारा अर्दित हुए महासुर मही—लवण जल वाले सागर में प्रवेशकर गये थे ।३४। आकाश में गये हुए जलती हुई अग्नि के समान प्रभा वाले परिकुपित सुदर्शन का श्रवण कराकर सुरगणों के द्वारा विजय प्राप्त करके वह मन्दराचल सुपूजित होता हुआ अपने ही देश को भेज दिया गया था ।३५। अपनी दिशा में प्राप्त होकर निनाद करता हुआ वह चला गया था । इसके अनन्तर सलिलधर सभी ओर वहाँ से जैसे समागत हुए थे वैसेही चले गये थे । इसके उपरान्त सुरों ने अत्यधिक परम आनन्द की प्राप्ति कर उस अमृत को सुनिहित ही कर दिया था । फिर बलशाली अमरों के सहित उस अमृत की निधि की रक्षा करने के लिए उस किरीट धारी प्रभु को दे दिया था ।३६।

११५–प्रासाद - भवन आदि निर्माण

प्रासादभवनादीनां निवेशं विस्तराद्वद ।
कुर्य्यात्केन विधानेन कश्च वास्तुरुदाहृत: ।१
भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा ।
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्ष: पुरन्दर: ।२
ब्रह्मकुमारो नन्दीश: शौनको गर्ग एव च ।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती ।३
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशका: ।
सङ्क्षेपेणोपदिष्टन्तु मनवे मत्स्यरूपिणा ।४
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि वास्तुशास्त्रमनुत्तमम् ।
पुरान्धकवधेघोरे घोररूपस्य शूलिन: ।५
ललाटस्वेदसलिलमपतद् भुवि भीषणम् ।

करालवदनं तस्मात् भूतमुद्भूतमुल्बणम् ।६
ग्रसमानमिवाकाशं सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ।
ततोऽन्धकानां रुधिरमपिबत्पतितं क्षितौ ।७

ऋषिगण ने कहा—हे भगवान् ! अब कृपा करके आप प्रासाद-भवन आदि के निवेश को विस्तार पूर्वक बतलाइए । किस विधान से इसे करना चाहिए और कौनसी वस्तु वास्तु, इस नामसे कही जाती है? ।१। श्री सूतजी ने कहा भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित् विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र और बृहस्पति ये अठारह वास्तु शस्त्र के उपदेशक विख्यात हुए हैं । मत्स्य के स्वरूप को धारण करने वाले भगवन् ने भी मनु के लिए सक्षेप से उसका उपदेश दिया है ।२-४। सो अब मैं इस वास्तु के उत्तम शास्त्र का वर्णन करूँगा । प्राचीन समय में घोर रूप वाले भगवान् शूली के घोर अन्धक के वध होने पर शिव के ललाट से भीषण स्वेद का सलिल भूमि पर गिर गया था । उससे कराल वदन वाला एक अत्यन्त उल्वण भूत अद्भुत हुआ था ।५-६। वह आकाश का ग्रसन हुआ था और सात द्वीपों वाली इस सम्पूर्ण वसुन्धरा को ग्रसित-सा करता हुआ प्रतीत हो रहा था । इस भूमि पर अन्धकों का जो भी जितना रुधिर पतित होता था उसको वह तुरन्त ही पी जाया करता था ।७।

तेन तत्समरे सर्वं पतितं यन्महीतले ।
तथापि तृप्तिमगमन्न तदभूत यदा तदा ।८
जाशिवस्य पुरतस्तपश्चचार सुदारुणम् ।
क्षुधाविष्टन्तु तद्भूतमाहर्तुं जगतीत्रयम् ।९
ततः कालेन सन्तुष्टो भैरवस्तस्य चाहवे ।
वरं वृणीष्व भद्रन्ते ! यदभीष्टन्तवानघ ! ।१०
तमुवाच ततोभूतं त्रैलोक्यग्रसनक्षमम् ।

भवामि देवदेवेश तथेत्युक्तञ्च शूलिना ।११
ततस्तत्त्रिदिवं सर्वं भूमण्डलमशेषतः ।
स्वदेहेनान्तरिक्षञ्च रुन्धान प्रपतद्भुवि ।१२
भीतभीतैस्ततोदेवैर्ब्रह्मणा चाथ शूलिना ।
दानवासुररक्षोभिरवष्टब्धं समन्ततः ।१३
येन यत्रैव चाक्रान्तं स तत्रैवावसत्पुनः ।
निवासात्सर्वदेवानां वास्तुरित्यभिधीयते ।१४

उसने उस युद्ध में महीतल पर जो भी जितना रुधिर पतित हुआ था उस सबका पान कर लिया था । तो भी वह भूत जब तक तृप्ति को प्राप्त नहीं हुआ था । वह भगवान शिव के आगे बड़ा ही दारुण तप किया करता था और क्षुधा से आविष्ट वह भूत इस जगती त्रयका आहरण करने को समुद्यत हो रहा था । कुछ समयमें उसकी उस महा दारुण तपस्या से उस युद्ध में भैरव उससे अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये थे । भैरव ने उससे कहा—हे अनघ ! तुमको जो भी अभीष्ट हो वह वर मुझ से माँग लो तेरा कल्याण हो । इसके अनन्तर उस भूतने भैरव से कहा-हे देव देवेश ! मैं इस त्रैलोक्य के ग्रसन करने की सामर्थ्य वाला हो जाऊँ । इस पर शूली ने 'ऐसा ही होगा'—यह कह दिया था ।८-११। इसके उपरान्त वह सम्पूर्ण त्रिदिव समग्र भूमण्डल और अपने देह से रुन्धान अन्तरिक्ष भूमि पर गिर पड़ा था।१२। इसके पश्चात् डरे-डराये हुए देवों, ब्रह्मा, शूली और दानव, असुर तथा राक्षसों के द्वारा सभी ओर अवष्टब्ध हो गया।१३। जिसके द्वारा जहाँ पर ही आक्रमण किया गया था वह फिर वहीं पर निवास करने लगा था । समस्त देवों के निवास से 'वास्तु'—इस नाम से कहा जाता है ।१४।

अवष्टब्धाश्च तेनापि विज्ञप्ताः सर्वदेवताः ।
प्रसीदध्वं सुराः सर्वे युष्माभिर्निश्चलीकृतः ।१५
स्थास्याम्यहं किमाकारो ह्यवष्टब्धो ह्यधोमुखः ।

ततो ब्रह्मादिभिः प्रोक्तं वास्तुमध्ये तु यो वलिः ।१६
आहारो वैश्वदेवान्ते नूनमस्मिन्भविष्यति ।
वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति ।१७
अज्ञानात्तु कृतो यज्ञस्तवाहारो भविष्यति ।
यज्ञोत्सवादौ च वलिस्तवाहारोभविष्यति ।१८
एवमुक्तस्ततो हृष्टः सवास्तुरभूत्तदा ।
वास्तुयज्ञः स्मृतस्मात्ततः प्रभृतिशान्तये १९

उसके द्वारा अवष्टब्ध सब देवगण विज्ञप्त हो गए थे कि हे समस्त सुरगणो ! आप प्रसन्न हो जाइये आपने मुझे निश्चयीभूत बना दिया हैं । अब मैं नीचे की ओर मुख वाला अवष्टब्ध हुआ किस आकार वाला होकर स्थित रहूँगा ? इसका उत्तर ब्रह्मादि सबने यही दिया था कि वास्तुके मध्यमें जो वलि है इसमें निश्चय ही वैश्वदेवान्त में आहार हो जायगा ।१५-१७। जो यज्ञ अज्ञान से किया गया है वह भी तेरा आहार होगा । यज्ञोत्सव आदि में जो वलि है वह तेरा आहार होगा । इस प्रकार से कहे जाने पर वह परम प्रसन्न होकर उस समय में वास्तु हो गया था । इसी कारण से तभी से लेकर शान्ति के लिए वास्तु यज्ञ यह कहा गया है ।१८-१९।

११६—गृह निर्माण कला वर्णन

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गृहकालविनिर्णयम् ।
यथा कालं शुभं ज्ञात्वा सदा भवनमारभेत् ।१
चैत्रेव्याधिमवाप्नोति यो गृहं कारयेन्नरः ।
वैशाखे धेनुरत्नानि ज्येष्ठेमृत्युं तथैव च ।२
आषाढे भृत्यरत्नानि पशुवर्गमवाप्नुयात् ।

श्रावणे भृत्यलाभन्तु हानिं भाद्रपदे तथा ।३
पत्नीनाशोऽश्विने विद्यात्कार्तिके धनधान्यकम् ।
मार्गशीर्षे तथा भक्तं पौषे तस्करतो भयम् ।४
लाभञ्च बहुशो विन्द्यात् अग्निं माघे विनिर्दिशेत् ।
फाल्गुने काञ्चनं पुत्रानिति कालबलं स्मृतम् ।५
अश्विनीरोहिणीमूलमुत्तरात्रयमैन्दवम् ।
स्वातीहस्तोऽनुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते ।६
आदित्यभौमवर्ज्यास्तु सर्वे वाराः शुभावहाः ।
वर्ज्यंव्याघातशूले च व्यतीपातातिगण्डयोः ।७

श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर गृहकाल का विशेष निर्णय मैं बतलाता हूँ । जिस प्रकार से शुभ काल को जानकर सदा भवन के निर्माण का आरम्भ करना चाहिए ।१। जो मनुष्य चैत्र मास में गृह निर्माण कराता है तो व्याधि को प्राप्ति किया करता है । वैशाख मास में धेनु और रत्नों का लाभ होता है तथा ज्येष्ठ मासमें गृह के निर्माण का कार्य आरम्भ कराने से मृत्यु हो जाया करती है । आषाढ़ मास में भृत्य और रत्न तथा पशु वर्ग का लाभ होता है । श्रावण मास में भृत्यों का लाभ होता है तथा भाद्रपद मास में गृह निर्माण कराने से हानि हुआ करती है । आश्विन मास में पत्नी का विनाश जानना चाहिए । कार्त्तिक के महीने में गृह के निर्माण कराने से धन-धान्य का लाभ होता है । मार्गशीर्ष में भक्तका लाभ तथा पौष में तस्करों से भय उत्पन्न होता है एवं बहुत सा लाभ भी होता है । माघ में अग्नि का भय होता है । फाल्गुन मास में काञ्चन और पुत्रों की प्राप्ति होती है यह काल का बल बता दिया गया है ।२-५। अब नक्षत्रों के विषय में विचार प्रकट किया जाता है—अश्विनी, रोहिणी, मूल तीनों उत्तरा, ऐन्दव स्वाति, हस्त, अनुराधा ये नक्षत्र गृह निर्माण के कार्य में परम प्रशस्त माने गये हैं । आदित्य, भौम इन दो वारों को वर्जित करके गृह

निर्माण में अन्य सभी बार शुभावह हुआ करतेहैं । व्याघात, शूल, व्यतीपात, अतिगण्ड ये वर्जित करने के योग्य होते हैं ।६-७।

विष्कम्भगण्डपरिघवज्रयोगेषु कारयेत् ।
श्वेते मैत्रेऽथ माहेन्द्रे गान्धर्वाभिजिति रौहिणे ।८
तथा वैराजसावित्रे मुहूर्ते गृहमारभेत् ।
चन्द्रादित्यबलं लब्ध्वा शुभलग्नं निरीक्षयेत् ।९
स्तम्भोच्छ्रायादिकर्तव्यमन्यन्तु परिवर्जयेत् ।
प्रासादेष्वेवमेवं स्यात् कूपवापीषु चैव हि ।१०
पूर्वं भूमिं परीक्षेत् पश्चाद्वास्तुं प्रकल्पयेत् ।
श्वेता रक्ता तथापीता कृष्णा चैवानुपूर्वशः ।११
विप्रादेः शस्यते भूमिरतः कार्य्यं परीक्षणम् ।
विप्राणां मधुरास्वादाकटुकाक्षत्रियस्य तु ।१२
तिक्ताकषाया च तथा वैश्यशूद्रेषु शस्यते ।
अरत्निमात्रे वैगर्ते स्वनुलिप्ते च सर्वशः ।१३
धूनमामशरावस्थं कृत्वा वर्तिचतुष्टयम् ।
ज्वालयेद्भूपरीक्षार्थं तत्पूर्णं सर्वदिङ्मुखम् ।१४

निष्कम्भ, गण्ड, परिघ और वज्र ये योग श्रेष्ठ होते हैं—इनमें गृह का निर्माण करना चाहिए । श्वेत, मैत्र, माहेन्द्र, गान्धर्व, अभिजित् रौहण, वैराज, सावित्र—इन मुहूर्त्तों में गृह के निर्माण का आरम्भ कराना चाहिए । चन्द्र और सूर्य के बल को प्राप्त कर शुभ लग्न को भी देख लेना चाहिए । अन्य स्तम्भोच्छ्राय आदि कर्त्तव्यको परिवर्जित कर देना चाहिए । जो प्रासादों का निर्माण किराया जावे उनमें उसी प्रकार से विचार करना नितान्त आवश्यक है तथा कूआ और बावड़ी आदि के विषयमें भी यही विचार करे । सबसे पहिले भूमि की परीक्षा करनी चाहिए इसके पश्चात् वस्तु की प्रकल्पना करे । कृष्णा, रक्ता, श्वेता-तथा पीता अर्थात् सफेद, लाल, पीला, काला इनकी आनुपूर्वी से

कल्पना करे। विप्रों आदि की भूमि प्रशस्त कही जाती है। अतएव परीक्षण करना ही चाहिए। विप्रों का मधुर आस्वाद-क्षत्रिय का कटु और वैश्य तथा शूद्रों में तिक्त एवं कषाय आस्वाद प्रशस्त होता है। एक अरत्नि मात्र गर्त में जो कि सभी ओर से भली भाँति लिप्त कर दिया गया हो, उसमें एक कच्चे सकोरा में घृत भर कर चार बत्तियाँ उसमें डाले और उनको जलाकर उस पूर्ण दीपक को सभी दिशाओं की ओर मुख करके भूमि की परीक्षा के लिए रखना चाहिये।८-१४।

दीप्तौ पूर्वादिगृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः।
वास्तुः सामूहिकोनाम दीप्यते सर्वतस्तु यः।१५
शुभदः सर्ववर्णानां प्रासादेषु गृहेषु च।
अरत्निमात्रमधोगर्ते परीक्ष्यं खातपूरणे।१६
अधिके श्रियमाप्नोति न्यूने हानिं समे समम्।
फालकृष्टेऽथवा देशे सर्वबीजानि वापयेत्।१७
त्रिपञ्च सप्तरात्रे च यत्रारोहन्ति तान्यपि।
ज्येष्ठोत्तमाकनिष्ठाभूर्वर्णनीयतरा सदा।१८
पञ्चगव्यौषधिजलैः परीक्षित्वा च सेचयेत्।
एकाशीति पदं कृत्वा रेखाभिः कनकेन च।१९
पश्चात्पिष्टेन चालिप्य सूत्रेणालोड्य सर्वतः।
दशपूर्वायतालेखा दशचैवोत्तरायता:।२०
सर्ववास्तुविभागेषु विज्ञेया नवका नव।
एकाशीति पदं कृत्वा वास्तुवित्सर्ववास्तुषु।२१

उसकी दीप्तिमें पूर्वादिकी आनुपूर्वशः वर्णोंका ग्रहण करना चाहिए वास्तु—यह सामूहिक नाम है जो सभी ओर दीप्त होता है।१५। यह प्रासादों में और गृहोंमें सब वर्णों का शुभ देने वाला होता है। अरत्नि मात्र खातपूरण नीचे के गर्त में परीक्षण करने के योग्य है।१६। अधिक

होने पर श्री की प्राप्ति करता है और न्यून होने पर हानि करता है तथा सम होने पर सम ही फल देता है। हल की फाल के द्वारा जुते हुए अथवा देश में सब बीजोंका वपन कराना चाहिए। तीन-पाँच और और सात रात्रि में वे बीज जहाँ पर अंकुरित होते हैं वह भूमि ज्येष्ठ-उत्तम और कनिष्ठ होती है तथा वर्णनीयतरा हुआ करती है।१७-१८। पञ्चगव्य और औषधि के जलों के द्वारा परीक्षा करके सवन करे। इक्यासी रेखाओं से और कनक से पद करके फिर पिष्ट के द्वारा अनुलेपन करे और सब ओर सूत्र से आलोकन करे। दश तो पूर्व की ओर आयत लेखा हों और दश ही उत्तरायण होवें। सब वास्तु विभागों में नवकानव जाननी चाहिए वास्तु के वेत्ता पुरुष को सब वास्तुओं में इक्यासी पद करना आवश्यक है।१९-२१।

पदस्थान् पूजयेद्देवां स्त्रिंशत्पञ्चदशैव तु।
द्वात्रिंशद्वा ह्यत: पूज्या: पूज्याश्चान्तस्त्रयोदश: ।२२
नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि स्थानानि च निबोधत।
ईशानकोणादिषु तान् पूजयेद्धविषा नर: ।२३
शिखी चैवाथपर्जन्यो जयन्त: कुलिशायुध:।
सूर्य्यसत्यौ भृशश्चैव आकाशो वायुरेव च ।२४
पूषा च वितथश्चैव गृहक्षतयमावुभौ।
गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृग: पितृगणस्तथा ।२५
दौवारिकोऽथ सुग्रीव: पुष्पदन्तो जलाधिप:।
असुर: शोषपापौ चरोगहिमुख्यएव च ।२६
भल्लाट: सोमसर्पौ च अदितिश्च दितिस्तथा।
बहिर्द्वात्रिंशदेते तु तदन्तस्तु तत: शृणु ।२७
ईशानादिच्चतुष्कोणसंस्थितान् पूजयेद्बुध:।
आपश्चैवाथसावित्रो जयोरुद्रस्तथैव च ।२८

पदोंमें स्थित देवोंका अभ्यर्चन करे जो तीस और पञ्चदश होवें।

बत्तीस बाह्य भाग में पूजने चाहिए और अन्दर में तेरह की पूजा करनी चाहिए ।२२। अब हम नामों का उल्लेख करके उनको बतलायेंगे उनके स्थानों को जानलो । उस मनुष्य को चाहिए कि ईशान आदि चारों ही करना चाहिए।२३। शिखी, पर्जन्य, जयन्त, कुलिशायुध, सूर्या, सत्य भृश, आकाश, वायु, पूषा, वितथ, गृहक्षत, यम, गन्धर्व, भृङ्गराज, मृग पितृगण, दौवारिक सुग्रीव, पुष्पदन्त, जलाधिप, असुर, शोष, पाप, चरोग, आदि मुख्य, भल्लाट, सोम, सर्प, अदिति, दिति, बाहिर ये बत्तीस होते हैं । उसके अन्त में जो होते हैं उनका श्रवण करो । ईशान आदि चतुष्कोणों में संस्थितों का बुध पुरुष को पूजन करना चाहिए । आप–सवित्र-जय-रुद्र ।२४-२८।

मध्ये नवपदे ब्रह्मा तस्याष्टौचसमीपगान् ।
साध्यानेकान्तरान्विद्यात्पूर्वाद्यान्नामतः शृणु ।२९
अर्य्यमासविताचैवविवस्वान्विबुधाधिपः ।
मित्रोऽथराजयक्ष्माचतथापृथ्वीधरः स्मृतः ।३०
अष्टमश्चापवत्सस्तु परितो ब्रह्मणः स्मृतः ।
आपश्चैवापवत्सश्च पर्य्यग्नोऽग्निर्दितिस्तथा ।३१
पदिकानान्तु वर्गोऽयमेव कोणेष्वशेषतः ।
तन्मध्ये तु बहिर्विंश द्विपदास्ते तु सर्वशः ।३२
अर्य्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पृथ्वीधरस्तथा ।
ब्रह्मणः परितो दिक्षु त्रिपदास्ते तु सर्वशः ।३३
वंशानिदानीं वक्ष्यामि ऋजूनपि पृथक् पृथक् ।
वायुं यावत्तथारोगात् पितृभ्यः शिखिनं पुनः ।३४
मुख्यात्भृशं तथा शोषाद्वितथं यावदेव तु ।
सुग्रीवाददितिं यावत् मृगात् पर्जन्यमेव च ।३५

मध्य नवपद में ब्रह्मा और उसके आठ समीप में गमन करने वाले—एक के अन्तर से युक्त साध्यों को जान लो अब पूर्वादियों के नामों का श्रवण करो ।२६। अर्यमा, सविता, विवस्वान्, वसुधाधिप, मित्र, राजयक्ष्मा, पृथ्वीधर, आठवाँ, आठवाँ आपवत्स, परित ब्राह्मण, आप, अपवत्सपर्यन्त, अग्निदिति—इस प्रकार से यह पदिकों का यह वर्ग है इसी तरह से कोणों में पूर्ण रूप से हैं। उसके मध्य में सब ओर वे बाहिर बीस द्विपद हैं ।३०-३२। अर्यमा, विवस्वान्, मित्र, पृथ्वीधर, दिशाओं, में वे सब ओर ब्रह्मा के दोनों ओर त्रिपदा हैं ।३३। अब मैं मरलों को भी पृथक्-२ बतलाऊँगा। तथा रोग से जहाँ तक वायु को फिर पितृगण से शिखि को बतलाता हूँ ।३४। मुख्य से भृश तथा शोष से वितथ पर्यन्त—सुग्रीव से जहाँ तक अदिति है और मृग से पर्जन्य पर्यन्त हैं। ।३५।

एते वंशाः समाख्याताः क्वचिच्च जयमेव तु ।
एतेषां यस्तु सम्पातः पदं मध्यं समं तथा ।३६
मर्मचैतत्समाख्यातं त्रिशूलं कोणञ्च यत् ।
स्तम्भां न्यासेयुर्वर्ज्यानितुलाविधिषुसर्वदा ।३७
कीलोच्छिष्टोपघानादि वर्जयेद् तत्वतो जनः ।
सर्वत्र वास्तुनिर्दिष्टो पितृवैश्वानरायतः ।३८
मूर्द्धन्यग्निः समादिष्टो मुखे चापः समाश्रितः ।
पृथ्वीधरोऽर्यमाचैवस्तनयोस्तावधिष्ठितौ ।३९
वक्षस्थले चापवत्सः पूजनीयः सदा बुधैः ।
नेत्रयोदितिपर्जन्यौ श्रोत्रेऽदितिजयन्तकौ ।४०
सर्पेन्द्रावंससंस्थौ तु पूजनीयौ प्रयत्नतः ।
सूर्यसोमादयस्तद्वत् बाह्वोः पञ्च च पञ्च च ।४१
रुद्रश्च राजयक्ष्मा च वामहस्ते समास्थितौ ।
सावित्रः सविता तद्वदधस्तं दक्षिणमास्थितौ ।४२

ये वंश समाख्यात किये गये हैं और कहीं पर तो जय ही है। इन का जो सम्पात है मध्य पद तथा सम है। यह सम कह दिया जाता है जो त्रिशूल कोण गत है। सब ओर न्यासों में स्तम्भ है और तुला विधियों में वर्ज्य हैं। मनुष्य को कीलोच्छिष्ट उपघात आदि को यत्न से वर्जित कर देना चाहिए। सब जगह पर वास्तुका पितृवैश्वनानरायत निर्दिष्ट है। मूर्द्धा में अग्नि का निर्देश किया गया है—मुख में चाप समाश्रित है। पृथ्वीधर और अर्यमा ये दोनों स्तनों में अधिष्ठित हैं। वक्ष:स्थल में आपवत्स का बुद्ध पुरुषों को सदा पूजन करना चाहिए। नेत्रों में दिति और पर्जन्य, श्रोत्र में अदिति जयन्तक, दो सर्पेन्द्र अंस में संस्थिति प्रयत्नपूर्वक पूजन करनेके योग्य होतेहैं। उसी तरह से बाहुओं में पाँच-पाँच सूर्य सोमादिक पूजनीय हैं। रुद्र और राजयक्ष्मा वामहस्त में दोनों समास्थित हैं। इसी प्रकार से सावित्र-सविता दक्षिण हाथ में आस्थित हैं।३९-४२।

विवस्वानथ मित्रश्च जठरे सुव्यवस्थितौ।
पूषा च पापयक्ष्मा च हस्तयोर्मणिबन्धने।४३
तथैवासुरशोषौ च वामपार्श्वसमाश्रितौ।
पार्श्वेतु दक्षिणे तद्वत् वितथः सगृहक्षतः।४४
ऊर्वोर्यमांबुपौ ज्ञेयौ जान्वोर्गन्धचतुष्पकौ।
जङ्घयो भृंगसुग्रीवौस्फिक्स्थौ दौवारिको मृगः।४५
जयशक्रौ तथामेढ्रे पादयोः पितरस्तथा।
मध्ये नव पदे ब्रह्मा हृदये स तु पूज्यते।४६
चतुः षष्टि पदो वास्तुः प्रासादे ब्रह्मणास्मृतः।
ब्रह्मा चतुष्पदस्तत्र कोणेष्वर्धपदास्तथा।४७
बहिः कोणेषु वास्तौ तु सार्धाश्चोभयसंस्थिताः।
विंशति द्विपदाश्चैव चतुःषष्टि पदे स्मृताः।४८
गृहारम्भेषु कण्डूतिः स्वाम्यङ्गे यत्र जायते।

शल्यं त्वपयेत्तत्र प्रासादे भवने तथा ।४९
सशल्यं भयदं यस्मादशल्यं शुभदायकम् ।
हीनाधिका गतवास्तोसर्वथा तु विवर्जयेत् ।५०
नगरग्रामदेशेषु सर्वत्रैवं विवर्जयेत् ।
चतु: शालं त्रिशालञ्च द्विशालं चैकशालकम् ।
नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि स्वरूपेण द्विजोत्तमा: ।५१

इसके अनन्तर विवस्वान् और मित्र जठरमें भली भाँति व्यवस्थित हैं। पूषा और पापयक्ष्मा हाथों के मणिबन्ध में हैं। उसी प्रकार से असुर और शेष वाम पार्श्व में समाश्रित है। दक्षिण पार्श्व में उसी भाँति वितथ और सगृहक्षत हैं। दोनों ऊरुओं में यम और अम्बुप जान लेने के योग्यहैं। दोनों जानुओंमें गन्धर्व और पुष्पक हैं। दोनों जंघाओं में भृग और सुग्रीव समवस्थित है और स्फिक भागों में दौवारिक और मृग स्थित होते हैं।४३-४५। जय और शक्र मेढ़ में संस्थित हैं और दोनों पादों में पितर समवस्थित रहा करते हैं। मध्य नव पद में ब्रह्मा है और वह हृदय में पूजित होते हैं। ब्रह्माजी के द्वारा यह वास्तु चौसठ पद वाला कहा गया है। वहाँ ब्रह्मा चतुष्पद हैं तथा कोणों में अर्ध पद हैं। बाहिर कोणों में वास्तु में सार्ध उभय संस्थित होते हैं। बीस द्विपद हैं और चौसठ पद में बताये गये हैं।४६-४८। गृहों के आरम्भ कालों में स्वामी के अङ्गों में जहाँ पर कण्डुति होती है वहाँ पर प्रासाद तथा भवन में शल्य का अपनयन करना चाहिए। शल्य के सहित भयप्रद हुआ करता है और अशल्य शुभदायक होता है। हीनाधिक को गत वास्तु के सर्वथा विवर्जित कर देवे। चतु:शाल, त्रिशाल, द्विशाल और एक शाल हे द्विजोत्तमो ! नाम निर्देशपूर्वक उनको बतलायेंगे और स्वरूप के द्वारा भी कहेंगे।४९-५१।

———

१३७—भवन निर्माण वर्णन

चतुः शालं प्रवक्ष्यामि स्वरूपन्नामतस्तथा ।
चतुः शालञ्चतुर्द्वारैरलिन्दैः सर्वतोमुखम् ।१
नाम्ना तत् सर्वतोभद्रं शुभं देवनृपालये ।
पश्चिमद्वारहीनञ्च नन्द्यावर्तः प्रचक्षते ।२
दक्षिणद्वारहीनन्तु वर्द्धमानमुपाहृतम् ।
पूर्वद्वारविहीनं तत्स्वस्तिकं नाम विश्रुतम् ।३
रुचकंचोत्तरद्वारविहीनं तत्प्रचक्षते ।
सौम्यशालाविहीनं यत्त्रिशालं धान्यकञ्च तत् ।४
क्षेमवृद्धिकरं नृणां बहुपुत्रफलप्रदम् ।
शालया पूर्वया हीनं सुक्षेत्रमिति विश्रुतम् ।५
धन्यं यशस्यमायुष्य शोकमोहं विनाशम् ।
शालया याम्यया हीनं यद्विशालं तु शालया ।६
कुलक्षयकरं नृणां सर्वव्याधिविनाशनम् ।
हीनं पश्चिमया यत्तु पक्षघ्नं नाम तत्पुनः ।७

महामहर्षि श्री सूतजी ने कहा—अब मैं चतुःशाला का नाम और स्वरूप से वर्णन करता हूँ । चतुःशाला चार द्वारों और सर्वतोमुख अलिन्दों से युक्त हुआ करता है।१। देव और नृप के आलय में वह नाम से सर्वतोभद्र परम शुभ होता है । पश्चिम द्वार से हीन नन्द्यावर्त्त कहा जाता है ।२। जो दक्षिण द्वार से हीन होता है वह वर्द्धमान उपाहृत होता है । पूर्व द्वार से रहित वह स्वस्तिक इस नाम से प्रसिद्ध है ।३। उत्तर द्वार से जो विहीन होता है वह रुचक नाम वाला होता है । जो सौम्यशाला से रहित होता है वह त्रिशाल और धान्यक होता है ।४। यह मनुष्यों को बहुत से पुत्रों की प्राप्ति के फल को प्रदान करने वाला तथा क्षेम और वृद्धि के करने वाला होता है । पूर्व शाला से हीन

'सुक्षेत्रम' इस नाम से विश्रुत होता है ।५। यह परम धन्य, आयुष्य (आयुकी वृद्धि करने वाला)—शोक और मोह का विनाश करने वाला होता है । याम्य (दक्षिणा) शाला से हीन और शाला से विशाल होता है वह मनुष्यों के कुल का क्षय करने वाला और समस्त प्रकार की व्याधियों का नाश करने वाला हुआ करता है । जो पश्चिम दिशा के होने वाले द्वार से रहित होता है उसका नाम 'पक्षघ्न'—हुआ करता है ।६-७।

मित्रबन्धून् सुतान् हन्त तथा सर्वभयापहम् ।
याम्यापराभ्यां शालाभ्यां धनधान्यफलप्रदम् ।८
क्षेमवृद्धिकरं नृणां तथापुत्रफलप्रदम् ।
यमं सूर्यञ्च विज्ञेयं पश्चिमोत्तरशालिकम् ।६
राजाग्निभयदं नृणां कुलक्षयकरं च यत् ।
उदक्पूर्वे तु शालेह दण्डाख्ये यत्र तद्भवेत् ।१०
अकालमृत्युभयदं परचक्रभयावहम् ।
धनाख्यं पूर्वयाम्याभ्यां शालाभ्यां यद्विशालकम् ।११
तच्छस्त्रभयदं नृणां पराभवभयावहम् ।
चूल्लीपूर्वा पराभ्यां तु साभवेन्मृत्युसूचनी ।१२
वैधव्यदायकं स्त्रीणामनेकभयकारकम् ।
कार्यमुत्तरयाम्याभ्यां शालाभ्यां भयदं नृणाम् ।१३
सिद्धार्थवज्रवर्ज्याणि विशालानि सदाबुधैः ।
अथातः संप्रवक्ष्यामि भवनं पृथिवीपतेः ।१४

याम्या पर शालाओं से मित्र-बन्धु-और सुतों की प्राप्ति होती है तथा सर्वप्रकार के भयोंका अपहरण एवं धन और धान्यके फलका प्रदान करने वाला पक्षघ्न हुआ करताहै । पश्चिमोत्तर शालिक मनुष्योंके क्षेम एवं वृद्धि का करने वाला है और पुत्र की प्राप्ति का फल प्रदान करने वाला है । इसका नाम यम सूर्य जानना चाहिए ।८-६। उत्तर और पूर्व

की शालायें जहाँ पर होती हैं उनका नाम दण्ड होता है । यह मनुष्यों को राजा, अग्नि और मृत्यु का भय देने वाली है तथा कुल का क्षय करने वाली है ।१०। पूर्व और याम्य शालाओं से जो विशालक होता है उसका नाम धन है । यह अकाल मृत्यु और भय का प्रदान करने वाला तथा परचक्र के भय देने वाला होता है । पराओं से जो चूल्ली पूर्वा शाला होती है वह मृत्युकी सूचना देने वाली हुआ करती है ।११-१२। स्त्रियों को वैधव्यके देने वाला अनेक भयों का करने वाला होता है । उत्तर और याम्य की शाला से मनुष्यों को भय दान होता है । अतएव बुध पुरुषों को सदा सिद्धार्थ वज्र वर्ज्य विशाल ही करनी चाहिए । इसके अनन्तर अब मैं पृथिवी पति के भवन का वर्णन ।१३-१४।

पञ्चप्रकारं तत्प्रोक्तमुत्तमादि विभेदितः ।
अष्टोत्तरं हस्तशतं विस्तरश्चोत्तमो मतः ।१५
चतुर्ष्वन्येषु विस्तारो हीयते चाष्टभिः करैः ।
चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते ।१६
युवराजस्य वक्ष्यामि तथाभवनपञ्चकम् ।
षड्भिः षड्भिस्तथाशीतिर्हीयतेतत्र विस्तरात् ।१७
त्र्यंशेन चाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते ।
सेनापतेः प्रवक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम् ।१८
चतुः षष्टिस्तुविस्तारात्षड्भिः षड्भिस्तु हीयते ।
पञ्चस्वेतेषुदैर्घ्यञ्चषड्भागेनाधिक भवेत् ।१९
मन्त्रिणामथ वक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम् ।
चतुश्चतुर्भिर्हीनास्यात् करषष्टिः प्रविस्तरे ।२०
अष्टांशेनाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते ।
सामन्तामात्तलोकानां वक्ष्ये भवनपञ्चकम् ।२१

यह नृप का भवन उत्तम आदि भेदों से पाँच प्रकार का बताया गयाहै । जो एकसौ आठ हाथके विस्तार वाला होता है वह ही उत्त म

माना गया है।१५। अन्य जो चार प्रकार के भवन कहे गये हैं उनमें जो विस्तार होता है वह आठ हाथों का कमही हुआ करता है। इन पाँचों में लम्बाई से चतुर्थांश से अधिक दीर्घता बताई गयी है। अब मैं युवराज के पाँच प्रकार के भवनों के विषय में कहता हूँ वहाँ पर अस्सी के विस्तार से छै-छै हाथ कम होता जाया करता है। इन पाँचों में भी तीन अंश से अधिक दीर्घता कही जाती है। अब सेनापति के पाँच प्रकार के भवनों के विषय में वर्णन किया जाता है।१६-१८। ये भवन चौंसठ के विस्तार से छै-छै हाथ प्रत्येकमें कम होता जाया करता है। इन पाँचों में चौड़ाई षड्भाग से अधिक ही हुआ करती है।१६। अब राजा के मन्त्रियों के भी भवन पाँच प्रकार के ही हुआ करते हैं उनका वर्णन किया जाता है। इनका विस्तार साठ हाथ का होता है और ये भी क्रम से चार-चार हाथ कम होते हैं।२०। इन पाँचों में भी आठ अंश से अधिक दीर्घता हुआ करती है। अब इसके उपरान्त राजा के सामन्त-अमात्य और लोकों के भी पाँच प्रकार के भवनों का वर्णन यहाँ पर किया जाता है।२१।

चत्वारिंशत्तथाष्टौ च चतुर्भिर्हीयते क्रमात्।
चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वेतेषु शस्यते।२२
शिल्पिनां कञ्चुकीनाञ्च वेश्यानां गृहपञ्चकम्।
अष्टाविंशत् कराणान्तु विहीनं विस्तरे क्रमात्।२३
द्विगुणं दैर्घ्यमेवोक्तं मध्यमेष्वेवमेव तत्।
दूतीकर्मान्तिकादीनां वक्ष्ये भवनपञ्चकम्।२४
चतुर्थांशाधिकंदैर्घ्यं विस्ताराद्विदशैव तु।
अर्धाधिकरहानिः स्याद्विस्तारात्पञ्चशः क्रमात्।२५
दैवज्ञगुरुवैद्यानां सभास्तारपुरोधसाम्।
तेषामपि प्रवक्ष्यामि तथा भवन पञ्चकम्।२६
चत्वारिंशत्तु विस्तारा चतुर्भिर्हीयते क्रमात्।

पञ्चस्वेतेषु दैर्घ्यञ्च षड्भागे नाधिकं भवेत् ।२७
चतुर्वर्णस्य वक्ष्यामि सामान्यं गृहपञ्चकम् ।
द्वात्रिंशतिकराणान्तु चतुर्भिर्हीयते क्रमात् ।२८

ये भवन चालीस और आठ अड़तालीस हाथ के विस्तार वाले हुआ करते हैं और क्रम से चार-चार हाथ न्यून हो जाया करते हैं। इनमें भी चौथाई अंश से अधिक दीर्घता (चौड़ाई) इन पाँचोंमें प्रशस्त हुआ करती है।२२। नृप के यहाँ पर जो शिल्पी-कञ्चुकी और वेश्यायें होते हैं उनके भी भवन पाँच तरहके उत्तम आदि भेदों वाले हुआ करते हैं। अट्ठाईस हाथके विस्तार वाले होते हैं और क्रमसे प्रत्येकमें हीनता भी होती चली जाया करती है।२३। दुगुनी दीर्घता भी बताई गयी है। इसी प्रकार से माध्यमों में भी होती है। अब दूतीकर्म करने वाले और अन्तिकादि के पाँच भवनों को बतलाते हैं। चतुर्थांश से अधिक दीर्घता होती है और विस्तार बारह का हुआ करता है। आधे-आधे हाथ की न्यूनता विस्तार के क्रम से पाँचों में हो जाती है ।२४-२५। राजा के यहाँ रहने वाले देवज्ञ ज्योतिषी—गुरु, वैद्य, सभास्तार, पुरोहित, इनके भी पाँच-पाँच प्रकार के उत्तमादि भेद से भवन हुआ करते हैं। उनको बतलाते हैं—चालीस हाथ के विस्तार से युक्त ये होते हैं और चार-चार हाथ क्रम से हीन होते हैं। इन पाँचोंमें दीर्घता षड्भाग से अधिक हुआ करती है। अब ब्राह्मणादि चार वर्णों के सामान्य पाँचों गृहों के विषय में कहते हैं। ये बत्तीस हाथ के विस्तार से संयुत हुआ करते हैं और क्रम से चार-चार की हीनता हुआ करती है।२६-२८।

आषोडशादितिपरं नूनमन्तेवसायिनाम् ।
दशांशेनाष्टभागेन त्रिभागेनाथ पादिकम् ।२९
अधिकंदैर्घ्यं मित्याहुर्ब्राह्मणादेः प्रशस्यते ।
सेनापतेर्नृपस्यापि गृहयोरन्तरेण तु ।३०
नृपवासगृहंकार्य्यं भाण्डागारस्तथैव च ।

सेनापतेर्गृहस्यापि चातुर्वर्ण्यस्य चान्तरे ।
वासाय च गृहं कार्यं राजपूज्येषु सर्वदा ।३१

अन्तरप्रभवानाञ्च स्वपितुर्गृहमिष्यते ।
तथा हस्तशतादर्द्धं गदितं वनवासिनाम् ।३२

सेनापतेर्नृपस्यापि सप्तत्यासहितेऽन्विते ।
चतुर्दशहृते व्यासे शालान्यासः प्रकीर्तितः ।३३

पञ्चत्रिंशान्विते तस्मिन्नलिन्दः समुदाहृतः ।
तथा षट्त्रिंशद्धस्ता तु सप्ताङ्गुलसमन्विता ।३४

विप्रस्य महती शाला न दैर्घ्यं परतो भवेत् ।
दशाङ्गुलाधिका तद्वत् क्षत्रियस्य न विद्यते ।३५

षोडश से लेकर इति पर निश्चय ही अन्तेव क्षत्रियों का भवन होता है। दशांश से—अष्ट भाग से और त्रिभाग से पादिक होता है। ब्राह्मणादि की दीर्घता अधिक प्रशस्त होती है—ऐसा कहते हैं। सेनापति और नृप के भी गृहों में अन्तर होता है।२९-३०। नृप के निवास का गृह तथा भाण्डागार दोनों का निर्माण करना चाहिए सेनापति का गृह और चारों वर्णों वालोंका गृह अन्तरमें ही होना आवश्यक है। निवास के लिए सर्वदा राज पूज्यों में गृह करना चाहिए।३१। जिनका अन्तर में प्रभव हो उनको अपने पिता का ही गृह अभीष्ट होना चाहिए। वन वासियों का गृह सौ हाथ का आधा भाग कहा गया है।३२। सेनापति का भी जो कि राजाका होता है, सप्तति (सत्तर)के सहित एवं अन्वित तथा चतुर्दश व्यास के हृत होने पर शाला को कीर्त्तित किया गया है। उसके पञ्च त्रिंशान्वित होने पर यह अलिन्द कहा गया है तथा छत्तीस हाथ वाली और सात अंगुलों से समन्वित विप्र की महती शाला होनी है। पर से उसकी दीर्घता नहीं होनी चाहिए। उसी भाँति दश अंगुल से अधिक क्षत्रिय की नहीं होनी है।३३-३५।

पञ्चविंशत्करा वैश्ये अङ्गुलानि त्रयोदश ।
तावत्करैव शूद्रस्य युता पञ्चदशाङ्गुलैः ।३६
शालायास्तु त्रिभागेन यस्याग्रे वीथिका भवेत् ।
सोष्णीषं नाम तद्वास्तु पश्चाच्छ्रेयोच्छ्रगं भवेत् ।३७

पार्श्वयोर्वीथिका यत्र सावष्टम्भन्तदुच्यते ।
समन्ताद्वीथिका यत्र सुस्थितं तदिहोच्यते ।३८
शुभदं सर्वमेतत्स्याच्चातुर्वर्ण्यं चतुर्विधम् ।
विस्तरात् षोडशो भागस्तथाहस्तचतुष्टयम् ।३९
प्रथमो भूमिकोच्छ्राय उपरिष्टात्प्रहीयते ।
द्वादशांशेन सर्वासु भूमिकासु तथोच्छ्रयः ।४०
पक्वेष्टकाभवेद्भित्तिः षोडशांशेन विस्तरात् ।
दारवैरपिकल्पास्यात्तथा मृण्मयभित्तिका ।४१

गर्भमानेन मानन्तु सर्ववास्तुषु शस्यते ।
गृहव्यासस्य पञ्चाशदष्टादशभिरङ्गुलैः ।४२
संयुतो द्वारविष्कम्भो द्विगुणश्चोच्छ्रयोभवेत् ।
द्वारशाखा सुबाहुल्यमुच्छ्रायकरसम्मितैः ।४३
अङ्गुलैः सर्ववास्तूनां पृथुत्वं शस्यते बुधैः ।
उदुम्बरोत्तमांगञ्च मदर्धार्धं प्रविस्तरात् ।४४

वैश्य की शाला पच्चीस कर विस्तृत तथा त्रयोदश अंगुल होनी चाहिए। उतने ही हाथों के विस्तार से युक्त पन्द्रह-अंगुल सहित शूद्र की शाला होना चाहिए।३६। शाला के त्रिभाग से जिसके आगे एक वीथिका का होना आवश्यक है। जिसका पीछा उच्छ्रय वाला हो वह श्रेय और सोष्णीय नाम वाला वास्तु होता है। जिसके पार्श्वों में वीथिका हो उसका नाम सावष्टम्भ कहा जाता है। जिसके सब ओर वीथिका हो उसका नाम यहाँ पर स्थित कहा जाया करता है। चातुर्वर्णों में यह चारों प्रकार का सब शुभ देने वाला होता है। विस्तार से

यह षोडश भाग होता है तथा चार हाथ हुआ करता है ।३७ ३९। प्रथम भूमिकोच्छ्राय ऊपर से हीन होता है । द्वादश अंश से सब भूमिकाओं में उसी प्रकार का उच्छ्रय होता है।४०। षोडश अंश से विस्तार युक्त पकी हुई ईंटों का भित्ति होनी चाहिए । दारव अर्थात् काष्ठों से भी निर्मित्त हों या मृण्मय भित्ति होवे ।४१। गर्भमास से मान सब वास्तुओं में प्रशस्त होता है । उस गृह मास पचास और अष्टादश अंगुलों से संयुत द्वार विष्कम्भ होता है और द्विगुण उच्छ्राय होता है । द्वारशाखा मुबाहुल्यकर सम्मित से उच्छ्राय होना है । सब वास्तुओं का अंगुलों से पृथकृत्व बुधों के द्वारा प्रशस्त माना जाता है । उदुम्बरोत्तम और आम उसके अर्ध का अर्ध का अर्ध विस्तार में होना है ।४२-४४।

=×=

१३८—स्तम्भमान निर्णय

अथातः संप्रवक्ष्यामि स्तम्भमानविनिर्णयम् ।
कृत्वा स्वभुवनोच्छ्रायं सदासप्तगुणंबुधैः ।१
अशीत्यंशः पृथुत्वं स्यादग्रेणावगुणैः सह ।
रुचकश्चतुरः स्यात्तु अष्टास्रो वज्र उच्यते ।२
द्विवज्रः षोडशास्रस्तु द्वात्रिंशास्रः प्रलीनकः ।
मध्यप्रदेशे यस्स्तम्भो वृत्तोवृत्तइति स्मृतः ।३
एते पञ्च महास्तम्भाः प्रशस्ताः सर्ववास्तुषु ।
पद्मवल्लीलताकुम्भपत्रदर्पणरूपिताः ।४
स्तम्भस्य नवमांशेन पद्मकुम्भान्तराणि तु ।
स्तम्भतुल्या तुला प्रोक्ता हीना चोपतुला ततः ।५
त्रिभागेनेह सर्वत्र चतुर्भागेन वा पुनः ।
हीनं हीनं चतुर्थांशात् तथा सर्वासु भूमिषु ।६

वासगेहानि सर्वेषां प्रवेशे दक्षिणेन तु ।
द्वाराणि तु प्रवक्ष्यामि प्रशस्तानीह यानि तु ।७

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर अब स्तम्भों के मान का विशेष निर्णय किया जाता है । अपने भुवनका उच्छ्राय करके बुधों के द्वारा सत सप्त गुण होना चाहिए ।१। अस्सीं अंश स्तम्भ का पृथुत्व होना चाहिए । अग्रभाग से अवगुणों के साथ चार वाला रुचक होता है । आठ अस्त्रों वाला वज्र—इस नाम से कहा जाया करता है । षोडश अस्त्र वाला द्विवज्र और बत्तीस से संयुत्त प्रलीनक कहा जाताहै मध्य भाग में जो स्तम्भ हुआ करता है उसको वृत्तोवृत्तत्त इस नाम से पुकारा जाया करता है ।२ ३। इस तरह से रुचका—वज्र—द्विवज्र-प्रलीनक और वृत्तोवृत्त ये पाँच महान् स्तम्भ सर्व वस्तुओंमें परमप्रशस्त कहे जाते हैं । पद्मवत् लीनता कुम्भ पत्र दर्पण से रूपित हुआ करते हैं ।४। स्तम्भ का नवम अंश जो हो उसी से पद्म कुम्भ के अन्तर होते हैं । स्तम्भ के तुल्य ही तुला कही गयी है और जो हानि होती है वह उप तुला होती है ।५। यहाँ पर सभी जगह त्रिभाग से अथवा चतुर्भाग से उसी भाँति सर्व भूमियों में चतुर्थ अंश से हीन-हीन होती है, सबके निवास करने योग्य गेहों में दक्षिण भागमे प्रवेश करने में जो द्वार हुआ करते हैं जो कि परम प्रशस्त होते हैं उन्हीं के विषय में अब मैं वर्णन करता हूँ ।६-७।

पूर्वेणेन्द्रजयन्तञ्च द्वारं सर्वत्रशस्यते ।
याम्यञ्च वितथञ्चैव दक्षिणेन विदुर्बुधाः ।८
पश्चिमे पुष्पदन्तं च वारुणञ्च प्रशस्यते ।
उत्तरेण तु भल्लाटं सौम्यं तु शुभदम्भवेत् ।९
तथावास्तुषु सर्वत्र वेधं द्वारस्य वर्जयेत् ।
द्वारे तु रथ्यया विद्धे भवेत् सर्वकुलक्षयः ।१०

तरुणाद्वेषबाहुल्यं शोकः पङ्केन जायते ।
अपस्मारो भवेन्नूनं कूपवेधेन सर्वदा ।११

व्यथाप्रस्रवणेन स्यात्कीलेनाग्निभयं भवेत् ।
विनाशो देवताविद्धे स्तम्भेन स्वीकृतं भवेत् ।१२

गृहभर्तुर्विनाशः स्यात् गृहेण च गृहे कृते ।
अमेध्यावस्करैर्विद्धे गृहिणी बन्धकी भवेत् ।१३

तथा शस्त्रभयं विन्द्यादन्त्यजस्य गृहेण तु ।
उच्छ्राया द्विगुणां भूमिं त्यक्त्वा वेधो न जायते ।१४

पूर्व दिशा मे होने वाले इन्द्र और जयन्त द्वार सर्वत्र बहुत ही प्रशस्त होते हैं बुध लोग जो दक्षिण भाग में द्वार आता है उसे याम्य और वितथ कहा करते हैं ।८। पश्चिम दिशामें होने वाले द्वार को पुष्प दन्त और वारुण कहा जाता है जो कि प्रशस्त होता हैं । उत्तर में होने वाला द्वार भल्लाट और सौम्य कहलाता है यह भी शुभके प्रदान करने वाला होता है ।९। उसी प्रकार से सभी जगह पर द्वार का वेध वर्जित होना चाहिए । रथ्या मे जो विद्ध द्वार होता हैं उसमें तो सम्पूर्ण कुल का क्षय हो जाया करता है अर्थात् ऐसा द्वार तो कभी भी कराना ही नहीं चाहिए ।१०। तरुण मे वेष का बाहुल्य होता है और पंक से शोक हुआ करता है । सर्वदा कूप वेधमे निश्चय रूपसे अपस्मार हुआ करता है ।११। प्रस्रवण मे व्यथा होती है और कील से अग्नि का भय हुआ करता है । देवता से विद्ध द्वार में विनाश होता है । स्तम्भ के द्वारा विद्ध द्वारके होनेपर गृहिणी बन्धकी हो जाया करतीहै । किसी अन्त्यज के गृह के द्वारा वेध होने पर शास्त्रभय जानना चाहिए या प्राप्त करे । उच्छ्राय मे द्विगुणित भूमि का त्याग करके वेध नहीं हुआ करता है । ।१३-१४।

स्वयमुत्पाटिते द्वारे उन्मादो गृहवासिनाम् ।
स्वयं वापिहितेविद्यात् कुलनाशंविचक्षण: ।१५
मानाधिके राजभयं न्यूने तस्करतो भवेत् ।
द्वारोपरि च यद्द्वारं तदन्तकमुखं स्मृतम् ।१६
अध्वनो मध्यदेशे तु अधिको यस्य विस्तर: ।
वज्रन्तु सङ्कटं मध्ये सद्योभर्तु विनाशनम् ।१७
तथान्यपीडितं द्वारं बहुदोषकरं भवेत् ।
मूलद्वारन्तथान्यत्तु नाधिकशोभनं भवेत् ।१८
कुम्भश्रीपर्णिवल्लीभि:मूलद्वारन्तु शोभयेत् ।
पूजयेच्चापि तन्नित्यं बलिनाचाक्षतोदकै: ।१९
भवनस्य वट: पूर्वो दिग्भागे सर्वकामिक: ।
उदुम्बरस्तथा याम्ये वारुण्यां पिप्पल: शुभ: ।२०

स्वयं द्वार के उत्पाटित होने पर जो गृह में निवास करने वाले होते हैं उनको उन्माद हो जाया करता है । अथवा स्वयंही पिहित करने पर विचक्षण पुरुष को अपने कुल का नाश समझ लेना चाहिए ।१५। यदि द्वार जो भी उसका मान स्वीकृत किया गयाहै उससे अधिक होतो राजसे होने वाला भय होता है और यदि अभीप्सित मानसे न्यून होतो तस्करों से भय रहा करता है । द्वार के ऊपर जो द्वार होता है उसको अन्तक मुख नाम वाला कहा गया है ।१६। मध्य देशमें जिसका अधिक विस्तार हो वह अध्वन कहलाता है । मध्य में संकट वज्र होता है और वह तुरन्त ही स्वामीका विनाश करने वाला हुआ करताहै । तथा अन्य से पीड़ित द्वार बहुत-से दोषों के करने वाला होता है । जो मूल द्वार होता है उससे अन्य द्वार अधिक शोभन नहीं हुआ करता ।१७-१८। कुम्भा श्रीपर्णि और वल्लियों के द्वार मूल-द्वार को शोभित करना चाहिए । उस द्वार की नित्यही पूजा करे तथा अक्षतोदक से अर्चन एवं बलिदान करना चाहिए । भवन के पूर्व दिशा के भाव में सब कामनाओं के पूर्ण करने वाले वट वृक्ष का समारोपण करना चाहिए—दक्षिण दिशा

के भाग में उदुम्बर (गूलर) का वृक्ष और वारुणी दिशा में परम शुभ पीपल का वृक्ष समारोपित करना चाहिए ।१९-२०।

प्लक्षश्चोत्तरतो धन्यो विपरीतास्त्वसिद्धये ।
कण्टकीक्षीरवृक्षश्च आसन: सफलो द्रुम: ।२१
भार्य्याहानौ प्रजाहानौ भवेतां क्रमशस्तदा ।
न च्छिन्द्यात् यदि तानन्यानन्तरे स्थापयेच्छुभान् ।२२
पुन्नागाशोकबकुलशमीतिलकचम्पकान् ।
दाड़िमीपिप्पलीद्राक्षा तथा कुसुममण्डपान् ।२३
जम्बीरपूगपनसद्रुमकेतकीभिर्जातीसरोजशतपत्रिकमल्लिकाभि:।
यन्नारिकेलकदलीदलपाटलाभिर्युक्तंतदत्रभवनंश्रियमाप्नोति।२४

भवन के उत्तर दिग्भाग में प्लक्ष (पाखर) के वृक्ष का समारोपण करे । इस तरह से गृह की इन चारों दिशाओं में उपर्युक्त चार प्रकार के वृक्षों का समारोपण सिद्धि दायक हुआ करता है । इनके विपरीत आरोपण से असिद्धि होतीहै । कांटार क्षीर देने वाला वृक्ष और आसन सफल द्रुम होता है । उस समय में क्रम से भार्या की हानि और प्रजा की हानि हुआ करती है । यदि उनको दूसरों के अन्तर में शुभ वृक्षोंका स्थापित करे तो फिर इनका छेदन कभी भी नहीं करना चाहिए ।२१-२२। पुन्नाग, अशोक, बकुल, शमी, तिलक, चम्पक, दाड़िम, पिप्पली, द्राक्षा, कुसुम मण्डप, जम्बीर, पूग, पनसद्रुम, केतकी, जाती, सरोज, शत पत्रक—मल्लिका, नालिकेर, कदली दल, पाटल इन समस्त वृक्षों के समारोहण से समन्वित होता है वह श्री का विस्तार किया करता है ।२३-२४।

११९—भवन निर्माण वर्णन

उदगादिप्लवं वास्तु समानशिखरे तथा ।
परीक्ष्य पूर्ववत्कुर्य्यात्स्तम्भोच्छ्रायविचक्षणः ।१
न देवधूर्तसचिवचत्वराणां समन्ततः ।
कारयेद्भवनं प्राज्ञो दुःखशोकभयं ततः ।२
तस्य प्रदेशाश्चत्वारस्तथोत्सर्गोऽग्रतः शुभः ।
पृष्ठः पृष्ठभागस्तु सव्यावर्तः प्रशस्यते ।३
अपसव्यो विनाशाय दक्षिणे शीर्षकस्तथा ।
सर्वकामफलो नृणां सम्पूर्णो नाम वामतः ।४
एवं प्रदेशमालोक्य यत्नेन गृहमारभेत् ।
अथ सांवत्सरे प्रोक्ते मुहूर्ते शुभलक्षणे ।५
रत्नोपरि शिलां कृत्वा सर्वबीजसमन्विताम् ।
चतुर्भिर्ब्राह्मणैः स्तम्भं कारयित्वा सुपूजितम् ।६
शुक्लाम्बरधरः शिल्पिसहितो वेदपारगैः ।
स्नापितं विन्यसेत्तद्वत्सर्वौषधिसमन्वितम् ।७
नानाक्षतसमोपेतं वस्त्रालङ्कारसंयुतम् ।
ब्रह्मघोषेण वाद्येन गीतमङ्गलनिःस्वनैः ।८

महर्षिवर श्री सूत जी ने कहा—विचक्षण पुरुष को चाहिए कि उदगादि प्लव तथा समान शिखर वाले वास्तुकी परीक्षा करके पूर्व की भाँति स्तम्भों की ऊँचाई करनी चाहिए ।१। प्राज्ञ पुरुष का कर्त्तव्य है कि अपने भवन के चारों ओर देव, धूर्त्त, सचिव और चत्वरों का भवन नहीं बनवाना चाहिए क्योंकि इससे फिर दुःख और शोक तथा भय होता है ।२। उसके चार प्रदेश होता है तथा आगे की ओर उत्सर्ग परम शुभ हुआ करता है । पीछे की ओर उसका पृष्ठ भाग सव्यावर्त्त प्रसस्त होता है ।३। जो अपसव्य होता है वह विनाश के लिए ही हुआ

करता है। दक्षिण में शीर्षक मनुष्यों के सब कामनाओं के फल वाला हुआ करता है और वाम भागमें सम्पूर्ण होता है। इस प्रकार प्रदेशका समावलोकन करके ही यत्नपूर्वक गृह निर्माणका आरम्भ करना चाहिए और वह भी साम्वत्सर प्रोक्त किसी शुभ लक्षणों वाले मुहूर्त्त में करे। ।४-५। समस्त बीजो मे संयुत शिला को रत्नों के ऊपर करके चार ब्राह्मणों के द्वारा भलीभाँति अर्चित स्तम्भ का निर्माण करावे ।६। वेदों के पारगामी विद्वान् ब्राह्मणों के द्वारा शिल्पियों के सहित शुक्ल अम्बरों के धारी को स्थापित करके विन्यस्त करना चाहिए। उसी के समान सर्वौषधियों से समन्वित नाना अक्षतों मे समुपेत---वस्त्र एवं आभूषणों से युक्त करके ही विन्यास करना चाहिए। ब्रह्मघोष (वेदध्वनि) वाद्य और गीत एवं माङ्गलिक ध्वनियों के द्वारा विन्यस्त करे ।७-८।

पायसं भोजयेद्विप्रान् होमन्तु मधुसर्पिषा ।
वास्तोष्पतेप्रतिजानीहि मन्त्रेणानेन सर्वदा ।९
सूत्रपाते तथा कार्य्यमेवं स्तम्भोदये पुनः ।
द्वारवंशोच्छ्रये तद्वत्प्रवेशसमये तथा ।१०
वास्तूपशमने तद्वद्वास्तुयज्ञस्तु पञ्चधा ।
ईशाने सूत्रपातः स्यादाग्नेयेस्तम्भरोपणम् ।११
प्रदक्षिणञ्च कुर्वीत वास्तोः पदविलेखनम् ।
तर्जनी मध्यमा चैव तथाङ्गुष्ठस्तु दक्षिणे ।१२
प्रवालरत्नकनकफलं पिष्ट्वा कृतोदकम् ।
सर्ववास्तुविभागेषु शस्तं पदविलेखने ।१३
न भस्माङ्गारकाष्ठेन नखशस्त्रेण चर्मभिः ।
न शृङ्गास्थिकपालैश्च क्वचिद्वास्तु विलेखयेत् ।१४

फिर विप्रों को पायस का भोजन करावे और मधु और घृत के द्वारा होम करे। सर्वदा वास्तोष्पति से इस मन्त्रके द्वारा प्रतिज्ञा करे।

उस प्रकार से सूत्रपातमें करे और पुनः स्तम्भोदय के समयमें भी करना चाहिए। द्वार वंश के उच्छ्रय में तथा उसी भाँति से प्रवेश के समय में करना चाहिए। उसी तरह से वास्तु के उपशामन के अवसर पर उसी तरह से वास्तु यज्ञ पाँच प्रकार का होता है। ईशान में सूत्रपात होता है—आग्नेय में स्तम्भ का रोपण होता है और वास्तुके हृदविलेखन का प्रदक्षिण करना चाहिए। तर्जनी, मध्यमा तथा दक्षिणमें अंगुष्ठ रक्खे। प्रवाल, रत्न, करक फल (धतूरे का फल) को जल के साथ पीसकर सम्पूर्ण वास्तु के विभागों में पदविलेखन करे। पद विलेखन करने में यह परम प्रशस्त कहा गया है। वास्तु का विलेखन कहीं पर भी भस्म अङ्गार और काष्ठ से भी नहीं करे तथा सींग, अस्थि और कपालों के द्वारा भी पद विलेखन नहीं करे।९-१४।

एभिर्विलिखितं कुर्य्याद्दुःखशोकभयादिकम्।
यदा गृहप्रवेशः स्याच्छिल्पी तत्रापि लक्षयेत्।१५

स्तम्भसूत्रादिकं तद्वच्छुभाशुभफलप्रदम्।
आदित्याभिमुखं रौति शकुनिः पुरुषं यदि।१६

तुल्यकालं स्पृशेदङ्गं गृहभर्तुर्यदात्मनः।
वास्त्वङ्गे तद्विजानीयान्नशल्यं भयप्रदम्।१७
अङ्गानान्तरं यत्र हस्त्यश्वश्वापदं भवेत्।
तदङ्गसम्भवं विन्द्यात्तत्र शल्यं विचक्षणः।१८
प्रसार्यमाणे सूत्रे तु श्वागोमायुविलङ्घिते।
तत्तु शल्यं विजानीयात् खरशब्देति भैरवे।१९

यदीशाने तु दिग्भागे मधुरं रौति वायसः।
धनं तत्र विजनीयाद्भागे वास्वाम्यधिष्ठिते।२०
सूत्रच्छेभवेन्मृत्युर्व्याधिः कीलेत्यधोमुखे।
अङ्गारेषु तथोन्मादं कपालेषु च सम्भ्रमम्।२१

यदि उपर्युक्त साधनों में से किसी भी एक के द्वारा पदविलेखन किया जाता है तो इसका परिणाम बुरा हुआ करता है। और दुःख-शोक और भय आदि हुआ करते हैं। जिस समयमें गृह प्रवेश होवे वहाँ पर भी शिल्पी को लक्षित करना चाहिए।१५। स्तम्भ सूत्रादिक भी उसी भाँति शुभ और अशुभ फल के प्रदान करने वाले होवे हैं। यदि शकुनि सूर्य के सम्मुख पुरुष के प्रति ध्वनि करता है और तुल्यकाल ही में गृह के स्वामी के अङ्ग का स्पर्श करता है और अपने अङ्ग को छूता है तो उसको भय प्रदान करने वाला नरशल्य जान लेना चाहिए।१६-१७। अङ्कन के अनन्तर जिसमें हस्ती-अश्व और श्वापद होवे तो नसको वहाँ पर विचक्षण पुरुष अङ्ग में होने वाला शल्य समझ लेवे।१८। सूत्र के फैलाये जाने पर वह श्वान और गोमायु के द्वारा विलंघित हो जावे तो उसको भी शल्य ही जान लेना चाहिए तथा भैरव में खर शब्द हो उसको भी शल्य समझ लेवे।१९। जो ईशान कोण के दिग्भाग में वायस (कौआ) मधुर ध्वनि करता हो तो वहाँ पर उस भाग में धन का होना समझ लेना चाहिए अथवा स्वामी के द्वारा अधिष्ठित भाग धन जानलो।२०। सूत्र का जो कि प्रसादित किया गया है किसी भी तरह से छेदन हो जावे तो मृत्यु जान लेवे तथा कील के नीचे की ओर मुख वाली हो जाने पर व्याधि होने का ज्ञान कर लेवे। अङ्गारों के होने पर उन्माद और कपालोंके हो जाने पर सम्भ्रम होना समझ लेना चाहिए।२१।

कम्बुशल्येषु जानीयात् पौंश्चल्यं स्त्रीषु वास्तुवित्।
गृहभर्तुर्गृहस्यापि विनाशः शिल्पिसम्भ्रमे।२२
स्तम्भे स्कन्धच्युते कुम्भे शिरोरोगं विनिर्दिशेत्।
कुम्भापहारे सर्वस्य कुलस्यापि क्षयो भवेत्।२३
मृत्युः स्थानच्युते कुम्भे भग्ने बन्धं विदुर्बुधाः।
करसङ्ख्याविनाशे तु नाशं गृहपतेर्विदुः।२४

बीजौषधिविहीनेतुभूतेभ्योभयमादिशेत् ।
ततः प्रदक्षिणेनान्यान्न्यसेत्स्तम्भानुविचक्षणः ।२५
यस्माद्भयंकरं नृणां योजिताह्यप्रदक्षिणम् ।
रक्षांकुर्बीत यत्नेन स्तम्भोपद्रवनाशिनीम् ।२६
तथा फलवतीं शाखां स्तम्भोपरि निवेशयेत् ।
प्रागुदक्प्रवणं कुर्य्याद्दिङ्मूढन्तु न कारयेत् ।२७
स्तम्भं वा भवनंवापिद्वारं वासगृहं तथा ।
दिङ्मूढे कुलनाशः स्यान्नच स वर्द्धयेद् गृहम् ।२८

कम्बुशल्यों में वास्तु के वेत्ता को स्त्रियों के विषय में पीश्चल्य का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए । शिल्पी के सम्भ्रम हो जाने पर गृह के स्वामी का और गृह का भी विनाश हो जाता है । स्तम्भ में कुम्भ के स्कन्ध से च्युत हो जाने पर शिरोरोग का होना जान लेवे । कुम्भ का यदि अपहरण ही हो जावे तो समझ लेना चाहिए कि सम्पूर्णही कुलका क्षय हो जावेगा ।२२-२३। कुम्भ के निर्दिष्ट स्थान से च्युत हो जाने पर मृत्यु की सूचना होती है—ऐसा जान लेवे । यदि कुम्भका भंग हो जावे तो बुध लोग उसको बन्धक का सूचक बतालाया करते हैं । करों की सख्या के विनाश हो जाने पर गृहप का नाश कहा करते हैं । बीजों और औषधियों के विहीन होने पर भूतों से भय प्राप्त होने की सूचना हुआ करती है । इसीलिए विचक्षण पुरुष का कर्त्तव्य है कि उससे प्रदक्षिण में अन्य स्तम्भों का न्यास करे । जिससे मनुष्यों को भय करने वाला कुछ हो उसे अप्रदक्षिण में योजित करे स्तम्भों को होने वाले जो उपद्रव होवें उनके विनाश करने बाली की प्रवल प्रयत्नों के साथ रक्षा करनी चाहिए ।२४-२६। उसी प्रकार से फलों से युक्त एक शाखा को स्तम्भ के ऊपर निवेशित कर देना चाहिए । उसे पूर्व और उत्तर की ओर मुख वाली ही विनिवेशित करनी चाहिए तथा दिक् संमूढ़ उसे नहीं कराना चाहिए ।२७। स्तम्भ हो या भवन हो तथा द्वार हो

अथवा निवास करने का गृह हो इसमें दिङ् मूढ़ता कभी भूलकर भी नहीं करे क्योंकि दिङ्मूढ़ होने पर कुल का नाश ही हो जाया करता है और गृह को फिर वह कभी भी संवर्द्धित नहीं किया करता है ।२८।

यदि संवर्द्धयेद्गेहं सर्वदिक्षु विवर्द्धयेत् ।
पूर्वेण वर्द्धितं वास्तु कुर्याद्वैराणि सर्वदा ।२६
दक्षिणे वर्द्धितं वास्तु मृत्यवे स्यान्न संशयः ।
पश्चाद्विवृद्धं यद्वास्तु तदर्थक्षयकारकम् ।३०
वर्द्धापितं तथा सौम्ये बहुसन्तापकारकम् ।
आग्नेये यत्र वृद्धिः स्यात् तदग्निभयदं भवेत् ।३१
वर्द्धितं राक्षसे कोणे शिशुक्षयकरं भवेत् ।
वर्द्धापि तन्तु वायव्ये वातव्याधिप्रकोपकृत् ।३२
ईशान्यां अन्नहानिः स्यात् वास्तौ संवर्द्धिते सदा ।
ईशाने देवतागारं तथा शान्तिगृहंभवेत् ।३३
महानसन्तथाग्नेये तत्पार्श्वे चोत्तरे जलम् ।
गृहस्योपस्करं सर्वं नैऋर्त्ये स्थापयेद्बुधः ।३४
बधस्थानं बहिः कुर्यात् स्नानमण्डपमेव च ।
धनधान्यञ्च वायव्ये कर्मशालान्ततो बहिः ।
एवं वास्तु विशेषः स्यात् गृहभर्तुः शुभावहः ।३५

यह गृह को संवर्द्धित करे तो सभी दिशाओं में उसे विवर्द्धित करना चाहिए । पूर्व दिशामें यदि वास्तु वर्द्धित होवे तो सर्वदा वैरोंको किया करता है ।२६। दक्षिण दिशा में वास्तु का वर्द्धन होवे तो वह निस्सन्देह मृत्यु के ही लिए हुआ करता है । पीछे अर्थात् पश्चिम की ओर वास्तु विवर्द्धित होवे तो वह अर्थ के क्षय करने वाला होता है । सौम्य दिशामें वर्द्धित वास्तु बहुत अधिक सन्तापका कारक हुआ करता है । जहाँ पर आग्नेय कोण में इसकी वृद्धि होती हो तो वह अग्नि से

होने वाले भय को प्रदान करने वाला हुआ करता है। राक्षस कोण में बढ़ित वास्तु शिशुओं के क्षय का करने वाला हुआ करता है। वायव्य कोण की दिशा में तन्तुको बद्ध करके भी वातजन्य व्याधि के प्रकोपको करने वाला हुआ करता है ईशान दिशा में अन्न को हानि सदा होती है जब कि उस ओर वास्तु संवर्द्धित होता है। ईशान में देवता का आभार तथा शान्ति गृह होना चाहिए।३०-३३। आग्नेय कोण में जल के रहने का स्थान और बुध पुरुष को नैऋत्य कोण में गृह के सभी उपस्कर स्थापित करने चाहिए अर्थात् भण्डार गृह बनाना चाहिए। बाहिरी भाग में वध का स्थान बनाना चाहिए तथा स्नान मण्डप भी बाहिर ही बनाना चाहिए। वायव्य कोणमें धन-धान्य का स्थान बनावे और इससे आगे बाहिर कर्मशाला का निर्माण कराना उचित है। इस प्रकार से विशेष रूप वाला वास्तु गृह के स्वामी के लिए परम शुभ के प्रदान करने वाला हुआ करता है।३४-३५।

१२०—दार्वाहरण वर्णन

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दार्वाहरणमुत्तमम्।
धनिष्ठापञ्चके मुक्त्वा विष्ट्यादिकमतः परम्।१
ततः सांवत्सरादिष्टे दिने यायाद्वनं बुधः।
प्रथमं बलिपूजाञ्च कुर्य्याद्वृक्षस्य सर्वदा।२
पूर्वोत्तरेण पतितं गृहदारु प्रशस्यते।
अन्यथा न शुभं विन्द्यात् याम्योपरि निपातनम्।३
क्षीरवृक्षोद्भवं दारु न गृहे विनिवेशयेत्।
कृताधिवासं विहंगैरनिलानलपीडितम्।४

गजावरुग्णञ्च तथा विद्युन्निर्घातपीडितम् ।
अर्द्धं शुष्कं तथा दारुभग्नशुष्कं तथैव च ।५
चैत्यदेवालयोत्पन्नं नदीसङ्गमजन्तथा ।
श्मशानकूपनिलयं तड़ागादिसमुद्भवम् ।६
वर्जयेत्सर्वथादारुयदीच्छेद्विपुलांश्रियम् ।
तथा कण्टकिनोवृक्षान् नीपनिम्बविभीतकान् ।७
श्लेष्मातकानाम्रतरून् वर्जयेद् गृहकर्मणि ।
आसनाशोकमधुकसर्जशालाः शुभावहाः ।८
चन्दनं पनसन्धन्यं सुरदारुहरिद्रवः ।
द्वाभ्यामेकेन वा कुर्यात् त्रिभिर्वाभवनं शुभम् ।९

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर उत्तम दार्वाहरण के विषय में कहता हूँ । धनिष्ठादि पाँच नक्षत्रों को छोड़कर और इसके आगे विष्ट्यादि (भद्रा) को त्याग करके बुध पुरुषको सांम्वत्सर से इष्ट दिन में वन में गमन करना चाहिए । सर्वदा प्रथम वृक्ष को बलि पूजा करनी चाहिए ।१-२। पूर्वोत्तर दिशा में पतित गृह का दारु (काष्ठ) प्रशस्त होता है । अन्यथा याम्य दिशा में ऊपर नियातन शुभ का लाभ नहीं किया करता है । क्षीर वृक्षसे समुत्पन्न होने वाला काष्ठ कभी भी गृह में बिनिवेशित न करावे । पक्षियों के द्वारा अधिवास किया हुआ—अनिल और अनल से पीड़ित—गज से अवरुग्ण—विद्युत के निर्घात से पीड़ित—अर्द्ध शुष्क—दारु के भग्न होने से शुष्क—चैत्य और देवालय में समुत्पन्न—नदियों के सङ्गम में उपजने वाला—श्मशान और कूपके निलय वाला—तड़ाग आदि में समुद्भूत होने वाला ऐसे काष्ठको सर्वथा वर्जित करदेना चाहिए । यदि विपुल श्री के प्राप्त करनेकी इच्छा हृदय में होवे । काँटे वाले वृक्षों को—नीप, निम्ब, विभीतको को, श्लेष्मातकों ओ, आम्र तरुओं को गृह के निर्माण के क्रम में वर्जित करना चाहिए । आसन-अशोक-मधुक और सर्जशाल ये सब शुभावह होते हैं । चन्दन-

पनस परम धन्य हैं। सुरदारु और हरिद्रव इन दोनों में से एक के द्वारा अथवा तीनों के द्वारा शुभ भवन का निर्माण करना चाहिए।३-९।

बहुभिः कारितं यस्मादनेकभयदं भवेत्।
एकैव शिशपा धन्या श्रीपर्णी तिन्दुकी तथा।१०
एता नान्यसमायुक्ताः कदाचिच्छुभकारकाः।
स्यन्दनः पनसस्तद्वत्सरलार्जुनपद्मकाः।११
एते नान्य समायुक्ता वास्तुकार्यफलप्रदाः।
तरुच्छेदे महापीतेगोधा विन्द्याद्विचक्षणः।१२
माञ्जिष्ठवर्णे भेकः स्यान्नीले सर्पादि निर्दिशेत्।
अरुणे सरठं विद्यान्मुक्ताभे शुकमादिशेत्।१३
कपिले मूषकान्विद्यात् खड्गाभे जलमादिशेत्।
एवं विधं सगर्भन्तु वर्जयेद्वास्तु कर्मणि।१४

क्योंकि बहुतों के द्वारा जो कराया जाता है वह अनेक भयों के प्रदान करने वाला होता है। एकही शिशपा का वृक्ष परम धन्य होताहै और श्रीपर्णी तथा तिन्दुगी भी उसी प्रकार से परम धन्य है।१०। ये अन्य से समायुक्त न होकर किसी भी समय में शुभ कारक होते हैं। उसी तरह से स्यन्दन, पनस, सरल, अर्जुन और पद्मक भी है। ये अन्य से समायुक्त न होते हुए वास्तु कार्य के फल के प्रदान करने वाले हैं। विचक्षण पुरुष महापीत तरु के छेदन होने पर गोधा की प्राप्ति करे। मंजिष्ठा के वर्ण में भेक होवे तथा नील में सर्पादि का विनिर्देश करना चाहिए। अरुण वर्ण में सरठको जानना चाहिए। मुक्ता की आभावाले में शुक का समादेश करे।११-१३। कपिल वर्ण में मूषकों को जानना चाहिए। खड्ग की आभा वाले में जल समादेश करे। इस प्रकार के सगर्भ को वास्तु कर्म्म में वर्जित कर देना चाहिए।१४।

पूर्वचिह्नस्तु गृह्णीयान्निमित्तशकुनैः शुभैः ।
व्यासेन गुणिते दैर्घ्यं अष्टाभिर्विहृते तथा ।१५
तच्छेषमायतं विद्यादष्टभेदं वदामि वः ।
ध्वजो धूमश्च सिंहश्च वृषभः खर एव च ।१६
हस्तीध्वांक्षश्च पूर्वाद्याः करशेषाभवन्त्यमी ।
ध्वजः सर्वमुखोऽन्यः प्रत्यग्द्वारो विशेषतः ।१७
उदङ्मुखो भवेत्सिंहः प्राङ्मुखो वृषभो भवेत् ।
दक्षिणाभिमुखो हस्ती सप्तभिः समुदाहृतः ।१८
एकेन ध्वज उद्दिष्टस्त्रिभिः सिंहः प्रकीर्तितः ।
पञ्चभिर्वृषभः प्रोक्तोविकोणस्थाश्चवर्जयेत् ।१९
तमेवाष्टगुणं कृत्वा करराशि विचक्षणः ।
सप्तविंशाहृते भागे ऋक्षं विद्याद्विचक्षणः ।२०

शुभ निमित्त शकुनों के द्वारा पूर्वाच्छिन को ग्रहण करना चाहिए । व्यास के द्वारा गुणिम होने पर आठों से वैहृत होने पर दीर्घता होती है । उससे जो शेष है—वह आयत जानना चाहिए । मैं आपको आठ भेद बतलाता हूं—ध्वज, धूम, सिंह, वृषभ, खर, हस्ती और ध्वांक्ष ये पूर्वाद्या कर शेष होते हैं । ध्वज सर्वमुख धन्य होता है और विशेष रूप से प्रत्यग् द्वार होता है।१५-१७। उत्तर की ओर मुख वाला सिंह होता है और पूर्व की ओर मुख से युक्त वृषभ होता है । दक्षिण दिशा के अभिमुख होने वाला हस्तीहै तथा इसी प्रकार से यह सात प्रकार वाला उदाहृत किया गया है ।१८। एक के द्वारा ध्वज कहा गया है—तीन के द्वारा सिंह कीर्त्तित किया गया है—पाँचों से वृषभ उक्त हुआ है । जो त्रिकोण में स्थित होते हैं वे सब वर्जित माने गएहैं अतः उनको निषिद्ध मानना चाहिए । विचक्षण पुरुष को चाहिए उसी कर राशिको अठगुना करके अर्थात् आठ से गुणा करके सत्ताईस से भाग समाहृत करे और उसी ऋक्ष (नक्षत्र) को जान लेना चाहिए ।१९-२०।

अष्टभिर्भाजिते ऋक्षं यः शेषः सव्ययो मतः ।
व्ययाधिकं न कुर्वीत यतो दोषकरम्भवेत् ।
आयाधिके भवेच्छान्तिरित्याह भगवान् हरिः ।२१
कृत्वाग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भं,
दध्यक्षताम्रदलपुष्पफलोपशोभम् ।
कृत्वा हिरण्यवसनानि तदा द्विजेभ्योः,
मङ्गल्यशान्तिनिलयाय गृहं विशेत्तु ।२२
गृह्योक्तहोमविधिना बलिकर्म कुर्यात्–
प्रासादवास्तुशमने च विधिर्य उक्तः ।
सन्तर्पयेद्द्विजवरानथ भक्ष्यभोज्यैः,
शुक्लाम्बरः स्वभवनं प्रविशेत्सधूपम् ।२३

आठ से भाजित करने पर जो जो नक्षत्र शेष होता है वह समय माना गया है । व्यय से अधिक नहीं करना चाहिए क्योंकि वह दोषकर होता है । भगवान् श्री हरि ने यही कहा है कि आयाधिक में शान्ति होती है ।२१। इस अनन्तर द्विज श्रेष्ठों को आगे करके दधि, अक्षत, आमुदल, पुष्प, फल इससे उपशोभित पूर्ण कुम्भ को करके द्विज गणों के लिए गृह में प्रवेश करना चाहिए । फिर गृह्य में वर्णित होम का विधि के साथ बलि कर्म करना चाहिए । यही प्रासाद के वास्तु का शयन करने में विधान बतलाया गया । इसके उपरान्त भक्ष्य भोज्यों के द्वारा श्रेष्ठ द्विज गणों को संतृप्त करना चाहिए और स्वयं शुक्ल वस्त्रों को धारण करने वाला धूप के दान के सहित अपने भवन में प्रवेश करे ।२२-२३।

१२१—प्रतिमा निर्माण वर्णन

क्रियायोगः कथं सिद्ध्येद् गृहस्थादिषु सर्वदा ।
ज्ञानयोगंसहस्राद्धि कर्मयोगो विशिष्यते ।१
क्रियायोगं प्रवक्ष्यामि देवतार्चानुकीर्तनम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं यस्मान्नान्यत् लोकेषु विद्यते ।२
प्रतिष्ठायां सुराणां तु देवानार्चानुकीर्तनम् ।
देवयज्ञोत्सवञ्चापि बन्धनाद्येन मुच्यते ।३
विष्णोस्तावत्प्रवक्ष्यामि यादृग्रूपं प्रशस्यते ।
शङ्खचक्रधरं शान्तं पद्महस्तगदाधरं ।४
छत्राकारं शिरस्तस्य कम्बुग्रीवं शुभेक्षणम् ।
तुङ्गनासं शुक्तिकर्णं प्रशान्तोरुभुजक्रमम् ।५
क्वचिदष्टभुजं विद्याच्चतुर्भुजमथापरम् ।
द्विभुजश्चापि कर्तव्यो भवनेषु पुरोधसा ।६
देवस्याष्टभुजस्यास्य यथास्थानं निबोधत ।
खड्गोगदाशरः पद्मं दिव्यं दक्षिणतो हरेः ।७

ऋषि वृन्द ने कहा—गृहस्थ आदि में क्रिया का योग किस प्रकार से सर्वदा सिद्ध होता है यह कृपया बतलाइए क्योंकि सहस्रों ज्ञान योग से कर्मयोग विशिष्ट हुआ करता है ।१। महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा मैं अब उस क्रिया योग को बतलाता हूँ जिसमें देवगण के अर्चना का अनुकीर्त्तन किया जाताहै क्योंकि उससे अन्य लोकोंमें भुक्ति और मुक्ति का प्रदान करने वाला कोईभी नहीं होता है।२। सुरगणों की प्रतिष्ठायें देवताओं के अभ्यर्चन का अनुकीर्त्तन और देवयज्ञों का उत्सव भी होता है । जो ऐसा नहीं करते हैं वे बन्धन से मुक्त नहीं होते हैं । भगवान् विष्णु के विषय में मैं वर्णन करता हूँ जैसा कि उनका रूप प्रशस्त कहा जाया करता है । शंख-चक्र और गदाके धारण करने वाला-परम प्रशांत

हाथ में पद्म तथा गदाको धारण किए हुए-उनका शिर छत्र के आकार से संयुत है—कम्बु के समान ग्रीवा वाला—शुभ नेत्रों से युक्त—तुङ्ग (ऊँची) नासिका से सम्पन्न—शुक्ति के तुल्य कानों वाला—परम प्रशान्त ऊरुयुग और भुजाओं के क्रमसे समन्वित-कहीं पर आठ भुजाओं से युक्त और दूसरा चार भुजाओंसे युक्त एवं दो भुजाओंमें भी सम्पन्न उनका स्वरूप होता है। भवनों में पुरोहित के द्वारा ऐसा ही उपर्युक्त स्वरूप से समन्वित उनका स्वरूप करना चाहिए। अष्ट भुजाधारी इस देव को यथास्थान समझ लेना चाहिए। खड्ग, गदा, शर, दिव्य, पद्म—ये सब आयुध भगवान् विष्णु के दक्षिण भाग में होने चाहिए।३-७।

धनुश्च खेटकञ्चैव शङ्खचक्रं च वामतः।
चतुर्भुजस्य वक्ष्यामि यथैवायुधसंस्थितिः।८
दक्षिणेन गदापद्मं वासुदेवस्य कारयेत्।
वामतः शङ्खचक्रे च कर्तव्ये भूतिमिच्छता।९
कृष्णावतारे तु गदा वामहस्ते प्रशस्यते।
यथेच्छया शङ्खचक्रे चोपरिष्टात् प्रकल्पयेत्।१०
अधस्तात् पृथिवी तस्य कर्तव्या पादमध्यतः।
दक्षिणे प्रणतं तद्वद् गरुत्मन्तं निवेशयेत्।११
वामतस्तुभवेल्लक्ष्मीः पद्महस्ता शुभानना।
गरुत्मानग्रतोवापि संस्थाप्यो भूतिमिच्छता।१२
श्रीश्चपुष्टिश्च कर्तव्ये पार्श्वयोः पद्मसंयुते।
तोरणञ्चोपरिष्टात्तु विद्याधरसमन्वितम्।१३
देवदुन्दुभिसंयुक्तं गन्धर्वमिथुनान्वितम्।
पत्रवल्लीसमोपेतं सिंहव्याघ्रसमन्वितम्।१४

धनुष खेटक-शंख-चक्र ये चार आयुध उनके वाम भाग में रहने चाहिए। यह आठ भुजाओं के आयुओं के धारण करने का क्रम होता

है। चतुर्भुज भगवान् विष्णु के आयुधों को धारण करने के क्रम एवं संस्थिति का वर्णन किया जाता है ! भगवान् वासुदेव के दक्षिण भागसे गदा और पद्म इन दो आयुधों को धारण कराना चाहिए। वामभाग में जो मूर्तिके प्राप्त करने की इच्छा रखता है उस भक्त को चाहिए कि वाम भागमें शंख और चक्र इन दो आयुधों को धारण कराना चाहिए। भगवान् के कृष्णावतार में गदा बाँये हाथ में ही प्रशस्त मानी गयी है। अपनी इच्छा के अनुसार ही ऊपर से शंख तथा चक्र इन दो आयुधोंकी कल्पना करनी चाहिए। उनके नीचे की ओर पाद के मध्य भाग में पृथिवी की कल्पना करनी चाहिए और दक्षिण भाग में उसी प्रकार से प्रणति करते हुए गरुड़ का निवेश करना चाहिए।८-११। भगवान् के वाम भाग में पद्म हाथों में धारण करने वाली तथा परम शुभ मुख वाली लक्ष्मी देवी विराजमान होनी चाहिए। विभूति की इच्छा रखने पुरुष को चाहिए कि भगवान् के आगे गरुड़ की भी संस्थापन करनी चाहिए। दोनों पार्श्व भागों में पद्मोंसे संयुत श्री और वृष्टि इन दोनों की संस्थापना करे। विद्याधर से संयुत ऊपर के भाग में तोरण बनावे।१२-१३। देवों की दुन्दुभि नाम वाले वाद्य से युक्त गन्धर्वों के जोड़े से समन्वित–पत्रवल्ली समोपेत—सिंह और व्याघ्र से युक्त भगवान् की स्थापना वहाँ पर करनी चाहिए।१४।

तथा कल्पलतोपेतं स्तुवद्भिरमरेश्वरैः।
एवंविधो भवेद्विष्णोस्त्रिभागेनास्य पीटिकाः।१५
नवतालप्रमाणास्तु देवदानवकिन्नराः।
अतः परं प्रवक्ष्यामि मानोन्मानं विशेषतः।१६
जालान्तरप्रविष्टानां भानूनां यद्रजःस्फुटम्।
त्रसरेणुः स विज्ञेयो वालाग्रन्तै रथाष्टभिः।१७
तदष्टकेन लिक्षा तु यूकालिक्षाष्टकैर्मता।
यवो यूकाष्टकं तद्वदष्टभिस्तैस्तदंगुलम्।१८

स्वकीयांगुलिमानेन मुखं स्याद्द्वादशांगुलम् ।
मुखमानेन कर्त्तव्या सर्वावयवकल्पना ।१९
सौवर्णीराजती वापि ताम्री रत्नमयी तथा ।
शैली दारुमयी चापि लोहसंघमयी तथा ।२०
रीतिकाधातुयुक्ता वा ताम्रकांस्यमयी तथा ।
शुभदारुमयी वापि देवतार्चा प्रशस्यते ।२१

कल्पलता से संयुक्त तथा देवगणो के द्वारा स्तुति किये जाने वाले भगवान विष्णु को स्थापित करे । इन विष्णु की तीन भाग से वहाँपर पीठिका होना चाहिए।१५। वह पीठिका जो है उसके समीप में नवताल प्रमाण वाले देव गन्धर्व और किन्नर स्थापित करे । अब इसके आगे विशेष रूप से मानोन्मान के विषय में वर्णन करता हूँ ।१६। जाल के अन्तर में प्रविष्ट भानु की किरणों के द्वारा जो स्फुट रूपसे रज के कण दिखलाई दिया करतेहैं उनको त्रसरेणु जानना चाहिए । वे बालके अग्र भाग के समान होते हैं । उन आठों की एक शिक्षा होती है । आठ शिक्षाओं की एक यूका मानी गयीहै । आठ यूकाओं का एक यव होता है और आठ यवोंका एक अंगुल हुआ करता है।१७-१८। अपने अंगुल के मान से द्वादश अंगुलों का मुख होता है । इस मुख के मान के द्वारा ही समस्त अवयों की कल्पना करनी चाहिए ।१९। भगवान् की प्रतिमायें सुवर्ण से—रजत (चाँदी)से निर्मित होती हैं तथा ताम्र और रत्नों के द्वारा निर्मित की हुई हुआ करती है । शैली अर्थात पाषाण से-दारुमयी अर्थात् विशुद्ध काष्ठसे भी निर्माण की हुई प्रतिमायें होती हैं और लोहे के संघ से पूर्ण होती हैं । रीति का अथवा धातुसे युक्त-ताम्र और कांस्य के मिश्रण से निर्मित या शुभ काष्ठ के निग्रह वाली देवता की प्रतिमा की अर्चा प्रशस्त होती है ।२०-२१।

अंगुष्ठपर्वादारभ्य: वितस्तियविदेव तु ।
गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः ।२२

आषोडशा तु प्रासादे कर्तव्या नाधिका ततः ।
मध्योत्तमकनिष्ठा तु कार्या वित्तानुसारतः ।२३
द्वारोच्छ्रायस्य यन्मानमष्टधा तत्तु कारयेत् ।
भागमेकं ततस्त्यक्त्वा परिशिष्टन्तु यद्भवेत् ।२४
भागद्वयेन प्रतिमा त्रिभागीकृत्य तत्पुनः ।
पीठिका भागतः कार्या नातिनीचा नचोच्छ्रिता ।२५
प्रतिमामुखमानेन नवभागान् प्रकल्पयेत् ।
चतुरंगुला भवेद्ग्रीवाभागेन हृदयंपुनः ।२६
नाभिस्तस्मादधः कार्या भागेनैकेन शोभना ।
निम्नत्वेविस्तरत्वे च अंगुलंपरिकीर्तितम् ।२७
नाभेरधस्तथामेढ्रं भागेनैकेन कल्पयेत् ।
द्विभागेनायतावूरू जानुनी चतुरंगुले ।२८

अपने अंगूठे के पर्व से आरम्भ करके एक वितस्ति (बिलांद या बलिश्त) पर्यन्त लम्बी और बड़ी देव प्रतिमा निर्मित करानी चाहिए । बुध पुरुष के द्वारा इस प्रमाणों से अधिक बड़ी प्रतिमा को प्रशस्त नहीं बतलाया गया है ।२२। जो प्रासाद हों इसमें षोडश से अधिक बड़ी प्रतिमा कभी नहीं करानी चाहिए। अपने वित्तके अनुसार उत्तम-मध्यम और कनिष्ठ प्रतिमा का निर्माण कराना आवश्यक है ।२३। द्वार के उच्छ्राय का जो मान है उसका आठ भाग करे । उनमेंसे एक भाग का त्याग करके जो परिशिष्ट होवे ।२४। उनमें से दो भागों के प्रमाण से प्रतिमा की रचना करानी चाहिए । फिर उसके तीन भाग करके भाग से पीठिका की रचना करे । पीठिका न तो अत्यन्त नीची होनी चाहिए और न अधिक उच्छ्रित ही होनी चाहिए ।२५। प्रतिमा के मुख मान से नौ भागों की प्रकल्पना करनी चाहिए । चार अंगुल वाली ग्रीवा होवे और फिर भाग के द्वारा हृदय की रचना होनी चाहिए ।२६। उसके अर्थात् उरःस्थल के नीचे एक भाग से परम शोभन नाभि का निर्माण

करावे। उस नाभि की भिन्नसा और विस्तार में अंगुल ही कीत्तित किया गया है। नाभि के नीचे एक भाग से मेढ़ की रचना की कल्पना करे और दो भागों के द्वारा आयत ऊरूओं एवं चार अंगुल के प्रमाण वाले जानुओं की रचना करानी चाहिए ।२७-२८।

जङ्घे द्विभागेविख्यातेपादौ च चतरंगुलौ ।
चतुर्दशांगुलस्तद्वन्मौलिरस्य प्रकीर्तितः ।२९
ऊर्द्ध्वंमानमिदं प्रोक्तं पृथुत्वञ्चनिबोधत ।
सर्वावियवमानेषु विस्तारं शृणुत द्विजाः ।३०
चतुरगुलं याटं स्यादूर्ध्वं नासा तथैव च ।
द्वयंगुलन्तु हनुर्ज्ञेयमोष्ठः स्वांगुलसम्मितः ।३१
अष्टांगुले ललाटे च तावन्मात्रे भ्रुवौ मते ।
अर्द्धांगुलाभ्रुवोर्लेखा मध्ये धनुरिवानता ।३२
उन्नताग्रा भवेत्पार्श्वे श्लक्ष्णा तीक्ष्णा प्रशस्यते ।
अक्षिणी द्वयंगुला यामे तदर्धं चैव विस्तरे ।३३
उन्नतोदरमध्ये तु रक्ता ते शुभलक्षणे ।
तारकार्धविभागेन दृष्टिः स्यात्पञ्जचभागिका ।३४
द्वयंगुलन्तु भ्रुवोर्मध्ये नासामूलमथांगुलम् ।
नासाग्रबिस्तरं तद्वत् पुटद्वयमथानतम् ।३५

दो भागों वाले जघन विख्यात हैं और दोनों पाद चार अंगुल के मान वाले होने चाहिए। उसी भाँति चौदह अंगुल का उस प्रतिमा का मौलि कीत्तित किया है। यह इसका ऊर्ध्व मान बताया गया है अब उसके पृथुत्व को भी समझ लेना चाहिए। हे द्विजगणो ! समस्त अवयवों के मानों में जो भी विस्तार होता है उसका भी श्रवण करलो। ।२९-३०। चार अँगुल का ललाट होता है उसी भाँति से ऊर्ध्व भागमें नासिका हुआ करती है। दो अँगुल का हनु (ठोड़ी) जाननी चाहिए और ओष्ठ अपने अंगुल के सम्मित होते हैं ? आठ अंगुल के ललाट में

उतनी मात्रा वाली भौंहें मानी गयी हैं । भ्रूओं की लेखा आधे अंगुल की होती हैं जो भ्रूओं मध्य में धनुष की भाँति आनत हुआ करती है । पार्श्व भाग में वह उन्नत अग्र भाग वाली होती है तथा श्लक्ष्ण और तीक्ष्ण प्रशस्त कही जाया करती है । दो अंगुल की याम वाली दो अक्षियां होनी चाहिए और विस्तार में इससे आधी होवें ।३१-३३। उन्नत उदर के मध्य भाग वाली और अन्त में रक्त वर्ण से युक्त आँखें शुभ लक्षण से सम्पन्न हुआ करती है । तारक के धर्म विभाग से दृष्टि पाँच भाग वाली होनी है ।२४। भौंहों के मध्य में दो अंगुल के प्रमाण वाला नासिका का मूल होता है और एक अंगुल नासिका के अग्रभाग का विस्तार हुआ करता है । इसी भाँति स आनन नासिका के दो पुट हुआ करते हैं ।३५।

नासापुटबिलंतद्वदर्धांगुलमुदाहृतम् ।
कपोले द्वयंगुले तद्वत् कर्णमूलाद्विनिर्गते ।३६
हन्वमंगुलं तद्वद्वितारो द्वयंगुलो भवेत् ।
अर्द्धांगुलाभ्रुवोराजी प्रणालसदृशी समा ।३७
अर्द्धांगुलसमस्तद्वदुत्तरोष्ठस्तु विस्तरे ।
निष्पावसदृशन्तद्वन्नासापुटदलं भवेत् ।३८
सृक्विकणी ज्योतिस्तुल्ये तु कर्णमूलात् षडंगुले ।
कर्णौ तु भ्रू समौ ज्ञेयौ ऊर्द्ध्वन्तु चतुरंगुलौ ।३९
द्वयंगुलौ कर्णपाश्वौं तु मात्रामेकान्तु विस्तृतौ ।
कर्णयोरुपरिष्टाच्च मस्तकं द्वादशांगुलम् ।४०
ललाटात्पृष्ठतोऽर्धेन प्रोक्तमष्टादशांगुलम् ।
षट्त्रिशाङ्गुलश्चास्य परिणाहः शिरोगतः ।४१
सकेशनिचयो यस्य द्विचत्वारिंशदंगुलः ।
केशान्तादुदनुका तद्वदंगुलानि तं षोडश ।४२

नासिका के पुट का बिल उसी भाँति से आधे अंगुल का कहा गया है । दो अंगुल के प्रमाण से युक्त दोनों कपोल होने चाहिए जो कर्णमूल से विनिर्गत हुआ करते हैं ।३६। हनु के अग्रभाग का विस्तार दो अंगुल और वह एक अंगुल होताहै । भ्रूओकी राजी आधी अंगुल वाली होती है जो प्रणाल के सदृश एवं सम हुआ करती है ।३७। विस्तारमें उसीकी भाँति उत्तरोष्ठ अर्द्ध अंगुलके समान होना चाहिए। उसी तरह से निष्पाव के समान नासापुटों का दल होता है ।३८। कर्णों के मूल से छै अंगुल परिमाण वाली ज्योति के तुल्य सृक्किणीं होनी चाहिए । और दोनों कान भ्रूहोंके समान जानने चाहिए जो ऊर्ध्वभाग में चार अंगुल प्रमाण वाले हों ।३९। कणो के पार्श्व भाग दोनों दो अंगुल के होने चाहिए और एक मात्र विस्तृत होवें । दोनों कानों के ऊपर मस्तक बारह अंगुल का होना चाहिए । ललाट से पृष्ठ भाग में इसके आधे भागसे युक्त कहा गयाहै जो अठारह अंगुल होना चाहिए । इसके शिर में होने वाला परिणाह छत्तीस अंगुल का होता है । जिसके केशोंके निश्चयके साथ परिमाण बयालीस अंगुलका होता है । केशान्त उसी भाँति हनु का सोलह अंगुल की होती है ।४०-४२।

ग्रीवा मध्यपरीणाहश्चतुर्विंशतिकांगुलः ।
अष्टांगुला भवेद् ग्रीवा पृथुत्वेन प्रशस्यते ।४३
स्तनग्रीवान्तरं प्रोक्तमेकतालं स्वयम्भुवा ।
स्तनयोरन्तर तद्वद् द्वादशांगुलमिष्यते ।४४
स्तनयोर्मण्डलं तद्वद्द्वयङ्गुलं परिकीर्तितम् ।
चूचुकौ मण्डलस्यान्तर्यवमात्रावुभौ स्मृतौ ।४५
द्वितालञ्चापि विस्तराद्वक्षःस्थलमुदाहृतम् ।
कक्षे षडंगुले प्रोक्ते बाहुमूलस्तरान्तरे ।४६
चतुर्दशांगुलौ पादावङ्गुष्ठौ तु त्र्यंगुलौ ।
पञ्चांगुलपरीणहमङ्गुष्ठाय तथोन्नतम् ।४७

अंगुष्ठकसमा तद्वदायामा स्यात्प्रदेशिनी।
तस्याः षोडशभागेन हीयते मध्यमांगुली ।४८
अनामिकाष्टभागेन कनिष्ठा चापि हीयते।
पर्वत्रयेणचांगुल्या गुल्फौ द्वयंगुलकौ मतौ ।४६

ग्रीवा के मध्य का परीणाह चौबीस अंगुल का होना चाहिए। आठ अंगुल की ग्रावा जो होती है पृथुत्व से प्रशस्त मानी गयी हैं।४३ स्वयम्भू ने स्तनो और ग्रीवाका अन्तर एक ताल कहा है। दोनों स्तनों का अन्तर उसी भांति से बारह अंगुलका होना चाहिए जो कि अभीष्ट है।४४। स्तनों का मण्डल भी उसी प्रकार से दो अंगुल का परिकीत्तित किया गया है। स्तनोंके चूचुक (घुण्ड) उस मण्डल के अन्दर दोनों यव मात्र होनी चाहिये—ऐसा कहा गया है।४५। विस्तार से वक्ष:स्थल भी द्विताल बताया गया है। बाहुओं के मूल में स्तनों के बीच में दोनों कक्षों का परिमाण छै अंगुल का कहा गया है।४६। चौदह अंगुल के दोनों पैर और तीन अंगुल के परिमाण से युक्त दोनों अंगुष्ठ होते हैं। पांच अंगुल के परिणाह से युक्त एवं उन्नत अंगुष्ठ का अग्रभाग होता है। अंगुष्ठ के ही समान उसी के समान आयाम वाली प्रदेशिनी होती है। उसके सोलहवें भाग से मध्यांगुलि हीन होती है।४७-४८। अनामिका आठ भाग से और कनिष्ठा भी हीन हुआ करती है। तीन पर्व से अंगुलियां और दोनों गुल्फ दो अंगुल के माने गये हैं।४६।

पार्ष्णिर्द्वयंगुलमात्रस्तु कलयोच्चः प्रकीर्तितः।
द्विपर्वांगुष्ठकः प्रोक्तः परीणाहश्च द्वयंगुलः।५०
प्रदेशिनी परीणाहस्त्र्यंगुलः समुदाहृतः।
कन्यसा चाष्टभागेन हीयते क्रमशो द्विजाः।५१
अंगुलैनोच्छ्रयः वार्यो ह्यंगुष्ठस्य विशेषतः।
तदर्धेन तु शेषाणामंगुलीनान्तथोच्छ्रयः।५२
जङ्घाग्रे परिणाहस्तु अंगुलानि चतुर्दश।

जङ्घामध्ये परोणाहस्तथैवाष्टादशांगुल: ।५३
जानुमध्यै परीणाह एकविंशतिरंगुल: ।
जानूच्छ्रयोऽङ्गुल: प्रोक्तो मण्डलन्तु त्रिरंगुलम् ।५४
ऊरुमध्ये परीणाहो ह्यष्टाविंशतिकांगुल: ।
एकत्रिंशोपरिष्टाच्च वृषणौ तु त्रिरंगलौ ।५५
द्वयंगुलश्च तथामेढ्रं परीणाह: षडगुलम् ।
मणिबन्धादधो विद्यात् केशरेखास्तथैव च ।५६

पार्ष्णि दो अंगुल परिमाण वाला कला मे उच्च कीर्त्तित किया गया है । अंगुष्ठ दो पर्वों वाला कहा गया है और परीणाह भी दो अंगुल वाला होता है । प्रदेशिका का परीणाह तीन अंगुल वाला कहा गया है । हे द्विजगण ! कन्यसा आठ भाग से क्रम से हीन होती है एक अंगुल का उच्छ्रय अंगुष्ठका विशेष रूपसे करना चाहिए । उसके आधे भाग से शेष अंगुलियों का उसी भाँति उच्छ्रय होना चाहिए ।५०-५२। जंघाओं के अग्रभाग में चौदह अंगुलों का परीणाह होता है । जाँघो के मध्य में परीणाह उसी भाँति अठारह अंगुल का होता है।५३। जानुओं के मध्य में जो परीणाह है इक्कीस अंगुल के परिमाण वाला है । जानुओं का उच्छ्रय एक अंगुल कहा गयाहै और मण्डल तीन अंगुलका होता है ।५०। ऊरुओं के मध्य में अट्ठाईस अंगुल के परिमाण से युक्त परीणाह होताहै । और ऊपर इकत्तीस अंगुल का होताहै । दोनों वृषण तीन अंगुल वाले हैं । दो अंगुल का मेढ्र है तथा इसका परीणाह छै अंगुल का होता है । उसी भाँति मणिबन्धसे नीचे केश रेखायें जाननी चाहिए ।५५-५६।

मणिकोशपरीणाहश्चतुरंगुल इष्यते ।
विस्तरेण भवेत्तद्वत्कटिरष्टादशांगुला ।५७
द्वाविंशति तथा स्त्रीणां स्तनौ च द्वादशांगुलौ ।
नाभिमध्ये परीणाहो द्विचत्वारिंशदंगुल: ।५८

पुरुषे पञ्चपञ्चाशत् कट्याचैव तु वेष्टनम् ।
कक्षयोरुपरिष्टात्तु स्कन्धौ प्रोक्तौ षडगुलौ ।५९
अष्टांगुलान्तु विस्तारे ग्रीवाञ्चैव विनिर्दिशेत् ।
परीणाहे तथा ग्रीवां कला द्वादश निर्दिशेत् ।६०
आयामो भुजयोस्तद्वत् द्विचत्वारिंशदंगुलः ।
कार्यन्तु बाहुशिखरं प्रमाणे षोडशांगुलम् ।६१
ऊद्ध्र्वं यद्बाहुपर्यन्तं विन्द्यादष्टांगलं शतम् ।
तथैकांगुलहीनन्तु द्वितीयं पर्वं उच्यते ।६२
बाहुमध्ये मध्ये परीणाहो भवेदष्टादशांगुलः ।
षोडशोक्तः प्रबाहुस्तु षट्कोग्रकरोमतः ।६३

मणि कोश का परीणाह चार अंगुल का अभीष्ट होता है। उसी भाँति विस्तार से कटि अठारह अंगुल की होनी चाहिए।५७। स्त्रियों की कटि बाईस अंगुल की होतीहै और दोनों स्तनों स्तन बारह अंगुल के होते हैं। नाभिके मध्य का परीणाह बयालीस अंगुल वाला अभीष्ट होता है।५८। पुरुष में पचपन और कटि वेष्टन तथा दोनों कक्षों के ऊपर छै अंगुल के स्कन्ध बताये गये हैं। विस्तार में ग्रीवा को आठ अंगुल की निर्विर्दिष्ट करनी चाहिए और परीणाह में ग्रीवा को बारह कला निर्दिष्ट करना चाहिए।५९-६०। दोनों भुजाओं का आयाम उसी भाँति से बयालीस अंगुल का होता है। बाहुशिखरको प्रमाण में सोलह अंगुल का करना चाहिए।३१। ऊर्ध्व भाग में बाहुपर्यन्त एक सौ आठ अंगुल का लाभ करना चाहिए। उसी प्रकार से एक अंगुलहीन दूसरा पर्व कहा जाता है। बाहुओं के मध्य में अठारह अंगुल का परीणाह होना चाहिए। प्रबाहु षोडश कहा गयाहै और अग्र कर षट्कला वाला माना गया है।६२-६३।

सप्तांगुलं करतलं पञ्चमध्यांगुली मता ।
अनामिकामध्यमायाः सप्तभागेन हीयते ।६४

तस्यास्तु पञ्चभागेन कनिष्ठा परिहीयते ।
मध्यमायास्तु हीना वै पञ्चभागेन तर्जनी ।६५
अंगुष्ठस्तर्जनीमूलादधः प्रोक्तस्तु तत्समः ।
अंगुष्ठपरिणाहस्तु विज्ञेयश्चतुरंगुलः ।६६
शेषाणामंगुलीनान्तु भागो भागेन हीयते ।
मध्यमामध्यभागन्तु अंगलद्वयमायतम् ।६७
यवो यवेन सर्वासान्तस्यास्तस्याः प्रहीयते ।
अंगुष्ठपर्वमध्यन्तु तर्जन्या सदृशं भवेत् ।६८
यवद्वयाधिकं तद्वदग्रपर्वं उदाहृतम् ।
पर्वार्द्धे तु नखान्विद्यादंगलीषु समन्ततः ।६९
स्निग्धं श्लक्ष्णं प्रकुर्वीत ईषद्रक्तं तथाग्रतः ।
भिन्नपृष्ठं भवेन्मध्ये पार्श्वतः कलयोच्छ्रितम् ।७०

सात अंगुल का करतल होता है और पाँच मध्यांगुली मानी गयी हैं। अनामिका मध्यमा अंगुलि से सात भाग से हीन हुआ करती है। ।६४। उसके पाँच भाग से हीन कनिष्ठा कही जाया करती है। मध्यमा से हीन तर्जनी पाँच भाग से हुआ करती है। तर्जनी के मूल से नीचे उसी के समान अंगुष्ठ कहा गया है। इस अंगुष्ठ का परीणाह तो चार अंगुल का जानना चाहिए ।६५-६६। शेष अंगुलियों का भाग, भाग से हीन होता है। मध्यमा का मध्य भाग दो अंगुल आयत वाला होता है ।६७। सबका यव, यव से उस-उसका प्रहीयित हुआ करता है। अंगुष्ठ के पर्व का मध्य तर्जनी के ही सदृश हुआ करता है। उसी भाँति अग्रपर्व गो यव से अधिक उदाहृत किया गया है। अंगुलियों को भी ओर पूर्वार्द्ध में नखों को जानना चाहिए ।६८-६९। अग्र भाग में थोड़ा रक्त-स्निग्ध और श्लक्ष्ण करना चाहिए। मध्य में भिन्न पृष्ठ और पार्श्व में कला से उच्छ्रित होना चाहिए ।७०।

तत्रैव केशवल्लीयं स्कन्धोपरि दशाङ्गुला ।
स्त्रियः कार्यास्तु तन्वङ्गः स्तनोरुजङ्घनाधिकाः ।७१
चतुर्दशांगुलायाममुदरं नाम निर्दिशेत् ।
नानाभरणसम्पन्नाः किञ्चित्श्लक्ष्णभुजास्ततः ।७२
किञ्चिद्दीर्घं भवेद्ववक्त्रमलकावलिरुत्तमा ।
नासाग्रीवा ललाटञ्च सार्द्धं मात्रं त्रिरंगुलम् ।७३
अध्यर्द्धांगुलविस्तारः शस्यतेऽधरपल्लवः ।
अधिकनेत्रयुग्मन्तु चतुर्भागेन निर्दिशेत् ।७४
ग्रीवावलिश्च कर्तव्या किञ्चिदर्धांगुलोच्छ्रया ।
एव नारीषु सर्वासु देवानां प्रतिमासु च ।
तव चालमिदं प्रोक्त लक्षण पापनाशनम् ।७५

यहाँ पर केशों की वल्ली स्कन्धों के ऊपर दश अंगुल परिमाण वाली होनी चाहिए। स्त्रियों का विग्रह तनु अर्थात् कृश अंगों वाला करना चाहिए। इनके तो केवल स्तन ऊरु और जंघाएँ ही अधिक परिपुष्ट होने चाहिए ।७१। चौदह अंगुल के आयाम वाला उदर निर्दिष्ट करना चाहिए। नाना आभरणों से सम्पन्न और कुछ श्लक्ष्ण भुजाओंसे युक्त स्त्रियों विग्रह होना चाहिए। कुछ दीर्घ वक्त्र होवें और उस पर उत्तम अलकी होनी चाहिए। नासा-ग्रीवा और ललाट साढ़े तीन अंगुल विस्तार से समन्वित प्रशस्त हुआ करता है। अधिक दोनों नेत्रों का युग्म चतुर्भाग से विनिर्दिष्ट करना चाहिए। अर्द्धाङ्गुल वाली ग्रीवा की की अवली करनी चाहिए। इसी प्रकार से समस्त नारियों में और देवों की सब प्रतिमाओं में रचना करानी चाहिए। आपको यह अत्यधिक लक्षण बतला दिया है। यह पापों का नाश करने वाला है ।७२-७५।

=×=

१२२-देवाकार प्रमाण वर्णन (१)

अत: परं प्रवक्ष्यामि देवाकारान् विशेषत: ।
दशताल: स्मृतो रामो बलिर्वैरोचनिस्तथा ।१
वराहो नारसिंहश्च सप्ततालस्तु वामन: ।
मत्स्यकूर्मौ निर्दिष्टो यथाशोभं स्वयम्भुवा ।२
अत: परं प्रवक्ष्यामि रुद्राद्याकारमुत्तमम् ।
स पीनोरुभुजस्कन्धस्तप्तकाञ्चनसप्रभ: ।३
शुक्लोऽर्करश्मिसंघातश्चन्द्राङ्कितजटेविभु: ।
जटामुकुटधारी च द्वयष्टवर्षाकृतिश्च स: ।४
बाहुवारणहस्ताभो वृत्तजङ्घोरुमण्डल: ।
ऊर्द्ध्वकेशश्च कर्तव्यो दीर्घायतविलोचन: ।५
व्याघ्रचर्मपरीधान: कटिसूत्रत्रयान्वित: ।
हारकेयूरसम्पन्नो भुजङ्गाभरणस्तथा ।६
बाहवश्चापि कर्तव्या नानाभरणभूषिता: ।
पीनोरुगण्डफलक: कुण्डलाभ्यामलंकृत: ।७

महामहर्षि वर श्री सूतजी ने कहा—इससे आगे मैं विशेष रूप से देवों के आकार का वर्णन करूँगा । राम दशताल तथा बलि और वैरोचनि कहा गया है ।१। वाराह और नरसिंह और बामन सप्त ताल बताये गये हैं । स्वयम्भू ने मत्स्य और कूर्म इन दोनों को शोभा के अनुसार हीं निर्दिष्ट किया है । इसके आगे रुद्रादि के उत्तम आकार को मैं बतलाऊँगा । यह पीन ऊरु एवं भुजाओं वाले हैं तथा उनका स्कन्ध भी पीन हैं एवं तपाये हुए सुवर्ण के तुल्य प्रभासे वह सुसम्पन्न हैं ।२-३ शुक्ल वर्ण वाले—अर्क (सूर्य) रश्मियों का संघात—चन्द्र से अङ्कित जटा वाला—विभु—जटा एवं मुकुटके धारण करने वाले और सोलह वर्ष की अवस्था से युक्त पुरुष की आकृति के समान आकृति वाले हैं । हाथी की सूँड की आभा वाली बाहुओं वाले—वृत्त जंघा एवं ऊरुओं

के मण्डल से युक्त-ऊर्ध्व भाग की ओर केशों वाले तथा दीर्घ एवं आयत नेत्रों वाला स्वरूप करना चाहिए। व्याघ्र के चर्म से परीधान करने वाले—कटि में तीन सूत्रों से संयुत हार, केयूर और अन्य सुन्दर आभरणों से सम्पन्न—सर्पों के आभूषणों से शोभित करे। और ऐसे बहुत से अनेक आभरणों से विभूषित विरचित करे। पीन ऊरु गण्ड फलक वाला तथा कुण्डलों से समलंकृत बनावे।४-७।

आजानुलम्बबाहुश्च सौम्यमूर्तिः सुशोभनः।
खेटकं बामहस्ते तु शङ्खञ्चैव तु दक्षिणे।८
शक्ति दण्डत्रिशूलञ्च दक्षिणेषु निवेशयेत्।
कपालं वामपार्श्वे तु नागं खट्वांगमेव च।९
एकश्च वरदो हस्तस्तथाक्षवलयोऽपरः।
वैशाखस्थानकं कृत्वा नृत्याभिनयसंस्थितः।१०
नृत्यन्दशभुजः कार्यो गजचर्मधरस्तथा।
तथा त्रिपुरदाहे च बाहवः षोडशैव तु।११
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गं घण्टातत्राधिकाभवेत्।
तथा धनुः पिनाकञ्च शरो विष्णुमयस्तथा।१२
चतुर्भुजोऽष्टबाहुर्वा ज्ञानयोगेश्वरो मतः।
तीक्ष्णनासाग्रदशना करालवदना महान्।१३
भैरवः शस्यते लोके प्रत्यायतनसंस्थितः।
न मूलायतने कार्यो भैरवस्तु भयङ्करः।१४

जानु पर्यन्त लम्बी बाहुओं से युक्त-सौम्य मूर्ति सुन्दर शोभा से संयुत-वाम हस्त में खेटक धारण करने वाले तथा दाहिने हाथ में शंख को धारण किये हुए एवं पक्षियों में शक्ति—दण्ड और त्रिशूल को निवेशित करना चाहिए। एक हाथ तो वर प्रदान करने वाली मुद्रामें होना चाहिए और दूसरा अक्षों के वलय वाला होवे। वैशाख स्थानक करके नृत्यों के अभिनय करने में संस्थित होना चाहिए। नृत्य करते हुए दश भुजाओं वाला एवं गजके चर्म को धारण करने वाले रुद्रदेव का स्वरूप

निर्मित करे तथा त्रिपुरासुर के दाह करने में सोलहों बाहुयें व्यस्त हों। वहाँ पर शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग हों और अधिका घण्टा होना चाहिए। तथा पिनाक धनु ओर विष्नुमय शर होना चाहिए। चतुर्भुज अथवा आठ बाहुओं वाला ज्ञान योगके ईश्वर को माना गया है। तीक्ष्ण नासा तथा अग्र दशन वाले—कराल वदनसे युक्त—महान् आर प्रत्यायतन में में संस्थित भैरव लोक में परम प्रशस्त कहे गये हैं। मूलायतन में भैरव भगवान् कभी भी भयङ्कर नहीं निर्मित करना चाहिए।८-१४।

नारसिंह वराहो वा तथान्येऽपि भयङ्कराः।
नाधिकांगा न हीनांगा कर्तव्या देवताः क्वचित्।१५
स्वामिनं घातयेन्न्यूना करालवदना तथा।
अधिका शिल्पिनं हन्यात् कृशा चैवार्थनाशिनी।१६
कृशोदरी तु दुर्भिक्षं निर्मांसा धननाशिनी।
वक्रनासा तु दुःखाय सङ्क्षिप्तांगी भयङ्करी।१७
चिपिटा दुःखशोकाय अनेत्रा नेत्रनाशिनी।
दुःखदा हीनवक्त्रा तु पाणिपादकृशा तथा।१८
हीनांगा हीनजङ्घा च भ्रमोन्मादकरी नृणाम्।
शुष्कवक्त्रा तु राजानं कटिहीना च या भवेत्।१९
पाणिपादविहीनो यो जायते मारको महान्।
जङ्घानु विहीना च शत्रु कल्याणकारिणी।२०
पुत्रमित्रविनाशाय हीनवक्षःस्थला तु या।
सम्पूर्णावयवा या तु आयुर्लक्ष्मी प्रदा सदा।२१

नारसिंह अथवा वराह तथा अन्य भी भयंकर होते हैं किन्तु कभी भी और कहीं पर भी देवों की प्रतिमाओं को अधिक अङ्गों वाली नहीं बनाना चाहिए।१५। जो कोई देवमूर्ति न्यून अङ्गों वाली होती है अथवा कराल मुख से युक्त होती है वह स्वामी का घात किया करती है। जो अधिक अङ्गों वाली अथवा कृश होती हैं वह उसके निर्माण

करने वाले शिल्पकार का हनन किया करती हैं और अर्थ का विनाश करने वाली होती है ।१६। जो कोई देवता की प्रतिमा कृश उदर से युक्त निर्मित कराई जावे तो वह दुर्भिक्ष करने वाली हुआ करती है तथा मांस से हीन यदि देव प्रतिमा निर्मित कराई जावे तो उसका यह बुरा फल होता है कि यह धन का धन का विनाश किया करती हैं। वक्र नासिका वाली देव प्रतिमा दुःख के ही लिए हुआ करती है। जिस प्रतिमा के अङ्ग संक्षिप्त हों तो वह भय करने वालों हुआ करती है। जो मूर्त्ति चिपिटा होती है वह दुःख और शोक के लिए ही हुआ करती है। जिसके नेत्र नहीं होते हैं अर्थात् नेत्रों की रचना न की गई हो वह देव प्रतिमा नेत्रोंके विनाश करने वाली हुआ करती है। हीनमुख वाली प्रतिमा की रचनाका यह दुष्परिणाम होताहै कि वह सर्वदा दुःख प्रदान किया करती है तथा हाथ और चरणों मे कृश प्रतिमा हो हीनांगा—हीनजंघा हो या मनुष्यों को भ्रम एवं उन्माद करने वाली हुआ करती है। शुष्क मुख वाली और कटि से हीना जो होती है वह राजा को नष्ट किया करती है। पाणि और पाद से जो विहीन होकर समुत्पन्न होता है वह महान् मारक हुआ करता है। जो जंघा और जानु से विहीन होती है तो वह शत्रुके कल्याण करने वाली होती है। जो हीन वक्षःस्थल वाली होती है वह पुत्र और मित्र के विनाश के लिये हुआ करती है। जो सम्पूर्ण अवयवों से युक्त होती है वह सदा आयु और लक्ष्मी के प्रदान करने वाली होती है ।१७-२१।

एवं लक्षणमासाद्य कर्तव्यः परमेश्वरः ।
स्तूयमानः सुरैः सर्वैः समन्ताद्दर्शयेद्भवम् ।२२
शक्रेण नन्दिना चैव महाकालेन शङ्करम् ।
प्रणता लोकपालास्तु पार्श्वे तु गणनायकाः ।२३
नृत्यद्भृंगारिटिश्चैव भूतवेतालसंवृताः ।
सर्वे हृष्टास्तु कर्तव्याः स्तुवन्तः परमेश्वरम् ।२४

गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणामथाप्सरोगुह्यकनायकानाम् ।
गणैरनेकैः शतशो महेन्द्रै मुँनिप्रवीरैरपि नम्यमानम् ।२५
धृताक्षसूत्रैः शतशः प्रवालपुष्पोपहारप्रचयन्ददद्भिः ।
संस्तूयमानं भगवन्तमीड्यं नेत्रत्रयेणामरमर्त्यपूज्यम् ।२६

इस प्रकार से लक्षणों की प्राप्ति करके परमेश्वर की प्रतिमा की रचना करनी चाहिए । भगवान भव को इस प्रकार से दर्शित कराना चाहिए कि वह सब ओर से समस्त सुरगणों के द्वारा स्तूयमान हो रहे हैं ।२२। इन्दु के द्वारा—नन्दी और महाकाल के द्वारा शंकर की स्तुति की जा रही हो । भगवान् के पार्श्व में सब गण नायक और लोकपाल प्रणत हो रहे हों । भगवान् की प्रतिमाको इस प्रकारसे निर्मित कराना चाहिए कि उनके समक्ष में भृङ्गी और रीटि नृत्यकर रहे हों तथा भूतों और वेतालों से संवृत हों । सब परम प्रसन्न होते हुए परमेश्वर की स्तुति करने वाले हों । गन्धर्व–विद्याधर–किन्नर–अप्सरायें—गुह्यक–नायक इनके अनेक सैकड़ों गणों के द्वारा—महेन्द्रों के द्वारा— और मुनि प्रवरों के द्वारा नम्यमान होवे । सैकड़ों अक्ष सूत्रों के धारण करने वाले प्रवाल—पुष्पों के उपहार के प्रचयों के समर्पित करने वालों के द्वारा स्तूयमान–तीन नेत्रों से युक्त देवगण और मनुष्यों के परम पूज्य ईड्य भगवान् की प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए ।२३-२६।

==

१२३-देवाकार प्रमाण वर्णन (२)

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि अर्धनारीश्वरं परम् ।
अर्धार्धं देवदेवस्य नारीरूपं सुशोभनम् ।१
ईशार्धे तु जटाभागो बालेन्दुकलया युतः ।

उमार्द्धे चापि दातव्यौ सीमन्ततिलकावुभौ ।२
वासुकिर्दक्षिणे कर्णे वामे कुण्डलमादिशेत् ।
बालिका चोपरिष्टात्तु कपालं दक्षिणेकरे ।
त्रिशूलं चापि कर्तव्यं देवदेवस्य शूलिनः ।३
वामतो दर्पणं दद्यादुत्पलन्तु विशेषतः ।४
वामबाहुश्च कर्तव्यः केयूरवलयान्वितः ।
उपवीतञ्च कर्तव्यं मणिमुक्तामयन्तथा ।५
स्तनभारं तथार्द्धे तु वामे पीनं प्रकल्पयेत् ।
परार्घ्यमुज्ज्वलंकुर्याच्छ्रोण्यर्धेतु तथैव च ।६
लिङ्गार्द्धमूर्ध्वगं कुर्यात् व्यालाजिनकृताम्बरम् ।
वामेलम्बपरीधानं कटिसूत्रत्रयान्वितम् ।७

महामहर्षि प्रवर श्रीसूतजी ने कहा—अब परम अर्ध नारीश्वर भगवान् के विषय में कहते हैं। देवों के देव के अर्ध भाग से सुशोभन नारी का रूप ।१। ईश के अर्ध भाग में जटा का भाग है और बाल-चन्द्र की कला से युक्त है तथा उमादेवी का जो अर्ध भाग है उसमें सीमन्त और तिलक ये दोनों देने के योग्य हैं। भगवान् शिव के दक्षिण कर्ण में वासुकि सर्प शोभित हो रहे हैं और वाम कर्ण में कुण्डल धारण किया हुआ है। ऊपर में बालिका है दक्षिण कर में कपाल धारण किये हुए हैं। देवों के देव भगवान शूली के कर में त्रिशूल धारण कराना चाहिए। वाम भाग में दर्पण और विशेष रूप से उत्पल धारण करावे। ।१-४। वामबाहु को केयूर और वलय से समन्वित करे। तथा मणि मुक्ताओं से परिपूर्ण उपवीत भी धारण कराना चाहिए ।५। वाम अर्ध भाग में पीन स्तन का भार प्रकल्पित करे तथा श्रोण्यर्ध में उसी भाँति उज्ज्वल परार्ध्य को करना चाहिए। व्याल और अजिन से अम्बर कर के ऊर्ध्वङ्ग लिङ्गार्ध करे तथा वाम भाग के कटि सूत्र सूत्र त्रय से सम-न्वित लम्बे परीधान को धारण कराना चाहिए ।६-७।

नानारत्नसमायेतं दक्षिणे भुजंगान्वितम् ।
देवस्य दक्षिणं पादं पद्मोपरि सुसंस्थितम् ।८
कञ्चिदर्धे तथा वामं भूषितं नूपुरेण तु ।
रत्नैर्विभूषितान् कुर्य्यादंगुलीष्वंगुलीयकान् ।९
सालक्तकं तथापादं पार्वत्या दर्शयेत्सदा ।
अर्धनारीश्वरस्येदं रूपमस्मिन्नुदाहृतम् ।१०
उमामहेश्वरस्यापि लक्षणं शृणुत द्विजाः ।
संस्थानन्तु तयोर्वक्ष्ये लीलाललितविभ्रमम् ।११
चतुर्भुजं द्विबाहुं वा जटाभारेन्दुभूषणम् ।
लोचनत्रयसंयुक्तमुमैकस्कन्धपाणिनम् ।१२
दक्षिणेनोत्पलं शूलं वामेकुचभरेकरम् ।
द्वीपिचर्मपरीधानं नानारत्नोपशोभितम् ।१३
सुप्रतिष्ठं सुवेषञ्च तथार्धेन्दुकृताननम् ।
वामे तु संस्थिता देवी तस्योरौ बाहुगूहिता ।१४

दक्षिण भाग में अनेक प्रकार के रत्नों से समुपेत एवं भुजंगों से युक्त शोभा को सम्पादित करे और देवों के देव को दक्षिण चरण पद्म के ऊपर संस्थित करे ।८। अर्द्ध भाग में वाम को अर्थात् बाँये चरण को को नूपुर से समलंकृत करे रत्नों से विभूषित अंगुलियों में धारण कराना चाहिए ।९। सदा पार्वती देवी के उस पाद को अलक्तक के सहित दर्शित कराना चाहिए । जिसमें अर्ध नारीश्वर प्रभु को यह रूप उदाहृत किया गया होवे ।१०। हे द्विजगण ! अब आप उमा महेश्वर प्रभु के भी स्वरूप एवं लक्षण का श्रवण कीजिए । उनके लीला से ललित विभ्रम वाले संस्थान को मैं सम्यक् प्रकार से वर्णित करूँगा । चार भुजाओं से संयुत अथवा दो बाहु वाले रूप से समन्वित हों—जटा-जूट के भार और चन्द्रमा के भूषण के सहित—तीन लोचन वाले तथा उमाके कन्धे पर एक हाथ रखे हुए भगवान् शिवका वह रूपहै जो एक

ही में उमा महेश्वर दोनों का होता है ।११-१२। दक्षिण कर से उत्पल को ग्रहण करने वाले तथा शूल को लिये हुए और वाम कर से स्तन के भार को सम्हाले हुए—द्वीपी के चर्म का परिधान धारण करने वाले एवं अनेक रत्नों से समुपशोभित—सुन्दर प्रतिष्ठा से युक्त—सुन्दर वेष वाले तथा अर्द्ध चन्द्र से मुख को करने वाले रूप से युक्त भगवान् भव का स्वरूप है। उनके उनके ऊरु पर वाम भाग में बाहुओं से गृहित उमा देवी विराजमान हैं ।१३-१४।

शिरोभूषणसंयुक्तै रलकैर्ललितानना ।
सबालिका कर्णवती ललाटतिलकोज्वला ।१५
मणिकुण्डलसंयुक्ता कर्णिकाभरणा क्वचित् ।
हारकेयूरबलबहुला हरवक्त्रावलोकिनी ।१६
वामांसन्देवदेवस्य स्पृशन्ती लीलया ततः ।
दक्षिणन्तु बहिः कृत्वा बाहुं दक्षिणतस्तथा ।१७
स्कन्धं वा दक्षिणे कुक्षौ स्पृशन्त्यंगं लजैः क्वचित् ।
वामे तु दर्पणं दद्यादुत्पलं वा सुशोभनम् ।१८
कटिसूत्रत्रयंचैव नितम्बे स्यात्प्रलम्बकम् ।
जया च विजया चैव कार्तिकेयविनायकौ ।१९
पार्श्वयोर्दर्शयेत्तत्र तोरणे गणगुह्यकान् ।
मालाविद्याधरांस्तद्वद्वीणावानप्सरोगणः ।२०
एतद्रूपमुमेशस्य कर्तव्यं भूतिमिच्छता ।
शिवनारायणं वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम् ।२१

वह देवी शिरोभूषणों से समन्वित अलकों के द्वारा अत्यन्त ललित आनन वाली है। बालिका (बाली) से सहित कानों से शोभित ललाट पर तिलक धारण करने से परमोज्जल-मणियों से जटित कुण्डलों वाली —किसी समय में कर्णिका के आभरण से भूषित हार तथा केयूरों के धारण करने से बहुल-भगवान् हर के मुख का अवलोकन करने वाली—

लीला से देवों के भी देव भगवान् शिव के वाम अंश का स्पर्श करने वाली—दक्षिण बाहु को बाहिर करके दक्षिण की ओर से दक्षिण कुक्षि में अंगुलियों से स्कन्ध का स्पर्श करती हुई श्रीउमादेवी विराजमानहैं। इनके वाम हस्त में दर्पण समर्पित करना चाहिए अथवा परम शोभा से सुसम्पन्न उत्पल देना चाहिये।१५-१८। उन देवी के नितम्ब भाग में कटि का सूत्र त्रय होना चाहिए तथा प्रलम्ब का होना भी अत्यावश्यक है। जया और विजया तथा स्वामी कार्तिकेय और विघ्न विनायक ये सब उन महादेवी के दोनों पार्श्व भागों में वहाँ पर तोरण में गणों और गुह्यकों को दिखलावें—इसी प्रकार से माला—विद्याधरों को तथा अप्सराओं के समुदाय को दिखलाके प्रदर्शित करने चाहिये।१९-२०। जो मनुष्य वैभव की इच्छा रखने वाला है उसको चाहिए कि इस तरह का उपरिवर्णित महेश्वर भगवान् का स्वरूप बनावे। अब मैं इस प्रकार से शिव नारायण के मिश्रित स्वरूपका वर्णन करूँगा जो समस्त प्रकार के महापापों का विनाश करने वाला है।२१।

वामार्धे माधवं विद्याद् दक्षिणे शूलपाणिनम्।
बाहुद्वयञ्च कृष्णस्य मणिकेयूरभूषितम्।२२
शङ्खचक्रधरं शान्तमारक्तांगुलिविभ्रमम्।
चक्रस्थाने गदां वापि पाणौ दद्याद् गदाभृतः।२३
शङ्खञ्चैवेतरे दद्यात् कट्यर्धे भूषणोज्वलम्।
पीतवस्त्रपरीधानं चरणं मणिभूषणम्।२४
दक्षिणार्धे जटाभारमर्धेन्दुकृतभूषणम्।
भुजंगहारवलयं वरदं दक्षिणे करम्।२५
द्वितीयञ्चापि कुर्वीत त्रिशूलवरधारिणम्।
व्यालोपवीतसंयुक्तं कट्यर्धं कृत्तिवाससम्।२६

मणिरत्नैश्च संयुक्तं पादं नागविभूषितम् ।
शिवनारायणस्यैव कल्पयेद्रूपमुत्तमम् ।२७
महावराहं वक्ष्यामि पद्महस्तं गदाधरम् ।
तीक्ष्णदंष्ट्राग्रघोणास्यं मेदिनीवामकूर्परम् ।२८

श्री शिवनारायणात्मक स्वरूप में वाम भाग में भगवान् माधव को जानना चाहिये और दक्षिण भाग में शूल हाथ में धारण करने वाले शिव का स्वरूप समझ लेवे । भगवान् श्रीकृष्ण के दोनों बाहुओं को मणियों से जटित केयूरों से समलंकृत करे ।२२। भगवान् माधव का स्वरूप शंख और चक्र को धारण करने वाला—परम शान्त-आरक्त अंगुलों के विभ्रभ से संयुक्त हो—भगवान् गदाधर के कर में चक्र के स्थान में गदा को ही धारण करा देवे । दूसरे कर में शंख को धारण कराना चाहिये भगवान् के कटि का अर्धभाग भूषण से समुज्ज्वल बनावे । पीतवर्ण वाले वस्त्र का उनका परिधान करावे और मणियोंसे जटित भूषण से युक्त चरण प्रदर्शित करे । इस तरह से वाम भाग के ईश्वर भगवान् का स्वरूप प्रदर्शित कराना चाहिये । अब दक्षिण अर्ध भाग में भगवान् शिव के स्वरूप का प्रदर्शन होना चाहिये । वह शिव का स्वरूप जटाओं के भार से युक्त है और अर्ध चन्द्र के द्वारा भूषण किये हुए हैं भुजङ्गों के हार एवं वलय वाला है और जिस शिव स्वरूप का दक्षिण कर बर के प्रदान करने वाला है । दूसरे स्वरूप को भी करना चाहिये जो त्रिशूल वर का धारण करने वाला—व्यालों के उप वीत से समन्वित है तथा कटि का अर्धभाग कृत्ति (गज चर्म) के वस्त्रसे समावृत है । मणि रत्नों के द्वारा पाद संयुक्त हैं तथा नागों से विभूषित हैं । इस प्रकार से शिव और नारायण के मिश्रित उत्तम स्वरूप की कल्पना करनी चाहिये । अब मैं महा वराहके स्वरूप का वर्णन करूँगा महा वराह का स्वरूप पद्म हाथ में धारण करने वाला है—गदा के धारण करने वाला—तीक्ष्ण दंष्ट्रा से युक्त अग्र घोणा (नासिका) और अस्य (मुख) वाला है जिसके वाम कूर्पर पर मेदिनी है ।२३-२८।

दंष्ट्राग्रेणोद्धृतां दान्तां धरणीमुत्पलान्विताम् ।
विस्मयोत्फुल्लवदनामुपरिष्टात्प्रकल्पयेत् ।२९
दक्षिणं कटिसंस्थन्तु करं तस्याः प्रकल्पयेत् ।
कूर्मोपरि तथा पादमेकं नागेन्द्रमूर्धनि ।३०
संस्तूयमानं लोकेशैः समन्तात्परिकल्पयेत् ।
नारसिंहन्तु कर्तव्यं भुजाष्टकसमन्वितम् ।३१
रौद्रं सिंहासनं तद्वत् विदारितमुखेक्षणम् ।
स्तब्धपीनसटाकर्णं दारयन्तन्दितेः सुतम् ।३२
विनिर्गतान्त्रजालञ्च दानवं परिकल्पयेत् ।
वमन्तं रुधिरं घोरं भ्रुकुटीवदनेक्षणम् ।३३
युध्यमानश्च कर्तव्यः क्वचित्करणबन्धनैः ।
परिश्रान्तेन दैत्येन तर्ज्यमानो मुहुर्मुहुः ।३४
दैत्यं प्रदर्शयेत्तत्र खंगखेटकधारिणम् ।
स्तूयमानं तथा विष्णुं दर्शयेदमराधिपैः ।३५

उस महा वराह के स्वरूप में धरणी की कल्पना भी करनी चाहिए जो दाढ़ के अग्रभाग से उद्धृत हो—उत्पलों से समन्वित हो—विस्मय से उत्फुल वदन वाली हो, ऐसी धारणी की ऊपर के भाग में रचना करावे उस महा वराहकी प्रतिमा का दक्षिण कर कटि पर स्थित हो—ऐसी कल्पना करे। उस महा वराह का एक चरण कूर्म के ऊपर और एक पाद नागेन्द्र के मस्तक पर स्थित होने की कल्पना करनी चाहिए ।२९-३०। सब ओर से लोकपालों के द्वारा संस्तूयमान होनेवाले स्वरूप को परिकल्पित करे। नरसिंह भगवान्के शरीरको आठ भुजाओं से समन्वित कल्पित करना चाहिये ।३१। उनका महान् रौद्र स्वरूप वाला सिंहासन होता है और उसी तरहसे विदारित मुख एवं नेत्र होते हैं। स्तब्ध पुष्ट सटाओं से युक्त कर्णों वाला वह स्वरूप होता है जो दिति के पुत्र हिरण्य कशिपु के हृदय को विदीर्ण करता हुआ विद्यमान

है ।३२। उस दानव के आँतों का जाल विदीर्ण करने से बाहिर निकला हुआ हो ऐसा ही स्वरूप परिकल्पित करना चाहिये जो कि अत्यधिक घोर रुधिर का वमन कर रहा हो जो भृकुटि–मुख और नेत्रों से वह रुधिर निगलने वाला हो ।३३। कहीं किसी स्थल पर ऐसा भी स्वरूप कल्पित किया जा सकता है जो करण बन्धनों के द्वारा युद्ध करता हुआ हो और दैत्य परिश्रान्त होकर बारम्बार तर्जन किया जाने वाला हो। युद्ध करने की अवस्था में दैत्य को खड्ग और खेटक का धारण करने वाला प्रदर्शित करना चाहिये। उस समय में यह भी प्रदर्शित करे कि अमराधिप गणों के द्वारा विष्णु स्तवन किये जा रहे हों ।३४-३५।

तथा त्रिविक्रमं वक्ष्ये ब्रह्माण्डक्रमणोल्वणम् ।
पादपार्श्वे तथा बाहुमुपरिष्टात्प्रकल्पयेत् ।३६
अधस्ताद्वामनं तद्वत्कल्पयेत्सकमण्डलुम् ।
दक्षिणे छत्रिकां दद्यान्मुखं दीनं प्रकल्पयेत् ।३७
भृङ्गारधारिणं तद्वद्बलिं तस्य च पार्श्वतः ।
बन्धनञ्चास्य कुर्वन्तं गरुडन्तस्य दर्शयेत् ।३८
मत्स्यरूपं तथा मात्स्यं कूर्मं कूर्माकृतिं न्यसेत् ।
एवंरूपस्तु भगवान् कार्यो नारायणो हरिः ।३९
ब्रह्माकमण्डलुधरः कर्तव्यः स चतुर्मुखः ।
हंसारूढः क्वचित्कार्य्यः क्वचिच्च कमलासनः ।४०
वर्णतः पद्मगर्भाभश्चतुर्बाहुः शुभेक्षणः ।
कमण्डलुं वामकरे स्रुवं हस्ते तु दक्षिणे ।४१
वामे दण्डधरं तद्वत् स्रुवञ्चापि प्रदर्शयेत् ।
मुनिभिर्देवगन्धर्वैः स्तूयमानं समन्ततः ।४२

अब भगवान् त्रिविक्रम के विषय में वर्णन किया जाता है जो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के क्रमण करने में अत्यन्त ही उल्वण थे। पादके पार्श्व में तथा ऊपर बाहु की कल्पना करनी चाहिए। नीचे की ओर उसी

भाँति वामन देव की कमण्डलुके सहित वर्त्तमान होनेकी कल्पना करना करनी चाहिये । उन वामन देव प्रभु के दाहिने हाथ में एक छोटा सा छत्र देवे और उनका मुख दीमता से परिव्याप्त ही कल्पित करे । उनके पार्श्व भाग में शृङ्गार के धारण करने वाले राजा बलि को प्रदर्शित करना चाहिए । वामन देव को इस दैत्यों के राजा बलि का बन्धन करते हुए ही दर्शित करना चाहिए तथा उनके समीप में ही गरुड़ को भी दिखलावे ।३६-३८। वहीं पर मत्स्य रूपी मात्स्य एवं कूर्म की आकृति से युक्त कूर्मका भी न्यास करना चाहिए । इस प्रकार के स्वरूप से सुसम्पन्न भगवान् नारायण हरिका स्वरूप वहाँ पर करना आवश्यक है ।३६। चारों मुखों से युक्त कमण्डलु के धारण करने वाले ब्रह्माजी को वहाँ पर दिखलाना चाहिये । किसी स्थल पर उन ब्रह्मा को हँसपर समारूढ़ और कहीं पर कमल के आसन पर विराजमान दिखलावे ।४० ब्रह्मा का वर्ण कमल की आभा के सदृश-चार भुजाओं से युक्त-शुभ नेत्रों वाला—बाँये हाथ में कमण्डलु लिये हुये तथा दाहिने हाथ में स्रुव धारण करने वाला दिखलाना चाहिए ।४१। उसी भाँति वाम हस्त में दण्ड को धारण करने वाला और स्रुव का धारी प्रदर्शित करे । सभी ओर मुनिगण—देवगण और गन्धर्वों के द्वारा स्तूयमान होने वाला श्री वामन देव को दिखाना चाहिये ।४२।

कुर्वाणमिव लोकांस्त्रीन् शुक्लाम्बरधरं विभुम् ।
मृगचर्मधरञ्चापि दिव्ययज्ञोपवीतिनम् ।४३
आज्यस्थालि न्यसेत्पार्श्वे वेदांश्च चतुरः पुनः ।
वामपार्श्वेऽस्य सावित्रीं दक्षिणे च च सरस्वतीम् ।४४
अग्रे च ऋषयस्तद्वत्कार्य्याः पैतामहे पदे ।
कार्तिकेयं प्रवक्ष्यामि तरुणादित्यसंप्रभम ।४५
कमलोदरवर्णाभं कुमारं सुकुमारकम् ।
दण्डकैश्चीरकैर्युक्तं मयूरवरवाहनम् ।४६

स्थापयेत् स्वेष्टनगरेभुजान्द्वादश कारयेत् ।
चतुर्भुजः खर्वटे स्याद्वने ग्रामे द्विबाहुकः ।४७
शक्तिः पाशस्तथा खड्गः शूलं तथैव च ।
वरदश्चैकहस्तः स्यादथचाभयदो भवेत् ।४८
एते दक्षिणतो ज्ञेयाः केयूरकटकोज्वलाः ।
धनुः पताकामुष्टिश्च तर्जनी तु प्रसारिता ।४९

श्री वामन देव का स्वरूप वहाँ पर ऐसा प्रदर्शित कर मानो वे तीनों लोकों की रचना कर रहे हों । शुक्ल वर्ण वाले वस्त्रों से धारी-विभु मृग के चर्म के धारण करने वाले—दिव्य यज्ञोपवीत से सम्पन्न वामन देव के स्वरूप को दिखाना आवश्यक है । उनके समीप में आज्य की स्थाली रक्खे और चारों वेदोंको भी स्थापितकरे । इनके वामपार्श्व में सावित्री देवी और दक्षिण पार्श्व में सरस्वती देवी की उपस्थिति दिखानी चाहिए ।४३-४४। आगे की ओर उन पितामह के पद में उसी तरहसे ऋषिगण की रचना करनी चाहिए । अब हम स्वामि कार्त्तिकेय के तरुण आदित्य के समान प्रभा वाले स्वरूप का वर्णन करते हैं ।४५। कार्त्तिकेय प्रभु का वर्ण कमल के उदर की प्रभा के तुल्य है । और वह कुमार अत्यन्त ही सुकुमार हैं कुमार का स्वरूप दण्डक एवं चीरकों से समायुक्त है एवं श्रेष्ठ मयूर के वाहन वाला है ।४६। अपने अभीप्सित नगर में उनकी स्थापना करे तथा द्वादश भुजाओं की कल्पना करे । खर्बट में चार भुजाओं वाला स्वरूप-वन तथा ग्राम में दो बाहुओं वाला स्वरूप प्रदर्शित करना चाहिये । शक्ति-पाश-खड्ग-शर-शूल—ये आयुध हाथों में धारण करने वाला स्वरूप हो और एकहाथ वरदान देने वाला एवं एक हाथ अभय के देने वाला होना चाहिये । ये सब दक्षिण भाग में जानने चाहिये—केयूर कटकोज्वल, धनुष, पताका, मुष्टि तथा तर्जनी प्रसारित होनी चाहिये ।४७-४९।

खेटकं ताम्रचूडञ्च वामहस्ते तु शस्यते ।

द्विभुजस्य करे शक्तिर्वामे स्यात् कुक्कुटोपरि ।५०
चतुर्भुजे शक्तिपाशो वामतो दक्षिणे त्वसि ।
वरदोभयदोवापि दक्षिण: स्यात्तु रीयक: ।५१
विनायकं प्रवक्ष्यामि गजवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
लम्बोदरं शूर्पकर्णं व्यालयज्ञोपवीतिनम् ।५२
ध्वस्तकर्णं बृहत्तुण्डमेकदंष्ट्रं पृथूदरन् ।
स्वदन्तं दक्षिणकरे उत्पलञ्चापरे तथा ।५३
मोदकं परशुञ्चैव वामत: परिकल्पयेत् ।
बृहत्वात् क्षिप्तवदनं पीनस्कन्धाङ्घ्रिपाणिकम् ।५४
युक्तन्तु ऋद्धिबुद्धिभ्यामधस्तान्मूषकान्वितम् ।
कात्यायन्या प्रवक्ष्यामि रूपं दशभुजं तथा ।५५
त्रयाणामपि देवानामनुकारानुकारिणीम् ।
जटाजूटसमायुक्तामर्द्धेन्दुकृतलक्षणाम् ।५६

खेटक-ताम्रचूड़ ये दोनों वाम हस्त में प्रशस्त होते हैं । जो दो भुजाओं वाले स्वरूप के वाम हस्त में कुक्कुट के ऊपर में शक्ति धारण करावे । चतुर्भुज स्वरूप में वाम भाग में शक्ति और पाश तथा दक्षिण हाथ में असि धारण करावे । वर देने वाला और अभय का दान करने वाला भी दक्षिण हाथ ही तुरीयक (चतुर्थ) होना चाहिये ।५०-५१। अब श्री विनायक के स्वरूप का वर्णन मैं करताहूँ जिनका गजके समान मुख है और तीन लोचन हैं । भगवान् विनायक लम्बे उदर वाले शूपके सदृश कर्णों से युक्त और व्यालों के यज्ञोपवीत को धारण करने वालेहैं, ध्वस्त कर्णों वाले—बृहत् तुण्ड से युक्त—एक दाँतसे संयुक्त-पृथु (विशाल) उदर वाले हैं । यह अपने दाहिने हाथ से आस्वाद लेने वाले और दूसरे हाथ में उत्पल रखने वाले हैं।५२-५३। मोदक और परशु का ग्रहण करना वाम हस्तसे कल्पित करना चाहिये, बृहत् होनेके कारणसे क्षिप्त वदन वाले और पीन (परिपुष्ट) स्कन्ध चरण और पाणि (हाथ) वाले

है तथा ऋद्धि और बुद्धि दोनों से युक्त हैं। इनके नीचे मूषक वाहनके रूप में स्थितहैं अतः उससे समन्वित हैं। इसके उपरान्त मैं भगवती का कात्यायनी देवी के विषय में वर्णन करता हूँ—इनका स्वरूप दो भुजाओं वाला है।५४-५५। यह देवी तीनों बड़े देवों के अनुकार का अनुकरण करने वाली हैं। इनकी भी आकृति जटा जूटों से समायुक्त है तथा अर्ध चन्द्र के द्वारा किये हुये लक्षणों से युक्त है।५६।

लोचनत्रयसम्पन्नां पद्मेन्दुसदृशाननाम् ।
अतसीपुष्पसङ्काशां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम् ।५७
नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम् ।
सुचारुदशनान्मद्वत्पीनोन्नतपयोधराम् ।५८
त्रिभङ्गस्थानसंस्थानां महिषासुरमर्दिनीम् ।
त्रिशूलं दक्षिणे दद्यात् खड्गं चक्रं तथैव च ।५९
तीक्ष्ण बाणं तथा शक्तिं वामतोऽपि निबोधत ।
खेटकं पूर्णचापञ्च पाशमंकुशमेव च ।६०
घण्टां वा परशुञ्चापि वामतः सन्निवेशयेत् ।
अधस्तान्महिषन्तद्वद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत् ।६१
शिरश्छेदोद्भवं तद्वद्दानवं खड्गपाणिनम् ।
रक्तरक्तीकृताङ्गं च रक्तविस्फारितेक्षणम् ।६२
वेष्टित नागपाशेन भ्रुकुटीभीषणाननम् ।
वमद्रुधिरवक्त्रञ्च देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत् ।६३

कात्यायनी देवी तीनों लोचनों से सुसम्पन्न-पद्म तथा चन्द्रमा के समान मुख वाली अतसी के पुष्प के तुल्य स्वरूप से युक्त-सुन्दर प्रतिष्ठा से समन्वित एवं रुचिर लोचनों वाली हैं नूतन यौवन से युक्त-सम्पूर्ण आभरणों से बिभूषित-सुन्दर दाँतों वाली और उसी तरह पीन एवं उन्नत पयोधरों से युक्त हैं।५७-५८। तीन भङ्गों से युक्त स्थानों के संस्थान वाली और महिषासुर के मर्दन करने वाली हैं। इनके दक्षिण

कर में त्रिशूल धारण कराने और खड्ग एवं चक्र भी देवे। तीक्ष्ण बाण तथा शक्ति को वाम कर में धारण कराना चाहिये। इनके अतिरिक्त वाम भाग में खेटक-पूर्णचाप-पाशु-अंकुश-घण्ट-परशु ये भी सब निवेशित करने चाहिए। इन देव के चरणों के नीचे के भाग में दो शिरों वाले महिषासुर को भी प्रदर्शित करे।५९-६१। शिर के छेदन होने से समुत्पन्न रक्त से रक्तीकृत अङ्गों वाला—रक्त से विस्फारित नेत्रों से संयुत-खड्ग हाथ में धारण किये हुये उस दानव का स्वरूप दिखाना चाहिये।६२। नाग पाश से वेष्टित-भ्रकुटी से संयुत भीषण आनन वाला—बहते हुये रुधिर से युक्त मुख वाला देवी का वाहन सिंह भी देवी की प्रतिमा के साथ ही समीप में प्रदर्शित करना आवश्यक है। ।६३।

देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरि स्थितम्।
किञ्चिदूर्ध्वं तथा वाममंगुष्ठं महिषोपरि।६४
स्तूयमानञ्च तद्रूपममरैः सन्निवेशयेत्।
इदानीं सुरराजस्य रूपं वक्ष्ये विशेषतः।६५
सहस्रनयनं देवं मत्तवारणसंस्थितम्।
पृथूरुवक्षोवदनं सिंहस्कन्धं महाभुजम्।६६
किरीटकुण्डलधरं पीवरोरुभुजेक्षणम्।
वज्रोत्पलधरं तद्वन्नानाभरणभूषितम्।६७
पूजितं देवगन्धर्वैरप्सरोगणसेवितम्।
छत्रचामरधारिण्यः स्त्रियः पार्श्वे प्रदर्शयेत्।६८
सिंहासनगतञ्चापि गन्धर्वगणसंयुतम्।
इन्द्राणीं वामतश्चास्य कुर्य्यादुत्पलधारिणीम्।६९

देवी का दक्षिण पाद सिंह के ऊपर स्थित होता है। उससे कुछ ऊपर वाम पादका अंगुष्ठ महिषासुरके ऊपर समवस्थित होना चाहिए। ।६४। ऐसा देवी का स्वरूप अमर गणों के द्वारा संस्तूयमान होता हुआ

सन्निवेशिय करना चाहिये । अब इसके उपरान्त मैं सुरराज महेन्द्र देव के स्वरूप का वर्णन करता हूँ—इन्द्रदेव का स्वरूप सहस्र नयनों वालाहै तथा मत्त गजेन्द्र पर समारूढ़-पृथु (विशाल) ऊरु, भुज और वक्षस्थल से समन्वित है । सिंहके समास स्कन्धों वाला—महान् भुजाओं से युक्त किरीट एवं कुण्डलोंके धारण करने बाला-पीवर ऊरू,भुजा एव ईक्षणों वाला है । वज्र एवं उत्पल का धारी तथा उसी भाँति अनेक प्रकार के आभरणों से विभूषित—देवों और गन्धर्वों से पूजित—अप्सरा गणों के द्वारा सेवित इन्द्र का स्वरूप कराकर उनके पार्श्व में छात्र एवं चमरोंके धारण करने वाली स्त्रियों को प्रदर्शित करनी चाहिए ।६५-६६। इन्द्र देव को सिहासन पर संस्थित-गन्धर्व गण के द्वारा सेवित निवेदित करे और इनके वाम भाग में उत्पलों के धारण करने वाली इन्द्राणी को कल्पित करना चाहिये ।६६।

१२४—नानादेव प्रतिमा प्रमाण वर्णन

प्रभाकरस्य प्रतिमामिदानीं शृणुत द्विजाः ।
रथस्थं कारयेद्देवं पद्महस्तं सुलोचनम् ।१
सप्ताश्वञ्चैकचक्रञ्च रथं तस्य प्रकल्पयेत् ।
मुकुटेन विचित्रेण पद्मगर्भसमप्रभम् ।२
नानाभरणभूषाभ्यां भुजाभ्यां धृतपुष्करम् ।
स्कन्धस्थे पुष्करे ते तु लीलयैव धृते सदा ।३
चोलकच्छन्नवपुषं क्वचिच्चित्रेषु दर्शयेत् ।
वस्त्रयुग्मसमोपेतं चरणौ तेजसावृतौ ।४
प्रतिहारौ च कर्तव्यौ पार्श्वयोर्दण्डिपिङ्गलौ ।
कर्तव्यं खड्गहस्तौ तौ पार्श्वयोः पुरुषावुभौ ।५
लेखनीकृतहस्तञ्च पार्श्वे धातारमव्ययम् ।

नानादेवगणैर्युक्तमेवं कुर्याद्दिवाकरम् ।६
अरुणः सारथिश्चास्य पद्मिनीपत्रसन्निभः ।
अश्वौ सुवलयग्रीवावन्तस्थौ तस्य पार्श्वयोः ।७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—हे द्विजगणो ! अब आप लोग प्रभाकर की प्रतिमाके स्वरूपादिके विषय का श्रवण करिये । सूर्यदेवको रथ में विराजमान-पद्म हाथ में धारण किये हुए एवं सुन्दर लोचनों वाला प्रदर्शित करना चाहिये ।१। सूर्य का रथ सात अश्वों से समन्वित एवं एक चक्रवाला परिकल्पित करे । शिखर एक विचित्र मुकुटसे समन्वित और पद्म के मध्य भाग के समान प्रभा वाला करे ।२। अनेक आभरण और भूषाओं से युक्त भुजाओं के द्वारा पुष्करों को धारण करने वाले और सदा लीला से ही स्कन्धों पर पुष्करों को धारण किये हुये इन्द्रदेव का स्वरूप है । कहीं पर चित्रोंमें चोलक से संवृत इन्द्रका स्वरूप दर्शित करना चाहिये । दोनों चरण तेज से समावृत होवे और दोनों पार्श्वभागोमें दण्डी और पिङ्गल ये दोनों प्रतिहारी करने चाहिये । इन दोनों पुरुषों हाथोंमें खड्गधारा नियोजित करने चाहिये । पार्श्व में ही हाथमें लेखनी धारण करने वाले अव्यय धाता को दर्शित करावे । इस प्रकार से नाना के देवगणों से युक्त भगवान् भुवन भगवान् भुवन भास्कर को प्रदर्शित करना चाहिये ।३-६। इस दिवाकर-सारथि अरुण है जो पद्मिनी पत्र के सदृश है । इसके पार्श्वों में सुवलय ग्रीवा वाले अन्तस्थ दो अश्व होने चाहिये ।७।

भुजङ्गरज्जुभिर्बद्धाः सप्ताश्वा रश्मिसंयताः ।
पद्मस्थं वाहनस्थं वा पद्महस्तं प्रकल्पयेत् ।८
वह्नेस्तु लक्षणं वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदम् ।
दीप्तं सुवर्णवपुषमर्धचन्द्रासने स्थितम् ।९
बालार्कसदृश तस्य वदनञ्चापि दर्शयेत् ।
यज्ञोपवीतिनं देवं लम्बकूर्चधरं तथा ।१०

कमण्डलुं वामकरे दक्षिणे त्वक्षसूत्रकम् ।
ज्वालावितानसंयुक्तमजवाहनमुज्वलम् ।११

कुण्डस्थं वापि कुर्वीत मूर्ध्नि सप्तशिखान्वितम् ।
तत्र यमं प्रवक्ष्यामि दण्डपाशधरं विभुम् ।१२

महामहिषमारूढं कृष्णाञ्जनचयोपमम् ।
सिंहासनगतञ्चापि दीप्ताग्निसमलोचनम् ।१३
महिषश्चित्रगुप्तश्च कराला किंकरास्तथा ।
समन्ताद्दर्शयेत्तस्य सौम्यासौम्यान् सुरासुरान् ।१४

रश्मियों से (बागडोरों से) संयत सात उनके अश्व हैं जो कि भुजंगों की रज्जुओं से बद्ध हैं। अरुण देव को पद्म पर स्थित-वाहन के ऊपर समारूढ़ और पद्म हाथमें ग्रहण करनेवाले परिकल्पित करना चाहिये ।८। अब वह्निदेव के लक्षण का वर्णन करूँगा जो सम्पूर्ण कामनाओं के फल को प्रदान करने वाले हैं। इनका स्वरूप परमदीप्ति से युक्त-सुवर्ण के तुल्य वपु वाला अर्द्ध चन्द्र के आसन पर समवस्थित है ।९। बाल सूर्य के सदृश इनका मुख प्रदर्शित करे। इन देव को यज्ञोपवीत धारी तथा लम्बी दाढ़ी से संयुत दिखलाना चाहिये ।१०। इनके वाम कर में कमण्डलु---दक्षिण हस्त में अक्षसूत्र---ज्वालाओं के वितान से संयुत और उज्ज्वल एवं अज के वाहन वाला कल्पित करना चाहिये ।११। मस्तक पर सात शिखाओं से संयुक्त इन अग्निदेव को कुण्ड में समवस्थित करे। इसके अनन्तर दण्ड और पाश के धारण करने वाले विभु यमदेव के स्वरूप का वर्णन करूँगा ।१२। महान् विशाल महिष के ऊपर समारूढ़-कृष्ण अञ्जन के समुदाय के समान काले वर्ण वाला-सिंहासन पर स्थित-दीप्त अग्नि के तुल्य लोचनों वाला यमराज का स्वरूप है ऐसा ही दर्शित करना चाहिये। महिष और चित्रगुप्त ये इस देव के परम कराल किङ्कर हैं जिनको कि इनके चारों ओर दिखावे।

और अन्य सौम्य स्वरूप वाले असुरोंको यमराज के सब ओर दिखलाना चाहिये ।१३-१४।

राक्षसेन्द्रं तथा वक्ष्ये लोकपालञ्च नैर्ऋतम् ।
नरारूढं महामायं रक्षोभिर्बहुभिर्वृतम् ।१५
खड्गहस्तं महानीलं कज्जलाचलसन्निभम् ।
नरयुक्तविमानस्थं पीताभरणभूषितम् ।१६
वरुणञ्च प्रवक्ष्यामि पाशहस्तं महाबलम् ।
शङ्खस्फटिकवर्णाभं सितहाराम्बरावृतम् ।१७
झषासनगतं शान्तं किरीटाङ्गदधारिणम् ।
वायुरूपं प्रवक्ष्यामि धूम्रन्तु मृगवाहनम् ।१८
चित्राम्बरधरं शान्त युवानं कुञ्चितभ्रुवम् ।
मृगाधिरूढं वरदं पताकाध्वजसंयुतम् ।१९
कुबेरञ्च प्रवक्ष्यामि कुण्डलाभ्यामलंकृतम् ।
महोदरं महाकायं निध्यष्टकसमन्वितम् ।२०
गुह्यकैर्बहुभिर्युक्तं धनव्ययकरैस्तथा ।
हारकेयूररचितं सिताम्बरं मदा ।२१
गदाधरञ्च कर्तव्यं वरदं मुकुटान्वितम् ।
नरयुक्तविमानस्थं एवं नीत्या च कारयेत् ।२२

अब उसी तरह से राक्षसों के स्वामी और लोकपाल नैर्ऋत के विषय में वर्णन करूँगा । यह नर पर समारूढ—महती माया से सम्पन्न बहुत से राक्षसों से संवृत—अत्यन्त नील वर्ण वाले-हाथ में खड्ग को धारण किये हुये-काजल के पर्वत के समान स्थित—नर से युक्त विमान में स्थित हैं तथा पीतवर्णाके आभरणोंसे समन्वित इनका स्वरूप होताहै ।१५-१६। अब वरुण देव के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—यह हाथ में पाशको धारण करने वाले-महान् बलवान्—शंख और स्फटिक मणि के वर्ण के तुल्य वर्णा वाले श्वेत हार एवं वस्त्रों से समावृत रूप

(मत्स्य) के आसन पर स्थित—परम शान्त और किरीट तथा अङ्गदों के धारण करने वाले हैं। अब वायुदेव के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—वायु का वर्ण धूम्र होता तथा मृग के वाहन पर विराजमान रहा करते हैं। इनका स्वरूप विचित्र वस्त्रों के धारण करने वाला—परम शान्त–युवावस्था से युक्त कुञ्चित भ्रूओं वाला—मृग पर समाधिरूढ़-वरदान प्रदान करने वाला-पताका तथा ध्वजा से युक्त होता है–ऐसाही इनका स्वरूप प्रदर्शित करना चाहिए इसके अनन्तर कुबेर के स्वरूप का वर्णन करता हैं—यह कुण्डलों से अलंकृत होते हैं–इनका स्वरूप महान् उदर वाला—महान काया वाला—आठ निधियों से समन्वित-बहुत—से गुह्यकों से युक्त जो कि धन के व्यय करने वाले हैं—गदा के धारण करने वाला-वर देने वाला मुकुट से संयुत और नरों से युक्त विमान में समवस्थित होता है। इसी रीति से कुबेर के स्वरूप को प्रदर्शित करना चाहिये।१७-२२।

तथैवेशं प्रवक्ष्यामि धवलं धवलेक्षणम्।
त्रिशूलफणिगं देवं त्र्यक्षं वृषगतं प्रभुम्।२३

मातृणां लक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः।
ब्रह्माणी ब्रह्मसदृशी चतुर्वक्त्रा चतुर्भुजा।२४
हंसाधिरूढा कर्तव्या साक्षसूत्रकमण्डलुः।
महेश्वरस्य रूपेण तथा माहेश्वरी मता।२५

जटामुकुटसंयुक्ता वृषस्था चन्द्रशेखरा।
कपालशूलखट्वांगवरदाढ्या चतुर्भुजा।२६
कुमाररूपा कौमारी मयूरवरवाहना।
रक्तवस्त्रधरा तावच्छूलशक्तिधरा मता।२७
हारकेयूरसम्पन्ना कृकवाकुधरा तथा।
वैष्णवी विष्णुसदृशा गरुडे समुपस्थिता।२८
चतुर्बाहुश्च वरदा शङ्खचक्रगदाधरा।

सिंहासनगता वापि बालकेन समन्विता ।२९
वाराहीञ्च प्रवक्ष्यामि महिषोपरि संस्थिताम् ।
वराहसदृशी देवी शिरश्चामरधारिणी ।३०

इसी प्रकार से भगवान् ईश के स्वरूप का मैं अब वर्णन करता हूँ—शिव का स्वरूप एकदम धवल होता है तथा इनके नेत्र भी श्वेत हुआ करते हैं। शिव हाथ में त्रिशूल होता है—तीन नेत्रों से युक्त—वृषवाहन पर स्थित—ऐसे यह प्रभुदेव होते हैं—ऐसा ही इनका स्वरूप दर्शित करावे। अब इसके अनन्तर मातृगण के स्वरूप का वर्णन किया जाता है और इनके स्वरूप को यथारीति से आनुपूर्वश बतलाया जाता है—यह ब्रह्माणी-ब्रह्मा के सदृश-चार मुखों वाली—चार भुजाओं से युक्त हंस पर समाधिरूढ-अक्षसूत्र एवं कमण्डलु से युक्त ही इनका स्वरूप बतलाना चाहिए। भगवान् महेश्वर के रूप के साथ उसी भाँति माहेश्वरी को भी माना गया है। यह भी जटा और मुकुट से संयुत-वृषपर विराजमान-मस्तक पर चन्द्र को धारण करने वाली—चारों भुजाओं में क्रमशः कपाल—शूल—खट्वांग और वरदान रहा करते हैं—ऐसी ही चार भुजाओं वाली हैं।२३-२६। मयूर के श्रेष्ठ वाहन कौमारी कुमार के स्वरूप से सुसम्पन्नहै—रक्त वस्त्रों को धारण करती हुई शूल और शक्ति को धारण करने वाली इनको माना गया है।२७। हार तथा केयूरों के धारण करती हुई कुक्कवाकु धारिणी है—सिंहासन पर स्थित रहती हुई बालक से समन्वित है। चार बाहुओं वाली—वरदान प्रदान करती हुई शंख, चक्र और गदाधारिणी है। महिष पर समारूढ—वराह के सदृश यह देवी चिरकाल तक मस्तक पर चामरों को धारण करती हैं।२८-३०।

गदाचक्रधरा तद्वद्दानवेन्द्रविनाशिनी ।
इन्द्राणीमिन्द्रसदृशीं वज्रशूलगदाधराम् ।३१
गजासनगतां देवीं लोचनैर्बहुभिर्वृताम् ।
तप्तकाञ्चनवर्णाभां दिव्याभरणभूषिताम् ।३२

तीक्ष्णखड्गधरां तद्वद् वक्ष्ये योगेश्वरीमिमाम् ।
दीर्घजिह्वामूर्ध्वकेशीमस्थिखण्डैश्च मण्डिताम् ।३३

दंष्ट्राकरालवदनां कुर्याच्चैव कृशोदरीम् ।
कपालमालिनी देवीं मुण्डमालाविभूषिताम् ।३४

कपालं वामहस्ते तु मांसशोणितपूरितम् ।
मस्तिष्काक्तञ्चबिभ्राणां शक्तिकां दक्षिणे करे ।३५

गृध्रस्था वायसंस्थां वा निर्मांसां विनतोदरी ।
कशालवदनातद्वत्कर्तव्या सा त्रिलीचना ।३६

अब महिष के ऊपर विराजमाना बराह के ही तुल्य स्वरूप वाली वाराही गदा और चक्र के धारण करने वाली है और दानवेन्द्रों को उसी तरह से बिनाश करती है। इन्द्र के सदृश बज्र शूल और गदा को धारण करने वाली इन्द्राणी है ।३१। गज के आसन पर स्थित-बहुत से लोचनों से युक्त यह देवी होती है—तप्त सुवर्ण के समान वर्ण की आभा से युक्त—दिव्य आभरणों से समन्वित एवं विभूषित-तीक्ष्ण खड्ग को धारण करने वाली अब इस योगेश्वरी का मैं वर्णन करूँगा। यह योगेश्वरी देवी लम्बी जिह्वा वाली—ऊर्ध्व की ओर जाने वाले केशों से संयुक्त और अस्थि खण्डों से मण्डित है ।३२-३३। दंष्ट्राओं के द्वारा कराल वदन वाली इस कृश उदर से सम्पन्न देवी को दर्शित करना चाहिए। कपाल मालिनी देवी मुण्डों की मालाओं से शोभित है। यह मांस और शोणित से परिपूर्ण कपाल को अपने बांये हाथ से ग्रहण किया करती है तथा वह मस्तिष्क से अक्त होता है एवं दक्षिण कर में शक्ति को धारण करने वाली है। गृध्र पर स्थित—वायस पर संस्थित-बिना मांस वाली—विशेष रूप से नत उदर से युक्त—कराल मुख वाली और उसी भाँति इसके स्वरूप को तीन लोचनों वाला करना चाहिये ।३४-३५-३६।

चामुण्डा बद्धघण्टा वा दीपिचर्मधरा शुभा ।
दिग्वासाः कालिका तद्वद्रासभस्था कपालिनी ।३७
सुरक्तपुष्पाभरणं वर्धनी ध्वजसंयुता ।
विनायकञ्च कुर्वीत मातृणामन्तिके सदा ।३८
वीरेश्वरश्च भगवान् वृषारूढो जटाधरः ।
वीणाहस्तत्रिशूली च मातृणामग्रतो भवेत् ।३९
श्रियं देवीं प्रवक्ष्यामि नवे वयसि संस्थिताम् ।
सुयौवनां पीतगण्डां रक्तौष्ठीं मुञ्चितभ्रुवम् ।४०
पीनोन्नतस्तनतटां मणिकुण्डलधारिणीम् ।
सुमण्डलं मुखं तस्याः शिरः सीमन्तभूषणम् ।४१
पद्मस्वस्तिकशङ्खैर्वा भूषितां कुण्डलालकैः ।
कञ्चुकाबद्धगात्री च हारभूषौ पयोधरौ ।४२

चामुण्डा-बद्धघण्टा-द्वीपि (गज के) चर्म को धारण करने वाली अर्थात् नग्न—कालिका-रासभ (गधा) पर संस्थित—कपालों के धारण करने वाली—सुन्दर रक्त वर्ण वाले पुष्पों के आभरणों से समलंकृत-वर्धनी—और ध्वज से संयुक्त कपाल मालिनी आदि का स्वरूप होता है। मातृ गणों के समीप में सदा भगवान् विनायक को अवश्य ही समवस्थित करना चाहिए। और वीरेश्वर भगवान्—वृष पर समारूढ़—जटाजूट के धारण करने वाले—हाथ में वीणा रखने वाले—त्रिशूलधारी उन मातृ-गणों के आगे विराजमान होने चाहिए।३७-३८-३९। अब हम श्री देवी के स्वरूप के विषय में वर्णन करेंगे जो कि नूतन वय में संस्थित हैं—सुन्दर यौवन से सम्पन्न—पीतगण्डों वाली रक्त ओष्ठों से संयुक्त—कुञ्चित भौंहों वाली—पीन एवं उन्नत स्तनतट से युक्त—मणि जटित कुण्डलों के धारण करने वाली हैं। उन श्री देवी का मुख सुन्दर मण्डल वाला है तथा शिर सीमन्त भूषण युक्त है।४०-४१। पद्म, स्वास्तिक, शंखों के द्वारा अथवा कुण्डल और अलकों के द्वारा भूषित है। कञ्चुकी

से आवृद्ध गात्रों वाले—हार की भूषा से भूषित श्री देवी के दोनों पयोधर हैं ।४२।

नागहस्तोपमौ बाहू केयूरकटकोज्ज्वलौ ।
पद्मं हस्ते प्रदातव्यं श्रीफलं दक्षिणे भुजे ।४३
मेखलाभरणां तद्वत्तप्तकाञ्चनसप्रभाम् ।
नानाभरणसम्पन्नां शोभनाम्बरधारिणीम् ।४४
पार्श्वस्ता: स्त्रिय: कार्याश्चामरव्यग्रपाणय: ।
पद्मासनोपविष्टा तु पद्मसिंहासनस्थिता ।४५
करिभ्यांस्नाप्यमानासौ भृङ्गाराभ्यामनेकश: ।
प्रक्षालयन्तौ करिणौ भृङ्गाराभ्यां तथापरौ ।४६
स्तूयमाना च लोकेशैस्तथा गन्धर्वगुह्यक: ।
तथैव यक्षिणी कार्या सिद्धासुरनिषेविता ।४७
पार्श्वयो: कलशा: तस्यास्तोरणे देवदानवा: ।
नागाश्चैव तु कर्तव्या: खड्गखेटकधारिण: ।४८
अधस्तात्प्रकृतिस्तेषां नाभेरूर्ध्वन्तु पौरुषी ।
फणाश्च मूर्ध्नि कर्तव्या: द्विजिह्वाबहव: समा: ।४९

नाग (गज) के हस्त (सूंड) के सदृश दोनों बाहुए हैं जो केयूर और कटक आभूषणों से समुज्वल हैं । इनके हाथ में पद्म अर्पित करे तथा दक्षिण कर में श्री फल देना चाहिए । तप्त काञ्च के प्रभा वाली मेखला के आभरण से युक्त—अनेक भूषणों से संयुत—परम शोभन अम्बरों के धारण करने वाली भगवती श्री देवीका स्वरूप होना चाहिए । उनके पार्श्व भाग में चामरों से युक्त हाथों वाली स्त्रियों का नियोजन आवश्यक है । वह देवी पद्म के आसन पर उपविष्ट हैं तथा पद्मों के द्वारा निर्मित सिंहासन पर समवस्थित हैं । वह देवी करियोंके द्वारा स्नाप्यमान होती हैं । अनेक बार भृङ्गारों के द्वारा क्षालन करते हुए दोनों करी हैं तथा दूसरे भृङ्गारों से क्षालन करने वाले हैं । लोकपालों के द्वारा

एवं गन्धर्वों और गुह्यकों के द्वारा वह देवी स्तूयमान होती हुई प्रदर्शित करे। इसी भाँति से सिद्धों और असुरों के द्वारा निषेवित यक्षिणी को भी दिखलाना उचित होता है। उसके दोनों पार्श्व भागों में दो कलश संस्थापित होने चाहिए तथा तोरण में देव और दानवों को स्थित करे। खड्ग और खेटक के धारण करने वाले नागों की भी स्थिति करनी चाहिए। उनके नीचे के भाग में प्रकृति होवे तथा नाभि के ऊर्ध्व भाग में पौरुषी होनी चाहिए, मूर्द्धा में फणा दर्शित करे और सब द्विजिह्वा (सर्प) प्रदर्शित करने चाहिये।४३-४९।

पिशाचा राक्षसाश्चैव भूतवेतालजातय:।
निर्मांसाश्चैव ते सर्वे रौद्रा विकृतरूपिण:।५०
क्षेत्रपालश्च कर्तव्यो जटिलो विकृताननः।
दिग्वासा जटिलस्तद्वं श्वगोमायुनिषेवित:।५१
कपालं वामहस्ते तु शिर: केशै: समावृतम्।
दक्षिणे शक्तिकां दद्यादसुरक्षयकारिणीम्।५२
अथात: सम्प्रवक्ष्यामि द्विभुजं कुसुमायुधम्।
पार्श्वे चाश्वमुखं तस्य मकरध्वजसंयुतम्।५३
दक्षिणे पुष्पबाणञ्च वामे पुष्पमयं धनु:।
प्रीति: स्याद्दक्षिणे तस्य भोजनोपस्करान्विता।५४
रतिश्च वामपार्श्वेतु शयनं सारसान्वितम्।
पटश्च पटहश्चैव खर: कामातुरस्तथा।५५
पार्श्वतो जलवापी च वनं नन्दनमेव च।
सुशोभनश्च कर्तव्यो भगवान कुसुमायुध:।
संस्थानमीषद्वक्त्रं स्याद्विस्मितवक्त्रम्।५६
एतदुद्देशत: प्रोक्तं प्रतिमालक्षणं मया।
विस्तरेण न शक्नोति बृहस्पतिरपि द्विजा:!।५७

पिशाच–राक्षस–भूत–वेताल जाति वाले—ये सब निर्मांस, रौद्र और विकृत रूप वाले होने चाहिये। जटाधारी तथा विकृत आनन वाला क्षेत्रपाल भी वहाँ पर स्थापित करके दर्शित करे जो दिशाओं के वसन वाला (नग्न) जटिल कुत्तों और गोमायु (गीदड़) आदि से ऐसा निषेवित हो कि उसके साथ रुला रहे हों। उसके वाम हस्त में कपाल हो तथा उसका शिर केशों से समावृत होवे। दाहिने हाथ में असुरों के क्षय के करने वाली शक्तिका को देवे—ऐसा ही उनका स्वरूप दिखलावे। इसके अनन्तर अब दो भुजाओं वाले कुसुमायुध कामदेव को वर्णित किया जाता है। उसके पार्श्व में मकरध्वज से संयुत अश्वमुख को संस्थित करना चाहिए।५०-५३। उसके दाहिने हाथ में पुष्पों का बाण और वाम हस्त में पुष्पमय धनुष होना चाहिए। उसके दक्षिण हस्त में भोजन के उपस्करों से समन्वित प्रीति होनी चाहिए। वाम पार्श्व में रति और सार सन्वित शयन–पट–पटह–खर जो काम से आतुर हो दिखाना चाहिए। उसके पार्श्व में जल की वापी और नन्दन वन दिखावे। इस प्रकार से भगवान कुसुमायुध को सुन्दर शोभा से समन्वित प्रदर्शित करना चाहिए। थोड़ा-सा तिरछा मुस्कराता हुआ मुख कल्पित करे। यह मैंने उद्देश्य से कुसुमायुध आदि समस्त देवों की प्रतिमाओं का लक्षण बतला दिया है। इन प्रतिमाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन करने की सामर्थ्य तो हे द्विजगण ! देवों के आचार्य बृहस्पति में भी नहीं है।५४-५७।

१२५–पीठिका लक्षण वर्णन

पीठिकालक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः।
पीठोच्छ्राय यथवच्च भागान् षोडश कारयेत्।१
भूमावेकः प्रविष्टः स्याच्चतुर्भिर्जगतीमता।

वृत्तोभागस्तथैकः स्याद्वृतः पटलभागतः ।२
भागैस्त्रिभिस्तथा कण्ठः कण्डपट्टस्त्रिभागतः ।
भागाभ्यामूर्ध्वपट्टश्च शेषभागेन पट्टिका ।३
प्रविष्टं भागमेकैकं जगतीयावदेवतु ।
निर्गमस्तु पुनस्तस्य यावद्धं शेषपट्टिका ।४
वारिनिर्गमनार्थन्तु तत्र कार्य्यः प्रणालकः ।
पीडिकानान्तुसर्वासामेतत्सामान्यलक्षणम् ।५
बिशेषान् देवताभेदान् श्रृणुध्वं द्विजसत्तमाः ! ।
स्थण्डिला वाथ वापि वा यक्षी बेदी च मण्डला ।६
पूर्णचन्द्रा च वज्रा च पद्मावार्धशशिस्तथा ।
त्रिकोणादशमीतासांसंस्थानं वा निबोधत: ।७

महर्षि प्रवर श्री सूत जी ने कहा—अब मैं यथावत् आनुपूर्वी से पीठिका का लक्षण बतलाऊँगा। पीठिका की यथावत् ऊँचाई और इसके सोलह भागों को कराना चाहिए ।१। उनमें एक भाग भूमि में प्रविष्ट होवे और चार भागों के द्वारा यह जगतीतल माना गया है तथा एक भाग वृत्त होना चाहिए और वृत्त पटल ये समागत होवें ।२। तीन भागों के द्वारा कण्ठ तीन भाग से कण्ठ पट्ट—दो भागों से ऊर्ध्व यह और शेष भाग से पट्टिका करे ।३। जितनी भी जगती है उसमें एक-भाग प्रविष्ट है। फिर उसका जितना निर्गम है वह शेष पट्टिका है ।४। जल के निर्गमन के लिये वहाँ पर प्रणालक करना आवश्यक है। समस्त पीठिकाओं का यह सामान्य लक्षण है ।५। हे द्विजश्रेष्ठगण ! अब विशेष देवताओं के भेदों का श्रवण करलो । स्थण्डिला-वापी-यक्षी-देवी-मण्डल—पूर्ण चन्द्रा-वज्रा-पद्मा-अर्ध शशि-त्रिकोणा—दशमी है। अब उनके संस्थान को समझ लेना चाहिये ।६-७।

स्थण्डिला चतुरस्रातु वर्जिता मेखलादिभिः ।
वापी द्विमेखला ज्ञेया यक्षीचैवं त्रिमेखला ।८

चतुरस्रायता वेदी न तां लिङ्गेषु योजयेत् ।
मण्डलावर्तुलायातु मेखलाभिर्मणप्रिया ।९
रक्ता द्विमेखलामध्ये पूर्णचन्द्रा तु सा भवेत् ।
मेखलात्रसंयुक्ता षडश्रावज्रिका भवेत् ।१०
षोडशास्रा भवेत्पद्मा किञ्चिद्ध्रस्वा तु मूलतः ।
तथैव धनुषाकारा सार्द्धचन्द्रा प्रशस्यते ।११
त्रिशूलसदृशी तद्वत् त्रिकोणा ह्यूदुर्ध्वतो मता ।
प्रागुदक्प्रवणा तद्वतप्रशस्तालक्षणान्विता ।१२
परिवेषत्रिभागेन निर्गमं तत्र कारयेत् ।
विस्तारं तत्प्रमाणञ्च मूले चाग्रे ततोर्द्ध्वतः ।१३
जलमानश्च कर्तव्यस्त्रिभागेन सुशोभनः ।
लिङ्गस्यार्द्धविभागेन स्थौल्येन समधिष्ठिवा ।१४
मेखला तत्त्रिभागेन खातञ्चैव प्रमाणतः ।
अथवा पादहीनन्तु शोभनं कारयेत्सदा ।१५

स्थण्डिला चौकोर होती है और वह मेखला आदि से रहित ही हुआ करती है। वापी की दो मेखलाएँ होती हैं तथा यक्षी की तीन मेखलाएँ बताई गयी हैं। वेदी चतुरस्रायता होती है और वह लिङ्गों से योजित नहीं करनी चाहिये। मण्डला जो होती है वह वर्त्तुला होती है मेखलाओं से मणप्रिया है ।८-९। जो दो मेखलाओं के मध्य में रक्ता है वह ही पूर्ण चन्द्रा होती है। तीन मेखलाओं से संयुक्त छै कोणों वाली वज्रिका होती है। षोडश अस्त्रों वाली पद्मा कही जाती है। जो मूल से कुछ ह्रस्व होती है तथा धनुष के आकार वाली है वह सार्ध चन्द्रा प्रशस्त कही जाती है। उसी तरह से त्रिशूल के सदृश त्रिकोणा ऊर्ध्व भाग से मानी गयी है। उसी भाँति से प्राक् और उदक् की ओर जो प्रवणा होती है वह लक्षों से अन्वित प्रशस्त कही जाती है। वहाँ पर परिवेष निर्गम तीन भागों से कराना चाहिए। विस्तार और उसका

प्रमाण मूल में—अग्रभाग में और ऊर्ध्व में होता है।१०-१३। जल का मान तीन भाग से परम शोभन करना चाहिए। लिङ्ग के अर्द्ध विभाग से स्थूलता से समधिष्ठित उनके तीन भाग से और उसकी खुदाई के प्रमाण से अथवा सदा एक पाद से हीन शोभा से युक्त मेखला करानी चाहिए।१४-१५।

उत्तरस्थं प्रणालञ्च प्रमाणादधिकारते।
स्थण्डिलायामथारोग्यं धनं धान्यञ्च पुष्कलम्।१६
गोप्रदा च भवेद्यक्षी वेदी समत्प्रदाभवेत्।
मण्डलायां भवेत्कीर्तिर्वरदा पूर्णचन्द्रिका।१७
आयुः प्रदा भवेद्वज्रा पद्मा सौभाग्यदा भवेत्।
पुत्रप्रदार्धचन्द्रा स्यात् त्रिकोणशत्रुनाशिनी।१८
देवस्य यजनार्थन्तु पीठिकादश कीर्तिताः।
शैले शैलमयींदद्यात् पार्थिवे पार्थिवीं तथा।१९
दारुजे दारुजां कुर्यात् मिश्रे मिश्रांतथैवच।
नान्ययोनिस्तुकर्तव्या सदा शुभफलेप्सुभिः।२०
अर्च्चायामासमन्दैर्घ्यं लिङ्गायामसन्तथा।
यस्य देवस्य या पत्नी तां पीठे परिकल्पयेत्॥
एतत्सर्वं समाख्यातं समासात्पीठलक्षणम्।२१

उत्तर की ओर स्थित प्रणाल प्रमाण से अधिक करना आवश्यक होना चाहिए। स्थण्डिलामें आरोग्य धनतथा धान्यपुष्कल होता है।१६। यक्षी गौओं के प्रदान कराने वाली हुआ करती है और वेदी सम्पत्ति के देने वाली होती है। मण्डला में कीर्ति का विस्तार होता है तथा पूर्ण चन्द्रिका वरदान का प्रदान कराने वाली हुआ करती है।१७। वज्रा नाम वाली का फल आयु की वृद्धि होता है और पद्मा परम सौभाग्य के प्रदान करने वाली हुआ करती है। जो अर्द्ध चन्द्रा है वह पुत्र देने वाली हुआ करती है और त्रिकोण से युक्ता फल शत्रुओं का विनाश करना

होता है ।१८। इस प्रकार से देवों के यजन करने के लिए पीठिका दश तरह की कीर्त्तित की गयी है। शैल में शैलमयी ही पीठिका देनी चाहिये और पार्थिव में पार्थिवी देवे। जो दारु (काष्ठ) से जात हो वहाँ पर दारुजा करे तथा मिश्रित होवे तो पीठिका भी मिश्रा ही करनी चाहिए। जो शुभ फल की इच्छा रखने वाले पुरुष हैं उनको चाहिए कि पीठिका अन्य योनि की कभी भी न करें और जैसी होवे वैसा ही सदा पीठिका की रचना करावें ।१९-२०। अर्चा में असम दैर्घ्य तथा लिंगा में असम करे। जिस देव की जो पत्नी होवे उसको पीठ पर परिकल्पित करना ही चाहिए। यह सब संक्षेप से हमने पीठिका का लक्षण बतला दिया है ।२१।

—×—

१२६—लिंग लक्षण वर्णन

अथातः संप्रवक्ष्यानि लिङ्गलक्षणमुत्तमम् ।
सुस्निग्धञ्च सुवर्णश्च लिङ्गं कुर्याद्विचक्षणः ।१
प्रासादस्य प्रमाणेन लिङ्गमान विधीयते ।
लिङ्गमानेन वा विद्यात् प्रासादं शुभलक्षणम् ।२
चतुरस्रे समे गर्त्ते ब्रह्मसूत्रं निपातयेत् ।
वामेन ब्रह्मसूत्रस्य अर्च्चा वा लिङ्गमेव च ।३
प्रागुत्तरेण लीनन्तु दक्षिणा पर्याश्रितम् ।
पुरस्यापरदिग्भागे पूर्वद्वारं प्रकल्पयेत् ।४
पूर्वेण चापरं द्वारं माहेन्द्रं दक्षिणोत्तरम् ।
द्वारं विभज्य पूर्वन्तु एकविंशतिभागिकम् ।५
ततो मध्यगतं ज्ञात्वा ब्रह्मसूत्रं प्रकल्पयेत् ।
तस्यार्द्धन्तु त्रिधाकृत्वा भागञ्चोत्तरतस्त्यजेत् ।६
एवं दक्षितस्त्यक्त्वा ब्रह्मस्थानं प्रकल्पयेत् ।
भागार्द्धेन तु यल्लिङ्गं कार्यन्तदिह शस्यते ।७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—अब इसके अनन्तर मैं लिंग का उत्तम लक्षण बतलाता हूँ। विचक्षण पुरुष को सुस्निग्ध और सुवर्ण लिंग करना चाहिए।१। प्रासाद के प्रमाण से ही लिंग के मान का विधान किया जाता है अथवा लिंग के मान से ही प्रासाद शुभ लक्षण से युक्त माना जाया करता है।२। चतुरस्र (चौकोर) समगर्त्त में ब्रह्मसूत्र का निपात करना चाहिए। ब्रह्मसूत्र के वाम भाग से अर्च्चा अथवा लिंग होती है।३। पूर्व और उत्तर में लीन दक्षिणा परयाश्रित पुर के अमर द्वार माहेन्द्र दक्षिणोत्तर द्वार का विभाजन करके पूर्व को एक-विंशति भागित करे। फिर मध्यगत का वान प्राप्त करके ब्रह्म सूत्र को प्रकल्पित करना चाहिए। भाग के अर्ध से जो लिंग हो वह ही यहाँ पर करना चाहिए और यही प्रशस्त कहा जाता है।५-६-७।

पञ्च भागभविक्तं वा त्रिभागे जैष्ठ्यमुच्यते।
भाजिते नवधागर्भे माध्यमं पाञ्चभागिकम्।८
एकस्मिन्नेव नवधा गर्भे लिङ्गानि कारयेत्।
समसूत्रं विभज्याथ नवधा गर्भभाजितम्।९
ज्येष्ठमद्र्धंकनीयोऽर्धं तथामध्येन मध्यमम्।
एवंगर्भे समाख्यातस्त्रिभिर्भागैर्विभाजयेत्।१०
ज्येष्ठन्तु त्रिविधं ज्ञेयं मध्यमन्त्रिविधन्तथा।
कन्यसं त्रिविधं तद्वत् लिंगभेदा नवैव तु।११
नाभ्यर्धमष्टभागेन विभज्याथ समं बुधैः।
भागत्रयं परित्यज्य विष्कम्भञ्चतुरस्रकम्।१२
अष्टास्रं मध्यमं ज्ञेयं भागं लिंगस्य वै ध्रुवम्।
विकीर्णे चेत्ततो गृह्य कोणाभ्यां लाञ्छयेद् बुधः।१३
अष्टास्रं कारयेत्तद्वदूर्ध्वमप्येवमेव तु।
षोडशास्रीकृतं पश्चाद्वतुलं कारयेत्ततः।१४

पाँच भाग में विभक्त में अथवा त्रिभाग में जैष्ठ्य कहा जाता है। गर्भ में नौ प्रकारसे भाजित करने पर पाञ्च भागिक माध्यम होता है। एक ही में नौ प्रकार से गर्भ में लिगों को कराना चाहिये। सम सूत्र का विभाजन करके इसके अनन्तर नौ प्रकार से गर्भ भाजित करे ।८-९। अर्ध ज्येष्ठ—अर्ध कनीय तथा मध्यम होता है। इस प्रकार से गर्भ का समाख्यान किया गया है। तीन भागों से विभाजन करना चाहिए। लिग के भेद नौ हुआ करते हैं—तीन प्रकार का ज्येष्ठ जानना चाहिए इसी तरह से मध्यम भी तीन प्रकार का है और तद्वत् कन्यस तीन तरह का होता है। लिग के नौ प्रकार भेद हुआ करते हैं।१०-११। नाभि के अर्ध भाग को अष्ट भाग से विभाजित करके इसके अनन्तर बुध पुरुषों को चाहिए कि ससे तीन भागों का परित्याग कर देवें। यह चतुरस्रक विष्कम्भ होता है। आठ अस्र वाला मध्यम जानना चाहिये जो कि लिग का निश्चित भाग होता है। यदि विकीर्ण हो तो उससे ग्रहण करके बुध पुरुष को कोणों से लांछित करना चाहिए ।१२-१३। अष्टास्र करना चाहिये। उसी भाँति ऊर्ध्व को करावें। पीछे षोडसा स्रीकृत को वर्त्तुल कराना चाहिये ।१४।

आयाम, तस्य देवस्य नाभ्यां वै कुण्डलीकृतम् ।
माहेश्वरं त्रिभागन्तु ऊद्ध्र्ववृत्तं त्ववस्थितम् ।१५
अधस्ताद्ब्रह्मभागस्तु चतुरस्रो विधीयते ।
अष्टास्रोवैष्णवोभागो मध्यस्तस्य उदाहृतः ।१६
एवं प्रमाणसंयुक्तः लिगवृद्धिप्रदम्भवेत् ।
तथान्यदपि वक्ष्यामि गर्भमानं प्रमाणतः ।१७
गभमानप्रमाणेन यल्लिङ्गमुचितं भवेत् ।
चतुर्धा तद्विभज्याथ विष्कुम्भन्तु प्रकल्पयेत् ।१८
देवतायतने सूत्रं भागत्रयविकल्पतम् ।
अधस्ताच्चतुरस्रन्तु अष्टास्र मध्यभागतः ।१९

पूज्यभागस्ततोऽर्द्धन्तु नाभिभागस्तथोच्यते ।
आयामे यद्भवेत्सूत्रं नाहस्य चतुरस्रके ।२०
चतुरस्रार्द्धं परित्यज्य अष्टास्य तु यद्भवेत् ।
तस्याप्यर्द्धं परित्यज्य ततोवृत्तन्तु कारयेत् ।२१

उस देव के आयाम नाभि में कुण्डली कृत है । माहेश्वर तीन भाग उर्द्धवृत अवस्थित है ।१५। नीचे की ओर ब्रह्मभाग चतुरस्र (चौकोर) विहित किया जाता है । अष्टास्र वैष्णव भाग उदाहृत कर दिया गया है । इस प्रकार से प्रमाण स संयुक्त लिग वृद्धि का प्रदान करने वाला होता है । उसी तरह से और भी गर्भगान प्रमाण से बतलाऊँगा ।१६-१७। गर्भमान के प्रमाण से जो लिग उचित होवे उसको चार भागों में विभक्त करके विष्कम्भ को प्रकल्पित करे ।१८। देवता के आयतन में सूत्र को तीनों भागों में विशेष रूप से कल्पित करे । नीचे की ओर चतुरस्र—मध्य भाग से अष्टास्र इससे आधा पूज्य भाग है तथा वह नाभिभाग कहा जाया करता है । आयाम में नाह के चतुरस्रक में आयाम में जो सूत्र होता है उस चतुरस्रार्ध का परित्याग कर देवे और अष्टास्र होता है उसके भी अर्धभाग का परित्याग करके इसके पश्चात् फिर वृत्त को कराना चाहिए ।१९-२१।

शिरः प्रदक्षिणं तस्य सक्षिप्त मूलतो न्यसेत् ।
ज्येष्ठापूज्यं भवेल्लिगमधस्ताद्विपुलञ्च यत् ।२२
शिरसा च सदानिम्नंमनोज्ञं लक्षणान्वितम् ।
सौम्यन्तु दृश्यते लिगन्तद्वैवृद्धिप्रदं भवेत् ।२३
अथ मूले च मध्ये तु प्रमाणे सर्वतः समम् ।
एवम्विधन्तु यल्लिग भवेत्तात्सार्वकामिकम् ।२४
अन्यथा यद्भवेल्लिग तदसत्संप्रचक्षते ।
एवंरत्नमयंकुर्यात् स्फाटिकं पार्थिवं तथा ।२५
शुभं दारुमयञ्चापि यद्वा मनसि रोचते ।२६

उसका संक्षिप्त प्रदक्षिण शिर मूल से न्यास करना चाहिए। जो नीचे की ओर विपुल है वह ज्येष्ठ पूज्य लिग होना चाहिए।२२। सदा शिर से निम्न एवं मनोज्ञ लक्षणान्वित होता है। जो सौम्य लिग दिखलाई देता है वह निश्चित रूप से वृद्धि के प्रदान करने वाला होता है। इसके अनन्तर मूल में—मध्य में और प्रमाण में सभी ओर से सम है। इस प्रकार का लिग है वह सार्वकारिक होता है अर्थात् सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है। इसके विपरीत अन्य प्रकार का जो लिग होता है वह असत् ही कहा जाता है। इस रीति से इसको रत्नों से परिपूर्ण—स्फटिक मणि के द्वारा रचित तथा पार्थिव करना चाहिये अथवा मन का रुचिकर हो तो दारुमय भी परम शुभ होता है।२३-२६।

—×—

१२७–देव प्रतिष्ठा विधि वर्णन (१)

देवतानामथैतासां प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम्।
वद सूत ! यथान्यायं सर्वेषामप्यशेषत: ।१
अथात: संप्रवक्ष्यामि प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम्।
कुण्डमण्डपवेदीनां प्रमाणञ्च यथाक्रमम् ।२
चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवे तथा।
माघेवासर्वदेवानां प्रतिष्ठाशुभदा भवेत् ।३
प्राप्य पक्षं शुभंशुक्लमतीते दक्षिणायने।
पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा ।४
दशमी पौर्णमासी च तथा श्रेष्ठा त्रयोदशी।
आसु प्रतिष्ठा विधिवत् कृत्वा बहुफला लभेत् ।५
आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तराद्वयमेव च।
ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्य: पूर्वाभाद्रपदा तथा ।६

हस्ताश्विनीरेवती च पुष्योमृगशिरास्तथा ।
अनुराधा च स्वाती प्रतिष्ठादिषु शस्यते ।७

ऋषिगण ने कहा—हे श्री सूतजी ! अब इस सबके कथन के अनन्तर आप जो भी उचित हो पूर्ण रूप से इन समस्त देवों की प्रतिष्ठा की विधि का वर्णन करिये ।१। श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर उत्तम प्रतिष्ठा की विधि के विषय में मैं वर्णन करता हूँ और कुण्ड—मण्डप तथा वेदियों का भी यथाक्रम प्रमाण बतलाऊँगा ।२। चैत्र में, फाल्गुन में, ज्येष्ठ में) अथवा माधव में या माघ मास में सब देवों की प्रतिष्ठा शुभ देने वाली होती है ।३। दक्षिणायन के समाप्त होने पर परम शुभ शुक्लपक्ष को प्राप्त करके पञ्चमी, द्वितीया, तृतीय, सप्तमी, दशमी, पौर्णमासी और त्रयोदशी ये तिथियाँ परम श्रेष्ठ होती हैं । इन तिथियों में विधिपूर्वक प्रतिष्ठा कराने पर वह बहुत अधिक फल का लाभ किया करता है । अब नक्षत्रों के विषय में बतलाया जाता है—दोनों आषाढ़ा-मूल, दोनों उत्तरा, ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पूर्व भाद्रपदा, हस्त, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशिरा, अनुराधा, स्वाती ये नक्षत्र प्रतिष्ठा आदि कार्यों में प्रशस्त माने जाया करते हैं ।४-७।

बुधोबृहस्पतिः शुक्रस्त्रयाऽप्येते शुभग्रहाः ।
एभिर्निरीक्षितं लग्नं नक्षत्रञ्च प्रशस्यते ।८
ग्रहताराबलं लब्ध्वा ग्रहपूजां विधाय च ।
निमित्तं शकुनं लब्ध्वा वर्जयित्वाद्भुतादिकम् ।९
शुभयोगे शुभस्थाने क्रूरग्रहविवर्जिते ।
लग्ने ऋक्षे प्रकुर्वीत प्रतिष्ठादिकमुत्तमम् ।१०
अयने विषुवे तद्वत् षडशीतिमुखे तथा ।
एतेषु स्थापनं कार्यं विधिदृष्टेन कर्मणा ।११
प्राजापत्ये तु शयनं श्वेते तूत्थापनं तथा ।
मुहूर्तेस्थापनं कुर्यात् पुनर्ब्राह्मे विचक्षणः ।१२

प्रासादस्योत्तरे वापि पूर्वे वा मण्डपो भवेत् ।
हस्तान् षोडशकुर्वीतदशद्वादश वा पुनः ।१३
मध्ये वेदिकया युक्तः परिक्षिप्तः समन्ततः ।
पञ्चसप्ताापि चतुरः करान् कुर्वीत वेदिकाम् ।१४

बुध, बृहस्पति और शुक्र ये तीनों ग्रह परम शुभ होते हैं। इन ग्रहों के द्वारा देखी गई लग्न और नक्षत्र प्रशस्त कहे जाया करते हैं।८। ग्रह और ताराओं का बल प्राप्त करके तथा ग्रहों की पूजा करके एवं निमित्त और शकुन पाकर तथा अद्भुत आदि को वर्जित करके शुभ योग में-शुभ स्थान में क्रूर ग्रहों से विवर्जित लग्न में तथा नक्षत्र में प्रतिष्ठा आदि उत्तम कर्म को करना चाहिए।९-१०। विषुव अयन में उसी भाँति षडशीति मुख में विधि के द्वारा इष्ट कर्म्म से इनमें ही स्थापना करनी चाहिए।११। प्रजापत्य में शयन तथा श्वेत में उत्थापन विचक्षण पुरुष को पुनर्बाह्य मुहूर्त्त में स्थापना करनी चाहिए।१२। प्रासाद के उत्तर भाग में अथवा पूर्व भाग में मण्डप होना चाहिए। वह भी दश हाथ या द्वादश हाथ अथवा सोलह हाथ का विस्तृत बनाना चाहिए।१३। मध्य में वेदी से युक्त तथा चारों ओर से परीक्षित होना चाहिये। वेदी भी पाँच सात और चार हाथ विस्तार वाली निर्मित करावे।१४।

चतुर्भिस्तोरणैर्युक्तो मण्डपः स्याच्चतुर्मुखः ।
प्लक्षाद्वारंभवेत्पूर्वं याम्येचौदुम्बरं भवेत् ।१५
पश्चादश्वत्थघटितं नैयग्रोधं तथोत्तरे ।
भूमौ हस्तप्रविष्टानि चतुर्हस्तानिचोच्छ्रये ।१६
सूपलिप्तं तथा श्लक्ष्णं भूतलं स्यात् सुशोभनम् ।
वस्त्रैर्नानाविधैस्तद्वत् पुष्पपल्लवशोभितम् ।१७
कृत्वैव मण्डपं पूर्वं चतुर्द्वारेषु विन्यसेत् ।
अव्रणान् कलशानष्टौ ज्वलत्काञ्चनगर्भितान् ।१८

चूतपल्लवसंच्छन्नान् सितवस्त्रयुगान्वितान् ।
सर्वौषधिफलोपेतांश्चन्दनोदकपूरितान् ।१९
एवं निवेश्य तद्गर्भे गन्धधूपार्चनादिभिः ।
ध्वजादिरोहणं कार्यं मण्डपस्य समन्ततः ।२०
ध्वजांश्च लोकपालानां सर्वदिक्षु निवेशयेत् ।
पताकाजलदाकारा मध्येस्यान्मडपस्य तु ।२१

मण्डप चार मुखों वाला चार तोरणों से युक्त होना चाहिए । पूर्व द्वार में प्लक्ष (पोखर) वृक्ष वाला होना चाहिए । दक्षिण द्वार में उदुम्बर का वृक्ष होना चाहिए । पश्चिम दिशामें जो द्वार हो वह अश्वत्थ (पीपल) से युक्त एवं घटित होना चाहिए तथा उत्तर दिशा में न्यग्रोध (वट) का वृक्ष होना चाहिए भूमि में एक हाथ प्रविष्ट और ऊँचाई में चार हाथ होना आवश्यक है। भूमि का भाग अच्छी तरह से उपलिप्त-श्लक्ष्ण एवं शोभन होना आवश्यक है। नाना प्रकार के वस्त्रों के द्वारा भूषित-पुष्प और पल्लवों से शोभित पहिले मण्डप की रचना कराकर फिर इस प्रकार से चारों द्वारों में विन्यास करना चाहिए अर्थात् व्रण से रहित-ज्वलत्काञ्चन अर्थात् देदीप्यमान सुवर्ण जिनके मध्य में प्रक्षिप्त किया गया हो ऐसे आठ कलशों को प्रत्येक द्वार पर दो-दो विन्यस्त करे ।१५-१६-१७-१८। आम्र के पल्लवों से संच्छन्न श्वेत दो वस्त्रों से समन्वित—सर्वौषधि एवं फलों से उपेत—चन्दन के जल से पूरित आठ कलशों को वहाँ पर निवेषित करके उनके मध्य में गन्ध-धूप और अर्चन आदि से संयुत करके मण्डप के चारों ओर ध्वजा आदि से उसे सुशोभित करना चाहिए ।१९-२०। समस्त दिशाओं में लोकपालों की ध्वजाओं को निवेशित करना चाहिए। मण्डप के मध्य भाग में जलद के आकार वाली पताकाएँ होनी चाहिए ।२१।

गन्धधूपादिकं कुर्यात् स्वैस्वैर्मन्त्रैरनुक्रमात् ।
बलिञ्च लोकपालेभ्यः स्वमन्त्रेण निवेदयेत् ।२२

उद्ध्वंन्तु ब्रह्मणे देयं त्वधस्ताच्छेषवासुके: ।
संहितायान्ते ये मन्त्रा तद्दैवत्या: श्रुतौ स्मृता: ।२३
तै: पूजा लोकपालानां कर्मंश्या च समन्तता ।
त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चरात्रमथापि वा ।२४
अथवा सप्तरात्रन्तु कार्यं स्यादधिवासनम् ।
एवं सतोरणं कृत्वा शधिवासनमुत्तमम् ।२५
तस्याप्युत्तरत: कुर्यात् स्नानमण्डपमुत्तमम् ।
तदर्धेन त्रिभागेन चतुर्भागेन वा पुन: ।२६
आनीय लिङ्गमर्च्ची वा शिल्पिन: पूजयेद् बुध: ।
वस्त्राभरण रत्नैश्च येऽपि तत्परिचारका: ।२७
क्षमध्वमिति तान् ब्रूयाद्यजन्मानोऽप्यत: परम् ।
देव प्रस्तरणे कृत्वा नेत्रज्योति: प्रकल्पयेत् ।२८

ऋतुक्रम मे पने २ मन्त्रों के द्वारा गन्ध—धूप आदि सब करना चाहिए । अपने मन्त्रों से लोकपालों के लिये बलि विनेदित करे ।२२। ऊपर की ओर ब्रह्माजी को बलि समर्पित करे और नीचे की ओर शेष तथा वासुकि को बलि देनी चाहिए । जो मन्त्र संहिता मेंहैं वह दैवती की श्रुति कहे गये है ।२३। उनमें ही सभी ओर लोकपालों की पूजा करनी चाहिए । तीन रात्रि तक—एक रात्रि पञ्च रात्रि अथवा सप्त रात्रि पर्यन्त अधिवासन करना चाहिए । इस प्रकार से सतोरण उत्तम अधिवासन करके उसके भी उत्तर में उत्तम स्नान मण्डप की रचना करनी चाहिए । उनके अर्धभाग से—तीन भाग से अथवा चार भाग से लिङ्ग को लाकर अथवा अर्चा को लाकर बुध पुरुष को शिल्पी की पूजा करनी चाहिए । जो भी उनके परिचारक हों उनकी भी वस्त्र—आभरण और रत्नों से पूजा करे । उनके आगे देव के समक्ष में यजमान को 'क्षमा कीजिए'—ऐसा बोलना चाहिए और फिर देव को प्रस्तरण पर करके नेत्रों की ज्योति की परिकल्पना करे ।२४-२८।

अक्ष्णोरुद्धरणं वक्ष्ये लिङ्गस्यापि समासमः ।
सर्वतस्तु बलि दद्यात्सिद्धार्थघृतपायसैः ।२९
शुक्लपुष्पैरलङ्कृत्य घृतगुग्गुलुधूपितम् ।
विप्राणाञ्चार्चनं कुर्य्यांद्दद्याच्चक्त्या च दक्षिणाम् ।३०
गां महीं कनकञ्चैव स्थापकाय निवेदयेत् ।
लक्षणं कारयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन वै द्विजः ।३१
ॐ नमो भगवते तुभ्यं शिवाय परमात्मने ।
हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः ।३२
मन्त्रोऽयं सर्वदेवानां नेत्रज्योतिष्यपि स्मृतः ।
एवमामन्त्र्य देवेशं काञ्चनेन विलेखयेत् ।३३
मङ्गल्यानि च वाद्यानि ब्रह्मघोषं संगीतकम् ।
वृद्ध्यर्थं कारयेद् विद्वान् अमङ्गल्यविनाशनम् ।३४
लक्षणोद्धरणं वक्ष्ये लिङ्गस्य सुसमाहितः ।
त्रिधा विभज्य पूज्यायां लक्षणं स्याद् विभाजकम् ।३५

अब मैं नेत्रों का और संक्षेप से लिंग का भी उद्धरण बतलाऊँगा । सभी ओर सिद्धार्थघृत और पायसों से बलि देनी चाहिए । शुक्ल वर्ण वाले पुष्पों से अलंकृत करके घृत और गूगल से धूपित करना चाहिये । फिर वहाँ पर जो भी विप्रगण हों उनका भी अभ्यर्चन करे तथा शक्ति के अनुसार दक्षिणा देनी चाहिये ।२९-३०। जो स्थापक हो उसको गौ—भूमि और सुवर्ण को निदित करे । द्विज को भक्ति की भावना से निम्न मन्त्र के द्वारा लक्षण करना चाहिये । 'ओंनमः' इत्यादि मन्त्र है जिस का अर्थ है परमात्मा हिरण्यरेता हे विष्णो ! आपके लिये नमस्कार है भगवान् शिव आपके लिये नमस्कार है ।' यह मन्त्र समस्त देवों की नेत्र ज्योति में भी कहा गया है । इस प्रकार से देव को आमंत्रित करके काञ्चन से विलेखन करना चाहिये । ।३१-३३। विद्वान् पुरुष का कर्तव्य है कि अमङ्गल का विनाश

करने वाले मङ्गल वाद्य—गीतों के सहित ब्रह्म घोष वृद्धि के लिए करने चाहिए ।३४। अब मैं सुसमाहित होकर लिङ्ग के लक्षण का उद्धरण कहूँगा पूज्या में तीन प्रकार से विभाग करके लक्षण विभाजक होता है ।३५।

लेखात्रयन्तु कर्तव्यं यवाष्टान्तरसंयुतम् ।
न स्थूलं न कृशं तद्वत्र वस्त्रं छेदवर्जितम् ।३६
निम्नं यवप्रमाणेन ज्येष्ठलिङ्गस्य कारयेत् ।
सूक्ष्मास्ततस्तु कर्तव्या यथामध्यमके न्यसेत् ।३७
अष्टभक्तं ततः कृत्वा त्यक्त्वा भागत्रयं बुधः ।
लम्बयेत्सप्तरेखास्तु पार्श्वयोरुभयोः समाः ।३८
तावत् प्रलम्बयेद्विद्वान् यावद्भागचतुष्टयम् ।
भ्राम्यते पञ्चभागोर्ध्वं कारयेत्सङ्गमन्ततः ।३९
रेखयोः सङ्गमे तद्वत् पृष्ठे भागद्वयं भवेत् ।
एवमेतत्समाख्यातं समासाल्लक्षणं मया ।४०

अष्ट यवों के अन्तर से संयुत तीन लेखायें करना चाहिए । न तो अति स्थूल हों और न अत्यन्त कृश ही हों और उसी भाँति वक्त्र छेद वर्जित नहीं होना चाहिए ।३२। ज्येष्ठ लिंग का यव से प्रमाण से निम्न कराना चाहिए । इसके उपरान्त सूक्ष्म करने चाहिए और यथा मध्यमक में न्यास करे । बुध पुरुष को चाहिए फिर अष्ट भक्त करके भाग त्र य को त्याग देवे और दोनों पार्श्वों में सम सप्त रेखाओं को लम्बमान करे । विद्वान् को तब तक प्रलम्बित करना चाहिए जब तक चार भाग होवें । पाँच भाग ऊपर की ओर भ्रामित किये जाते हैं और अन्ततः संग, कराना चाहिए दोनों रेखाओं के संगम में उसी तरह से पृष्ठ में दो भाग होने चाहिए । इस प्रकार से मैंने संक्षेप से लक्षण को बतला दिया है ।३७-४०।

१२८–देवप्रतिष्ठा विधि वर्णन (२)

अत: परं प्रवक्ष्यामि मूर्तिपानान्तु लक्षणम् !
स्थापकस्य समासेन लक्षणं श्रृणुत द्विजा: ! ।१
सर्वावयवसम्पूर्णो वेदमन्त्रविशारद: ।
पुराणवेत्ता तत्वज्ञो दम्भलोभविवर्जित: ।२
कृष्णसारमये देशे उत्पन्नश्च शुभाकृति: ।
शौचाचारुपरो नित्यं पाषण्डकुलनिस्पृह: ।३
सम: शत्रौ च मित्रे च ब्रह्मोपेन्द्रहरप्रिय: ।
ऊह्यापोहार्थं तत्वज्ञो वास्तुशास्त्रस्यपारग: ।४
आचार्य्यस्तु भवेन्नित्यं सर्वदोषविवर्जित: ।
मूर्तिपास्तु द्विजाश्चैव कुलीना ऋजवस्तथा ।५
द्वात्रिंशत् षोडशाथापि अष्टौ वा श्रुतिपारगा: ।
ज्येष्ठमध्यकनिष्ठेषु मूर्तिपाव: प्रकीर्तिता ।६
ततो लिङ्गमथार्चां वा नीत्वा स्नपनमण्डपम् ।
गीतमङ्गलशब्देन स्नपनं तत्र कारयेत् ।७

महर्षि प्रवर सूत जी ने कहा—इसमें आगे मैं मूर्त्तियों के लक्षण बतलाता हूँ। हे द्विजगण ! जो मूर्त्तियों की स्थापना करने वाले पुरुष हैं उनके लक्षणों को आप लोग श्रवण करें।१। स्थापक के किन २ गुणों से सुसम्पन्न होना आवश्यक है—यह बतलाते हुए कहते हैं जो पुरुष देवों की प्रतिमा की स्थापना करता है वह अपने शरीर के सम्पूर्ण अवयवों से संयुत होना चाहिए—वेदों के मन्त्रों का पण्डित पुराणों का ज्ञाता-तत्वों का जानकार-दम्भ, लोभ से रहित भी होना उसका आवश्यक है। सब के कथन का निचोड़ यही है कि उपर्युक्त गुणों से ही पुरुष मूर्ति स्थापक होने का पात्र ही नहीं होता है।२। मूर्त्ति स्थापक कृष्णसारों से परिपूर्ण देशों में समुत्पन्न हो और शुभ आकृति वाला होना चाहिए। वह

शौच के आचार में परायण तथा नित्य ही पाषण्ड के कुल में स्पृहा न रखने वाला भी होना आवश्यक है ।३। देवमूर्ति का स्थापक पुरुष शत्रु और मित्र दोनों में समान व्यवहार रखने वाला होवे—ब्रह्मा—विष्णु और शिव का प्रिय हो—ऊहा और अपोह के तत्वों का ज्ञाता तथा वास्तु शास्त्र का पारगामी विद्वान होना चाहिए ।४। स्थापना कराने वाला आचार्य्य नित्य ही सभी दोषों से विशेष रूप में रहित होना चाहिए । जो भी द्विजगण मूत्तिप हों वे सभी अच्छे शुद्ध कुलों में समुत्पन्न और सरल स्वभाव एवं व्यवहार वाले होवे ।५। बत्तीस-सोलह-आठ ऐसी ही संख्या उन द्विजों को होनी चाहिए जो देव प्रतिमा की स्थापना के कर्म कराने में सम्मिलित हों तथा ये सभी श्रुति के पारगामी पण्डित भी होने चाहिए । ये ज्येष्ठ-मध्यम और कनिष्ठ-इन तीन श्रेणियों में विभक्त हुआ करते हैं जो भी मूत्तिप कहे गये हैं ।६। इसके अनन्तर वे सब लिङ्ग अथवा अर्चा को लेकर स्नपन मण्डप में प्राप्त होकर वहां गीत मंगल की ध्वनियों से स्नपन करावें ।७।

पञ्चगव्यकषायेण मृद्भिर्भस्मोदकेन वा ।
शौचं तत्र प्रकुर्वीत वेदमन्त्रचतुष्टयात् ।८
समुद्रज्येष्ठमन्त्रेण आपोदिव्येति चापरः ।
यासां राजेतिमन्त्रस्तु आपोहिष्ठेति चापरः ।६
एवं स्नाप्य ततो देवं पूज्य गन्धानुलेपनैः ।
प्रच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन अभिवस्त्रेत्युदाहृतम् ।१०
उत्थापयेत्ततो देवमुत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते ! ।
अमूरजेति च तथारथे तिष्ठेति चापरः ।११
रथे ब्रह्मरथेवापि धृतां शिल्पिगणेक तु ।
आरोप्य च ततो विद्वानाकृष्णेन प्रवेशयेत् ।१२
ततः प्रास्तीर्य्यं शय्यायां स्वापये जनकैर्बुधः ।
कुशानास्तीर्य पुष्पाणि स्थापयेत् प्राङ्मुखं ततः ।१३

ततस्तु निद्राकलशं वस्त्रकाञ्चनसंयुतम् ।
शिरोभागेतु देवस्य जपन्नेव निधापयेत् ।१४

वहाँ पर प्राप्त होकर उन सबका कर्तव्य होता है कि वे सब पञ्च गव्य (गोमूत्र, गोबर, गो दुग्ध, गोघृत, गोदधि) कषाय के द्वारा—मृत्तिकाओं से अथवा भस्म एवं उदक से चारों निम्न निर्दिष्ट वेद के मन्त्रों के द्वारा शौच सर्व प्रथम करावें । वे चारों मन्त्रों की प्रतीक ये हैं—'समुद्र ज्येष्ठ' मन्त्र—दूसरा 'आपोदिव्य'—मन्त्र—तृतीय 'यासां राजा'—मन्त्र और चतुर्थ 'अयोहिष्ठा' इत्यादि मन्त्र होते हैं ।८-९। इस विधि से देव प्रतिमा का स्नपन कराकर गन्धानुलेपन आदि से पूजा करें और फिर दोनों वस्त्रों से प्रच्छादन करें एवं 'अभिवस्त्र'—इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ।१०। इसके अनन्तर 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा देव का उत्थापन कराना चाहिए ।फिर 'अमूरज'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा और 'रथे तिष्ठ'—इत्यादि मन्त्र से रथ में अथवा ब्रह्मरथ में जो कि शिल्पिगण के द्वारा वहाँ पर निर्मित कर प्रस्तुत किया गया है उसमें समारोपित कर विद्वान् पुरुष को चाहिये कि 'आकृष्णेन' इत्यादि मन्त्र के द्वारा उसमें प्रतिमा का प्रवेश करावें ।११-१३। इसके पश्चात् शय्या में प्रास्तरण करके बुध पुरुष को चाहिए कि धीरे से देव प्रतिमा को वहाँ पर स्थापित करें । कुशाओं का आस्तरण करके प्राङ्मुख होकर फिर पुष्पों की स्थापना करनी चाहिए ।१३। इसके उपरान्त वस्त्र और सुवर्ण से समन्वित निद्रा कलश को निम्न निर्दिष्ट मन्त्र का जाप करते हुए देव प्रतिमा के शिरो भाग में निधापित करना चाहिये ।१४।

आपोदेवीति मन्त्रेण आपोऽस्मान् मातरोऽपि च ।
ततो दुकूलपट्टैश्चाच्छाद्य नेत्रोपधानकम् ।१५
दद्याच्छिरसि देवस्य कौशेयं वा विचक्षण: ।
मधुनासर्पिषाभ्यज्य पूज्यसिध्यार्थकस्तत: ।१६

आप्यास्वेति मन्त्रेण यातेरुद्रशिवेति च ।
उपविश्यार्चयेद्देवं गन्धपुष्पैः समन्ततः ।१७
सितप्रतिसरं दद्यात् बार्हस्पत्येति मन्त्रतः ।
दुकूलपट्टैः कार्पासैर्नानाचित्रैरथापिवा ।१८
आच्छाद्य देवं सर्वत्र च्छत्रचामरदर्पणम् ।
पार्श्वतः स्थापयेत्तत्र वितानपुष्पसंयुतम् ।१९
रत्नान्योषधयस्तत्र गृहोपकरणानि च ।
भोजनानि विचित्राणि शयनान्यासनानि च ।२०
अभित्वा शूरमन्त्रेण यथा विभवतो यसे ।
क्षीरं क्षौद्रं घृतं तद्वत् भक्ष्यभोज्यान्व (न्न) पायसैः ।२१
षड्विधैश्च रसैस्तद्वत् समन्तात् पारपूजयेत् ।
बलि दद्यात् प्रयत्नेन मन्त्रेणानेन भूरिशः ।२२

"आपो देवी"—इत्यादि मन्त्र से तथा "आपोऽस्मान् मातरोऽपिच"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा दुकूल पट्टों से समाच्छन्न करके देव प्रतिमा के शिरोभाग में नेत्रोपधानक अथवा कौशेय देना चाहिए—यह विचक्षण पुरुष का परम कर्त्तव्य है। फिर इसके उपरान्त में मधु और सर्पि से (घृत से) अभ्यजन करके सिद्धार्थकों के द्वारा पूजा करे। आप्यास्व' इत्यादि मन्त्र से 'यातेरुद्रशिव' इत्यादि मन्त्र के द्वारा वहाँ पर उपविष्ट होकर सब ओर से गन्धाक्षत पुष्पों से देव का अभ्यर्चन करना चाहिए ।१५-१७। 'बार्हस्पत्य'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा देव को सित प्रतिसर समर्पित करना चाहिए । दुकूल पट्टों के द्वारा अथवा अनेक प्रकार के कपास के सूती वस्त्रों से सर्वत्र देव प्रतिमा का भली भाँति समाच्छादन करे और वहाँ हर पार्श्व भाग में छत्र—चामर और दर्पण स्थापित करना चाहिए। वहाँ पर पुष्पों से संयुक्त एक वितान निर्मित करावे । रत्न—औषधियाँ-गृह के अन्य समस्त उपकरण—भोजन—विचित्र शयन—आसन शूर मन्त्र के द्वारा अभित करके अपने वैभव के

अनुसार इन सभी का न्यास करना चाहिये क्षीर, क्षौद्र, घृत भक्ष्य भोज्य, अन्न, पायस, छैं प्रकार के रस इन सबसे सभी ओर से देव प्रतिमा का पूजन करना चाहिये। फिर निम्न निर्दिष्ट मन्त्र के द्वारा अच्छी तरह से प्रयत्न पूर्वक बलि देना चाहिए।१८-२२।

त्र्यम्बकं यजामहे इति सर्वतः शनकैर्भुवि ।
मूर्तिपामुस्थापयेत्पश्चात्सर्नदिक्षुविक्षण: ।२३
चतुरो द्वारपालांश्च द्वारेषु विनिवेशयेत् ।
श्रीसूक्तं पावमानश्च सोमसूक्तं सुमङ्गलम् ।२४
तथाच शान्तिकाध्यायमिन्द्रसूक्त तथैव च ।
रक्षोघ्नञ्च तथा सूक्तं पूर्वतोबह्वृचोजपेत् ।२५
रौद्रं पुरुषसूक्तञ्च श्लोकाध्यायं सशुक्रितम् ।
तथैव मालाध्यायमध्यायमध्वर्युं र्दक्षिणेजपेत् ।२६
वामदेव बृहत्साम ज्येष्ठसाम रथन्तरम् ।
तथा पुरुषसूक्तञ्च रुद्रसूक्तं सशान्तिकम् ।२७
भारुण्डानि च सामानि च्छन्दश्च पश्चिमे जपेत् ।
अथर्वोऽङ्गिरसं तद्वन्नीलं रौद्रं तथैव च ।२८

'त्र्यम्बकं यजामहे'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा सब ओर धीरे से भूमि पर मूर्तियों को स्थापित करे। उसके पश्चात् विचक्षण पुरुष को सभी दिशाओं में द्वारों में चार द्वारपालों को विनिवेक्षित करना चाहिए। इसके अनन्तर श्रीसूक्त, पावमान सोम सूक्त, सुमंगल, शान्तिका ध्याय, इन्द्र सूक्त, रक्षोघ्न सूक्त और पहिले बह्वृचो का जाप करना चाहिए। रौद्र, पुरुष सूक्त श्लोकाध्याय, संशुक्रित, माला को ध्याय इनका जाप अध्वर्युं दक्षिण दिशा में करना चाहिए।२३-२६। छन्दों के ज्ञाता को वामदेव, बृहत्साम, ज्येष्ठ साम, रथन्तर, पुरुष सूक्त, रुद्र सूक्त शान्तिक, भारुण्ड नाम ऋचाऐं—उन सबका जाप पश्चिम दिशा में करना चाहिए। जो अथर्व वेद का ज्ञाता ऋत्विज है उसको अंगिरस, नील, रौद्र का जाप करना चाहिए।२७-२८।

तथा पराजितां देवीं सप्तसूक्तं सौद्रकम् ।
तथैव शान्तिकाध्यायमथर्वा चोत्तरे जपेत् ।२९
शिर: स्थाने तु देवस्य स्थापको होममाचरेत् ।
शान्तिकै: पौष्टिकैस्तद्वन् मन्त्रैर्व्याहृतिपूर्वकै: ।३०
पलाशोदुम्बराश्वत्थ अपामार्गः शमी तथा ।
हुत्वा सहस्रमेकैकं देवं पादे तु संस्पृशेत् ।३१
ततो होमसहस्रेण हुत्वा हुत्वा ततस्तत: ।
नाभिमध्यं तथावक्ष: शिरश्चाप्यालभेत् पुन: ।३२
हस्तमात्रेषु कुण्डेषु मूर्तिपा: सर्वतोदिशम् ।
समेखलेषुते कुर्युर्योनिवक्त्रं तु चादरात् ।३३
वितस्तिमात्रायानि: स्यद्गजोष्ठसदृशी तथा ।
आयताच्छिद्रसंयुक्ता पार्श्वत: कलयोच्छ्रिता ।३४
कुण्डात् कलानुसारेण सर्वतश्चतुरङ्गुला ।
विस्तारेणोच्छ्रयातद्वच्चतुरस्रा समाभवेत् ।३५

अथर्वा मनीषी को पराजित देवी—सप्त सूक्त, रौद्रक और शांतिका ध्याय पाठ तथा जाप उत्तर दिशा में करना चाहिए ।२९। देव प्रतिमा के शिर के भाग की ओर स्थापक को होम का समाचरण करना चाहिए और वह होम शान्तिक पौष्टिक व्याहृतियों से युक्त मन्त्रों के द्वारा उसी भाँति करे ।३०। पलाश—(ढाक) उदुम्बर (गूलर)—अश्वत्थ (पीपल)—अपमार्ग (औंघा)—शमी (छौंकर) इनकी समिधाओं से एक-एक सहस्र आहुतियाँ देकर देव के चरण में स्पर्श करे ।३१। एक—एक सहस्र आहुतियों से होम करके फिर नाभि के मध्य भाग का वक्ष:स्थल का और शिरका आलभन करना चाहिये ।३२। सब दिशाओं में एक साथ के विस्तारवाले कुण्डोंमें जोकि मेखलाओंसे युक्तहोने चाहिए और योनिवक्त्र वाले हों उनमें बड़े ही आदर के साथ उन मूर्तिपाओं को करना चाहिए । ।३३। उनको योनि एक वितस्ति (बालिश्त) भर विस्तार वाली गज के

ओष्ठ के तुल्य होनी चाहिए। वह आयत—छिद्र संयुक्त–पार्श्व भाग में कला से उच्छ्रित कला के अनुसार कुण्ड से सब ओर चार अंगुल वाली विस्तार उच्छ्रय-चतुरस्त्र और सम होनी चाहिये।२४-२५।

वेदीभित्ति परित्यज्य त्रयोदशभिरंगुलैः।
एवं नवसु कुण्डेषु लक्षणञ्चैव दृश्यते।३६
आग्नेयशाक्रयाम्येषु होतव्यमुदगाननैः।
शान्तयो लोकपालेभ्यो मूर्तिभ्यः क्रमशस्तथा।३७
तथा मूर्त्यधिदेवानां होमं कुर्यात्समाहितः।
वसुधा वसुरेता च यजमानो दिवाकरः।३८
जलं वायुस्तथासोम आकाशश्चाष्टमः स्मृतः।
देवस्य मतयस्त्वष्टावेताः कुण्डेषु संस्मरेत्।३९
एतासामधिपान्वक्ष्ये पवित्रान्मूर्तिनामतः।
पृथ्वीं पाति शर्वश्च पशुपश्चाग्निमेव च।४०
यजमानं तथैवोग्रो रुद्रश्चादित्यमेव च।
भवोजलं सदा पाति वायुमीशान एव च।४१
महादेवस्तथा चन्द्रं भीमश्चाकाशमेव च।
सर्वदेवप्रतिष्ठासु मूर्तिपा ह्येत एव च।४२

तेरह अंगुलों से वेदी की भित्ति का परित्याग करके इस प्रकार से नौ कुण्डों में लक्षण दिखलाई देता है।३६। उत्तर की ओर मुख करने वालों को आग्नेय-शाक और यामा दिशाओं में हवन करना चाहिये तथा क्रम से लोकपालों के लिए एवं मूर्तियों के लिए शान्ति करे तथा मूर्त्ति के अधिदेवों का होम परम सावधान होकर करे। देव की आठ मूर्त्तियों का नामोल्लेख किया जाता है। वसुधा, वसुरेता, यजमान, दिवाकर, जल, वायु, सोम, और आठवाँ आकाश बताया गया है। ये देव की आठ मूर्त्तियाँ होती हैं उनको कुण्डों में संस्मृत करना चाहिये।३७-३९। अब इनके पवित्र अधिदेवों को बतलाता हूँ। उनके नाम और मूर्ति दोनों ही बतलाते हैं। शर्व पृथिवी की रक्षा करते हैं—पशुप अग्नि का रक्षण

करता है। उग्र यजमान की रक्षा करता है—रुद्र आदित्य का भव जल का और ईशान वायु का संरक्षण किया करता है।४०-४१। महादेव चन्द्र का रक्षक है तो भीम आकाश की रक्षा किया करता है। सब देवों की प्रतिष्ठाओं में ये ही मूर्त्तिप हुआ करते हैं।४२।

एतेभ्यो वैदिकैर्मन्त्रैर्यथास्वं होममाचरेत् ।
तथा शान्तिघटं कुर्य्यात् प्रतिकुण्डेषु सन्न्यसेत् ।४३
शतान्ते वा सहस्रान्ते सम्पूर्णाहुतिरिष्यते ।
समपादः पृथिव्यान्तु प्रशान्तात्मा विनिक्षिपेत् ।४४
आहुतीनान्तु सम्पातं पूर्णकुम्भेषु वै न्यसेत् ।
मूलमध्योत्तमाङ्गेषु देवं तेनावसेचयेत् ।४५
स्थितश्च स्नापयेत्तेन सम्पाताहुतिवारिणा ।
प्रतियामेषु धूपन्तु नैवेद्यञ्चन्दनोदकम् ।४६
पुनः पुनः प्रकुर्वीत होमः कार्यः पुनःपुनः ।
पुनः पुनश्च दातव्या यजमानेन दक्षिणा ।४७
सितवस्त्रैश्च ते सर्वे पूजनीयाः समन्ततः ।
विचित्रैर्हेमकटकैर्हेमसूत्रांगुलीयकैः ।४८

इनके लिये वैदिक मन्त्रों के द्वारा यथास्व अर्थात् अपने वैभव के और वित्त के अनुसार होम करने का समाचरण करना चाहिये। प्रत्येक कुण्ड में शान्ति घट करे और वहाँ पर उसका न्यास भली-भाँति करना चाहिए।४३। एक सौ आहुतियों के अवसान में या एक सहस्र आहुतियाँ समाप्त होने पर अन्त में सम्पूर्णाहुति देना अभीप्सित होता है। प्रशान्त आत्मा वाले को समपाद होते हुए विशेष रूप से निक्षेप करना चाहिए। ।४४। आहुतियों का जो सम्पात है उसको पूर्ण कुम्भों में न्यास करे जो कि मूल-मध्यम और उत्तमाङ्ग होते हैं। उससे देवका अवसेचन करना चाहिए। उस सम्पाताहुतियों के जल से स्थित होते हुए स्नापन कराना चाहिये। प्रत्येक यामों में धूप-नैवेद्य-चन्दनोदक समर्पित करे। ऐसा पुनः

पुनः करे तथा बारम्बार होम करना चाहिये । यजमान के द्वारा पुनः दक्षिणा भी देना परमावश्यक होता है । सभी ओर से श्वेत वस्त्रों में उनकी सबकी पूजा करनी चाहिये । अपनी आर्थिक शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार उनको विचित्र सुवर्ण के कटक—हेम सूत्र तथा सुवर्ण की अंगुलीयक समर्पित करके उन्हें पहिनावें ।४५-४८।

वासोभिः शयनीयैश्च परिधाप्याः स्वशक्तितः ।
भोजनञ्चापि दातव्यं यावत् स्यादधिवासनम् ।४९
बलिस्त्रिसन्ध्यं दातव्यो भूतेभ्यः सर्वतो दिशम् ।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पूर्वं शेषान् वर्णांस्तु कामतः ।५०
रात्रौ महोत्सवः कार्यो नृत्यगीतकमङ्गलैः ।
सदा पूज्याः प्रयत्नेन चतुर्थीकर्म्म यावता ।५१
त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चरात्रमथापिवा ।
सप्तरात्रमथोकुर्य्यात् क्वचित्सद्योऽधिवासनम् ।
सर्वयज्ञफलो यस्मादधिवासोत्सवः सदा ।५२

उन सबका सत्कार वस्त्रों के—शयनीयों के द्वारा अच्छी रीति से करना चाहिये और ये सबको परिधान करावें । जब तक इनका वहाँ पर अधिवासन होवे तब तक सबको भोजन भी देना चाहिए ।४९। सभी दिशाओं में भूतों के लिये बलि भी तीनों सन्ध्यानों के समय में देनी चाहिये । सबसे पूर्व ब्राह्मणों को भोजन करावे और इसके उपरान्त शेष सभी वर्णों को इच्छा पूर्वक भोजन देवे ।५०। नृत्य-गीत और अन्य मङ्गलों के द्वारा रात्रि के समय में महान् उत्सव करना चाहिये । जब तक यह चतुर्थी कर्म्म रहे सदा प्रयत्न पूर्वक सबकी पूजा करे । त्रिरात्र-एक रात्र-पञ्च रात्र अथवा सप्त रात्र पर्यन्त करे । कहीं पर तुरन्त ही अधिवासन कर देवे । क्योंकि अधिवास का उत्सव सदा ही समस्त यज्ञों के फल वाला हुआ करता है ।५१-५२।

१२६—कलियुगीन भावी राजा

शिशुकोऽन्ध्रः सजातीयः प्राप्स्यतीमां वसुन्धराम् ।१
त्रयोविंशत् समाराजा शिशुकस्तु भविष्यति ।२
श्रीमल्लकर्णिर्भविता तस्य पुत्रस्तु वै दश ।
पूर्णोत्संगस्ततो राजा वर्षाण्यष्टादशैव तु ।३
पञ्चाशतं समाः षट्च शान्तकर्णिर्भविष्यति ।
दश चाष्टौ च वर्षाणि तस्य लम्बोदरः सुतः ।४
आपीतकोदशाष्टेच तस्य पुत्रो भविष्यति ।
दशचाष्टौ च वर्षाणि मेघस्वातिर्भविष्यति ।५
स्वातिश्च भविता राजा समास्त्वष्टादशैव तु ।
स्कन्दचातिस्तथा राजा सप्तैव तु भविष्यति ।६
मृगेन्द्रस्वातिकर्णस्तु भविष्यति समास्त्रयः ।
कुन्तलः स्वातिकर्णस्तु भविताष्टौसमानपः ।७

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—शिशुकोऽन्ध्र इस वसुन्धरा को प्राप्त कर लेगा । वह शिशुक तेईस वर्ष पर्यन्त राजा रहेगा ।१२। फिर उसका पुत्र श्री मल्ल कर्णिदश वर्ष राजा होगा । इसके पश्चात् अट्ठारह वर्ष तक पूर्णोत्संग इस भूमि पर शासन करेगा ।३। पञ्चाशत और छै वर्ष तक शान्तकर्णि राजा होगा । उसका पुत्र लम्बोदार अठारह वर्ष तक राजा होगा । फिर आपीतक उसका पुत्र दश और दो वर्ष तक राजा होगा । अठारह वर्ष तक मेघस्वाति राजा इस मही मण्डल पर राज्य करेगा । इसके अनन्तर अष्टादश वर्ष तक स्वाति इस मही का राजा होगा फिर सात वर्ष पर्यन्त स्कन्दर चाति राजा होगा । तीन वर्ष तक महेन्द्र स्वाति कर्ण इस वसुन्धरा पर राज्य करेगा । कुन्तल और स्वाति कर्ण आठ वर्ष तक इस पृथ्वी पर नृप होगा ।४-७।

एकसंवत्सरं राजा स्वातिवर्णो भविष्यति ।८
भविताऽरिक्तवर्णस्तु वर्षाणि पञ्चविंशतिः ।

ततः संवत्सरान् पञ्च हालोराजा भविष्यति ।६
पञ्चमन्दुलकोराजा भविष्यतिसमा नृप ।
पुरीन्द्रसेनो भविता तस्मात्सौम्यो भविष्यति ।१०
सुन्दरः शान्तिकर्णस्तु अब्दमेकं भविष्यति ।
चकोरः स्वातिकर्णस्तु षण्मासान् वै भविष्यति ।११
अष्टाविंशतिवर्षाणि शिवस्वातिर्भविष्यति ।
राजा च गौतमो पुत्रो ह्येकविंशत्यतोनृपः ।१२
अष्टाविंशतिसुतस्तस्य सुलोमवैभविष्यति ।
शिवश्रोत्रे सुलोमत्तु सप्तैव भवितानृपः ।१३
शिवस्कन्धशान्तिकर्णाविभविता ह्यात्मजः समाः ।
नवविंशतिवर्षाणि यज्ञश्रीः शान्तिकर्णिकः ।१४

एक वर्ष तक स्वातिवर्ण इस पृथ्वी का राजा होगा ।८। पच्चीस वर्ष तक रिक्तवर्ण शासन करेगा। फिर इसके पश्चात् पाँच वर्ष तक हाल राजा होगा। हे नृप ! फिर पञ्च मन्दुलक राजा होगा—पुरीन्द्र-सेन और इससे सौम्य नृपति होगा। सुन्दर शान्तिकर्ण एक वर्ष पर्यन्त इस वसुन्धरा का राजा होगा। चकोर स्वातिकर्ण छै मास तक नृप होगा ।९-११। अट्ठाईस वर्ष पर्यन्त शिव स्वाति इस मही मण्डल का नृपति बनेगा। गौतमी का पुत्र राजा इक्कीस वर्ष तक रहेगा। उनका पुत्र सुलोमा अट्ठाईस वर्ष पर्यन्त राजा होगा। उस सुलोम से समुत्पन्न शिव श्री सात वर्ष पर्यन्त नृप रहेगा। शान्तिकर्ण से शिव स्कन्ध आत्मज होगा। उन्नीस वर्ष तक यज्ञ, श्री, शान्तिकर्णिक राजा होंगे। ।१२-१४।

षडेव भवितास्यद्विजयस्तु समास्ततः ।
चण्डश्री शान्तिकर्णस्तु तस्य पुत्रः समादश ।१५
सुलामा सप्तवर्षाणि अन्यस्तेषां भविष्यति ।
एकोनविंशतिह्यते आन्ध्रा भोक्ष्यन्ति वो महीम् ।१६
तेषां वर्ष शतानि स्युश्चत्वारि षष्टिरेव च ।

आन्ध्राणां संस्थितता राज्येतेषांभृत्यान्वयेनृपाः ।१७
सप्तैवान्ध्रा भविष्यन्ति दशाभीरास्तथा नृपाः ।
सप्तगदभिलाश्चापि शकाश्चाष्टादशैव तु ।१८
यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषाराश्च चतुर्दश ।
त्रयोदश गु (नु) रुंडाश्च हूणाह्येकोनविंशतिः ।१९
यवनाष्टौभविष्यन्तिसप्तशीतिर्महीमिमाम् ।
सप्तगर्दभिलाभूयोभोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम् ।२०
सप्तवर्षसहस्राणि तुषाराणां मही स्मृता ।
शतानि त्रीण्यशीतिञ्च शतान्यष्टादशैव तु ।२१

हे द्विज ! इसके पश्चात् केवल छै वर्ष ही विजय इसका राजा हुआ था । चण्डश्री और शान्तिकर्ण उसका पुत्र दश वर्ष तक शासक रहा था । सुलोमा सप्त वर्ष तक होना फिर उनका अन्य होना इस तरह से ये इक्कीस आन्ध्र राजा इस मही का भोग करेंगे ।१५-१६। उनके शासन का काल एक सौ वर्ष और चौसठ होगा आन्ध्रों के राज्य में उनके भृत्यों के वश में नृप संस्थित होंगे । सात ही आन्ध्र तथा दश आभीर नृप होंगे । सात गर्दभिल भी होंगे तथा अट्ठारह शक होंगे । आठ यवन राजा होंगे और चौदह तुषार नृपति होंगे । तेरह गुरुंड राजा होंगे तथा उन्नीस हूण राजा इस मही का शासन करेंगे । इस मही को सत्तासी वर्ष तक आठ यवन भोगेंगे तथा सात गर्दभिल फिर इस वसुन्धरा का उपभोग करेंगे । यह मही सात हजार वर्ष तक तुषारों की बतलाई गई है । तीन सौ अस्सी और अट्ठारह सौ वर्ष तक का समय बताया गया है ।१७-२१।

शतान्यर्द्धञ्चतुष्काणि भवितव्यास्त्रयोदश ।
गु (मु) रुण्डा वृषलैः सार्धं भोक्ष्यन्ते म्लेच्छसम्भवाः ।२२
शतानित्रीणिभोक्ष्यन्ते वर्षाण्येकादशैव तु ।
आन्ध्राः श्रीपार्वतीयाश्चतेद्विपञ्चाशतसमाः ।२३
सप्तषष्टिस्तुवर्षाणि दशाभीरास्तथैव च ।
तेषूत्सन्नेषु कालेन ततः किलकिला नृपाः ।२४

भविष्यन्तीह यवना धर्मत: कामतोऽर्थत: ।
तैर्विमिश्रा जनपदा आर्य्याम्लेच्छाश्च सर्वश: ।२५
विपर्ययेण वर्तन्ते क्षयमेष्यन्ति वै प्रजा: ।
लुब्धानृतब्रुवाश्चैव भवितारो नृपास्तथा ।२६
कल्किन निहता: सर्वे आर्य्याम्लेच्छाश्चसर्वत: ।
अधार्मिकाश्चयेऽत्यर्थं पाषण्डाश्चैवसर्वस: ।२७
प्रणष्टे नृपवंशे तु सन्ध्याशिष्टे कलौ युगे ।
किञ्चिच्छिष्टा: प्रजास्तावै धर्मे नष्टेऽपरिग्रहा: ।२८

डेढ़ सौ और चार वर्ष देक तेरह होंगे । वृषलों के साथ म्लेच्छों से समुत्पन्न गुरुण्ड इस भूमि का उपयोग करेंगे ।२२। तीन सौ ग्यारह वर्ष तक आन्ध्र नृप इस भूमण्डल का उपयोग करेंगे और श्री पार्वतीय द्विपञ्चाशत वर्ष पर्यन्त इस वसुन्धरा पर शासन करेंगे । उसी भाँति दश आभीर सड़सठ वर्ष तक इसका उपभोग करेंगे । समय आने पर उन सबके उत्पन्न हो जाने पर फिर इस मही मण्डल पर किलकिला नृप होंगे जो यहाँ पर काम से—अर्थ से और अधर्म से यवन होंगे । उन से मिले-हुए जनपद सब ओर आर्य्य और म्लेच्छ हो जांयगे । सब विपर्यय से बरताव करेंगे और प्रजा क्षय को प्राप्त हो जायेगी । राजा लोग आम तौर पर बड़े ही लालची तथा मिथ्या भाषण करने वाले हो जांयगे । फिर ये सब आर्य तथा म्लेच्छ सब ओर में कल्कि के द्वारा निहत होंगे । जो भी उस समय में अधार्मिक और अत्यन्त ही पाखण्डी होंगे वे सब निहत हो जांयगे । इस तरह से नृपों के वंश के प्रनष्ट हो जाने पर और कलियुग के सन्ध्या भाग के बाकी रहने पर कुछ थोड़ीसी प्रजा के जन शिष्ट रहेंगे और वे भी धर्म्म के नष्ट हो जाने पर परिग्रह शुन्य होंगे ।२३-२८।

असाधवो ह्यसत्वाश्च व्याधिशोकेन पीड़िता: ।
अनावृष्टिहताश्चैव परस्परवधेप्सव: ।२९
अशरण्या: परित्रस्ता: सङ्कटं घोरमाश्रिता: ।
सरित्पर्वतवासिन्यीभविष्यन्त्यखिला: प्रजा: ।३०

पत्रमूलफलाहाराश्चीरपत्राजिनाम्बराः ।
वृत्यर्थमभिलिप्सन्त्यश्चरिष्यन्ति वसुन्धराम् ।३१
एवं कष्टमनुप्राप्ताः प्रजाकाले युगान्तके ।
निःशेषास्तु भविष्यन्ति सार्द्धं कलियुगेन तु ।३२
क्षीणे कलियुगे तस्मिन् दिव्ये वर्षं सहस्रके ।
ससन्ध्यांशे सुनिःशेषे कृतं तु प्रतिपत्स्यते ।३३
एव वंशक्रमः कृत्स्नः कीर्तितो यो मया क्रमात् ।
अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ।३४
महापद्माभिषेकात्तु यावज्जन्मपरीक्षितः ।
एवं वर्षसहस्रन्तु ज्ञेयं पञ्चाशदुत्तरम् ।३५

प्रजाजनों में सभी असाधु वृत्ति वाले—सत्व से हीन तथा व्याधियों एवं शोकों से उत्पीड़ित होंगे । अनावृष्टि से अर्थात् वर्षा के पूर्णतया अभाव होने से सब लोग हत होंगे और सब लोग परस्पर में वध करने की इच्छा रखने वाले हो जायेंगे । सब रक्षक से रहित-भयभीत तथा परम घोर सङ्कटको प्राप्त करने वाले—मही, तरु और पर्वतों में निवास करने वाले सभी प्रजाजन उस भीषण एवं महान् दारुण समय से हो जायेंगे । भोजन के अभाव में सब लोग पत्ते—मूल और फलोंके आहार करने वाले होंगे तथा चीर पत्र-कर्म के वस्त्र धारण किया करेंगे । सब लोग अपनी वृत्ति के प्राप्त करने की इच्छा से सम्पूर्ण पृथिवी पर इधर उधर घूमने फिरेंगे । इस प्रकार से युग के अन्त करने वाले प्रजा के समय में सभी इस कलियुग के साथ ही निःशेष हो जायेंगे । उस कलियुग के क्षीण हो जाने पर दिव्य वर्ष सहस्र वाले सन्ध्यांश के समय में जो कि उस समय से सुनिः शेष है कृतयुग ही प्राप्त हो जायगा ।२९-३३। इस रीति से मैंने यह वंश का क्रम पूर्ण रूप से तथा क्रम से आप सब लोगों के सामने कह दिया है । इस वंश क्रम में जो राजा लोग पहिले हो चुके हैं वे सब वर्तमान काल में जितने भी विद्यमान हैं वे सब तथा जो भविष्य में होंगे वे सभी कीर्त्तित कर दिए गए हैं । महापद्म के अभिषेक से जब तक परीक्षित राजा का जन्म था एक सहस्र और आगे पञ्चाशत वर्ष समझने चाहिए ।३४-३५।

पौलोमास्तु तथान्ध्रास्तु महापद्मान्तरे पुनः ।
अनन्तरंशतान्यष्टौ षट्त्रिंशत्तु समास्तथा ।३६
तावत्कालान्तरं भाव्यमान्ध्रान्तादापरीक्षितः ।
भविष्येते प्रसङ्ख्याताः पुराणज्ञैः श्रुतर्षिभिः ।३७
सप्तर्षयस्तदाप्रांशु प्रदीप्तेनाग्निना समाः ।
सप्तविंशतिभाव्यानां आन्ध्राणान्तु यदापुनः ।३८
सप्तर्षयस्तु वर्त्तन्ते यत्र नक्षत्रमण्डले ।
सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्यायेण शतं शतम् ।३९
सप्तर्षीणामुपर्य्यें तत् स्मृत तौ दिव्यसंज्ञया ।
समादिव्याः स्मृताः षष्टिर्दिव्याब्दानि तु सप्तभिः ।४०
एभिः प्रवर्तते कालो दिव्यः सप्तर्षिभिस्तुवः ।
सप्तर्षीणाञ्च यौ पूर्वौ दृश्येते ह्युदितौ निशि ।४१
तयोर्मध्ये तु नक्षत्रं दृश्यते यत्समं दिवि ।
तेन सप्तर्षयो ज्ञेया युक्ताव्योम्नि शतं समाः ।४२

फिर पौलोम और आन्ध्र उस महा पद्मान्तर में अनन्तर आठ सौ छत्तीस वर्ष पर्यन्त समय था । तब तक परीक्षित नृप से लेकर आन्ध्रों के अन्त तक होगा । श्रुतर्षि पुराणों के ज्ञाताओं ने वे सब भविष्य में ख्यात किये हैं ।३६-३७। उस समय में प्रांशु प्रदीप्त अग्नि के समान सप्तर्षिगण थे होने वाले सत्ताईस आन्ध्रोंके जब फिर सप्तर्षिगण हैं जिस नक्षत्र मण्डल में पर्याय (पारी) से सौ-सौ सप्तर्षिगण स्थित रहा करते है । सप्तर्षियों के ऊपर में जो बताये गये हैं वे दिव्य संज्ञा से दिव्य वर्ष ही कहे गये हैं ! वे दिव्य वर्ष साठ और सात के साथ हैं ।३८-४०। इनसे सप्तर्षियों से दिव्य काल प्रवर्त्तित होता है । सप्तर्षियों के जो दो पूर्व में होने वाले निशा में उदित दिखलाई देते हैं उन दोनो के मध्य में जो नक्षत्र सम दिवलोक में दिखलाई देता है उससे व्योम में सौ वर्ष तक युक्त सप्तर्षिगण जानने के योग्य हैं ।४१-४२।

नक्षत्राणामृषीणाञ्च योगस्यंतन्निदर्शनम् ।
सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारिक्षिते शतम् ।४३

ब्राह्मणास्तु चतुर्विंशा भविष्यन्ति शतंसमाः ।
ततः प्रभृत्ययं सर्वोलोकोव्यापत्स्यते भृशम् ।४४
अनृतोपहृतालब्धा धर्मतः कामतोऽर्थतः ।
श्रौतस्मार्तेति शिथिले नष्टवर्णाश्रमे तथा ।४५
सङ्कुरादुर्बलात्मानः प्रतिपत्स्यन्ति मोहिताः ।
ब्राह्मणाः शूद्रयोनिस्था शूद्रा वै मन्त्रयोनयः ।४६
उपस्थास्यन्ति तान्विप्रास्तदर्थमभिलिप्सवः ।
क्रमेणैव च दृश्यन्ते स्ववर्णान्तरदायकम् ।४७
क्षयमेव गमिष्यन्ति क्षीणशेषा युगक्षये ।
यस्मिन्कृष्णोदिवं यातस्तस्मिन्न वै तदाहनि ।४८
प्रतिपन्ने कलियुगे प्रमाणं तस्य मे शृणु ।
चतुः शतसहस्रन्तु वर्षाणां वै स्मृतं बुधैः ।४९

नक्षत्रों के और ऋषियों के योग का यह निदर्शन है। परिक्षित काल में तो मघा से युक्त सप्तर्षिगण हैं। सौ वर्ष तक चालीस ब्राह्मण होंगे। तब से लेकर यह सब लोक अत्यन्त ही अधिक आपत्तिको प्राप्त होगा धर्म से और काम से हीन-अनृत से उपहृत-लुब्ध लोग होंगे। श्रौत और स्मार्त्त धर्म एकदम शिथिल हो जाने पर वर्णो और आश्रमों के नष्ट होने पर दुर्बल आत्मा वाले परम मोह के प्राप्त हुई लोग संक-रता को प्राप्त हो जायेंगे ब्राह्मण लोग शूद्र योनियोमें स्थित हो जायेंगे और जो शूद्र होंगे वे मन्त्रयोनि वाले हो जायेंगे।४३-४६। उसके अर्थके जानने की इच्छा वाले विप्रगण उन शूद्रों के समीप में समुपस्थित हुआ करेंगे। इसी क्रम से दिखलाई देंगे। अपने वर्ण के अन्तर को देने वाले युग के क्षय में क्षीण शेष सब क्षय को ही प्राप्त हो जायेंगे। उस दिन में भगवान् श्रीकृष्ण दिवलोक में अन्तर्हित होकर चले गयेथे उसी समय में और उस ही दिन में यह कलियुग प्रतिपन्न हो गया था। उसका प्रमाण अब आप मुझसे श्रवण करिये। बुधजनोंके द्वारा चार सौ सहस्र वर्ष अर्थात् चार लाख बताया गया है।४७-४९।

चत्वार्यंष्टसहस्राणि सङ्ख्यातं मानुषेण तु ।
दिव्यं वर्ष सहस्रन्तु तदा सङ्ख्या प्रवर्तते ।५०
निःशेषे तु तदा तस्मिन् कृतं वै प्रतिपत्स्यते ।
ऐलश्चैक्ष्वाकुवंशश्च सहदेवः प्रकीर्त्तिताः ।५१
इक्ष्वाकोः संस्मृतं क्षत्रं सुमित्रान्तभविष्यति ।
ऐल क्षत्रं समाक्रान्तं सोमवंशविदोविदुः ।५२
एते विवस्वतः पुत्राः कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः ।
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ।५३
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्तथा शूद्राश्च वै स्मृताः ।
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन्निति वंशः समाप्तते ।५४
देवापिः पौरवो राजा ऐक्ष्वाको यश्च ते मतः ।
महायोगबलोपेतौ कलापग्राममाश्रितौ ।५५
एतौ क्षत्रप्रणेतारौ नवविंशे चतुर्युगे ।
सुवर्चा मनुपुत्रस्तु ऐक्ष्वाकाद्यो भविष्यति ।५६

मानुष ने बत्तीस हजार वर्ष संख्यात किया है। उस समय में दिव्य सहस्र वर्ष की संख्या प्रवृत्त होती है ।५०। उस समय में उस कलियुगके निःशेष हो जाने परही कृतयुग प्राप्त हो जायगा। ऐल और सहदेव इक्ष्वाकु वंश प्रकीर्त्तित किये गये हैं। इक्ष्वाकु का संस्मृत क्षत्र सुमित्र के अन्त तक होगा। ऐल क्षत्र समाक्रान्त को सोम वंश के वेत्ता लोग जानते हैं। ये सब विवस्वान् के कीर्ति के वर्धन करने वाले पुत्र कीर्तित किये गये हैं जो व्यतीत हो चुके हैं—वर्तमान काल में विद्यमान हैं तथा जो अब तक अनागत हैं अर्थात् भविष्य में होने वाले हैं ।५१। ।५३। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण कहे गये हैं। उस वैवस्वत मन्वन्तर में यह वंश समाप्त हो जाया करता है ।५४। देवापि और पौरव राजा जो आप ऐक्ष्वाक मानतेहैं। ये दोनों महान् योग बल से समुपेत थे तथा कलाप ग्राममें आश्रय ग्रहण करने वाले थे। ये दोनों ही नवविंश चतुर्युग में क्षत्र के प्रणयन करने वाले थे। मनु का पुत्र सुवर्चा ऐक्ष्वाकों में सबसे आदि में होने वाला होगा ।५५-५६।

नवविंशे युगे सांडी वंशस्यादि भविष्यति ।
देवापिपुत्र: सत्यस्तु ऐलानां भविता नृप: ।५७
क्षत्रप्रवर्तकावेतौ भविष्येते चतुर्युगे ।
एवं सर्वेषु विज्ञेयं सन्तानार्थन्तु लक्षणम् ।५८
क्षीणे कलियुगे चैव तिष्ठन्तीति कृते युगे ।
सप्तर्षयस्तु तै: सार्धं मध्ये त्रेतायुगे पुन: ।५९
बीजार्थं वै भविष्यन्ति ब्रह्मक्षत्रस्तु वै पुन: ।
एवमेव तु सर्वेषु तिष्यान्तेष्वन्तरेषु च ।६०
सप्तर्षयोनृपै: सार्द्धं सन्तानार्थं युगे युगे ।
एव क्षत्रस्य चोत्सेध: सम्बन्धो वै द्विजै: स्मृत: ।६१
मन्वन्तराणां सन्ताने सन्तानाश्चश्रु तौस्मृता: ।
अतिक्रान्तयुगाश्चैव ब्रह्मक्षेत्रस्यसम्भवा: ।६२
यथा प्रशान्तिस्तेषां वै प्रकृतीनां यथाक्षय: ।
सप्तर्षयो विदुस्तेषां दीर्घायुस्त्व क्षयोदयौ ।६३

नवविंश युग में वह वंश का आदि होगा । देवापि का पुत्र सत्य ऐलों का नृप होगा । भविष्य चतुर्युगमें ये दोनों क्षत्र के प्रवर्त्तक होंगे। इसी प्रकार से सबमें समस्त तथा जान लेना चाहिए । सबका समान अर्थ वाला लक्षण है ।५७-५८। कलियुग के क्षीण हो जाने पर कृतयुग में सप्तर्षिगण स्थित रहा करते हैं । मध्य में त्रेतायुगमें पुन: उनके साथ रहते हैं ।५९। पुन: बीजके लिए वे होंगे । पुन: ब्रह्म और क्षत्र होंगे । इस प्रकार से सब तिष्यान्त अन्तरों में युग में सन्तान के लिए नृपों के साथ में सप्तर्षिगण होंगे । इस तरह से क्षत्र का उत्सेध द्विजों के साथ सम्बन्ध कहा गया है । मन्वन्तरों के सन्तानमें सन्तान श्रु तिमें कहे गये हैं । अतिक्रान्त युग वाले ब्रह्म और क्षत्र के सम्भव बताये गये हैं ।६०-६२। जिस प्रकार से उनकी प्रशान्ति और जिस तरह से प्रकृतियों का क्षय, ये दोनों क्षय और उदय सप्तर्षिगण उनके दीर्घायुस्त्व को जानते हैं ।६३।

एतेन क्रमयोगेन ऐला इक्ष्वाकवो नृपा: ।
उत्पद्यमानास्त्रेतायां क्षीयमाण: कलौ युगे ।६४
अनुयान्ति युगाख्यान्तु यावन्मन्वन्तरक्षयम् ।

जामदग्न्येन रामेण क्षत्रेनिरवशोषिते ।६५
रिक्तेयं वसुधासर्वा क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः ।
द्विवंशकरण सर्वा कीर्तयिष्ये निबोध मे ।६६
ऐलञ्चेक्ष्वाकुवंशञ्च प्रकृति परिचक्षते ।
राजानः श्रेणिबद्धाश्च तथान्ये क्षत्रिया भुवि ।६७
ऐलवंशास्तु भूयांसो न तथेक्ष्वाकवो नृपाः ।
एषामेकशतं पूर्णं कुलानामभिरोचते ।६८
तावदेव तु भोजानां विस्ताराद्द्विगुणं स्मृतम् ।
भोजानां द्विगुणं क्षेत्रं चतुर्द्धा तद्यथातथम् ।६९
ते ह्यतीताः स नाम्नो श्रु न्वतस्तान्निबोध मे ।
शतं वै प्रतिविन्ध्यानां शत नागाः शतं हयाः ।७०

इस क्रम के योगसे ऐल और इक्ष्वाकु नृप त्रेता में उत्पद्यमान होते हैं और कलियुग में क्षीयमाण हुआ करते है ।६४। जब तक मन्वन्तर का क्षय होता है युगाख्या का अनुमान किया करते हैं । जामदग्नि (परशुराम) के द्वारा समस्त क्षत्रियोंके निरवशेषित होनेपर इस सम्पूर्ण वसुधाके स्वामी क्षत्रियों से यह समस्त वसुन्धरा रिक्त हो गई थी । सब द्विवंश करण को मैं कीर्त्तित करूँगा । उसे अब आप लोग मुझसे समझ लेवें ।६५-६६। ऐलवंश और ईक्ष्वाकु वंश प्रकृति के अनुकूल होते हैं । श्रेणीबद्ध राजा लोग तथा भूमंडल में क्षत्रियगण हैं । ऐलवंश वाले बहुत अधिक हैं और उस तरह से इक्ष्वाकु के वंश वाले नृप नहीं है । इन कुलों के पूर्ण एकशत अभिरोचित होता है । उतना ही विस्तार से भोजों का द्विगुण कहा गया है । भोजों का द्विगुण क्षत्र यथातथा है । ।६७-६९। वे सब अतीत हो गये हैं । उनके नामों को बतलाने वाले मुझसे आप लोग ज्ञान प्राप्त कर लेवें । एक सौ प्रतिवन्ध्यों के थे । सौ नागों के थे और एकशत हय थे ।७०।

शतमेकं धार्तराष्ट्रा ह्यशीतिर्जनमेजयाः ।
शतं वै ब्रह्मदत्तानां वीराणां कुरवः शतम् ।७१
ततः शतञ्च पञ्चालाः शतं काशिकुशादयः ।
तथापरे सहस्रे द्वे ये नीपाः शशविन्दवः ।७२

इष्टवन्तश्च ते सर्वो सर्वे नियुतदक्षिणाः ।
एवं राजर्षयोऽतीताः शतमथ सहस्रशः ।७३
मनु वैवस्वतस्यास्मिन्वर्तमानेऽन्तरेविभोः ।
तेषांतुनिधनोत्पत्तौ लोकसंस्थितयः स्थिताः ।७४
न शक्यो विस्तरस्तेषां सन्तानस्य परस्परम् ।
तत्पूर्वापरयोगेन वक्तुं वर्षशतैरपि ।७५
अष्टाविंशसमाख्याता गता वैवस्वतेऽन्तरे ।
एते देवगणैः सार्द्धं शिष्टा ये तान्निबोधत: ।७६
चत्वारिंशत्त्रयश्चैव भवितास्ते महात्मनः ।
अवशिष्टं युगाख्याते ततो वैवस्वतोह्ययम् ।७७

एकशत धृतराष्ट्र थे । अस्सी जन्मेजय थे । ब्रह्मदत्तों के एक शत थे जो कि महावीर हुए थे । कुरुगण शत थे ।७१। पञ्चाल एक शत थे और काशि कुशादिक एक सौ थे । जो नीप शशबिन्दु थे उसी भाँति दूसरे दो सहस्र थे ।७२। वे सब इष्टवान् थे और सभी नियुत दक्षिणा वाले थे इस प्रकार से राजर्षिगण सैकड़ों तथा सहस्रों की संख्या से अतीत हो चुके हैं । ये सब विभु वैवस्वत मनु के वर्त्तमान अन्तर में थे । उनके निधन और उत्पत्ति में लोकों की संस्थितियाँ स्थित थीं । उनके सन्तान का परस्पर में विस्तार उनके पूर्वापर योग से एक सौ वर्ष में भी कहा नहीं जा सकता है ।७३-७५। ये अट्ठाईस वैवस्वत मन्वन्तर में समाख्यात किये गये हैं । ये देवगणों के साथ में जो शिष्ट हैं उनको भी समझलो ।७६। चालीस और तीन वे महान् आत्मा वाले होने वाले हैं । वे अवशिष्ट युगाख्य हैं उसके पश्चात् यह वैवस्वत है । ।७७।

एतद्वः कीर्त्तितं सम्यक् समासव्यासयोगतः ।
पुनरुक्तु बहुत्वात्तु न शक्यं विस्तरेण तु ।७८
उक्ता राजर्षयो येतु अतीतास्ते युगैः सह ।
ये ते ययातिवंश्यानां ये च वंशा विशाम्पते ।७९
कीर्त्तिता द्युतिमन्तस्ते य एतान् धारयेन्नरः ।
लभते स वरान् पञ्च दुर्लभानिहलौकिकान् ।८०

आयु: कीर्ति धनं स्वर्गं पुत्रवांश्चाभिजायते ।
धारणाच्छ्रवणाच्चैव परं स्वर्गस्य धीमत: ।८१

यह संक्षेप और विस्तार के योग से भली भाँति आपको बतला दिया है और फिर अधिक होने के कारण विस्तार के साथ बतलाया नहीं जा सकता है । राजर्षिगण बतलाये गये हैं वे सब युगों के साथ अतीत हो गये हैं वे जो ययाति के वंश में होने वाले हैं और जो विशाम्पति के वंश हैं वे द्युतिमान् सब कीर्त्तित कर दिये गये हैं इनको जो नर धारण करताहै वह पाँच लौकिक दुर्लभ वरोंको प्राप्त किया करता है आयु, कीर्त्ति, धन, स्वर्ग और पुत्रवान् अभिजात होता है । उस धीमान् को इनके धारण करने से, श्रवण करने से स्वर्ग में परम पद प्राप्त हुआ करता है ।७८-८१।

एतद्व: कथितं सर्वं यदुक्तं विश्वरूपिणा ।
मात्स्यं पुराणमखिलं धर्मकामार्थसाधनम् ।८२
एतत्पवित्रमायुष्यमेतत्कीर्तिविवर्धनम् ।
एतत्पवित्रं कल्याणं महापापहरं शुभम् ।८३
अस्मात् पुराणादपि पादमेकं पठत्तु य: सोऽपि विमुक्तपाप:।
नारायणाख्यं पदमेति नूनमनङ्गवद्दिव्यसुखानि भुङ्क्ते ।८४

यहाँ तक विश्व स्वरूप भगवान् मत्स्य का कहा हुआ पुराण कह दिया गया तो समस्त धर्म, अर्थ, काम का सिद्ध करने वाला है ।८२। यह पवित्र महा पुराण आयु और कीर्त्ति की वृद्धि करने वाला और परम कल्याणजनक है । बड़े से बड़े पाप भी इसके द्वारा दूर हो जाते हैं ।८३। जो कोई इस पुराण का एक श्लोक भी पढ़ेगा वह पाप से विमुक्त हो जायगा और भगवान् की कृपा से देवताओं के समान दिव्य सुखों का उपभोग करेगा ।८४।

॥ मत्स्य-पुराण द्वितीय खण्ड समाप्त ॥